श्रीललितालालित्यम्

(हिन्दीव्याख्यासहितम्)

व्याख्याकारः
आचार्य रविशङ्कर द्विवेदिनः
ज्योतिष्पीठपण्डित

ज्योतिष्पीठ पण्डित

आचार्य रविशङ्कर द्विवेदी

जन्म	आश्विन शुक्ल द्वादशी विक्रम संवत् 1997 तदनुसार 13 अक्टूबर 1940 ईसवी, सिवनी (नगर) मध्यप्रदेश
पूज्यमाता	स्व. श्रीमति मूलदेवी
पूज्यपिता	दार्शनिकरत्न स्व. पं. हरिप्रसाद द्विवेदी शास्त्री
अध्ययन	नव्य व्याकरणशास्त्री, दर्शनाचार्य, साहित्याचार्य काव्यतीर्थ एम.ए. (सं.पालि, प्राकृत)
दीक्षागुरु	ज्योतिष्पीठाधीश्वर एवं द्वारकाशारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु शङ्कराचार्य अनन्तश्रीविभूषित ब्रह्मलीन स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती जी महाराज
पूर्णाषिक्त	वैशाखशुक्ल पञ्चमी आ.श. जयन्ती 1984 ई.
दीक्षानाम	शक्त्यम्बासाहित ढुंढिराजानन्दनाथ
अभिरुचि	अध्ययन-अध्यापन
कृतित्व	स्वरूप-सपर्या, ललितात्रिशती भाष्य, श्रीविद्यामन्त्र भाष्य, श्रीललितालालित्यम् भविष्य में : पूर्णाभिषेक विधि, विमर्श
निवास	श्रीसरस्वती सदनम्, श्रीपरमहंसा गङ्गा आश्रम क्षेत्र, ज्योतेश्वर (झौंतेश्वर), तहसील-श्रीधाम (गोटेगांव), जिला नरसिंहपुर, मध्यप्रदेश
कार्यस्थल	प्रधानाचार्य - श्रीज्योतिरीश्वर ऋषिकुल सं.म.वि. ज्योतेश्वर
संपर्क सूत्र	7003605175

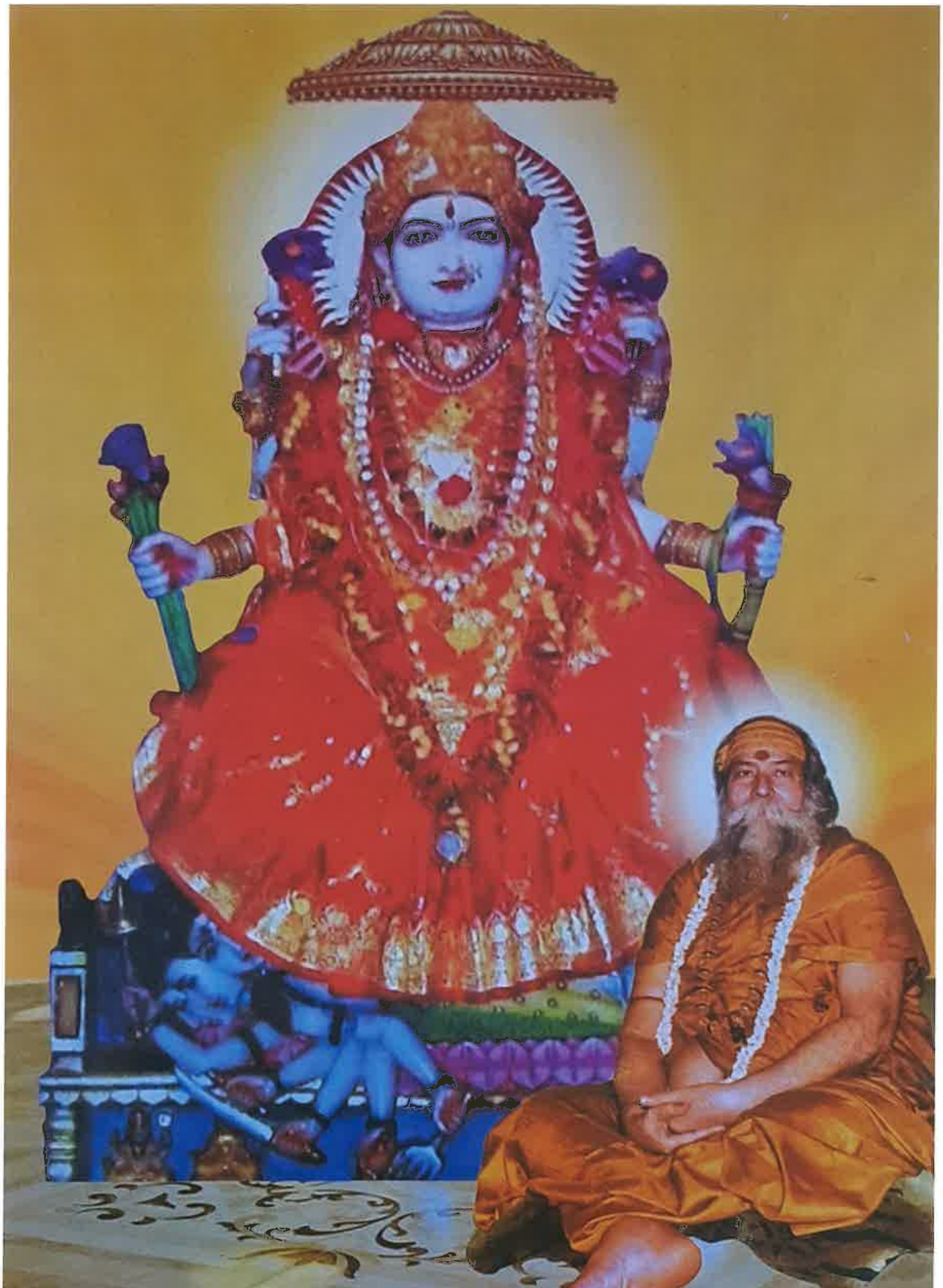

अनन्तश्री विभूषित पश्चिमाम्नाय द्वारकाशारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु शङ्कराचार्य
स्वामीश्री सदानन्द सरस्वती जी महाराज

श्रीललितालालित्यम्

(हिन्दीव्याख्यासहितम्)

व्याख्याकारः

आचार्य रविशङ्कर द्विवेदिनः

ज्योतिष्पीठपण्डित

प्रकाशक
द्वारकाशारदापीठ
जिला देवभूमि द्वारका, गुजरात
पिन 361335

प्रेरणास्त्रोत
ज्योतिष एवं द्वारकाशारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु शङ्कराचार्य
ब्रह्मलीन स्वामी श्रीस्वरूपानन्द सरस्वती जी महाराज

प्राप्तिस्थान
1. परमहंसी गङ्गा आश्रम, झोंतेश्वर, नरसिंहपुर म.प्र.
2. द्वारका शारदापीठ, जिला देवभूमि द्वारका, गुजरात
3. राजराजेश्वरी सेवा मठ, कोन्नगर, हुगली (प. बंगाल)
4. श्रीविद्यामठ, केदारघाट, वाराणसी

पृष्ठ संख्या
624 पृष्ठ

संस्करण
प्रथम : गीताजयंती विक्रम संवत् 2081
तदनुसार 11 दिसंबर 2024 ई.

मूल्य
600/- (छह सौ रुपये मात्र)

पृष्ठ सज्जा
पुनीत अग्रवाल, जबलपुर मो. 7049295777

प्राक् कथनः-

श्री परमहंसी गङ्गा आश्रम में पूज्य महाराजश्री विराजमान थे, उनके शुभ पापनाशक श्री विग्रह के दर्शन करते हुए तथा उनकी परमकल्याणकारिणी समस्त सन्देहों, शंकाओं का सहज में ही प्रशमन करने वाली वात्सल्य पूर्ण मधुर वाणी का श्रवण करते हुए दर्शनार्थी भक्तजन सन्तुष्टि का अनुभव करते थे।

इसी भाव भूमि में एक दिन मुझे कहा कि तुमने हमसे आज्ञा लेकर श्रीविद्या तत्त्व से सम्बद्ध ग्रंथों का अनुवाद किया है- जैसे तुमने पूज्य करपात्री जी द्वारा संस्कृत भाषा में किये गए 'पंचदशी महामंत्र भाष्य' का हिन्दी भाषा में अनुवाद किया तथा 'त्रिशती स्तोत्र' में आदिशङ्कराचार्य जी के अद्वैत सिद्धान्त परक गम्भीर भाष्य का भी तुमने हमसे आज्ञा लेकर हिन्दी कर दिया, इसी तरह दुर्लभ ग्रन्थ चर्याखण्ड का जो अपूर्ण है केवल 5 अध्याय (11 से 14 तथा 18वां) इनका हमारे आदेश से हिन्दी में अनुवाद कर दिया। इन प्रयासों से श्रीविद्या जिज्ञासुओं की जिज्ञासा पूर्ण हो सकती है। इसी प्रकार तुम 'ब्रह्माण्डोत्तर पुराण' के अंश भाग 'ललितोपाख्यानम्' 40 अध्यायों का अनुवाद भी करो...

इस ग्रन्थ के अन्वेषणार्थ पूज्य महाराजश्री काठमाण्डू (नेपाल) की यात्रा के अवसर पर मुझे इसे अन्वेषण कर खरीदने का आदेश दिया था, परन्तु यह मुझे नहीं मिल सका, पर योगिनियों (अक्षोभ्यादिजयन्तिकान्त) 64 योगिनियों की प्रामाणिक प्रति मिल गई। वह मैंने परम पूज्य महाराजजी को अर्पित किया, ये योगिनियां श्रीमहालक्ष्मी (दुर्गासप्तसती के मध्यम चरित की अधिष्ठात्री महालक्ष्मी जी की योगिनियां हैं) इनकी स्थापना पू.म.जी विभिन्न अपने आश्रमों में की। कालान्तर में पूज्य महाराज जी के हरिद्वार में चातुर्मास्य प्रसंग में चर्याखण्ड की प्राप्ति हुई। तब पूज्य महाराज श्री ने मुझे आदेश देकर अनुवाद कराया।

इसी प्रकार एक बार पूज्य महाराजश्री ने परमहंसी गङ्गा आश्रम में मुझे सम्बोधित करते हुए कहा कि तुम 'ललितोपाख्यानम्' का अनुवाद करो इस पौराणिक अंश भाग में अगस्त्य जी से भगवान श्री हयग्रीव के भगवती की आज्ञा से यह श्री विद्या सम्बन्ध उपाख्यान वर्णित किया है।

इस आख्यान को अनुवाद के समय इसमें आए हुए विषयों के वर्णन में अकल्पित अनुभूति होती थी, यह श्रीगुरु कृपा से ही हुआ। इस आख्यान में चालिस अध्याय हैं, इन

अध्यायों में भगवान हयग्रीव ने विस्तार से अगस्त्य जी को श्रीविद्या के तत्त्वों का विवेचन किया।

भगवती आविर्भाव, भण्डासुर वैभव, भगवती का युद्ध वर्णन, रश्मिमाला का श्रीयन्त्र में न्यास, शतरुद्रिय शिववैदिक मन्त्रों का श्रीचक्र में न्यास, भगवान राम का भगवती के अनुग्रह से आविर्भाव, प्रह्लाद का आध्यात्मिक रूप वर्णन, मुद्रा विवेचना तथा नवरात्रों में पाठ का फल ऐसे अनेक विषय हैं, जिनका परिज्ञान इस ग्रन्थ से होता है। भगवती की पन्द्रह तिथि नित्याओं ने किन असुरों का संहार किया। भगवती बालात्रिपुरसुन्दरी ने भण्ड के पुत्रों का विनाश किया, उन पुत्रों के नाम आदि वर्णन इसी ग्रन्थ में मिलते हैं।

इनके परिचय के लिए पूज्य गुरुवर का मन इसके समाज के मध्य जिज्ञासुओं साधकों के साधन सिद्धि के लिए यह आदेश देना कल्याण का निर्देश है। मैं समस्त विद्वानों का, गुप्त साधकों का साथ ही भगवती के पादपद्मों में सादर प्रणामाञ्जलि समर्पित कर रहा हूं।

पूज्य महाराजश्री के प्रतिबिम्बरूप अनादि अपौरूषेय सनातन वैदिक परम्परा के संवाहक श्रीद्वारकाशारदापीठाधीश्वर अनन्त श्री विभूषित स्वामी श्री सदानन्द सरस्वती जी के चरणों में प्रणाम पूर्वक ॐ नमो नारायणाय तथा श्री ज्योतिष्पीठाधीश्वर स्वामी श्री अविमुक्तेश्ववरानन्द सरस्वती जी 1008 के पादपद्मों में प्रणामपूर्वक ॐ नमो नारायणाय समर्पित करता हूं साथ ही पूज्य महाराजश्री के ब्रह्मचारियों को प्रणाम करता हूं, माँ भारती भारतीया को अनन्त प्रणामांजलि...

-निवेदक :

ज्योतिष्पीठपण्डितः द्विवेदो रविशङ्करः

विषयसूची

अध्याय	अध्याय श्लोक संख्या	विषय	
1.	35	श्रीअगस्त्य एवं श्री हयग्रीव भेंट श्रीअगस्त्य जी का प्रश्न	001
2.	152	इन्द्र को दुर्वासाशाप, इन्द्र गुरु संवाद	009
3.	58	बृहस्पति के उत्तर	037
4.	80	समुद्रमन्थन	049
5.	86	श्रीविष्णु मोहिनीअवतार श्री ललिताम्बाप्राकट्यः	063
6.	35	भण्डासुरोत्पत्तिः	079
7.	79	भण्डासुर का अभिषेक	087
8.	38	श्री ललितास्वराज	101
9.	31	देवीदर्शन के लिए ब्रह्मादि का आना	109
10.	61	श्रीललिताकामेश्वरयोर्विवाह	115
11.	108	भण्डासुरवधार्थ भगवती का प्रस्थान	127
12.	97	चक्रराजस्थदेवतावर्णन	145
13.	102	किरिचक्रदेववर्णन	161
14.	48	शून्यकनगरोत्पात	177
15.	55	विषङ्गमन्त्रोपदेश	185
16.	66	सम्पत्करी द्वारा दुर्मदवध	195
17.	42	अश्वारूण द्वारा कुरजवध	205
18.	101	नकुली द्वारा कटंकादिवध	213
19.	103	तिरस्करिणी द्वारा बलाहकवध	229
20.	109	विषङ्ग पलायन	245

अध्याय	अध्याय श्लोक संख्या	विषय	
21.	43	वह्निप्राकार रचना	263
22.	82	बाला द्वारा भंडपुत्रवध	271
23.	104	श्रीगणेश प्रादुर्भाव, पराक्रम	285
24.	122	विशुक्र विषंगवध	301
25.	64	ललिता भंडासुरयुद्ध	319
26.	104	भण्डासुरवध	329
27.	105	ब्रह्मादि द्वारा स्तुति, तारकासुर वध	347
28.	184	श्रीनगर निर्माण	367
29.	101	रत्नसाल लक्षणादि	395
30.	102	रुद्रालय (शतरुद्र) वर्णन	411
31.	193	महापद्माटवी वर्णन	427
32.	103	चिन्तामणि गृहवर्णन (रश्मिमाला)	445
33.	110	पंचदेव सिंहासन	461
34.	83	मन्त्रराजसाधन	479
35.	127	काञ्चीनगरी वर्णन	493
36.	151	भगवत्या दशरथाय वरदान	513
37.	87	श्रीयन्त्रराजोपासन	537
38.	20	मुद्रा (9-10) प्रकार वर्णन	551
39.	88	देवी दर्शन दीक्षा	555
40.	151	मन्त्र उपासना प्रकार कथन	571
	32	फलश्रुति	593

॥श्रीमन्महागणाधिपतये नमः।।

श्रीमाताललिताम्बायै नमः श्रीपादुकां पूजयामि नमः॥
ॐ वन्दे गुरुपदद्वन्द्वं अवाङ्गनसगोचरम्॥
रक्तशुक्ल प्रभामिश्रमतर्क्यं त्रैपुरं महः॥
ॐ आराध्यदेवं भक्तानां कलिदोषविनाशकम्॥
वन्दे श्रीगिरिजानन्दं शारदाश्रीमठाधिपम्।।
ॐ अखण्डं यस्यज्ञानञ्च भक्तिर्यस्यानपायिनी।।
शारदाज्योतिरीशस्य दर्शनं (पूजनं, वन्दनं) शुभमस्तुनः।।

(1) प्रथमोऽध्यायः - ३५ श्लोकात्मकः

-ःमूलम्ः-

अखिलमहीमण्डलं पर्यटतोऽगस्त्यस्य काञ्चीनगरे
भगवता हयग्रीवेण समागमः ॥1॥

अगस्त्येन जगदुद्धारसाधनप्रश्ने हयग्रीवेण श्रीललिताम्बापरिचर्योपदेशः॥२॥

शुक्लाम्बरधरं विष्णुं शशिवर्णं चतुर्भुजम् ।
प्रसन्नवदनं ध्यायेत्सर्वविघ्नोपशान्तये॥(१)॥

समस्तविघ्नों की शान्ति के लिए चन्द्रमा के समान वर्णवाले चतुर्भुज तथा शुभ्रवस्त्रधारण किये हुए प्रसन्नमुख भगवान्विष्णु का ध्यान करें।।

अस्तु वः श्रेयसे नित्यं वस्तु वामाङ्गमैश्वरम्।
यतस्तृतीयो विदुषां तुरीयं तत्परं महः ॥१॥

उन ध्यानगोचर भगवानसदाशिव ईश्वर का, वामाङ्गभगवती ब्रह्मविद्या उमा का अनुग्रह सभी के लिए और हम गुरु और शिष्यों के लिए श्रेयस्कर हो, अभ्युदय और निःश्रेयस की प्राप्ति हो, जिन अर्धनारीश्वर महेश्वर का विशुद्धज्ञानमय देह मुमुक्षुज्ञानिजन विद्वानों के लिये अवलम्बन है तथा उनका तुरीयतेज वास्तविक ध्येयरूप है।।1।।

(दृष्टव्य) श्रीदुर्गासप्तशती का कीलकस्तोत्र मंगलाचरणात्मक प्रथमश्लोक :

विशुद्धज्ञानदेहाय, त्रिवेदीदिव्यचक्षुषे।
श्रेयः प्राप्तिनिमित्ताय नमः सोमार्द्धधारिणे।।
अगस्त्यो नाम देवर्षिर्वेदवेदाङ्गपारगः ।
सर्वसिद्धान्तसारज्ञो ब्रह्मानन्दोदयात्मकः ॥२॥

वेदवेदाङ्गों (चार वेद ऋग्, यजुः, साम, अथर्व, चार उपवेदः आयुर्वेद धनुर्वेद, गान्धर्ववेद और अर्थशास्त्र, वेदाङ्ग शिक्षा कल्प, व्याकरण, निःरुक्त, छन्द, ज्योतिष) के परगामी समस्त सिद्धान्तों के सारतत्व को जानने वाले और जो सदैव ब्रह्मानन्द के उदय से तद्रूप हो गये थे, ऐसे देवर्षि अगस्त्य महामुनि।।2।।

चचाराद्भुतहेतूनि तीर्थान्यायतनानि च ।
शैलारण्यापगामुख्याः सर्वाञ्जनपदानपि ॥३॥

लोकोत्तर अद्भुत माहात्म्य वाले तीर्थों में, निवास स्थानों में, पर्वतीय क्षेत्रों में, वनों में तथा नदियों के प्रवाह से जलपूर्ण जनपदों में भी।।3।।

तेषु तेष्वखिलाञ्जन्तूनज्ञानतिमिरावृतान् ।
शिश्नोदरपरान्दृष्ट्वा चिन्तयामास तान्प्रति ॥४॥

रहने वाले समस्त प्राणियों को जो घने अज्ञानान्धकार से ग्रस्त थे केवल संतानोत्पत्ति, भोगविलास में संलग्न रहने वाले ऐसे लोगों को देखकर उनके उद्धार के लिए लोककल्याण के लिए चिन्तन करने लगे।।4।।

चिरं चिन्तयमानस्य चरतो वसुधामिमाम् ।
प्राप्तमासीन्महापुण्यं काञ्चीनगरमद्भुतम् ॥५॥

वे समस्त प्राणियों के कल्याण की लम्बे समय से चिन्ता कर रहे थे, इसी चिंता में परिश्रमण करते हुए वे लोकोत्तम शोभा को धारण किए हुए अत्यन्त पवित्र तीर्थ काञ्ची महानगर में पहुंचे।।5।।

तत्र वारणशैलेन्द्रमेकाम्रनिलयं शिवम् ।
कामाक्षीं कलिदोषघ्नीमपूजयदथात्मवान् ॥६॥

काञ्चीनगर क्षेत्र में वारण पर्वत श्रेष्ठ में एकाम्र भवन में अर्थात् (जिस क्षेत्र में केवल एक ही आम्रवृक्ष हो वह एकाम्र कहा जाता है, जो साधना का सिद्धिदायक सिद्ध क्षेत्र माना जाता है।) स्थित भगवान शिव जी की तथा कलि के दोषों को नष्ट करने वाली भगवती कामाक्षी की उन आत्मदर्शी देवर्षि अगस्त्य ने पूजा की।।6।।

लोकहेतोरथार्द्रस्य चिन्तयानस्य धीमतः ।
चिरकालेन तपसा तोषितोऽभूज्जनार्दनः ॥७॥

उन बुद्धिमान अगस्त्य ने लोकहित की कामना से करुणार्द्र होकर चिरकाल तक तपस्या की, लम्बे समय तक तप करने से भगवान जनार्दन सन्तुष्ट हुए।।

हयग्रीवां तनुं कृत्वा साक्षाच्चिन्मात्रविग्रहाम् ।
शङ्खचक्राक्षवलयपुस्तकोज्ज्वलबाहुकाम् ॥८॥

चिरकाल से की गई तपस्या से सन्तुष्ट भगवान जर्नादन ने हयग्रीवशरीर धारण कर जो केवल चिन्मात्र ही शरीर है, उस हयग्रीव के श्रीविग्रह में शंख, सुदर्शन, चक्र, अक्षमाला, पुस्तक से सुशोभित करकमल थे।।8।।

पूरयित्रीं जगत्कृत्स्नं प्रभया देहजातया ।
प्रादुर्बभूव पुरतो मुनेरमिततेजसः ॥९॥

ऐसे तेजस्वी दिव्यदेह की प्रभा से सम्पूर्ण जगत् को प्रभापूर्ण करते हुए अमिततेज से मुनि के सामने प्रादुर्भूत हुए॥९॥

तं दृष्ट्वाऽऽनन्दभरितः प्रणम्य च मुहुर्मुहुः ।
विनयावनतो भूत्वा स तुष्टाव जगत्पतिम् ॥१०॥

भगवान् हयग्रीव के श्रीविग्रह का साक्षात् दर्शन करने से आनन्दनिमग्न होते हुए बार-बार प्रणाम करते हुए वे अगस्त्य जी विनय से अवनत हुए, इस तरह उन्होंने जगत्पति भगवान को सन्तुष्ट किया॥१०॥

अथोवाच जगन्नाथस्तुष्टोऽस्मि तपसा तव ।
वरं वरय भद्रं ते भविता भूसुरोत्तम ।
इति पृष्टो भगवता प्रोवाच द्विजसत्तमः ॥११॥

भगवान जगन्नाथजी बोले हे मुनि! हम तुम्हारे तप से सन्तुष्ट हैं, हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! तुम्हारा कल्याण हो, तुम वर मांगों, यह सुनकर वे द्विजोतम मुनि भगवान् से बोले॥११॥

यदि तुष्टोऽसि भगवन् इमे पामरजन्तवः ।
केनोपायेन मुक्ताः स्युरेतन्मे वक्तुमर्हसि ।
इति पृष्टो द्विजेनाह देवदेवो जनार्दनः ॥१२॥

हे भगवन्! यदि आप प्रसन्न हैं, तो ये पामर प्राणी सांसारिककष्टों से किस उपाय द्वारा मुक्त हो सकेंगे, वह मुझे बताएं॥१२॥

एष एव पुरा प्रश्नः शिवेन कथितो मम ।
अयमेव कृतः प्रश्नो ब्रह्मणा च ततः परम् ॥१३॥

पुराकाल में यही प्रश्न शिव ने मुझ से किया था बाद में यही प्रश्न ब्रह्मा ने भी मुझ से किया था॥१३॥

कृतो दुर्वाससा पश्चाद्भवता तु ततः परम् ।
भवद्भिः सर्वलोकानां गुरुभूतैर्महात्मभिः ॥१४॥

इसके बाद दुर्वासामुनि ने भी यही प्रश्न किया था, अब आप भी यही प्रश्न इस समय मुझसे कर रहे हैं॥१४॥

ममोपदेशो लोकेषु प्रथितोऽस्तु वरान्मम॥१५॥

मेरे द्वारा दिया गया यह उपदेश संसार में प्रसिद्ध होगा, यह मेरा वरदान है॥१५॥

अहमादिर्हिभूतानामादिकर्ता स्वयं प्रभुः ।
सृष्टिस्थितिलयानां तु सर्वेषामपि कारकः॥१६॥

मैं ही समस्त भूतप्राणियों में आदि हूं तथा मैं समस्त प्राणियों का आदिकर्ता प्रभु हूं, तथा समस्त प्राणियों की उत्पत्ति करनेवाला, पालनकरने वाला और संहार करनेवाला हूं॥१६॥

त्रिमूर्तिस्त्रिगुणातीतो गुणहीनो गुणाश्रयः ।
इच्छाविहारी भूतात्मा प्रधानपुरुषात्मकः॥१७॥

मेरी तीन मूर्तियाँ हैं 1 ब्रह्मा, 2 विष्णु, 3 महेश ये तीनों क्रमशः तीन कार्य करते है- यथा ब्रह्मा सृष्टि, विष्णु स्थिति पालन और महेश रुद्र-संहार। तीन गुण हैं 1 सत्वगुण, 2 रजोगुण, 3 तमोगुण। मैं इन तीनों गुणों से अतीत हूं और गुणहीन निर्गुण हूं तथा तीनों गुणों का आश्रय भी हूं, मैं अपनी इच्छा से विहारकरने वाला स्वतन्त्र हूं, समस्त भूतप्राणीमात्र की आत्मा तथा साक्षी हूं एवं प्रधान-प्रकृति तथा पुरुषात्मक हूं॥१७॥

एवंभूतस्य मे ब्रह्मंस्त्रिजगद्रूपधारिणः ।
द्विधा कृतमभूद्रूपं प्रधानपुरुषात्मकम् ।
मम प्रधानं यद्रूपं सर्वभूतगुणात्मकम्॥१८॥

इस प्रकार हे अगस्त्य जी! मेरे तीन जगतरूप हो जाते हैं। सृष्टि, पालन, संहार रूप से, इसमें मेरे दो भेद होते हैं-एक प्रधान-मूल प्रकृति, दूसरा-पुरुष-मेरा जो प्रधान नाम रूप है वह समस्त भूतों के गुणों वाला है अर्थात् पंचमहाभूत - 1 आकाश, 2 वायु, 3 अग्नि, 4 जल, 5 पृथ्वी, इनमें आकाश में शब्दगुण, वायु में स्पर्शगुण, अग्नि में उष्णस्पर्श, जल में शीतस्पर्श, पृथ्वी में गन्ध गुण, इन्हीं में पंचीकरणप्रक्रिया से सभी भूतों में सभी गुणों का मिश्रण होने से जगत् की प्रक्रिया का व्यवहार होता है॥१८॥

अपरं यद्गुणातीतं परात्परतरं महत् ।
एकमेवैतयोर्ज्ञात्वा मुच्यते ते उभे किमु॥१९॥

दूसरा जो गुणातीतरूप है, वह पर प्रकृति से परे परात्पररूप है, इन प्रधान और पुरुष में से एक ही पुरुषरूप के बोध से संसारबन्ध से मुक्त हो जाते हैं, दोनों सम्बद्ध भेदों की आवश्यकता नहीं रह जाती है अर्थात प्रकृति का विलय पुरुष के बोध के बाद हो जाता है॥१९॥

तपोभिश्चिरकालोत्थैर्यमैश्च नियमैरपि ।
त्यागैर्दुष्कर्मनाशान्ते मुक्तिराद्येन लभ्यते ॥२०॥

मानसिक, वाचिक और कायिक संयमरूप तपों से तथा लम्बे समय तक यमों से (ब्रह्मचर्य, अस्तेय, सत्य अहिंसा और अपरिग्रह - आवश्यकता से निरर्थक अधिक संग्रह न करना) तथा नियमों का पालने से (शौच सन्तोष तपः स्वाध्याय-ईश्वर प्रणिधान) तथा सकामकर्मों का तथा कर्मफलों के त्याग से दुष्कर्मों के नाश के अन्त में पुरुष (आत्मा) के सान्निध्य से (परब्रह्म-तत् से आत्मा-त्वं के अभेदरूप बोधोदय हो जाने पर) मुक्ति अर्थात् जन्म-मरण तथा संसार (मिथ्या मायामोह) की निवृत्ति हो जाती है ॥२०॥

यद्रूपं यद्गुणयुतं तद्गुणैक्येन लभ्यते ।
अन्यत्सर्वं जगद्रूपं कर्मभोगपरात्मकम् ॥२१॥

जो रूप है वह जो उस गुणवाला है, वह गुण की एकता से प्राप्त होता है, अन्य जो समस्त संसार का रूप है वह कर्म-भोगपरक है (नाभुक्तं क्षीयते कर्म) वह प्रारब्ध, संचित-और क्रियमाण रूप से त्रिविध है, इन्ही से संसार की सत्ता है, इनके ज्ञानाग्नि से भस्म हो जाने पर स्वरूपोपलब्धि हो जाती है ॥२१॥

कर्मभिर्लभ्यते तच्च तत्त्यागेनापि लभ्यते ।
दुष्करस्तु तयोस्त्यागः सकलैरपि तापस ॥२२॥

वह जो कर्मों से प्राप्त होता है, वह उसके त्याग से भी प्राप्त होता है, इसलिए हे तापस अगस्त्य जी! उन दोनों कर्म और त्याग में, त्याग ही सबसे दुस्तर (कठिन) है ॥२२॥

अनपायं च सुगमं सदसत्कर्मगोचरम् ।
आत्मस्थेन गुणेनैव सता वाप्यसतापि वा ।
आत्मैक्येनैव यज्ज्ञानं सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥२३॥

सदसत्कर्मगोचर अर्थात शुभकर्मों और अशुभकर्मों के ज्ञान का मार्ग अपायरहित (नाशरहित) अर्थात् हानिरहित है और सुगम भी है, ब्रह्म और आत्मा की एकता से ही जो ऐक्यबोध, अपरोक्ष अनुभूति हो जाती है वही सभी सिद्धियों की देने वाली है। (ब्रह्मामैक्यस्वरूपिणी श्रीपादुकां पूजयामि नमः (ल.स.नाम)) ॥२३॥

वर्णाश्रमविहीनानां पापिष्ठानां नृणामपि ।
यद्रूपध्यानमात्रेण दुष्कृतं सुकृतायते ॥२४॥

जिस रूप के ध्यान मात्र से वर्णाश्रम अर्थात वर्ण-ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र आश्रम

ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास। इन से रहित पापग्रस्तजनों का भी दुष्कृत (पापप्रवृत्ति) भी समाप्त हो जाती है, वह सुकृत रूप में परिणत हो जाती है ॥२४॥

येऽर्चयन्ति पराशक्तिं विधिनाऽविधिनापि वा ।
न ते संसारिणो नूनं मुक्ता एव न संशय ॥२५॥

जो मनुष्य उन पराशक्ति की विधिपूर्वक या अविधिपूर्वक भी भावना से अर्चन करते हैं (भावनामात्रसन्तुष्टहृदया श्री पादुकां पूजयामि नमः (ल.स.नाम) वे लोग भी केवल आत्म समर्पण द्वारा भगवती में स्वयं को जोड़ देते हैं, वे निश्चित ही निस्सन्देह मुक्त ही है, इसमें जरा सा भी संशय नहीं है॥२५॥

शिवोऽपि यां समाराध्य ध्यानयोगबलेन च ।
ईश्वरः सर्वसिद्धीनामर्धनारीश्वरोऽभवत् ।
अन्येऽब्जमुखादेवाः सिद्धास्तद्ध्यानवैभवात् ॥२६॥

भगवान शिव भी जिसकी ध्यान और योगबल से समाराधना करके समस्त सिद्धियों के ईश्वर हो गये और अर्धनारीश्वर रूप से स्थित हो गए, अन्य पद्मसम्भव आदि देवता हैं वे भी ध्यान के वैभव से सिद्ध हो गए, भगवती से ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र तथा ईश्वर ने प्रार्थना प्रार्थना की, कि हे मातः! हम लोगों का जब प्रलय होगा, हम लोग अपने-अपने कार्यों से निवृत्त हो जायेंगे तो आप अपने सिंहासन के चारों पायों में हमे पायारूप में बना दीजियेगा, माँ भगवती ने उनकी इस प्रार्थना को स्वीकार कर अपने सिंहासन के चारों पायों में उन्हें बिठा दिया इसलिये भगवती 'पंचप्रेतासनासीना' हैं॥२६॥

तस्मादशेषलोकानां त्रिपुराराधनं विना ।
न स्तो भोगापवर्गौ तु यौगपद्येन कुत्रचित् ॥२७॥

वे भगवती इतनी करुणार्द्रहृदया (कारुणामृतसागरा-श्री पादुकां पूजयामि नमः) ऐसी माँ भगवती की आराधना के बिना माँत्रिपुराम्बा ललितात्रिपुरसुन्दरी की आराधना के बिना भोग और मोक्ष दोनों ही एक साथ या अलग अलग भी सिद्ध नहीं हो सकते (त्रिपुरसुन्दरीसेवनतत्पराणां भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव) ॥२७॥

तस्मान्मन्त्रास्त्रसंयुक्तन्यासपूर्वक्रमेण च ।
तन्मनास्तद्गतप्राणस्तद्याजी तद्गतेहकः ।
तदात्मैक्येन कर्माणि कुर्वन्मुक्तिमवाप्स्यति ॥२८॥

इसलिए मनुष्यजन्म सार्थक करने के लिए, जन्म, जरा, मृत्यु भय से मुक्त होने के लिए स्वरूपोपबोधोदय के लिए सुमुक्षुसाधक श्री गुरुचरणाराधक दीक्षा में प्राप्त उन माताललिताम्बा

के मन्त्र अस्त्र से संयुक्त लघुषोढा, महाषोढा श्री चक्रन्यासादि के पूर्वक्रम से उनमें मनवाला होकर, तद्‌गतप्राणवाला होकर, उनका ही समर्चन करने वाला, बाह्यपूजा, मानसीपूजा करने वाला, उनकी ही प्राप्ति की इच्छावाला, तदात्मैक्यभाव से कर्मों को करता हुए उनसे सायुज्य मोक्ष प्राप्त करके निष्कामकर्म करता हुए मुक्त हो जाता है ॥२८॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के दशमस्कंध पूर्वार्द्ध में रासपंचाध्यायी में तीसवें अध्याय में 44वां श्लोक भी इसी तरह है यथाः-

तन्मनस्कास्तदालापास्तद्विचेष्टास्तदात्मकाः।।
तद्‌गुणानेव गायन्त्यो नात्मागाराणि सस्मरुः।। (भा.पू.३०/४४)

एतद्रहस्यमाख्यातं सर्वेषां हितकाम्यया ।
संतुष्टेनैव भवतस्तपसा मुनिसत्तम॥२९॥

मैंने अपकी तपस्या से सन्तुष्ट होकर समस्तलोकों के हित की कामना से यह इष्ट को समर्पणात्मक रहस्य कहा है॥२९॥

देवाश्च ऋषयः सिद्धा मनुष्याश्च तथेतरे ।
त्वन्मुखाम्भोजतो लब्ध्वा सिद्धिं यान्तु परात्पराम्॥३०॥

तुम्हारे श्रीमुख से अभिव्यक्त यह भगवती के श्रीचरणों में समर्पणात्मक भक्तियोग से देवगण, ऋषिगण, सिद्धगण, मनुष्यगण, यक्षगण, राक्षसगण आदि समस्तभूतप्राणिवर्ग उस परातपरतत्व को प्राप्त करें॥३०॥

इति तद्वचनं श्रुत्वा हयग्रीवस्य शार्ङ्गिणः ।
प्रणिपत्य पुनर्वाक्यमुवाच मधुसूदनम्॥३१॥

इस प्रकार भगवती की तादात्म्यमुक्तिरूपिणी सपर्याविधि का रहस्य सुना, जिस धनुर्धर हयग्रीवरूप से भगवान विष्णु ने कहा था, फिर मुनि अगस्त्य जी ने चरणों में प्रणाम करते हुए उन श्रीमधुसूदन भगवान से कहा॥३१॥

भगवन्कीदृशं रूपं भवता यत्पुरोदितम् ।
किंविहारं किंप्रभावमेतन्मे वक्तुमर्हसि॥३२॥

हे भगवान्! जो पहले रूप था वह कैसा था, जो आपने धारण किया था उसका प्रभाव कैसा था, उसका विहारादि कैसा था, यह सभी मुझे बताने की कृपा करें॥३२॥

श्रीहयग्रीव बोलेः

एषोंऽशभूतो देवर्षिर्हयग्रीवो ममापरः।
श्रोतुमिच्छसि यद्यत्त्वं तत् तत् तव वदत्ययम्॥३३॥

हे मुने! अगस्त्य जी!! आप जो जो तत्व सुनना चाहते हैं वे वे सभी तत्व ये श्रीहयग्रीवविष्णु तुम्हारे जिज्ञासा करने पर कहेंगे॥३३॥

इत्यादिश्य जगन्नाथो हयग्रीवं तपोनिधिम्।
पुरतः कुम्भजातस्य मुनेरन्तरधीयत॥३४॥

इस प्रकार वे जगन्नाथ भगवान् तपोनिधि हयग्रीव को आदेश देकर कुम्भजऋषि अगस्त्य के सामने अन्तर्हित हो गए॥३४॥

ततस्तु विस्मयाविष्टो हृष्टरोमा तपोधनः।
हयग्रीवेण मुनिना स्वाश्रमं प्रत्यपद्यत॥३५॥

यह रहस्य सुनकर वे तपोधन ऋषि अगस्त्यजी रोमांचित हो गये और विस्मय से चिन्तन करने लगे, इधर भगवान् हयग्रीव जी भी के साथ आश्रम की ओर चले गये॥३५॥

इति श्री ब्रह्माण्डपुराणे उत्तरखण्डे
हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने प्रथमोऽध्यायः॥ सम्पूर्णः॥

॥श्रीमन्महागणाधिपतये नमः।।

श्रीमाताललिताम्बायै नमः श्रीपादुकां पूजयामि नमः॥

ॐ वन्दे गुरुपदद्वन्द्वं अवाङ्गनसगोचरम्॥

रक्तशुक्ल प्रभामिश्रमतर्क्यं त्रैपुरं महः॥

ॐ आराध्यदेवं भक्तानां कलिदोषविनाशकम्॥

वन्दे श्रीगिरिजानन्दं शारदाश्रीमठाधिपम्।।

ॐ अखण्डं यस्यज्ञानञ्च भक्तिर्यस्यानपायिनी।।

शारदाज्योतिरीशस्य दर्शनं (पूजनं, वन्दनं) शुभमस्तुनः।।

द्वितीयोऽध्याय १५२ श्लोकात्मकः

(हयग्रीवं प्रत्यगस्त्यकृतदेवीप्रादुर्भावादिप्रश्नः॥)

अथोपवेशयित्वैनमासने परमाद्भुते।
हयाननमुपागम्य ह्यगस्त्यो वाक्यमब्रवीत्॥१॥

इसके अनन्तर परमाद्भूत दिव्य आसन में इन हयग्रीव को बैठाकर समीप में पहुंचकर अगस्त्य ऋषि ने प्रश्न किया॥१॥

भगवन्सर्वधर्मज्ञ सर्वसिद्धान्तवित्तम।
लोकाभ्युदयहेतुर्हि दर्शनं तु भवादृशाम्॥२॥

हे भगवन्! आप समस्तधर्मों के तत्त्वों को जानने वाले हैं, आप समस्त शास्त्रों के सिद्धान्तों को जानने वालों में श्रेष्ठ हैं, आप जैसे तत्त्वज्ञानी महात्माओं का दर्शन ही समस्त लोकों के अभ्युदय का प्रमुख कारण होता है॥२॥

आविर्भावं महादेव्यास्तस्या रूपान्तराणि च।
विहाराणि च मुख्यानि तानि विस्तरतो वद॥३॥

इस कारण भगवन्! आप भगवती महादेवी के आविर्भाव का बड़े विस्तार से तथा उनके विभिन्न रूपों को और उनके विभिन्न लीलाविहारों का वर्णन करें, ऐसी मेरी प्रार्थना है॥३॥

श्रीहयग्रीव बोले-

अनादिरखिलाधारा सदसत्कर्मरूपिणी।
ध्यानैकदृश्या ज्ञानाङ्गी विद्याङ्गी हृदयास्पदा॥४॥

मुनि अगस्त्य जी! वह भगवती महादेवी अनादि है, समस्त जड़चेतन का आधार है वह सत्कर्म और असत्कर्मरूप वाली है, वह आत्मविद्या उस ब्रह्मसाक्षात्कार को कराने वाली है और

असत्कर्म सांसारिकमिथ्यामायामोह में डालने वाली माया है, वह केवल ध्यान के द्वारा अभिव्यक्त होती है हृदय में वह ज्ञानरूपिणी ब्रह्मविद्या है, वह महामन्त्ररूपिणी है तथा हृदयदेश में स्थित रहती है ॥४ ॥

आत्मैक्याव्यक्तिमायाति चिरानुष्ठानगौरवात्।
आदौ प्रादुरभूच्छक्तिर्ब्रह्मणो ध्यानयोगतः ॥५ ॥

वह भगवती आत्मा और ब्रह्म के ऐक्य चिन्तन से व्यक्त होती है, साक्षीरूप से, एतदर्थ चिरकाल तक लम्बा अनुष्ठान हो, उसके गौरव से उसकी अपरोक्ष अनुभूति होती है। वह ब्रह्म के ध्यानयोग बल से सृष्टि के आरंभकाल में प्रकट हुई थी ॥५ ॥

प्रकृतिर्नाम सा ख्याता देवानामिष्टसिद्धिदा।
द्वितीयमुदभूद्रूपं प्रवृत्तेऽमृतमन्थने ॥६ ॥

वह भगवती प्रकृति नाम से प्रसिद्ध है, वह देवताओं को अभीष्ट सिद्धि देती है। दूसरा उनका रूप देवासुरों द्वारा अमृतमन्थन की प्रक्रिया में प्रवृत्त होने पर उद्भूत हुआ ॥६ ॥

सर्वसंमोहजनकमवाङ्मनसगोचरम्।
यद्दर्शनादभूदीशः सर्वज्ञोऽपि विमोहितः ॥७ ॥

अमृतमन्थन प्रक्रिया पूर्ण होने पर उन भगवती का जो रूप आविर्भूत हुआ वह समस्त प्राणियों को संमोहित करने वाला था। उसे न ही मनसे सोचा जा सकता था, न ही वाणी के द्वारा व्यक्त किया जा सकता था। इन सभी से वह अगोचर था, ऐसे उस मोहिनीरूप को देखकर सर्वज्ञकामजयी महादेव भी विमोहित हो गए ॥७ ॥

विसृज्य पार्वतीं शीघ्रं तया रुद्रोऽप्यनुद्रुतः ।
तस्यां वै जनयामास शास्तारमसुरार्दनम् ॥८ ॥

उन भगवान रुद्र शिव ने पार्वती के सामने मोहिनीभगवती का आलिंगन किया और मोहिनी भगवती ने भी शिव का आलिंगन किया, तब उन्ही भगवती से पुत्ररूप में शास्ता नामक देव प्रकट हुए। इन्हें दक्षिणदेश में अप्पय भी कहते हैं ॥८ ॥

अगस्त्य जी बोले भगवन्!

कथं वै सर्वभूतेशो वशी मन्मथशासनः ।
अहो विमोहितो देव्या जनयामास चात्मजम् ॥९ ॥

वे भगवान शिव समस्त भूत प्राणियों के ईश्वर कामजयी हैं, वे किस प्रकार वशीभूत हो गए। देवी की मोहिनी शक्ति से और उनका शास्ता नामक पुत्र भी प्रकट हो गया ॥९ ॥

(इस कथा प्रसंग के पूर्व भूमिका के रूप सबसे प्रथम इस घटना का शुभारंभ कैसे हुआ इसके बीच इन्द्र को दुर्वासा मुनि का शाप भी कैसे हुआ। इन सभी का विस्तार से वर्णन अगस्त्यजी से श्रीहयग्रीव ने किया। हयग्रीव बोले-)

पुराऽमरपुराधीशो विजयश्रीसमृद्धिमान् ।
त्रैलोक्यं पालयामास सदेवासुरमानुषम् ॥१०॥

प्राचीन काल में देवनगरी के अधीश्वर जो विजयशोभा से पूर्ण सुसम्पन्न थे, देवों, असुरों तथा मनुष्यों के लोकों का शासन तथा पालन कर रहे थे॥१०॥

कैलासशिखराकारं गजेन्द्रमधिरुह्य सः।
चराचरादिलोकेषु पूज्यमानोऽखिलैरपि॥११॥

वह देवराज इन्द्र कैलाश पर्वत के शिखर जैसे आकार के विशाल हाथी ऐरावत की पीठ पर बैठकर समस्त चराचर आदि लोकों में पूजित हो रहा था॥११॥

तं प्रमत्तं विदित्वा तु भवानीपतिरव्ययः।
दुर्वाससमथाहूय प्रजिघाय तदन्तिकम्॥१२॥

भगवती भवानी के पति भगवान शिव ने उस देवराज इन्द्र को विजयश्री की प्राप्ति होने से उसके मद से प्रमत्त जानकर अपने रुद्रांश समुद्भूत आत्रेय दुर्वासा मुनि को बुलाकर उन इन्द्र के पास भेजा॥१२॥

कन्थाजिनधरो दण्डी धूलिधूसरविग्रहः।
उन्मत्तरूपधारी च ययौ विद्याधराध्वना॥१३॥

कन्था (लोकभाषा में कथरी) फटे पुराने मृगचर्म को धारण करने वाले धूलिधूसर शरीर वाले उन्मत्त जैसा रूप धारण किये हुए वे दुर्वासा जी विद्याधरों के मार्ग में घूम रहे थे॥१३॥

एतस्मिन्नन्तरे काले काचिद्विद्याधराङ्गना।
यदृच्छयागता तस्य पुरश्चारुतराकृतिः॥१४॥

इसी समय उन्मत जैसे इधर-उधर घूमते हुए दुर्वासाजी के सामने सुन्दरी विद्याधराङ्गना ईश्वरेच्छावशात् आई॥१४॥

चिरकालेन तपसा तोषयित्वा पराम्बिकाम्।
तत्समर्पितमाल्यं च लब्ध्वा संतुष्टमानसा॥१५॥

बहुत समय तक भगवती पराम्बिका को सन्तुष्ट किया उस विद्याधराङ्गनाने, उसकी आराधना से सन्तुष्ट मनवाली भगवती ने उसे एक दिव्य सुगन्धित पुष्पमाला प्रसाद के रूप में दी॥१५॥

तां दृष्ट्वा मृगशावाक्षीमुवाच मुनिपुङ्गवः।
कुत्र वा गम्यते भीरो कुतो लब्धमिदं त्वया॥१६॥

श्रीभगवती द्वारा प्रदत्त पुष्पमाला ली हुई उस विद्याधरांगना से मुनि दुर्वासा जी बोले आप कहां से आ रही हैं और कहा जा रही हैं तथा यह दिव्यमाला तुमने कहां से प्राप्त किया है॥१६॥

प्रणम्य सा महात्मानमुवाच विनयान्विता।
चिरेण तपसा ब्रह्मन्देव्या दत्तं प्रसन्नया॥१७॥

वह विद्याधरी विनयपूर्वक प्रणाम करते हुए बोली भगवन्! चिरकाल तक आराधना करने से प्रसन्न भगवती ने यह माला मुझे दी है॥१७॥

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्यास्त्वपृच्छन्माल्यमुत्तमम्।
पृष्टमात्रेण सा तुष्टा ददौ तस्मै महात्मने॥१८॥

उसकी तपस्या से प्रसन्न भगवती ने यह माला दी है। यह पूछने पर वह विद्याधरी सन्तुष्ट मन से प्रसन्न होकर ईशप्रेरणा से उन महात्मा जो रुद्रांशयुक्त थे, उन्हें वह माला सौंप दी॥१८॥

कराभ्यां तत्समादाय कृतार्थोऽस्मीति सत्वरम्।
दधौ स्वशिरसा भक्त्या तामुवाचातिहर्षितः॥१९॥

शीघ्रता से उन मुनिवर ने हाथों से वह माला ली और कहा कि मैं कृतार्थ हुआ, फिर उस माला को अपने सिर में धारण कर लिया और बोले वे मुनि मैं बहुत ही प्रसन्न हूं॥१९॥

ब्रह्मादीनामलभ्यं यत्तल्लब्धं भाग्यतो मया।
भक्तिरस्तु पदाम्भोजे देव्यास्तव समुज्वला॥२०॥

यह मेरा बड़ा सौभाग्य है जो यह माला मुझे तुमसे मिली। यह माला तो ब्रह्मादि भी नहीं पा सकते हैं देवी तुम्हारी निर्दोष पवित्रभक्ति मां भगवती के चरणकमलों में सुदृढ़ हो मेरा आशीर्वाद है॥२०॥

भविष्यच्छोभनाकारा गच्छ सौम्ये यथासुखम्।
सा तं प्रणम्य शिरसा ययौ तुष्टा यथागतम्॥२१॥

हे सौम्ये! तुम भविष्य में शोभन आकार वाली होओ, अब तुम यथेच्छ अपने स्थान के लिए वापस चली जाओ। वह भी मुनि को सिर नवाकर प्रणाम करके जिस मार्ग से जहाँ से आयी थीं वहां चली गईं॥२१॥

प्रेषयित्वा स तां भूयो ययौ विद्याधराध्वना।
विद्याधरवधूभ्यश्च प्रतिजग्राह वल्लकीम्॥२२॥

उन मुनि ने उस विद्याधराङ्गना से वह दिव्यमाला ली, तथा उसे वापस जाने के लिए कहा वह

विद्याधरमार्गसे चली गईं ॥२२॥

दिव्यस्त्रगनुलेपांश्च दिव्यान्याभरणानि च ।
क्वचिद्वदन्क्वचिद्गृह्णन्क्वचिद्गायन्क्वचिद्धसन् ॥२३॥

वे अवधूत दुर्वासाजी दिव्यमाला धारण करके कहीं दिव्यगन्धानुलेपन करके कहीं दिव्य आभूषणों को धारण करके दिव्यदेवी आवेश में उस माला को धारण कर कहीं बोलते हुए कहीं कोई वस्तु ग्रहण करते हुए कहीं गाते हुए कहीं हंसते हुए॥२३॥

स्वेच्छाविहारी स मुनिर्ययौ यत्र पुरन्दरः ।
स्वकरस्थां ततो मालां शक्राय प्रददौ मुनिः॥२४॥

स्वेच्छा से स्वतन्त्र निर्बाध भ्रमण करने वाले वे दुर्वासा मुनि जहाँ पुरन्दर इन्द्र थे वहां गए, वहां जाकर उन्होंने वह विद्याधरी द्वारा दी हुई भगवती की प्रसादरूप माला इन्द्र को दिया॥२४॥

तां गृहीत्वा गजस्कन्धे स्थापयामास देवराट् ।
गजस्तु तां गृहीत्वाथ प्रेषयामास भूतले॥२५॥

इन्द्र के द्वारा वह मुनि प्रदत्त दिव्य माला ऐरावत हाथी के कंधे में डाल दी गई, ऐरावत हाथी ने भी अपनी स्वाभाविक प्रवृत्ति से प्रेरित होकर वह माला सूंड में लेकर धरती में फेंक दिया और पैरों से कुचल डाला॥२५॥

तां दृष्ट्वा प्रेषितां मालां क्रुद्धः कोपेन तापसः ।
उवाच न धृता माला शिरसा तु मयार्पिता॥२६॥

ऐरावत हाथी के पैरों से कुचली हुई माला को देखकर वे तापस दुर्वासा जी क्रुद्ध होकर बोले इन्द्र! तुमने मेरे द्वारा दी गई माला को जो देवी की दी हुई थी, उसे सिर में धारण नहीं किया और पशु से पैरों से कुचला डाला इस तरह तुमने अपमान किया है॥२६॥

महादेव्या धृता माला ब्रह्माद्यैः पूज्यते हि सा ।
त्रैलोक्यैश्वर्यमत्तेन भवता त्ववमानिता॥२७॥

अरे इन्द्र! वह माला जो तुम्हें हमने सौंपा था वह माला भगवती की धारण की हुई थी, उसकी पूजा सम्मान ब्रह्मादि देवगण करते है। त्रैलौक्य के ऐश्वर्य से मदमत्त होकर तुमने उसका तिरस्कार किया है॥२७॥

त्वया यच्छासितं लोकं सदेवासुरमानुषम्।
अशोभितमतेजस्कं मम शापाद्भविष्यति॥२८॥

तो अब मेरे द्वारा शापित यह देव असुर और मनुष्यलोक है जिसके तुम शासक हो, वह शोभा,

श्री, कान्तिहीन हो जाएगा, तेजोहीन हो जाएगा, यह मेरे द्वारा प्रयुक्त शाप है ॥२८॥

इति शप्त्वा विनीतेन तेन संपूजितोऽपि सः।
तूष्णीमेव ययौ ब्रह्मन्भाविकार्यमनुस्मरन् ॥२९॥

महर्षि द्वारा दिये शाप के बाद विनम्र होकर इन्द्र चरणपूजा करने लगा, तब वे मुनि मौन होकर भावि घटनाओं का स्मरण करते हुए चले गए॥२९॥

विजयश्रीश्च सा तस्य दैत्यलोकमथान्वगात्।
नित्यश्रीर्नित्यपुरुषं वासुदेवमथान्वगात् ॥३०॥

तापसमुनि दुर्वासा के शाप से वहीं लक्ष्मी, शोभा, कांति वैभव सभी दैत्यलोक में राजाबलि के पास चली गई तथा नित्यश्री नित्यपुरुष व भगवान वासुदेव के पास चली गई ॥३०॥

इन्द्रोऽपि स्वपुरं गत्वा सर्वदेवसमन्वितः।
विषण्णचेता निःश्रीकश्चिन्तयामास देवराट् ॥३१॥

सभी देवताओं के साथ इन्द्र भी अपने निवासस्थान नगर में चला गया। शाप के परिणाम से वह दुःखी चिन्तित मानसवाला हो गया, श्रीरहित हो गया, दुर्भाग्य ने घेर लिया। वह देवों का राजा श्रीहत हो गया॥३१॥

अथामरपुरे दृष्ट्वा निमित्तान्यशुभानि च।
बृहस्पतिं समाहूय वाक्यं चैतदुवाच ह॥३२॥

शापग्रस्त देवराजइन्द्र देवों के साथ अपनी निवासनगरी में आया, वह प्रतिदिन नगरी में अनिष्टसूचक अमंगलकारी निमित्तों को देखने लगा। उनसे चिन्तित होकर इन्द्र ने देवगुरु बृहस्पति जी को आमंत्रित किया और अपनी चिन्ता उनसे बताने लगा॥३२॥

इन्द्र और देवगुरु बृहस्पति का धर्म और अधर्म के विषय में संवाद- (इन्द्रबृहस्पत्योर्धर्माधर्मसंवादः।)

भगवन्सर्वधर्मज्ञ त्रिकालज्ञानकोविद।
दृश्यन्तेऽदृष्टपूर्वाणि निमित्तान्यशुभानि नः।
किंफलानि च तानि स्युरुपायोवाथ कीदृशः॥३३॥

हे गुरो! भगवन! आप सभी धर्मों के रहस्य को जानते हैं, तीनों कालों की घटनाओं का ज्ञान आपको रहता है। इस समय कभी न देखे गए हम लोगों के सामने अशुभनिमित्त दिख रहेहैं। उनका क्या परिणाम होता है, उनसे बचने के उपाय कौन-कौन से होंगे, जिनसे लोकों की रक्षा हो सके॥३३॥

इति तद्वचनं श्रुत्वा देवराजं बृहस्पतिः।
प्रत्युवाच ततो वाक्यं धर्मार्थसहितं शुभम् ॥३४॥

इन्द्र के द्वारा चिन्ताजनक वचनों को सुनकर देवगुरु बृहस्पति धर्म और अर्थयुक्त शुभवचन बोले॥३४॥

कृतस्य कर्मणो राजन्कल्पकोटिशतैरपि।
प्रायश्चित्तोपभोगाभ्यां विना नाशो न जायते॥३५॥

ये देवराज! किये हुए कर्म करोड़ों जन्मपर्यन्त समाप्त नहीं होते, उनकी समाप्ति बिना प्रायश्चित् के तथा बिना उपभोग के समाप्ति नहीं होती है॥३५॥

तब इन्द्र बोले-

कर्म वा कीदृशं ब्रह्मन्प्रायश्चित्तं च कीदृशम्।
तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि तन्नो विस्तरतो वद॥३६॥

हे गुरो! वह कौन सा कर्म है तथा उसका प्रायाश्चित भी कौनसा है यह सभी मै विस्तार से सुनना चाहता हूं। कृपया वह मुझे समझाईयेगा॥३६॥

बृहस्पति बोले

हननस्तेयहिंसाश्च पानमन्याङ्गनारतिः।
कर्म पञ्चविधं प्राहुर्दुष्कृतं धरणीतले॥३७॥

हे इन्द्र! धरणीतल में पांच प्रकार के कर्म दुष्कृत कहे गए हैं। वे पांच ये है हत्या, चोरी, हिंसा, मद्यपान और पराईस्त्री से व्यभिचार॥३७॥

ब्रह्मक्षत्रिय विट्शूद्रगो तुरंगगजोष्ट्रकाः।
चतुष्पदोऽण्डजाब्जाश्च तिर्यञ्चोऽनस्थिकास्तथा॥३८॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, गाय, अश्व, हाथी और ऊंट ये चार पैरों वाले तथा अन्य चार पैरों वाले, अण्डों से उत्पन्न होने वाले पक्षी आदि तिर्यग्योनि वाले जीव तथा हड्डीरहित प्राणी है॥३८॥

अयुतं च सहस्रं च शतं दश तथा दश।
दशपञ्चत्रिरेकार्धमानुपूर्व्यादघं भवेत्॥३९॥

ये सभी प्राणी दशहजार या हजार या सैकड़ों या दश या पांच अथवा एकाध ही होंगे जो पूर्वकृतकर्मों के फलों को अवश्य ही भोगते हैं॥३९॥

ब्रह्मक्षत्रविशां स्त्रीणामुक्तार्थे पादमाचरेत्।
पितृमातृगुरुस्वामिपुत्राणां नास्ति निष्कृतिः।
गुर्वाज्ञया कृते पादं तदाज्ञोल्लङ्घनेऽर्धकम्॥४०॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों की स्त्रियों के हनन में पाप का आदेश देना चाहिए। पिता, माता, गुरु और स्वामी के पुत्रों का प्रायश्चित है अर्थात् वे प्रायश्चित कर सकते हैं। गुरु की आज्ञा से किया गया पाप गुरु की आज्ञा के उल्लंघन से होता है॥४०॥

दशब्राह्मणभृत्यर्थमेकं हन्याद्विजं नृपः।
शतब्राह्मणभृत्यर्थं ब्राह्मणो ब्राह्मणं तु वा॥४१॥

राजा को दशब्राह्मणों के पालन के लिए एक द्विजका दमन नियन्त्रण करना चाहिए, इसी तरह सौ ब्राह्मणों के पालन के लिए ब्राह्मण को दण्ड देना चाहिये अर्थात एक धनीब्राह्मण के धन से सौ निर्धनब्राह्मणों का पालन हो सकता है, इसलिए राजा ऐसा विधान कर सकता है॥४१॥

पञ्चब्रह्मविदामर्थं वैश्यमेकं तु दण्डयेत्।
वैश्यो दशविशामर्थे विशं वा दण्डयेत्तथा॥४२॥

पांच ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मणों के पालन के लिए राजा एक वैश्य पर दण्डविधान कर सकता है, इसी तरह दश वैश्यों के पालन के लिए एक वैश्य (प्रभूतधनी) का दण्ड कर सकता है। अर्थात आवश्यकता से अधिक धन समाज के साधनहीन ब्राह्मणादिवर्णों में राजा वितरित करवा दे राजाज्ञा से॥४२॥

तथा शतविशामर्थे द्विजमेकं तु दण्डयेत्।
शूद्राणां तु सहस्रार्थे दण्डयेद्ब्राह्मणं तु वा॥४३॥

इसी प्रकार सौ वैश्यों के लिए एक द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ये तीनों वर्ण उपनयन संस्कार होने से द्विज हो जाते हैं) का शासन करें। और सहस्रों शूद्रों के पालन के लिये द्विजों का सम्पन्न ब्राह्मण का भी दण्डविधान राजा को करना चाहिये॥४३॥

तच्छतार्थे तु वा वैश्यं तद्दशार्थे तु शूद्रकम्।
बन्धूनां चैव मित्राणामिष्टार्थे तु त्रिपादकम्।
अर्धं कलत्रपुत्रार्थे स्वात्मार्थे तु न किंचन॥४४॥

सौ अथवा सहस्र शूद्रों के लिए एक ब्राह्मण को दण्ड देना चाहिए। उसको सौ का आधा अर्थात् पचास वैश्य को दे तथा दस का आधा पांच शूद्र को दण्ड देना चाहिए। भाई, बन्धुओं और मित्रों की भलाई के लिए तीन चौथाई धन देना चाहिए और पत्नी तथा पुत्रों के लिए चौथाई भाग देना चाहिए (तीन चौथाई 3/4) अपने स्वयं के लिए कुछ भी नहीं॥४४॥

आत्मानं हन्तुमारब्धं ब्राह्मणं क्षत्रियं विशम्।
गां वा तुरंगमन्यं वा हत्वा दोषैर्नलिप्यते॥४५॥

यदि स्वयं को ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य या गौ अथवा अश्व अथवा और कोई भी मारने के लिए आवे तो उन सभी को मारने में कोई दोष नहीं है, आत्मरक्षा अत्यन्त आवश्यक होती है॥४५॥

आत्मदारात्मजभ्रातृबन्धूनां तु द्विजोत्तम।
क्रमाद्दशगुणो दोषो रक्षणे च तथा फलम्॥४६॥

हे द्विजोत्तम! मुनिश्रेष्ठ अगस्त्य! अपनी पत्नी, पुत्र भाई बन्धुओं को मारने पर दशगुना पाप लगता है तथा उनकी रक्षा करने पर दशगुना पुण्य होता है॥४६॥

देवद्विजश्रोत्रियवेदविद्व्रती वेदान्तविद्वेदविदां विनाशे।
एकद्विपञ्चशततद्दश चायुतं च
लक्षं च निष्कृतिरिति प्रवदन्ति तज्ज्ञाः॥४७॥

देवता, द्विज, क्षत्रिय, वेद का ज्ञान रखने वाला, वेदपाठ करने वाले, वेदान्तविद् और वेदविदों के विनाश करने पर एक, दो, पचास या सौ या दससहस्र या लाखपर्यन्त तक का प्रायाश्चित होना चाहिए। ऐसा दण्डविधान रहस्यविद् कहते हैं॥४७॥

तेषां च रक्षणविधौ च कृतेऽपि दाने
पूर्वोदितोत्तरगुणं प्रवदन्ति पुण्यम्।
तेषां च दर्शनविधौ नमने च कार्ये
शुश्रूषणे विचरतां सदृशं च पुण्यम्॥४८॥

और यदि ब्राह्मण, क्षत्रिय, व्रती, वेदज्ञों की रक्षा करने की विधि में तथा उन्हें दान देने से पूर्व में जो दण्ड कहा गया है, उससे कई गुना पुण्य का फल होता है। इतना ही नहीं इन सभी के दर्शन करने पर उनको नमन करने पर उनकी सेवा करने पर तथा उनके साथ समान व्यवहार करने पर भी कई गुना पुण्य होता है॥४८॥

सिंहव्याघ्रमृगादीनि लोकहिंसाकराणि तु।
नृपो हन्याच्च सततं देवार्थे ब्राह्मणार्थके॥४९॥

राजा देवों की रक्षा के लिए तथा नगर तथा वनों में रहने वाले विप्रो की रक्षा के लिए हिंस्र, सिंह, व्याघ्र आदि तथा मृगादि जो लोक में हिंसा करने वाले होते हैं उन्हें मारे यह कार्य निरन्तर करे॥४९॥

आपत्स्वात्मार्थतो वापि हत्वा मेध्यानि भक्षयेत्॥५०॥

आपत्ति जैसे ये सभी नरों की घरों में नगरों में घुसकर घरों की दीवारों को तोड़कर, सेंध लगाकर प्राणहानि करे या स्वयं की प्राणहानि की स्थिति उत्पन्न हो जाये अथवा कोई भोज्यवस्तु भूख निवारण के लिए न मिले तो प्राणरक्षार्थ मेध्यपशु (यज्ञ बलि में प्रयुक्त पशु) के मांस का भोजन कर प्राणरक्षा की जा सकती है॥५०॥

नात्मार्थं पाचयेदन्नं नात्मार्थं पाचयेत्पशून्।
देवार्थे ब्राह्मणार्थे वा पचमानो न लिप्यते॥५१॥

अपने लिए अन्न नहीं पकाना चाहिए इसी तरह अपनी जिह्वा तृप्ति के लिए मांस नहीं पकाना

चाहिए, परन्तु यज्ञविधान में देवों के लिए पशुबलि तथा ब्राह्मणभोजन के लिए भण्डारा आदि करने वाला दोषलिप्त नहीं होता ॥५१॥

पुरा भगवती माया जगदुज्जीवनोन्मुखी।
ससर्ज सर्वदेवांश्च सदेवासुरमानुषान् ॥५२॥

प्राचीनकाल में सृष्टि के आरम्भ में भगवतीमाया जगत् को जीवन देने के लिए प्रस्तुत हुईं। उन्होंने सभी देवों की सृष्टि में देवता, असुर और मनुष्यों की सृष्टि की ॥५२॥

तेषां संरक्षणार्थाय पशूनपि चतुर्दश।
यज्ञांश्च तद्विधानानि कृत्वा चैनानुवाच ह ॥५३॥

उन देवों असुरों और मनुष्यों के प्राणसंरक्षण के लिए भगवतीमाया ने चौदह पशुओं को, यज्ञों और यज्ञों के विधानों को बनाकर कहा ॥५३॥

यजध्वं पशुभिर्देवान्विधिना चैव मानवाः।
इष्टानि वः प्रदास्यन्ति तुष्टास्ते यज्ञभाविताः ॥५४॥

भगवती माया ने कहा कि तुम सभी यज्ञों के द्वारा यजन करो और यज्ञ करने वाले यजमान मनुष्य शास्त्रोक्त विधानों से यज्ञ में विहितपशुओं की बलि आदि से देवों को प्रसन्न करें। इस प्रकार के अनुष्ठान से वे यज्ञ से सन्तुष्ट देवगण सन्तुष्ट होकर तुम्हारी सभी कामनाएं पूर्ण करेंगे ॥५४॥

एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः ।
दरिद्रो नारकश्चैव भवेज्जन्मनि जन्मनि ॥५५॥

जो मनुष्य वेदशास्त्रों के निर्देशानुसार सृष्टिसंरक्षणार्थ विधान किये हुए यज्ञादि विधानों का पालन नहीं करते वे प्रत्येक जन्म में दरिद्र होते हैं और नरक की यातनाएं भोगते हैं ॥५५॥

देवतार्थे च पित्रर्थे तथैवाभ्यागते गुरौ।
महदागमने चैव हन्यान्मेध्यान्पशून् द्विजः ॥५६॥

यज्ञ का यजमान साधन सम्पन्न नृप मनुष्यों में माननीय तथा यज्ञ विधान करने वाला आचार्य और द्विजशब्द से यज्ञोपवीति ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य गणदेव प्रीत्यर्थ पितरों की तृप्ति के लिए तथा अतिथि अभ्यागतों के लिए पशुओं का उपयोग करें ॥५६॥

आपत्सु ब्राह्मणो मांसं मेध्यमश्नन्न दोषभाक्।
विहितानि तु कार्याणि प्रतिषिद्धानि वर्जयेत् ॥५७॥

आपत्ति काल में अर्थात ब्राह्मण अकाल या दुष्काल समय में भूख प्यास से हानि न हो इसलिए तथा कुछ भी न मिले आपद्धर्म में प्राण रक्षा प्रमुख होती है ऐसी स्थिति में यज्ञीय पशुओं का मांस

सेवन करके भी दोषयुक्त नहीं होगा। परन्तु जो कार्य नहीं करने योग्य है, प्रतिषिद्ध है निषिद्ध है उन्हें न करें ॥५७॥

पुराऽभूद्युवनाश्वस्य देवतानां महाक्रतौ।
ममायमिति देवानां कलहः समजायत ॥५८॥

प्राचीन समय में युवनाश्व का और देवताओं का महायज्ञ हुआ। उसमें यह मेरा है यह मेरा है दोनों भाग के लिए अधिकार के लिए कलह हो गई। यह अनिष्ट ही हुआ ॥५८॥

तथा विभज्य देवानां मनुष्यांश्च पशूनपि।
विभज्यैकैकशः प्रादाद्ब्रह्मा लोकपितामहः ॥५९॥

देवों और युवनाश्व की कलह हो जाने से लोक पितामह ब्रह्मा जी ने देवताओं मनुष्यों और पशुओं का विभाजन करके तीनों को बांट दिया ॥५९॥

ततस्तु परमा शक्तिर्भूतसंघसहायिनी।
कुपिताभूत्ततो ब्रह्मा तामुवाच नयान्वितः ॥६०॥

ब्रह्मा के द्वारा इस विभाजन से समस्त भूतप्राणिसंघ की सहायिका परमाशक्ति क्रुद्ध हो गईं, तब ब्रह्मा जी ने विनयपूर्वक निवेदन किया ॥६०॥

ये विभक्तास्तु पशवो देवानां परमेश्वरि।
ते सर्वे तावकाः सन्तु भूतानामपि तृप्तये ॥६१॥

ब्रह्मा जी ने विनय पूर्वक क्रुद्ध भगवती से निवेदन किया कि मातःजिन पशुओं का देवताओं के लिए विभाजन किया है वे सभी आप के ही है और उनसे समस्त भूत प्राणियों को तृप्ति भी होगी ॥६१॥

इत्युक्त्वान्तर्दधे तेषां पुर एव पितामहः।
तदुक्तेनैव विधिना चकार सुमहाक्रतून् ॥६२॥

इस प्रकार देवी से निवेदन करके पितामहब्रह्मा उन देवों, पशुओं आदि के सामने अन्तर्हित हो गए। ब्रह्मा के बनाए विधानों के अनुसार सुन्दर श्रौतयाग, अश्वमेध, वाजयेय, सौत्रामणि, सोमयागादि सम्पन्न होने लगे ॥६२॥

इयाज च परां शक्ति हत्वा मेध्यान्पशूनपि।
तत्तद्विभागो वेदेषु प्रोक्तत्वादिह नोदितः ॥६३॥

तब याजकों ने यज्ञों का आयोजन कर मेध्यपशु के मांसादि से पराशक्ति की आराधना की। इन सभी का विस्तार से वर्णन वेदों के क्रियाकाण्ड विभाग में किया गया है। वह सभी हमने तुम्हारे लिये नहीं कहा केवल मुख्य मूलसंकेत किया है ॥६३॥

स्त्रियः शूद्रास्तथा मांसमादद्युर्ब्राह्मणीं विना।
आपत्सु ब्राह्मणी वापि भक्षयेद्गुर्वनुज्ञया॥६४॥

इन यज्ञों में मेध्य पशुओं की बलि होने पर उनके मन्त्रपूत मांस स्त्रियां और शूद्रवर्ण के लोग ले सकते हैं ब्राह्मणी को छोड़कर पर यदि मन्त्रविद् समर्थगुरु की अनुमति हो तो वह भी वह मंत्रपूत प्रसादमांस ब्राह्मणी भी ले सकती है॥६४॥

शिवोद्भवमिदं पिण्डमत्यर्थ शिवतां गतम्।
उद्बुध्यस्व पशो त्वं हि नाशिवस्त्वं शिवोह्यसि॥६५॥

बलि के लिए प्रयुक्त बलिपशु की प्रार्थना की जाती है कि हे पशु! तुम पशुपति शिव के द्वारा उद्भूत हो इसीलिए तुम्हारी पशुसंज्ञा है, यज्ञ में मन्त्रोच्चार के साथ प्रदत्त बलि में वह पशुमांसपिण्ड शिवत्व को प्राप्त हो जाता है, इसलिए हे पशु! तुम शिवरूप ही हो अशिव नहीं हो, तुम अपने समर्पण से शिवरूप होकर समस्त जगत् का शिव करोगे, कल्याण करोगे॥६५॥

ईशः सर्वजगत्कर्ता प्रभवः प्रलयस्तथा।
यतो विश्वाधिको रुद्रस्तेन रुद्रोऽसि वै पशो॥६६॥

हे भगवन ईश! आप ही समस्त जगत् के कर्ता हो, उत्पत्ति-स्थान हो और प्रलय करने वाले भी हो, इसलिए विश्व से अधिक रुद्र ही है, अतःआप रुद्र अभिन्न होने के कारण आप रुद्र ही है॥६६॥

अनेन तुरगं गां वा गजोष्ट्रमहिषादिकम्।
आत्मार्थं वा परार्थं वा हत्वा दोषैर्न लिप्यते॥६७॥

इसी कारण अश्व या गाय या हाथी या ऊंट या महिष आदि का दूसरों के लिए या अपने लिए बलि में देना दोष से (हिंसाआदि) लिप्त नहीं होता॥६७॥

ग्रहानिष्टकरान्वापि नागाखुबलिवृश्चिकान्।
एतद्गृहाश्रमस्थानां क्रियाफलमभीप्सताम्॥६८॥

घरों में रहने वाले महानिष्ट करने वाले सर्प, चूहे, बिच्छू आदि के प्रकोपों से गृहस्थ बच जाते हैं॥६८॥

पशुयज्ञो न चान्येषामिष्टापूर्तिकरं भवेत्।
जपहोमार्चनाद्यैश्च तेषामिष्टं हि सिध्यति॥६९॥

यह गृह और आश्रम में स्थित यज्ञक्रिया के फलों को चाहने वाले मन के संकल्पों से सिद्ध महान शिव के पराक्रम को चाहने वाले, अन्य इच्छाओं को रखने वालों की इच्छापूर्ति इन पशुयज्ञों से होगी, अन्य जो इष्ट तथा आपूर्ति आदि सामाजिक कार्य है उनसे नहीं होगी। इन जप, होम और अर्चनादि से मनोभिलाषित इच्छाओं की पूर्ति होगी॥६९॥

आगे इन्द्र ने हिंसा आदि यज्ञ में पशुबलि का वेदशास्त्रोक्त विधान बृहस्पति से सुना। इसके अनन्तर इन्द्र ने जिज्ञासा की कि भगवन! बस में आप से 'स्तेय के विषय सुनना, समझना चाहता हूं।।' यथा

भगवन्सर्वमाख्यातं हिंसाघस्य तु लक्षणम्।
स्तेयस्य लक्षणं किं वा तन्मे विस्तरतो वद॥७०॥

हे भगवन! हे गुरो! आपके श्रीमुख से मैंने हिंसारूप पाप का लक्षण सुना। अब चोरी का कैसा लक्षण है, वह चोरी कहां कही जाती है यह सभी विस्तार से मुझे समझाईयेगा॥७०॥

तब बृहस्पति जी बोले-

पापानामधिकं पापं हननं जीवजातिनाम्।
एतस्मादधिकं पापं विश्वस्ते शरणागते॥७१॥

इन्द्र! सुनो पापों में सबसे बड़ा पाप जीवजातियों की हत्या करना है। परन्तु इससे भी अधिक पाप वह है जो आपसे कुशलता की कामना करके ऐसा विश्वास करके आपकी शरण में आया हो॥७१॥

विश्वास्य हत्वा पापिष्ठं शूद्रं वाप्यन्त्यजातिजम्।
ब्रह्महत्याधिकं पापं तस्मान्नास्त्यस्य निष्कृतिः॥७२॥

विश्वस्त की हत्या, पापी, शूद्र, या अन्त्यजजाति में अस्पर्श्य शूद्रव्यक्ति को भी मारना पाप है। ब्रह्महत्या से बढ़कर दूसरा कोई पाप नहीं है, क्योंकि उसका कोई प्रायाश्चित नहीं है॥७२॥

ब्रह्मज्ञस्य दरिद्रस्य कृच्छ्रार्जितधनस्य च।
बहुपुत्रकलत्रस्य तेन जीवितुमिच्छतः।
तद्द्रव्यस्तेयदोषस्य प्रायश्चित्तं न विद्यते॥७३॥

ब्रह्मज्ञ अर्थात् ब्रह्मचिन्तन में अनुरक्त विप्र की निर्वाहवस्तु की चोरी करने का प्रायश्चित नहीं है, इसी तरह दरिद्र की वस्तु चुराने का, जिसने दिनरात्रि परिश्रम करके धर्नाजन किया हो ऐसे व्यक्ति के धन को चुराने का, जिसके गृहस्थी में परिवार में बहुत पुत्र हो पत्नी हो, बन्धु बान्धव कुटुम्बी ऐसे परिवार के निर्वाह वस्तुओं की चोरी का जो दोष उत्पन्न होता है, उसका प्रायाश्चित नहीं है, चोरी का दुष्टफल भोगना ही पड़ता है॥७३॥

विश्वस्तद्रव्यहरणं तस्याप्यधिकमुच्यते।
विश्वस्तो वाप्यविश्वस्तो न दरिद्रधनं हरेत्॥७४॥

किसी व्यक्ति जो आपस से निःशंक व्यवहारादि करता है ऐसे व्यक्ति के निर्वाहक वस्तुओं की चोरी का भी प्रायश्चित नहीं है। किसी ने अपना हितैषी समझकर अपनी वस्तु धनादि रख दिया हो, ऐसी चीजों को हड़प लेना भी अक्षम्य अपराध है। सामाजिक मर्यादाओं यहां तक कि जो

विश्वस्त है या और कोई अविश्वस्त व्यक्ति भी हो और जो दरिद्र हो उनका भी निर्वाहक सामान नहीं चुराना चाहिए ॥७४॥

ततो देवद्विजादीनां हेमरत्नापहारकम् ।
यो हन्यादविचारेण सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥७५॥

इसके अनन्तर देवताओं को अर्पित सोना, चांदी, रत्नादि तथा ब्राह्मणों, क्षत्रियों तथा वैश्यों के स्वर्णरत्नादि वस्त्र, धनादि का अपहरण करने वाले समाजद्रोही चोर को वह भले ही जाना पहिचाना क्यों न हो ऐसे व्यक्ति को मार देने से मारने वाले को अश्वमेधयज्ञ का फल मिलता है ॥७५॥

गुरुदेव द्विजसुहृत्पुत्रेष्वात्मसुखेषु च ।
स्तेयादयः क्रमादेव दशोत्तरगुणं त्वयम् ॥७६॥

जो गुरु, देव, द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) सुहद् मित्र, पुत्र तथा अपने सुख सुविधा के लिए चोरी आदि दुष्कृत्य करता है, उसे नीचे के क्रम से अर्थात् अपनी सुविधा से लेकर उत्तरोत्तर पुत्र, मित्र, द्विज, देव और गुरु के सर्वस्व की चोरी का दस-दस गुना पाप बढ़ता जाता है ॥७६॥

स्तेयं कृत्वा तु यो मूढः परस्त्रीभ्यः प्रयच्छति ।
वेश्यायै वा नटेभ्यो वा स भवेद्ब्राह्मणाधमः ॥७७॥

जो मूर्ख धन चुराकर पराई स्त्रियों को देता है, या वेश्याओं को देता है या नटनर्तकों को देता है वह अत्यन्त नीचब्राह्मण कहा गया है ॥७७॥

क्षत्रियाच्च विशः शूद्राद्ब्राह्मणादन्त्यजातिजात् ।
दशोत्तरगुणैः पापैर्लिप्यते धनहारकः ॥७८॥

क्षत्रिय से, वैश्य से, शूद्र से, ब्राह्मण से तथा अन्त्यजाति में उत्पन्न मनुष्य से जो धन, छल, कपट, चोरी या भय दिखाकर धन लेता है, उस का उत्तरोत्तर क्रम से दश-दशगुना पाप बढ़ता है ॥७८॥

अयुतांशात्सहस्त्रांशाच्छतांशाद्दशमांशतः ।
धनं हृत्वा तथा पापैर्लिप्यते नात्र संशयः ॥७९॥

दस हजारवें भाग से या हजारवें भाग से या सौवें भाग से या दसवें भाग से भी जो धन का अपहरण या चोरी करता है, वह भी अक्षम्य अपराध करता है, पाप करता है इसमें जरा सा भी संशय नहीं है ॥७९॥

(द्विजवर्मनामकिरातोपाख्यानम् ॥)

अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
रहस्यातिरहस्यं च सर्वपापप्रणाशनम् ॥८०॥

इसी स्तेयवृत्ति से सम्बन्धित एक प्राचीन इतिहास है जो इस चौरवृत्ति का विवरण देता है, यह

रहस्यमय है और अतिरहस्यमय है। अर्थात चौरवृत्ति के परिणामों को व्यक्त करता है, इसके जान लेने से चौर्यवृत्ति के मन में पालने से जो पाप होता है, चौर्यवृत्ति का सहारा लेने से, उसका समर्थन करने से जो पापसंचय होता है, उसके परिचित हो जाने से होने वाले दुष्परिणामरूप पापों से रक्षा हो जाती है ॥८० ॥

पुरा काञ्चीपुरे जातो वज्राख्यो नाम चोरकः ।
तस्मिन्पुरवरेरम्ये सर्वैश्वर्यसमन्विताः ॥८१ ॥

प्राचीनकाल में दक्षिण में काञ्ची नामक नगर में एक वज्र नामवाला चोर था उस सुन्दर मनोरम नगर में सभी निवासी समस्त ऐश्वर्य से सम्पन्न रहते थे ॥८१ ॥

सर्वे नीरोगिणो दान्ताः सुखिनो दययान्विताः ।
सर्वैश्वर्यसमृद्धेऽस्मिन्नगरे स तु तस्करः ॥८२ ॥

उस नगर में सभी निरोगी, मर्यादित और सुखी थे दयालु स्वभाव के थे। ऐसे समस्त ऐश्वर्यों से सम्पन्न नगर में वह वज्र नामक तस्कर ॥८२ ॥

वज्रो बहुद्रव्यवतां गृहेषु धनतृष्णया।
स्तोकं स्तोकं क्रमेणैव बहु द्रव्यमपाहरत् ॥८३ ॥

उस वज्र नामक चोर ने धनसंग्रह की तृष्णा से बहुत धनी मानी गृहस्थों के घर से धीरे-धीरे क्रमशः बहुत सारा धन चुरा लिया ॥८३ ॥

तदरण्येऽवटं कृत्वा स्थापयामास लोभतः ।
तद्गोपनशिलार्थाय तस्मिन्दूरं गते सति ॥८४ ॥

फिर उस वज्र नामक चोर ने लोभ से चोरी द्वारा संग्रहीत धन को रक्षा करने के लिए निर्जनवन में वृक्ष के नीचे गड्ढा खोदकर रख दिया ॥८४ ॥

किरातः कश्चिदागत्य तद्दृष्ट्वा तु दशांशतः ।
जहाराविदितस्तेन काष्ठभारं वहन्ययौ ॥८५ ॥

उस जगह में कोई किरात आ गया, उसने उस गड्ढे को देखा, उसमें रखे धन को देखा, तब उसमें से दशवां हिस्सा निकाल लिया, जो किसी को भी मालूम नहीं हुआ और लकड़ी का बोझ लिये हुए नगर में गया ॥८५ ॥

सोऽपि तच्छिलयाच्छाद्य मृद्भिरापूर्य यत्नतः ।
पुनश्च तत्पुरं प्रायाद्वज्रोऽपि धनतृष्णया ॥८६ ॥

उसने भी उस चुराए हुए धन को गड्ढे में रखकर ऊपर से मिट्टी से पूर कर सुरक्षित कर दिया

और फिर से प्रतिदिनानुसार नगर में आ गया। वह वज्र नाम का चोर भी चोरी करता रहा॥८६॥

एवं बहुधनं हृत्वा निचिक्षेप महीतले ।
किरातोऽपि गृहं प्राप्य बभाषे मुदितः प्रियाम्॥८७॥

इसी क्रम में वज्र ने बहुत धन संग्रहीत किया और धरती में गड़ाया, किरात ने वज्र के अनजाने चुराए हुए धन को चुराकर अन्यत्र धरती में गड़ाकर घर में आकर अपनी प्रिया पत्नी से बोला॥८७॥

मया काष्ठं समाहर्तुं गच्छता पथि निर्जने ।
लब्धं धनमिदं भीरु समादत्स्व धनार्थिनि॥८८॥

सुनो! मैं जंगल में नियमानुसार लकड़ी लेने गया था, वहाँ निर्जनस्थान में मैंने मिट्टी से ढंके गड्ढे में बहुत सा रखा हुए धन देखा। मैंने उसमें कुछ धन निकालकर ले आया हू, तुम हमेशा धन की इच्छा करती रहती हो, लो इसे रखो॥८८॥

तच्छ्रुत्वा तत्समादाय निधायाभ्यन्तरे ततः ।
चिन्तयन्ती ततो वाक्यमिदं भर्तारमब्रवीत्॥८९॥

किरात के बताए विवरण सुनकर उसकी पत्नी ने घर के भीतर उस धन को रख दिया। फिर चिन्ता करती हुई पति से बोली॥८९॥

नित्यं संचरते विप्रो मामकानां गृहेषु यः ।
मां विलोक्येयमचिराद्बहुभाग्यवती भवेत् ।
चातुर्वर्ण्यासु नारीषु इयं चेद्राजवल्लभा॥९०॥

किरात की पत्नी ने कहा, कि अपने घरों में नित्य जो विप्र घूमते हुए आते हैं, वे मुझे देखकर बोलते हैं कि तुम बहुत जल्दी भाग्यशालिनी होगी। चारोंवर्णों की नारियों में यदि राजवल्लभा हो तो धन भी वहीं स्थिर रहता है॥९०॥

किंतु भिल्ले किराते च शैलूषे चान्त्यजातिजे।
न तिष्ठते चिरं लक्ष्मीः शापाद्वल्मीकजन्मनः॥९१॥

किन्तु भीलजाति में, किरातजाति में, शैलूष जंगलीजाति पर्वतों में रहने वाले तथा अन्त्यज जाति में उत्पन्न लोगों के घरों में लक्ष्मी चिरस्थायिनी नहीं होती, ऐसा शाप महर्षि बाल्मीकि ने दिया है - यह कथा इस प्रकार है रामनाम का उपदेश दस्यु वाल्मीक को मुनियों द्वारा प्राप्त हुआ, तो उन्होंने जप आरंभ किया। जप में इतने तल्लीन हुए कि उन्हें वल्मीकों ने पूरे शरीर में घेर लिया। तप की पूर्णता से ब्रह्माजी ने उन्हें वाल्मीक घेरे से मुक्त किया और रामचरित वर्णन करने वरदान

देकर चले गए। तब महर्षि प्रतिभा से सम्पन्न वल्मीकिऋषि आश्रम में बैठे थे। उस समय एक क्रौंचपक्षी का जोड़ा देखा उसी समय पक्षी शिकारीनिषाद को देखा उसने बाण से नरपक्षी को मार दिया। यह देख महर्षि वाल्मीकि के हृदय में बड़ी पीड़ा हुई। उनके मुख से आदिवाणी प्रेरित हुई। उन्होंने कहा॥९१॥

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीःसमाः।
यत्क्रौचमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥९१॥

(यह शाप आज तक भी देखा जाता है।)

तथापि बहुभाग्यानां पुण्यानामपि पात्रिणी।
दृष्टपूर्वं तु तद्वाक्यं न कदाचिद्वृथा भवेत्॥९२॥

तो भी जो बहुत भाग्यशाली होते हैं, पुण्यात्मा होते हैं और पात्र अर्थात् श्रेष्ठ होते हैं, उनके पास ही लक्ष्मी आती है अतः जिन भविष्यवक्ताओं ने कहा है, उनका यह वचन वृथा नहीं होना चाहिए॥९२॥

अथवात्मप्रयासेन कृच्छ्राद्यल्लभ्यते धनम्।
तदेव तिष्ठति चिरमन्यद्गच्छति कालतः॥९३॥

अथवा अपने प्रयास से, कर्म करने से उद्योग करने से बड़ी कठिनाई से धन प्राप्त किया जाता है, वह धन ही बहुत समय तक स्थायी रहता है, अन्य धन और अन्य प्रकारों से प्राप्त धन चिरकाल तक स्थिर नहीं रहता वह चला ही जाता है॥९३॥

स्वयमागतवित्तं तु धर्मार्थे विनियोजयेत्।
कुरुष्व तेन तस्मात्त्वंवापीकूपादिकाः शुभाः॥९४॥

स्वयं आए हुए धन को धर्मार्थकार्यों में लगा देना चाहिए। इसलिए तुम इस धन से बावड़ी, कूप आदि समाज के हितकारी है, इन्हें बनवाईये॥९४॥

इति तद्वचनं श्रुत्वा भाविभाग्यप्रचोदितः।
बहूदकयुतं देशं तत्र तत्र व्यलोकयत्॥९५॥

इस प्रकार पत्नी के भावीभाग्य को प्रेरित करने वाले वचनों को परामर्श को सुनकर किरात ने पर्याप्तजलवाले क्षेत्रों को वहां वहां देखा॥९५॥

निर्ममेऽथ महेन्द्रस्य प्राग्भागे विमलोदकम्।
सुबहुद्रव्यसंसाध्यं तटाकं चाक्षयोदकम्॥९६॥

पत्नी के हितकारी वचनों को सुन उसने महेन्द्राचलपर्वत के पूर्वभाग में पर्याप्त धन लगाकर

शुद्धजल वाला ऐसा तालाब बनवाया जिसका जल कभी समाप्त नहीं होता था॥९६॥

दत्तेषु कर्मकारिभ्यो निखिलेषु धनेषु च।
असंपूर्ण तु तत्कर्म दृष्ट्वा चिन्ताकुलोऽभवत्॥९७॥

उस तालाब के बनवाने में सभी कारीगरों को धन देने पर जब धन समाप्त हो गया और कार्य पूरा भी नहीं हुआ, तब चिन्ता से व्याकुल हो गया॥९७॥

तं चोरं वज्रनामानमज्ञातोऽनुचराम्यहम् ।
तेनैव बहुधा क्षिप्तं धनं भूरि महीतले ।
स्तोकं स्तोकं हरिष्यामि तत्र तत्र धनं बह॥९८॥

तब उस किरात ने सोचा कि उस चोर वज्रनाभ नामक का धन जो चोर का धन है, उसे मैं जानता हूं, तथा यह बात वह चोर नहीं जानता, कि मुझे उसके गड़ाए धन का पता है, तो मैं उसी धन को पहिले जैसे लाता रहूंगा और आरंभ किए कार्य को पूरा कर लूंगा॥९८॥

इति निश्चित्य मनसा तेनाज्ञातस्तमन्वगात् ।
तथैवाहृत्य तद्द्रव्यं तेन सेतुमपूरयत्॥९९॥

थोड़ा-थोड़ा धन वहां से लाते रहूंगा, क्योंकि बहुत गड़ा हुआ है। उस चोर भी नहीं मालूम है, कि उसके गड़ाए धन को मैं चुरा रहा हूं। इस प्रकार मैं गुप्तप्रवृत्तियों से चलकर उस सेतु को पूरा कर लूंगा॥९९॥

मध्येजलं कृतं तेन प्रासादमपि शार्ङ्गिणः।
तत्तटाकमभूद्दिव्यमशोषितजलं महत्॥१००॥

इस प्रकार उस किरात ने पत्नी की सत्प्रेरणा से प्रवृत्त होकर चौरकृत्य दुष्टधन से भी उत्तमकार्य कर लिया, उसने सेतु के मध्य में भगवान् विष्णु का मंदिर बनवाया, वह तालाब दिव्यछटावाला कभी न कम होने वाले मधुरजल से परिपूर्ण हुआ।।100।।

सेतुमध्ये चकाराग्र्यं शंकरायतनं महत् ।
काननं च क्षयं नीतं बहुसत्वसमाकुलम्॥१०१॥

उस किरात ने कभी न सूखने वाले जल से परिपूर्ण उस सेतु में भगवान शंकर का भी मंदिर बनवाया, वहां के जंगल में आवश्यक लकड़ियों का संग्रह किया, वहां से हिंसक जन्तुओं को शून्य कर दिया।।101।।

तेनाग्र्याणि महार्हाणि क्षेत्राण्यपि चकार सः।
देवताभ्यो द्विजेभ्यश्च प्रदत्तानि विभज्य च॥१०२॥

उस क्षेत्र में उस धन से बहुत सुन्दर साधनसम्पन्न बहुमूल्य भवन बनवा दिये और बहुत सा क्षेत्र भी तैयार कर दिया। फिर बनवाकर देवायतन देवों को और भवन ब्राह्मणों को वितरित कर दिया॥१०२॥

ब्राह्मणांश्च समामन्त्र्य देवरातमुखान्बहून्।
संतोष्य वस्त्रहेमाद्यैरिदं वचनमब्रवीत्॥१०३॥

फिर उसने देवताओं का व्रत रखने वाले बहुत से ब्राह्मणों को बुलाकर उन्हें स्वर्ण, वस्त्रादि वस्तुएं देकर सन्तुष्ट किया और उन सभी से विनम्रतापूर्वक वचन बोला॥१०३॥

क वाहं वीरदत्ताख्यः किरातः काष्ठविक्रयी।
क्व वा महासेतुबन्धः क्व देवालयकल्पना॥१०४॥

कहां तो मैं वीरदत्त नामक काष्ठ बेचने वाला किरात और कहां इतना विशालसेतु बांधना, जलाशय तथा सुन्दर विशालदेवालय का निर्माण कराना और ब्राह्मणों के लिए घर बनाना॥१०४॥

क्व वा क्षेत्राणि क्लृप्तानि ब्राह्मणायतनानि च।
कृपयैव कृतं सर्वं भवतां भूसुरोत्तमाः॥१०५॥

हे ब्राह्मणों! आप सभी के अमोघ आशीर्वाद से ये सभी मुझ जैसे किरात के द्वारा कार्य सम्पन्न हुए हैं, इस में मेरा कुछ भी प्रभाव नहीं आप सभी के अनुग्रह से सम्पन्न हुआ है॥१०५॥

प्रतिगृह्य भवन्तो मे क्षेत्राण्यायतनानि च।
कृतार्थं कुरुत क्षिप्रं मादृशां हि गतिर्द्विजाः॥१०६॥

आप सभी इन क्षेत्रों को तथा देवायतनों को स्वीकार करें! और मुझे कृतार्थ करें, मेरे जैसे हीनजाति में उत्पन्न साधनहीन, ज्ञानहीन के आप सभी भूदेव ब्राह्मण ही सहारा हैं॥१०६॥

प्रतिगृह्य तथैवैतद्देवरातमुखा द्विजाः।
द्विजवर्मेति नामास्मै तस्यै शीलवतीति च।
चक्रुः सन्तुष्टमनसो महात्मानो महौजसः॥१०७॥

इसके अनन्तर बहुत ही सन्तुष्ट और प्रसन्नमन से उन तेजस्वी तपस्वी ब्राह्मणों ने देवव्रात द्विजश्रेष्ठों ने किरात के दिए हुए सभी स्थलों भवनों को स्वीकार किया तथा उसका नाम भी द्विजवर्मा स्थिर कर दिया साथ ही उसकी पत्नी का नाम भी शीलवती रख दिया॥१०७॥

तेषां संरक्षणार्थाय बन्धुभिः सहितो वशी।
तत्रैव वसतिं चक्रे मुदितो भार्यया सह॥१०८॥

उन ब्राह्मणों के संरक्षण के लिए अपने सभी बन्धुओं के सहित वह जितेन्द्रिय होकर पत्नी के साथ रहने लगा॥१०८॥

पुरोहिताभिधानेन देवरात पुरंत्विति।
नाम चक्रे पुरस्यास्य तोषयन्नखिलान्द्विजान् ॥१०९॥

उस किरात ने पुरोहितों का सम्मान किया था, इसलिए उस नगर का नाम देवरातपुर हुआ। यह नाम समस्त ब्राह्मणों को सन्तुष्ट रखते हुए रखा गया था ॥१०९॥

ततः कालवशं प्राप्तो द्विजवर्माङ्गनासखः।
यमस्य ब्रह्मणो विष्णोर्दूता रुद्रस्य चागताः।
अन्योन्यमभवत्तेषां युद्धं देवासुरोपमम्
अन्योन्यमभवत्तेषां युद्धं देवासुरोपमम् ॥११०॥

इसके अनन्तर कालवश द्विजवर्मा दिवंगत हो गया, उसे लेने के लिए यमदूत, ब्रह्माजी के दूत, विष्णुभगवान के दूत और रुद्र के दूत आ गए। उन दूतों का परस्पर देवासुर संग्राम जैसे युद्ध होने लगा, सभी कहते थे ये हमारा है ये हमारा है ॥११०॥

अत्रान्तरे समागत्य नारदो वाक्यमब्रवीत्।
मा कुर्वन्तु मिथो युद्धं शृण्वन्तु वचनं मम ॥१११॥

इसी बीच में युद्ध के मध्य नारदऋषि आ गए, उन्होंने कहा आप लोग युद्ध न करें और जो मैं कह रहा हूं उन वचनों को सुनें ॥१११॥

अयं किरातश्चौर्येण सेतुबन्धं पुराऽकरोत्।
वायुभूतश्चरेदेको यावद्द्रव्यवतो मृतिः ॥११२॥

इस किरात ने चोरी से इस सेतुबंध का निर्माण किया है। अतः वायु बनकर तब तक अकेला विचरण करे जब तक कि धनवानों की मृत्यु न हो ॥११२॥

स बहुभ्योऽहरद्द्रव्यं तेषां यावत्तथा मृतिः ॥११३॥

इसने बहुत से लोगों का धनहरण किया है जब तक कि उनकी मृत्यु न हो तब तक वह वायुरूप में रहे ॥११३॥

गतेष्वखिलदूतेषु श्रुत्वा नारदभाषितम्।
चचार द्वादशाब्दं तु वायुभूतोऽन्तरिक्षगः ॥११४॥

सभी दूतों के चले जाने पर नारदजी की बात सुनकर बारहवर्षों तक अन्तरिक्ष में द्विजवर्मा वायुरूप में विचरण करने लगा ॥११४॥

भार्या तस्याह स मुनिस्तव दोषो न किंचन।
त्वया कृतेन पुण्येन ब्रह्मलोकमितो व्रज ॥११५॥

द्विजवर्मा की पत्नी से नारदजी ने कहा कि तुम्हारा इसमें कोई दोष नहीं है, तुमने जो भी पुण्य किया है उस पुण्यकर्म के कारण तुम ब्रह्मलोक में चली जाओ ॥११५॥

वायुभूतं पतिं दृष्ट्वा नेच्छन्ती ब्रह्ममन्दिरम्।
निर्वेदं परमापन्ना मुनिमेनमभाषन ॥११६॥

द्विजवर्मा की पत्नी ने पति को वायुरूप हुआ देखकर ब्रह्मलोक जाना नहीं चाहा, बहुत शोक करती हुई नारदमुनि से बोली ॥११६॥

अहं विना पतिन्देव न गच्छेयं पितामहम्।
इह स्थास्ये पतिर्यावत्स्वदेहं लभते पुनः ॥११७॥

हे पितामहः ! मैं पति के बिना ब्रह्मलोक पितामह के पास नहीं जाऊंगी। यहीं पर मैं रहूंगी, जब तक मेरे पति पुनः अपने शरीर को पा नहीं लेते ॥११७॥

ततस्तु या गतिस्तस्य तामेवानुचराम्यहम्।
परिहारोऽथवा किंतु मया कार्य तु तेन वा ॥११८॥

उनके शरीर प्राप्त कर लेने के बाद जो गति उनकी होगी, उस गति का मैं भी अनुसरण करती रहूंगी। जब मेरे पति का ही परिहार है, तब मुझे उस पुण्य से मेरा क्या कार्य है ॥११८॥

इति तस्या वचःश्रुत्वा प्रीतः प्राह तपोधनः ॥११९॥

इस प्रकार द्विजवर्मा की पत्नी के वचनों को सुनकर मुनि बोले, कि तुम्हारे पति का शरीर भोगात्मक है और तुम्हारा कर्म करने वाला है ॥११९॥

भोगार्थकं शरीरं तु पत्युः कर्मकरं तव।
मम प्रभावाद्भविता परिहारं वदामि च ॥१२०॥

मैं तुमसे कह रहा हूं, कि मेरे प्रभाव से तुम्हारा प्रायश्चित से परिहार हो जावेगा ॥१२०॥

निराहारो महातीर्थे स्नात्वा नित्यं हि सांबकम्।
पूजयित्वा शिवं भक्त्या भस्मोद्धूलितविग्रहः ॥१२१॥

महानतीर्थ में स्नान करके भगवती अम्बिका सहित भगवान्शिव की भक्तिपूर्वक अर्चनादि करते हुए भस्म का तिलक लगाकर ॥१२१॥

ध्यात्वा हृदि महेशानं शतरुद्रमनुं जपेत्।
ब्रह्महा मुच्यते पापैरष्टोत्तरसहस्त्रतः।
पापैरन्यैश्च सकलैर्मुच्यते नात्र संशयः ॥१२२॥

भगवानमहेश शिव का ध्यान करें और शतरुद्रमन्त्र का जप करें। एक हजार आठ बार मंत्र का

जप ब्रह्महत्या के दोष को भी मिटा देता है तथा अनेकों अन्यपापों से भी छुटकारा मिल जाता है, इसमें जरा सा भी कोई संशय नहीं है॥१२२॥

इत्यादिश्य ददौ तस्यै रुद्राध्यायं तपोधनः।
अनुगृह्येति तां नारीं तत्रैवान्तरधीयत॥१२३॥

इस प्रकार उपदेश देकर उन तपोधन मुनिनारद ने द्विजवर्मा की पत्नी को शतरुद्रमन्त्र का उपदेश किया, उस पर अनुग्रह करके वे मुनि वहीं अन्तर्हित हो गए॥१२३॥

भर्तुः प्रियार्थे संकल्प्य जजाप परमं मनुम्।
विमुक्तः स्तेयदोषेण पूर्वदेहमवाप सः॥१२४॥

अपने वायुरूप पति के उद्धार एवं प्रिय करने के लिए उसकी शीलवती ने उस विशेषमंत्र का जप किया, उसके प्रभाव वह द्विजवर्मा चौर्यदोष से मुक्त हो गया, उसे पूर्वदेह भी प्राप्त हो गई॥१२४॥

ततो वज्राभिधश्चौरः कालधर्ममुपागतः।
अन्ये तद्द्रव्यवन्तोऽपि कालधर्ममुपागताः॥१२५॥

इस अनन्तर वज्रनामक चोर भी मृत्यु को प्राप्त हुआ, अन्य चोर भी कालक्रम से मृत्यु को प्राप्त हुए॥१२५॥

यमस्तु तान्समाहूय वाक्यमेतदुवाच ह॥१२६॥

यमलोक में गए हुए उन सभी चोरों को यमराज ने कहा॥१२६॥

भवद्भिस्तु कृतं पापं दैवात्सुकृतमप्यभूत्।
किमिच्छथ फलं भोक्तुं दुष्कृतस्य शुभस्य वा॥१२७॥

आप लोगों के द्वारा जो मृत्युलोक में पापकर्म चोरी रूप कहा गया है, वह समाज के उपयोग में प्रयुक्त होने के कारण सुकृतरूप में परिणत हो गया है, अतः उसके फल भोगने के अधिकर्मा आप लोग हो, इसलिए उसका चौरभाग दुष्फल तथा समाजहित भाग सुफल दोनों हैं, इनमें आप लोग पहले सुफल भोगेंगे या दुष्फल भागेंगे॥१२७॥

इति तस्य वचः श्रुत्वा प्रोचुर्वज्रादिकास्ततः।
सुकृतस्य फलं त्वादौ पश्चात्पापस्य भुज्यते॥१२८॥

इस प्रकार यमराज के वचनों को सुनकर वज्र और उसके साथ जो चौर थे, उन्होंने यमराज से कहा, कि हम लोग पहिले सुकृत का सुफल भोगेंगे। बाद में दुष्फल भोगेंगे॥१२८॥

पुनराह यमो यूयं पुत्रमित्रकलत्रकैः।
एतस्यैव बलात्सर्वे त्रिदिवं गच्छत द्रुतम्॥१२९॥

फिर यम ने कहा कि तुम सभी पुत्र, मित्र और पत्नियों के साथ इसी सुकृत के बल से स्वर्ग चले जाओ॥१२९॥

तेऽधिरुह्य विमानानि द्विजवर्माणमाश्रिताः।
यथोचितफलोपेतास्त्रिदिवं जग्मुरञ्जसा॥१३०॥

यमराज की व्यवस्था से वे सभी वज्रादि चोरगण द्विजवर्मा के आधिपत्य में सभी यथायोग्य फल विभाग के साथ स्वर्ग शीघ्रता से चले गए।।130।।

द्विजवर्माखिलॉल्लोकानतीत्य प्रमदासखः।
गाणपत्यमनुप्राप्य कैलासेऽद्यापि मोदते॥१३१॥

उन में जो द्विजवर्मा था वह पत्नी के द्वारा की गई शतरुद्रीयमंत्र की जपरूप तपस्या से पत्नी सहित समस्त लोगों को लांघकर भगवान् शिव के धाम कैलाश में पहुंच गया तथा भगवान की कृपा से गणों का स्वामी बनकर आज भी वहीं विद्यमान है॥१३१॥

इन्द्र ने सुनकर आगे प्रश्न किया-

तारतम्यविभागं च कथयस्व महामते।
सेतुबन्धादिकानां च पुण्यानां पुण्यवर्धन॥१३२॥

भगवन्! सेतुबन्धादि सत्कार्यों सा फल पुण्यों को बढ़ाने वाला क्रम उसका तारतम्य कैसा होता है, वह कृपा करके बताईयेगा॥१३२॥

तब देवगुरु बृहस्पति समझाते हुए बोलेः-

पुण्यस्यार्धफलं प्राप द्विजवर्मा महायशाः।
वज्रः प्राप तदर्धं तु तदर्धेन युताः परे॥१३३॥

देवराज इन्द्र पुण्य का आधाफल प्राप्त करने के लिए द्विजवर्मा को जिस शुभ और पुण्यकार्य करने से समाज में विशेष प्रसिद्धि मिली थी, उसे शिवलोक में सनातनगणों के अधिपति होने का सौभाग्य मिला। उस पुण्य का आधाभाग वज्र नामक चोर को मिला और (एक चौथाई) दूसरे अन्य सहयोगी चोरों को मिला॥१३३॥

मनोवाक्कायचेष्टाभिश्चतुर्धा क्रियते क्रिया।
विनश्येत्तेन तेनैव कृतैस्तत्परिहारकैः॥१३४॥

बृहस्पति जी ने आगे कहा, कि मन, वाणी, शरीर और चेष्टाओं से चार प्रकार के कार्य होते हैं, अर्थात् शुभ या अशुभ कार्यों का संकल्प मन से, वाणी से बोलकर, और शरीर से याने ज्ञानेंद्रियों से जानकर कर्मेंद्रियों (हाथ-पैर) से कर्म सम्पन्न करना तथा चेष्टाओं से अर्थात् किए जाने वाले

कर्मसाधनों से, उन साधनों के प्रयोग से तथा सामाजिक सहयोग से बड़े परिमाण में या सीमित परिमाण गुप्तरूप से प्रकटरूप से व्यक्तिगत या सामाजिक सहयोग से किसी की सहायता करना या किसी को हानि पहुंचाना आदि ये सभी पापकोटि में आते हैं। जो कार्य जैसा है, जिस परिमाण में है, उसका वैसा ही उसी परिमाण में समाधान होता है, मन, वाणी, शरीर तथा चेष्टाओं से पाप हुआ है, तो इन्हीं चारसाधनों से पापनाश रूपपरिहार भी हो जाएगा॥१३४॥

इन्द्रोवाच

[मद्यविभागे ग्राह्याग्राह्यविचारः॥]

आसवस्य तु किं रूपं को दोषः कश्च वा गुणः।
अन्नदोषकरं किं तु तन्मे विस्तरतो वद॥१३५॥

इन्द्र ने देवगुरु बृहस्पति से प्रश्न किया - कि गुरुवर्य! आसव का अर्थात् मद्य का कैसा गुण है, उसके सेवन से कौन सा दोष होता है और कौन सा गुण है, क्या वह अन्नदोष करने वाला है, यह सभी विस्तार से बताईयेगा॥१३५॥

बृहस्पतिः उवाच

पैष्टिकं तालजं कैरं माधूकं गुडसंभवम्।
क्रमान्यूनतरं पापं तदर्धार्धतरस्तथा॥१३६॥

तब बृहस्पति बोले-

देवगुरु ने बताया कि आसव (मद्य) पाँच प्रकार की होती है वह इस प्रकार है। 1. पैष्टिक - अन्न को सड़ाकर बनाई जाती है। 2. तालज- जो ताड़ वृक्ष या खजूर से बनाई जाती है, जिसे ताड़ी भी कहते हैं। 3. कैर- जो कैर को सड़ाकर बनाई जाती है। 4. माधूक - महुआ की शराब, 5. गुड़ से पैदा होने वाली मद्य। इस प्रकार ये पाँच प्रकार के मद्य है। इनका पान करना पाप है। इनमें सबसे बड़ा पाप सड़ेअन्न से बनी शराब पीने से होता है। फिर इससे कम तालज से, उससे कम कैर से, उससे कम माधूक से तथा उससे कम गुड़ की शराब पीने से होता है॥१३६॥

वर्ज्यमाद्यं सदा सर्वैराद्ययुग्मं नृपस्त्यजेत्।
तृतीयमपि वैश्यस्तु शूद्रोऽप्याद्यद्वयं तथा॥१३७॥

सभी लोगों को आदि अर्थात् सड़ाए हुए अन्न से बनी शराब नहीं पीना चाहिए। (झारखण्ड क्षेत्र में अभी भी व्यक्तिगत सामूहिकरूप हंडिया से यही प्रचलित है। सरकार भी बन्द कराने सफल नहीं हो पाई।) आदि के दो अन्न की तथा ताड़ी ये नृप न लें। तीसरी शराब कैर की वैश्य न लें और शूद्र भी आरंभ की अन्न की तथा ताड़ी न लें॥१३७॥

तृतीयादि त्रिवर्णानामासवं पेयमुच्यते।
स्त्रीणामपि तृतीयादि पेयं स्याद्ब्राह्मणीं विना ॥१३८॥

स्त्रियों को भी कैरनाम मद्य पीना चाहिए और क्षत्रियादि क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इनका तो आसव पेय ही कहा गया है। केवल ब्राह्मण के लिए मद्य का निषेध है ॥१३८॥

पतिहीना च कन्या च त्यजेद्ऋतुमती तथा ॥१३९॥

जो स्त्री पतिहीना है, विधवानारी और कन्या तथा मासिकधर्मवाली स्त्री भी मद्यसेवन न करें ॥१३९॥

अभर्तृसन्निधौ नारी मद्यं पिबति लोलुपा।
उन्मादिनीति सा ख्याता तां त्यजेदन्त्यजामिव ॥१४०॥

अपने पति के पास न रहने वाली नारी भी यदि लोभवश शराब पी लेती है तो उसे उन्मादिनी कहा गया है। उसका भी त्याग अन्त्यज (चाण्डाल) नारी की तरह त्याग कर देना चाहिये ॥१४०॥

दशाष्टषट्चतस्रस्तु द्विजातीनामघं भवेत्।
स्त्रीणामपि तदर्धं स्यात्पादं स्याद्भर्तृसंगमे ॥१४१॥

दश, आठ, छह और चार वह द्विजातियों-ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य का अद्य याने पाप होता है- स्त्रियों को उसका आद्यपाप होता है- याने मद्यपान होता है उसे चौथाभाग पति के साथ पीने से होता है, अर्थात ब्राह्मण को शराब पीने से दसगुना पाप, क्षत्रिय को आठगुना पाप, वैश्य को छह गुना पाप तथा शूद्र को चारगुना पाप होता है ॥१४१॥

मद्यं पीत्वा द्विजो मोहात्कृच्छ्रे चान्द्रायणं चरेत् ।
जपेच्चायुतगायत्रीं जातवेदसमेव वा ।
अम्बिकाहृदयं वापि जपेत् शूद्रो भवेन्नरः ॥१४२॥

मोहवश मद्य पीकर ब्राह्मण (द्विज) चांद्रायणव्रत करें। प्रायश्चित रूप में द्विज दसदजार गायत्री जप करे या जातवेदसे सुनवाम सोममराती यतो निदहाति वेदः। स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वानावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः। मंत्रजप अथवा अम्बिका का हृदय में ध्यान करें ॥१४२॥

क्षत्रियादित्रिवर्णानां द्विजादर्धार्धतः क्रमात्।
स्त्रीणामर्धार्धक्लृप्तिः स्यात्कारयेद्वा द्विजैरपि।। ॥१४३॥

क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इनको अर्थात् क्षत्रिय को ब्राह्मण से आधा पांच हजार, वैश्य को ढ़ाई हजार जप, तथा शूद्र को सवाहजार जप करना चाहिए, स्त्रियों को उसके आधे से भी आधे जप करने से शुद्धि होती है, यह जप जल में नाभि या घुटनेमात्र जल में रहकर होता है, ऐसा ब्राह्मणों को भी करना चाहिए ॥१४३॥

अन्तर्जले सहस्त्रं वा जपेच्छुद्धिमवाप्नुयात्।
लक्ष्मीः सरस्वती गौरी चण्डिका त्रिपुराम्बिका॥१४४॥

जल के बीच खड़ा होकर सहस्त्रवारजप करने से शुद्धि प्राप्त होती है। लक्ष्मी, सरस्वती, गौरी, चण्डिका और त्रिपुराम्बिका - तथा- ॥१४४॥

भैरवो भैरवी काली महाशास्ता च मातरः।
अन्याश्च शक्तयस्तासां पूजने मधु शस्यते॥१४५॥

भैरव, भैरवी, काली, महाशास्ता, मातृगण और अन्य शक्तियां इनके पूजन में मधु यथापात्र प्रयोग होता है॥१४५॥

ब्राह्मणस्तु विना तेन यजेद्वेदान्तपारगः।
इतरे मधुना देवीमर्चयेयुः फलार्थिनः॥१४६॥

वेदान्तपारग ब्राह्मण बिना मधु के पूजादि सम्पन्न करे, ब्राह्मणेतर, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र फल के इच्छुक विहित मधु के प्रयोग से आराधना करें॥१४६॥

तन्निवेदितमश्नन्तस्तदनन्यास्तदात्मकाः।
तासां प्रभावाद्गच्छन्ति निर्लेपास्ते परांगतिम्॥१४७॥

जो लोग निवेदन करने पर आसव का उपयोग नहीं करते तथा उससे अन्यलोग जो उसका सेवन करते हैं अतः जो सेवन करते हैं, उनका किये पापों का जो जान कर किये गए हों अथवा अज्ञान से किये गए हों, उनका यही प्रायाश्चित है कि वे सभी पराशक्ति के चरणों का स्मरण करें अर्थात ध्यान करें तथा उनके मन्त्र का जप करें॥१४७॥

कृतस्याखिलपापस्य ज्ञानतोऽज्ञानतोऽपि वा।
प्रायश्चित्तमिदं प्रोक्तं पराशक्तेः पदस्मृतिः॥१४८॥

जानते हुए या जानते हुए भी किये गए समस्तपापों का केवल यही अमोध प्रायश्चित्त है कि वह पराशक्ति जगदम्बिका जगन्माता के चरणों का स्मरण करे, मन्त्रजप करे तथा उन माँ की शरण में जाये॥१४८॥

अनभ्यर्च्य परां शक्तिं पिबेन्मद्यं तु योऽधमः।
रौरवे नरकेऽब्दांस्तु निवसेद्बिन्दुसंख्यया॥१४९॥

बिना पराशक्ति की अर्चना के जो अधमव्यक्ति मद्य का पान कर लेता है, वह मरने के बाद कौरव नरक में बिन्दुसंख्या तक अर्थात अनन्तकाल यातना सहता रहता है॥१४९॥

भोगेच्छया यो मद्यं तु पिबते वृषलाधमः।
द्विजो मोहान्नतु पिबेल्लोभाद्वा कामतोऽपि वा॥१५०॥

भोग की इच्छा से जो नीच अधमप्राणी मद्य का पान करता है वह और भी पतित होता है, द्विज भी मोहवश या लोभवश या इच्छा से मद्य पान करता है वह पतित होता है॥१५०॥

प्रायश्चित्तं न वै वाच्यं शिलाग्निपतनादृते।
अनुग्रहाच्च महतामनुतापाच्च कर्मणः॥१५१॥

ऐसे किए गए मद्यपान आदि का शिला में सिर पटकना या अग्नि में जलने के अतिरिक्त कोई प्रायाश्चित नहीं है। ब्राह्मण को मोह से भी नहीं पीना चाहिए, किसी के अनुरोध से भी नहीं किसी मानसिक अवसाद के कारण भी ब्राह्मण सुरापान नहीं कर सकता॥१५१॥

अर्जनाच्च पराशक्तेर्यमैश्च नियमैरपि।
चान्द्रायणेन कृच्छ्रेण दिनसंख्याकृतेन च।
शुद्ध्यते ब्राह्मणो दोषाद्द्विगुणाद्बुद्धिपूर्वतः॥१५२॥

ब्राह्मण पराशक्ति की अर्चना से, यम, नियमों से सम्यक् पालन से चान्द्रायणव्रत करने से कृच्छ चान्द्रायणव्रत से भी बुद्धिपूर्वक दुगने दोषों से दिनों की अवधि का पालन करते हुए पापमुक्त होना चाहिए॥१५२॥

इति श्री ब्रह्माण्डपुराणे उत्तरखण्डे हयग्रीवागस्त्यसंवादे
ललितोख्याने द्वितीयोऽध्यायः सम्पूर्णः
श्रीमल्ललिताम्बायै नमः पादुकां पूजयामि नमः

॥श्रीमन्महागणाधिपतये नमः।।

श्रीमाताललिताम्बायै नमः श्रीपादुकां पूजयामि नमः ॥
ॐ वन्दे गुरुपदद्वन्द्वं अवाङ्मनसगोचरम्॥
रक्तशुक्ल प्रभामिश्रमतर्क्यं त्रैपुरं महः॥
ॐ आराध्यदेवं भक्तानां कलिदोषविनाशकम्॥
वन्दे श्रीगिरिजानन्दं शारदाश्रीमठाधिपम्।।
ॐ अखण्डं यस्यज्ञानञ्च भक्तिर्यस्यानपायिनी।।
शारदाज्योतिरीशस्य दर्शनं (पूजनं, वन्दनं) शुभमस्तुनः।।

अथ तृतीयोऽध्यायः 58 श्लोकात्मकः

॥बृहस्पतिंप्रति इन्द्रकृतागम्यागमनतत्प्रायश्चित्तादिप्रश्नं॥

इन्द्रः ।। देवगुरु बृहस्पति से इन्द्र के द्वारा ''अगम्यागमन और उसके प्रायश्चित्त के विषय में प्रश्न।। इन्द्र ने जिज्ञासा कीः

अगम्यागमनं किं वा को दोषः का च निष्कृतिः।
एतन्मे मुनिशार्दूल विस्तराद्वक्तुमर्हसि॥1॥

हे मुनिश्रेष्ठ! हे गुरुवर्य!! यह अगम्या याने जो समागम के लिए ग्राह्य नहीं है, यह क्यों है? यदि हो गया तो कौन सा दोष है? और यदि दोष है तो उससे बचने का उपाय क्या है?।।1।।

अगम्यागमनं नाम मातृष्वसृगुरुस्त्रियः।
मातुलस्य प्रिया चेति गत्वेमा नास्ति निष्कृतिः।।2।।

अगम्या जिन्हें कहा गया है वे ये हैं, माता, बहिन, गुरु की पत्नी और मामी इनसे यदि समागम हुआ तो उसका कोई प्रायाश्चित नहीं है।।2।।

मातृसङ्गे तु यदघं तदेव स्वसृसंगमे।
गुरुस्त्रीसंगमे तद्वद्गुरवो बहवः स्मृताः॥3॥

माता के संग जो पाप होगा, वहीं बहिन के साथ भी होगा। और गुरु पत्नी के संग भी वही होगा यह गुरुपद से गुरु बहुत है वह भी जानना जरूरी है।।3।।

ब्रह्मोपदेशमारभ्य यावद्वेदान्तदर्शनम्।
एकेन शिक्ष्यते येन स महागुरुरुच्यते॥4॥

जिनसे ब्रह्मतत्व का उपदेश हुआ अर्थात् जिसे महावाक्यादि का उपदेश (दीक्षा) हुआ हो, इससे लेकर वेदान्तसिद्धान्त का उपदेश हुआ हो, यह उपदेश जिस एक गुरु से होता हो, तो वे

'महागुरु' कहे जाते हैं।।4।।

ब्रह्मोपदेशमेकत्र वेदशास्त्राण्यथैकतः।
आचार्यः स तु विज्ञेयस्तथा नैकास्तु देशिकाः।।5।।

ब्रह्म का उपदेश एक स्थान पर है और वेदशास्त्र एक तरफ अतः वेदशास्त्रों को पढ़ाने वाला आचार्य होता है और एक एक को पढ़ाने वाले को देशिक कहा जाता है।।5।।

गुरोरात्मान्तमेव स्यादाचार्यस्य प्रियागमे।
द्वादशाब्दं चरेत्कृच्छ्रमेकैके तु षडब्दतः।।6।।

गुरु की पत्नी के साथ समागम करने से आत्मा का अन्त ही हो जाता है, तथा आचार्य की प्रियतमा के साथ समागम होने से बारहवर्षों तक कृच्छ्र नामक नरक में अत्यन्त कष्ट उठाना पड़ता है तथा दोनों को स्त्री और पुरुष को छह-छह वर्षों का नरक भोगना पड़ता है।।6।।

मातुलस्य प्रियां गत्वा षडब्दं कृच्छ्रमाचरेत् ।।7।।

मामा की पत्नी (मामी-मातुली) से समागम करने पर छहवर्षों की कृच्छ्रनरक यातना भोगनी पड़ती है।।7।।

ब्राह्मणस्तु सजातीयां प्रमदां यदि गच्छति।
त्रिरात्रोपोषितः शुद्धः प्राणायामशतं चरेत्।।8।।

ब्राह्मण यदि अपनी जाति की ब्राह्मणी से समागम करता है तो वही तीन रात्रियों (अहोरात्र) व्रत करे एवं प्राणायाम करें।।8।।

कुलटां तु सजातीयां द्विरात्राच्छुद्धिमृच्छति।
पञ्चाहात्क्षत्रियां गत्वा सप्ताहाद्वैश्यजामपि।।9।।

यदि ब्राह्मण अपनी ही जाति की कुलटास्त्री से समागम करता है तो वह दो रात्रियों में प्रायाश्चित करके शुद्धि को प्राप्त करता है। यदि क्षत्रियास्त्री से समागम करता है तो पांच दिन में तथा यदि वैश्यस्त्री से समागम करता है तो सात दिन में प्रायश्चित से शुद्ध हो जाता है।।9।।

चक्रीकिरातकैवर्तकर्मकारादियोषितः।
शुद्धः स्याद्द्वादशाहेन पराशक्त्यर्चनेन च ।।10।।

चक्री (कुंभकार), किरात (जंगली निवासी), कैवर्तक (केवट आदि), कर्मकार, बढ़ई, लोहार, ताम्रकार आदि की स्त्रियों से समागमक होता है तो वह बारहदिनों में पराशक्ति की अर्चना से शुद्ध हो जाता है।।10।।

अन्त्यजां ब्राह्मणो गत्वा प्रमादादब्दतः शुचिः ।।11।।

ब्राह्मण यदि असावधानी से अन्त्यजास्त्री से समागम करता है तो एकवर्ष तक प्रायाश्चित करके दोषमुक्त हो जाता है।।11।।

देवदासी ब्रह्मदासी स्वदासी शुद्रदासिका।
दास्यश्चतुर्विधाः प्रोक्ता द्वे चाद्ये क्षत्रियासमे॥12॥

देवदासी, ब्रह्मदासी, स्वदासी (स्वतन्त्रदासी) और शूद्रदासी ये चार दासियां कहीं गई हैं, इनमें आरम्भ की दो दासियाँ देवदासी और ब्रह्मदासी क्षत्रियों की दासी होती हैं।।12।।

अन्या वैश्याङ्गनातुल्या तदन्या हीनजातिवत्।
आत्मदासीं द्विजो गच्छेदुक्तार्थं दोषमाप्नुयात्।।13।।

अन्य दो दासियाँ स्वदासी (स्वतन्त्रदासी) और शूद्रदासी का ये दासियाँ वैश्य की स्त्री के समान तथा उससे अन्य सब हीनजाति समान होती हैं। अपनी दासी से कोई ब्राह्मण द्विज समागम करें तो वह दोष का भागी होता है।।13।।

स्वस्त्रियं पुष्पिणीं गत्वा प्राजापत्यं चरेद्व्रतम्।
द्विगुणेन परां नारीं चतुर्भिः क्षत्रियाङ्गनाम्।।14॥

अपनी रजस्वला स्त्री से यदि कोई ब्राह्मण समागम करे तो उसे प्राजापत्यव्रत करना चाहिये, यदि पराईनारी से समागम करे तो दोगुना प्राजापत्यव्रत करे और यदि क्षत्रियांगना से समागम करता है तो उसे चार गुना प्राजापत्यव्रत करना चाहिए।।14।।

अष्टभिर्वैश्यनारीं च शूद्रां षोडशभिस्तथा।
द्वात्रिंशता संकरजां वेश्यां शूद्रामिवाचरेत्।
प्रायश्चित्तं चरेदेवं नोचेत्स ब्राह्मणाधमः ॥15॥

तथा वहीं पर ब्राह्मण यदि वैश्य रजस्वला नारी से समागम करे तो आठ बार, यदि शूद्रा से करे तो सोलह बार प्राजापत्यव्रत करना चाहिए तथा यदि वर्णसंकरनारी से करे तो जो रजस्वला हो तो बत्तीसबार व्रत करे। वैश्य और शूद्रा रजस्वला के साथ विप्रसमागम करे तो बत्तीसबार व्रत करना चाहिये अन्यथा वह ब्राह्मणाधम कहा जाता है।।15।।

रजस्वलां तु यो भार्या मोहतो गन्तुमिच्छति।
स्नात्वान्यवस्त्रसंयुक्त उक्तार्थेनैव शुद्धयति ॥16॥

अपनी रजस्वला स्त्री से यदि कोई मोहित ब्राह्मण समागम करे तो उसे स्नान कर अन्यवस्त्र धारण कर कहे गए मान से बत्तीसबार आधा अर्थात सोलहबार प्राजापत्यव्रत करना चाहिये।।16।।

उपोष्य दिनमासायं स्नात्वा देवीं प्रपूजयेत्।
तथैवान्याङ्गनां गत्वा तदुक्तार्धं समाचरेत् ॥17॥

तथा घर से बाहर रहकर उस शेष दिन स्नान करके ही कोई कर्म करना चाहिये। उसी तरह अन्यों की रजस्वला स्त्रियों के साथ समागम करे तो उसकी शुद्धि तीन रात्रि घर से बाहर रहने से तथा तब उसका विवाह भी उसी के साथ होना चाहिये।।17।।

पित्रोरनुज्ञया कन्यां यो गच्छेद्विधिना विना।
त्रिरात्रोपोषणाच्छुद्धिस्तामेवोद्वाहयेत्ततः ॥18॥

कन्या के माता पिता की अनुमति के बिना जो व्यक्ति बिना विधि के समागम करे तो उसकी शुद्धि तीनरात्रि तक व्रत करने से होती है और उसे उस कन्या से विवाह भी कर लेना चाहिये।।18।।

कन्यागन्ता तु योऽन्यस्मै दत्तां पश्चात्तु गच्छति।
पित्रोरनुज्ञया सार्धं त्रिदिनेन विशुद्ध्यति ॥19॥

जो अपनी कन्या अन्य को देकर दी हुई को वापस ले लेता है, तो वह माता पिता की अनुमति से आधेदिन तीनदिन (साढ़े तीनदिन) में शुद्ध होता है।।19।।

ज्ञातः पितृभ्यां यो मासं कन्याभावे तु गच्छति।
अन्योढां तां ततो गत्वा प्राणायामशतेन तु ॥20॥

माता पिता के जानते हुए जो उसकी कन्या से एकमास तक समागम करे फिर अन्य विवाहिता से समागम करे तो वह सौप्राणायामरूप प्रायश्चित्त करे।।20।।

एकेन संगतां ज्ञात्वा योऽन्यस्मै संप्रयच्छति।
वृषलः स तु विज्ञेयः सर्वकर्मबहिष्कृतः ॥21॥

एक अन्यपुरुष के साथ जिस स्त्री का संगत हो जाता है, फिर उसी को दूसरे को दे दिया अर्थात जिस कन्या को दूसरे से सम्बन्ध जोड़ा था यह जानकर भी उसको दूसरे को दे देता है तो मनुष्य वृषलप्राणी अत्यन्त नीच माना जाता है। वह सभी कर्मों से बहिष्कृत होता है।।21।।

ज्ञातः पितृभ्यां यो गत्वा परोढां तद्विनाशने।
विधवा जायते नेयं पूर्वगन्तारमाप्नुयात् ॥22॥

माता पिता के जानते हुए जो व्यक्ति पराईस्त्री से समागम करे और फिर वह मर जाये तो उसके घर वह स्त्री विधवा होती है, वह पूर्व समागम करने वाले प्राप्त नहीं होगी। अर्थात् उस समागमकर्ता की ही पत्नी मानी जानी चाहिये-यह भाव भी हो सकता है, कि माता पिता की जानकारी पर विधवा नहीं होती वह पूर्व समागमकर्ता की ही पत्नी मानी जायेगी।।22।।

अनुग्रहाद्विजातीनामुद्वाहविधिना ततः।
तया कर्माणि कुर्वीत श्रौतस्मार्तादिकानि च॥23॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन द्विजातियों के अनुग्रह से विवाह विधि से विवाही गई विवाहिता और (वेदोक्त) स्मार्त (स्मृति धर्मशास्त्र) आदि समाजग्राह्य विधिविधानयुक्त कर्म करने चाहिए।।23।।

आदावुद्वाहिता वापि तद्विनाशेऽन्यसंगता।
भोगैकसाधना सा तु न योग्याखिलकर्मसु॥24॥

जो स्त्री पहिले विवाहित हो और विवाहित होते ही उसका पति मर जाय, तो पिता उसे अन्य पुरुष को प्रदान कर देता है, तो केवल गर्हस्थ्यधर्म की अधिकारिणी नहीं होती अर्थात् वह पूजापाठादि कार्यों में पत्नी का पद का निर्वाहन नहीं कर सकती।।24।।

पिपीलिकान्तं ब्रह्माद्यं जगत्स्थावरजंगमम्।
पञ्चभूतात्मकं प्रोक्तं चतुर्वासनयान्वितम्।
जन्माद्याहारमदननिद्राभीत्या च सर्वदा॥ 25॥

हे इन्द्र! यह जगत् जो दिख रहा है, यह ब्रह्मा से लेकर चींटी तक जड़ चेतनमय है, इसमें चार वासनाएं सृष्टि के आरम्भ से अनवरत चली आ रही हैं वे ये हैं - पहिले प्राणी का जन्म होता है, फिर आहार फिर मैथुन, फिर निद्रा और भय सर्वदा सभी प्राणियों में रहता है (आहारनिद्रा भय मैथुनञ्च समान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम्। धर्मो हि तेषामधिकोविशेषो धर्मेणहीनाः पशुभिःसमानाः)।।25।।

आहारं न विना जन्तुराहारो मदनः स्मृतः।
दुःसहो मदनस्तस्मात्सर्वेषां प्राणिनामपि॥ 26॥

आहार सभी प्राणियों के अनिवार्य है (देवप्रतिष्ठा में भी मूर्ति में आचार्य मन्त्र प्रतिष्ठा के तत्काल ही मूर्ति में नेत्रोन्मीलन कर दर्पण और भोग सामने रखता है।) आहार करने पर उस प्राणी में शरीरपोषण के साथ मनोवृत्ति में भोगेच्छा का तीव्रप्रवाह बहना आरम्भ हो जाता है, उसी से मदन याने विपरीत पात्र में संगम, यह संगम प्रेरणा बड़ी दुर्वार एवं दुःसह होती है यह समस्त प्राणियों में होता है, जगत् में धर्म मर्यादाओं का उल्लंघन इसी से होता आया है।।26।।

पुंनारीरूपवत्कृत्वा मदनेन स विश्वसृट्।
प्रवृत्तिमकरोदादौ सृष्टिस्थितिलयात्मिकाम् ॥27॥

विश्व का सृजन करने वाले ब्रह्मा ने जगत् में दो रूप रखा। एक पुरुष एक नारी सृष्टिआरम्भ में ब्रह्मा के अंगों से तथा मन से सांकल्पिक सृष्टि में सनकादि ऋषिगण, मरीच्यादिऋषिगण तथा नारद दक्षादि प्रकट हुए, कालान्तर में ब्रह्मा मैथुनीसृष्टि के लिये अपने दाहिनेअंग से मनु और

वामअंग से शतरूपा को प्रकट किया, इन्हीं दो से मैथुनीसृष्टि का क्रम अनादिकाल से चल रहा है, वह सृष्ट्यात्मक है, पालनात्मक है और संहारात्मक है।।27।।

तत्प्रवृत्त्या प्रवर्तन्ते तन्निवृत्त्याऽक्षयां गतिम्।
प्रवृत्त्यापि तथा मुक्तिर्निवृत्त्या या समीरिता।।28।।

उस मदन कामदेव के प्रवृत्त होने पर संसार प्रवृत्त होता है और सृष्टिप्रक्रिया बढ़ती जाती है और सृष्टि का साथ ही पालन भी होता है, क्योंकि सन्तानोत्पत्ति के बाद मैथुनासक्ति के कारण स्त्री पुरुष का एक दूसरे मिलना साथ रहना बना रहता है, यदि यह मैथुनीआसक्ति नहीं होती तो बच्चा पैदा करने के एक बार के बाद एक दूसरे से कोई सम्बन्ध नहीं रखते तब इस मदनप्रवृत्ति का समाप्ति अर्थात प्रलय हो जाता है। जो अक्षय है अवश्यम्भावी है।।28।।

तद्रहस्यं तथोपायं शृणु वक्ष्यामि सांप्रतम्।
सर्वात्मको वासुदेवः पुरुषस्तु पुरातनः ।।29।।

इस काममयसृष्टि का रहस्य और उस उपाय को इस समय मैं बताऊंगा अर्थात् इस दुर्जय मदनप्रवृत्ति से कैसे जिन बुद्धिमानों ने निवृत्ति प्राप्त की है उसके उपाय को मैं बताऊंगा ऐसा बृहस्पति ने इन्द्र से कहा वह रहस्य यह है-भगवान् वासुदेव सर्वात्मक है अर्थात् चराचरजगत् में वह आत्मतत्त्व वासुदेव व्याप्त है, वासुदेव शब्द का अर्थ ही यह है कि वासु-सर्वत्र जड़ चेतन में व्याप्त देवः ज्योति, प्रकाशरूप आत्मा (ईशावास्यमिदंसर्वंजगत्यां जगत्ः) वह वासुदेव पुरातन पुरुष है, पूरेप्राणिनांहृदयेशेते इति पुरुषः ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठतीति और ''सर्वंखल्विदं ब्रह्म नेहनानास्ति किञ्चन'' वेदशास्त्रों में तथा अनुभूतियों में सिद्ध है।। 29।।

इयं हि मूलप्रकृतिर्लक्ष्मीः सर्वजगत्प्रसूः।
पञ्चपञ्चात्मप्रतृप्त्यर्थं मथनं क्रियते तराम्।। 30।।

तथा यह मूलप्रकृति लक्ष्मी है जो वासुदेव की शक्ति है, जो समस्त संसार की जननी है। पांचों तत्त्व पांचों की आत्मतृप्ति के लिए आपस में यत्किञ्च करते हैं अर्थात् वेदान्त प्रतिपादित पंचमहाभूतों का परस्पर में पञ्चीकरण होने पर प्राप्तशरीर में जीव और ईश्वर प्रतिष्ठित है, उनमे जीवभोक्ता होता है और ईश्वर उसका साक्षी होता है ये सृष्टि और स्थिति तथा संहार सभी का अनुभव करते हैं।।30।।

एतन्मन्त्रानुभावाभ्यां मथनं क्रियते यदि।
तावुभौ पुण्यकमाणौ न दोषो विद्यते तयोः ।।31।।

यह जो स्वाभाविक मदनप्रवृत्ति समागम प्रवृत्ति है, जो पंचीकृत पंचभूतात्मक त्रिविधशरीर

(स्थूल, सूक्ष्म और कारण) सम्पन्न होती आ रही है। जड़ चेतन अर्धचेतनमयजगत् में इसमें यदि ज्ञानियों के आत्मवेत्ताओं के अनुभवों से मन्त्रों के द्वारा और मन्त्रों के अनुभावन द्वारा मन्थन होता है तो वे दोनों ही स्त्री-पुरुष पुण्यकर्मा माने जाते हैं। शास्त्र और देवगण तथा पितृगण भी उस मदनक्रियाजन्यसंतति को वैध मानते हैं। अर्थात् उस प्राकृतिक मदनप्रवृत्ति के स्थूलरूप समागम में मन्त्र तथा यन्त्र का प्रभाव नहीं किया गया है। तो पशुप्रवृत्ति में कोई अन्तर नहीं है। इस स्वाभाविकप्रवृत्ति से कल्याण किस प्रकार हो सकता है। यही रहस्य है।।31।।

इयमम्बा जगद्धात्री पुरुषोऽहं सदाशिवः।
पञ्चविंशतितत्त्वानां प्रीतये मथ्यतेऽधुना॥32॥

यह जगद्धात्री जगज्जननी अम्बा है और पुरुष सदाशिव हैं। पाँचों तत्त्वों के आपस गुणित होने पर पच्चीसतत्त्वों की प्रीति के लिए यह समागमरूपप्रक्रिया होती है, प्रार्थना में कहा जाता है (परस्पर तपः संपत् फलायित परस्परौ। प्रपंचमातापितरौ प्रांचौ जायापती स्तुमः।।)।।32।।

एतन्मंत्रानुभावाभ्यां मथनं क्रियते यदि।
तावुभौ पुण्यकर्माणौ न दोषो विद्यते तयोः॥33॥

यह श्लोक 31वें नम्बर पर आया हुआ है दूसरी बार प्रमाद से मुद्रित हुआ है, इसकी व्याख्या 31वें श्लोक में हो गई है।

इदं च शृणु देवेन्द्र! रहस्यं परमं महत्।
सर्वेषामेव पापानां यौगपद्येन नाशनम्॥34॥

देवगुरु बृहस्पति ने इन्द्र से कहा, कि देवेन्द्र परममहत्त्वशाली यह रहस्य तुम सुनो - यह सभी पापों को नष्ट करने वाला है- एक साथ ही यह अपने अलौकिक प्रभाव से पापों को निष्फल कर देता है।।34।।

भक्तिश्रद्धासमायुक्तः स्नात्वान्तर्जलसंस्थितः।
अष्टोत्तरसहस्रं तु जपेत्पञ्चदशाक्षरीम्।
आराध्य च परां शक्तिं मुच्यते सर्वकिल्विषैः॥35॥

भक्ति (पूर्ण समर्पण भाव) श्रद्धा (संशय रहित अन्तःकरण प्रवृत्ति) से पूर्णतया मन, वचन, कर्म से युक्त होकर, स्नान करके जल में (जानुपर्यन्त या नाभि पर्यन्त) स्थित होकर पन्द्रहअक्षरों वाले मन्त्र का एक हजार आठ बार जप करें और भगवती की आराधना करें तो मनुष्य सभी किल्विषों से पिछले कोटीजन्मों तक किए गए पापों से मुक्त हो जाता है।।35।।

तेन नश्यन्ति पापानि कल्पकोटिकृतान्यपि।
सर्वापद्भ्यो विमुच्येत सर्वाभीष्टं च विन्दति॥36॥

भगवती के पंचदशीमन्त्र से करोड़ों जन्मों में किये गए पापसमूह समूल नष्ट हो जाते हैं और वह सभी आपत्तियों से बच जाता है तथा समस्तअभीष्टों को प्राप्त कर लेता है, सफलजीवन वाला हो जाता है।।36।।

"अयोग्य वस्तु विचार, न खाने योग्य वस्तु का विचार"

देवराज इन्द्रः देवगुरु बृहस्पति जी से बोलेः-

भगवन्सर्वधर्मज्ञ सर्वभूतहिते रत।
संयोगजस्य पापस्य विशेषं वक्तुमर्हसि॥ 37॥

हे भगवन्! आप सभी धर्मों के ज्ञाता है, तथा समस्त प्राणियों के हितचिन्तन में तत्पर रहते हैं। मैं संयोग - मेल से होने वाले पापों के विषय में विशेषरूप से कारण जानना चाहता हूं, आप रहस्यविद हैं। कृपया वह मुझे बतावें।।37।।

तब बृहस्पति बोले-

॥ संयोगजं तु यत्पापं तच्चतुर्धा निगद्यते॥ 38॥

संयोग से उत्पन्न होने वाला जो पाप है, वह चार प्रकार का कहा गया है।।38।।

कर्ता प्रधानं सहकृन्निमित्तोऽनुमतः क्रमात्।
क्रमाद्दशांशतोऽधं स्याच्छुद्धिः पूर्वोक्तमार्गतः।।39॥

वे चार प्रकार इस प्रकार हैं 1. प्रधानकर्ता, 2. सहकारी, 3. निमित्त, 4. अनुमत, इनका दशभाग का योग होता है, जैसे कि संयोगज पाप में करने वाला प्रधान है, वह जिस अंश का है, उसके दसवें अंश के पाप का भागी पाप में सहयोग करने वाला होता, उसके दसवें भाग का भोक्ता वह होता है, जिसके लिए वह पाप किया गया है, तथा जिसने उस पाप को करने की अनुमति दी, वह निमित्त के दसवें भाग का भागी होता है, इस प्रकार क्रम से प्रत्येक एक के बाद दूसरे दस अंश में अंश के पाप का भागी होता है, अर्थात इन कार्यों को करने वाला जितने पाप का भी भागी होता है, उसके दसवें भाग का भागी उस कार्य का सहयोगी होता है, तथा जिसके लिए वह कार्य किया गया है, वह सहयोगी के दसवें भाग का भागी होता है तथा जिसने उस काम की अनुमति दी है वह भी सहयोगी के दसवें भाग का भोगी होता है तथा उस पाप से शुद्धि पूर्वमार्ग के करनी चाहिये।।39।।

मद्यं कलञ्जं निर्यासं छत्राकं गृञ्जनं तथा।
लशुनं च कलिङ्गं च महाकोशातकी तथा।।40॥

मद्य (शराब), कलञ्ज (मांस), निर्यास (पौधों का अर्क) छत्राक (कुकुरमुत्ता), गृञ्जन (गाजर, गांजा), लशुन (लहसुन) कलिंग और महाकोशातकी।।40।।

विम्बी लिङ्गी कैरवं च हस्तिनी शिग्रुबिम्बिका।
औदुम्बरं च वार्ताकं कतकं बिल्वमारिका ॥41॥

बिंबी (कुंदरू), कैरव (कुकुरमुत्ता), हस्तिनी (गन्धद्रव्य) शिशुलम्बिका (जलजन्तु), औदुम्बर (गूलर), वार्ताक (बैंगन), कतक (रीठा), बिल्वमल्लिकन्या बिल्वमारिका ।।41।।

क्रमाद्दशगुणान्यूनमघमेषां विनिर्दिशेत्।
ब्रुवग्रामाङ्ग वेश्याङ्ग वेश्योपायनविक्रयी ॥42॥

इन सबको खाने के क्रमशः दसगुना कम पाप होता है।। नगर अथवा ग्राम के अंग को बेचने वाला वैश्य के अंश और वैश्य के उपहारों को बेचने वाला।।42।।

सेवकः स्वपुरस्थश्च कुग्रामस्थोऽभिशस्तकः ।
वैद्यो वैखानसः शैवो नारीजीवोऽन्नविक्रयी ॥43॥

नगरस्थ, सेवक, कुग्रामस्थ (असभ्य लोगों के गांव में रहने वाला) अभिशस्तक (दूसरों की निंदा करने वाला) वैद्य, तपस्वी, शैव नारी जीव, अन्न बेचने वाला।।43।।

शस्त्रजीवी परिव्राट् च वैदिकाचारनिन्दकः।
क्रमाद्दशगुणान्यूनमेषां पक्वोदने भवेत्।
स्वतण्डुलं वा तैः क्लृप्तमुक्तार्थ पापमादिशेत् ॥44॥

शस्त्र बनाकर बेचने वाला और जीविका चलाने वाला, संन्यासी-वैदिक आचार्य की निन्दा करने वालो इनके पकाए अन्न को खाने वाला क्रमशः दस गुना पाप कम होता है। अपना स्वयं का तण्डुल या उन लोगों से लिए गए तण्डुल से कहा गया आधा पाप होता है- यह निर्देश करें।।44।।

ब्रह्मक्षत्रविशां चैव सच्छूद्राणां यदोदनम्।
तैलपक्वमदृष्टं च भुञ्जन्पादमघं भवेत्॥45।।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों का और सच्छूद्रो (सुनार, लोहार, बढ़ई, तमेरादि) का ओदन, तैल से पकाता इन लोगों से देखा गया न देखा गया खाया जाता है,तो एक चौथाई पाप होता है।।45।।

द्विजन्मदासीक्लृप्तं च तया दृष्टे तदर्धकम्।
वेश्यायास्तु त्रिपादं स्यात्तया दृष्टे तदोदने॥46।।

ब्राह्मण का अपनी दासी का पकाया अन्न तथा उसके द्वारा देखा गया अन्न ग्रहण करने से आधा पाप होता है। वैश्या का अन्न ग्रहण करने से तीन गुना पाप होता है, या वेश्या द्वारा वह ओदन देख लिया गया हो।।46।।

शूद्रवत्स्याच्च गोपान्नं विना गव्यचतुष्टयम्।
तैलाज्यगुडसंयुक्तं पक्कं वैश्यान्न दुष्यति ।।47।।

शूद्र के अन्न के समान गोपा (गाय पालने वाली ग्वालिन) का अन्न होता है उस पाप को चार गव्य अर्थात गोबर को छोड़कर दूध, दही, गोधृत और मूत्र द्वारा दूर किया जा सकता है। तेल, घी और गुड़ से युक्त पकाया गया अन्न वैश्यस्त्री से दुष्ट नहीं होता।।47।।

वेश्यावद्ब्राह्मणी भ्रष्टा तया दृष्टे न किंचन।
ब्रुवस्यान्नं द्विजो भुक्त्वा प्राणायामशतं जपेत् ।।48।।

वेश्या के समान जो ब्राह्मणी भ्रष्ट है, उसके द्वारा देखे गए अन्न को न लें, वह भी दोषयुक्त हो गया है, जिस की जाति का पतन हो तथा स्वयं को ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्य कहता हो, उसका अन्न खाकर ब्राह्मण सौ प्राणायाम करें।।48।।

अथवान्तर्जले जप्त्वा त्रिपदां वा त्रिवारकम्।
इदं विष्णुत्र्यम्बकं वा तथैवान्तर्जले जपेत्।।49।।

अथवा जल में मध्य में गायत्रीजप तीन बार करें या 'इदं विष्णु' मंत्र या 'त्र्यम्बकं यजामहे' उसी जल के मध्य में जप करे।।49।।

स्त्री भुक्त्वा तु ब्रुवस्यान्नमेकाद्यान्भोजयेद्विजान्।
उपोष्य रजनीमेकां ततः पापाद्विशुद्धयति ।।50।।

यदि स्त्री ब्रुव (किसी अज्ञातजाति वाला) का अन्न खाकर किसी अन्य ब्राह्मण को खिलावे तो आपत्काल में दोष नहीं लगता तथा वह एकरात्रि उपवास करके पाप से रहित विशुद्ध हो जाता है।।50।।

अथवा प्रोक्षयेदन्नमब्लिङ्गैः पावमानिकैः ।।51।।

अथवा पावमानसूक्तों से जल में किये जाने वाले सूक्तों से उस अन्न का प्रोक्षण कर ले।।51।।

अन्नसूक्तं जपित्वा तु भृगुर्वै वारुणीति च।
ब्रह्मार्पणमितिश्लोकं जप्त्वा भुक्त्वा न दोषभाक्।।52।।

अन्नसूक्त का जप कर या भृगुसूक्त वारुणीमन्त्र का जप करे तथा ब्रह्मार्पणम् इस श्लोक का जप कर, खाकर दोषयुक्त नहीं होता।।52।।

इदं विष्णुरिति मन्त्रेण सप्तवाराभिमन्त्रितम्।
सोऽहंभावेन तद्ध्यात्वा भुक्त्वा दोषैर्न लिप्यते।।53।।

इदं विष्णुविचक्रमे इस मन्त्र से सातबार अभिमन्त्रित अन्न को सोऽहंभाव से ग्रहण करने पर किसी भी दोष से लिप्त नहीं होता।।53।।

अथवा शङ्करं ध्यायेज्जप्त्वा वै त्र्यम्बकं तथा।
सोहंभावेन तद्भुक्त्वा नान्नदोषैः प्रलिप्यते॥54॥

अथवा भगवान शंकर का ध्यान करें और त्र्यम्बकमंत्र का जप करे तथा सोऽहंभाव से अन्न को ग्रहण करे तो अन्न दोषों से लिप्त नहीं होगा।।54।।

एवमुक्तप्रकारेण प्रायश्चित्तं समाचरेत्।
इदं रहस्यं देवेन्द्र शृणुष्व वचनं मम॥55॥

इस प्रकार अनेकप्रकार के प्रायश्चित विधानों को हमने तुम्हें बताया सबके अन्त में हे देवेन्द्र! वह अतिरहस्य तुम सुनो।।55।।

ध्यात्वा देवीं परां शक्तिं जत्वा पंचदशाक्षरीम्।
तन्निवेदितबुद्ध्या तु योऽश्नाति प्रत्यहं द्विजः॥56॥

साधक भक्त उस पराशक्ति देवी जगज्जननी का ध्यान करें और उनके परमदुर्लभ अमोघ पंचदशी मन्त्र का सद्गुरु से दीक्षा लेकर जप करे सभी उपभोग्य वस्तुएं उन्हें अर्पित बुद्धि से ग्रहण करें यह प्रतिदिन का नियम करें।।56।।

नचास्य दोषजं किंचिन्न दारिद्र्यभयं तथा।
न व्याधिजं भयं तस्य न च शत्रुभयं तथा।
जपतो मुक्तिरेवास्य सदा सर्वत्र मङ्गलम्॥57।।

उन भगवती के ध्यान से पंचदशी मन्त्रजप के प्रभाव से किंचिन्मात्र दरिद्रता (दुर्गति) का भय नहीं रहता, न आधि (मानसिकरोग) व्याधि (शारीरिक रोग) का भय रहता, शत्रुओं का भय भी नहीं रहता-इसके जप से प्रभाव से एवं भगवती की कृपा से संसारबन्धन से मुक्त हो जाता है, सदैव सभी जगह मङ्गल की प्राप्ति अनुभूति होती रहती है।।57।।

एतत्ते कथितं शक्र पापानामपि विस्तरम्।
प्रायश्चित्तं तथा तेषां किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि।।58।।

हेदेवराजइन्द्र! हमने समस्तपापों का विस्तार, उनके कारण आदि सभी विस्तार से से तुम्हें बताया है, साथ ही उनके विविध प्रायश्चित भी तुम्हें बता दिया है एवं सर्वकल्याण जगदम्बा की शरणागति में जाने की बात भी बता दी है-अब और क्या तुम सुनने की इच्छा रखते हो।।58।।

इति श्री ब्रह्माण्डपुराणे उत्तरखण्डे हयग्रीवागस्त्य संवादे ललितोपाख्याने तृतीयोऽध्यायः सम्पूर्णः 'जगदम्बिकार्पणमस्तु' इति श्रीब्रह्माण्डपुराणे उत्तरखण्डे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

॥श्रीमन्महागणाधिपतये नमः।।

श्रीमाताललिताम्बायै नमः श्रीपादुकां पूजयामि नमः॥
ॐ वन्दे गुरुपदद्वन्द्वं अवाङ्मनसगोचरम्॥
रक्तशुक्ल प्रभामिश्रमतर्क्यं त्रैपुरं महः॥
ॐ आराध्यदेवं भक्तानां कलिदोषविनाशकम्॥
वन्दे श्रीगिरिजानन्दं शारदाश्रीमठाधिपम्।।
ॐ अखण्डं यस्यज्ञानञ्च भक्तिर्यस्यानपायिनी।।
शारदाज्योतिरीशस्य दर्शनं (पूजनं, वन्दनं) शुभमस्तुनः।।

[इन्द्रेण बृहस्पतिंप्रति स्वीयदौर्भाग्यप्रतीकारप्रश्नः ॥]

इन्द्र के द्वार बृहस्पति से अपने ऊपर आये दुर्भाग्य के प्रतीकार विषयक प्रश्न।। इन्द्र बोले

भगवन्सर्वधर्मज्ञ त्रिकालज्ञानवित्तम।
दुष्कृतं च प्रतीकारं भवता सम्यगीरितम्॥1॥

हे भगवन! आप सभी धर्मों के ज्ञाता है, आप त्रिकाल को जानने वालों में श्रेष्ठ हैं। आपने दुष्ट कृत्यों का प्रतीकार कैसा होना चाहिये यह सम्यक् प्रकार से कहा।।1।।

केन कर्मविपाकेन ममापदियमागता।
प्रायश्चित्तं च किं तस्य वदस्व वदतां वर॥2॥

मुझ में यह आपत्ति आई है वह किस कर्म के फलपरिपाक से आई है। इसका प्रायश्चित्त क्या और कैसा हो सकता है, हे बोलने वालों में श्रेष्ठ। कृपा कर मुझे विस्तार से बतावें।।2।।

बृहस्पतिः ॥

कश्यपस्य सुतो जज्ञे दित्यां दनुरिति स्मृतः।
कन्या रूपवती नाम धात्रे तां प्रददौ पिता॥3॥

श्रीबृहस्पति बोलेः पुराकाल में कश्यपपुत्र काश्यप ने दिति नामक अपनी पत्नी से दनु नामक पुत्र को जन्म दिया था और उन पिता ने दनु को रूपवती कन्या प्रदान किया था।।3।।

तस्याः पुत्रस्ततो जातो विश्वरूपो महाद्युतिः।
नारायणपरो नित्यं वेदवेदाङ्गपारगः॥4॥

उस रूपवती पत्नी से विश्वरूप नामक महातेजस्वी पुत्र हुआ वह भगवान नारायण की सेवा में लीन रहता था और वेद, वेदांगों में पारंगत था।।4।।

ततो दैत्येश्वरो वव्रे भृगुपुत्रं पुरोहितम्।
भवानपि कृतो राज्ये देवानामपि वासवः॥ 5॥

उसके बाद उस दैत्येश्वर विश्वरूप ने भृगुपुत्र शुक्राचार्य से कहा कि आपके द्वारा राज्य पर अधिकार किया गया है तथा उस पर देवराजइन्द्र राज कर रहे हैं।।5।।

भवता सह देवैस्तु पौरोहित्यार्थमादरात्।
प्रार्थितो विश्वरूपस्तु बभूव तपतां वरः॥6॥

कालान्तर में आपके साथ देवों ने आदरपूर्वक पौरोहित्य के लिए विश्वरूप से प्रार्थना की वे विश्वरूप तपस्वियों में श्रेष्ठ थे।।6।।

स्वस्रीयो दानवानां तु देवानां च पुरोहितः ।
नात्यर्थमकरोद्वैरं दैत्येष्वपि महातपाः ॥7॥

तब दानवों के भांजे और देवों के पुरोहित ने कहा कि आपस में वैर नहीं करना चाहिए।।7।।

बभूवतुस्तुल्यबलौ तदा दैत्येन्द्रवासवौ।
ततस्त्वं कुपितो राजन्स्वस्रीयं दानवेशितुः॥8॥

यह सुनकर राजन्! तुमने क्रोधित होकर दानवों के स्वामी अपने भांजे विश्वरूप को, क्योंकि विश्वरूप ने कहा था कि इस समय दैत्येन्द्र और इन्द्र दोनों ही समानबल वाले हैं, इसलिये वैर उचित नहीं है, मारने के लिए मन में निश्चय किया।।8।।

हन्तुमिच्छन्नगाश्चाशु तपसः साधनं वनम्।
तमासनस्थं मुनिभिस्त्रिशृङ्गमिव पर्वतम्॥9॥

मन में यह निश्चय करके शीघ्र ही वन को तपस्या का साधन बनाया उसे (विश्वरूप को) मुनियों से घिरे आसन में बैठे तीन श्रृङ्गोंवाले पर्वत के समान देखा।।9।।

त्रयीमुखरदिग्भागं ब्रह्मानन्दैकनिष्ठितम्।
सर्वभूतहित तं तु मत्वारेरनुकूलिनम्॥10॥

तीन दिशाओं में मुखर होते हुए ब्रह्मानन्द में एकाग्र निष्ठावान समस्त भूतप्राणियों के हितचिन्तक उस विश्वरूप को अपना शत्रु माना।।10।।

शिरांसि यौगपद्येन छिन्नान्यस्य त्वयैव तु।
तेन पापेन संयुक्तः पीडितश्च मुहुर्मुहुः॥11॥

तुमने एक साथ ही उसके तीनों सिरों को काट दिया। उसी पाप से आप घिरे हुए हो और बारबार पीड़ित हो रहे हो।।11।।

ततो मेरुगुहां गत्वा बहून्यब्दानि संस्थितः।
ततस्तस्य वधं श्रुत्वा धाता तु मुनिवाक्यतः॥12॥

इसके अनन्तर मेरू पर्वत की गुफा में अनेकों वर्षों तक तुम रहे। यहाँ विश्वरूप के वध का समाचार मुनि से धाता पिता ने सुना, वे शोक से पीड़ित हो गए और उन्होंने।।12।।

पुत्रशोकेन संतप्तस्त्वां शशाप रुषान्वितः।
निःश्रीको भवतु क्षिप्रं मम शापेन वासवः॥13॥

धाता ने पुत्रशोक से पीड़ित होकर संतप्त होते हुए तुमको शाप दिया, कि तुम शीघ्र ही श्री रहित हो जाओ।।13।।

अनायकास्ततो देवा विषण्णा दैत्यपीडिताः।
गत्वा तु ब्रह्मसदनं नत्वा तद्वृत्तमूचिरे॥14॥

इन्द्र के श्रीरहित हो जाने से समस्त देवगण नायक रहित हो गए और स्वर्ग में दैत्यों के आक्रमण होने लगे। इनसे पीड़ित होकर देवगणों ने ब्रह्मा जी से इस विपत्ति का निवेदन किया।।14।।

ततस्तु चिन्तयामास तदधस्य प्रतिक्रियाम्।
तस्य प्रतिक्रिया वेत्तुं न शशाकात्मभूस्तदा॥15॥

इस विपत्ति का समाचार सुनकर बड़े चिन्तित हुए आत्मभूस्वयम्भूब्रह्मा इसका प्रतीकार नहीं जान सके।।15।।

ततो देवैः परिवृतो नारायणमुपागमत्।
नत्वा स्तुत्वा तु सर्वज्ञस्तद्वृत्तान्तं व्यजिज्ञपत्।।16।।

ब्रह्मा जी के प्रतिकार न कर सकने पर वे देवों से घिरे हुए भगवान नारायण के पास गए। उन्हें नमस्कार कर एवं स्तुति करके सभी वृत्तान्त कह सुनाया।।16।।

विचिन्त्य सोऽपि बहुधा कृपया लोकनायकः।
तदघं तु त्रिधा भित्त्वा त्रिषु स्थानेष्वथार्पयत्॥17॥

उन लोकनायक भगवान विष्णु ने कृपापूर्वक सभी प्रकार से घटनाक्रमों के विषय में विचार कर यह विधान किया कि उस विश्वरूप के तीनों सिरों के उच्छेद से जो ब्रह्महत्यारूप पाप उदित हुआ था, उसे तीन भागों में विभाजित कर तीन स्थानों में डाल दिया।।17।।

स्त्रीषु भूम्यां च वृक्षेषु तेषामपि ददौ वरम्।
सदा भर्तृसमायोगं पुत्रावाप्तिमृतुष्वपि॥18॥

उस ब्रह्महत्यारूप पाप के तीन भाग किये, उन्हें तीन स्थानों में बांट दिया गया। 1 भाग स्त्री के

ऋतुमति होने पर, 2 भाग-भूमि में, 3 भाग वृक्षों में। प्रथमभाग स्त्री के ऋतुमति होने पर पति के संयोग होने पर पुत्र की प्राप्ति (सन्तान याने पुत्र या पुत्री) होती है अर्थात वह ब्रह्महत्या का पाप भी वंशवृद्धि में सहायक होता है।।18।।

छिन्ने पुनर्भवत्वं च सर्वेषामपि शाखिनाम्।
खातपूर्तिं धरण्याश्च प्रददौ मधुसूदनः॥19॥

वृक्षों में गोंद निकलती है वह यही दी गई ब्रह्महत्या का रूप है। तथा पृथ्वी में हुए गड्ढों का भरना अपने आप कालान्तर में होना, इस तरह मधुसूदन भगवानविष्णु ने पालनरूप कार्य सम्पन्न किया।।19।।

तेष्वधं प्रबभूवाशु रजोनिर्यासमूपरम्॥20॥

उन स्त्रियों में मासिक रजोधर्म, वृक्षों में गोंद का निकलना तथा भूमि में हुए गड्ढों को पुनः भरकर उपयोगी हो जाना। इस तरह नाश की जगह पालनरूप स्थिति का स्थान सृष्टि में हो गया। जो अभी तक चला आ रहा है।।20।।

निर्गतो गह्वरात्तस्मात्तदेन्द्रो देवनायकः।
राज्यं श्रियं च संप्राप्तः प्रसादात्परमेष्ठिनः॥21॥

ब्रह्महत्या के तीन भागों में बंट जाने पर देवनायक इन्द्र उस गड्ढे में से, जिसमें छिपा हुआ था, निकल आया। तथा भगवान परमेष्ठि के प्रसाद से अनुग्रह से पुनः राज्य और लक्ष्मी को प्राप्त कर लिया।।21।।

तेनैव सान्त्वितो धाता जगाद च जनार्दनम्।
मम शापो वृथा न स्यादस्तु कालान्तरे हरे॥22॥

तब शान्त हुए ब्रह्मा ने जनार्दन भगवान् से कहा कि मेरा शाप वृथा न हो कालान्तर में हे मुने।।22।।

भगवांस्तद्वचः श्रुत्वा धातुस्त्वमिततेजसः।
प्रहृष्टो भाविकार्यज्ञस्तूष्णीमेव तदा ययौ॥23॥

अब अमिततेजस्वी मुनि धाता के उन वचनों को भगवान ने सुना और सुनकर भविष्य में होने वाले कार्यों को जानने वाले भगवान प्रसन्न होकर चले गए।।23।।

एतावन्तमिमं कालं त्रिलोकीं पालयन्भवान्।
ऐश्वर्यमदमत्तत्वात्कैलासाद्रिमपीडयत्॥24॥

बृहस्पति इन्द्र से बोले, कि इतने समय तक तीनोंलोकों का पालन करते हुए आपने ऐश्वर्यमद से

उन्मत होकर कैलाशपर्वत को पीड़ित कर दिया।।24।।

सर्वज्ञेन शिवेनाथ प्रेरितो भगवान्मुनिः।
दुर्वासास्त्वन्मदभ्रंशं कर्तुकामः शशाप ह॥25॥

सर्वज्ञ भगवान् शिव ने ही उन तेजस्वी मुनि दुर्वासा को तुम्हारे ऐश्वर्यमद को नष्ट करने भेजा, उसके बाद दुर्वासा ने तुम्हें श्रीभ्रष्ट होने का शाप दे दिया।।25।।

एकमेव फलं जातमुभयोः शापयोरपि।
अधुना पश्य निःश्रीकं त्रैलोक्यं समजायत॥26॥

तुम्हे जो ब्रह्महत्या पाप लगा तथा तुम श्रीहीन हुए, ये जो दो शाप हैं, उनका एक ही फल हुआ, यह तुम देखों यह त्रिलोकी भी श्रीरहित हो गई है।।26।।

न यज्ञाः संप्रवर्तन्ते न दानानि च वासव।
न यमा नापि नियमा न तपांसि च कुत्रचित्।।27।।

हे इन्द्र! त्रिलोकी में न यज्ञों का समायोजन हो रहा है, न ही दान धर्म का पालन हो रहा है, कहीं भी मनुष्य न यमों का (ब्रह्मचर्य, अस्तेय, अपरिग्रह, अहिंसा, सत्य) पालन कर रहे हैं और न ही नियमों का (शौच, ब्राह्य, शुद्धि, आन्तरिक पवित्रता, सन्तोष, तप, स्वाध्यायों) का पालन हो रहा है।।27।।

विप्राः सर्वेऽपि निःश्रीका लोभोपहतचेतसः।
निःसत्वा धैर्यहीनाश्च नास्तिकाः प्रायशोऽभवन्।।28।।

सभी पढ़े-लिखे विप्रब्राह्मण तेजोरहित हो गए हैं, लोभवृत्ति से उनका अन्तःकरण दूषित हो गया है, आत्मतेज से रहित हो गए हैं और धैर्यरहित आतुरस्वभाव के नास्तिक, (नास्तिवेदः, नास्तिदिष्ट, परलोकःइति मतिनास्तिकः।) हो गए हैं। उदरंभरप्रवृत्ति के हो गए हैं।।28।।

निरौषधिरसा भूमिर्निर्वीर्या जायतेतराम्॥29॥

भूमि में अन्नादि औषधी तथा औषधियां रसरहित हो गई हैं। भूमि में कृषि उत्पादन क्षमता समाप्त हो गई है।।29।।

भास्करो धूसराकारश्चन्द्रमाः कान्तिवर्जितः।
निस्तेजस्को हविर्भोक्ता मरुद्धूलिमयाकृतिः॥30॥

सूर्य की किरणों में वह दोषनिरोधकशक्ति कम हो गई हैं, चन्द्रमा की चांदनी में वह आहलादकता नहीं रह गई हैं, यज्ञाहुति का भोक्ता अग्नि भी तेजोरहित हो गया है, वायु के पृथिवी में जहां-तहां प्रलयंकारी तूफान बवण्डर आ रहे हैं।।30।।

न प्रसन्ना दिशां भागा नभो नैव च निर्मलम्।
दुर्बला देवताः सर्वा विभान्त्यन्यादृशा इव।
विनष्टप्रायमेवासीन्त्रैलोक्यं सचराचरम्॥31॥

सभी पूर्वादि दिशाएं ईशानादि कोणों सहित प्रसन्न निर्मल नहीं दिखाई दे रही हैं। आकाश भी कभी निर्मल निर्जलमेघों से शून्य नहीं दिखता, सभी दैवीशक्तियां निर्बल हो गई हैं, उनकी पूजा करने के बाद भी मनोकामना पूरी नहीं होती वे सभी देवी देवता अन्यों जैसे निरूपयोगी से दिखाई पड़ते हैं अनुभव में आते हैं। इस तरह समस्त त्रिलोकी चराचर प्राणियों सहित विनष्ट जैसी दिख रही है।।31।।

हयग्रीव अगस्त्य जी से आगे बोलेः-

इत्थं कथयतोरेव बृहस्पतिमहेन्द्रयोः।
मलकाद्या महादैत्या देवलोकं बबाधिरे॥32॥

इस प्रकार बृहस्पति इन्द्र से वर्णन कर ही रहे थे कि मलकादि महादैत्यों ने स्वर्गादि देवलोकों पर चढ़ाई कर दी, बाधा उत्पन्न कर दी।।32।।

नन्दनोद्यानमखिलं चिच्छिदुर्बल गर्विताः।
उद्यानपालकान्सर्वानायुधैः समताडयन्॥33॥

स्वर्गलोक के नन्दनवनउद्यान को बलगर्वित दैत्यों ने उजाड़ कर दिया, उद्यान के रक्षकों को शस्त्रों से घायल कर दिया।।33।।

प्राकारमभिपाट्यैव प्रविश्य नगरान्तरम्।
मन्दिरस्थान्सुरान्सर्वानत्यर्थं पर्यपीडयन्॥34॥

उन मलक नामक दैत्यों ने नगर के भीतर घुसकर बड़े-बड़े प्रासादों महलों को भवनों को उखाड़ दिया, मंदिरों में स्थित सभी देवी-देवों की सीमा रहित पीड़ाएं दी।।34।।

आजह्रुरप्सरोरत्नान्यशेषाणि मदोद्धताः।
ततो देवाः समस्ताश्च चक्रन्दुर्भृशबाधिताः॥35॥

ऐसी नगर के भीतर लूटपाट और विनाश से समस्त देवगण बाधित हो गए और हाहाकार करने लगे।।35।।

तादृशं घोषमाकर्ण्य वासवः प्रोज्झितासनः।
सर्वैरनुगतो देवैः पलायनपरोऽभवत्।।36॥

नगर में इस तरह की तोड़-फोड़, अप्सराओं का अपहरण, मन्दिरों में देवों की पीड़ित करना और देवताओं के कोलाहल से इन्द्र भी अपना सिंहासन त्याग समस्तदेवों के साथ भागने लगे।।36।।

ब्राह्म धाम समभ्येत्य विषण्णवदनो वृषा।
यथावत्कथयामास निखिलं दैत्यचेष्टितम् ।।37॥

भाग कर देवों सहित इन्द्र ब्रह्मलोक गए, वहां उन्होंने ब्रह्माजी से सम्पूर्ण उपद्रवोंयुक्त दैत्यों की हलचलों का विस्तारपूर्वक विवरण सुनाया।।37।।

विधातापि तदाकर्ण्य सर्वदेवसमन्वितम्।
हतश्रीकं हरिहयमालोक्यैतदुवाचह।। 38॥

ब्रह्माजी ने समस्त देवों के साथ निस्तेज व्याकुल इन्द्र को देखते हुए कहा।।38।।

इन्द्र त्वमखिलैर्देवैर्मुकुन्दं शरणं व्रज।
दैत्यारातिर्जगत्कर्ता स ते श्रेयो विधास्यति॥39॥

ब्रह्माजी ने इन्द्र को सम्बोधित करते हुए कहा कि तुम समस्त देवों के साथ भगवान मुकुन्द विष्णु की शरण में जाओ, वे दैत्यों का विनाश करेंगे और तुम सभी लोगों की आपत्ति दूर कर श्रेय याने कल्याण करेंगे।।39।।

इत्युक्त्वा तेन सहितः स्वयं ब्रह्मा पितामहः।
समस्तदेवसहितः क्षीरोदधिमुपाययौ॥40॥

इन्द्र से इस प्रकार ब्रह्माजी भी इन्द्रादि देवों के साथ क्षीरसागर में स्थित भगवान् विष्णु के समीप गए।।40।।

अथ ब्रह्मादयो देवा भगवन्तं जनार्दनम् ।
तुष्टुवुर्वाग्भिरिष्टाभिः सर्वलोकमहेश्वरम्॥41॥

क्षीरसागर ब्रह्माजी इन्द्रादि देवों के साथ पहुंचे और भगवानविष्णु की स्तुति प्रार्थना की भगवान को प्रसन्न किया।।41।।

अथ प्रसन्नो भगवान्वासुदेवः सनातनः।
जगाद सकलान्देवाञ्जगद्रक्षणलम्पटः॥42॥

ब्रह्मादि, इन्द्रादि देवों की स्तुति से भगवान वासुदेव जनार्दन प्रसन्न हुए, जगत् रक्षा में तत्पर रहने वाले भगवान सभी देवों को सम्बोधित करते हुए बोले।।42।।

[समुद्रमथनप्रस्तावः] श्रीभगवान्।।

आगे समुद्रमन्थन का प्रस्ताव भगवान ने किया।। श्रीभगवान् बोलेः-

भवतां संविधास्यामि तेजसैवोपबृंहणम्।
यदुच्यते मयेदानीं युष्माभिस्तद्विधीयताम्॥43॥

क्षीरसागर में भगवान विष्णुजी ब्रह्माजी आदि सभी देवों द्वारा की गई प्रार्थना एवं विपत्ति सुनकर बोले! ब्रह्मन् आप सभी के तेज की वृद्धि होगी, आप लोग जो मैं कहने वाला हूं वहसुने।।43।।

ओषधिप्रवराः सर्वाः क्षिपत क्षीरसागरे।
असुरैः सह संधाय तथा मे वचसेरिताः॥44॥

आप सभीलोग असुरों से संधि करके उनके साथ क्षीरसागर में समस्त औषधियों को डाले, ऐसा मेरा परामर्श है।।44।।

मन्थानं मन्दरं कृत्वा योक्तं कृत्वा च वासुकिम्।
मयि स्थिते सहाये तु मथ्यताममृतं सुराः॥45॥

समुद्र में औषधि डालकर मन्दराचलपर्वत को मथानी बनावें तथा वासुकिनाग को मथने की रस्सी बनावें, मैं इस कार्य में सहायता करूंगा, देवगण निकलेअमृत का पान करें।।45।।

समस्तदानवाश्चापि वक्तव्याः सान्त्वपूर्वकम्।
सामान्यमेव युष्माकमस्माकं च फलं त्विति॥46॥

समस्त दानवों से मिलकर सन्धि कर लो, साथ मे मन्थनक्रिया करो, तुम्हारा और हमारा अमृत में समान भाग है।।46।।

मथ्यमाने तु दुग्धाब्धौ सम्यगुत्पद्यते सुधा।
तत्पानाद्बलिनो यूयममर्त्याश्च भविष्यथ॥47॥

उस क्षीरसागर के मथे जाने पर जो उत्पन्न अमृत प्राप्त होगा उसके पान से तुम सभी लोग अमर हो जाओगे।।47।।

यथा दैत्यास्तु पीयूषं नैतत्प्राप्स्यन्ति किंचन।
केवलं क्लेशवन्तश्च करिष्यामि तथाप्यहम्॥48॥

जैसा कि समुद्रमन्थनक्षेत्र जो होगा वह यह है कि केवल समुद्रमंथनप्रक्रिया में असुरों का साथ रहेगा, वे केवल परिश्रम मात्र कर पायेंगे। उन्हें अमृत नहीं मिल पाएगा, ऐसी व्यवस्था मैं करूंगा।।48।।

इति श्रीवासुदेवेन कथिता निखिलाः सुराः।
सन्धानं सकलैर्दैत्यैः कृतवन्तस्तपोधन॥49॥

इस प्रकार भगवान वासुदेव ने सभी देवों से कहा और साथ ही यह भी कहा कि असुरों से सन्धि कर लो, तब इन्द्रादि देवों ने हे तपोधन! अगस्त्य!! उन असुरदलों से अमृतमन्थन के लिए सन्धिकर ली।।49।।

नानाविधौषधिगणं समानीय सुरासुराः।
क्षीराब्धिपयसि क्षिप्त्वा चन्द्रिकाधिकनिर्मले।।50।।

सभी देवों ने असुरों ने अनेकों प्रकार की औषधियों के समूल लाकर क्षीरसागर के निर्मलजल में डाला।।50।।

मन्थानं मन्दरं कृत्वा कृत्वा योक्तं च वासुकिम्।
प्रारेभिरे प्रयत्नेन मथितुं परमामृतम्।।51।।

मन्दराचलपर्वत को मथानी बनाया और वासुकिनाग को मन्थन रस्सी बनाया। फिर उन देवों असुरों ने मन्थन क्रिया आरंभ की।।51।।

वासुकेः पुच्छभागे तु सहिताः सर्वदेवताः।
पूर्वभागे तु दैतेया नियुक्तास्तत्र शौरिणा।।52।।

सभी देवगण वासुकिनाग की पूंछवाले हिस्से में लगे और सभी असुर वासुकि के पूर्वी हिस्से शिरोभाग फणों वाले हिस्से में लगे। यह व्यवस्था भगवान विष्णु ने बना दी, क्योंकि पूंछभाग पकड़ने में देव और असुर अपने सम्मान में कमी देख रहे थे। भगवान ने कहा सामुहिक हितकारी कार्य में अभिमान नहीं करना चाहिये। असुर स्वयं को बड़ा भाई समझते हैं तो नाग के शिरोभाग में ही रहें और देवगण छोटेभाई हैं तो अभिमान छोड़कर पूंछ भाग ही ले लेवें।।52।।

बलवन्तोऽपि दैत्यास्तन्मुखोत्थविषपावकैः।
निर्दग्धवपुषः सर्वे निस्तेजस्कास्तदाभवन्।।53।।

वासुकि नाग के मुखभाग में असुरगण थे, मन्थनक्रिया में रस्सी बने नाग से मथानी के घूमने के दबाब से जो श्वास नाग की निकलती थी वह विषैली श्वास वायु होती थी वह सभी असुरों को प्रभाव डालती थी अतः वे सभी असुरगण बलवान होकर भी काले-काले शरीर के हो गए और विषज्वाला से अधजले तथा निस्तेज हो गए।।53।।

पुच्छभागे तु कर्षन्तो मुहुराप्यायिताः सुराः।
अनुकूलेन वातेन कृष्णेन प्रेरितेन ते।।54।।

देवगण वासुकि नाग के पिछले पूंछवाले भाग में थे, इसलिए उन के ऊपर विषैली वायु न आ सकी, भगवानकृष्ण ने वायु को अनुकूल दिशा में प्रवाहित किया, जिससे देवों को सुविधा हुई।।54।।

आदिकूमार्कृतिः श्रीमान्मध्ये क्षीरपयोनिधेः।
भ्रमतो मन्दराद्रेस्तु तस्याधिष्ठानतामगात्।।55।।

उस मन्थनक्षेत्र क्षीरसमुद्र के मध्य में श्रीमान् वासुदेव विष्णु ने आदिकच्छप का रूप धारण कर

उस दाएं-बांये घेरा में घूमते हुए मन्दराचंल को अपनी पीठ में धारण कर लिया, जिससे वह डूबने से बच गया।।55।।

मध्ये च सर्वदेवानां रूपेणान्येन माधवः।
चकर्ष वासुकिं वेगादैत्यमध्ये परेण च।।56।।

सभी देवताओं के मध्य भगवान माधव विष्णु अन्यरूप धारण कर दैत्यों के मध्य विरुद्ध दिशा में मथानी घुमाने लगे।।56।।

ब्रह्मरूपेण तं शैलमुपर्याक्रान्तवान्हरिः ।
अपरेण च देवर्षे महता तेजसा मुहुः॥57॥

हे देवर्षे! उन भगवानहरि ने उस मन्दराचल के शिखर में ब्रह्मरूप से स्थित होकर समुद्र में मन्दराचल की मथानी में मंथनरूप खलबली मचा दी।।57।।

उपबृंहितवान्देवान्येन ते बलशालिनः।
तेजसा पुनरन्येन बलात्कारसहेन सः॥58॥

दूसरी ओर देवर्षि ने देवताओं के बल को बढ़ाया इस प्रकार सहयोग करके इसलिए अन्य उन दैत्यों से तेज से बलात्कार के सहयोग से।।58।।

उपबृंहितवान्नागं सर्वशक्तिर्जनार्दनः॥59॥

देवों के तेज और बल पराक्रम को अपने सहकार से बढ़ाकर वे समस्त शक्तियों के केन्द्र जनार्दन वासुकि के बल को भी बढ़ाया।।59।।

मध्यभाने ततस्तस्मिन्क्षीराब्धौ देवदानवैः।
किमेतदिति सिद्धानां दिवि चिन्तयतां तदा॥60॥

उस क्षीरसमुद्र के मथे जाने पर देवताओं ने दानवों ने और सिद्धों ने जो देखा तो सोचने लगे कि यह कौन की वस्तु है।।60।।

उत्थिता वारुणी देवी मदालोलविलोचना।
असुराणां पुरस्तात्सा वर्धमाना व्यतिष्ठत ॥61॥

समुद्र के मध्य में उस मन्थनक्रिया से भगवती वारुणी प्रकट हुईं, जिन के नेत्र वारुणीमद से चंचल हो रहे थे, वे वारुणी असुरों के सामने बढ़ने लगीं।।61।।

जगृहुर्नैव तां दैत्या असुरांश्चाभवंस्ततः।
सुरा न विद्यते येषां त एवासुरशब्दिताः॥62॥

तब उन असुरों ने उस वारुणी को स्वीकार नहीं किया, इसलिए वे असुर कहलाए, क्योंकि असुर

का अर्थ ही यही होता है, कि सुरा जहां न हो वह असुर।।62।।

अथ सा सर्वदेवानामग्रतः समतिष्ठत।
जगृहुस्तां मुदा देवाः सूचिताः परमेष्ठिना॥63॥

असुरों के द्वारा स्वीकृत न होने पर वह वारुणी देवों के सामने जाकर बैठ गई। तब विष्णु भगवान के द्वारा सूचित देवताओं ने उसे प्रसन्न होकर ग्रहण कर लिया। सुरा ग्रहण करने के कारण वे सुर कहलाएं। इस सुरनाम से वे देवता जाने माने जाते हैं।।63।।

सुराग्रहणतो ह्येते देवाः प्राप्ताः सुराभिधाम्।
आविर्बभूव पुरतः सुरभिः सुरपूजिता॥64॥

जब सुरा ग्रहण से देवता सुर कहलाए, फिर उनके सामने देवपूजित सुरवन्दनीय सुरभि आविर्भूत हुई।।64।।

मुदं जग्मुस्तदा देवा दैतेयाश्च तपोधन।
मध्यमाने पुनस्तस्मिन्क्षीराब्धौ देवदानवैः॥65॥

मन्थन के मध्य वारुणी के प्राकट्य के अनन्तर सुरभि गौ का आविर्भाव हुआ, जिससे हे तपोधन! अगस्त्य!! सभी देवता और दैत्य आनन्दित हुए।।65।।

अत्यर्थसुन्दराकारा धीराश्चाप्सरसां गणाः।
आविर्भूताश्च देवर्षे सर्वलोकमनोहराः॥66॥

हे देवर्षि! सर्वातिशय सुन्दर आकारों वाली पर धीर चतुर अप्सराओं के गण आविर्भूत हुए, जो सभी लोकों में मनोहर थे।।66।।

मध्यमाने ततो भूयः पारिजातो महाद्रुमः।
आविरासीत्स्वगन्धेन परितो वासयञ्जगत्॥67॥

मन्थनक्रिया के मध्य में इसके अनन्तर पारिजात नामक विशालवृक्ष उपस्थित हुआ, उसकी अपनी सुगन्ध से चारों ओर का वातावरण सुगन्ध से भर गया।।67।।

ततः शीतांशुरूदभूत्तं जग्राह महेश्वरः।
विषजातं तदुत्पन्नं जगृहुर्नागजातयः॥68॥

पारिजात के बाद चन्द्रमा अपनी शीतकिरणों से युक्त प्रकट हुए उनको भगवानशिव ने ले लिया। इसके उत्पन्न हुए विषसमूह को नागों ने ग्रहण कर लिया।।68।।

कौस्तुभाख्यं महारत्नमाददे तज्जनार्दनः॥69॥

इसके बाद कौस्तुभ नामवाला अत्यन्त तेजस्वी महारत्न प्रकट हुआ, जिसे स्वयं भगवान जनार्दन

ने स्वीकार किया।।69।।

ततः स्वपत्रगन्धेन मदयन्ती महौषधिः।
विजया नाम संजज्ञे भैरवस्तामुपाददे।।70।।

कौस्तुभ के प्रकट होने के बाद महान औषधिस्वरूप अपनी स्वाभाविक पत्रों से निकलने वाली गन्ध से सभी को मद से मुग्ध करती हुई विजया नाम महौषधि प्रकट हुईं, जिसे भगवानभैरव ने स्वीकार किया।।70।।

ततो दिव्याम्बरधरो देवो धन्वन्तरिः स्वयम्।
समुत्थितः करे बिभ्रदमृताढ्यं कमण्डलुम्॥71।।

विजया औषधि के अनन्तर दिव्याम्बरधारी देव धन्वन्तरि स्वयं आविर्भूत हुए, वे अपने करकमलों में अमृत भरे हुए कमण्डलु कलश को हाथों में लिए हुए थे।।71।।

ततः प्रहृष्टमनसो देवा दैत्याश्च सर्वशः।
मुनयश्चाभवंस्तुष्टास्तदानीं तपसां निधे॥72॥

धनवन्तरि भगवान् के अमृतकलश लेकर प्रकट होने पर सभी देव दैत्य बहुत प्रसन्न हुए और हे तपोधन! मनुगण तपस्वीगण आदि सभी सन्तुष्ट हुए।।72।।

[क्षीराब्धे श्रिय प्रादुर्भाव॥]

ततो विकसिताम्भोजवासिनी वरदायिनी।
उत्थिता पद्महस्ता श्रीस्तस्मात्क्षीरमहार्णवात्॥73।।

अमृतकलश लेकर भगवान धन्वन्तरि के प्रकट होने के बाद उस क्षीरमहासमुद्र से मन्थन प्रक्रिया के मध्य में विकसित कमलों में निवास करने वाली भगवती महालक्ष्मी हाथ में कमल लिये हुए प्रकट हुईं।।73।।

अथ तां मुनयः सर्वे श्रीसूक्तेन श्रियं पराम्।
तुष्टुवुस्तुष्टहृदया गन्धर्वाश्च जगुः पुरः॥74॥

उन भगवती महालक्ष्मी के कमल हाथ में लेकर क्षीरसमुद्र के मध्य प्रकट होने पर समस्त ऋषि मुनियों ने उन पराश्री का स्तवन श्रीसूक्त से किया और भगवती के सामने गन्धर्वगण गायन करने लगे।।74।।

विश्वाचीप्रमुखाः सर्वे ननृतुश्चाप्सरोगणाः।
गङ्गाद्याः पुण्यनद्यश्च स्नानार्थमुपतस्थिरे॥75॥

भगवती लक्ष्मी के प्राकट्य पर विश्वाची प्रमुख समस्त अप्सराओं के गण आनन्दमग्न होकर नृत्य

करने लगे। गङ्गा आदि पुण्यनादियां उनके स्नान सम्पन्न कराने के लिए उपस्थित हो गईं।।75।।

अष्टौ दिग्दन्तिनश्चैव हेमपात्रस्थितं जलम्।
आदाय स्नापयाञ्चक्रुस्तां श्रियं पद्मवासिनीम्।।76।।

आठों दिशाओं के दिग्दन्ती हाथीगणों ने स्वर्णघट में स्थित दिव्यजल को लेकर स्नान, अभिषेकादि सम्पन्न किया।।76।।

तुलसी च समुत्पन्ना पदार्हा नैकजा हरेः।
पद्ममालां ददौ तस्यै मूर्तिमान् क्षीरसागरः॥77॥

इसी समय मूर्तिमान क्षीरसागर प्रकट हुआ और उसने दिव्यपद्मों की माला अर्पित किया। इस तरह दिव्य आभूषणों को धारण करने वाली भगवती का आदर सम्मान किया। श्रीहरि की प्रिय तुलसी का भी प्रादुर्भाव हुआ।।77।।

भूषणानि च दिव्यानि विश्वकर्मा समर्पयत्॥78॥

विश्वकर्मा ने भी समस्त दिव्यआभूषण भगवती महालक्ष्मी को सौंपे।।78।।

दिव्यमाल्याम्बरधरा दिव्यभूषणभूषिता।
ययौ वक्षःस्थलं विष्णोः सर्वेषां पश्यतां रमा ।।79।।

समस्त दिव्य माला, वस्त्राभूषणादि धारण की हुई भगवती रमा सभी देवता, मुनि, ऋषि तथा असुरों के देखते हुए भगवान विष्णु के वक्षः स्थल के वामभाग में विराजित हो गईं।।79।।

तुलसी सा धृता तेन विष्णुना प्रभविष्णुना।
पश्यति स्म च सा देवी विष्णुवक्षःस्थलालया।
देवान्दयार्द्रया दृष्ट्या सर्वलोकमहेश्वरी॥80॥

क्षीरसागर की मन्थनक्रिया में रत्नों को प्रकट करने वाले भगवान् विष्णु ने तुलसी जी को धारण किया। समस्त लोक जननी भगवती लक्ष्मी समस्त देवों को दयादृष्टि से देखती हुई भगवान विष्णु के वक्षःस्थल में विराजित हुईं। भगवान् विष्णु के वाम वक्षः स्थल में भौरीचक्र लक्ष्मी जी का सूचक है और दायं वक्षः स्थल में भृगु के चरण चिह्न झलकते हैं। भगवान् के इन्ही चिन्हों से प्रणाम किया जाता है।।80।।

इति श्रीब्रह्माण्डपुराणे उत्तरखण्डे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने क्षीरार्णवमथनकथनं नाम चतुर्थोऽध्याय ॥4॥

॥श्रीमन्महागणाधिपतये नमः।।

श्रीमाताललिताम्बायै नमः श्रीपादुकां पूजयामि नमः॥
ॐ वन्दे गुरुपदद्वन्द्वं अवाङ्मनसगोचरम्॥
रक्तशुक्ल प्रभामिश्रमतर्क्यं त्रैपुरं महः॥
ॐ आराध्यदेवं भक्तानां कलिदोषविनाशकम्॥
वन्दे श्रीगिरिजानन्दं शारदाश्रीमठाधिपम्।।
ॐ अखण्डं यस्यज्ञानञ्च भक्तिर्यस्यानपायिनी।।
शारदाज्योतिरीशस्य दर्शनं (पूजनं, वन्दनं) शुभमस्तुनः।।

अथ पञ्चमोऽध्यायः ॥5॥ 86 श्लोकात्मकः

(श्रीविष्णोमर्मोहिनीरूपेणावतारः ॥)

श्रीहयग्रीव अगस्त्य जी से बोलेः-

अथ देवा महेन्द्राद्या विष्णुना प्रभविष्णुना।
अङ्गीकृता महाधीराः प्रमोदं परमं ययुः॥1॥

श्रीअगस्त्य जी! जब समुद्रमन्थन हो गया और सबमें प्रविष्ट भगवान् विष्णु ने श्रीलक्ष्मीजी को प्राप्त कर लिया, तब महेन्द्रादि सभी देवगण परमानन्द मग्न हो गए।।1।।

मलकाद्यास्तु ते दैत्याः सर्वे विष्णुपराङ्मुखाः।
सन्त्यक्ताश्च श्रिया देव्या भृशमुद्वेगमागताः॥2॥

परन्तु मलकादि जो दैत्यगण थे, वे विष्णु के विरुद्ध रहने वाले थे, वे सभी भगवती श्री देवी लक्ष्मी जी द्वारा त्याग दिये गए थे, इस कारण मलकादिदैत्य बहुत ही उद्विग्न हो गए।।2।।

ततो जगृहिरे दैत्या धन्वन्तरिकरस्थितम्।
परमामृतसाराढ्यं कलशं कलशोद्भव॥3॥

इस तरह निराश मलकादि दैत्यों ने हे कुम्भज! श्रीधन्वन्तरि के हाथों में स्थित कलश को, जिसमें परम अमृत भरा हुआ था, उसे झपट कर ग्रहण कर लिया।।3।।

अथासुराणां देवानामन्योन्यं कलहोऽभवत्॥4॥

दैत्यों ने जब अमृत कलश धन्वन्तरि के हाथों से छीन लिया तब देवों और असुरों के बीच परस्पर कहा सुनी आदि झगड़े होने लगे।।4।।

एतस्मिन्नन्तरे विष्णुः सर्वलोकैकरक्षकः।
सम्यगाराधयामास ललितां स्वैकरूपिणीम्॥5॥

इसी बीच लोकों के रक्षक भगवान विष्णु ने अपने आत्मैक्य स्वरूपवाली भगवती ललिता देवी की एकाग्रता से आराधना की।।5।।

सुराणां चासुराणां च रणं वीक्ष्य सुदारुणम्।
ब्रह्मा निजपदं प्राप शम्भुः कैलासमास्थितः॥6॥

देवों और असुरों का आपस में भयंकर युद्ध देख ब्रह्मा अपने धाम में चले गए और शंकरजी कैलाश में चले गए।।6।।

मलकं योधयामास दैत्यानामधिपो वृषा।
असुरैश्च सुराः सर्वे साम्परायमकुर्वत॥7॥

दैत्यों के अधिपति वृषाने जो मलक नामक दैत्य थे, उनसे सभी देवताओं ने बड़ा युद्ध किया।।7।।

भगवानपि योगीन्द्रः समाराध्य महेश्वरीम्।
तदेकध्यानयोगेन तद्रूपः समजायत॥8॥

भगवान् विष्णु ने भी भगवती ललिताम्बा का एकाग्र मनोयोग से चिन्तनरूप समाराधन किया। उनके ध्यान योग से भगवती के रूप में समानता होने से वे भी परम सुन्दर मनोमोहक मुनिजनों को सम्मोहित करने वाली माधुरीमय रूप में हो गए।।8।।

सर्वसंमोहिनी सा तु साक्षाच्छृङ्गारनायिका।
सर्वशृङ्गारवेषाढ्या सर्वाभरणभूषिता॥9॥

वे सभी को सम्मोहित करने वाली साक्षात् शृंगारनायिका थीं, वे सभी शृंगार वेषों से सम्पन्न थीं और समस्त दिव्याभूषणों से सुसज्जित थीं।।9।।

सुराणामसुराणां च निवार्य रणमद्भुतम्।
मन्दस्मितेन दैतेयान्मोहयन्ती जगाद ह॥10॥

उन भगवती ने परस्पर में युद्ध करते हुए उन सभी देवताओं से तथा असुरों से अपनी मन्द मुस्काराहट से मोहित करती हुईं उन मोहिनी भगवती ने कहा।।10।।

अलं युद्धेन किं शस्त्रैर्मर्मस्थानविभेदिभिः।
निष्ठुरैः किं वृथालापैः कण्ठशोषणहेतुभिः॥11॥

अरे आप लोग आपस में झगड़ना बन्द करो, इन शस्त्रों से अंग-भंग विदीर्ण होंगे तथा व्यर्थ में निरर्थक आपस में आरोप प्रत्यारोपों से क्या लाभ होगा। केवल गले आप लोगों के सूख जाएंगे।।11।।

अहमेवात्र मध्यस्था युष्माकं च दिवौकसाम्।
यूयं चामी च नितरामत्र हि क्लेशभागिनः॥12॥

ये कलह आपस की छोड़ो मैं आप दोनों के बीच मध्यस्थ होकर तुम लोगों की इच्छा पूरी करूंगी। तुम दोनों समूहों ने इस अमृतमन्थन कष्ट सहते हुए परिश्रम किया है। अतः आप सभी इसके अधिकारी हैं, केवल आप लोग झगड़ना बन्द करें।।12।।

सर्वेषां सममेवाद्य दास्याम्यमृतमद्भुतम्।
मम हस्ते प्रदातव्यं सुधापात्रमनुत्तमम्॥13॥

मैं आज तुम सभी लोगों को एक साथ ही यह अद्‌भुत अमृतरस दूंगी। हाथों में जो आपने छीनकर लिया है, उसे मेरे हाथों में दो, मैं सभी को पान करा दूंगी।।13।।

इति तस्या वचः श्रुत्वा दैत्यास्तद्वाक्यमोहिताः।
पीयूषकलशं तस्यै ददुस्ते मुग्धचेतसः॥14॥

मोहिनी के इन स्नेह पूर्ण वाक्यों से मोहित हुए दैत्यों ने जब सुना तो वे सभी तन, मन से मुग्ध होकर उन मोहिनी के सामने गए और मोहनी के हाथों में वह अमृतकलश दे दिया।।14।।

तत्पात्रं सा समादाय जगन्मोहनरूपिणी।
सुराणामसुराणां च पृथक्पङ्क्तिं चकार ह॥15॥

संसार को मोहित करने वाली देवी मोहिनी ने उन असुरों के हाथों से वह अमृतकलश ले लिया तथा देवों की पंक्ति तथा दैत्यों की पंक्ति अलग-अलग बनवा दिया।।15।।

द्वयोः पंक्त्योश्च मध्यस्था तानुवाच सुरासुरान्।
तूष्णी भवन्तु सर्वेऽपि क्रमशो दीयतेऽमृतम्॥16॥

इसके बाद भगवती मोहिनी दोनों सुर और असुरों की पंक्ति के मध्य खड़ी होकर बोलीं- सभी लोग चुप हो जाओ कोलाहल न करें, हम क्रम से सभी को अमृत बांट देंगे।।16।।

तद्वाक्यमुररीचक्रुस्ते सर्वे समवायिनः।
सा च संमोहिताशेषलोका दातुं प्रचक्रमे॥17॥

मोहिनी के वाक्यों को उन सभी सम्बद्ध देवों ने एवं असुरों ने स्वीकार किया और चुप हो गए। इसके बाद वे सकलभुवन को मोहित करने वाली मोहिनी भगवती उन सभी को यथाक्रम से अमृत देने लगीं।।17।।

कनत्कनकदर्वीका क्वणन्मङ्गलकङ्कणा।
कमनीयविभूषाढ्या कला सा परमाबभौ॥18॥

अमृत बांटने के समय करछुल घट से अमृत निकालने में टकराने से बजती थी तथा साथ ही हाथ में धारण किए हुए स्वर्णरत्न जड़ित कंकण बजते थे, इन ध्वनियों के सुनाई पड़ने से देवासुर

पंक्तियां मोहित हो रही थी, इस तरह वह भगवान की दिव्यकला मोहिनी रूप में अत्यन्त सुशोभित हो रही थीं।।18।।

वामा वामकराम्भोजे सुधाकलशमुज्ज्वलम्।
दधाना देवतापंक्त्यै पूर्व दर्ष्या तथा दिशत्॥19॥

वे परम सुन्दरी भगवती मोहिनी अपने बांए हाथ में उस दिव्य उज्जवल अमृतकलश को लेकर सबसे पहिले देवपंक्ति में, असुरों से कहा मोहिनी वे आप सभी के बड़े भाई है, परम्परा यह है, कि छोटे भाईयों को पहिले कोई भी वस्तु देना चाहिये, शेष स्वयं बांट लेना चाहिए, मोहिनी की इन मोहक बातों से तथा हम बड़े हैं इस मिथ्याभिमान में मत्त असुरों ने स्वीकृति दी, ऐसा भी वर्णन पुराणों में मिलता है चम्मच से अमृत देना प्रारंभ किया।।19।।

दिशन्ती क्रमशस्तत्र चन्द्रभास्करसूचितम्।
दर्वीमुखेन चिच्छेद सैहिकेयं तु मध्यगम्॥20॥

श्रीभगवती मोहिनी वे पूर्ण देवपंक्तियों में अमृत बांट रही थी, इस रहस्य को सिंहिका का का पुत्र राहु समझ गया, वह शीघ्रता से सूर्य और चन्द्र के बीच बैठ गया और अमृत को पीने लगा, तभी सूर्य और चन्द्र ने मोहिनी से कहा यह असुर राहु है, राहु जब तक भाग पाता मोहिनी ने करछुल केअग्रभाग से प्रहार कर उसका शरश्चेद कर दिया, तब सिर धड़ से अलग हो गया तब राहु (सिर) और धड़ केतु दो रूप हो गए पर मिल नहीं पाते, ज्योतिष में ये छाया ग्रह हैं, इममें 7अंश अन्तर स्थायी हो गया है।।20।।

पीतामृतशिरोमात्रं तस्य व्योम जगाम च।
तद्दृष्ट्वाप्यसुरास्तत्र तूष्णीमासत मोहिताः॥21॥

उस सिंहिका के पुत्र राहु ने, जो सूर्य और चन्द्र के मध्य में बैठ गया था, अमृतपीतशिर हो गया तो करछुल के अग्रभाग से कट जाने के कारण वह आकाश में जाकर स्थिर हो गया, यह दृश्य असुरों ने भी देखा फिर भी कुछ भी विरोध में नहीं बोले वे सभी मोहिनी के रूप चाल आदि से मोहित हो चुके थे।।21।।

(इस घटना से यह संकेत मिलता है कि अपने जातिसमूह में अलग होने का परिणाम यही होता है तथा मोहिनी ने कहा था कि हम सभी को अमृत बांटेंगे, उस व्यवस्था को सैहिकेय ने भंग किया। इस तरह के भावात्मक संकेत हृदय गोचर होते हैं।)

एवं क्रमेण तत्सर्वं विबुधेभ्यो वितीर्य सा।
असुराणां पुरः पात्रं सा निधाय तिरोदधे॥22॥

इस प्रकार राहु के मर्यादा भंगकर देने के बाद भगवती मोहिनी ने देवताओं को अमृत बांटकर खाली अमृतपात्र असुरों सामने रख दिया और वे अन्तर्हित हो गईं।।22।।

रिक्तपात्रं तु तद्दृष्ट्वा सर्वे दैतेयदानवाः।
उद्वेलं केवलं क्रोधं प्राप्ता युद्धचिकीर्षया॥23॥

उस खाली अमृतपात्र को सभी दैत्यों दानवों ने देखा तो वे क्रोध में भर गए तथा युद्ध करने की इच्छा से उद्वेलित हो गए। क्रोध में भड़क गए।।23।।

इन्द्रादयः सुराः सर्वे सुधापानाद्बलोत्तराः।
दुर्बलैरसुरैः सार्धं समयुध्यन्त सायुधाः॥24॥

इन्द्रादि सभी देवगण अमृतपान करने से अधिक बलवान हो गए थे। अतः उन्होंने दुर्बल असुरों के साथ आयुध को लेकर युद्ध शुरू कर दिया।।24।।

ते वध्यमानाः शतशो दानवेन्द्राः सुरोत्तमैः।
दिगन्तान्कतिचिज्जग्मुः पातालं कतिचिद्ययुः।।25।।

उत्तम तथा अमृतपान से बलवान देवों ने सैकड़ों दानव श्रेष्ठों को समाप्त कर दिया। अपनी हार देखकर कई असुर दिग्दिगन्तों में भाग गए, कई पाताल लोक भाग गए।।25।।

दैत्यं मलयनामानं विजित्य विबुधेश्वरः।
आत्मीयां श्रियमाजह्वे श्रीकटाक्षसमीक्षितः॥26॥

मलक नामक दैत्य को जीतकर देवताओं के स्वामी इन्द्र ने अपनी शक्ति भगवती ललिताम्बा के कटाक्ष से समीहित अपनी राजधानी और राज्यलक्ष्मी को पुनः प्राप्त कर लिया।।26।।

पुनः सिंहासनं प्राप्य महेन्द्रः सुरसेवितः।
त्रैलोक्यं पालयामास पूर्ववत्पूर्वदेवजित्॥27॥

फिर से इन्द्र ने सभी देवों से सम्मानित और पूजित होकर सिंहासन को पाया और त्रिलोक के पालन में पहिले जैसे देवों से सम्मानित होते थे वैसे ही सम्मानित होकर पहिले जैसे शासन पालन करने लगे।।27।।

निर्भया निखिला देवास्त्रैलोक्ये सचराचरे।
यथाकामं चरन्ति स्म सर्वदा हृष्टचेतसः॥28॥

समस्त देवगण चराचर त्रैलोक्य में निर्भय होकर अपनी इच्छानुसार घूमते थे, सदैव प्रसन्नमुद्राओं में प्रसन्नहृदय से व्यवहारादि करते थे।।28।।

(नारदेन कैलासं गत्वा शंकराय मोहिन्याः सौन्द-
र्यातिशयवर्णनम्, शंकरेण तद्दर्शनाय विष्णुलोकगमनम्॥)

श्रीनारदजी कैलाश गए, वहां उन्होंने भगवान शिव से मोहिनी अवतार का वर्णन किया और मोहिनी भगवती के अपूर्व सौन्दर्य का वर्णन किया यह सुन भगवान शिव उनके दर्शन के लिए विष्णुलोक गए।।

तदा तदखिलं दृष्ट्वा मोहिनीचरितं मुनिः।
विस्मितः कामचारी तु कैलास नारदो गतः ॥29॥

अमृतमंथन में और अमृत बांटने में भगवान के मोहिनीरूप रखने से जो जो स्थितियां बनी थीं, उनके श्रीमोहिनी का चरित देखकर विस्मित हुए, इच्छानुसार सर्वत्र गमन करने वाले मुनिनारदजी कैलास भगवान शिव के पास गए।।29।।

नन्दिना च कृतानुज्ञः प्रणम्य परमेश्वरम्।
तेन सभाव्यमानोऽसौ तुष्टो विष्टरमासत॥30॥

नारद जी जब कैलास पहुंचे, तब द्वार रक्षक नन्दीश्वर मिले, उनसे अनुमति लेकर नारद जी ने भगवान परमेश्वर को प्रणाम किया। भगवान से सम्मानित होकर प्रसन्न होकर आसन पर बैठे।।30।।

आसनस्थं महादेवो मुनि स्वेच्छविहारिणम्।
पप्रच्छ पार्वतीजानिरच्छस्फटिकसन्निभः॥31॥

भगवान् महादेव ने आसन में बैठे हुए अपनी इच्छा से निर्बाध त्रैलोक मेंभ्रमण करने वाले मुनि से प्रश्न किया। भगवती पार्वती जी के पति भगवान् शिव की विग्रह छवि स्वच्छ स्फटिक मणि जैसी थी।।31।।

भगवन्सर्ववृत्तज्ञ पवित्रीकृत विष्टप।
कलहप्रिय देवर्षे किं वृत्तं तत्र नाकिनाम्॥32॥

भगवान् शंकर नारद जी से बोले हे मुनि। आप आसन में बैठ कर उसे पवित्र कर रहे हैं आप स्वेच्छा से तीनों लोकों में भ्रमण करते हैं, हे मुने कलहप्रिय देवर्षि! स्वर्ग का तथा देवों का हाल कैसा है।।32।।

सुराणामसुराणां वा विजयः समजायत।
किंवाप्यद्भुतवृत्तान्तं विष्णुना वापि किं कृतम्।।33।।

समुद्र अमृत मन्थन प्रक्रिया में अमृत के बांटने के बाद देवों की और असुरों की युद्ध में किसकी विजयी हुई। इस अद्भुत वृतान्त का अर्थात् उस अमृत का क्या हाल हुआ, इसमें विष्णु ने क्या

किया।।33।।

इति पृष्टो महेशेन नारदो मुनिसत्तमः।
उवाच विस्मयाविष्टः प्रसन्नवदनेक्षणः॥34॥

इस प्रकार भगवान महेश ने पूंछा तब वे मुनि श्रेष्ठ नारद जी उस घटना के स्मरण से विस्मयाविष्ट थे, पर भगवान महेश की जिज्ञासा से प्रसन्न नेत्र एवं मुख नारद जी बोले।।34।।

सर्वं जानासि भगवन्सर्वज्ञोऽसि यतस्ततः।
तथापि परिष्पृष्टेन मया तद्वक्ष्यतेऽधुना॥35॥

प्रसन्न मुख और नेत्रों वाले नारद जी भगवान महेश से पूछे जाने पर बोले भगवन! आप सर्वज्ञ हैं, सभी घटनाओं को आप जानते है, तथा आप जब मुझसे पूछ रहे हैं तो मैं वहां जो जो भी हुआ, वह सभी आपको सुना रहा हूं।।35।।

तत्तादृशे च समरे सति दैत्यदिवौकसाम्।
आदिनारायणः श्रीमान्मोहिनी रूपमाददे॥36॥

अमृत के लिए देवों और दैत्यों में परस्पर कलह बढ़ने पर आदि नारायण भगवान विष्णु ने परमसुन्दर मोहिनी रूप धारण कर लिया।।36।।

तामुदारविभूषाढ्यां मूर्तां शृङ्गारदेवताम्।
सुरासुराः समालोक्य विरताः समरोद्यमात्॥37॥

उन उदार और विशेष प्रकार के आभूषणों से भूषित साक्षात् मूर्तिमान शृंगार देवी को देखकर सभी देवगण और दैत्यगण युद्ध से विरत हो गए।।37।।

तन्मायामोहिता दैत्याः सुधापात्रं च याचिताः।
कृत्वा तामेव मध्यस्थामर्पयामासुरञ्जसा॥38॥

उन मोहिनी के अलौकिक अपूर्व शृंगार रूप को देखकर वे सभी दैत्यगण, जिन्होंने धन्वन्तरि के हाथों अमृत कलश छुड़ा लिया था, मोहिनी देवी के मांगने से उन्हें दे दिया, और मोहिनी देवी को ही अमृत देने की शीघ्र याचना की।।38।।

तदा देवी तदादाय मन्दस्मितमनोहरा।
देवेभ्य एव पीयूषमशेषं विततार सा॥39॥

तब उन भगवती मोहिनी ने उन दैत्यों से अमृत कलश लेकर देव और दैत्यों को अलग अलग पंक्तियों में बैठाकर मनोहर मन्द स्मित से सभी को मोहित करती हुई सर्वप्रथम देव पंक्ति में अमृत बांट दिया।।39।।

तिरोहितामदृष्ट्वा तां दृष्ट्वा शून्यं च पात्रकम्।
ज्वलन्मन्युमुखा दैत्या युद्धाय पुनरुत्थिताः॥40॥

देव पंक्ति में अमृत को बांट कर (यहां असुरों की पंक्ति से आकर सैंहिकेय राहू सूर्य-चन्द्र के बीच में बैठा और अमृत पी लिया, इस तरह दैत्यों ने ही मर्यादा भंग की) मोहिनी उन दैत्यों को खाली अमृत कलश पात्र देकर अन्तर्हित हो गईं। अमृत प्राप्ति से असफल दैत्य गण क्रोध से तमतमाए मुख वाले हो गए और वे युद्ध के लिए तैयार हो गए।।40।।

अमरैरमृतास्वादादत्यद्भुतपराक्रमैः।
पराजिता महादैत्या नष्टाः पातालमभ्ययुः॥41॥

मोहिनी प्रदत्त अमृत के आस्वाद से अद्भुत पराक्रम सम्पन्न देवों से युद्ध में पराजित वे महादैत्य कुछ तो नष्ट हुए कुछ बचे हुए पाताल की ओर भाग गए।।41।।

इमं वृत्तान्तमाकर्ण्य भवानीपतिरव्ययः।
पार्वतीसहितो विष्णुमाजगाम सविस्मयः॥42॥

नारद जी द्वारा बताये गए इस वृत्तान्त को उन अविनाशी भवानी पति शंकर ने सुना, वे भगवती मोहिनी के वर्णित स्वरूप का चिन्तन करते हुए किसी को भी बिना सूचना दिये केवल भगवती पार्वतीभवानी को साथ में लेकर भगवान् विष्णु के धाम में गए।।42।।

क्षीरोदतीरगं दृष्ट्वा सस्त्रीकं वृषवाहनम्।
भोगिभोगासनाद्विष्णुः समुत्थाय समागतः॥43॥

वृषवाहन भगवान शिव पार्वती सहित क्षीरसागर के किनारे पहुंचे, उन्हें आया देखकर भगवान विष्णु शेषनाग की शय्या से बाहर आकर उनके स्वागत करने आये।।43।।

सस्नेहं गाढमालिङ्ग्य भवानीपतिमच्युतः।
तदागमनकार्यं च पृष्टवान्विष्टरश्रवाः॥44॥

भगवान विष्णु ने उन भवानी पति शिव को स्नेह पूर्वक गले लगाया और उनसे क्षीर सागर आने का कारण पूछा।।44।।

तमुवाच महादेवो भगवान्पुरुषोत्तमम्।
महायोगीश्वरः श्रीमान् सर्वसौभाग्यसुन्दरः॥45॥

भगवान विष्णु के स्वागतान्तर आगमन कारण पूछने पर वे श्रीमान भगवान महादेव महायोगेश्वर समस्त सौभाग्यों से सुन्दर पुरुषोत्तम महाविष्णु जी से बोले।।45।।

सर्वसंमोहजनकमवाङ्मनसगोचरम्।
यद्रूपं भवतोपात्तं तन्मह्यं संप्रदर्शय ॥46॥

भगवान् शिव ने कहा : आपने अमृत मन्थन के बाद अमृत बांटने के समय आपने सभी भूत-प्राणियों को मोहित करने वाल मन, वाणी के अगोचर जो रूप धारण किया था वह रूप मुझे भी दिखाईये।।46।।

द्रष्टुमिच्छामि ते रूपं शृङ्गारस्याधिदैवतम्।
अवश्यं दर्शनीयं मे त्वं हि प्रार्थितकामधुक् ॥47॥

मैं आपके उस रूप को देखना चाहता हूं, जो शृंगारतत्व का अधिदेवता है, आप प्रार्थना करने वालों की इच्छाएं पूरी करते हैं अतः तुम्हारा वह त्रिलोक सुन्दर रूप देखना चाहता हूं, वह मुझे अवश्य ही दिखावें।।47।।

इति संप्रार्थितः शश्वन्महादेवेन तेन सः।
तस्यान्तिके तिरोधत्त महायोगेश्वरो हरिः ॥48॥

इस प्रकार भगवान महादेव से वे विष्णु प्रार्थित हुए, तब वे महायोगेश्वर हरि उन शिव के सामने ही तिरोहित हो गए।।48।।

शर्वोऽपि सर्वतश्चक्षुर्मुहुर्व्यापारयन्क्वचित् ।
अदृष्टपूर्वमाराममभिरामं व्यलोकयत् ॥49॥

भगवान शिव ने सभी ओर से घूमने वाले नेत्रों के दर्शन रूप व्यापार को रोका और कभी न देखा गया ऐसा अलौकिक रूप देखा।।49।।

विकसत्कुसुमश्रेणीविनोदिमधुपालिकम्।
चम्पकस्तबकामोदसुरभीकृतदिक्तटम् ॥50॥

भगवान शिव ने ऐसा अदृष्ट पूर्व अलौकिक वस्त्राभूषणों से विराजित अपूर्व सौन्दर्यशाली जो रूप देखा, वह खिले हुए पूर्ण विकसित सुगन्धित पुष्प जैसे था और उनकी प्रत्येक कलियों से जैसे मधुरस टपकता है, ऐसे ही वह सौन्दर्य था, तथा जैसे चम्पक पुष्पों का गुच्छा अपनी विशेष सुगन्ध फैलाकर दिग् दिगन्त को सुगन्धपूर्ण करता है। वैसी ही सुगन्धि वह रूप कर रहा था।।50।।

माकन्दवृन्दमाध्वीकमाद्यदुल्लोलकोकिलम्।
अशोकमण्डलीकाण्डसताण्डवशिखण्डिकम्।।51॥
भृङ्गालिरवझंकारजितवल्लकिनिःस्वनम्।
पाटलोदारसौभाग्यपाटलीकुसुमोज्ज्वलम्।।52।।

उस क्षीरसागर के तट प्रदेश में मयूरों के झुण्ड आमोद-प्रमोद में नृत्य कर रहे थे। उस समय पुष्प के पराग से मदमस्त भौरे नवीन-नवीन प्रकार की ध्वनियों की गुञ्जार कर रहे थे। लताओं में झूम रहे थे। केसर की प्रभूत गन्ध से लोध पुष्पों से सुशोभित वह हो रहा था ॥51,52॥

तमालताल हिन्तालकृतमालविकासितम्।
पर्यन्तदीर्घिकादीर्घपङ्कजश्रीपरिष्कृतम्।।53।।

तमाल, ताल, और खजूर के वृक्ष चारों तरफ फैले हुए थे, उससे क्षीर सागर ऐसा लग रहा था कि मानो उसने बड़ी माला धारण की हो।।53।।

वात पोत चलच्चारुपल्लवोत्फुल्ल पुष्पकम्।
सन्तानप्रसवामोदसन्तानाधिकवासितम्॥54॥

वायु द्वारा गिरे हुए सुन्दर चञ्चल पल्लवों और गिरे हुए फूलों के फैलाव से उत्पन्न आमोद की बढ़ी हुई धारा से सुगंधित।।54।।

तत्र सर्वर्तुपुष्पाढ्ये सर्वलोकमनोहरे।
पारिजाततरोर्मूले कान्ता काचिददृश्यत।।55।।

ऐसे दिव्य वृक्ष, पत्र, पुष्प, गुंजारते भौरों की मधुरध्वनि तथा अमोद से नृत्य करते हुए मोरों से एवं मन्द सुगन्ध शीतल वायु के प्रवाह से परिपूर्ण क्षीरसागर के किनारे पारिजात वृक्ष के नीचे कोई कान्ता दिखाई दी ॥55॥

बालार्कपाटलाकारा नवयौवनदर्पिता।
उत्कृष्टपद्मरागाभचरणाब्जनखच्छटा॥56॥

उदित होते हुए बाल सूर्य के वर्ण के समान बालार्कारुणा, नवयौवन - लक्षणों से सम्पन्न, तीव्र सुगन्धि फैलाने बारे रक्त कमल के समान चरण कमल तथा उनमें किरण ज्योति फैलाते नखमणि से युक्त।।56॥

यावकश्री निर्व्यपेक्षपादलौहित्यवाहिनीं।
कलनिस्वनमञ्जीरक्वणत्किङ्किणिमण्डिता॥57॥

उस सुन्दरी ने जो चरणकमलों में सुगन्धित महावर लगाया हुआ था, उसके धरती में चरण चिन्ह उभर आते थे इस प्रकार लालिमा का आधिक्य अर्थात सर्वत्रधरणीतल लाल-लाल दिख रहा था एवं अपने चरण कमलों में मधुर झुनझनाहट भरी मञ्जीर घुंघरू की ध्वनि सुनाई दे रही थी।।57।।

अनङ्गवीर तूणीर दर्पोन्मथनजङ्घिका।
करिशुण्डालकदलीकान्तितुल्योरुशोभिनी॥58॥

वीर कामदेव के तूणीर दर्प से मदमस्त कर देने वाली, हाथी की सूंड़ तथा केले के वृक्ष के स्तम्भ की कान्ति के सम्मान शोभित जङ्घा वाली।।58।।

अरुणेन दुकूलेन सुस्पर्शेन तनीयसा।
अलंकृतनितम्बाढ्या जघनाभोगभासुरा॥59॥

वे भगवती मोहिनी लालरंग के स्पर्श करने में सुख देने वाले रेशमी वस्त्र से जो बहुत ही महीन था, उससे शरीर ढंका हुआ उस वस्त्र से कमर का भाग, नितम्ब तथा जघन का पूर्ण विकास अघ्त्यन्त भव्य था।।59।।

नवमाणिक्यसन्नद्धहेमकाञ्चीविराजिता।
नतनाभिमहावर्तत्रिवल्यूर्मिप्रभाझरी॥60॥

वे भगवति नवमाणिक्य से जड़ी हुई स्वर्ण करधनी से सुशोभित थीं, जैसे किसी नदी के प्रवाह में भंवर पड़े हों उसी तरह उनकी उदर क्षेत्र गत त्रिवली तीन नदियों की धाराओं जैसी प्रतीत हो रही थीं।।60।।

स्तनकुड्मलकान्दोलन्मुक्तादामशतावृता।
अतिपीवरवक्षोजभारभङ्गुरमध्यभूः॥61॥

उन भगवती मोहिनी के हिलते हुए स्तनमण्डल सैकड़ों मोतियों की मालाओं से समलंकृत थे, उनके अत्यन्त स्थूल स्तनों के भार से उनका मध्य भाग कुछ झुका सा था।।61।।

शिरीषकोमलभुजा कङ्कणाङ्गदशालिनी।
सोर्मिकाङ्गुलिरुन्मृष्टशङ्ख सुन्दरकन्धरा।।62।।

भगवती की भुजाएं शिरीष के पुष्प के समान कोमल थीं और कंकड़ाङ्गद शालिनी थीं, प्रकाशयुक्त सुगठित स्वच्छ शंख के समान सुन्दर ग्रीवा थी।।62।।

मुखदर्पणवृन्ताभचुबुका पाटलाधरा।
कुन्दकुड्यालसच्छा यदन्तदर्शितचन्द्रिका॥ 63॥

मुखदर्पणवृत्त की आभावली उनकी टोढ़ी थी (अनौपम्यगुणोपेतचिबुकोद्देशशोभिता (स.नाम.)) उनकी शुभ्र दन्त पंक्ति विशेष रूप से चमकते हुए चमेली के फूलों की कान्तिवाली थी, उससे ऐसा आभास हो रहा था, कि जैसे शुभ्र चांदनी दिखाई दे रही हो।।63।।

स्थूलमौक्तिकसन्नद्धनासाभरणभासुरा।
केतकान्तर्दलद्रोणीदीर्घदीर्घविलोचना॥64॥

स्थूल जड़े हुए मोती उनके नासाभूषण (नथनी) थे, उनसे चमक व्याप्त हो रही थी, केवड़े के अनार्दल के समान विशाल नेत्र थे।।64।।

अर्धेन्दुतुलिता फाले सम्यक्क्लृप्तालकच्छदा।
वालीवतंसमाणिक्यकुण्डलामण्डितश्रुतिः ॥65॥

उनके सिर के बालों की मांग में अर्धचंद्र से तुलित उत्पन्न बालों की छटा थी, एक नाम भगवती का (अष्टमीचंद्रबिभ्राजदलिकस्थलशोभिता)।।65।।

नवकर्पूर कस्तूरी सदा मोदितवीटिका।
स्फुरत्कस्तूरितिलका नीलकुन्तलसंहतिः ॥66॥

नवीन कपूर और कस्तूरी के रस सदा सुगन्धित ताम्बूल के बीड़े से सुगन्धित मुखवाली थीं।।66।।

सीमन्तरेखाविन्यस्तसिन्दूरश्रेणिभासुरा।
स्फुरचन्द्रकलोत्तंसा मदालोलळविलोचना।
सर्वशृङ्गारवेषाढ्या सर्वाभरणभूषिता ॥67॥

उनके सिर के बालों के बीच मांग रेखा में सिन्दूर की पंक्ति चमक रही थी, चमकती हुई चन्द्रकला के समान ऊंचे उठे हुए मदमस्त चंचल नेत्र थे, वे समस्त आभूषणों से सुसज्जित शृंगार शोभा से सजी हुई थीं।।67।।

तामिमां कन्दुकक्रीडापरामालोलभूषणाम्।
दृष्ट्वा क्षिप्रमुमां त्यक्त्वा सोऽन्वधावदथेश्वरः ॥68॥

उन कन्दुकक्रीड़ा से चंचल भूषणों वाली मोहिनी की देखकर शीघ्र ही उमा को छोड़कर वे महेश्वर शिव मोहिनी के पीछे दौड़ने लगे ॥68॥

गृहीत्वा कथमप्येनामालिलिङ्ग मुहुर्मुहुः।
उद्धूयोद्धूय साप्येनं धावति स्म सुदूरतः ॥69॥

उन भगवान शंकर ने दौड़ते-दौड़ते किसी प्रकार उन मोहिनी को पकड़ का बार-बार आलिङ्गन किया, परन्तु वे बार-बार उनकी पकड़ से छूट का सुदूर निकल जाती थीं ॥69॥

पुनर्गृहीत्वा तामीशः कामं कामवशीकृतः।
आश्लिष्यदतिवेगेन तद्वीर्यं प्रच्युतं तदा।।70।।

फिर काम के द्वारा वश में किए गए उन भगवान् शिव ने उन विश्वविमोहिनी मोहिनी को पकड़कर गाढ़ आलिंगन किया। उससे उनका वीर्य तेज स्खलित हो गया।।70।।

ततः समुदितो देवो महाशास्ता महाबलः।
अनेककोटिदैत्येन्द्र गर्व निर्वापणक्षमः ॥71॥

इस के अनन्तर शिव के वीर्य पात के बाद महाबली महाशास्ता- (अप्यय) देव प्रकट हुए, जो करोड़ों दैत्येन्द्रों के बल को भी शान्त करने में समर्थ थे।।71।।

तद्वीर्यबिन्दुसंस्पर्शात्सा भूमिस्तत्र तत्र च।
रजतस्वर्णवर्णाभूत्तत्क्षणाद्विन्ध्यमर्दन ॥72॥

हे विन्ध्यमर्दन! अगस्त्य जी! भगवान शिव के उस वीर्य के संस्पर्श से भूमि में जहाँ तहाँ चांदी, स्वर्ण पर्वत बन गए।।72।।

तत्रैवान्तर्दधे सापि देवता विश्वमोहिनी।
निर्वृतः स गिरीशोऽपि गिरिं गौरीसखो ययौ।।73।।

इस अनन्तर वह विश्वमोहिनी मोहिनी अन्तर्हित हो गयी। तथा भगवान गिरीश शिव भी भगवती गौरी के साथ कैलाश पर चले गए।।73।।

(भण्डासुरचरितारंभः ।)

अथाद्भुतमिदं वक्ष्ये लोपामुद्रापते शृणु।
यन्न कस्यचिदाख्यातं ममैव हृदये स्थितम् ॥74॥

हे लोपामुद्रा के पति कुम्भज! अब मैं मोहनी अवतार वृतांत के बाद जो व्याख्यान सुनाऊंगा वह बहुत ही अद्भुत है यह व्याख्यान मैंने अभी तक किसी को भी नहीं सुनाया है जो यह मेरे ही हृदय में स्थित है।।74।।

पुरा भण्डासुरो नाम सर्वदैत्यशिखामणिः ।
पूर्वदेवान्बहुविधान्यः स्रष्टुं स्वेच्छया पटुः ॥75॥

वह वृतांत इस प्रकार है वह सुनो प्राचीन काल में भंडासुर नाम का सभी दैत्य समुदाय का शिखामणि था जो पूर्व काल में अनेकों देवताओं के ऊपर अपनी इच्छा से शासन करने में चतुर था।।75।।

विशुक्रं नाम दैतेयवर्गसंरक्षणक्षमम्।
शुक्रतुल्यं विचारज्ञं दक्षांसेन ससर्ज सः ॥76॥

उस भंडासुर ने अपने दाहिने कंधे से विशुक्र नाम के असुर को उत्पन्न किया वह विशुक्र शुक्राचार्य के समान विचारों का ज्ञाता था वह समस्त दैत्य समूह के संरक्षण में समर्थन था।।76।।

वामांसेन विषङ्गं च सृष्टवान्दुष्टशेखरः।
धूमिनीनामधेयां च भगिनीं भण्डदानवः ॥77॥

उस भण्ड ने अपने बाएं कंधे से विषङ्ग नामक दैत्य को उत्पन्न किया तथा उसकी धूमिनी नाम वाली एक बहिन थी।।77।।

भ्रातृभ्यामुग्रवीर्याभ्यां सहितः निहताहितः।
ब्रह्माण्डं खण्डयामास शौर्यवीर्यसमुच्छ्रितः ॥78॥

शूरता और पराक्रम से सम्पन्न उसने अपने उन उग्र और पराक्रमी भाईयों के साथ समस्त ब्रह्माण्ड को छिन्न-भिन्न कर दिया था अपने सभी विरोधि सुरों को अस्त-व्यस्त कर दिया था।।78।।

ब्रह्मविष्णुमहेशाश्च तं दृष्ट्वा दीप्ततेजसम्।
पलायनपराः सद्यः स्वे स्वे धाम्नि सदाऽवसन्।।79।।

सृष्टिकर्ता ब्रह्मा, पालनकर्ता विष्णु और संहारकर्ता महेश उसके अत्यन्त बढ़े हुए तेजस को देखकर वे तीन कृत्यदेवता अपने अपने क्षेत्र से लौटकर अपने निवास लोकों में स्थिर हो गए।।79।।

तदानीमेव तद्बाहुसंमर्दनविमूर्च्छिताः।
श्वसितुं चापि पटवो नाभवन्नाकिनां गणाः ॥80॥

उसी पराक्रम के अवसर पर संघर्ष में समस्त देव समूह उसके प्रबल बाहु दण्डों के प्रहार से तथा उसकी सेना से दबे हुए श्वास भी नहीं ले सक रहे थे।।80।।

केचित्पातालगर्भेषु केचिदम्बुधिवारिषु।
केचिद्दिगन्तकोणेषु कुञ्जेष्वेके च भूभृताम् ॥81॥

उस भण्ड दानव के पराक्रम की भीषणता से देवता गण पाताल में चले गए, कोई समुद्र के जल के भीतर चले गए। कोई दिग्दिगन्त के कोणों में और कोई पर्वतों की झाड़ियों में छिए गए।।81।।

विपिनं भृशवित्रस्तास्त्यक्तदारसुतश्रियः।
भ्रष्टाधिकाराः पशवो विचेरुश्छन्नवेषकाः ॥82॥

इस प्रकार सभी देवगण बहुत अधिक विशेष रूप से डरे हुए अपनी पत्नी पुत्रों और स्त्रियों को छोड़कर अधिकारों से वंचित होकर मैले फटे पुराने कपड़े पहिने अपने को छिपा कर बिना घरों के पशुओं जैसे इधर-उधर घूमने लगे।।82।।

यक्षान्महोरगान्सिद्धान्साध्यान्समरदुर्मदान्।
ब्रह्माणं पद्मनाभं च रुद्रं वज्रिणमेव च।
मत्वा तृणाय तान्सर्वाल्लोकान्भण्डः शशासह् ॥83॥

तब वहां भण्ड दैत्य ने यक्षों, महासर्पों, सिद्धों और साध्यों एवं ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और इन्द्र को तृण के समान मानकर समस्त लोकों में शासन किया।।83।।

[श्रीललिताम्बावतारः ॥]

द्वितीयमुदभूद्रूपं महायागानलात्पुनः ॥84॥

इसके अनन्तर भण्डासुर का संहार करने के लिए त्रैलोक्य की रक्षा के लिए महायाग वाले अग्नि के दक्षिणाग्निरूप अद्‌भूतरूप को प्रकट किया।।84।।

यद्रूपशालिनीमाहुर्ललितां परदेवताम् ।
पाशाङ्कुशधनुर्बाणपरिष्कृतकराम्बुजाम् ॥85॥

जिस रूप का चिन्तन होता है, उस रूप की भगवती ललितापरदेवता अपने चारों हाथों में पाश, अंकुश, धनुष और बाण धारण की हुई थी।।85।।

सा देवी परमा शक्तिः परब्रह्मस्वरूपिणी।
जघान भण्डदैत्येन्द्रं युद्धे युद्धविशारदा।।86।।

वे महादेवी परमाशक्ति है, परब्रह्मस्वरूप वाली हैं तथा युद्ध में पूर्ण चतुर हैं, उन्होंने युद्ध में ससैन्य सवंश तथा सराजधानी और भण्ड का विनाश कर दिया।।86।।

इति श्रीललितोपाख्याने मोहिन्या शंकरमोहन
नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥5॥

॥श्रीमन्महागणाधिपतये नमः।।

श्रीमाताललिताम्बायै नमः श्रीपादुकां पूजयामि नमः॥

ॐ वन्दे गुरुपदद्वन्द्वं अवाङ्मनसगोचरम्॥

रक्तशुक्ल प्रभामिश्रमतर्क्यं त्रैपुरं महः॥

ॐ आराध्यदेवं भक्तानां कलिदोषविनाशकम्॥

वन्दे श्रीगिरिजानन्दं शारदाश्रीमठाधिपम्।।

ॐ अखण्डं यस्यज्ञानञ्च भक्तिर्यस्यानपायिनी।।

शारदाज्योतिरीशस्य दर्शनं (पूजनं, वन्दनं) शुभमस्तुनः।।

अथ षष्ठोऽध्यायः ॥6॥ 35 श्लोकात्मकः भंडासुरोत्पत्ति

अगस्त्यजी ने हयग्रीव जी से जिज्ञासा की

कथं भण्डासुरो जातः कथं वा त्रिपुराम्बिका ।
कथं स निहतः संख्ये तत्सर्वं वद् विस्तरात् ॥1॥

अगस्त्य जी ने हयग्रीव से प्रश्न किया कि वह भण्डासुर उत्पन्न किस प्रकार हुआ और किस प्रकार भगवती त्रिपुराम्बिका ललिता यज्ञाग्नि से प्रकट हुईं एवं वह भण्डासुर युद्ध में किस प्रकार मारा गया। यह सभी कृपा कर आप मुझे बतावें।।1।। हयग्रीवः।। बोले-

पुरादाक्षायणीं त्यक्त्वा पितुर्यज्ञविनाशनात्।
आत्मानमात्मना पश्यञ्ज्ञानानन्दरसात्मकः ॥2॥

पूर्वकाल में भगवती दाक्षायणी सती ने पति शिव के अपमान से व्यथित होकर दक्षप्रजापति के यज्ञ का विध्वंस कर योगाग्नि से अपने दक्ष से प्राप्त शरीर को भस्म कर दिया। उस समय भगवान सती वियोग से व्याकुल होकर अपने ज्ञान से आनन्द देने वाले द्वन्द्वगुण से रहित लक्षण वाले अपने आत्मा से साक्षी आत्मा को देखते हुए।।2।।

उपास्यमानो मुनिभिरचिन्त्यगुणलक्षणः।
गङ्गाकूले हिमवतः पर्यन्ते प्रविवेश ह ॥ ३ ॥

मुनिगणों के उपासित किये जाते हुए उन्होंने हिमालय क्षेत्र में गङ्गा के किनारे प्रवेश कर लिया।।3।।

सापि शङ्करमाराध्य चिरकालं मनस्विनी।
योगेन स्वां तनुं त्यक्त्वा सुतासीद्धिमभूभृतः॥४॥

वे भगवती सती भी मनस्विनी थी, उन्होंने पति की उपेक्षा से अपमान से यज्ञ में भाग का उच्छेद सहन नहीं किया और वहीं यज्ञस्थल में योगाग्नि उत्पन्न कर दाक्षायणशरीर का त्याग कर दिया तथा

पर्वतराज हिमालय की पुत्री के रूप में अवतार लिया।।4।।

स शैलोनारदाच्छ्रुत्वा रुद्राणीति स्वकन्यकाम्।
तस्य शुश्रूषणार्थाय स्थापयामास चान्तिके॥५॥

कन्या के जन्म लेने के अनन्तर आए हुए नारदजी से हिमालय ने यह सुना कि यह कन्या रुद्र पत्नी रुद्राणी है। सामान्य नहीं है। तो फिर उसने अपने पास ही सेवाशुश्रूषा कन्या की विशेष देखभाल के लिए अपने पास रख लिया।।5।।

एतस्मिन्नन्तरे देवास्तारकेणाभिपीडिताः।
ब्रह्मणोक्ताः समाहूय मदनं चेदमब्रुवन्।।६।।

इसी बीच में कालप्रवाह से परिवर्तित समय से समस्त देवगण स्वर्गादि लोकों में महाबली तारकासुर से पीड़ित हुए जब सभी देवों ने ब्रह्माजी से निवेदन किया तब ब्रह्माजी ने मदन को बुलाकर यह कहा।।6।।

सर्गादौ भगवान्ब्रह्मा सृजमानोऽखिलाः प्रजाः।
न निवृत्तिरभूत्तस्य कदाचिद्धि मानसे।
तपश्चचार सुचिरं मनोवाक्कायकर्मभिः॥7॥

सृष्टि के आरंभ में भगवान ब्रह्मा ने कहा कि समस्त चेतन, अचेतन और अर्धचेतन प्रजाओं की सृष्टि करते हुए इनमें पूर्णता का अनुभव हमें नहीं हुआ, इसलिए हमने मनवाणी और कर्म से तप बहुत काल किया।।7।।

ततः प्रसन्नो भगवान्सलक्ष्मीको जनार्दनः।
वरेण छन्दयामास वरदः सर्वदेहिनाम् ॥8॥

मानससृष्टि से ब्रह्मा जी को सन्तुष्टि नहीं हुई इसलिए उन्होंने लम्बे समय तक मन, वाणी, कर्म से तप किया, परिणाम स्वरूप भगवान् जो समस्त प्राणियों को वरदान देते हैं, वे विष्णु प्रकट हुए और कहा तब ब्रह्माजी ने कहा ।।8।।

यदि तुष्टोऽसि भगवन्ननायासेन वै जगत्।
चराचरमिदं चैव सृजामि त्वत्प्रसादतः॥9॥

हे भगवन्! आप प्रसन्न हैं तो यह समस्त चराचर जगत् आपके ही अनुग्रह से उत्पन्न करता हूं।।9।।

एवमुक्तो विधात्रा तु महालक्ष्मीमुदैक्षत।
तदा प्रादुरभूस्त्वं वै जगन्मोहनरूपधृक्॥10॥

हे मदन्! जब मैंने भगवान विष्णु ऐसा निवेदन किया, तो उन्होंने भगवती महालक्ष्मी को मोद से देखा, इसके परिणामस्वरूप तुम जगत् मोहित करने वाले परम सुन्दर रूप से प्रादुर्भूत हुए।।10।।

तवायुधार्थं दत्तं च पुष्पबाणेक्षुकार्मुकौ।
विजयत्वमलङ्घ्यत्वं प्रादात्प्रमुदितो हरिः॥11॥

कामदेव! तुम्हारे आविर्भूत हो जाने के बाद उन्होंने शस्त्रों के लिए पुष्पबाणों को गन्ने का धनुष दिया तथा अमोघ विजयशक्ति एवं सर्वालंङ्घ्यत्व रूप अमोघ शक्ति का वरदान दिया।।11।।

असौ सृजति भूतानि कारणेन स्वकर्मणा।
साक्षिभूतोऽस्य जगतो भवान् भजतु निर्वृतिम् ॥12॥

सृष्टिकर्ता जीव का उसके अपने कर्म जिनको वह सम्पन्न करता है। उस किए गए कर्म के अनुसार प्रत्येक की सृष्टि करते हैं। उसके जन्म की साक्षी आप होते हो अर्थात् गर्भाधानादि प्रक्रियाओं के प्रवर्तन में आरंभिक प्रक्रिया में आप ही निमित्त होते हो इसके बाद आप उस प्राणी के बाद निवृत्त हो जाते हो।।12।।

एवं लब्धवरो धाता त्वयि विन्यस्य तद्भरम्।
मनसो निवृतिं प्राप्य वर्ततेऽद्यापि मन्मथ॥13॥

इस प्रकार ब्रह्मा धाता स्वयं को वर प्राप्त हुआ मानकर वह कार्यभार आपके ऊपर डालकर आपको ही सृष्टि में प्रेरित करते हैं। और आपका नाम मन्नथ इसका रहस्य है कि आप प्राणियों के मन से ही सृष्टि होने पर ही आधेय में भी है। संसार बना है नरनारी संयोग से, वह संयोग नरनारी के मन से होता है और आप मन से प्रकट होते हो और मन जो चंचल है, सीमारहित चंचल कर देते हो इसलिए ''मन्मथ'' कहा जाता है। यहीं सृष्टिप्रक्रिया सबसे पहिलाक्रम है, जिस के निमित्त तो आप ही हो।।13।।

अमोघं बलवीर्यं ते न ते मोघः पराक्रमः।
सुकुमाराण्यमोघानि कुसुमास्त्राणि ते सदा॥14॥

तुमको कभी भी व्यर्थ न होने वाला बल और पराक्रम मिला हुआ है। आपका पराक्रम कभी भी व्यर्थ नहीं होता। तुम्हारे ये पुष्पों के बाण हैं ये अमोघ अस्त्र हैं, हैं तो सुकुमार नम्र कोमल पर प्रभाव दीर्घ कालिक असर डालते रहते हैं, अविराम निरन्तर आयु के शेष होने की स्थिति तक।।14।।

ब्रह्मदत्तवरोऽयं हि तारको नाम दानवः।
बाधते सकलॉल्लोकानस्मानपि विशेषतः॥15॥

यह तारकासुर नाम वाला दानव ब्रह्मा से प्राप्त वरों के कारण दुर्दान्त हो गया, वह समस्त लोकों में बांधाएं डाल रहा है। साथ ही हम सभी देवों को भी आपत्ति में डाल रहा है।।15।।

शिवपुत्राद्दते ऽन्यत्र भयं तस्य न विद्यते।
त्वां विनास्मिन्महाकार्ये न कश्चित्प्रभवेदपि॥16॥

इस दानव तारकासुर को शिव के पुत्र के बिना कोई नहीं मार सकता है ऐसी विधिरचना है। परन्तु शिव को तुम्हारे सिवा कोई दूसरा प्रेरित नहीं कर सकता। अतः देवहितकारी इस महानकर्म को सम्पन्न तुम्ही को करना है।।16।।

सुकरं च भवेत्कार्य भवतो नान्यतः क्वचित्॥17॥

यह कठिनकार्य तुम से ही सरलता में हो जाएगा, तुम्हारे अतिरिक्त किसी में भी यह क्षमता नहीं है।।17।।

आत्मैकध्याननिरतः शिवो गौर्या समन्वितः।
हिमाचलतटे रम्ये वर्तते मुनिभिर्वृतः॥18॥

भगवान शिव गौरी के सहित अर्थात् भगवान शिव आत्मैक्य चिन्तन में हैं, वहीं गौरी पार्वती भी तपस्या में संलग्न हैं, हिमालयपर्वत का क्षेत्र है, वहां अन्य मुनिगणों का भी निवास है।।18।।

त्वन्नियोगाच्च गौर्या तु जनिष्यति च तत्सुतः।
ईषत्कार्यमिदं कृत्वा त्रायस्वास्मान्महाबल॥19॥

हे कामदेव! तुम हिमालयक्षेत्र में जहां शिव और गौरी हैं वहां जाओ और शिव को गौरी से मिला दो। तब गौरी से उनका पुत्र जन्म लेगा। अतः हे महाबली इतना सा कार्य करके हमारी रक्षा कीजिए।।19।।

एवमभ्यर्थितो देवैः स्तूयमानो मुहुर्मुहुः।
जगामात्मविनाशाय यतो हिमवतस्तटम्॥20॥

इस प्रकार देवों से बार-आर प्रार्थना किये जाने पर कामदेव अपने ही विनाश के लिए जहां हिमालय क्षेत्रतट था वहां गया।।20।।

किमप्याराधयन्तं तु गन्धपुष्पोपहारकैः।
शुश्रूषणपरां तां तु ददर्शातिबलः स्मरः॥21॥

हिमालयतट में जाने के बाद कामदेव ने देखा कि आंखें बंदकर ध्यानस्थशिव की पूजा गन्ध पुष्पादि पूजा सामग्री द्वारा सेवाकार्यों में संलग्न गौरी दिखीं। ऐसा अतिबलशाली स्मरकामदेव ने देखा।।21।।

अदृश्यः सर्वभूतानां नातिदूरेऽस्य संस्थितः।
सुमनोमार्गणैरुग्रैस्तं विव्याध महेश्वरम्॥22॥

उस कामदेव ने समस्त प्राणियों से अदृश्य होकर अधिक दूर स्थित न होकर अपने पांच उग्र प्रभावशाली सुमनबाणों का प्रयोग कर ध्यानस्थशिव के हृदय को विद्ध कर दिया।।22।।

विस्मृत्य सर्वकर्माणि विद्धस्तैरन्तिकस्थिताम्।
गौरीं विलोकयामास मन्मथाविष्टचेतनः॥23॥

कामदेव के द्वारा फेंके गए उग्रप्रभावशाली पांचपुष्पबाणों से मन्मध से प्रभावित अतःकरण से युक्त शिव के समाधि, ध्यान, जपादि सभी कर्म विस्मृत होने लगे तभी उन्होंने पास से स्थित गौरी को देखा।।23।।

धृतिमालम्व्य च पुनः किमेतदिति चिन्तयन्।
ददर्शाग्रे तु सन्नद्धं मन्मथं कुसुमायुधम्॥24॥

धैर्य का आश्रय लेकर फिर यह मेरे मन में चंचलता तथा विकार क्यों होने लगे। यह चिन्तन कर ही रहे थे कि शिव के सामने के सहकार (आम) के वृक्ष की डालियों की ओट में धनुष में बाण सन्धान किए हुए पुष्पायुध काम को देखा।24।।

तं दृष्ट्वा कुपितः शूली त्रैलोक्यदहनक्षमम्।
तातीयं चक्षुरुन्मील्य ददाह मकरध्वजम्॥25॥

कारण के अन्वेषण में भगवान शिव ने वृक्ष की डालियों में छिपे बाण चढ़ाए हुए मकरध्वज काम को देखा उसे देखते ही मनोविकार का कारण समझ में आ गया। तब क्रोधाविष्ट होकर उन्होंने तीनों लोकों को जलाने की क्षमता रखने वाले अपने ललाटस्थित तृतीयनेत्र को खोला, उसमें अग्नि की ज्वालाओं से काम उद्दीपक कामदेव को भस्म कर दिया, कारण यह था कि कुमारी गौरी शिव को पुष्प चढ़ा रही थीं, शिव ने उन्हें देखा उसी समय कामदेव ने बाणप्रहार किया उसके प्रभाव के समय कुमारी गौरी को देखने से उत्पन्न विकार भयानक दोष है कुमारी को देखकर कामचिन्तक मन हो तो अधर्म है। और शिव का वाहन वृष है, वृष धर्म का रूप है, शिव वृषभ ध्वज कहे जाते हैं। यह कारण उन्हें समझ में आ गया, इसलिए कन्या पर विकार दृष्टि अधर्म के हेतु उस काम को भस्म कर दिया। अधर्मरूप काम जगत का अनिष्टकारक है।।25।।

शिवेनैवमवज्ञाता दुःखिता शैलकन्यका ।
अनुज्ञया पितुः स्वस्य तपः कर्तुमगाद्वनम्॥26॥

भगवान शिव के द्वारा उपेक्षित होकर शैल हिमवतकन्या पार्वती बहुत दुःखी हुईं। फिर उन्होंने अपने माता पिता मैना और हिमालय से आज्ञा लेकर अपनी सखीद्वय (जया-विजया) के संग सघनवन में तपस्या के लिए चली गईं।।26।।

अथ तद्भस्म संवीक्ष्य चित्रकर्मा गणेश्वरः।
तद्भस्मना तु पुरुषं चित्राकारं चकार सः ॥27॥

इसके अनन्तर हिमवतकन्या पार्वती के तप करने के लिए वन में चले जाने पर शिवसमाज में जो चित्रकर्मा गणेश्वर थे, उन्होंने खेल-खेल में भस्म हुए काम के शरीर की भस्म से बड़ा सुन्दर विशाल चित्र-विचित्र रूपवाला पुतला बना दिया।।27।।

तं विचित्रतनुं रुद्रो ददर्शाग्रे तु पूरुषम्।
तत्क्षणाज्जातजीवोऽसौ मूर्तिमानिव मन्मथः।
महाबलोऽतितेजस्वी मध्याह्नार्कसमद्युतिः ॥28॥

भगवान रुद्र ने अपने सामने पुरुष को देखा, जो विचित्रशरीर वाला था। उसी क्षण से वह कामदेव जैसा मूर्तिमान सजीव बन गया। वह मध्याह्नकालिक सूर्य के द्युतियुक्त था, महाबली था और अतितेजस्वी था।।28।।

तं चित्रसेनो बाहुभ्यां समालिङ्ग्य मुदान्वितम्।
स्तुहि बाल महादेवं स तु सर्वार्थसाधकः ॥29॥

ऐसे तेजस्वी पुरुष को देखकर चित्रकर्मा गणेश्वर उस बालरूप से बोले हे बालक ! तुम भगवान महादेव की स्तुति करो, वे समस्त कामनाओं को सभी सिद्धियों को देने वाले हैं।।29।।

इत्युक्त्वा शतरुद्रीयमुपादिशदमेयधीः।
ननाम शतशो रुद्रं शतरुद्रमनुं जपन् ॥30॥

उस कामभस्मोत्पन्न तेजस्वी बालक को उन असीमितबुद्धिवाले गणेश्वर ने उसे शतरुद्रीयमंत्र का उपदेश किया। उसने भी शतरुद्रीयमंत्र का जप करते हुए रुद्र को शतशः नमन किया।।30।।

ततः प्रसन्नो भगवान् महादेवो वृषध्वजः।
वरेण छन्दयामास वरं बव्रे च बालकः ॥31॥

उस भस्मोत्थ बालक की उपदिष्ट शतरुद्रीय मन्त्र जपसाधना से भगवान रुद्र शिव महादेव वृषध्वज प्रसन्न होकर बोले क्या चाहते हो बोलो तो उस बालक ने वर के रूप में कहा।।31।।

प्रतिद्वन्द्विबलार्धं तु मद्बलेनोपयोक्ष्यत।
तदस्त्रशस्त्रमुख्यानि व्यथां कुर्वन्तु नो मम ॥32॥

प्रतिद्वन्दी का आधा बल मेरे बल में समाहित बल के लिए मेरे बल द्वारा उपयोग करेगा। उसके सभी अस्त्र-शस्त्र जो उसके प्रमुख हैं, प्रधान हैं, वे सभी व्यथित न कर पावें।।32।।

तथेति तत्प्रतिश्रुत्य विचार्य किमपि प्रभुः।
षष्टिवर्षसहस्राणि राज्यमस्मै ददौ पुनः ॥33॥

जो तुम चाहते हो वैसा ही होगा ऐसा कहकर उन प्रभु भगवान शिव ने कुछ विचार कर साठहजार वर्षों तक राज्य तुम करोगे ऐसा उससे पुनःकहा।।33।।

एतद्दृष्ट्वा तु चरितं धाता भण्डिति भण्डिति।
यदुवाच ततो नाम्ना भण्डो लोकेषु कथ्यते।।34।।

यह सभी चरित्र देखकर ब्रह्मा जी ने 'भण्ड' 'भण्ड' ऐसा जो कहा। उसके बाद वह समस्त लोकों में 'भण्ड' इस नाम से कहा जाने लगा।।34।।

इति दत्त्वा वरं तस्मै सर्वैर्मुनिगणैर्वृतः।
दत्वास्त्राणि च शस्त्राणि तत्रैवान्तरधीयत।।35।।

इस प्रकार उस भण्ड को वर देकर तथा समस्त अस्त्र-शस्त्र देकर समस्त मुनिगणों से घिरे वे शिव वहीं अन्तर्हित हो गए।।35।।

इति श्री ललितोपाख्याने भण्डासुरोत्पत्तिकथनं
नाम षष्ठोऽध्यायः सम्पूर्णः

॥श्रीमन्महागणाधिपतये नमः।।

श्रीमातालिताम्बायै नमः श्रीपादुकां पूजयामि नमः ॥
ॐ वन्दे गुरुपदद्वन्द्वं अवाङ्मनसगोचरम् ॥
रक्तशुक्ल प्रभामिश्रमतर्क्यं त्रैपुरं महः ॥
ॐ आराध्यदेवं भक्तानां कलिदोषविनाशकम् ॥
वन्दे श्री गिरिजानन्दं शारदाश्रीमठाधिपम्।।
ॐ अखण्डं यस्यज्ञानञ्च भक्तिर्यस्यानपायिनी।।
शारदाज्योतिरीशस्य दर्शनं (पूजनं, वन्दनं) शुभमस्तुनः।।

अथ सप्तमोऽध्यायः ॥७॥ 79 श्लोकात्मकः भंडासुरोत्पत्ति

(भण्डासुरपट्टाभिषेकादि॥)

हयग्रीवः ॥ श्री हयग्रीव जी अगस्त्य जी से बोलेः-

रुद्रकोपानलाज्जातो यतो भण्डो महाबलः।
तस्माद्रौद्रस्वभावश्च दानवश्चाभवत्ततः ॥1॥

भगवान रुद्र की क्रोधाग्नि से यह महाबली भण्ड उत्पन्न हुआ। इस कारण यह रौद्रस्वभाव का है क्रूर है निर्दयी है, इसलिए दानव हो गया।।1।।

अथागच्छन्महातेजाः शुक्रो दैत्यपुरोहितः।
समायाताश्च शतशो दैतेयास्तु महाबलाः ॥2॥

इसके अनन्तर उस भण्ड दानव के पास महातेजस्वी दैत्यों के पुरोहित शुक्राचार्य जी आए। उन शुक्राचार्य जी के साथ सैकड़ों महाबली दैत्यगण भी आए।।2।।

अथाहूय मयं भण्डो दैत्यवंशादिशिल्पिनम्।
नियुक्तो भृगुपुत्रेण स जगाद मयं ततः ॥3॥

दैत्यपुरोहित भृगुऋषि के पुत्र शुक्राचार्य जी के दानवों के साथ आने पर भण्ड ने दैत्यवंश के प्रमुख मयदानव को बुलवाया मय के आने के बाद भण्ड मय से बोला।।3।।

यत्र स्थित्वा तु दैत्येन्द्रैस्त्रैलोक्यं शासितं पुरा।
तद्गत्वा शोणितपुरं निर्माणं कुर्वितीरितः ॥4॥

जहाँ स्थिर होकर दैत्येन्द्रों ने दैत्यराजाओं ने प्राचीनकाल में तीनों लोकों में शासन किया था, वहाँ जाकर शोणितपुर को जैसा वह पहिले था वैसा ही सुन्दर बना दो।।4।।

तच्छ्रुत्वा वचनं शिल्पी स गत्वा तत्पुरं महत्।
चक्रेऽमरपुरप्रख्यं मनसैव क्षणेन तु ॥5॥

भण्डासुर के वचनों को दैत्यशिल्पी मय ने सुना तथा उस बड़े नगर में गया, वहाँ जाकर उसने मानसिकशक्ति से अमरपुर जैसा सुन्दर नगर बना दिया क्षण भर में।।5।।

अथाभिषिक्तः शुक्रेण दैतेयैश्च महाबलैः।
शुशुभे परया लक्ष्म्या तेजसा च समन्वितः॥6॥

सुन्दर नगरी शोणितपुर के बन जाने के बाद दैत्यपुरोहित शुक्राचार्य जी ने अन्य महाबली दैत्येन्द्रों के साथ भण्ड का अभिषेक किया, जिससे वह श्रीं कान्ति और तेजसे सम्पन्न हो गया।।6।।

हिरण्याय तु यद्दत्तं किरीटं ब्रह्मणा पुरा।
सजीवमविनाश्यं च दैत्येन्द्रैकविभूषणम्॥7॥

पुराकाल में ब्रह्माजी ने हिरण्य (हिरण्यकशिपु) को जो दिव्य मुकुट दिया था, उसी दैत्यराजाओं द्वारा सजाए गए और अविनाशी प्रातः कालीन सूर्य के समान तेजस्वी मुकुट को दैत्यपुरोहित शुक्राचार्य ने भण्ड को पहिनाया।।7।।

दधौ भृगुसुतोत्सृष्टं भण्डो बालार्कसंनिभम्।
चामरे चन्द्रसंकाशे सजीवे ब्रह्मनिर्मिते॥8॥

भृगुपुत्र शुक्राचार्यजी द्वारा पहिनाये गए उस दिव्यमुकुट से बालकालीन नवीन सूर्यकान्ति जैसा दिखने लगा तथा ब्रह्मा से निर्मित दो चंवर को ग्रहण किया।।8।।

न रोगा न च दुःखानि ददौ यद्विनिवेषणात्।
तस्यातपत्रं प्रददौ ब्रह्मणैव पुरा कृतम्॥9॥

जिन चामरों से कोई भी रोग और विभिन्न दुःखदारिद्रय नहीं हो पाते थे। इसी प्रकार ब्रह्मा के द्वारा ही बनाए गए छत्र को भण्ड को दिया।।9।।

यस्य छायानिषण्णस्तु बाध्यते नास्त्रकोटिभिः।
धनुश्च विजयं नाम खड्गं च रिपुघातिनम् ॥10॥

उस दिव्य ब्रह्मनिर्मित छत्र की छाया में करोड़ों अस्त्रों से कोई भी बाधा नहीं हो पाती थी। तथा उसे जो 'विजय' नामक धनुष दिया गया वह अपने नाम को सार्थक करने वाला था एवं शत्रुसंघाती विशाल खड्ग भण्ड को दिया गया।।10।।

अन्यान्यपि महार्हाणि भूषणानि प्रदत्तवान्।
तस्य सिहासनं प्रादादक्षयं सूर्यसंनिभम्।।11।।

साथ में बहुत से बहुमूल्य आभूषणों को दिया। उस भण्ड का सिंहासन अक्षय था, सूर्य के समान दीप्तिवाला था।।11।।

ततः सिंहासनासीनः सर्वाभरणभूषितः ।
बभूवातीव तेजस्वी रत्नमुत्तेजितं यथा॥12॥

उस सिंहासन में वह भण्ड समस्त बहुमूल्य आभूषणों को धारण कर बैठा, जिससे वह अत्यन्त तेजस्वी हुए जैसे ऊंचे तेजवाला उत्तम रत्न होता है।।12।।

बभूवुरथ दैतेयास्तस्याष्टौ तु महाबलाः।
इन्द्रशत्रुरमित्रघ्नो विद्युन्माली विभीषणः॥13॥

उस भण्ड के आठ दैत्यपुत्र हुए जो अत्यन्त महाबली थे उनके नाम इन्द्रशत्रु अमित्रघ्न, विद्युन्माली, विभीषण।।13।।

उग्रकर्मोग्रधन्वा च विजयः श्रुतिपारगः।
संमोहिनी कुमुदिनी चित्राङ्गी सुन्दरी तथा॥14॥

उग्रकर्मा, उग्रधन्वा और विजय श्रुतिपारग तथा सम्मोहिनी, कुमदिनी, चित्राङ्गी, सुन्दरी और।।14।।

चतस्रो वनितास्तस्य बभूवुः प्रियदर्शनाः।
तमसेवन्त कालज्ञा देवाः सर्वे सवासवाः॥15॥

प्रियदर्शना ये चार पत्नियाँ थी। काल, समय, परिस्थितियों को जानने वाले सभी देवसमूह इन्द्र के सहित उसकी सेवा करते थे।।15।।

स्यन्दनास्तुरगा नागाः पादाताश्च सहस्त्रशः।
सबभूवुर्महाकाया महान्तो जितकाशिनः॥16॥

तथा वे देवगण सेना में रथ घोड़े, हाथी और हजारों पैदल सैनिक भण्ड की सेवा में देते थे। उस भण्ड के इस प्रकार महाकाय और महान तथा प्रकाश को जीतने वाले।।16।।

बभूवुर्दानवाः सर्वे भृगुपुत्रमतानुगाः।
अर्चयन्तो महादेवमास्थिताः शिवशासने॥17॥

उस भण्ड के अनुयायी सेना सहित सभी दानवगण भृगुपुत्र शुक्राचार्य के आदेश निर्देशानुगत होते हुए शिव के शासन में महादेव में श्रद्धा रखते हुए शिव की सेवा की।।17।।

बभूवुर्दानवास्तत्र पुत्रपौत्रधनान्विताः।
गृहेगृहे च यज्ञाश्च सम्बभूवुः समन्ततः॥18॥

भगवान शिव की आराधना से समस्त समृद्धिशाली वे दानवपुत्र पौत्र तथा धनादि के धारण करने वाले

हो गए। भण्ड की राजधानी नगर में घरों-घरों में चारों तरफ यज्ञ यागादि सम्पन्न हो रहे थे।।18।।

ऋचो यजूंषि सामानि मीमांसान्यायकादयः ।
प्रवर्तन्तेस्म दैत्यानां गृहंप्रति गृहंप्रति ॥19॥

तब ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद मीमांसा, न्याय आदि आर्षग्रन्थ दैत्यों के घरों घर अध्ययन किए जाते थे।।19।।

यथाऽऽश्रमेषु मुख्येषु मुनीनां च द्विजन्मनाम् ।
तथा यज्ञेषु दैत्यानां बभूवुर्हव्यभोजिनः॥20॥

जिस प्रकार मुनियों और ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्यों के मुख्य आश्रमों में यज्ञों की पद्धतियां चलती थीं ठीक वैसे ही सभी दैत्यों के घरों में यज्ञादि सम्पन्न होने पर हव्यादि का उपभोग होने लगा अर्थात् यज्ञादि विधियां होने लगी तथा उपभोग भी होने लगा।।20।।

एवं कृतवतोऽप्यस्य भण्डस्य जितकाशिनः।
षष्टिवर्षसहस्राणि व्यतीतानि क्षणार्धवत् ॥21॥

इस प्रकार धर्मपूर्वक राज्य करते हुए जितकाशी भण्डासुर के साठहजार वर्षों का शासन आधे क्षण के समान व्यतीत हो गया।।21।।

विष्णुकृतमायासृष्टिः ॥

भगवान विष्णु द्वारा की गई माया की सृष्टि।

वर्धमानमथो दैत्यं तपसा च बलेन च ।
हीयमानबलं चेन्द्रं संप्रेक्ष्य कमलापतिः॥22॥

भगवती लक्ष्मी के पति भगवान विष्णु ने देखा कि दैत्य तप से तथा बल से बहुत ही अधिक बढ़ गए हैं, वहीं देवराजइन्द्र निस्तेज और बलहीन हो रहा है, यह देखकर उन्होंने।।22।।

ससर्ज मनसा कांचिन्मायां लोकविमोहिनीम्।
तामुवाच ततो मायां देवदेवो जनार्दनः ॥23॥

यह कालपरिणाम देखकर देवों के देव जनार्दन श्री विष्णु ने लोकों को मोहित करने वाली माया का मन से सृजन कर माया से कहा।।23।।

त्वं हि सर्वाणि भूतानि मोहयन्ती निजौजसा।
विचरस्व यथाकामं त्वां न जेष्यति कश्चन ॥24॥

हे देवी! तुम अपने ओज-तेज से समस्त भूतप्राणियों को मोहित करती हुई अपनी इच्छानुसार विचरण करो, तुम्हें कोई प्रभावित नहीं कर सकेगा और न ही तुम्हें जीत सकेगा।।24।।

त्वं तु शीघ्रमितो गत्वा भण्डं दैतेयनायकम्।
मोहयित्वाऽचिरेणैव विषयानुपभोक्ष्यसि ।।25।।

तुम शीघ्र यहां से दैत्यनायकभण्ड के पास चली जाओ, उसे अपने तेज से प्रभाव से मोहित कर विषयों का उपभोग करोगी।।25।।

एवं लब्धवरा माया तं प्रणम्य जनार्दनम्।
ययाचेऽप्सरसां मुख्याः सहायार्थे तु काञ्चन।।26।।

इस प्रकार वह माया जनार्दन भगवान् को प्रणाम करके बोली भगवन्! मैं आप की आज्ञानुसार आपसे शक्ति और प्रभाव लेकर जा रहीं हूं। आप मेरे सहयोग के लिए अप्सराओं में प्रधान विशेष अप्सराओं को मेरे साथ भेज दें।।26।।

तथेत्यप्सरसो मुख्या युयोज स तया हरिः।
ताभिर्विश्वाचीमुख्याभिः संयुक्ता सा मृगेक्षणा।
प्रययौ मानसस्याग्र्यं तटमुज्ज्वलभूरुहम् ।।27।।

माया का निवेदन सुनकर भगवान हरि ने अप्सराओं में प्रमुख विश्वाची आदि जिनके मृगियों जैसे विशालनेत्र थे, उन्हें माया के साथ कर दिया। वे सभी प्रमुख अप्सराएं माया के साथ हिमालय क्षेत्र के कैलाशपर्वत की तलहटी में स्थित मानसरोवर सामने फल पत्रों और पुष्पों से भरे हुए वृक्षों के क्षेत्र में चली गईं।।27।।

यत्र क्रीडति दैत्येन्द्रो निजनारीभिरन्वितः।
तत्रैव मृगशावाक्षी मूले चम्पकशाखिनः ।।28।।

जहाँ पर वह दैत्येन्द्रभण्ड अपनी नारियों से घिरा हुआ मनोरञ्जन करता रहता है वहीं वह मृगनयनी चम्पकवृक्ष के नीचे।।28।।

निवासमकरोद्रम्यं गायन्ती मधुरस्वनम्।
अथागतस्तु दैत्येन्द्रो बलिभिर्मन्त्रिभिर्वृतः।।29।।

वह मृगनयनी चम्पकवृक्ष के तले निवास करने लगी तथा मधुरस्वर में गायन करने लगी, तब अपने समर्थ मन्त्रियों से घिरा हुआ दैत्येन्द्रभण्ड वहां आया।।29।।

श्रुत्वा वीणानिनादं तु ददर्श च वराङ्गनाम्।
तां दृष्ट्वा चारुसर्वाङ्गीं विद्युल्लेखामिवापराम्।।30।।

दैत्येन्द्र भण्ड ने मधुरस्वर की ध्वनि को सुना, सुनकर वहाँ पहुंचा जहाँ से वह मधुरध्वनि आ रही थी, वहाँ जाकर देखा सर्वाङ्गसुन्दरी जेसे बिजलीरेखा हो, वही सुन्दरी वीणानिनाद कर रही थी।।30।।

मायामोहमहागर्ते पतितो मदनाभिधे ।
अथास्य मंत्रिणः पेतुर्हृदये स्मरतापिताः ॥31॥

उस भण्ड ने उस विद्युल्लेखा जैसी सर्वाङ्गसुन्दरी को देखा तो वह मदन (काम) नामक मायामय महामोहरूपी गड्ढे में गिर गया तथा उसके साथ मन्त्रिगण भी कामभावना से पीड़ित हुए और पतन के गड्ढे में गिरने लगे।।31।।

तेन दैतेयनाथेन चिरं संप्रार्थिता सती।
तैश्च संप्रार्थितास्ताश्च प्रतिशुश्रुवुरञ्जसा ॥32॥

उस दैत्यराज द्वारा चिरकाल तक प्रार्थना की गई वह सुन्दरी तथा उसके साथ की अप्सराएं भी रमणादि कार्यों में सहयोगिनी बनीं।।32।।

यास्त्वलभ्या महायज्ञैरश्वमेधादिकैरपि।
ता लब्ध्वा मोहिनीमुख्या निवृत्तिं परमां ययुः।।33।।

उन दैत्यों को जो पहिले यज्ञ यागादि करते थे, उन्हें उन मोहिनी अप्सराओं के मिलने से जो मानसिक मुग्धता का अनुभव हुआ वह उन्हें अश्वमेधादि यज्ञों के करने से भी नहीं मिला था। इससे अब उन दैत्यराज सहित समस्त असुरसमुदाय यज्ञ यागादि प्रक्रिया से दूर हो गया, भूल गया।।33।।

विसस्मेरुस्ततो वेदांस्तथा देवमुमापतिम्।
विससर्जुस्तथा यज्ञान्क्रियाश्चान्याः शुभावहाः।।34।।

वे दैत्यगण वेदों की वेदांगों की पद्धतियों को सभी भूलने लगे, वे भगवान शंकर उमापति को भी भूल गए। जितनी भी शुभता आदि सौख्य देने वाली प्रक्रियायें थी, यागादि की विधियां वे सभी विस्मृत हो गयी।।34।।

अवमानाहतश्चासीत्तेषामपि पुरोहितः।
मुहूर्तमिव तेषां तु ययुरष्टौ शतं समाः ॥35॥

उन दैत्य समुदायों के तिरस्कारपूर्ण व्यवहार से दैत्यपुरोहित शुक्राचार्य जी का भी तिरस्कार हुआ अपमान हुआ। उनका सहस्त्रोंवर्षों तक असुरों का संग भी व्यर्थ चला गया।।35।।

मोहितेष्वथ दैत्येषु सर्वे देवाः सवासवाः।
विमुक्तोपद्रवा ब्रह्मन्नामोदं परमं ययुः ॥36॥

हे अगस्त्य जी! जब वे दैत्येन्द्र समस्त दैत्यगण अप्सराओं की मोहिनी में व्यस्त हो गए और यज्ञ यागादि को भूलने लगे तथा उन्होंने अपने पुरोहित तक को अपमानित तथा उपेक्षित कर दिया, वह सभी परिवर्तन जानकर इन्द्र सहित समस्तदेव समुदाय निश्चिन्त हुआ और आनन्दित हुआ।।36।।

कदाचिदथ देवेन्द्रं दिव्यासिंहासनस्थितम्।
सर्वदेवैः परिवृतं नारदो मुनिरराययौ॥37॥

असुरों के पतन तथा देवताओं की निश्चिन्तता के समय में किसी शुभसमय में देवर्षि नारद समस्त देवताओं से घिरे दिव्यसिंहासन में बैठे इन्द्र के पास पहुंचे।।37।।

प्रणम्य मुनिशार्दूलं ज्वलन्तमिव पावकम्।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा देवेशो वाक्यमब्रवीत्॥38॥

नारद जी जो सर्वश्रेष्ठ मुनि हैं, अग्नि जैसे अत्यन्त प्रभावों से समन्वित हैं, उन्हें देखकर दोनों हाथ जोड़कर प्रार्थना करते हुए इन्द्र बोले।।38।।

भगवन्सर्वधर्मज्ञ परावरविदां वर।
अत्रैवागमनं तेऽद्य मां धन्यं कर्तुमिच्छतः।
भविष्यच्छोभनाकारं तवागमनकारणम्॥39॥

इन्द्र हाथ जोड़कर बोलेः भगवन्! आप सभी धर्म के मर्मों को जानने वाले हैं, पर विद्या और अपरविद्याविदों के बीच श्रेष्ठ हैं। आपके मेरे निकट आने का संकेत समझ में आ रहा है, कि हम देवगण निष्कंटक निश्चिंत होंगे।।39।।

त्वद्वाक्यामृतमाकर्ण्य श्रवणानन्दनिर्भरः।
अशेषदुःखादुत्तीर्य कृतार्थः स्यां मुनीश्वर॥40॥

इन्द्र बोले हे मुनीश्वर! कानों को आनन्द देने वाले आपके वाक्यामृत को सुनकर समस्त दुःखों के भार को उतार कर हम सभी देवगण कृतार्थ हों।।40।।

नारदः ।। तब नारद जी बोलेः-

अद्य सम्मोहितो भण्डो दैत्येन्द्रो विष्णुमायया।।41।।

आज वह दैत्येन्द्रभण्ड विष्णु की माया से विमोहित हो गया है और भोगविलासों में तल्लीन हो गया है।।41।।

तया विमुक्तो लोकांस्त्रीन्दहत्यग्निरिवापरः।
अधिकस्तवतेजोभिरस्त्रैर्मायाबलेन च ॥42॥

भगवान् विष्णु की माया के प्रभाव से भण्ड ने प्रज्ज्वलित अग्नि के समान तीनों लोकों को छोड़ दिया है। जबकि वह आपके तेजयुक्त अस्त्रों से और मायाबल से आप लोगों से अधिक है।।42।।

तस्य तेजोपहारस्तु कर्तव्योऽतिबलस्य च ।
विनाराधनतो देव्याः पराशक्तेस्तथा सति॥43॥

उस अतिबली भण्ड के तेज का अपहरण करना आवश्यक है। इसके लिए भगवती पराशक्ति की आराधना के बिना सम्भव नहीं है।43।।

अशक्योऽन्येन तपसा कल्पकोटिशतैरपि।
पुरैवोदयतः शत्रोराराधयत बालिशाः ।।44।।

अन्य तपादि उपायों के द्वारा सैकड़ों करोड़ों कल्पों द्वारा भी उसके असुर तेज का अपहरण असम्भव है। अरे मूर्खों समझों ऐसी स्थिति को।।44।।

आराधिता भगवती सा वः श्रेयो विधास्यति।
एवं सम्बोधितस्तेन शक्रो देवगणेश्वरः।।45।।

आप लोगों से आराधित वह देवी तुम लोगों का कल्याण करेगी। इस प्रकार नारद जी ने देवों के राजा इन्द्र को सम्बोधित किया।।45।।

तं मुनिं पूजयामास सर्वदेवैः समन्वितः।
तपसे कृतसन्नाहो ययौ हैमवतं तटम्।।46।।

देवराजइन्द्र ने उन नारदमुनि का पूजन किया, उनके निर्देशानुसार संकल्प कर समस्त देवगणों से समन्वित वह हिमालय के तट में गया।।46।।

तत्र भागीरथीतीरे सर्वतुर्कुसुमोज्वले।
पराशक्तेर्महापूजां चक्रेऽखिलसुरैः सह।।47।।

सभी ऋतुओं में वृक्षों में पुष्पादि से सम्पन्न भागीरथीगंगा के तट में इन्द्र ने सभी देवों के साथ मिलकर पराशक्ति की महापूजा की।।47।।

इन्द्रप्रस्थमभून्नाम्ना तदाद्यखिलसिद्धिदम्।
नारदेनोपदिष्टेन विधिना परदेवताम्।।48।।

जब से इन्द्र ने उस क्षेत्र में आराधना की तब से वह क्षेत्र इन्द्रप्रस्थ इस नाम से जाना जाने लगा, वह क्षेत्र समस्त सिद्धियों को देने वाला था। वहां नारदजी के उपदेश में बताए गए मार्ग से इन्द्र ने भगवती परदेवता की आराधना की।।48।।

कुर्वतां महतीं पूजां जपध्यानरतात्मनाम्।
उग्रे तपसि संस्थानामनन्यायत्तचेतसाम् ।।49।।

अन्य किन्हीं भी विषयों में मन को न लगाए हुए देवगणों सहित इन्द्र ने मन्त्र जप, देवी ध्यान में एकाग्रता से संलग्न होकर बड़ी पूजा सहित उग्रतप आरम्भ कर दिया।। 49।।

दशवर्षसहस्त्राणि दशाहानीव संययुः।
मोहितानथ तान्दृष्ट्वा भृगुपुत्रो महामतिः।।50।।

इस प्रकार उन देवताओं के दसहजार वर्ष दस दिनों जैसे बीत गए। इधर भृगुपुत्र महामति शुक्राचार्य ने असुरों को असावधान और मोहित देखा।।50।।

भण्डासुरं समभ्येत्य निजगाद पुरोहितः।
त्वामेवाश्रित्य राजेन्द्र सदा दानवसत्तमाः।।51।।

वे पुरोहित शुक्रचार्य भण्डासुर के पास जाकर बोले हे राजन! तुम्हारा ही आश्रय लेकर ये सभी दानवसमुदाय सदा निर्भय होकर सर्वत्र भ्रमणादि विहार करते हैं।।51।।

निर्भयास्त्रिषु लोकेषु चरन्तीच्छाविहारिणः।
जातिमात्रेण भवतो हन्ति सर्वान्सदा हरिः ।।52।।

ये सभी असुर समुदाय के असुरगण तुम्हारे कारण ही तीनों लोकों में निर्भय होकर घूमते रहते हैं। आप सभी को केवल दानव समझ कर वे हरि नष्ट करते रहते हैं।।52।।

तेनैव निर्मिता माया यया संमोहितो भवान्।
भवन्तं मोहितं दृष्ट्वा रन्ध्रान्वेषणतत्परः ।।53।।

उन्हीं विष्णु के द्वारा निर्मित माया के द्वारा आप समुदाय सहित मोहग्रस्त हो गए हो। आप लोगों को मोहित देखकर कमजोर छिद्र के अन्वेषण में इन्द्र संलग्न है।।53।।

भवतां विजयार्थाय करोतीन्द्रो महत्तपः ।
यदि तुष्टा जगद्धात्री तस्यैव विजयो भवेत्।।54।।

वह इन्द्र इस समय आप सभी पर विजय के लिए महान तप कर रहा है। यदि जगद्धात्री सन्तुष्ट हो गयी तो फिर उसकी विजय होगी।।54।।

इमां मायामयीं त्यक्त्वा मन्त्रिभिः सहितो भवान्।
गत्वा हैमवतं शैलं परेषां विघ्नमाचर।।55।।

अतः आप अपने मन्त्रियों को साथ लेकर इस मोहमयी नगरी राजधानी को छोड़कर हिमालय क्षेत्र में गंगा किनारे जाओ और विघ्नों को भेजों।।55।।

एवमुक्तस्तु गुरुणा हित्वा पर्यङ्कमुत्थितः।
मन्त्रिश्रेष्ठानथाहूय यथावृत्तान्तमाह सः ।।56।।

इस प्रकार गुरु शुक्राचार्य जी के द्वारा उद्बोधित किये जाने पर भण्ड ने पलङ्ग आदि भोग सामग्रियों को त्याग कर श्रेष्ठ मन्त्रियों को बुलवाया और पुरोहित गुरु के साथ हुई बातचीत तथा परिस्थिति को

उन मन्त्रियों को सुनाया।।56।।

तच्छ्रुत्वा नृपतिं प्राह श्रुतवर्मा विमृश्य च।
षष्टिवर्षसहस्त्राणां राज्यं तव शिवार्पितम्।
तस्मादप्यधिकं वीर गतमासीदनेकशः।।57।।

भण्ड के द्वारा कहे गए पुरोहितोक्त वृतान्त को श्रुतवर्मा नामक अपने मंत्री को सुनाया और विचार विमर्श किया। वह मंत्री बोला हे वीर! साठहजार वर्षों तक भगवान शिव द्वारा अर्पित राज्य तुम्हारा अभी तक रहा तथा उससे अधिक समय भी बीत गया है।।57।।

अशक्यप्रतिकार्योऽयं यः कालः शिवचोदितः।
काले तु भोगः कर्तव्यो दुःखस्य च सुखस्य च।।58।।

उन मंत्री ने कहा कि आपने बताया कि देवी की आराधना कर रहे हैं, हमें सावधान हो जाना चाहिये, तो समय का प्रतिकार करना अशक्य अर्थात प्रतिकार नहीं किया जा सकता तथा दुःखात्मक भोग हो या सुखात्मक भोग हो ये सभी काल प्रेरित हैं और निश्चित समय के लिए आते हैं अतः उन्हें अपने निश्चित समय में भोगना ही पड़ता है।।58।।

तदाह भीमकर्माख्यो नोपेक्ष्योऽरिर्यथाबलम्।
क्रियाविघ्ने कृतेऽस्माभिर्विजयस्ते भविष्यति।।59।।

मन्त्री ने कहा देव लोग जो कार्य देवी की आराधना का कार्य कर रहे हैं वह उपेक्षा लायक नहीं है। उनकी इस क्रिया में विघ्न हम लोगों के द्वारा किया जा सकता है उससे आपकी विजय होगी।।59।।

तव युद्धे महाराज परार्द्धबलहारिणि ।
दत्ता विद्या शिवेनैव तस्मात्ते विजयः सदा।।60।।

मन्त्री ने कहा महाराज ! आपको भगवान शिव ने युद्ध में शत्रु के आधे बल को उस शत्रु से हटकर वह तुम्हें मिल जाएगा। परिणामतः आपकी उस शत्रु पर विजय हो जाएगी। यह विद्या शिव की दी हुई है, अतः सदा आपकी विजय ही होगी।।60।।

अनुमेने च तद्वाक्यं भण्डो दानवनायकः ।
निर्गत्य सह सेनाभिर्ययौ हिमवतस्तटम् ।।61।।

उस मन्त्री की बातों को भण्ड ने सुना, उसे स्मरण भी हो गया अपनी शक्ति का। तब अपनी दैत्य सेनाओं के हिमालय के तट की ओर गया।।61।।

तपोविघ्नकरान्दृष्ट्वा दानवाञ्जगदम्बिका।
अलङ्घ्यमकरोदग्रे मायाप्राकार मुज्ज्वलम्।।62।।

देवताओं के तप में विघ्न करने वाले दानवों को जगदम्बिका ने देखा तब उन्होंने उन दानवों के सामने अलंघ्य मायाप्राकार (चट्टान दीवारी) बना दी।।62।।

तं दृष्ट्वा दानवेन्द्रोऽपि किमेतदिति विस्मितः।
संक्रुद्धो दानवास्त्रेण बभञ्जातिबलेन तु।
पुनरेव तद्बोऽभूदलङ्घ्यं सर्वदानवैः ॥63॥

उस चहारदिवारी को देखकर दानवेन्द्र भण्ड भी विस्मित हो गया, अरे यह क्या है। फिर क्रोध में भरकर उसे तोड़ने के लिए अतिबलशाली अस्त्रों का प्रयोग किया और तोड़ भी दिया, परन्तु पुनः सभी दानवों के न लांघ सकने योग्य प्राकार निर्मित हो गया।।63।।

वायव्यास्त्रेण तद्वीरो बभञ्ज च ननाद च॥64॥

फिर से उसने वायव्यास्त्र का प्रयोग कर प्राकार को भंग किया और अट्टहास किया।।64।।

पौनःपुन्येन तद्भग्नमभूत्पुनरुपस्थितम् ।
एतद्दृष्ट्वा तु दैत्येन्द्रो विषण्णः स्वपुरं ययौ॥65॥

इस प्रकार बार-बार प्राकार के दानवअस्त्रों से तोड़ते प्राकार बार-बार फिर बन जाते थे, यह देखकर भण्ड निराश होकर अपनी राजधानी में चला गया।।65।।

तां चादृष्ट्वा जगद्धात्रीं दृष्ट्वा तद्घोर सैनिकम्।
भयाद्दुद्रुविरे देवा विमुक्तसकलक्रियाः ॥66 ॥

तब देवों ने उन जगद्धात्री का दर्शन किया और भण्ड के घोर दानव सैनिक को देखा, इसी के मध्य देवों उस दिव्यप्राकार को देखा तब वे देवगण समस्त यज्ञसम्बधी प्रक्रिया त्याग कर भय से द्रवित हो गये।।66।।

तानुवाच व्रती शक्रो दैत्येन्द्रोऽयमिहागतः।
अशक्यं समरे योद्धुमस्माभिरखिलैरपि ।।67 ॥

उस सभी देवों से व्रत में सनद्ध शक्र इन्द्र बोले वह दैत्येन्द्र यहाँ विघ्न करने आया था, उसे यह अनुभव हो गया कि हम देवों को जीत नहीं सकेंगे अतः निराश होकर वापस लौट गया।।67।।

पलायितानामपि नो गतिरन्या न कुत्रचित् ।
कुण्डं योजनविस्तारं सम्यक्कृत्वा तु शोभनम् ॥68॥

दे देवों! भण्ड ससैन्य आया था, विघ्न करने के लिए उसने हम लोगों की सुरक्षा के लिए विशाल प्राकारों को (चहार दीवारी) कई बार तोड़ा भी पर वे पुनः बन जाते थे अतः वह निराश होकर भाग गया। भागने वालों से क्या भय हो सकता है वह हम लोगों के इस आराधना में कुछ हानि

नहीं पहुंचा सकते। हम लोग योजन परिमाण (1 योजन 4 कोस अर्थात 6 किलोमीटर) का कुण्ड बनाकर भगवती की आराधना करें।।68।।

महायागविधानेन प्रणिधाय हुताशनम्।
यजाम परमां शक्ति महामांसैर्वयं सुराः।
ब्रह्मभूता भविष्यामो भोक्ष्यामो वा त्रिविष्टपम्।।69।।

अब हम लोग निर्विघ्न होकर, निश्चिन्त होकर एकाग्रता से उस एक योजन विस्तृत विशालकुण्ड में शास्त्र विधानोक्त पद्धति से हुताशन अग्नि की प्रतिष्ठा करें। फिर इष्टमंत्रों से मन, तन बुद्धि को मन्त्रमय बनाकर मन्त्रपूत मन्त्रन्यास किए हुए शरीर जो सप्तधातु मांस है, उससे सामान्य मांस स्थिति समाप्त हो जाती है अतः उस मन्त्र से अभिमंत्रित मांस, रक्त, मन्त्र के शब्द परमाणुओं से एकलय होकर महामांस संज्ञा प्राप्त करते हैं। (धर्मशास्त्रों में महा शब्द का प्रयोग कहाँ नहीं करना चाहिए ये उक्ति वहाँ है ''शंखे तैले तथा मांसेमहच्छब्दो न दीयते'') ऐसे महामांस से हम लोग महायाग सम्पन्न करेंगे, जिससे हम लोग ब्रह्मभूत हो जायेंगे या फिर हम देव स्वर्गलोक अधिपति हो जाएंगे।।69।।

एवमुक्तास्ततः सर्वे देवाः सेन्द्रपुरोगमाः।
विधिवज्जुहुवुर्मांसमुत्कृत्योत्कृत्य मन्त्रतः।।70।।

इस प्रकार इन्द्र सहित सभी देवगण उस विशालकुण्ड में आवाहित हुताशन यज्ञाग्नि में आहुति मंत्रों का प्रतीक सजीव शरीर का मांस उसे काट-काट आहुति देने लगे।।70।।

हुतेषु सर्वमांसेषु पादेषु च करेषु च।
होतुमिच्छत्सु देवेषु कलेवरमशेषतः।।71।।

उन देवों ने अपने सजीव और चेतन मांस हाथों का पैरों का काट काट कर मन्त्रों की आहुति में प्रतिष्ठित हुताश यज्ञाग्नि में होम किया। बाद में उनके यह विचार उठा के अब इस यज्ञाग्नि में पूरा शरीर होम कर दें। ऐसा निश्चिय करते ही।।71।।

प्रादुर्बभूव परमं तेजःपुञ्जमनूपमम्।
कोटिसूर्यप्रतीकाशं चन्द्रकोटिसुशीतलम्।।72।।

ऐसी इच्छा के उदित होते ही उस कुण्ड की हुताग्नि की विशाल ज्वालाओं के मध्य में अनुपम तेजः पुञ्ज प्रकट हुआ, जो करोड़ों सूर्यों के समान तेजस्वी और करोड़ों चन्द्रमाओं के समान शीतल आह्लाद देने वाला था।।72।।

तन्मध्यमे समुदभूचक्राकारमनुत्तमम्।
तन्मध्यमे महादेवीमुदयार्कसमप्रभाम्।।73।।

उस कुण्डाग्नि से महान् तेजः समूह के बीच श्रीचक्राकार जो अनुपमेय था वह प्रकट हुआ उस चक्र के मध्य में भगवती महादेवी उदित होते सूर्य के समान बालार्कारुणाभा थी। (4 बैन्दवासनायै नमः)।।73।।

जगदुज्जीवनाकारां ब्रह्मविष्णुशिवात्मिकाम् ।
सौन्दर्यसार सीमान्तामा नन्दरससागराम् ॥74॥

जो भगवती संसार को जीवन देने वाली थीं, ब्रह्मा, विष्णु और शिव की शक्ति वाली अर्थात् ब्रह्मा सृष्टि शक्ति, विष्णु की स्थिति पालनीशक्ति और शिव की रुद्र की संहारशक्ति वाली थीं। (4 इच्छाशक्तिज्ञानशक्तिक्रियाशक्तिस्वरूपिणी श्री पादुकां पूजयामि नमः) वे भगवती सुन्दरता का जो भी सार है उसका आधार थी और आनन्दरस की सागर थी।।74।।

जपाकुसुमसङ्काशां दाडिमीकुसुमाम्बराम्।
सर्वाभरणसंयुक्तां शृङ्गारैकरसालयाम्।।75।।

वे जपाकुसुम (जासौन का फूल) के रंग के समान लालवर्ण वाली थीं। (भगवती के सहस्त्रनाम मे एक नाम है जपाकुसुमसन्निभा) उन्होंने दाडिम अनार के फूलो के रंगवाली साड़ी अर्थात किंचिद्रक्तांभकेसरी रंग की साड़ी धारण की हुई थीं। श्रीविग्रह में सिर से लेकर चरणों तक आभूषणों को धारण किये हुए थीं, वे शृंगार रस की एकमात्र आलय थीं।।75।।

कृपातरङ्गितापाङ्गनयनालोककौमुदीम्।
पाशाङ्कुशेक्षुकोदण्डपञ्चबाणलसत्कराम्॥76॥

वे भगवती अपनी कृपा की तरंगों से भरपूर पलकों से युक्तनेत्रों की चन्द्रिका थीं। उनके चारों हाथों में पाश, अंकुश, इक्षु धनुष और पांच पुष्पबाण विराजित थे।।76।।

तां विलोक्य महादेवीं देवाः सर्वे सवासवाः।
प्रणेमुर्मुदितात्मानो भूयो भूयोऽखिलात्मिकाम्।।77।।

देवों सहित इन्द्र ने उस विशालकुण्ड में आवाहित अग्नि की ज्वालाओं के बीच चक्र (श्री चक्र) के मध्यभागबिन्दु का दर्शन किया। बार-बार समस्त विश्व की आत्मा भगवती को आनन्दित होकर प्रणाम कर रहे थे।।77।।

तया विलोकिताः सद्यस्ते सर्वे विगतज्वराः।
संपूर्णाङ्गा दृढतरा वज्रदेहा महाबलाः॥78॥

भगवती ने जब मृतसंजीवनी अमृतवर्षिणी करुणारसमयी दृष्टि से जो देखा, वे सभी देवता इन्द्रसहित अत्यन्त सुदृढ़ वज्रवत देह वाले और महाबली हो गए, उनके समस्त संताप दूर हो गए।।78।।

तुष्टुवुश्च तदा देवीमम्बिकामखिलार्थदाम्॥79॥

सभी ने भगवती की स्तोत्रों से स्तुति की उन मां अम्बिका को जो समस्त कामनाओं को पूरा करती हैं, उन्हें प्रार्थना कर प्रसन्न किया।।79।।

।।इति श्रीललितोपाख्याने देवीप्रादुर्भावो नाम सप्तमोऽध्यायः सम्पूर्णः।।

॥श्रीमन्महागणाधिपतये नमः।।

श्रीमाताललिताम्बायै नमः श्रीपादुकां पूजयामि नमः॥
ॐ वन्दे गुरुपदद्वन्द्वं अवाङ्मनसगोचरम्॥
रक्तशुक्ल प्रभामिश्रमतर्क्यं त्रैपुरं महः॥
ॐ आराध्यदेवं भक्तानां कलिदोषविनाशकम्॥
वन्दे श्रीगिरिजानन्दं शारदाश्रीमठाधिपम्।।
ॐ अखण्डं यस्यज्ञानञ्च भक्तिर्यस्यानपायिनी।।
शारदाज्योतिरीशस्य दर्शनं (पूजनं, वन्दनं) शुभमस्तुनः।।

अथ अष्टमोऽध्यायः ॥८॥ 38 श्लोकात्मकः

॥ललितास्तवराजः॥

जय देवि जगन्मातर्जय देवि परात्परे।
जय कल्याणनिलये जय कामकलात्मिके॥1॥

इस प्रकार उस महायज्ञ से भगवती का प्रादुर्भाव हो गया तब सभी देवों ने इन्द्र सहित उनकी इस ललितास्वराज नामक से स्तुति कीः- हे समस्त जगत् की माता! हे देवि आपकी जय, दे देवि! आप पर से भी पर हो आप की जय हो। हे मातः! आप कल्याण की एकमात्र भवन हो आपकी जय हो। आप भगवति! कामकला की आत्मारूपिणी आपकी जय हो।।1।।

जय कामेशवामाक्षि जय कामाक्षि सुन्दरि!
जयाखिलसुराराध्ये जय कामेशि कामदे ॥2॥

हे मातः! आप भगवान कामेश्वर की पत्नी आपकी जय हो। हे सुन्दरी भगवति कामाक्षी आपकी जय हो।। आप देवगणों की आराध्या हो आप की जय हो।। हे भगवति आप कामेश्वरी हैं, आप कामनाओं को देने वाली हैं।।2।।

जय ब्रह्ममये देवि ब्रह्मानन्दरसात्मिके।
जय नारायणि परे नन्दिताशेषविष्टपे॥3॥

हे देवि! आपकी जय हो, आप ब्रह्ममयी हो आपकी जय हो, आप ब्रह्मरूपानन्द हो आपकी जय हो, आप रसरूप आत्मवान हो आपकी जय हो, हे नारायणी आपकी जय हो, आप पराशक्ति हो आपकी जय हो, आपने सम्पूर्ण देवजगत को आनंदित किया है आपकी जय हो।।3।।

जय श्रीकण्ठदयिते जय श्रीललिताम्बिके।
जय श्रीविजये देवि! विजय श्रीसमृद्धिदे॥4॥

आप श्रीकण्ठ नारायण की प्रिया हो आपकी जय हो, हे भगवति ललिताम्बिके आपकी जय हो। हे श्री विजये देवि आपकी जय हो, हे भगवती! आप भक्तों को श्री देती हैं, संघर्षों में विजय देती हैं। आपकी जय हो।।4।।

जातस्य जायमानस्य चेष्टापूर्तस्य हेतवे ।
नमस्तस्यै त्रिजगतां पालयित्र्यै नमो नमः ॥5॥

हे माता! जिन जन्म हो चुका है और जो उत्पन्न होने वाले अर्थात जिनका जन्म होने वाला है, तथा सामाजिक कल्याण के लिए आरंभ किये गए इष्टकार्य और आपूर्त की एकमात्र कारण उन आपकी जय हो, तीनों जगत् भूर्लोक, भुवर्लोक, तथा स्वर्लोक का पालन करने वाली आपकी जय हो।।5।।

कला मुहूर्तकाष्ठाहर्मास संवत्सरात्मने।
नमः सहस्त्रशीषार्यै सहस्त्रमुखलोचने।।6।।

हे भगवती! आप काल के भुक्त होने में जितने भी अल्पतथा बड़े भागांश जैसे कला (घटी), मुहूर्त (प्रहर), काष्ठा (दिशा), अहः (दिन), मास, संवत्सर (वर्ष), इनकी स्वरूप हो एवं आपका विशाल श्रीविग्रह (विराटरूप) सहस्त्र (पूर्णता का बोधक, गिनती का नहीं), सिर, मुख, नेत्र सहस्त्रों हैं अर्थात अनन्त हैं, ऐसे विराटशरीर वाली हैं (वेद में भी सहस्त्रशीर्षा पुरुषः सहस्त्राक्षः सहस्त्रपात्। स भूमिं सर्वतः स्पृष्ट्वात्यत्तिष्ठद्दशांगुलम्)।।6।।

नमः सहस्त्रहस्ताब्जपादपङ्कजशोभिते।
अणोरणुतरे देवि महतोऽपि महीयसि॥7॥

हे विराट विशाल श्री विग्रहवाली भगवती! आपके सहस्त्र हस्तकमल हैं, आपके सहस्त्रचरण कमल हैं, इनसे सुशोभित आप हैं, आप अणु (अंतिमकण) से भी अणुरूपी हैं, एवं आप महान से भी महान हैँ, आपकी जय हो, (वेद में भी अणोरणीयान महतो महीयान्-ब्रह्म)।।7।।

परात्परतरे मातस्तेजस्त्वं तेजसामपि।
अतलं तु भवेत्पादौ वितलं जानुनी तव॥8॥

हे परब्रह्म स्वरूपिणी अम्ब! आप पर से भी परतर हैं आप तेज को धारण करने वालों की भी तेज हैं। ब्रह्माण्ड का अन्तिम निम्न तलअतललोक आपके चरण हैं। वितललोक आपके घुटने हैं।।8।।

रसातलं कटीदेशः कुक्षिस्ते धरणी भवेत् ।
हृदयं तु भुवर्लोकः स्वस्ते मुखमुदाहृतम्॥9॥

ब्रह्माण्ड का निम्नभाग रसा तल आपका कटि (कमर) भाग है। तुम्हारी कुक्षि (कोंख) धरणी

याने पृथिवी है, भुवर्लोक (अन्तरिक्ष) हृदय है तथा आपका मुख ही स्वर्लोक है।।9।।

दृशश्चन्द्रार्कदहना दिशस्ते बाहवोऽम्बिके।
मरुतस्ते तनूच्छ्वासा वाचस्ते श्रुतयोऽखिलाः॥10॥

हे अम्ब ! आपके तीन नेत्र ही तीन तेजस्तत्त्व हैं, चन्द्रमा, सूर्य और अग्नि आपके दस बाहु दस दिशा हैं आपके दिव्य शरीर में जो श्वास हैं, वे ही उनचास मरुद्गण हैं तथा आपके शब्द ही सम्पूर्ण वेद वेदांग हैं।।10।।

क्रीडा ते लोकरचना सखा ते चिन्मयः शिवः।
आहारस्ते सदानन्दो वासस्ते हृदयं सताम्॥11॥

हे जगदम्ब ! समस्त लोकों की रचना- आपका मनोरञ्जक खेल है, वे भगवन चिन्मय आत्मरूप दक्षिणामूर्ति शिव आपके सखा हैं। (हरिकेशसखी ल.स.नाम) सदानन्द आपका नैवेद्य है, तथा सज्जनों सन्मार्गस्थजनों का हृदय आपका निवासस्थान है।।11।।

दृश्यादृश्यस्वरूपाणि रूपाणि भुवनानि ते।
शिरोरुहा नभस्ते तु तारकाः कुसुमानि ते॥12॥

दृश्य और अदृश्य स्वरूप तुम्हारे ये भुवन हैं अर्थात चतुर्दशभवन तुम्हारे दृश्यरूप हैं और अदृश्यरूप आत्मवैभवरूप जो ध्यानमग्न है वह आपके अदृश्यभवन हैं (अहमी प्रलयं कुर्वन्निदमः प्रतियोगीनः पराक्रमपरोभुंक्ते स्वभावमाशिवापहम्) इस पंक्ति में यह ज्ञात होता है कि प्रतियोगी इंदम् अर्थात् यस्याभावः स प्रतियोगी जिसका अभाव होता है, उसे प्रतियोगी कहते हैं। इदम शब्द से कल्पित हुआ संसार वह मिथ्या है तथा दृश्य है और अनुयोगी अहम्. शब्द है। यस्य भावःस अनुयोगी जिसका अभाव न हो वह अनुयोगी वह अदृश्य है। इसलिए चिन्तन में यह कहते हैं दृश्य मिथ्या नाशवान है, उसमें सत्त्वरूप से विद्यमान अदृश्य आत्मलोक में रहो, पर ये दोनों भगवती के भुवन है। आकाश में जितने असंख्य तारागण हैं, वे सभी आपके सिर के केश तथा सिर में वेणी आदि रूप में गुंथे हुए पुष्प हैं।।12।।

धर्माद्या बाहवस्ते स्युरधर्माद्यायुधानि ते।
यमाश्च नियमाश्चैव करपादरुहास्तथा।।13॥

हे भगवति ! आपकी चारभुजाएं धर्मादि है अर्थात, धर्म, ऐश्वर्य-ज्ञान और वैराग्य ये धर्मादि इनके रूप आपके चारबाहु तथा अधर्मादिचार-अधर्म, अनैश्वर्य, अज्ञान और अवैराग्य ये चार अधर्मादि अर्थात आपके शस्त्र पाश, अंकुश, इक्षु धनुष और पांच पुष्प बाण। एवं यमनियम आपके करों के तथा चरणों के नख हैं- अर्थात यम पांच हैं ब्रह्मचर्य, अस्तेय, अपरिग्रह सत्य और अहिंसा

ये पांच यम आपके करों के नख हैं (करांगुलिनखोत्पन्न नारायणदशाकृतिः ल.स.नाम में) एवं पांच नियम शौच, सन्तोष, तप और स्वाध्याय ये आपके चरणों के नखों की किरणरूप हैं। (नखदीधितिसंछिन्ननमज्जनतमोगुणा ल.स.नाम) आचरण के लिए शास्त्रनिर्देश है कि यमानभीक्ष्णं सेवेत नियमान् यत्परः क्वचित्) इसके आधार पर भगवती की शरण में जाने पर उनके उद्दीप्त नखमणिचन्द्रिका से अनादिसंसार का अनादि मिथ्याज्ञान और अनात्मभाव सभी नष्ट हो जाएंगे।।13।।

स्तनौ स्वाहास्वधाकारौ लोकोन्जीवनकारकौ।
प्राणायामास्तु ते नासारसना ते सरस्वती ॥14॥

हे मां! ये देव निमित्त हव्य उसे स्वाहा से लेती है, तथा पितृकृत्य में स्वधा शब्द से पितृगण की तृप्ति होती है। ये स्वाहा और स्वधा आपके बालक को जीवनतत्त्व देने वाले स्तन हैं पयोधर हैं, जो समस्तलोकों के जीवन संवर्धन करने वाले हैं। यह जो प्राणायाम है यह आपकी नासिका है तथा आपकी जिह्वा ही सरस्वती हैं।।14।।

प्रत्याहारस्त्विन्द्रियाणि ध्यानं ते धीस्तृडासनम्।
मनस्ते धारणाशक्तिर्हृदयं ते समाधिका॥15॥

हे भगवति! यह जो प्रत्याहार नामकयोगांग हैं वह आपकी इन्द्रियां हैं और जो ध्यान नामक योगांग है वह आपकी बुद्धि हैं, आपका मन आपकी धारणा शक्ति है और आपका हृदय समाधि है।।15।।

महीरुहास्तेऽङ्गरुहाः प्रभातं वसनं तव।
भूतं भव्यं भविष्यच्च नित्यं च तव विग्रहम्॥16॥

ये जितने भी वृक्ष समूह हैं ये सभी आप के विराट शरीर के रोम हैं, प्रभातवेला आपका वस्त्र है यह तीन प्रकार का काल भेद है भूतकाल, वर्तमान और भविष्यकाल ये तीनों कालरूप नित्यस्वरूप शरीर हैं।।16।।

यज्ञरूपा जगद्धात्री विष्वग्रूपा च पावनी।
आधारं त्वां प्रपश्यन्ति न सम्यङ्निखिलाः प्रजाः।।17।।

मातः ! आप संसारको धारण करने वाली जगद्धात्री यज्ञरूपा हो, आप ही विष्वग्रूप पावनी अर्थात् पवित्र करने वाली शक्ति हो, सृष्टि के आरंभ में दयार्द्र होकर संसार का आधार बनकर समस्त प्रजाओं का सृजन किया था।।17।।

हृदयस्थापि लोकानामदृश्या मोहनात्मिका।
नामरूपविभागं च या करोति स्वलीलया॥18॥

हृदय में स्थित हैं तो भी लोगों को आप दिखाई नहीं देती आप अदृश्य रहती हैं और लोगों को मोहित कर देती हो आप खेल-खेल में ही प्राणियों के नाम और रूप ये दो विभाग कर देती हैं संसार इन्हीं दो में मोहित रहता है और आप न नाम हैं न रूप हैं केवल निराकार हैं।।18।।

तान्यधिष्ठाय तिष्ठन्ती तेष्वसक्ता च कामदा।
नमस्तस्यै महादेव्यै सर्वशक्त्यै नमो नमः॥19॥

आप उन नाम रूपों से अधिष्ठित होकर - जैसे आपके कार्यों के कारण आपके वैसे वैसे नाम हो गए, यथा चण्डी, काली, दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती आदि आपके सहस्त्रनाम स्तोत्रादि भी इसके ज्वलंत प्रमाण हैं और इनके द्वारा लोगों की कामनाएं भी पूर्ण होती हैं, पर आप इनसे तथा इनके संकेतित गुणधर्मों से सर्वथा असक्त रहती हैं आप पूर्णनिरपेक्षा हैं। ऐसी मां को नमः अर्पित है उन महादेवी सर्वशक्ति को बार-बार नमन है।।19।।

या देवी परमाशक्तिः परब्रह्माभिधायिनी।
ब्रह्मानन्दाभिधानायै तस्यै देव्यै नमो नमः॥20॥

जो देवी भगवती परमाशक्ति हैं और परब्रह्मरूपिणी है तथा ब्रह्मानन्द ही जिनका अभिधान है अर्थात् परमनिरपेक्ष नाम है ऐसी उन देवी को बार-बार प्रणाम है।।20।।

यदाज्ञया प्रवर्तन्ते वह्निसूर्येन्दुमारुताः।
पृथिव्यादीनि भूतानि तस्यै देव्यै नमो नमः॥21॥

जिन भगवती की आज्ञा से अग्नि, सूर्य, चन्द्र और वायु आदि अपने-अपने कार्यों में प्रवृत्त होते हैं तथा पृथिवी आदि भूत अर्थात पृथिवी, जल, अग्नि (तेज), वायु और आकाश ये पांच महाभूत अपने अपने गुण धर्मों से सृष्टि कार्य आधार बने रहते हैं ऐसी भगवती को बार-बार नमन अर्पित है।।21।।

या ससर्ज विधातारं सर्गादावादिभूरियम्।
दधार स्वयमेवैका तस्यै देव्यै नमो नमः॥22॥

जिसने विधाता ब्रह्म को जो सृष्टि आदि संसार धारण करते हैं, पितामह हैं उनको उत्पन्न किया और इस भूलोक को उत्पन्न किया तथा जिन्होंने स्वयं ही अकेले इस संसार को धारण किया है, ऐसी उन भगवती को प्रणाम समर्पित है।।22।।

यया धृता तु धरणी ययाकाशाद्यमेयया।
यस्यामुदेति सविता तस्यै देव्यै नमो नमः ॥23॥

जिन जगद्धारिणी भगवती ने पृथ्वी को धारण किया था, उसी प्रकार उन्होंने अनन्त आकाश को धारण किया है, जिन सृष्टिकत्री भगवती के द्वारा आज्ञा पाकर सूर्य उदित होते हैं, ऐसी उन मां को बार-बार प्रणाम है।।23।।

यदन्तरस्थं त्रिदिवं यदाधारोऽन्तरिक्षकः।
यन्मयश्चाखिलो लोकस्तस्यै देव्यै नमो नमः॥24॥

जिसकी इच्छा से त्रिदिव अर्थात समस्त संसार का उदय होता है, और जिस पर निर्भर रहता है तथा उसी में लीन भी हो जाता है अर्थात् भगवती सृष्टि में, पालन में तथा संहार में मुख्य कारण है, उन्हें बार-बार प्रणाम अर्पित है।।24।।

यत्रोदेति जगत्कृत्स्नं यत्र तिष्ठति निर्भरम्।
यत्रान्तमेति काले तु तस्यै देव्यै नमो नमः॥25।।

जिन भगवती की आत्मसंकल्प शक्ति से जगत् की उत्पत्ति होती है, जिसमें जगत निर्भर रहता है समय होने पर जिसमें विलीन हो जाता है ऐसी देवी को नमस्कार है।।25।।

नमो नमस्ते रजसो भवायै नमो नमः सात्विकसंस्थितायै।
नमो नमस्ते तमसो हरायै नमो नमो निर्गुणतः शिवायै॥26॥

हे रजोगुणरूपभवा तुम्हे नमस्कार है, हे सत्वरूप संस्था में स्थिति में विराजमान आपको प्रणाम है तथा तमोगुणरूप हर ही आप है, आपको प्रणाम है एवं आप तीनों गुणों से विलक्षण निर्गुण, निराकाररूप हो आपको प्रणाम समर्पित है।।26।।

नमो नमस्ते जगदेकमात्रे नमो नमस्ते जगदेकपित्रे।
नमो नमस्तेऽखिलतन्त्ररूपे नमो नमस्तेऽखिलयज्ञरूपे।।27॥

हे अम्ब! आप एकमात्र जगत् की माता हो अर्थात् जिन जिन संज्ञारूपों से सम्बन्धों से, समस्त लिङ्गों से आप भेदरहित हो ये सभी आप में विलीन है और समस्त यज्ञरूपा हो (यज्ञोवैश्रेष्ठतमं कर्म)।।27।।

नमो नमो लोकगुरुप्रधाने नमो नमस्तेऽखिलवाग्विभूत्यै।
नमोस्तु लक्ष्म्यै जगदेकतुष्टयै नमो नमः शाम्भवि सर्वशक्त्यै ॥ २८ ॥

हे प्रधान लोकगुरु आपको प्रणाम है, मातः आप अखिलवाणी की विभूति है आप को प्रणाम आप ही एक मात्र संसार की तुष्टि हो आपको प्रणाम (या देवी सर्वभूतेषु तुष्टिरूपेण संस्थिता नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः दुर्गासप्तशती 5 अ.) आप सर्वशक्तिरूपा शाम्भवि हो आपको प्रणाम।।28।।

अनादिमध्यान्तमपाञ्चभौतिकं ह्यवाङ्मनोगम्यमतर्क्यवैभवम्।
अरूपमद्वन्द्वमदृष्टिगोचरं प्रभावमग्र्यं कथमम्ब वर्ण्यते ॥ २९ ॥

हे जगदम्ब! मैं आपके आदि मध्य और अन्तरहित पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश इन पंचभूतों से रहित वाणी मन और इन्द्रियों से न जानने योग्य तर्क रहित वैभव वाले रूपरहित द्वन्द्वरहित दिखाई न देने वाले तथा अग्र प्रभाव वाले रूप का वर्णन कैसे कर सकता हूं।।29।।

प्रसीद विश्वेश्वरि विश्ववन्दिते प्रसीद विश्वेश्वरि वेदरूपिणि ।
प्रसीद मायामयि मन्त्रविग्रहे प्रसीद सर्वेश्वरि सर्वरूपिणि ॥ ३० ॥

अन्त में प्रार्थना है हे विश्वेश्वरि हे विश्ववन्दिते प्रसन्न होओ, हे विश्वेश्वरि वे वेदरूपिणि प्रसन्न होओ, हे मायामयि हे मन्त्रस्वरूपिणि प्रसन्न होओ हे सर्वेश्वरि हे सर्वरूपिणि आप हम लोगों पर प्रसन्न हो जाओ।।30।।

इति स्तुत्वा महादेवीं देवाः सर्वे सवासवाः।
भूयो भूयो नमस्कृत्य शरणं जग्मुरञ्जसा॥31॥

इस प्रकार इन्द्रादि समस्त देवताओं ने महादेवी की स्तुति की उन्हें बार-बार प्रणाम किया और उनकी शरण में पहुंचे।।31।।

ततः प्रसन्ना सा देवी प्रणतं वीक्ष्य वासवम्।
वरेण छन्दयामास वरदाखिलदेहिनाम्॥ 32॥

इन्द्रादि देवों के शरणागत होने पर भगवती ने उन सभी देवों को प्रणत होते देखा, वे प्रसन्न होकर उनसे बोली मैं समस्त प्राणियों को वर देने वाली हूं, इन्द्र तुम्हे क्या चाहिये वह बोलो।।32।।

इन्द्रः ।।

यदि तुष्टासि कल्याणि वयं दैत्येन्द्रनिर्जिताः।
दुर्धरं जीवितं देवि त्वां गताः शरणार्थिनः॥33॥

श्रीदेवी ।।

इन्द्र बोले हे भगवति! हे कल्याणी! हम सभी देवगण उस दैत्येन्द्र भण्ड से जीत लिए गए हैं। हम लोगों का जीवन संकटग्रस्त हो गया है। इसी कारण हम लोग आपकी शरण में आए हैं। हम लोगों की रक्षा करो।।33।।

अहमेव विनिर्जित्य भण्डं दैत्यकुलेश्वरम्।
अचिरात्तव दास्यामि त्रैलोक्यं सचराचरम्॥34॥

भगवती श्रीदेवी बोली हे इन्द्र! मैं उस दैत्यकुल के ईश्वर भण्ड को पराजित कर शीघ्र तुम्हे तुम्हारा

वह चराचरात्मक त्रैलोक्य साम्राज्य दूंगी।।34।।

निर्भया मुदिताः सन्तु सर्वे देवगणास्तथा॥35॥

भगवती की वाणी सुन सभी देवगण निर्भय हो गए और प्रसन्न हुए।।35।।

ये स्तुवन्ति च मां भक्त्या स्तवेनानेन मानवाः।
भाजनं ते भविष्यन्ति धर्मश्रीयशसां सदा॥36॥

जो भी मनुष्य भक्ति से इस स्तोत्र के द्वारा स्तुति करेंगे वे धर्म, श्री और सम्पूर्ण यश के पात्र होंगे।।36।।

विद्याविनयसम्पन्ना नीरोगा दीर्घजीविनः।
पुत्रमित्रकलत्राढ्या भवन्तु मदनुग्रहात्॥37॥

वे सभी मेरे शरणागत भक्त जन विद्या, विनय से सम्पन्न एवं लम्बे समय तक दीर्घजीवी हो, उनके पुत्र, मित्र एवं पत्नी से भरा परिवार हो।।37।।

इति लब्धवरा देवा देवेन्द्रोऽपि महाबलः।
आमोदं परमं जग्मुस्तां विलोक्य मुहुर्मुहुः॥38॥

महाबलि देवेन्द्र इन्द्र सहित वे समस्त देवगण भगवती से वर प्राप्तकर आमोद से भरपूर होगए और उन्होंने बार-बार भगवती का दर्शन किया।।38।।

इति श्रीललितोपाख्याने ललितास्तवराज-
कथनं नाम अष्टमोऽध्यायः॥ 8 ॥

॥श्रीमन्महागणाधिपतये नमः।।

श्रीमाताललिताम्बायै नमः श्रीपादुकां पूजयामि नमः॥
ॐ वन्दे गुरुपदद्वन्द्वं अवाङ्मनसगोचरम्॥
रक्तशुक्ल प्रभामिश्रमतर्क्यं त्रैपुरं महः॥
ॐ आराध्यदेवं भक्तानां कलिदोषविनाशकम्॥
वन्दे श्रीगिरिजानन्दं शारदाश्रीमठाधिपम्।।
ॐ अखण्डं यस्यज्ञानञ्च भक्तिर्यस्यानपायिनी।।
शारदाज्योतिरीशस्य दर्शनं (पूजनं, वन्दनं) शुभमस्तुनः।।

अथ नवमोध्यायः ॥ ९ ॥ 31 श्लोकात्मकः

[देवीदर्शनाय ब्रह्माद्यागमनम् ॥]

हयग्रीवः ॥

एतस्मिन्नेव काले तु ब्रह्मा लोकपितामहः ।
आजगामाथ देवेशीं द्रष्टुकामो महर्षिभिः ॥ 1 ॥

जैसे ही यज्ञाग्नि से प्रकट होकर भगवती ने देवताओं को निश्चिंत होने का वरदान दिया तथा वे देवता इन्द्र सहित परम प्रसन्न हुए। इसी समय महर्षियों के साथ लोकपितामह ब्रह्माजी दर्शनों की कामना से वहां आए।।1।।

आजगाम ततो विष्णुरारूढो विनतासुतम् ।
शिवोऽपि वृषभारूढः समायातोऽखिलेश्वरीम् ॥२॥

ब्रह्माजी के बाद गरुड़ की पीठ पर बैठे हुए भगवान विष्णु वहां आये, इसके बाद भगवान शिव भी वृषारूढ़ होकर अखिलेश्वरी भगवती दर्शनार्थ वहां आये।।2।।

देवर्षयो नारदाद्याः समाजग्मुर्महेश्वरीम् ।
आययुस्तां महादेवीं सर्वे चाप्सरसां गणाः ।
विश्वावसुप्रभृतयो गन्धर्वाश्चैव यक्षकाः ॥ ३ ॥

भगवती महेश्वरी के दर्शन के लिए नारदादि देवर्षिगण आये और उन महादेवी के दर्शनों की कामना से दिव्य अप्सराओं के समूह वहां आये। साथ ही विश्वावसु आदि गंधर्व, यक्षादिगण वहां आये।।3।।

ब्रह्मणाथ समादिष्टो विश्वकर्मा विशांपतिः ।
चकार नगरं देव्या यथामरपुरं तथा ॥ ४ ॥

ब्रह्माजी के साथ विशांपति विश्वकर्मा आये, उन विश्वकर्मा को ब्रह्माजी ने सर्वसुविधायुक्त सुन्दर नगर निर्मित करने का आदेश दिया। विश्वकर्मा ने जैसा देवों का नगर है वैसा ही निर्माण कर दिया।।4।।

ततो भगवती दुर्गा सर्वमन्त्राधिदेवता ।
विद्याधिदेवता श्यामा समाजग्मतुरम्बिकाम् ।।५।।

ब्रह्मादि देवों के अनन्तर भगवती दुर्गा, जो समस्त मन्त्रों की अधिदेवता हैं शक्ति हैं भगवती के दर्शनों के लिए आईं भगवती श्यामा (मन्त्रनाथा-मन्त्रिणी) जो समस्त विद्याओं की शक्ति हैं अधिदेवता है ये देवियां अम्बिका के पास आईं।।5।।

ब्राह्माद्या मातरश्चैव स्वस्वभूतगणावृताः ।
सिद्धयोऽप्यणिमाद्याश्च योगिन्यश्चैव कोटिशः ।।६।।

भगवती के दर्शनार्थ ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, माहेन्द्री, चामुण्डा, महालक्ष्मी ये अष्टमातृकाएं अपने अपने भूतगणों और प्रत्येक की 8-8 अक्षोभ्यादि 64 योगिनीगण, अष्ट भैरव गणादि तथा सिद्धियां अणिमा, लघिमा, महिमा, ईशित्व, वशित्व, प्राकाम्य, भुक्ति, इच्छा, प्राप्ति, सर्वकामसिद्धि ये दससिद्धियां और योगिनीयां अक्षोम्यादि विजयान्तिका 64 तथा प्रकट, गुप्त, गुप्ततर सम्प्रदाय कुलोत्तीर्णनिगर्भ रहस्य अतिरहस्य, परापरातिरहस्य एवं मूलाधार से लेकर ब्रह्मरन्ध्र तक सात डाकिनी (डाकिनी, राकिणी, लाकिनी, काकिनी, साकिनी, हाकिनी, याकिनी) योगिनीयां कोटिपरिमाण में वहां आईं।।6।।

भैरवाः क्षेत्रपालाश्च महाशास्ता गणाग्रणीः ।
महागणेशः स्कन्दश्च बटुको वीरभद्रकः ॥ ७ ॥

समस्त भैरव आनन्दभैरवादि समस्त क्षेत्रपाल शिवमोहिनी गणाग्रणी महाशास्ता, महागणेश, स्कन्द, बटुकभैरव तथा वीरभद्रादि सभी दर्शनार्थ पहुंचे।।7।।

आगत्य ते महादेवीं तुष्टुवुः प्रणतास्तथा ॥ ८ ॥

ये सभी देवगण भगवती महादेवी के पास आए और स्तुतियां की और चरणकमलों में विनत हुए।।8।।

तत्राथ नगरीं रम्यां साट्टप्राकारतोरणाम् ।
गजाश्वरथशालाढ्यां राजवीथीविराजिताम् ॥ ९ ॥

ब्रह्माजी के आदेश से विश्वकर्माजी ने जो नगरी का निर्माण किया था, वह नगरी अट्टालिकाओं (अठारी बहुमंजिलादि) विभिन्न सुन्दर तोरणद्वारों से सजी हुई थी, बड़े सुन्दर फुटपाथ से युक्त चौड़े राजमार्ग थे और हाथियों की गजशाला, अश्वों की घुड़साल एवं रथों के स्थानों भरपूर वह नगरी थी।।9।।

सामन्तानाममात्यानां सैनिकानां द्विजन्मनाम् ।
बैतालदासदासीनां गृहाणि रुचिराणि च ॥१० ॥

उस नगरी में सामन्त (राज्यसभासदस्य) अमात्य (मन्त्रिपरिषद्) तथा सैनिकों के भवन (छावनियां) एवं वेदपाठी ब्राह्मणों के लिए आवास बने थे। वहीं समस्त सेवकगण वेताल, दास, दासियों के लिए सुन्दर सभी सुविधापूर्ण भवन बने हुए थे।।10।।

मध्ये राजगृहं दिव्यं द्वारगोपुरशोभितम्।
शालाभिर्बहुभिर्युक्तं सभाभिरुपशोभितम्॥ ११ ॥

उस विश्वकर्मा निर्मित दिव्यनगर के मध्य में द्वार (भव्य सुन्दर फाटक युक्त) एवं गोपुर से सुशोभित राजगृह निर्मित हुआ था। उस नगर के राजगृह क्षेत्र में बहुत उपयोगी शाला, व्यायामशाला, सैनिकों की शस्त्राभ्यास शाला, क्रीड़ा के लिए विस्तृत मैदान और जनसभाओं के लिए विशाल सभाभवन, (विवाद, कलहादि शमन के राजद्वारादि) बनी हुईं थी।।11।।

सिंहासनसभां चैव नवरत्नमयीं शुभाम्।
मध्ये सिहासनं दिव्यं चिन्तामणिविनिर्मितम्।।12।।

वहाँ नगर में सिंहासनसभा थी उस सिंहासनसभा के मध्य में एक नवरत्नों से जड़ा हुआ दिव्य लोकोत्तर सिंहासन था, जो दिव्य चिन्तामणि से ही निर्मित था।।12।।

स्वयं प्रकाशमद्वन्द्वमुदयादित्यसंनिभम्।
विलोक्य चिन्तयामास ब्रह्मा लोकपितामहः।।१३।।

वह दिव्यसिंहासन सूर्य के समान स्वयं की प्रकाशकिरणों से चमक रहा था, ऐसा लग रहा था कि उदित होता हुआ सूर्य हो यह देखकर सृष्टिकर्ता लोकपितामह ब्रह्मा विचार करने लगे।।13।।

यस्त्वेतत्समधिष्ठाय वर्तते बालिशोऽपि वा।
पुरस्यास्य प्रभावेन सर्वलोकाधिपो भवेत् ॥१४॥

दिव्यसिंहासन की अलौकिक क्षमताएं ब्रह्माजी अनुभव में आने लगीं वे सोचने लगे कि ऐसे दिव्यशक्तिसम्पन्न सिंहासन में यदि इसमें मूर्ख भी बैठेगा तो वह भी इस नगर और सिंहासन के प्रभाव से सभी लोकों का लोकाधिपति अर्थात स्वामी हो सकता है।।14

न केवला स्त्री राज्यार्हा पुरुषोऽपि तया विना।
मङ्गलाचारसंपन्नं महापुरुषलक्षणम् ॥१५ ॥

ऐसे दिव्य सुसम्पन्न नगर में तथा उसके मध्य अलौकिक सिंहासन में पुरुषरहित अकेली स्त्री राज्य के लिए योग्य नहीं है, ऐसे ही पुरुष भी बिना स्त्री के राज्य में योग्य नहीं है। यहाँ दिव्यनारी

का प्रादुर्भाव हुआ है, उसके लिए उसके योग्य ही महापुरुषों के लक्षणों से सम्पन्न मङ्गलाचार से सम्पन्न पुरुष होना चाहिए।।15।।

अनुरूपाङ्गनायुक्तमभिषिञ्चेदिति स्मृतिः।
विभातीयं वरारोहा मूर्ता शृङ्गारदेवता ॥16॥

स्मृति आदि वेदानुसारी धर्मशास्त्रों के विधानानुसार अपने अनुरुप स्त्री से विवाहित पुरुष का राज्यसिंहासन में अभिषेक यह विधान है। यहां यह वरारोहा साक्षात् शृंगारदेवता मूर्तरूप में प्रकट हो गई है तो, पुरुष और नारी का संम्बंध वैध होता है वैसी ही व्यवस्था इस सृष्टि में आवश्यक है और ऐसी आवश्यकता यहां आ चुकी है।।16।।

वरोऽस्यास्त्रिषु लोकेषु न चान्यः शङ्करादृते।
जटिलो मुण्डधारी च विरूपाक्षः कपालभृत् ।।17।।

इसके लिए तो लोकों में तीनों लोकों में बिना शङ्कर के कोई भी योग्य और शक्ति सम्पन्न नहीं है। वह शङ्कर जटाधारण किये हुए है, मुण्डमाला पहिने है, विरूपाक्ष (तीन नेत्रों वाले) हैं और हाथों में नरमुण्ड कपाल रखे रहते हैं।।17।।

कल्माषी भस्मदिग्धाङ्गः श्मशानस्थो विभीषणः
अमङ्गलास्पदं नैनं वरयेत्सा सुमङ्गला ॥18॥

वह शङ्कर कल्माषी है समस्त शरीर में भस्म लपेटे हुए हैं श्मशान में ही रहते हैं और भयंकर वेष धारण किए हुए हैं। ऐसे अमंगल वस्तु धारण करने वाले अमंगल भयानक वेषधारी पुरुष को वह वराङ्गना सुमङ्गला कैसे वरण करेगी।।18।।

इति चिन्तयमानस्य ब्रह्मणोऽग्रे महेश्वरः।
कोटिकन्दर्पलावण्ययुक्तो दिव्यशरीरवान् ।।१९ ॥

ब्रह्माजी इस तरह का दृश्य देखकर ही रहे थे कि उसी समय उनके सामने भगवान महेश्वर करोड़ों कामदेवों के लावण्य से युक्त दिव्यशरीर से।।19।।

दिव्याम्बरधरः स्रग्वी दिव्यगन्धानुलेपनः।
किरीटहारकेयूर कुण्डलाद्यैरलङ्कृतः ॥२० ॥

उन दिव्यशरीरधरी महेश्वर ने दिव्यवस्त्रों को धारण किये हुए थे, दिव्य पुष्पमालाएं धारण किए हुए थे और श्रीविग्रह पर दिव्यगंधों का लेप था। उन्होंने मस्तक में मुकुट, वक्षस्थल में हार, भुजदण्डों में केयूर, कानों में कुण्डल आदि अनेक दिव्यमणि रत्नों से जड़े हुए सर्वत्र फैलती हुई प्रभा, कान्ति और मनोहर थे।।20।।

प्रादुर्बभूव पुरुषो जगन्मोहनरूपधृत्।
तं कुमारमथालिङ्ग्य ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ २१ ॥

ब्रह्माजी के सामने वह दिव्यवेषधारी दिव्यपुरुष प्रकट हुआ उसका सुन्दरवेष समस्त प्राणियों को आकर्षित कर रहा था। लोकपितामहब्रह्मा जी ने उस कुमार को गले लगाया।।21।।

चक्रे कामेश्वरं नाम्ना कमनीयवपुर्धरम्।
तस्यास्तु परमाशक्तेरनुरूपो वरस्त्वयम् ।। २२ ॥

उस कुमार का नाम ब्रह्मा जी ने कामेश्वर यह निश्चित किया। उनके मन में यह निश्चय हुआ कि दिव्यांगना कुमारी के योग्य अनुरूप यह कुमार है।।22।।

इति निश्चित्य तेनैव सहितस्तामथाययौ।
अस्तुवंस्ते पराशक्ति ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः॥ २३ ॥

ब्रह्माजी ऐसा निश्चय करके उस कुमार के साथ ही उस परा दिव्या के निकट गए, वहां ब्रह्मा ने विष्णु ने और महेश्वर ने उस पराशक्ति की वन्दना की।।23।।

तां दृष्ट्वा मृगशावाक्षीं कुमारो नीललोहितः।
अभवन्मन्मथाविष्टो विस्मृत्य सकलाः क्रियाः।।24।।

उस मृग के बालक के समान विशाल नेत्रों वाली उस दिव्य कन्या पराशक्ति को देखकर वह नीललोहित कुमार सब कुछ विस्मृत कर गए और आकर्षण से मन्मथ।विष्ट हो गए।।24।।

सापि तं वीक्ष्य तन्वङ्गी मूर्तिमन्तमिव स्मरम्।
मदनाविष्टसर्वाङ्गी स्वानुरूपममन्यत ।। २५ ।।

उस तन्वङ्गी दिव्य पराशक्तिरूपा कन्या ने उस कुमार को देखा देख वह भी कामाविष्ट हो गई, उसके मन में यह विचार उभरा कि यह मेरे ही जैसा है।।25।।

अन्योन्यालोकनासक्तौ तावुभौ मदनातुरौ।
सर्वभावविशेषज्ञौ धृतिमन्तौ मनस्विनौ ॥ २६ ॥

वे दोनों परस्परआलोकन में व्यस्त थे वे दोनों ही मदनभाव में परिपूर्ण हो रहे थे, वे दोनों ही समस्त भावों को, जो मन में उठते रहते हैं ऐसे आकर्षणमय वातावरण में जानने वाले थे। फिर धैर्यवान थे दोनों ही और मनस्वी भी थे।।26।।

परैरज्ञातचारित्रौ मुहूर्तं स्वस्थचेतसौ ।
अथोवाच महादेवीं ब्रह्मा लोकैकनायिकाम्।।27॥

इस के अनन्तर ब्रह्माजी ने उन दोनों को परस्पर आकृष्ट देखकर परन्तु दोनों को परस्पर चरित्र

का परिचय नहीं था, तब शुभमुहूर्त में ब्रह्माजी सभी लोकों की एकमात्रनायिका महादेवी से बोले।।27।।

इमे देवाश्च ऋषयो गन्धर्वाप्सरसां गणाः।
त्वामीशां द्रष्टुमिच्छन्ति सप्रियां परमासने ॥२८॥

ये सभी देवता, ऋषिगण, गन्धर्वो और अप्सराओं के गण आपको और इन कुमार को इस परम यज्ञ में प्रिया सहित देखना चाहते हैं।।28।।

को वानुरूपस्ते देवि प्रियो धन्यतमः पुमान्।
लोकसंरक्षणार्थाय भजस्व पुरुषं परम्॥29॥

ब्रह्माजी ने उन कुमारी महादेवी से निवेदन किया, कि हे देवि! आपके साथ ये योग्य पुरुष आपके ही जैसा अनुरूप हो प्रिय हो, और धन्यतम हो, ऐसा कौन हो सकता है, आपसे निवेदन है, कि लोकसंरक्षण के लिए आप इस मनोहर परमपुरुष का वरण करें।।29।।

राज्ञी भव पुरस्यास्य स्थिता भव वरासने।
अभिषिक्तां महाभागे देवर्षिभिरकल्मषैः।।30।।

अतः हे देवि! आपके सामने स्थित इस पुरुष की रानी हो जाओ और इस श्रेष्ठासन में विराजमान हो जाओ। हे महादेवि ! आप इन देवर्षियों द्वारा इन महर्षियों द्वारा अभिषिक्त हों।।30।।

साम्राज्यलक्ष्मीसंयुक्तां सर्वाभरणसंयुताम्।
सप्रियामासनगतां द्रष्टुमिच्छामहे वयम्॥31॥

आपको साम्राज्यलक्ष्मी से संयुक्त देखना चाहते हैं, आपका समस्त आभूषणों से विराजित सुशोभित महारानी रूप देखना चाहते हैं हम सभी लोग आपको अपने प्रिय सहित इस दिव्य राजसिंहासन पर विराजमान देखना चाहते हैं। हमारी इच्छा पूर्ण हो ऐसा अनुग्रह कीजिये।।31।।

इति श्रीललितोपाख्याने देवीदर्शनाय ब्रह्माद्यागम-
नादिकथन नाम नवमोऽध्यायः ॥9॥

॥श्रीमन्महागणाधिपतये नमः।।

श्रीमाताललिताम्बायै नमः श्रीपादुकां पूजयामि नमः॥
ॐ वन्दे गुरुपदद्वन्द्वं अवाङ्मनसगोचरम्॥
रक्तशुक्ल प्रभामिश्रमतर्क्यं त्रैपुरं महः॥
ॐ आराध्यदेवं भक्तानां कलिदोषविनाशकम्॥
वन्दे श्रीगिरिजानन्दं शारदाश्रीमठाधिपम्।।
ॐ अखण्डं यस्यज्ञानञ्च भक्तिर्यस्यानपायिनी।।
शारदाज्योतिरीशस्य दर्शनं (पूजनं, वन्दनं) शुभमस्तुनः।।

अथ दशमोऽध्यायः ॥१०॥६१ श्लोकात्मकः
श्रीललिताम्बिकाकामेश्वरयोर्विवाहः ॥

श्री हयग्रीव बोलेः

तच्छ्रुत्वा वचनं देवी मन्दस्मितमुखाम्बुजा।
उवाच सा ततो वाक्यं ब्रह्मविष्णुमुखान्सुरान् ॥१॥

श्रीहयग्रीव जी बोलेः ब्रह्माजी ने श्रीमहादेव के दिव्यवेश आ जाने के बाद भगवती के पास जाकर निवेदन किया हे भगवति! सभी देवर्षि, महर्षि, देव, यक्ष, किन्नर, गन्धर्व, अप्सराएं आदि आपको इस वरासन में आसीन होती हुईं देखना चाहते हैं, वह भी आपने अनुरूप वाला पुरुष के साथ। इसलिए आप लोकसंरक्षण के लिए उस परमपुरुष का वरण करें, और अभिषिक्त होकर इस सिंहासन में विराजित हों, आपको साम्राज्यलक्ष्मी से संयुक्त देखने की हमारी इच्छा है, अतः आप इस सिंहासन में अपने प्रिय के साथ बैठे, जिससे हम लोग भी कृतार्थ हो जाएंगे। यह सविनय निवेदन ब्रह्मा विष्णुप्रमुख इन्द्रादि देवों ने किया। यह सुन मन्दस्मित मुखकमलवाली भगवती उन देवों से बोलीं।।1।।

देव्युवाच ।। भगवती देवी बोलीं-

स्वतंत्राहं सदा देवाः स्वेच्छाचारविहारिणी।
ममानुरूपचरितो भविता तु मम प्रियः॥2॥

हे देवों! मैं सदैव स्वेच्छाचारविहारिणी हूं, स्वतंत्र हूं। भविष्य में कोई होगा, जो मेरे अनुरूप होगा वही मेरा प्रिय होगा।।2।।

तथेति तत्प्रतिश्रुत्य सर्वैर्देवैः पितामहः।
उवाच च महादेवीं धर्मार्थसहितं वचः ॥3॥

भगवती की बात को सुनकर सभी देवों ने कहा ऐसा ही होगा। इसके बाद पितामह ब्रह्माजी बोले जो धर्म और अर्थ सहित थे।।3।।

कालक्रीता क्रयक्रीता पितृदत्ता स्वयंयुता ।
नारीपुरुषयोरेवमुद्राहस्तु चतुर्विधः ॥4॥

ब्रह्माजी ने नारी और पुरुष के विवाह के सम्बन्ध में धर्मशास्त्रों में निर्दिष्ट चार भेद जो हैं, उनका उल्लेख किया। उन्होंने कहा कि नारी के चार रूप हैं एक कालक्रीता, 2 क्रयक्रीता, 3 पितृदत्ता और 4. स्वयंयुता।।4।।

कालक्रीता तु सा वेश्या दासी स्यात्क्रयसंयुता ।
भार्या स्यात्पितृदत्ता तु गान्धर्वी तु स्वयं युता ॥5॥

नरनारी विवाह सम्बन्ध में जिस भेद का आश्रय लेकर मनुष्य इसे सम्पन्न करते हैं। उसमें चार भेद होते हें यथा - कालक्रीता वह नारी है जिसे किसी भी समय नारी बनाया (पत्नी) जा सकता है।। क्रयक्रीता तो दासी होती है उसे उसका मूल्य देकर खरीदा जा सकता है। गन्धर्व विवाह से युक्त अर्थात् प्रेम विवाह से विवाहित नारी पितृदत्ता होती, क्योंकि प्रेम होने के बाद पिता द्वारा दी जाती है।।5।।

समधर्मेण युक्ता सा भार्या पित्रर्पिता यथा ।
ब्रह्मादयस्तु तामूचुः परब्रह्मस्वरूपिणीम् ।।6।।

पिता के संरक्षण में रहने वाली पुत्री अपने समान वर का चयन करती है वह स्वयंयुता है। तथा वह ब्रह्मा से चिदानन्दात्मक रूप में प्रकट हुई है। उसे ब्रह्मा आदि परब्रह्मस्वरूपिणी ही आद्या शक्ति मूलप्रकृति कहते हैं, वह परमपुरुष की सहधर्मिणी है।।6।।

यदद्वैतं परं ब्रह्म सदसद्भाववर्जितम्।
चिदानन्दात्मकं तस्मात्प्रकृतिः समजायत॥7॥

जो अद्वैत परंब्रह्म है वह सद्भावों से एवं असद्भावों से सर्वदा वर्जित है। उस से चिदानन्दात्मक तेज प्रकट हुआ वहीं प्रकृति के रूप से जाना जाता है।।7।।

त्वमेवासि च तद्ब्रह्म प्रकृतिः सा त्वमेव हि।
त्वमेवानादिरखिला कारणाकारणात्मिका।
त्वामेव हि विचिन्वन्ति योगिनः सनकादयः॥8॥

वही तुम परब्रह्म हो तथा वही तुम ही परम मूलप्रकृति हो। तुम ही अनादि और तुम ही संसार का मूलकारण हो और तुम ही संसार जो कार्य है वह हो। तुमको ही सनकादि योगीजन आत्मानुभव

में यह सब अनुभव करते और चिन्तन करते रहते हैं।।8।।

सदसत्कर्मरूपां च व्यक्ताव्यक्तोदयात्मिकाम्।
त्वामेव हि प्रशंसन्ति पञ्चब्रह्मस्वरूपिणीम्॥ 9॥

तुम ही सत्कर्मरूपा हो तुम ही असत्कर्मरूपा हो, तुम ही संसारादि दृष्यमानजगत् व्यक्तरूप हो तुम ही अव्यक्त आत्मस्वरूप हो आप ही पञ्चब्रह्मस्वरूपिणी हो (वे पंच ब्रह्म - ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर, सदाशिव) (पञ्चब्रह्मस्वरूपिणी ल.स.नाम) आपका ही सदैव गुणगान योगिजन करते हैं।।9।।

त्वमेव हि सृजस्यादौ त्वमेव ह्यवसि क्षणात्।
त्वमेव भूयो हरसि विदधासि महेश्वरि ॥10॥

हे भगवति! सृष्टि के आरम्भ से सृष्टि एवं भूतप्राणि चराचरार्धचेतन सभी लोकलोकान्तरों का सृजन करती हैं, आप ही सृष्टि का रक्षण पालन पोषण करती हो और क्षणभर में संहार भी कर देती हो। यह सभी फिर से बनाना फिर से हरण कर लेना आपकी क्रीड़ा है। हे महेश्वरी! आप सर्वसमर्थ हैं।।10।।

तस्मात्स्वातन्त्र्यनाशस्ते न भवेत्प्रियसङ्गमात् ।
भजस्व पुरुषं कंचिल्लोकानुग्रहकाम्यया ॥11॥

आपके स्वातन्त्र्यभाव में हानि नहीं होगी। आपका प्रियसंगम हो। हे भगवति ! आप लोकों के अनुग्रह की कामना से अपने अनुरूप पुरुष का वरण कर लें हम पर अनुग्रह होगा।।11।।

इति विज्ञापिता देवी ब्रह्मणा सकलैः सुरैः ।
स्रजमुद्यम्य हस्तेन चिक्षेप गगनान्तरे ॥12॥

इस प्रकार ब्रह्मा आदि समस्त देवसमुदाय ने भगवती देवी से निवेदन किया। तब इसके अनन्तर भगवती ने हाथों से दिव्यमाला आकाश के मध्य उछाल दिया।।12।।

तयोत्सृष्टा तु सा माला शोभयन्ती नभस्तलम् ।
पपात कण्ठदेशे हि तदा कामेश्वरस्य तु ॥ 13॥

उन भगवती के द्वारा आकाश में उछाली गई वह आकाश की शोभा बढ़ाती भगवान कामेश्वर के कण्ठ से आकर गिरी।।13।।

मुमुदुश्च ततो देवा ब्रह्मविष्णुपुरोगमाः।
ववर्षुः पुष्पवर्षाणि बलारातीरिता घनाः ॥14॥

भगवान् कामेश्वर के कण्ठ में माला के पड़ते ही समस्त देवगण आनन्दित हो गए और उन्होंने

पुष्पों की वर्षा की तथा वायु से प्रेरित मेघ छा गए।।14।।

अथोवाच विधाता तु भगवन्तं जनार्दनम् ।
कर्तव्यो विधिनोद्वाहस्त्वनयोः शिवयोर्हरे ॥15॥

पुष्पमाला के आकाश से गिरकर कामेश्वर के गले में आ जाने पर देवों द्वारा आनन्दपूर्वक पुष्प वृष्टि कर लेने पर विधाता ब्रह्मा जी ने भगवान हरि से निवेदन किया, कि इन दोनों शिवा-शिव का विवाह कर देना चाहिए।।15।।

मुहूर्तोऽद्यैव संप्राप्तो जगन्मङ्गलकारकः।
त्वद्रूपिणी महादेवी सहजश्च भवानसि ।।
दातुमर्हसि कल्याणीमस्मै कामशिवाय तु ॥16॥

जगत का मङ्गल करने वाला विवाह भी आज ही प्राप्त हो गया है। हे हरि !वह जगदम्बा महादेवी आपके स्वरूपवाली है अर्थात् महादेवरूपिणी है और वे शङ्कर कामेश्वर सहजरूप हैं अतः आप इन कल्याणी का विवाह इन कामेश्वर के साथ कर सकते हैं।।16।।

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य देवदेवस्त्रिविक्रमः ।
ददौ तस्मै विधानेन प्रीत्या तां शङ्कराय तु ॥17॥

देवों के देव त्रिविक्रमभगवान विष्णु ने ब्रह्माजी के वचनों को सुनकर विधानपूर्वक पाणिग्रहण संस्कार भगवती का भगवान् शङ्कर के साथ कर दिया।।17।।

देवर्षिपितृमुख्यानां गन्धर्वाप्सरसां तथा ।
सर्वासां देवजातीनां सांनिध्ये जलपूर्वकम् ॥18॥

देवर्षि, पितृगण प्रमुख गन्धर्व और दिव्य अप्सराओं तथा अन्यान्य समस्तदेवजातियों की सन्निधि में जल से विनियोगपूर्वक भगवान विष्णु ने यह विवाह सम्पन्न करा दिया।।18।।

कल्याणं कारयामास शिवयोरादिकेशवः ।
उपायनानि प्रददुः सर्वे ब्रह्मादयः सुराः ॥19॥

उन आदिकेशव भगवान् विष्णु भगवान शिव और भगवती शिवा का कल्याण किया। इसके अनन्तर सभी देवगण और ब्रह्माजी ने भेंट उपहार दिया।।19।।

ददौ ब्रह्मेक्षुचापं तु वज्रसारमनश्वरम् ।
तयोः पुष्पायुधं प्रादादम्लानं हरिरव्ययम्॥20॥

ब्रह्माजीने इक्षुधनुष सुदृढ़ और कभी नष्ट न होने वाला उपहार में दिया। भगवान् हरि ने कभी न मुरझाने वाले पूर्ण खिले हुए पुष्पबाण पांच (कामेश्वर और कामेश्वरी के पाँच-पाँच) (यां रां लां

वां सांः कामेश्वर बाण, द्रां द्रीं क्लीं, ब्लूं, सः कामेश्वरीबाण बीजमंत्र) प्रदान किए।।20।।

नागपाशं ददौ ताभ्यां वरुणो यादसाम्पतिः ।
अङ्कुशं च ददौ ताभ्यां विश्वकर्मा विशाम्पतिः।।21॥

उन शिव और शिवा को जल के देवता वरुण ने नागपाश भेंट में दिया और विशांपति विश्वकर्मा ने उन्हें अंकुश दिया।।21।।

किरीटमग्निः प्रायच्छत्ताटङ्के चन्द्रभास्करौ।
नवरत्नमयीं भूषां प्रादाद्रत्नाकरः स्वयम्।।22।।

चन्द्र और सूर्य दोनों ने ताटंक (कर्णाभूषण कुण्डल) तथा अग्नि ने मुकुट अर्पित किया तथा समुद्र ने नवदिव्य रत्नों की माला भेंट में दिया।।22।।

ददौ सुराणामधिपो मधुपात्रमथाक्षयम्।
चिन्तामणिमयीं मालां कुबेरः प्रददौ तदा॥23॥

देवों के अधिप देवेन्द्र ने अक्षय मधुपात्र दिये। निधिपति कुबेर ने चिन्तामणिरत्ननिर्मित माला भेंट में दिया।।23।।

साम्राज्यसूचकं छत्रं ददौ लक्ष्मीपतिः स्वयम्।
गङ्गा च यमुना चाभ्यां चामरे चन्द्रभास्वरे॥24॥

लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु ने स्वयं साम्राज्यसूचक छत्र उन्हें अर्पित किया तथा गङ्गा और यमुना इन देवनदियों ने चन्द्र के समान आह्लादक दो चंवर दीं।।24।।

ब्रह्मा च वसवो रुद्रा ह्यादित्याश्चाश्विनौ तथा।
दिक्पाला मरुतः साध्या गन्धर्वाः प्रमथेश्वराः।।25।।

मरुद्रगण, दिक्पाल, साध्यदेवगण, गन्धर्व और प्रमथेश्वर आदि सभी प्रसन्नता से अपने अपने अस्त्रादि भेंट में देने लगे और ब्रह्मा जी अष्टवसुगण एकादशरुद्रगण और द्वादशादित्य गण तथा दोनों युगल अश्विनी कुमार।।25।।

स्वानि स्वान्यायुधान्यस्यै प्रददुः परितोषिताः।
रथांश्च तुरगान्नागान्महावेगान्महाबलान्॥26॥

इन सभी ने अपने अपने रथ, आयुध, शिवा शिव को परमसन्तुष्ट होकर दिया। दिए गए उपहारों में रथ, वेगवान अश्व और महाबलवान हाथी थे।।26।।

पुष्टानरोगानश्रान्तान्क्षुत्तृष्णापरिवर्जितान्।
ददुर्वज्रोपमाकारानायुधान्सपरिच्छदान्॥27॥

देवगणों ने रथ, अश्व, हाथी उपहार में दिये थे वे सभी जैसे रथ वज्र जैसे सुदृढ़, अश्वपूर्णनीरोग, हाथी महाबली और वेगवान थे, वे कभी थकते नहीं थे, थके हुए शिथिल नहीं थे, भूखप्यास से पीड़ित नहीं थे और जो आयुध दिये गए थे वे वज्रमय थे सभी आयुध आवरण से ढंके हुए थे।।27।।

श्रीललिताम्बिकापट्टाभिषेकः

अथाभिषेकमातेनुः साम्राज्ये सशिवां शिवाम् ।
अथाकरोद्विमानं तु नाम्ना तु कुसुमाकरम्।।28।।

उपहारादि की भेंट के अनन्तर उन देवगणों ने भगवान् शिव सहित भगवती शिवा के साम्राज्याभिषेक का आयोजन किया, उसमें उनके विमान का नाम कुसुमाकर था।।28।।

विधाताऽम्लानमाल्यं वै नित्यमच्छेद्यमायुधैः।
दिवि भूम्यन्तरिक्षे च कामगं सुसमृद्धिमत्।।29।।

विधाता ने श्रीशिवशिवा को कभी न मुरझाने वाली माला जिसे आयुध भी छिन्न-भिन्न नहीं कर सकते थे अन्तरिक्ष हो या भूमि हो या स्वर्ग हो सर्वत्र इच्छानुसार काम करने वाली और सुन्दर समृद्धि देने वाली थी।।29।।

यद्गन्धाघ्राणमात्रेण भ्रान्तिरोगक्षुधार्तयः।
तत्क्षणादेव नश्यन्ति मनोह्लादकरं शुभम्।।30।।

जिस माल्य के सूंघने से ही भ्रमदोष, समस्तरोग और भूख प्यास की पीड़ा तत्काल नष्ट हो जाती थीं और वह माला मनोहर थी, शुभदायक थी।।30।।

तद्विमानमथारोप्य तावुभौ दिव्यदम्पती।
चामरव्यजनच्छत्रध्वजयष्टिमनोहरम्।।31।।

वे दोनों दिव्यदम्पत्ति श्री शिवशिवा ऐसे उस कुसुमाकर नाम वाले दिव्यविमान में बैठकर जिसमें चंबर, पंखे, छत्र, ध्वजा और सुन्दर छड़ी - तथा ।।31।।

वीणावेणुमृदङ्गादि विविधातोद्यवादनैः।
सेव्यमाना सुरगणैर्निर्गत्य नृपमन्दिरात्।।32।।

जिस विमान में आरुढ़ हुए थे उसमें वीणा, बांसुरी, मृदंग आदि अनेकों प्रकार के वाद्यगण रखे हुए थे, उनकी मधुर ध्वनियाँ हो रही थीं और सुरगणों के द्वारा जिनकी सेवा हो रही थी, वे राजभवन से निकल कर।।32।।

ययौ वीथीं विहारेण शोभयन्ती निजौजसा ।
प्रतिहर्याग्रसंस्थाभिरप्सरोभिः सहस्रशः।।33।।

उस समय वे अपने ओज-तेज से शोभित होती हुईं जिस मार्ग से गयीं, उस मार्ग में प्रतिहारियों के समूह प्रत्येक प्रासाद (महल अट्टालिकाएं कि सामने वे दम्पत्ती ठहरते थे तो सेवा में उपस्थित हो जाते थे, हजारों अप्सराओं से वे महल सुशोभित हो रहे थे।।33।।

सलाजाक्षतहस्ताभिः पुरस्त्रीभिश्चवर्षिता
गाथाभिर्मङ्गलार्थाभिर्वीणावेणुविनिस्वनैः।।34।।

उनके ऊपर पति पुत्रों वाली सुवासिनियाँ अपने हांथों से लाजा (धान की लाई) अक्षतों की वर्षा कर रही थीं और सुवासिनियां अपने मधुरस्वर में सुन्दरगीत गा रही थीं साथ ही अनेक मधुरस्वर वाले वाद्य वीणा-वेणु, मृदङ्गादि मधुर ध्वनियाँ कर रहे थे।।34।।

तुष्यन्ती वीथिवीथीषु मन्दं मन्दमथाययौ ।
प्रतिगृह्याप्सरोभिस्तु कृतां नीराजनाविधिम्।।35।।

इस प्रकार उस दम्पत्ती ने प्रत्येक गली मार्गों में धीरे-धीरे भ्रमण किया फिर अप्सराओं ने उनकी सुन्दर दीपों को सजाकर उनकी आरती की।।35।।

अवरुह्य विमानाग्र्यात्प्रविवेश महासभाम् ।
सिंहासनमधिष्ठाय सहदेवेन शम्भुना।।36।।

आरती के अनन्तर विमान के अग्रवाले भाग से उतरकर महासभा में प्रविष्ट हुए तथा देवों सहित भगवान शम्भु ने।।36।।

यद्वाञ्छन्ति तत्रस्था मनसैव महाजनाः।
सर्वज्ञा साक्षिपातेन तत्तत्कामानपूरयत्।।37।।

उन सभी सर्वज्ञ महापुरुषों को जो उस महासभा में थे, उन्होंने मन में जो जो भी कामनाएं की थीं, उन कामनाओं को केवल देख भर करके पूरी कर दिया।।37।।

तद्दृष्ट्वा चरितं देव्या ब्रह्मा लोकपितामहः।
कामाक्षीति तदाभिख्यां ददौ कामेश्वरीति च।।38।।

लोकपिता महब्रह्मा ने भगवती के उस चमत्कारपूर्णचरित को देखा, तब उन्होंने भगवती के नाम 'कामाक्षी' और 'कामेश्वरी' ये प्रदान किये।।38।।

ववर्ष काले मेघोऽपि पुरे तस्मिस्तदाज्ञया।
महार्हाणि च वस्तूनि दिव्यान्याभरणानि च।।39।।

उस नगर पर एक आश्चर्य और हुआ, कि उन भगवती आज्ञा से मेघ ने भी बहुमूल्य वस्तुएं बरसाईं तथा दिव्य आभूषणों की भी वर्षा की।।39।।

चिन्तामणिः कल्पवृक्षाः कमला कामधेनवः।
प्रतिवेश्मान्ततस्तस्थुः पुरे देव्याज्ञया तदा ॥40॥

उस नगर में भगवती देवी की आज्ञा से प्रत्येक घर के मध्यभाग में चिन्तामणि कल्पवृक्ष, कमल और कामधेनुओं की भी स्थिति हो गई, ऐसी वर्षा की जो एक आश्चर्य था जो मेघों ने किया।।40।।

तत्सेवैकरसाकारा विमुक्तान्यक्रियागुणाः।
सर्वकामार्थसंयुक्ताः हृष्यन्तः सार्वकालिकम्॥41॥

उन भगवती की सेवा में अन्य सभी क्रियाकलापों को छोड़कर मन लगाया तो उनकी सभी कामनाएं पूरी हुईं सभी मनोरथों की पूर्ति से हर्षित होते हुए सभी समय में सेवा में सेवकगण तत्पर रहते थे।।41।।

पितामहो हरिश्चैव हरश्चैव च वासवः।
अन्ये दिशामधीशाश्च सकला देवतागणाः॥42॥

उस नगर में पितामह ब्रह्मा, हरि और हर तथा इन्द्र साथ ही अन्य अन्य दिशाओं के स्वामी और समस्तदेव निवास कर रहे थे।।42।।

देवर्षयो नारदाद्या वसिष्ठाद्यास्तपोधनाः।
गन्धर्वाप्सरसो यक्षा याश्चान्या देवजातयः॥43॥

उस नगर देवर्षि नारद आदि, वसिष्ठ आदि तपोधन तथा गन्धर्व अप्सराएं और यक्षलोग अन्य जो देवजातियां थी, वे सभी निवासी थे।।43।।

दिवि भूम्यन्तरिक्षेषु ससंबाधं वसन्ति ये।
ते सर्वे चाप्यसंबाधं निवसन्तिस्म तत्पुरे॥44॥

ये सभी देवजातियां स्वर्गादि में भूमि में तथा अन्तरिक्ष में बाधाओं से घिरे रहते थे, ये सभी अब भगवती निवासितपुर में निवास करते हुए बाधाओं से घिरे हुए नहीं है निर्बाध है।।44।।

इयं मद्वत्सला देवी नान्यस्येत्यखिलाञ्जनान्।
तोषयामास सततमनुरागेण भूयसा ॥45॥

उस नगर के सभी निवासी यह कहते थे कि वे भगवती मुझे वात्सल्य प्रेम देती है, सभी को यही लगता था कि माँ का वात्सल्य मुझे ही मिल रहा है, वे लोग अनुभव कर रहे थे कि ऐसा वात्सल्य भाव रखने वाली भगवती कहीं और नहीं है, ये अनुपमेय हैं स्थायीरूप से ऐसा भरपूर अनुराग था, जिससे सभी लोग पूर्णरूप से तन, मन से सन्तुष्ट हो रहे थे।।45।।

राजा दुहति भूलोके विदुषः सकलेप्सितान्।
राज्ञी दुदोहाभीष्टानि सर्वभूतलवासिनाम्॥46॥

इस भूलोक में विद्वान के समस्त ईप्सितों का दोहन राजा करते हैं, परन्तु रानी तो समस्तभूमि में रहने वालों के अभीप्सितों का दोहन करती हैं, अर्थात इनका कामनाओं को पूरा करने का क्षेत्र सीमित नहीं है, व्यापक है।।46।।

त्रिलोकैकमहीपाले साम्बिके कामशङ्करे।
दशवर्षसहस्राणि ययुः क्षण इवापरः।।47।।

लोकों के एकमात्र महीपाल राजा अम्बिका के सहित कामेश्वर के संरक्षण में दसहजार वर्ष ऐसे बीत गए जैसे लगा कि एकक्षण में सभी कुछ हुआ हो।।47।।

ततः कदाचिदागत्य नारदो भगवानृषिः।
प्रणम्य परमां शक्तिमुवाच विनयान्वितः।।48।।

इसके अनन्तर भगवान् नारद देवर्षि भगवती के पास आए। आकर उन्होंने भगवती को प्रणाम किया और उन परमशक्ति से विनयपूर्वक निवेदन किया।।48

परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमेश्वरी।
सदसद्भाव संकल्प विकल्पकलनात्मिके।।49।।

हे भगवती! हे परब्रह्म! हे परंधाम! हे पवित्र परमेश्वरि! सत् और असद् भावों वाली तथा संकल्प विकल्पात्मिके।।49।।

जगदभ्युदयार्थाय व्यक्तभावमुपागता।
असज्जनविनाशार्थं सज्जनाभ्युदयार्थिनी ।।50।।

आप जगत् के अभ्युदय के लिए अव्यक्तभाव (निराकारभाव) से निकलकर व्यक्तभाव में (साकार भाव) सबके बीच आईं हो आप जगत् में असज्जनों के विनाश के लिए तथा सज्जनों के (सन्मार्गस्थ) अभ्युदय को चाहती हैं।।50।।

प्रवृत्तिस्तव कल्याणि साधूनां रक्षणाय हि ।
अयं भण्डासुरो देवि बाधते जगतां त्रयम् ।।51।।

हे कल्याणमयि! आपकी प्रवृत्ति सहजरूपा है, और वह है साधूओं का संरक्षण करना। हे देवि! यह दानव भण्डासुर उद्दण्ड होकर तीनों लोकों को उत्पीड़ित कर रहा है।।51।।

त्वयैकयैव जेतव्यो न शक्यस्त्वपरैः सुरैः ।
त्वत्सेवैकपरा देवाश्चिरकालमिहोषिताः ।।52।।

आप अकेली ही उसे जीत सकती हैं, आपके अतिरिक्त कोई भी अन्य देवगण जीत नहीं सकते। बहुत समय सभी देवगण आपकी सेवा में यहां इस स्थान आपके पास रुके हुए हैं।।52।।

त्वदाज्ञया गमिष्यन्तु स्वानि स्वानि पुराणि तु।
अमङ्गलानि शून्यानि मृषार्थानि च सर्वतः ॥53॥

हे भगवति! ये सभी देवगण अपने-अपने पुरों में लोकों में आपकी आज्ञा से ही जायेंगे, क्योंकि ये सभी लोग अपने अपने घरों को लोकों को सूना करके आए हुए हैं, शून्यस्थान अमंगलकारक होते हैं। आपके अनुग्रह से ये सभी मंगल और कुशल हो जायेंगे।।53।।

एवं विज्ञापिता देवी नारदेनाखिलेश्वरी।
स्वस्ववासनिवासाय प्रेषयामास चामरान् ॥54॥

देवर्षि नारद जी के ऐसे निवेदन करने पर उन भगवती देवी ने सभी देवगणों को अपने-अपने लोकों में घरों में जाने के लिए कहा।।54।।

ब्रह्माणं च हरिं शम्भुं वासवादीन्दिशांपतीन्।
यथार्ह पूजयित्वा तु प्रेषयामास चाम्बिका।।55।।

भगवती अम्बिका ने ब्रह्माजी, भगवान विष्णु तथा भगवान शङ्कर एवं सभी इन्द्रादि देवगणों को यथायोग्य सम्मानादि करके अपने-अपने लोकों और स्थानों में भेजा।।55।।

अपारयन्तस्तां त्यक्तुमपि संप्रेषिताः सुराः।
स्वस्वांशैः शिवयोः सेवामादिपित्रोरकुर्वत ॥56॥

वे सभी देवगण देवी को छोड़कर जाने में बिल्कुल भी समर्थ नहीं थे फिर भी उन्हें भगवती के अनुरोध से जाना पड़ा। पर उन्होंने अपने अंशों से अपने प्रतिरूपों एवं भगवती एवं भगवान् की सेवा में रख दिया।।56।।

एतदाख्यानमायुष्यं सर्वमङ्गलकारणम्।
आविर्भावं महादेव्यास्तस्या राज्याभिषेचनम्।।57।।

यह अत्यन्त दिव्य उपाख्यान है, यह आयु को सुरक्षित रखने वाला है सभी प्रकार के मङ्गलों का कारण है। इसमें यज्ञाग्नि से प्रकट भगवती का आविर्भाव, उनका भगवान् कामेश्वर से विवाह तथा दोनों को राज्यसिंहासन में अभिषेक। ये सभी अलौकिक अनुभव हैं।।57।।

यः प्रातरुत्थितो विद्वान्भक्तिश्रद्धासमन्वितः।
जपेद्धनसमृद्धः स्यात्सुधासंमितवाग्भवेत्।।58।।

त्रिशतीस्तोत्र माहात्म्यखंड में श्रीविद्या को जानने वाला ही विद्वान माना गया है, वह सभी मंत्र-मंत्र ही हैं, श्रीविद्या का मंत्र ही विद्या माना गया है। इसे धारण करने वाला ही विद्वान् है सभी मान्त्रिक है। इस उपाख्यान के पारायण से धन समृद्ध से होगा, वाणि में मधुरता आ जावेगी आदि

सद्गुणों का उदय अन्तस्तल में होने लगेगा।।58।।

(न शिल्पादि ज्ञान युक्ते विद्वच्छब्द प्रयुज्यते। मोक्षैकहेतुविद्या स श्रीविद्यैव न संशयः।। श्लोक सं. 84, तस्ताद्विद्याविदेवात्र विद्वान् विद्वानितीर्यते। स्वयं विद्याविशेषज्ञो विद्यामाहात्मवेद्यपि श्लोक 85 (श्रीललितात्रिशति स्तोत्र महात्म्य))

नाशुभं विद्यते तस्य परत्रेह च धीमतः।
यशः प्राप्नोति विपुलं समानोत्तमतामपि॥ 59॥

उस बुद्धिमान साधक को इस लोक में और परलोक में कहीं भी अशुभ स्थितियां, परिस्थितियां नहीं आती, वह व्यापक प्रसिद्धि प्राप्त करता है, समानलोगों में समान तथा उत्तमलोगों में उत्तमता को भी सहज में पा लेता है।।59।।

अचला श्रीर्भवेत्तस्य श्रेयश्चैव पदे पदे।
कदाचिन्न भयं तस्य तेजस्वी वीर्यवान्भवेत्।
तापत्रयविहीनश्च पुरुषार्थैश्च पूर्यते॥60॥

भगवती कामेश्वरी कामेश्वर के इस दिव्य उपाख्यान के संस्कारवश उसके जीवन में अचल श्री लक्ष्मी कान्ति शोभा स्थिर हो जाती है, पद में उसे श्रेय की प्राप्ति होती है, कभी भी भय का सामना नहीं होता, वह तेजस्वी और पराक्रमपूर्ण होता है, किसी भी कार्य में प्रवृत्त होने पर सफल ही होता है। वह दैहिकतापों से मानसिकतापों से और आध्यात्मिकताप, इष्टाराधना में असफलता आदि से रहित होता है, उसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष पुरुषार्थ में सफलता मिलती है।।60।।

त्रिसन्ध्यं यो जपेन्नित्यं ध्यात्वा सिहासंनेश्वरीम्।
षण्मासान्महतीं लक्ष्मीं प्राप्नुयाज्जापकोत्तमः।।61॥

जो उत्तम जापक है पंचदशी विद्या का आराधक है, वह तीनों संध्याओं (प्रातः मध्याह्न, सायं) सिंहासनेश्वरी कामेश्वरी कामेश्वर का ध्यान करके छहमासों में विपुललक्ष्मी को प्राप्त हो जाता है।।61।।

इति श्रीललितोपाख्याने ललिताविवाहादिकथनं
नाम दशमोऽध्यायः ॥१०॥

॥श्रीमन्महागणाधिपतये नमः।।

श्रीमाताललिताम्बायै नमः श्रीपादुकां पूजयामि नमः॥
ॐ वन्दे गुरुपदद्वन्द्वं अवाङ्मनसगोचरम्॥
रक्तशुक्ल प्रभामिश्रमतर्क्यं त्रैपुरं महः॥
ॐ आराध्यदेवं भक्तानां कलिदोषविनाशकम्॥
वन्दे श्रीगिरिजानन्दं शारदाश्रीमठाधिपम्।।
ॐ अखण्डं यस्यज्ञानञ्च भक्तिर्यस्यानपायिनी।।
शारदाज्योतिरीशस्य दर्शनं (पूजनं, वन्दनं) शुभमस्तुनः।।

अथ एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ 108 श्लोकात्मकः

[भण्डासुरवधाय देवीप्रस्थानम् ॥]

अथ सा जगतां माता ललिता परमेश्वरी।
त्रैलोक्यकण्टकं भण्डं दैत्यं जेतुं विनिर्ययौ॥1॥

भगवती ललिता परमेश्वरी के प्राकट्य के बाद भगवान् कामेश्वर के साथ विवाहोत्सव सम्पन्न हुआ, इसके बाद दोनों ही शिवशिवा राज्यसिंहासनारूढ़ हुए, वहां उनके अभिषेक के बाद देवर्षिनारद जी ने प्रणाम करके निवेदन किया कि त्रिलोकी में भण्ड नामक महादैत्य आक्रमण करके सभी देवों को दुःखी कर रहा है, वह दैत्यलोकों पर अधिपत्य कर देवों को निराश्रित कर रहा है। आप इस विपत्ति से विश्व की रक्षा करें। नारद जी के सविनय निवेदन सुनकर उस पर आक्रमण करने के लिए प्रस्थान कर रही हैं।।1।।

कृत्वा मार्दलिकारूपं सप्ताम्भोराशयस्तथा।
प्रभूतमर्दलध्वानैः पूरयामासुरम्बरम्॥2॥

भगवती ललिताम्बा ने बाजा के आकार वाले सातमेघ निर्मित किए और अनगिनत ढोलों की ध्वनि से आकाश को गुञ्जार दिया।।2।।

मृदङ्गा मुरजाश्चैव पटहा ढक्कलिङ्गणाः।
शेलुका झल्लरीसंघा हुडुक्का हुडुवा घटाः॥3॥

कोई मृदंग बजा रहा था, कोई मुरज कोई पटह नामक वाद्य बजा रहा था, कोई ढक्का, कोई लिङ्गणा, कोई झल्लरी समूह को, कोई हुडुक्का, कोई हुदुआ और कोई घटम् में गम्भीरध्वनि उत्पन्न कर रहा था।।3।।

आनकाः पणवाश्चैव गोमुखाश्चार्धचन्द्रकाः।
यवमध्या मुष्टिमध्या मड्डुवो डिण्डिमा अपि॥4॥

आनक ढोल सेना का पणव नाम का नगाड़ा, गोमुखा, अर्धचन्द्रिका, यवमध्या, मुष्टिमध्या, मड्डव और भी बाजे डिण्डिम।।4।।

झर्झराश्चर्चरीताला तुङ्ग्यालिङ्ग्यप्रभेदकाः।
ऊर्ध्वकाश्चैव तम्पोट्टा निस्सणा बर्बराः परे॥5॥

मंजीरे, चर्चरी, ताला, तुङ्गध और लिङ्गण भेदों वाले वाद्य बजाये जाने लगे, वहीं कोई ऊर्ध्ववक्र, कोई तम्पोट्टा, कोई निस्साण और बर्वर नामक रण में बजने वाले तीव्रध्वनि के वीरों का उत्साह बढ़ाने तथा कायरों के हृदय कंपाने वाले बाजे बजाये जाने लगे।।5।।

हुंकाराः काकतुण्डाश्च वाद्यभेदास्तथा परे।
दध्वनुः शक्तिसेनाभिराहताः समरोद्यमे॥6॥

हुंकार और काकतुण्ड नामक अनेकों प्रकार के बाजे बज रहे थे। उस समय की तैयारी में शक्तिसेना ने अनेकों प्रकार के बाजे बजाने शुरु कर दिये।।6।।

ललितापरमेशान्या अङ्कुशास्त्रात्समुद्गता।
सम्पत्करीनाम देवी चचाल सह शक्तिभिः॥7॥

भगवती ललिता परमेश्वरी के अंकुशास्त्र से समुद्गत 'सम्पत्करी' नाम की देवी शक्तिसेना के साथ चलीं।।7।।

अनेककोटिमातङ्गतुरङ्गरथपत्तिभिः।
सेविता तरुणादित्यपाटला सम्पदीश्वरी॥8॥

अनेक जातियों के हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सैनिकों से घिरी हुई भगवती सम्पत्करी मध्याह्न कालिक सूर्य के समान तेजस्वी लालवर्ण वाली थीं।।8।।

मत्तमुद्दण्डसङ्ग्रामरसिकं शैलसन्निभम्।
रणकोलाहलं नाम सारुरोह मतङ्गजम्॥9॥

वे ललिताजी के अंकुशास्त्र से प्रकट देवी सम्पदीश्वरी रण में मद से मदवाले उद्दण्ड और संग्राम प्रिय पर्वत के समान विशाल शरीर वाले 'रणकोलाहल' नाम वाले हाथी में आरुढ़ हुईं, क्योंकि वे भगवती सम्पत्करी भगवती ललिता के अंकुश से प्रकट हुईं थी। अतः हाथी को वश में करने वाला शस्त्र अंकुश ही होता है।।9।।

तामन्वगाययौ सेना महती घोरराविणी।
लोलाभिः केतुमालाभिरुल्लिखन्ती घनाघनान्।।10।।

उन सम्पत्करीदेवी के पीछे बड़ी विशालसेना भयंकर आवाज करती हुई, हिलती हुई, ध्वज मालाओं से मेघों को भी विचलित करती हुई।।10।।

तस्याश्च संपन्नाथायाः पीनस्तनसुसङ्कटः।
कङ्कटो घनसंनाहो रुरुचे वक्षसि स्थितः॥11॥

उन सम्पन्नाथा के स्थूलस्तनों को संकट दे रहा कण्टकयुक्त मेघों को उत्पन्न करने वाला, घनसन्नाह अस्त्र वक्षःस्थल में स्थित था। सम्पत्करी का मुख्य अस्त्र अंकुश है।।11।।

कम्पमाना खङ्गलता व्यरुचत्तत्करे घृता।
कुटिला काळनाथस्य भ्रुकुटीव भयङ्करा॥12॥

हाथ में धारण की हुई कंपकंपाती लहराती हुई खड्गलता उचित लग रही थी, वह टेढी-मेढ़ी लता जैसी लहराती हुई शत्रु पर वार करती है, कालनाथ की कुटिल भौहों जैसी भयानक थी।।12।।

उत्पातवातसंपातचालिता इव पर्वताः।
तामन्वगाययुः कोटिसंख्याताः कुञ्जरोत्तमाः।।13।।

उन भगवती सम्पत्करी के पीछे करोड़ों हाथियों की सेना चल रही थी, उसके चलने पर ऐसा लग रहा था कि उत्पात पैदा करने वाले तूफान से मानो पर्वत चलते हुए प्रतीत हो रहे हों।।13।।

अथ श्रीललितादेव्याः श्रीपाशायुधसंभवा।
अतित्वरितविक्रान्तिरश्वारूढा चलत्पुरः॥14॥

भगवती ललिताम्बा के अंकुशास्त्र से सम्पत्करी देवी के प्रादुर्भाव के अनन्तर भगवती ललिता के पाश आयुध से अत्यन्त तीव्रवेगवाली अश्वारूढ़ा सामने चल रही थी।।14।।

तया सह हयप्रायं सैन्यं हेषातरङ्गितम्।
व्यचलत्खुरकुद्दालनिर्धारितमहीतलम्॥15॥

उनके साथ अश्वारोही सेना घोड़ों की हिनहिनाहट के साथ चल रही थी। उन घुड़सेना के अश्वों की कुदाली जैसे खुरों से धरती विदीर्ण हो रही थी।।15।।

वनायुजाश्च काम्भोजा आरट्टाः सिन्धुदेशजाः।
टङ्कणाः पार्वतीयाश्च पारसीकास्तथापरे॥16॥

उन भगवती अश्वारूढा की सेना में अनेकों प्रकार की नस्लों वाले तथा अनेक देशों के विभिन्न नाम वाले घोड़े थे। जैसे वनायुज, काम्भोज, पारद, सिन्धु देश के उत्पन्न सैन्धव, आरट्ट, टंकण,

पारसी देश से उत्पन्न और पर्वत क्षेत्रों में उत्पन्न जातियों के थे।।16।।

आजानेया घट्टपुरा घरट्टाः कालवन्तिजाः।
वाह्लिकेया वनोद्भूता गान्धर्वाश्चापरे हयाः॥17॥

और भी अन्य जातियों के घोड़े थे- आजानेय, घट्टपुरा, घरट्ट तथा कालवन्तिज, वाह्लिकेय (वाल्हीक देशज), वनोद्भूत और गन्धर्वदेशज घोड़े थे।।17।।

प्राग्देशजाश्च कैराताः प्रान्तदेशोद्भवा अपि।
विनीताः साधुवोढारो वेगिनः स्थिरचेतसः॥18॥

और भी अन्य देशों के घोडे थे - पूर्वी देशों में उत्पन्न, किरातों के देशों में उत्पन्न घोड़े भी ये सभी अश्व विनम्र स्वभाव वाले, अच्छी तरह ढोनेवाले, वेगवाले और स्थिरचित्त से चलने वाले थे।।18।।

स्वामिचित्तविशेषज्ञा महायुद्धसहिष्णवः।
लक्षणैर्बहुभिर्युक्ता जितक्रोधा जितश्रमाः॥19॥

वे सभी अश्वसेना के घोड़े अपने स्वामी के मनोभावों के विशेषज्ञ थे। इशारे में प्रवृत्त होते थे और घोरसंग्राम में प्रत्येक कठिनाई को सह लेने वाले थे। क्रोध को वश में किये हुए और परिश्रम से हटते नहीं थे, ऐसे अनेक सुलक्षणों से सम्पन्न थे।।19।।

पञ्चधारासु शिक्षाढ्या विनीतार्धपुलायिताः।
फालशुक्तिश्रिया युक्ताः श्वेतशुक्तिसमन्विताः।।20।।

उन घोड़ों के शारीरिक चिह्न क्या क्या थे, जो उनके सुलक्षण जाति को बताने वाले थे जैसे-कुछ घोड़े के शिखा पर पांच धाराओं से युक्त थे यह शुभलक्षण माना है अश्वशास्त्र में, ये घोड़े विनीत थे, और छलांग लगाने में निपुण थे। माथे में सीप की शोभा थी, कुछ के माथे सफेद शुक्ति (चिह्न) था।।20।।

देवपद्म देवमणि देवस्वस्तिकमेव च।
अर्धस्वस्तिकशुक्तिं च पुंस्वरं पुष्प्रदण्डिकाम्॥21॥

कुछ घोड़े देवपद्म, देवमणि, देवस्वस्ति के चिह्नों वाले थे। कुछ घोड़ों के शरीर में अर्धस्वस्तिक का चिह्न था। किंसी सीप जैसा शुभ्रचिह्न था, किन्ही का पुंस्वर अर्थात उच्चस्वर हिनहिनाहट थी, किसी के फूलों के डण्ठल जैसे चिह्न थे।।21।।

एतानि शुभलक्ष्माणि जयराज्यप्रदानि च।
वहन्तो वातजवना वाजिनस्तां समन्वयुः।।22॥

ये सभी घोड़े शुभचिह्नों वाले थे, संग्राम में विजय और राज्य प्राप्त कराने वाले थे। सवार को पीठ

में बैठा कर वेग से चलने वाले थे, ऐसे घोड़ों की सेना उन अश्वारूढा के पीछे लगी।।22।।

अपराजितनामानमतितेजस्विनं चलम्।
अत्यन्तोत्तुङ्गवर्ष्माणं कलिकाविलसन्मुखम्।।23।।

अश्वारूढा भगवती के घोड़े का नाम 'अपराजित' था वह सबसे अधिक तेजस्वी था और तीव्र चाल वाला था। उसका शरीर पर्याप्त ऊंचाई वाला था, मुख लगाम की रस्सी से मुख भरा हुआ था।।23।।

पार्श्वद्वयेऽपि पतितस्फुरत्केसरमण्डलम्।
स्थूलवालधिविक्षेपक्षिप्यमाणपयोधरम्।।24।।

उन घोड़ों की गर्दन के दोनों ओर गिरे हुए बाल फहरा रहे थे। मोटी लटों वाले काले काले बालों के बिखरने से ऐसा लगता था कि आकाश के बादलों ने मेघों को बिखरा दिया हो।।24।।

जङ्घाकाण्डसमुन्नद्धमणिकिङ्किणिभासुरम्।
वादयन्तमिवोच्चण्डैः खुरनिष्ठुरकुट्टनैः ।।25।।

उन घोड़ों की जंघाओं के बीच की गांठों में समुन्नत मणि किंकिणी चमक रही थी तथा खुरों में लगी हुई नाल लोहे की उसके कठोर आघात से धरती विदीर्ण हो रही थी।।25।।

भूमण्डलमहावाद्यं विजयस्य समृद्धये।
हेषमाणं प्रतिमुहुः संदर्शितगतिक्रमम्।।26।।

उस विजय समृद्धि के लिए भूमण्डल महावाद्य बन चुका था। उन घोड़ों की चाल के क्रम से बार-बार युद्ध की घोषणा सी की जा रही थी।।26।।

आलोलचामरव्याजाद्वहन्तं पक्षती इव।
भाण्डैर्मनोहरैर्युक्तं घर्घरीजालमण्डितम्।।27।।

उन भगवती पर जो चंबर डुलाया जा रहा था उसके पंख की जड़ को पकड़ के डुलाया जा रहा था, वह चंवर सुन्दरपात्रों से तथा सुन्दर बजते हुए घुंघरुओं से सजा हुआ था।27।

हेषाघोषस्य कपटाद्धुर्वाणमिवासुरान्।
अश्वारूढा महादेवी जवाद्भण्डासुरं ययौ।।28।।

इस प्रकार की हेषा घोषध्वनी करते हुए असुरों से युद्ध करने के लिए अश्व पर आरुढ़ महादेवी अश्वारूढ़ा पूर्णरूप से तैयार होकर युद्धक्षेत्र की ओर चलीं।।28।।

चतुर्भिबाहुभिः पाशमङ्कुशं वेत्रमेव च।
हयवल्गां च दधती बहुविक्रमशालिनी।।29।।

भगवती अश्वारूढा ने अपने चारों हाथों में एक पाश,दूसरे में अंकुश, तीसरे में बेंत और चौथे में घोड़े

की लगाम थामें हुईं अत्यंत पराक्रमशालिनी थीं।।29।।

तरुणादित्यसङ्काशा ज्वलत्कान्तितरङ्गिणी।
संचचाल हयारूढा नर्तयन्तीव वाजिनम्॥30॥

वे भगवती तरुणसूर्य (मध्याह्नकाल के सूर्य) के समान प्रकाश वाली थीं और जगमगाती हुई किरणों वाली करधनी धारण की हुई थीं। वे अश्व में सवार होकर उसे नचाती हुईं युद्धक्षेत्र की ओर चलीं।।30।।

अथ श्रीदण्डनाथाया निर्याणपटहध्वनिः।
उद्दण्डसिन्धुनिध्वानश्चकार बधिरं जगत्॥31॥

सम्पत्करी तथा अश्वारूढ़ा के ससैन्य युद्धक्षेत्र की ओर प्रस्थान करने अनन्तर भगवती ललिताम्बा की सेनापति भगवती दण्डनाथा की सेना के पटहों की ध्वनि से उद्दण्ड समुद्र की गर्जना से अधिक भीषणध्वनि समस्त जगत् बहरा सा हो गया।।31।।

वज्रबाणैः कठोरैश्च भिन्दन्त्यः ककुभो दश।
अत्युदण्डभुजोष्माणः शक्तयः काश्चिदुत्थिताः।।32।।

कठोर वज्रबाणों से समस्त दसों दिशाओं को भेदती हुईं, अत्यन्त उद्दण्ड भुजाओं वाली उग्र तेजस्विनी कोई-कोई शक्तियां उठ खड़ी हो गईं।।32।।

काश्चिच्छ्रीदण्डनाथायाः सेनानासीरसङ्गताः।
खड्गं फलकमादाय पुप्लुवुश्चण्डशक्तयः॥33॥

भगवती श्रीदण्डनाथा की आगे रहने वाली बेतों के संचालन से सेना सजी हुई थीं, उस सेना की चण्डशक्तियां हाथ में तलवार लेकर उछलती कूदती हुईं चल रही थीं।।33।।

अत्यन्तसैन्यसंबाधं वेत्रसंताडनाशतैः।
निवारयन्त्यो वेत्रिण्यो व्यचलञ्छक्तयः शतम्।।34।।

सैकड़ों बेतों के संचालन से सेना में सम्बाध उत्पन्न हो गया था उन बेंतधारिणियों को दूर हटाती हुईं सैकड़ों शक्तियां चल रही थीं।।34।।

अथ तुङ्गध्वजश्रेणीर्महिषाङ्का मृगाङ्किताः।
सिंहाङ्काश्चैव बिभ्राणाः शक्तयो व्यचलन्पुनः।।35।।

इसके अनन्तर महिष (भैंस) के चिह्नवालीं, मृग (हिरण) के चिह्न वाली और कोई सिंह के चिह्न वाली ऊंची ध्वजाओं को धारण की हुईं शक्तियां इधर-उधर से चलने लगीं।।35।।

तदनु श्रीदण्डनाथा श्वेतच्छत्रकदम्बकैः।
स्फुरत्कराः प्रचलिताः शक्तयः काश्चिदुद्धताः।।36।।

इसके बाद श्रीदण्डनाथा की हजारों श्वेतछत्रों की धारण की हुईं फड़कते हाथों वाली कोई और शक्तियाँ जो बहुत ही उद्धत थीं चली युद्धक्षेत्र की ओर।। 36।।

दण्डनाथाविनिर्याणं संख्यातीतैः सितप्रभैः।
छत्रैर्गगनमारेजे निःसंख्यशशिमण्डलम्।।37।।

जब दण्डनाथा ने प्रस्थान किया तब श्वेतप्रभा वाले छत्रों से आकाश असंख्य चन्द्रमण्डलों से आच्छन्न सा हो गया।। 37।।

अन्योन्यसक्तैर्धवलच्छत्रैरन्तर्घनीभवत्।
तिमिरं नुनुदे भूयस्तत्काण्डमणिरोचिषा।।38।।

वहां सभी तरफ इतने श्वेतछत्र थे, कि उनके आपस में मिले हुए होने से उनमें लगे हुए अनेकों मणियों की चमक से अंधेरा बिल्कुल ही नष्ट हो गया था।।38।।

वज्रप्रभायुधगणच्छाया पूरीतदिङ्मुखाः।
तालवृन्ताः शतविधाः क्रोडमुख्यो बलेऽचलन्।।39।।

वज्र की प्रभायुक्त आयुधगणों की छाया से सभी दिशाएं पूरित हो गईं थी, साथ में सौ प्रकारों के तालवृन्त (एक प्रकार का वाद्य) और खड्ग भी इस नाम से व्यवहृत होता है) उन वाराही की सेना में थे।।39।।

चण्डोच्चण्डादयस्तीव्रा भैरवाः शूलपाणयः।
ज्वलत्केश पिशङ्गाभास्तडिद्भासुरदिङ्मुखाः।।40।।

चण्ड उच्चण्डआदि के जलते हुए केशों से लाल आभा से बिजली की चमक हो रही थी। उससे समस्त दिशाएं प्रकाशित हो रही थी। ये उग्र और तीव्रप्रभाव वाले हाथ में शूल लिए हुए भैरव गण थे।।40।।

दहन्त इव दैत्यौघांस्तीक्ष्णैस्तीक्ष्णाक्षिवह्निभिः।
प्रचेलुर्दण्डनाथायाः सेनानासीरधाविनः।।41।।

दैत्यों के समूहों को जलाती हुई वे तीखी आंखें जिनसे तीखी वह्नि की ज्वालाएं निकल रही थी, ऐसी वह भगवती दण्डनाथा की सेना अग्रपंक्ति में चल रही थी।।4।।

अथ पोत्रिमुखी देवीः समानाकृतिभूषणाः।
तत्समानायुधकरास्तत्समानस्ववाहनाः।।42।।

इसके बाद यज्ञाग्नि की ज्वाला के मुखवाली भगवती दण्डनाथा, उनके आभूषण भी वैसे ज्वाला के समान तथा उनके वाहन भी वैसे ही थे।।42।।

तीक्ष्णदंष्ट्रा विनिष्ठयूतवह्निधूमायिताम्बराः।
तमालश्यामलाकाराः कपिलक्रूरलोचनाः ।।43।।

तीक्ष्ण दांतों वाले, मुख में रखी हुई आग से धुएं उगलते हुए तमालवृक्ष के श्यामल आकार वाले कपिलवर्ण वाले तथा उनके बड़े क्रूरनेत्र थे।।43।।

सहस्त्रमहिषारूढाः प्रचेलुः सूकराननाः।
अथ श्रीदण्डनाथा च किरिचक्ररथोत्तमात् ।।44।।

हजारों महिषों पर सवार वराह के मुख वाले वे सभी दण्डनाथा की सेना के भैरव सब तरफ घूम रहे थे। इसके अनन्तर भगवती दण्डनाथा भी किरिचक्र नामक उत्तमरथ से उतर कर।।44।।

अवरुह्य महासिंहमारुरोह स्ववाहनम्।
वज्रघोषमिति ख्यातं धुतकेसरमण्डलम् ।।145।।

अपने वाहन महासिंह की पीठ पर बैठ गईं। वह वाहन महासिंह 'वज्रघोष' नामक था, जिसकी जटाए श्वेतवर्ण की थीं।।45।।

व्यात्तास्यं विकटाकारं विशङ्कटविलोचनम्।
दंष्ट्राकट कटा कारबधिरीकृत दिङ्मुखम् ।।46।।

उस 'वज्रघोष' सिंह का भयंकर आकार था, मुख फैला हुआ था, बड़ी-बड़ी आंखें थी, दाढों की कटकट ध्वनि से दिशाएं बहरी हो जा रही थीं।।46।।

आदिकूर्मकठोरास्थि कूर्परप्रतिमैर्नखैः।
पिक्षन्तमिव भूचक्रमापातालनिमज्जिभिः ।।47।।

आदि कच्छपावतार भगवान के समान जिसकी अस्थिखर्पर के समान जिसके नाखून थे। वह ऐसा लग रहा था, कि जैसे वह भूमि से लेकर पाताल तक निमज्जन कर रहा हो।।47।।

योजनत्रयमुत्तुङ्गं वेगादुद्धतवालधिम्।
सिंहवाहनमारुह्य व्यचलद्दण्डनायिका ।।48।।

भगवती दण्डनाथा जिस सिंह पर आरूढ़ थी, वह सिंह इतना बली था कि वह तीनयोजन पर्यन्त छलांग लगा सकता था, जिसकी जटाएं समुद्र को खौला देती थीं।।48।।

तस्यामसुरसंहारप्रवृत्तायां ज्वलत्क्रुधि।
उद्वेगं बहुलं प्राप त्रैलोक्यं सचराचरम् ।।49।।

जब वे महादेवी क्रोध मे उबलती हुई असुरसंहार के लिए तैयार हुई तब सम्पूर्ण त्रिलोकी बहुत ही उद्वेग में व्यस्त हो गई।।49।।

किमसौ धक्ष्यति रुषा विश्वमद्यैव पोत्रिणी।
किंवा मुसलघातेन भूमि द्वेधा करिष्यति।
अथवा हलनिघार्तैः क्षोभयिष्यति वारिधीन्।।50।।

संसार के प्राणी चिन्तित हो गए वे बार-बार सोचने लगे कि ये भगवती दण्डनाथा क्रोध में सब भस्म कर देंगी, या मूसल की मार से धरती के टुकड़े कर देंगी अथवा हल के आघातों से समुद्रों को क्षुभित कर देंगी।।50।।

इति त्रस्तमनाः सर्वे गगने नाकिनां गणाः।
दूरद्रुतविमानाश्च सत्रासात्तामुदैक्षत।।51।।

इस प्रकार स्वर्ग के निवासी देवगण व्याकुल मन से युक्त हो गए, तब दूर से ही शीघ्र अपने-अपने विमान से उन्हें देखने के लिए विमानों से उतरकर डरे हुए उन्होंने भगवती को देखा।।51।।

ववन्दिरे च ते देवा बद्धाञ्जलिपुटाञ्चिताः।
मुहुर्द्वादशनामानि कीर्तयन्तो नभःस्थले॥52॥

वे सभी देवगण ने हाथ जोड़कर भगवती दण्डनाथा की वन्दना की, उन्होंने भगवती के दिव्य बारह नामों का नभःस्थल में गायन किया।।52।।

कानि द्वादशनामानि तस्या देव्या वद् प्रभो ।
अश्वानन महाप्राज्ञ येषु मे कौतुकं महत्॥53॥

हे प्रभो महाबुद्धिमान! उन भगवती के वे बारह नाम कौन से हैं? प्रभो! बताएं। मुझे उन्हें सुनने की बहुत प्रबल इच्छा है।।53।।

अगस्त्य जी की इच्छा देखकर भगवान हयग्रीव बोले-

शृणु द्वादश नामानि तस्या देव्या घटोद्भव।
येषामाकर्णनामात्रात्प्रसन्ना सा भविष्यति॥54॥

हे घटोद्भव! उन महादेवी के बारह नामों को सुनो, जिनके सुनन मात्र से वह भक्त पर प्रसन्न हो जाती हैं।।54।।

पञ्चमी दण्डनाथा च सङ्केता समयेश्वरी।
तथा समयसङ्केता वाराही पोत्रिणी शिवा॥55॥
वार्ताली च महासेनाप्याज्ञाचक्रेश्वरी तथा।
अरिघ्नी चेति सम्प्रोक्तं नामद्वादशकं मुने॥56॥

पञ्चमी, दण्डनाथा, सङ्केता, समयेश्वरी, समयसङ्केता, वाराही, पोत्रिणी, शिवा, वार्ताली, महासेना आज्ञाचक्रेश्वरी तथा अरिघ्नी।।55,56।।

नामद्वादशधाभिख्यवज्रपञ्जरमध्यगः।
सङ्कटे दुःखमाप्नोति न कदाचन मानवः ।।57।।

हे मुने! ये बारह नाम भगवती दण्डनाथा के कहे गए हैं। इन बारह नामों को कहने वाला भी वज्र पिंजरे से भी मुक्त हो जाता है। मनुष्य संकटों में भी कभी भी दुःख नहीं पाता।।57।।

एतैर्नामभिरभ्रस्थाः सङ्केतां बहु तुष्टुवुः।
तेषामनुग्रहार्थाय प्रचचाल च सा पुनः ।।58।।

इन दिव्य भगवती दण्डनाथा के बारह नामों को आकाश में विमानों में देवों ने उच्चारण कर भगवती को प्रसन्न किया। उन पर अनुग्रह करने के लिए उन्हें असुर भण्ड की यातना पहुंचाने की विपत्ति को दूर करने के लिए वे समराङ्गण की ओर चलीं।।58।।

अथ सङ्गीतयोगिन्या मन्त्रिराज्ञीपदस्पृशः।
निर्याणसूचनकरी दिवि दध्वान काहली ।।59।।

भगवती दण्डनाथा की बारह नामों से आराधना से प्रसन्न उनके प्रस्थान के अनन्तर भगवती संगीतयोगिनी मन्त्रनाथा के चरणों को स्पर्श करने वाली उनके निर्गमन की सूचना देने वाली काहली आकाश में दिखाई दी।।59।।

शृङ्गारप्रायभूषाणां शाद्वलश्यामलत्विषाम्।
वीणासनाथपाणीनां शक्तीनां निर्ययौ बलम्।।60।।

तब शृंगारप्राय आभूषणों वाली, सिंह के श्यामल छवि वाली, वीणासंयत हाथों वाली, शक्तियों का सैन्यबल युद्ध के लिए निकल पड़ा।।60।।

काश्चिद्गायन्ति नृत्यन्ति मत्तकोकिलनिस्वनाः।
काश्चित्कादम्बरीपानकषायितविलोचनाः ।।61।।

कोई गा रही थी, कोई नृत्य कर रही थी, कोई मत्तकोकिल की आवाज निकाल रही थी तथा उस समय कोई कादम्बरी के पान से कषैले नेत्रों वाली हो रही थी।।61।।

बन्दिमागधरूपाश्च काश्चिदन्याः कलस्वनाः।
वीणावेणुमृदङ्गाढ्याः सविलासपदक्रमाः ।।62।।

कोई बन्दी मागधरूपों वाली थी, अन्य कोई मधु स्वरो वाली थी, कोई वीणावाद्य लिए हुए, कोई वेणु (बांसुरी) लिए हुए, कोई मृदङ्ग हाथ में लिए हुए, कोईताल के चरणों को चलाती हुई चल

रही थीं।।62।।

प्रचेलुः शक्तयः श्यामा हर्षयन्ती जगज्जनान्।।63।।

इस प्रकार संसार के लोगों को हर्षित करती हुई श्यामानाम की शक्तियां चल रही थीं।।

मयूरवाहाः कतिचित्कतिचिद्धंसवाहनाः।

कतिचिन्नकुलारूढाः कतिचित्कोकिलासनाः।।64।।

उस श्यामा सेना में कोई मोर की सवारी कर रही थी। कोई हंस की पीठ में बैठी थीं, कोई नेवले (नकुल) पर सवार थी एवं कोई कोयल वाहन पर सवार थीं।।64।।

सर्वाश्च श्यामलाकाराः काश्चित्कर्णीरथस्थिताः।

कदम्बमधुमत्ताश्च काश्चिदारूढसैन्धवाः।

मंत्रिनाथां नमस्कृत्य संप्रचेलुः पुरः पुरः॥65॥

सभी शक्तियां श्यामल आकार वाली थीं, कोई शक्ति कर्णीरथ पर आरुढ़ थीं, कोई मधु के मद मत्त हो रही थी, कोई सैन्धव घोड़ों पर सवार थी, ये सभी देवियां मंत्रिनाथा को प्रणाम करके मंत्रिनाथा के आगे आगे चल रही थीं।।65।।

अथारुह्य समुत्तुङ्गं गेयचक्रं महारथम्।

बालार्कवर्णकवचा मदारुणविलोचना।।66।।

नवोदित सूर्य के अरुणवर्ण के समान कवच धारण की हुई मद से लाल लाल नेत्रों वाली वे ऊंचे महान रथ गेयचक्र नामक में आरूढ़ होकर-

ईषत्प्रस्वेदकणिका मनोहर मुखाम्बुजा।

प्रेषयन्ती कटाक्षेण किंचिभ्रूवल्लिताण्डवैः॥67॥

कुछ कुछ छोटे छोटे पसीने के बिन्दुयुक्त सुन्दर मनोहर मुखकमल वाली वे मंत्रिनाथा आंखों के इशारे प्रेषण करती हुई और कुछ भ्रूलता के ताण्डव संचालन से प्रेषण करती हुई।।67।।

समस्तमपि तत्सैन्यं शक्तीनामुद्धतोद्धतम्।

पिंछत्त्रिकोणचक्रेण बिरुदेन महीयसा॥68॥

शक्तियों का वह अत्यन्त उद्धत होकर समस्त सैन्य महानपिच्छ त्रिकोणचक्र से जोर-जोर से युद्ध की घोषणा करती हुईं।।68।।

असामान्येन चान्यासां शक्तीनामुज्वलोदया।

निर्जगाम घनश्यामा श्यामला मन्त्रिनायिका।।69।।

अपने असाधारण भ्रूलता के निर्देशों से अन्य शक्तियों के उज्जवल उत्साह वर्धित करती हुईं मेघों

के समान वर्णवाली श्यामला मन्त्रिनाथा युद्धक्षेत्र के लिए प्रस्थान कीं।।69।।

तां तुष्टुवुः षोडशभिर्नामभिर्नाकवासिनः।
तानि षोडश नामानि समाकर्णय कुम्भज॥70॥

भगवती श्यामला मन्त्रिणी के सोलह नामों से स्वर्ग निवासी देवों ने उच्चारण कर उन्हें प्रसन्न किया। हे कुम्भज! आप भी उन दिव्य सोलह नामों को सुनो।।70।।

सङ्गीतयोगिनी श्यामा श्यामला मन्त्रिनायिका।
मन्त्रिणी सचिवेशानी प्रधानेशी शुकप्रिया॥71॥
वीणावती वैणिकी च मुद्रिणी प्रियकप्रिया।
नीपप्रिया कदम्बेशी कदम्बवनवासिनी॥72॥
सदामदा च नामानि षोडशैतानि कुम्भज॥73॥
एतैर्यः सचिवेशानीं सकृत्स्तौति शरीरवान्।
तस्य त्रैलोक्यमखिलं वशे तिष्ठत्यसंशयः॥74॥

हे कुम्भज! इन भगवती मन्त्रिणी के दिव्य सोलह नामों से शरीरधारी अर्चन करता है, वह भगवती को प्रसन्न कर लेता है। उनकी प्रसन्नता से वह तीनों लोकों के प्राणियों को अनुकूल बना लेता है।।74।।

मन्त्रिनाथा यत्र यत्र कटाक्षं विकिरत्यसौ।
तत्रतत्र गताशङ्कं शक्तिसैन्यं पतत्यलम् ॥75॥

भगवती मन्त्रनाथा श्यामला जहाँ-जहाँ अपनी दृष्टि घुमातीं थीं, वहाँ-वहाँ बिना संकोच के शक्तिसैन्य शत्रु पर टूट पड़ता था।।75।।

ललितापरमेशान्या राज्यचर्चा तु यावती।
शक्तीनामपि चर्चाया सा सर्वा तद्वशं वदा॥76॥

जितनी राज्यचर्चा ललिता परमेश्वरी की होती थी, वह जय देने वाली होती थी, उतनी ही चर्चा सर्वत्रजय प्रदान करने वाली चर्चाशक्तियों की है। (भगवती ललिता परमेश्वरी के साथ उनकी शक्तियों की चर्चा सर्वत्र जयप्रद होती है।) अतः सपर्याक्रम में भगवती के साथ दण्डनाथा और मन्त्रनाथा ससैन्य स्मरण की जाती है।।76।।

अथ सङ्गीतयोगिन्याः करस्थशुकपोतकात् ।
निर्जगाम धनुर्वेदो वहन्सज्यं शरासनम्॥77॥

इसके बाद संगीतयोगिनी के हाथ में बैठे तोते के बच्चे से हाथ में धनुष और बाणों से भरे तूणीर

(तरकस) लिए हुए वीर धनुर्वेद निकला।।77।।

चतुर्बाहुयुतो वीरस्त्रिशिरास्त्रिविलोचनः।
नमस्कृत्य प्रधानेशीमिदमाह स भक्तिमान्॥78॥

वह वीर धनुर्वेद चार भुजाओं वाला तीन सिरों वाला और तीन आंखों वाला था, उसने भगवती प्रधानेशी को भक्तिपूर्वक प्रणाम करते हुए निवेदन किया।।78।।

देवि भण्डासुरेन्द्रस्य युद्धाय त्वं प्रवर्तसे।
अतस्तव मया साह्यं कर्तव्यं मन्त्रिनायिके।।79॥

हे देवी! आप भण्डासुरेन्द्र के युद्ध के लिए प्रवृत्त हो रही हो अतः हे मन्त्रिनायिके! आपको मेरे साथ कार्य करना चाहिए।।79।।

चित्रजीवमिदं नाम्ना कोदण्डं सुमहत्तरम्।
गृहाण जगतामम्ब दानवानां निबर्हणम्॥80॥

यह ''चित्रजीव'' नाम वाला बहुत ही महान धनुष है, जो जगत के समस्त दानवों का विनाश करने वाला है।।80।।

इमौ चाक्षयबाणाढ्यौ तूणीरौ स्वर्णचित्रितौ।
गृहाण दैत्यनाशाय ममानुग्रहहेतवे॥81॥

ये दो तूणीर (तरकस) अक्षयबाणों से भरे हुए हैं, ये कभी खाली नहीं होते आप मुझ पर अनुग्रह करती हुई इन्हें स्वीकार करें।।81।।

इति प्रणम्य शिरसा धनुर्वेदेन भक्तितः।
अर्पितं चापतूणीरं जग्राह प्रियकप्रिया॥82॥

इस प्रकार भक्तिपूर्वक भगवती को प्रणाम करते हुए धनुर्वेद ने उन धनुष और बाण पूर्ण तरकसों को अर्पित किया। भगवती ने भी उसकी भेंट को स्वीकार किया।।82।।

चित्रजीवं महच्चापमादाय च शुकप्रिया।
विष्फारं जनयामास मौवीर्मुद्धाट्य भूरिशः।।83।।

उस चित्रजीव नामक धनुष को उन शुकप्रिया भगवती ने लिया और उस धनुष की डोरी (प्रत्यंचा) को अनेक बार बचाकर (धनुष्टंकार) करके उसकी टंकार को फैला दिया।।83।।

सङ्गीतयोगिनीचापध्वनिना पूरितं जगत्।
नाकालयानां च मनोनयनानन्दसंपदा ॥84॥

संगीतयोगिनी ने धनुष की टंकार से सम्पूर्ण संसार ध्वनि से भर गया तथा स्वर्ग में रहने वाले देवों

के घर आनन्द से भर गए। सभी के मन और नेत्र आनन्द सम्पन्न हो गए।।84।।

यंत्रिणी तंत्रिणी चैव द्वे तस्याः परिचारिके।
शुकं वीणां च शिरसा वहन्त्यौ परिचेरतुः॥85॥

उन भगवती संगीतयोगिनी मन्त्रिणी की दो परिचारिकाएं थी, यन्त्रिणी और तन्त्रिणी तथा दोनों ही परिचारिकाएं शुक और वीणा सिर में धारण किए हुए सेवा करती थी।।85।।

आलोलवलयक्वाणवर्धिष्णुगुणनिस्वनम्।
धारयन्ती वपुः श्यामा चकारारिमनोज्वरम्।।86।।

वे भगवती श्यामला अत्यन्त मनोहर दिव्यकंगन धारण किये हुए थीं, जो जोरों से बार-बार हिलते थे, हिलने से जो उनसे खनखनाहट की अति मनोहरध्वनि कर रहे थे एवं शत्रु के मनों मे संताप बढ़ा रहे थे।।86।।

चित्रजीवशरासेन भूषिता गीतयोगिनी।
कादम्बिनीव रुरुचे कन्दलच्छक्रकार्मुका॥87॥

चित्रजीव धनुष वे गतियोगिनी सुशोभित हो रही थी, ऐस प्रतीत हो रहा था कि जैसे इन्द्रधनुष (रंगबिरंगे आकाश में दिखने वाला) हाथ में लिये कादम्बिनी।।87।।

कालीकटाक्षवत्तीक्ष्णो नृत्यद्भुजगसंन्निभः।
उल्लसन्दक्षिणे पाणौ विललास शिलीमुखः॥88॥

भगवती काली के कटाक्ष जैसे तीक्ष्ण उनकी नृत्य करती हुई भुजा थी तथा उनके दाहिने हाथ में बाण सुशोभित हो रहा था।।88।।

गेयचक्ररथारूढां तां पश्चाच्च सिषेविरे।
तद्वच्छ्धामलशोभाढ्या देव्यो बाणधनुर्धराः।।89॥

गेयचक्रवाले रथ में विराजी हुईं वे श्यामला, उनकी पीछे से सेवा करती हुई वे देवियां, जो उन्हीं ही भगवती जैसी श्यामलाशोभा से भरी पूरी थीं, उन देवियों ने भी धनुष धारण कर रखा था।।89।।

सहस्त्राक्षौहिणीसंख्यास्तीव्रवेगा मदालसाः।
आपूरयन्त्यः ककुभः कलैः किलकिलारवैः॥90॥

तीव्रवेग वाली युद्ध के मद से मत्त सहस्त्र अक्षोहिणी सेना की किलकिल ध्वनि से सम्पूर्ण दिशाएं गुञ्जारित हो रही थीं।।90।। यहां से भगवती ललिताम्बा की सेना की जय यात्रा।।

अथ चक्रराजरथनायिकाश्रिता
ज्वलिताङ्कुशा फणिसमानपाशभृत्।
कलनिक्कणद्वलयमैक्षवं धनुर्दधती प्रदीप्तकुसुमेषुपञ्चका॥91॥

इसके अनन्तर चक्रराजरथ की नायिका भगवती जो अपने हाथों में उग्रतेज से चमकने वाले अंकुश को और सर्प के फन के समान भयानक पाश को लिए हुए थीं एवं अधःस्थित हाथ में मधुर पर तीव्रध्वनि करने वाले कंगन धारण की हुई थीं, ऐसे हाथ में इक्षुधनुष था तथा दूसरे हाथ में अपने तेज से चमक रहे पांच पुष्पबाण (सहकार मंजरी और चार रंगों के चार कमल, श्वेत, लाल, नीला, पीला ये 5 बाण) धारण किए हुए।।91।।

उद्यत्सहस्त्रमहसां सहस्त्रतोऽप्यतिपाटलं निजवपुः प्रभाझरम्।
किरती दिशासु वदनस्य कान्तिभिः
सृजतीव चन्द्रमयमभ्रमण्डलम्॥92॥

उस समय वे महादेवी उदय होते हुए सूर्यों की कांति के समान ही नहीं हजारों से अत्यधिक गुलाबी लाल अपने शरीर की प्रभा को दिशाओं में बिखेर रही थीं, तथा वदन की कांति से ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे वह कान्ति चन्द्रमा से युक्त नभोमण्डल को मित्र बना रही हो।।92।।

दशयोजनायतिमता जगत्त्रयी-
मभिवृण्वता विशद्मौक्तिकात्मना ।
धवलातपत्रवलयेन भासुरा शशिमण्डलस्य सखितामुपेयुषा॥93॥

दशयोजन विस्तार वाले तीनोंलोकों को अभिव्याप्त करने वाले अपने विशद मोती जैसे श्वेतछत्र के चमकते हुए घेरे द्वारा वे चन्द्रमण्डल की मित्रता प्राप्त हो रही थी, अर्थात मोती की कांति वाला उनका छत्र इतना प्रकाशित हो गया था कि यह छत्र चन्द्रमण्डल की समता को प्राप्त कर रहा था।।93।।

अभिवीजिता च मणिकाण्डशोभिना विजयादिमुख्यपरिचारिकाजनैः।
नवचन्द्रिकालहरि कान्तिकन्दलीचतुरेण चामरचतुष्टयेन च॥94॥

उन देवी के ऊपर मणिकाण्ड की शोभा वाली विजया आदि मुख्य परिचारिकाएं जो चंवर डुला रही थीं उन चारों चंवरों और चार ध्वजाओं की कान्ति नयी चन्द्रिका की लहराती कान्ति के समान थी।।94।।

शक्त्यैकराज्यपदवीमभिसूचयन्ती साम्राज्यचिह्नशतमण्डितसैन्यदेशा।
सङ्गीतवाद्यरचनाभिरथामराणां संस्तूयमानविभवा विशदप्रकाशा॥95॥

उन चामरों और ध्वजाओं की शक्तिद्वारा एक राज्यपदवी सूचित हो रही थी, अर्थात त्रैलोक्य एक ही राजधानी हो ऐसा ज्ञात होता था, तथा उससे साम्राज्यों के शताधिक चिह्नों से मण्डित सौन्दर्य दशा प्रतीत होती थी, वहां जो देवाङ्गनाएं गायन वादन और पदरचना कर उन भगवती की स्तुति कर रही थीं, उससे उनका असीमित ऐश्वर्य तथा अत्यन्त तीव्रप्रकाश विदित हो रहा था।95।।

वाचामगोचरमगोचरमेव बुद्धेरीदृक्तया न कथनीयमनन्यतुल्यम्।
त्रैलोक्यगर्भपरिपूरितशक्तिचक्र साम्राज्यसम्पदाभिमानमभिस्पृशन्ती।।96।।

वे देवी वाणी से जानने योग्य नहीं थीं तथा न बुद्धि से उन्हें जाना जा सकता था, इस दृष्टि से उनकी किसी से तुलना भी नहीं की जा सकती है अतः तीनों लोकों के गर्भ परिपूरित चक्रवर्ती साम्राज्य की सम्पत्ति के अभिमान को स्पर्श करती हुई थीं।।96।।

आबद्धभक्तिपिशुनाञ्जलिशेखराणामारादहंप्रथमिका कृतसेवनानाम्।
ब्रह्मेन्द्र रुद्रहरि मुख्य सुरोत्तमानां वक्त्राणि वर्धितनुतीनि कटाक्षयन्ती।।97।।

उन देवी की भक्ति में पंक्तिबद्ध अनेकों हाथ जोड़कर महान से महान व्यक्ति खड़े रहते थे, जो सभी भक्ति में होड़ करते थे, कि मैं सेवा करने में प्रथम हूं, ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र, हरि आदि उत्तम देवताओं द्वारा प्रशंसा करते हुए मुखों पर मुखों से कटाक्ष करती हुईं।।97।।

उद्दीप्तपुष्पशरपञ्चकतः समुत्थै-र्ज्योतिर्मयं त्रिभुवनं महसा दधानैः।
विद्युत्समद्युतिभिरप्सरसां समूहै-र्विक्षिप्यमाणजयमङ्गललाजवर्षा ।।98।।

चमकते हुए अपने पाँचपुष्पबाणों से उठे हुए ज्योतिर्मय त्रिभुवन को अपने तेज से धारण करती हुईं, बिजली के समान कान्तिवाली अप्सराओं द्वारा उनके ऊपर जय और मंगल की कामना से लाजाक्षतों (धान की लाई) से वर्षा की जा रही थी।।99।।

कामेश्वरीप्रभृतिभिः कमनीयभाभिः सङ्ग्रामवेषरचनासु मनोहराभिः।
दीप्तायुधद्युतितिरस्कृतभास्कराभि-र्नित्याभिरङ्घ्रिसविधे समुपास्यमाना।।99।।

उन महादेवी की कामेश्वरी आदि (कामेश्वरी, भगमाला, नित्यक्लिन्ना, भेरूण्डा, वाहनवासिनी, महावज्रेश्वरी, शिवदूती, त्वरिता, कुलसुन्दरी, नित्यरूपिणी, नीलपताका, विजया, सर्वमङ्गला, ज्वालामालिन, चित्रा) ललिता महानित्या, शक्तियाँ सुखप्रदान करने वाली आभाओं वाली संग्राम वेशभूषा से मनोहर लगने वाली चमकते हुए आयुधों की कान्ति से सूर्य के प्रकाश को तिरस्कृत करने वाली नित्याकामेश्वरी आदि देवियां चरणों के पास बैठकर उपासना कर रही थीं।।99।।

श्रीचक्रनामतिलकं दशयोजनाति-तुङ्गध्वजोल्लिखितमेघकदम्बमुच्चैः।
तीव्राभिरावरणशक्तिपरम्पराभि-र्युक्तं रथं समरकर्मणि चालयन्ती॥100॥

वे देवी समरकर्म में ऐसे रथ को चलवा रही थीं जिसमें दसयोजन की अति ऊंचाई पर जहां मेघों की ऊंचाई होती है, उतनी ऊंचाई पर लगी हुई ध्वजा पर श्रीचक्र नामक तिलक चिह्नित था जो रथ तीव्रावरण और शक्तियों की परम्पराओं से युक्त था।।100।।

पञ्चाधिकैर्विंशतिनामरत्नैः पञ्चपापप्रशमाय दक्षैः।
संस्तूयमाना ललिता मरुद्भिः सङ्ग्राममुद्दिश्य समुञ्चचाल॥101॥

इस प्रकार पच्चीस नामरत्नों वाले प्रपंचों और पांच महापातकों को प्रशान्त करने में दक्ष मरुद्गणों द्वारा स्तुति की जाती हुई वे भगवती ललिताम्बा संग्राम का उद्देश्य बनाकर सम्यक् प्रकार से प्रस्थान रही थीं।।101।।

अगस्त्य जी बोलेः-

वाजिवक्रमहाबुद्धे पञ्चविंशतिनामभिः।
ललितापरमेशान्या देहि कर्णरसायनम्॥102॥

हे हयग्रीव! महाबुद्धिमान!! भगवती के पच्चीसनाम, जिनका संकेतके कर्णों को रसायन हैं, कृपया मुझे बतावें।।102।।

श्रीहयग्रीव जी बोले

सिंहासनेशी ललिता महाराज्ञी वराङ्कुशा।
चापिनी त्रिपुरा चैव महात्रिपुरसुन्दरी॥103॥
सुन्दरी चक्रनाथा च सम्राज्ञी चक्रिणी तथा।
चक्रेश्वरी महादेवी कामेशी परमेश्वरी ॥104॥
कामराजप्रिया कामकोटिका चक्रवर्तिनी।
महाविद्या शिवानङ्गवल्लभा सर्वपाटला॥105।।
कुलनाथाम्नायनाथा सर्वाम्नायनिवासिनी।
शृङ्गारनायिका चेति पञ्चविंशतिनामभिः॥106।।
स्तुवन्नि ये महाभागां ललितां परमेश्वरीम्।
ते प्राप्नुवन्ति सौभाग्यमष्टौ सिद्धीर्महद्यशः॥107॥

जो भक्त महाभागा श्री ललिम्बा परमेश्वरी की इन दिव्य पच्चीसनाममन्त्रों से आराधना करते हैं, तो वे सौभाग्य को प्राप्त करेंगे तथा उन्हें अष्टसिद्धियों की उपलब्धि हो सकेगी एवं उनका सर्वत्र

यश फैलेगा।।107।।

इति प्रचण्डसंरम्भं चालयन्ती महद्बलम्।
भण्डासुरं प्रति क्रुद्धा चचाल ललिताम्बिका।।108।।

इस प्रकार महाबल और प्रचण्डवेग से अत्यन्त विशालसेना को चलाती हुई दैत्य पर कुद्धललिता परमेश्वरी त्रिपुराम्बा ने प्रस्थान किया।।108।।

॥इति श्रीब्रह्माण्डपुराणे उत्तरखण्डे हयग्रीवागस्त्यसंवादे
ललितोपाख्याने एकादशोऽध्यायः॥ ११ ॥

॥श्रीमन्महागणाधिपतये नमः।।

श्रीमातालिताम्बायै नमः श्रीपादुकां पूजयामि नमः ॥
ॐ वन्दे गुरुपदद्वन्द्वं अवाङ्मनसगोचरम्॥
रक्तशुक्ल प्रभामिश्रमतर्क्यं त्रैपुरं महः॥
ॐ आराध्यदेवं भक्तानां कलिदोषविनाशकम्॥
वन्दे श्रीगिरिजानन्दं शारदाश्रीमठाधिपम्।।
ॐ अखण्डं यस्यज्ञानञ्च भक्तिर्यस्यानपायिनी।।
शारदाज्योतिरीशस्य दर्शनं (पूजनं, वन्दनं) शुभमस्तुनः।।

द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ 97 श्लोकात्मकः

॥ चक्रराजरथपर्वदेवतावर्णनम् ॥

श्री अगस्त्यजी श्री हयग्रीव जी से बोले-

चक्रराजरथेन्द्रस्य याः पर्वणि समाश्रिताः।
देवताः प्रकटा मुख्यास्तासामाख्याञ्च मे वद॥1॥

चक्रराजरथेन्द्र के पर्व में जो समाश्रित देवता हैं उनकी आख्या (शोभा, कान्ति और काम) मुझे बतावें।।1।।

संख्याश्च तासामखिलान्वर्णभेदांश्च शोभनान्।
आयुधानि च दिव्यानि कथयस्व हयानन॥2॥

उन पर्वस्थ समस्त शक्तिदेवियों की संख्या, आयुध, तथा वर्णभेदों तथा आयुधों को बताने का कष्ट करें।।2।।

हयग्रीवः ॥ श्री हयग्रीव जी बोले-ः

नवमं पर्व दीप्तस्य रथस्य समुपाश्रिताः।
दश प्रोक्ताः सिद्धिदेव्यस्तासां नामानि मच्छृणु।।3।।

उस तेजस्वी चक्ररथ में नवपर्व हैं उनमें दससिद्धि देवियां हैं उनके नाम तुम मुझसे सुनो।।3।।

अणिमा महिमा चैव लघिमा गरिमा तथा।
ईशिता वशिता चैव प्राप्तिः सिद्धिश्च सप्तमी॥4॥

उन सिद्धियों के नाम सुनिये- 1 अणिमा, 2 महिमा, 3 लघिमा, 4 गरिमा, 5 ईशिता, 6 वशिता तथा 7 प्राप्ति है।।4।।

प्राकाम्या मुक्तिसिद्धिश्च सर्वकामाभिधा परा।
एता देव्यश्चतुर्बाहा जपाकुसुमसन्निभाः॥5॥

8वीं सिद्धि प्राकाम्या, 7वीं मुक्ति और 10वीं सर्वकामा ये सभी चतुर्भुजी हैं इनका वर्ण जपाकुसुम जैसे उज्ज्वल लालवर्ण हैं।।5।।

चिन्तामणिं कपालं च त्रिशूलं सिद्धिकज्जलम्।
दधाना दयया पूर्णा योगिभिश्च निषेविताः॥6॥

ये सभी देवियों चिन्तामणि, कपाल, त्रिशूल और सिद्धिकज्जल धारण किये रहती हैं ये दया से भरपूर हैं क्रूर तथा भयानक नहीं हैं इनकी आराधना योगिगण करते हैं।।6।।

तत्र पर्वोर्ध्वभागे च ब्राह्माद्या अष्ट शक्तयः।
ब्राह्मी माहेश्वरी चैव कौमारी वैष्णवी तथा॥7॥

उस रथ के पर्व के ऊपरी भाग में ब्राह्मी आदि आठशक्तियां हैं उनके नाम ये हैं-1 ब्राह्मी, 2 माहेश्वरी, 3 कौमारी, 4 वैष्णवी।।7।।

वाराही चैव माहेन्द्री चामुण्डा चैव सप्तमी।
महालक्ष्मीरष्टमी च द्विभुजाः शोणविग्रहाः।
कपालमुत्पलं चैव बिभ्राणा रक्तवाससः॥8॥

5 वाराही, 6 माहेन्द्री, 7 चामुण्डा, 8 महालक्ष्मी, ये सभी दो भुजाओं वाली और लालवर्ण की हैं, कपाल और कमल लिये रहती हैं ये लालरंग की साड़ी पहिने रहती हैं।।8।।

अथवान्यप्रकारेण केचिद्ध्यानं प्रचक्षते।
ब्रह्मादिसदृशाकारा ब्रह्मादिसदृशायुधाः॥9॥

कुछ लोग अन्य प्रकार से ध्यान करते हैं जैसे ब्रह्मादि देवताओं का जैसा आकार था ठीक वैसा ही आकार ब्राह्मी आदि का भी, ब्रह्मादि देवताओं के जैसे आयुधादि हैं वैसे ही आयुध उन ब्राह्मी आदि के थे यथा-जैसे ब्रह्माजी चतुर्मख हैं ब्रह्माजी का वाहन हंस है हाथ में अक्षसूत्र है और कमण्डलु है ठीक वैसी ही ब्राह्मी चतुर्मुखा, हंसवाहना और अक्षमाला कमण्डलु धारण की हुई इसी प्रकार माहेश्वरी भी भगवान महेश्वर वृषवाहन, त्रिशूल नागों से आभूषित, मस्तक में चन्द्र की निष्कलंक कला वैसी ही माहेश्वरी का रूप था इस तरह सभी सिद्धियों योगिनियों के रूप थे श्री दुर्गा सप्तशती के 8में अध्याय में यह वर्णन है। ब्रह्मेशगुहविष्णूनां तथेन्द्रस्य शक्तयः शरीरेभ्यो विनिष्क्रम्य तद्रूपेश्चिण्डका ययुः।।9।।

ब्रह्मादीनां परं चिह्न धारयन्त्यः प्रकीर्तिताः।

तस्याप्यूर्ध्वस्थानगता मुद्रादेव्यो महत्तराः॥10॥

ये सभी ब्राह्मादिदेवियां ब्रह्मादि के रूपादि हैं उनके चिह्नादि हैं ठीक वैसे ही धारण किये रहती हैं ध्यान करने वालों ने एवं उपासनाग्रन्थों में वर्णन किया गया है (इस स्वरूप एकता शक्तिमान् और शक्ति के सादृश्य रूप एकत्व की सिद्धि अनुभूत होती है, यही सामरस्य भाव है) उससे भी ऊंचेस्थान में स्थित महान् से भी महान् मुद्रादेवियां हैं।।10।।

मुद्राविरचनायुक्तैर्हस्तैः कमलकान्तिभिः।

दाडिमीपुष्पसङ्काशाः पीताम्बरमनोहराः॥11॥

वे देवियां कमल के समान कान्तिवाले हाथों से मुद्राओं की रचना करती रहती हैं, उनका वर्ण अनार के फूलों जैसा सिन्दूरवर्ण है उन्होंने पीतवर्ण की सुन्दर साड़ियां की हुई हैं ।।11।।

चतुर्भुजा भुजद्वन्द्वधृतचर्मकृपाणिकाः।

मदरक्तविलोलाक्ष्यस्तासां नामानि मच्छृणु॥12॥

ये मुद्राशक्तियां चारभुजाओं वाली हैं दोनों भुजाओं में ढाल और कृपाण धारण की हुई हैं उन सभी नेत्र मद से मत्त हैं और रक्त की लाली नेत्रों में है और चंचलनेत्र हैं उनके नाम मुझसे सुनो।।12।।

सर्वसंक्षोभिणी चैव सर्वविद्राविणी तथा।

सर्वाकर्षिणिका मुद्रा तथा सर्ववशंकरी॥13॥

सर्वसंक्षोभिणी, सर्वविद्राविणी, सर्वाकर्षिणिका तथा सर्ववंशकरी और।।13

सर्वोन्मादनमुद्रा च षष्ठी सर्वमहाङ्कुशा।

सर्वखेचरमुद्रा च सर्वबीजा तथापरा॥14॥

सर्वोन्मादन मुद्रा, सर्वमहांकुशामुद्रा, सर्वरखेचरमुद्रा और सर्वबीजामुद्रा तथा ।।14।।

सर्वयोनिश्च नवमी तथा सर्वत्रिखण्डिका।

सिद्धिब्राह्म्यादिमुद्राश्च ह्येताः प्रकटशक्तयः॥15॥

और सर्वयोनिमुद्रा तथा सर्वत्रिखण्डिका (त. स. ना.म. के दशमुद्रासमाराध्य) ये सभी सिद्धियां और ब्राह्मी आदि और मुद्राएं ये सभी प्रकटशक्तियां हैं।।15।।

भण्डासुरस्य संहारं कर्तु चक्ररथे स्थिताः।

या गुप्ताख्याः पूर्वमुक्तास्तासां नामानि मच्छृणु।।16।।

भण्डासुर के संहार के लिये ये सभी मुद्रादिशक्तियां अपने अपने स्वरूप में प्रकट होकर शस्त्रादि लिये हुए चक्ररथ में स्थित हैं, जो गुप्तनामवाली हैं उनके नामों को मैं सुनाता हूं सुनो।।16।।

कामाकर्षिणिका चैव बुद्ध्याकर्षिणिका कला।
अहङ्काराकर्षिणी च शब्दाकर्षिणिका कला॥17॥
स्पर्शाकर्षिणिका नित्या रूपाकर्षिणिका कला।
रसाकर्षिणिका चैव गन्धाकर्षिणिका कला॥18॥
चित्ताकर्षिणिका चैव धैर्याकर्षिणिका कला।
स्मृत्याकर्षिणिका नित्या नामाकर्षिणिका कला॥19॥
बीजाकर्षिणिका नित्या चात्माकर्षिणिका कला।
अमृताकर्षिणी नित्या शरीराकर्षिणी कला॥20॥
एताः षोडश शीतांशोः कलारूपाश्च शक्तयः।
अष्टमं पर्व संप्राप्ता गुप्ता नाम्ना प्रकीर्तिताः॥21॥
विद्रुमद्रुमसङ्काशा मन्दप्रहसिताननाः।
चतुर्भुजास्त्रिणेत्राश्च चन्द्रार्धमुकुटोज्ज्वलाः॥22॥

उनके नाम इस प्रकार हैं- 1 कामाकर्षिणिका, 2 बुद्ध्याकर्षिणिका कला, 3 अहंकाराकर्षिणी, 4 शब्दाकर्षिणिका कला 5 स्पर्शाकर्षिणिका नित्या, 6 रूपाकर्षिणिका कला, 7 रसाकर्षिणिका और 8 गन्धाकर्षिणिका कला 9 चित्राकर्षिणिका, 10 धैर्याकर्षिणिका कला, 11 स्मत्याकर्षिणिका नित्या, 12 नामाकर्षिणिका कला 13 बीजाकर्षिणिका नित्या, 14 आत्माकर्षिणिका कला, 15 अमृताकर्षिणिका नित्या, 16 शरीराकर्षिणी कला ये सोलह कलाएं चन्द्रमा की कला रूप शक्तियां हैं, आठवें पर्व की शक्तियां गुप्ता नाम से कही गईं हैं वे शक्तियां मूंगे की लता (वृक्ष) के समान लालवर्ण वाली और मन्दमुस्कान युक्त मुखवाली हैं, उनकी चार भुजाएं और तीन नेत्र हैं, तथा अर्धचन्द्र के समान उज्ज्वल मुकुट धारण की हुई हैं॥17,18,19,20,21,22॥

चापबाणौ चर्मखड्गौ दधाना दिव्यकान्तयः।
भण्डासुरवधार्थाय प्रवृत्ताः कुम्भसभव ॥23॥

वे सभी शक्तियां हाथ में धनुष और बाण तथा चर्म (ढाल) और तलवार धारण की हुईं दिव्यकान्ति वाली हैं, वे भण्डासुर के वध के लिये कुम्भसम्भव! प्रवृत्त हुई हैं॥23॥

सायन्तनज्वलद्दीपप्रख्ये चक्ररथस्य तु।
सप्तमे पर्वणि कृतावासा गुप्ततराभिधाः॥24॥

सायंकालीन जलते हुए दीपवाले साफ साफ दिखाई देने वाले चक्ररथ के सातवें पर्व में आवास करने वाली गुप्ततरा नामवाली शक्तियां हैं॥24॥

अनङ्गशक्तयस्त्वष्टौ तासां नामानि मच्छृणु ॥25॥

अनंगशक्ति आदि आठ नामों को मुझसे सुनो।।25।।

अनङ्गकुसुमानङ्गमेखला च द्वितीयका।
अनङ्गमदना ऽनङ्ग मदनातुरया सह॥26॥

1 अनंगकुसुमा, 2 अनंगमेखला, 3 अनंगमदना, 4 अनंगमदनातुरा, 7 अनंगरेखा चानगंवेगा 5 अनङाकुशापिच।।26।।

अनङ्गरेखा चानङ्गवेगाऽनङ्गाङ्कुशापि च।
अनङ्गमालिन्यपरा एता देव्यो जपात्विषः॥27।।

5 अनंगरेखा, 6 अनंगवेगा, 7 अनङाकुशा, 8 अनंगमालिनी ये आठ शक्तियां जप के प्रकाश से युक्त हैं।।27।।

इक्षुचापं पुष्पशरान्पुष्पकन्दुकमुत्पलम्।
बिभ्रत्यो दभ्रविक्रान्तिशालिन्यो ललिताज्ञया।।28।।

ये शक्तियां गन्ने का धनुष, फूलों के बाण, फूलों की गेंद और कमल हाथ में ली हुईं प्रचुर और विशेषप्रकार की कान्ति वाली हैं ये सभी भगवती की आज्ञा से ।।28।।

भण्डासुरं प्रति क्रुद्धाः प्रज्वलन्त्य इव स्थिताः।
चक्रराजरथेन्द्रस्य षष्ठं पर्व समाश्रिताः॥29॥

ये आठों शक्तियां भण्डासुर दैत्य को जलाती हुई सी क्रोध से भरपूर होकर च्रकराजरथ के छठवें पर्व में संस्थित हैं।।29।।

सर्वसंक्षोभिणीमुख्याः संप्रदायाख्यया युताः।
वेणीकृतकचस्तोमाः सिन्दूरतिलकोज्ज्वलाः।
अतितीव्रस्वभावाश्च कालानलसमत्विषः॥30॥

ये सम्प्रदाय इस नाम से युक्त सर्वसंक्षोभिणी आदि मुख्य शक्तियां समाश्रित हैं, इनके सिर के केशर वेणी से बंधे हुए हैं तथा माथे में सिन्दूर का तिलक धारण कह हुई हैं इनका स्वभाव अत्यन्त तीखे प्रभाववाला है ये सभी कालाग्निके समान तेज वाली हैं।।30।।

वह्निचापं वह्निबाणं वह्निरूपमासं तथा।
वह्निचक्राख्यफल के दधाना दीप्तविग्रहाः॥31॥

ये अग्नि धनुष, अग्निबाण, और अग्निरूपतलवार तथा अग्निचक्र नामक फलक को धारण की हुईं दीप्तविग्रह वाली हैं।।31।।

असुरेन्द्रं प्रति क्रुद्धाः कामभस्मसमुद्भवम् ।
आज्ञाशक्तय एवैता ललिताया महौजसः ॥32॥

ये सभी शक्तियां भण्डासुर के प्रति क्रुद्ध थी, जो भण्डासुर कामदेव के भस्म हुए शरीर की भस्म से उत्पन्न हुआ था, भगवती ललिताम्बा की ही ये अन्यन्त तेजस्विनी आज्ञा शक्तियां हैं ।।32।।

सर्वसंक्षोभिणी चैव सर्वविद्राविणी तथा ।
सर्वाकर्षिणिका शक्तिः सर्वाह्लादिनिका तथा ॥33॥

ये आज्ञा शक्तियां हैं इनके नाम-1 सर्वसंक्षोभिणी, 2 सर्वविद्राविणी, 3 सर्वाकर्षिणिका, 4 सर्वाह्लादिनिका।।33।।

सर्वसंमोहिनी शक्तिः सर्वस्तम्भनशक्तिका ।
सर्वजृम्भणशक्तिश्च तथा सर्ववशंकरी ॥34॥
सर्वरञ्जनशक्तिश्च सर्वोन्मादनशक्तिका ।
सर्वार्थसाधनी शक्तिः सर्वसंपत्तिपूरणी ॥35॥

9 सर्वरञ्जनशक्ति, 10 सर्वोन्मादनशक्तिका, 11 सर्वार्थसाधिनीशक्ति, 12 सर्वसम्पत्तिपूरणी।।35।।

सर्वमन्त्रमयी शक्तिः सर्वद्वन्द्वक्षयंकरी ।
इत्येवं संप्रदायानां नामानि कथितानि वै ॥36॥

13 सर्वमन्त्रमयीशक्ति, 14 सर्वद्वन्द्वक्षयंकरी, ये चौदह सम्प्रदाय शक्तियों के नाम कहे गये हैं (ये श्रीचक्र के स्वाधिष्ठान में चतुर्दशारकोणों में शक्तियां के नाम हैं)।।36।।

रथपञ्चमपर्वस्थाः कुलोत्तीर्णा इति स्मृताः ।
ताश्च स्फटिकसंकाशाः परशुं पाशमेव च ॥37॥

इसके अनन्तर पंचमपर्व में स्थित (नाभि के मणिपूर चक्र में बहिर्दशार कोणकुलोत्तीर्ण शक्तियां हैं) कुलोत्तीर्ण इस नाम से स्मरण की जाती हैं-ये स्फटिक जैसे शुभ्रवर्ण की हैं हाथों में परशु शस्त्र तथा पाश धारण की हुईं हैं।।37।।

गदां घण्टां मणिं चैव दधाना दीप्तविग्रहाः ।
देवद्विषमभिक्रुद्धा भ्रुकुटीकुटिलाननाः ॥38॥

गदा घण्टा, मणि धारण की हुई हैं उन श्रीविग्रह तेजस्वी हैं ये देवताओं से द्वेष रखने वालों पर क्रुद्ध रहती हैं उनके प्रति इनकी भौंहें हमेशा टेढ़ी ही रहती हैं।।38।।

एतासामपि नामानि समाकर्णय कुम्भज ॥39॥

हे अगस्त्य! कुम्भज !! इनके भी नामों को आप सुनो।।39।।

सर्वसिद्धिप्रदा देवी सर्वसंपत्प्रदा पुनः।
सर्वप्रियंकरी देवी सर्वमङ्गलकारिणी॥40॥

सम्प्रदाय शक्तियों के नाम इस प्रकार हैं- 1 सर्वासिद्धिप्रदा, 2 सर्वसंपत्प्रदा, 3 सर्वप्रियंकरी, 4 सर्वमंगलकारिणी।।40।।

सर्वकामप्रदा देवी सर्वदुःखविमोचनी।
सर्वमृत्युप्रशमनी सर्वविघ्ननिवारिणी॥41॥

5 सर्वकामप्रदा, 6 सर्वदुःखविमोचनी, 7 सर्वमृत्युप्रशमनी, 8 सर्वविघ्ननिवारिणी।।41।।

सर्वाङ्गसुन्दरी देवी सर्वसौभाग्यदायिनी।
दशैताः कथिता देव्यो दयया पूरिताशयाः॥42॥

9 सर्वांगसुन्दरी, 10 सर्वसौभाग्यदायिनी ये दशनाम शक्तियों के हैं ये शक्तियां सदैव भक्तों पर दया से भरपूर अंतःकरण वाली हैं।।42।।

चक्रे तुरीयपर्वस्था मुक्तागौरसमत्विषः।
निगर्भयोगिनी नाम्ना प्रथिता दश कीर्तिताः॥43॥

श्री चक्र के चौथे आवरण अंतर्दशार में निगर्भयोगिनी नाम से ध्यान की जाती हैं ये मोतियों के शुभ्रवर्णों वाली कान्ति से युक्त हैं इनकी संख्या दश कही गई है।।43।।

सर्वज्ञा सर्वशक्तिश्च सर्वैश्वर्यप्रदायिनी।
सर्वज्ञानमयी देवी सर्वव्याधिविनाशिनी॥44॥

उन शक्तियों के नाम इस प्रकार हैं-1 सर्वज्ञा, 2 सर्वशक्ति, 3 सर्वैश्वर्यप्रदायिनी, 4 सर्वज्ञानमयी, 5 सर्वव्याधिविनाशिनी।।44।।

सर्वाधारस्वरूपा च सर्वपापहरा तथा।
सर्वानन्दमयी देवी सर्वरक्षास्वरूपिणी॥45॥

6 सर्वाधारस्वरूपा, 7 सर्वपापहरा, 8 सर्वानन्दमयी, 9 स्वरूपिणी।।45।।

दशमी देवता ज्ञेया सर्वेप्सितफलप्रदा॥46॥

10 सर्वेप्सितफलप्रदा ये दशनाम देवियों के हैं, इनका रूप इस प्रकार है।।46।।

एताश्चतुर्भुजा ज्ञेया वज्रं शक्तिं च तोमरम्।
चक्रं चैवाभिबिभ्राणा भण्डासुरवधोद्यताः॥47॥

ये सभी शक्तियां चार भुजाओं वाली हैं उन चारों भुजाओं में वज्र शक्ति, तोमर और चक्र धारण की हुई हैं वे भण्डासुर के वध के लिये पूरी तरह उद्यत हैं।।47।।

अथ चक्ररथेन्द्रस्य तृतीयं पर्व संश्रिताः।
रहस्ययोगिनीनाम्ना प्रख्याता वागधीश्वराः ॥४८॥

इसके बाद श्रीचक्रराजरथ के तीसरेपर्व में संस्थित शक्तियां हैं-उन्हें वागधीश्वरी कहा जाता है।।48।।

रक्ताशोकप्रसूनाभा बाणकार्मुकपाणयः।
कवचच्छन्नसर्वाङ्ग्यो वीणापुस्तकशोभिताः ॥49॥

वे शक्तियां लालरंग के अशोक के समान लालवर्णवाली हैं पूरे शरीर में कवच धारण की हुई हैं, हाथों में बाण और धनुष ली हुईं हैं तथा वीणा और पुस्तक से सुशोभित हैं।।49।।

वशिनी चैव कामेशी मोदिनी विमला तथा।
अरुणा च जयिन्याख्या सर्वेशी कौलिनी तथा।
अष्टावेताः स्मृता देव्यो दैत्यसंहारमृत्यवः ॥50॥

उनके नाम ये हैं- 1 वशिनी, 2 कामेशी, 3 मोदिनी, 4 विमला, 5 अरुणा, 6 जयिनी, 7 सर्वेशी, 8 कौलिनी ये आठों देवियां स्मरण की जाती हैं ये वाग्देवता हैं ये देवियां दैत्यों के संहार की हेतु कहीं गईं हैं ।।50।।

अथ चक्ररथेन्द्रस्य द्वितीयं पर्व संश्रिताः।
तिस्रस्त्रिपीठनिलया अष्टबाहुसमन्विताः ॥51॥

इसके अनन्तर चक्ररथेन्द्र के दूसरे पर्व में रहने वाली देवियां तैंतीस पीठों वाले घरों में रहने वाली, आठ भुजाओं वाली हैं ।।51।।

चापबाणौ पानपात्रं मातुलुङ्गं कृपाणिकाम्।
फलकं नागपाशं च घण्टां चैव महाध्वनिम्।
बिभ्राणा मदिरामत्ता अतिपूर्वरहस्यकाः ॥52॥

ये अष्टशक्तियां धनुष, बाण, पान पात्र, मातुलुंग (बिजौरानी) कृपाणिका, फलक, नागपाश और महाध्वनि करने वाले घंटा को धारण की हुईं थीं, वे मद्य के नशे में उन्मत्त हैं उन्हें अतिरहस्या नाम से जाना जाता है।।52।।

कामेशी चैत्र वज्रेशी भगमालिन्यथापरा।
तिस्र एताः स्मृता देव्यो भण्डशासनतत्पराः।।53।।

वे तीन देवियां हैं उनके नाम इस प्रकार हैं 1 कामेशी, 2 वज्रेशी, 3 भगमालिनी ये भण्डदैत्य पर शासन करने के लिये तत्पर रहती हैं।।53।।

ललितासममाहात्म्या ललितासमतेजसः।
एतास्तु नित्यं श्रीदेव्या अन्तरङ्गाः प्रकीर्तिताः।।54।।

ये तीनों देवियां ललितादेवी के समान माहात्म्ययुक्त हैं तथा ललिता भगवती के समान तेज वाली हैं ये सभी नित्य श्रीदेवी की अन्तरंगशक्ति कहीं गईं हैं।।54।।

अथानन्दमहापीठे रथमध्यमपर्वणि।
परितो रचितावासाः प्रोक्ताः पञ्चदशापराः ।।55।।

इसके अनन्तर श्री चक्ररूपरथ के मध्यपर्व में आनन्दमहापीठ है, उस महापीठ के चारों ओर आवास बने हुए हैं जिन्हें पन्द्रह अक्षर वाले कहा जाता है।।55।।

तिथिनित्याः कालरूपा विश्वं व्याप्यैव संस्थिताः।
भण्डासुरादिदैत्येषु प्रारब्धभ्रुकुटीघनाः।।56।।

ये पन्द्रह अक्षर पन्द्रह तिथिनित्या कहे जाते हैं ये कालरूप हैं अर्थात समय में परिवर्तनों का ज्ञान करााते हैं एवं समस्त विश्व में व्याप्त होकर ही स्थित हैं ये अपने मूर्तरूप में आकर भण्डासुरादि समस्त दैत्यप्रमुखों पर विशेष क्षुब्ध होकर क्रोध से भौंहें टेढ़ी किये हुए हैं।।56।।

देव्या समनिजाकारा देवीसमनिजायुधाः।
जगतामुपकाराय वर्तमाना युगे युगे ।।57।।

ये देवियां भगवती ललिता के समान अपने आकारों वाली हैं, इनके अपने अस्त्र शस्त्र भी भगवती शस्त्रों जैसे हैं ये देवियां जगत के उपकार के लिये, कल्याण के लिये युग युग में वर्तमान रहती हैं इनका नित्या नाम ही इसलिये है।।57।।

तासां नामानि मत्तस्त्वमवधारय कुम्भज।।58।।

हे कुम्भज! तुम उनके नाम मुझसे सुनो।।58।।

कामेशी भगमाला च नित्यक्लिन्ना तथैव च।
भेरुण्डावह्निवासिन्यौ महावज्रेश्वरी तथा।।59।।

उनके ये नाम हैं ये महीने के शुक्लपक्ष से आरंभ होते हैं यथा कामेश्वरी, भगमाला, नित्यक्लिन्ना, भेरूण्डा, वह्निवासिनी, महावज्रेश्वरी।।59।।

दूती च त्वरिता देवी नवमी कुलसुन्दरी।
नित्या नीलपताका च विजया सर्वमङ्गला।
ज्वालामालिनिका चित्रा दशपञ्च च कीर्तिताः।।60।।

शिवदूती (शिवादूती वा) त्वरितादेवी, नवमी कुलसुन्दरी, नीलपताका नित्या, विजया, सर्वमंगला,

ज्वालामालिनिका, चित्रा ये पन्द्रह तिथिनित्यायें हैं ।।60।।

एताभिः सहिता देवी सदा सेवैकबुद्धिभिः।
दुष्टं भण्डासुरं जेतुं निर्ययौ ललितेश्वरी॥61॥

ये नित्या देवियां भगवती की सदा सेवा की बुद्धि से उनके पास रहती हैं इसीलिये इन्हें नित्या नाम जाना जाता है तथा भगवती ललिताम्बा को महानित्या नाम से साधकलोग रोज पूजा करते हैं ऐसी वे भगवती ललिताम्बा इन नित्याओं के साथ दुष्ट भंडासुर को जीतने के लिये निकलीं।।61।।

विशेषः- इनका प्रतिदिन पूजाक्रम प्रकारः- दोनों शुक्ल एवं कृष्ण पक्ष में प्रत्येक तिथि में महानित्या ललितात्रिपुरसुन्दरी की पूजा होती है-तथा प्रत्येक तिथि दोनों पक्षों की नित्या इस प्रकार हैं 1 कामेश्वरी शु.१ कृ.३०अमा. 2 भगमाला शु.२/कृ14 नित्यक्लिन्ना शु.३/कृ.१३/ भैरुण्डा शु.४/कृ12/ वह्निवासिनी शु. ५/कृं11/ भगवज्रेश्वरी शु. ६/कृ10/शिवदूती/शु.७/ कृ९/ त्वरिता शु. ८/कृ८/ कुलसुंदरी शु.९/कृ७/ नित्या नित्या शु.१०/कृ६/ नीलपताका शु.११/कृ५/ विजया शु. १२/कृ ४/ सर्वमंगला शु. १३/कृ ३/ ज्वालामालिनी शु. १४/कृ २/ चित्रा शु.१५/कृ.१

[गीतिचक्ररथपर्वदेवतावर्णनम्]

मन्त्रिनाथा महाचक्रे गीतिचक्ररथोत्तमे।
सप्तपर्वाणि चोक्तानि तत्र देव्यश्च ताः शृणु ।।62।।

हे कुम्भज ! महामुने!! मन्त्रिनाथा ने उस महाचक्र चक्ररथ उत्तम में जो गीतिचक्र है उत्तम है उस गीतिचक्ररथ में सातपर्व हैं उनमें देवियों का निवास हैं उसे तुम सुनो।।62।।

गेयचक्ररथे पर्वमध्यपीठनिकेतना।
सङ्गीतयोगिनी प्रोक्ता श्रीदेव्या अतिवल्लभा॥63॥
तथैव प्रथमं पर्व मन्त्रिण्यास्तु निवासभूः।।64॥

गेयचक्ररथ में पर्व के मध्यपीठनिकेतन है अर्थात घर और उसमें बैठने का स्थान- सिंहासन भगवती श्रीदेवी ललिताम्बा की अत्यन्त प्रिय संगीतयोगिनी कही गई हैं, वही प्रथमपर्व उन संगीत योगिनी का प्रथमपर्व है ये संगीतयोगिनी भगवती मन्त्रनाथा हैं ।।63,64।।

अथ द्वितीयपर्वस्था गेयचक्ररथोत्तमे।
रतिः प्रीतिर्मनोजा च वीणाकार्मुकपाणयः॥65॥

इसके बाद रथोत्तम गेयचक्र के द्वितीयपर्व में स्थित रति, प्रीति, मनोजा ये शक्तियां हाथों में वीणा और धनुष लिये हुए हैं।।65।।

तमालश्यामलाकारा दानवोन्मर्दनक्षमाः।
तृतीयं पर्वसंरूढा मनोभूबाणदेवताः॥66॥

उन रति आदि का तीनों का वर्ण तमाल श्यामल (सांवला) है तथा दानवों के मर्दन करने में नष्ट करने में समर्थ हैं। रथ के तीसरे पर्व में बैठे कामदेव के बाणदेवता हैं (पुष्पबाणदेवता)।।66।।

द्राविणी शोषिणी चैव बन्धिनी मोहिनी तथा।
उन्मादिनी च पञ्चैता दीप्तकार्मुकपाणयः॥67॥

तथा द्राविणी, शोषिणी, बन्धिनी, मोहिनी, और उन्मादिनी ये पंचदेवियां चमकता हुआ धनुष हाथ लिये हुए हैं।।67।।

तत्र पर्वण्यधस्तात्तु वर्तमाना महौजसः।
कामराजश्च कन्दर्पो मन्मथो मकरध्वजः॥68॥

वहां पर्व के नीचे वर्तमान महातेजस्वी कामराज, कन्दर्प, मन्मथ, मकरध्वज।।68।।

मनोभवः पञ्चमः स्यादेते त्रैलोक्यमोहनाः।
कस्तूरीतिलकोल्लासिफाला मुक्ताविभूषणाः॥69॥

और पांचवां मनोभव ये सभी तीनों लोकों को मोहित करने वाले हैं। इन पांचों के मस्तक में कस्तूरी का तिलक लगा है जो अधिक उल्लास उत्पन्न कर रहा है, और इनके कंठों में मोतियों की माला विभूषित हो रही है।।69।।

कवचच्छन्नसर्वाङ्गाः पलाशप्रसवत्विषः।
पञ्चकामा इमे प्रोक्ता भण्डासुरवधार्थिनः॥70॥

इन पांचों ने सर्वांग में कवच धारण किया है इनकी शरीरकान्ति पलाश फूलों (टेसू के फूल होली के समय मिलते हैं) की है। इन्हें पंचकाम नाम से जाना जाता है ये सभी भण्डासुर के वध की कामना किये हुए हैं ।।70।।

गेयचक्ररथेन्द्रस्य चतुर्थं पर्व सश्रिताः।
ब्राह्मीमुख्यास्तु पूर्वोक्ताश्चण्डिका त्वष्टमी परा।।71।।

गेयचक्ररथेन्द्र के चौथे पर्व में संस्थित ब्राह्मीमुखी स्थित हैं जो पूर्व में चण्डिका कही गई हैं यही अष्टमी पराशक्ति हैं ।।71।।

तत्र पर्वण्यधस्थास्तु लक्ष्मीश्चैव सरस्वती।
रतिः प्रीतिः कीर्तिशान्ती पुष्टिस्तुष्टिश्च शक्तयः।।72।।

वहीं उस पर्व के नीचे 1 लक्ष्मी, 2 प्रीति, 3 कीर्ति, 4 शान्ति, 5 पुष्टि, 6 तृष्टि, शक्तियां हैं

जो।।72।।

एताश्च क्रोधरक्ताक्ष्यो दैत्यं प्रति महाबलाः।
कुन्तचक्रधराः प्रोक्ताः कुमार्यः कुम्भसंभव॥73॥

हे कुंभसंभव! ये सभी महाबलवती हैं ये सभी दैत्य भण्ड के प्रति क्रोध से लाल लाल नेत्रों वाली हो रही हैं इन्होंने हाथों में कुन्त, चक्र रखी हुई हैं ये सभी कुमारी हैं।।73।।

पञ्चमं पर्व संप्राप्ता वामाद्याः षोडशापराः।
गीतिचक्ररथेन्द्रस्य तासां नामानि मच्छृणु॥74॥

गीतिचक्ररेथेन्द्र के पंचमपर्व में वामाआदि सोलह अपराशक्तियां प्राप्त हैं उनके नाम तुम मुझसे सुनो।।74।।

वामा ज्येष्ठा च रौद्री च शान्तिः श्रद्धा सरस्वती।
क्रियाशक्तिश्च लक्ष्मीश्च तुष्टिश्चैव तु मोहिनी॥75।।

उनके नाम ये नाम हैं-1 वामा, 2 ज्येष्ठा, 4 रौद्री, 4 शान्ति, 5 श्रद्धा, 6 सरस्वती, 7 क्रियाशक्ति, 8 लक्ष्मी, 9 तुष्टि, 10 मोहिनी।।75।।

तथा प्रमथिनी चाश्वासिनी वीचिस्तथैव च।
विद्युन्मालिन्यथ सुरा नन्दाथो नागबुद्धिका।।76।।

11 प्रमाथिनी, 12 आश्वासिनी, 13 वीचि, 14 विद्यन्मालिनी, 15 सुरा, नन्दा, 16 नागबुद्धिका।।76।।

एतास्तु कुरुविन्दाभा जगत्क्षोभणलम्पटाः।
महासमरसन्नाहमादधानाः पदे पदे।।77।।

इन सभी का वर्ण लालमणि के समान दीप्तिवाला है ये जगत् को क्षुब्ध करने में (हाहाकार मचाने में) लम्पट हैं सदैव तत्पर हैं। इन्होंने महायुद्ध में फंसाने के लिये पद पद में जाल बिछा रखा हैं।।77।।

वज्रकङ्कटसंछन्नाः कठोराट्टहासोज्ज्वलाः।
वज्रदण्डौ शतघ्नीं च संबिभ्राणा भुसुण्डिकाम्।।78।।

इन सभी शक्तियों ने वज्रकवच से शरीर को आवृत कर रखा है विकट अट्टहास कर रहीं हैं, हाथों में वज्र और दण्ड तथा शतघ्नी बन्दूक तथा भुशुण्डिका को रखी हुई हैं ।।78।।

अथ गीतिरथेन्द्रस्य षष्ठं पर्व समाश्रिताः।
असिताङ्गप्रभृतयो भैरवाः शस्त्रभीषणाः॥79॥

इसके बाद गीतिरथेन्द्र के छठेपर्व में संस्थित असितांग आदि भैरव भीषण शस्त्रों को धारण किये

हुए हैं।।79।।

त्रिशिखं पानपात्रं च बिभ्राणा नीलवर्चसः।
असिताङ्गो रुरुश्चण्डः क्रोधोन्मत्तश्च भैरवः॥80॥

जिन्होंने त्रिशूल, पानपात्र हाथों में ले रखा है नीली आभा के हैं असितांग 2 रूरू 3 चण्ड, 4 क्रोध, 5 उन्मत्त भैरव।।80।।

कपाली भीषणश्चैव संहारश्चाष्ट भैरवाः।
अथ गीतिरथेन्द्रस्य सप्तमं पर्व संश्रिताः॥81॥

6 कपाली, 7 भीषण, 8 संहार ये आठभैरव हैं इनके अनन्तर गीतिरथेन्द्र के सातवेंपर्व में संस्थित शक्तियों नाम इस प्रकार हैं।।81।।

मातङ्गी सिद्धलक्ष्मीश्च महामातङ्गिका तथा।
महती सिद्धलक्ष्मीश्च शोणा बाणधनुर्धराः॥82॥

इसके अनन्तर गीतिरथराज के सातवें पर्व में मातंगी सिद्धलक्ष्मी, महामातंगिका ये सभी सिद्धलक्ष्मी हैं इनका वर्ण शोण (रक्तवर्ण) है ये हाथों में धनुष और बाण रखी हुई हैं ।।82।।

तस्यैव पर्वणोऽधस्ताद्गणपः क्षेत्रपस्तथा।
दुर्गाम्बा बटुकश्चैव सर्वे ते शस्त्रपाणयः॥83॥

उसी सप्तमपर्व के अधोभाग में गणपाल और क्षेत्रपाल स्थित हैं तथा दुर्गाम्बा और बटुकगण ये सभी हाथों में शस्त्र लिये हुए हैं।।83।।

तत्रैव पर्वणोऽधस्तालक्ष्मीश्चैव सरस्वती।
शङ्खपद्मनिधी चैव ते सर्वे शस्त्रपाणयः।
लोकद्विषं प्रति क्रुद्धा भण्डं चण्डपराक्रमम्॥84॥

उसी पर्व नीचे के भाग में लक्ष्मी, और सरस्वती हैं शंख, पद्म, निधि हैं ये सभी हाथों में शस्त्र लिये हुए हैं संसार के प्रति द्वेष करने वाले भयंकर पराक्रमी भण्डासुर के प्रति क्रोध से भरे हुए थे।।84।।

शक्रादयश्च विष्वन्ता दशदिक्चक्रनायकाः।
शक्तिरूपास्तत्र पर्वण्यधस्तात्कृतसंश्रयाः॥85॥

इन्द्र से लेकर विष्णु तक तथा दस दिक्पालगण शक्तिरूप से उस पर्व के अधोभाग में अच्छी तरह स्थित थे।।85।।

वज्रं शक्तिं कालदण्डमसि पाशं ध्वजं तथा।
गदां त्रिशूलं दर्भास्त्रं चक्रं च दधतस्त्वमी॥86॥

तथा सभी वज्रशक्ति कालदण्ड, तलवार, पाश तथा ध्वज गदा, त्रिशूल, दर्भास्त्र चक्र शस्त्रों को धारण किये हुए हैं ।।86।।

सेवन्ते मन्त्रिनाथां तां नित्यं भक्तिपरायणाः।
भण्डासुरादिदुर्दान्तान्विजेतुं विश्वकण्टकान्॥87।।

ये सभी नित्यभक्ति से संयुक्त होकर मन्त्रिनाथा भगवती की सेवा में संलग्न रहते हैं इन सभी ने दुर्दान्त भण्डासुर आदि दैत्यों पर जो भयंकररूप से विश्व को पीड़ित करते हैं उन सभी पर युद्ध में विजय के लिये ।।87।।

मन्त्रिनाथाश्रयद्वारा ललिताज्ञापनोत्सुकाः।
गीतिचक्ररथेन्द्रस्य दिक्पालाः संश्रयं दधुः॥88॥

मंत्रिनाथा के द्वारा भगवती ललिताम्बा की घोषणा सुनने को उत्सुक होकर गीतिचक्ररथेन्द्र के मध्य के समीप आश्रय लेकर स्थित थे।।88।।

सर्वेषां चैव देवानां मंत्रिणी द्वारतः कृता।
विज्ञापना महादेव्याः कार्यसिद्धिं प्रयच्छति॥89।।

सभी देवों के द्वारा बनायी गयी मंत्रिणी विज्ञापना महादेवी ललिताभगवती की कार्यसिद्धि प्रदान करती है।।89।।

राज्ञि विज्ञापना चेत्स्यात्प्रधानद्वारतः कृता।
तदा खलु फलप्राप्तिः सेवकानां प्रजायते॥90॥

यदि प्रधान मंत्री के द्वारा रानी को विज्ञापित करने पर ही सेवकों सफलता मिलती है इच्छित फल की प्राप्ति होती है।।90।।

अन्यथा कुत एतेषां सामर्थ्यं ज्वलितौजसः।
अप्रधृष्यप्रभावायाः श्रीदेव्या उपसर्पणे॥91॥

जिनका प्रभाव कभी भी नष्ट नहीं हो सकता, ऐसी श्री ललिता भगवती के पास जाने पर वह जो श्री ललिता देवी की अत्यन्त प्रिय संगीत विद्या हैं संगीत योगिनी मंत्रिणी भगवती हैं।।91।।

सा हि संगीतविद्येशी श्रीदेव्या अतिवल्लभा।
नातिलङ्घयति क्वापि तदुक्तं कार्यसिद्धिषु॥92॥

वे भगवती मंत्रिणी संगीत विद्येशी भगवती ललिताम्बा की अत्यन्त प्रिय हैं वे कभी भी कहीं भी उनके निर्देशों का उल्लंघन नहीं करती हैं अतः समस्त कार्यों की सफलता में निश्चिन्त रहती थीं।।92।।

श्रीदेव्याः शक्तिसाम्राज्ये सर्वकर्माणि मन्त्रिणी।
अकर्तुमन्यथाकर्तुं कर्तुं चैव प्रगल्भते॥93॥

उन श्री देवी के शक्ति साम्राज्य में मंत्रिणी सर्वकामों को जो नहीं करने को होते थे उनकों कर देती थीं, तथा जो करने को होते थे उनकों अच्छी तरह कर देती थीं।।93।।

तस्मात्सर्वेऽपि दिक्पालाः श्रीदेव्या जयकाङ्क्षिणः।
तस्याः प्रधानभूतायाः सेवामेव वितन्वते॥94॥

इसी कारण सभी दिक्पालगण श्री देवी की विजय आकांक्षा करते थे उन भगवती की प्रधान भूत मंत्रिणी की सेवा में ही तत्पर रहते थे किसी भी प्रधान के निकट मंत्री होता है आज भी उसे आप्तकार्यदर्शी कहा जाता है। वर्तमान में हमारे भारत का गणतंत्र राष्ट्रपति केवल स्वीकृत प्रस्तावों को स्वीकृति हस्ताक्षर करता है, भगवती ललिताम्बा की शासन ही इस पद्धति की मार्गदर्शिका हैं।।94।।

इति श्रीललितादेव्याश्चक्रराजरथोत्तमे ।
पर्वस्थितानां देवीनां नामानि कथितान्यलम्॥95।।

इस प्रकार श्री ललिता परमेश्वरी के श्रीचक्रराज नामक उत्तम रथ के पर्वों में स्थित देवियों के समस्त नामों को कहा गया है।95

भण्डासुरस्य संहारे तासां दिव्यायुधान्यपि।
प्रोक्तानि गेयचक्रस्य पर्वदेव्यश्च कीर्तिताः॥96॥

भण्डासुर क संहार में उन देवी शक्तियों के दिव्य आयुधों को बताया गया है। तथा गेयचक्र के मंत्रिणी अधिष्ठित चक्र के पर्व देवियों के नाम उनका स्वरूप, उन शस्त्रादि सभी कहे गये हैं।।96।।

इमानि पर्वदेवीनां नामान्याकर्णयन्ति ये।
सर्वपापविनिर्मुक्ता युद्धे विजयिनो नराः॥97॥

भगवती ललिताम्बा की मंत्रिणी शक्ति मन्त्रनाथा के गेयचक्ररथेन्द्र के पर्वों में पर्वों के अधोभाग में स्थित समस्त देवियों के नामों को जो जिज्ञासु साधक और मुमुक्षु जन सपरिवार सुनते हैं वे जीवन संघर्ष में कर्म क्षेत्र के संघर्ष में और उपासना क्षेत्र के संघर्ष आदि में विजयी होते हैं समस्त विघ्नों बाधाओं के पार सफल हो जाते हैं।।97।।

इति श्रीब्रह्माण्डपुराणे उत्तरखण्डे हयग्रीवागस्त्यसंवादे
ललितोपाख्याने द्वादशोऽध्यायः ॥12॥

॥श्रीमन्महागणाधिपतये नमः।।

श्रीमाताललिताम्बायै नमः श्रीपादुकां पूजयामि नमः॥

ॐ वन्दे गुरुपदद्वन्द्वं अवाङ्मनसगोचरम्॥

रक्तशुक्ल प्रभामिश्रमतर्क्यं त्रैपुरं महः॥

ॐ आराध्यदेवं भक्तानां कलिदोषविनाशकम्॥

वन्दे श्रीगिरिजानन्दं शारदाश्रीमठाधिपम्।।

ॐ अखण्डं यस्यज्ञानञ्च भक्तिर्यस्यानपायिनी।।

शारदाज्योतिरीशस्य दर्शनं (पूजनं, वन्दनं) शुभमस्तुनः।।

त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३ ॥ 102 श्लोकात्मकः

[किरिचक्ररथपर्वदेवतावर्णनम्॥]

श्री हयग्रीव बोले-ः

किरिचक्ररथेन्द्रस्य पञ्चपर्व समाश्रिताः।
देवताश्च शृणु प्राज्ञ नाम यच्छृण्वतां जयः॥1॥

हे प्राज्ञ ! कुम्भज!! अगस्त्य!!! क्रिरिचक्ररथेन्द्र के पांचपर्वों में संस्थित देवता के नाम सुनो उनके सुनने से विजय प्राप्त होती है।।1।।

प्रथमं पर्व बिन्द्वाख्यं संप्राप्ता दण्डनायिका।
सा तत्र जगदुद्दण्डकण्टकव्रातघस्मरी।।2।।

किरिचक्ररथेन्द्र का प्रथमपर्व बिन्दु नामक है जिसे दण्डनायिका ने प्राप्त कर लिया है वे दण्डनायिका प्रथमपर्व बिन्दु में बैठकर संसार के उद्दण्ड कण्टकसमूह को नष्ट करने वाली हैं।।2।।

नानाविधास्त्रज्वालाभिर्नर्तयन्ती जयश्रियम्।
उद्दण्डपोत्रनिर्घातनिर्भिण्णोद्धतदानवा॥3॥

वे अनेक प्रकार की अस्त्रों की ज्वालाओं से विजयश्री के लिये नृत्य करने वाली हैं।।3।।

दंष्ट्रा बालमृगाङ्कस्य विहासनविभावरी।
प्रावृषेण्यपयोवाहव्यूहनीलवपुर्लता॥4॥

बालचन्द्रमा की किरणों से सुन्दररात्रि के समान दंष्ट्राओं वाली हैं तथा जिनका शरीर वर्षाकालीन मेघों के घेरे के समान नीलवर्ण का है।।4।।

किरिचक्ररथेन्द्रस्य सालङ्कारायते सदा।
पोत्रिणी पुत्रिताशेषविश्वा वार्तालिकाम्बिका॥5॥

वह किरिचक्ररथेन्द्र सदा शोभा बढ़ाती रहती हैं उन वज्र धारण करने वाली समस्तविश्व को पुत्र जैसी पालन करने वाली दुष्टशक्तियों से रक्षा करने वाली वह वार्तालिकाम्बिका है।।5।।

तस्यैव रथनाथस्य द्वितीयं पर्वसंश्रिता:।
जृम्भिनी मोहिनी चैव स्तम्भिनी तिस्र एवच।
उत्फुल्लदाडिमप्रख्याः सर्वदानवमर्दनाः।।6।।

उसी रथनाथ के द्वितीयपर्व में संस्थित जृम्भिणी, मोहिनी और तीसरीशक्ति स्तम्भिनी है, जो खिले हुए अनार के फूलों के रंग जैसी शरीरकान्तिवाली है और समस्त दानवों के मानमर्दन में तत्पर रहती हैं।।6।।

मुसलं च हलं हालापात्रं फणिमहागुणम्।
ज्वलन्माणिक्यवलयैर्विभ्राणाः पाणिभिर्निजैः॥7॥
अतिदीप्तकरालाक्षिज्वालाभिदैत्य सैनिकान्।
दहन्त्य इव निश्शङ्क सेवन्ते सूकराननाम्॥8॥

उन देवियों की अत्यन्त तीखी और कराल आंखें हैं जो अपनी ज्वालाओं से दैत्य सैनिकों को जलाती हुई सी निःशंक होकर अपने हाथों से भगवती वाराही की सेवा करती हैं।।7,8।।

किरिचक्ररथेन्द्रस्य तृतीयं पर्व संश्रिताः।
अन्धिन्याद्याः पञ्च देव्यो देवीमन्त्रकृतास्पदाः।।9।।

किरिचक्ररथेन्द्र के तीसरेपर्व में अन्धिनी आदि पांच देवियां स्थित हैं जो देवी यंत्र के स्थान में स्थित हैं।।9।।

कठोरेणाट्टहासेन भिन्दन्त्यो भुवनत्रयम्॥10॥

ये कठोर अट्टहास से तीनों भुवनों को भेदती हुईं प्रलयकालाग्नि की ज्वाला के समान वेष बनाकर स्थित हैं ।।10।।

ज्वाला इव च कल्पाग्नेरङ्गनावेषमाश्रिताः।
भण्डासुरस्य सैन्यानां सवेर्षा रुधिरप्लुतिम्॥11॥

वे शक्तियां भण्डासुर के सम्पूर्णसैन्य के खून की पीने की इच्छा करती हुईं।।11।।

लिलिक्षमाणा जिह्वाभिर्लेलिहानाभिरुज्वलाः।
सेवन्ते सततं दण्डनाथामुद्दण्डविक्रमाम्॥12॥

अपनी जीभ को लपलपाती हुईं चमक रही हैं जो सभी निरन्तर दण्डनाथा के उद्दण्ड पराक्रम की सेवा करती हैं।।12।।

किरिचक्ररथेन्द्रस्य चतुर्थं पर्व संश्रिताः।
ब्राह्याद्याः पञ्चमीवर्ज्या अष्टमीवर्जिता अपि।।13।।

भगवती दण्डनाथा के किरिचक्ररथेन्द्र के चौथे पर्व में संस्थित ब्राह्मी आदि शक्तियां जिनमें पांचवीं शक्ति वाराही और आठवी शक्ति महालक्ष्मी को छोड़कर भी।।13।।

षडेव देव्यः षट्चक्रं ज्वलज्वालाकलेवराः।
महता विक्रमौघेन पिबन्त्य इव दानवान्॥14॥

छह ही देवियां-(ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, माहेन्द्री, चामुण्डा) छह चक्र की जलती हुई ज्वाला के समान शरीर वाली अपने महान विक्रमों के समूहों से समस्त दानवों को मानों पी जायेंगी।।14।।

आज्ञया दण्डनाथायास्तं प्रदेशमुपासते।
तस्यैव पर्वणोऽधस्तात्परितः स्थानमाश्रिताः॥15॥

वे शक्तियां भगवती दण्डनाथा की आज्ञा से उस स्थान में रहती हैं उसी पर्व के नीचे भाग में चारों तरफ स्थान में स्थित ।।15।।

याकिनी राकिनी चैव लाकिनी वाकिनी तथा।
शाकिनी डाकिनी चैव तासामैक्यस्वरूपिणी।।16।।

उस पर्व के नीचे स्थान में याकिनी, राकिनी, लाकिनी, वाकिनी (हाकिनी) शाकिनी, डाकिनी, उन देवियों के एक से स्वरूप वाली हैं अर्थात सभी एक से स्वरूप वाली हैं ।।16।।

हाकिनी सप्तमीत्येताश्चण्डदोर्दण्डविक्रमाः।
पिबन्त्य इव भूतानि पिक्षन्त्य इव मेदिनीम्॥17।।

हाकिनी सातवीं देवी हैं ये सभी देवियां भयंकर भुजाओं वालीं पराक्रम वाली शक्तियां हैं ये ऐसी दिखाई हैं मानों समस्त भूत प्राणियों को पी जायेंगी सम्पूर्ण धरती को ही पी रही हों।।17।।

त्वचं रक्तं तथा मांसं मेदोऽस्थि च विरोधिनाम् ।
मज्जां प्लीहं च शुक्रं च पिबन्त्यो विकटाननाः।।18।।

तथा ये शक्तियां त्वचा, खून, मांस, मेदा, हड्डी, मज्जा, प्लीहा और वीर्य जो विरोधियों की धातुएं हैं उन्हें विकराल मुखों वाली ये पी जायेंगी।।18।।

निष्ठुरैः सिंहनादैश्च पूरयन्त्यो दिशो दश।
धातुनाथा इति प्रोक्ता अणिमाद्यष्टसिद्धिदाः॥19।।

निष्ठुर क्रूर कानों को फाड़ देने वाले सिंहनादों से दशों दिशाओं को भरती हुईं ये धातुनाथा कही

गईं हैं ये प्रसन्न होने अणिमादि अष्ट सिद्धियां देती हैं।।19।।

मोहने मारणे चैव स्तम्भने ताडने तथा।
भक्षणे दुष्टदैत्यानामामूलं च निकृन्तने॥20॥

ये धातुनाथाएं मोहन में मारण में स्तम्भन में तथा ताडन में और दुष्ट दैत्यों के समूल विनाश करने में उनका समूल निकृन्तन में सिद्धहस्त हैं।।20।।

पण्डिताः खण्डिताशेषविपदो भक्तिशालिषु।
धातुनाथा इमाः प्रोक्ताः सर्वधातुषु संस्थिताः।।21।।

इनमें भक्ति रखने वालों की सम्पूर्ण आई हुईं आने वाली समस्त विपदाओं को खण्डित करने में पण्डित हैं सदैव तत्पर हैं ये सभी चर्मादि सप्त धातुओं में संस्थित हैं इन्हें धातुनाथा कहा जाता है।।21।।

सप्तापि वारिधीनूर्मिमाला संचूषिताम्बरान्।
क्षणाधेनैव निष्पातुं निष्पन्नबहुसाहसाः॥22॥

ये सब सातों समुद्रों की लहरों की मालाओं को आकाश को भी चूमने वाली शक्ति से युक्त हैं और आधे ही क्षण में नीचे गिराने में सम्पन्न पर्याप्त साहस वाली हैं अर्थात ये असंभव कार्य करने में साहसी हैं सक्षम हैं।।22।।

शकटीचक्रवद्वृत्तभयङ्करविलोचनाः।
स्वस्वामिनीद्रोहकृतां स्वकीयसमयद्रुहाम्॥23॥

ये सभी शकट (गाड़ी) के चक्रों के समान आकार वाले दांतों और भयंकर नेत्रों वाली हैं ये अपनी स्वामिनी से द्रोह करने वाले, अपने समय से द्रोह करने वाले।।23।।

वैदिकद्रोहिणां देवद्रोहिणां वीरवैरिणाम्।
यज्ञद्रोहकृतां दुष्टदैत्यानां भक्षणे क्षमाः॥24॥

और ये वैदिक नियमों से द्रोह करने वालों देवताओं से द्रोह करने वालों तथा वीरों से द्रोह करने वालों उनसे शत्रुता रखने वालों एवं यज्ञों से द्रोह करने वाले दुष्ट दैत्यों को भक्षण करने में समर्थ हैं।।24।।

नित्यमेव हि सेवन्ते पोत्रिणीं दण्डनायिकाम्।
तत्रैव पर्वणः पार्श्वद्वितये कृतमन्दिरे॥25॥

ये शक्तियां नित्य ही वज्र धारण करने वाली दण्डनायिका की सेवा करती हैं उसी पर्व के दूसरे पार्श्व में दिव्य मंदिर में।।25।।

क्रोधिनीस्तम्भिनी ख्याते वर्तेते देवते उभे।
चामरे वीजयन्त्यौ च लोककङ्कणदोर्लते॥26॥

उसी पर्व के दिव्यमंदिर में क्रोधिनी और स्तम्भिनी नाम की प्रसिद्ध दो शक्तियां हैं जो हिलते हुए कंगन वाली भुजाओं से चामर डुलाती हुईं।।26।।

देवद्विषां चमूरक्तहालापानमदोद्धते।
सदैव घूर्णमानाक्ष्यौ सदा प्रहसिताननेे॥27॥

देवताओं से द्वेष करने वाले दैत्यों की सेना के रक्तरूपीमद्य का पान कर मद से महा उद्धत स्वभाव वालीं सदैव चारों तरफ घूमती आंखों वालीं हंसते हुए मुखवाली हैं।।27।।

अथ तस्य रथेन्द्रस्य किरिचक्राभिधाजुषः।
पार्श्वद्वयकृतावासमायुधद्वयमुद्धतम्।।28।।

इसके अनन्तर उस रथेन्द्र के जिसे किरिचक्र नाम की संज्ञा दी गई है उसके दोनों बगल में आवास करने वाले तथा दो आयुधों को रखे हुए ।।28।।

हलं च मुसलं चैव देवतारूपमास्थितम्।
स्वकीयमुकुटस्थाने स्वकीयायुधविग्रहम्।
आविभ्राणं जगद्वेषिघस्मरं विबुधैः स्मृतम्॥29॥

हल और मुसल देवता रूप में स्थित हैं अपने मुकुट के स्थान पर अपने आयुध ही जिनके विग्रह हैं जो संसार के शत्रुओं के लिये दावानल हैं ऐसे आयुधों को जिन्होंने धारण कर रखा है, इस प्रकार का स्मरण देवतागण करते रहते हैं।।29।।

एतदायुधयुग्मेन ललिता दण्डनायिका।
खण्डयिष्यति सङ्ग्रामे विषङ्गं नाम दानवम्॥30।।

इन दोनों हल और मूसलनामक आयुधों से दण्डनायिका ललिता संग्राम में विषंग नाम के दानव को खण्ड खण्ड कर देंगी ।।30।।

तस्यैव पर्वणो दण्डनाथायास्त्वमसीमनि।
वर्तमानो महाभीम-सिंहनादध्वनन्नभाः॥31॥

उसी पर्व की आगे वाली सीमा में दण्डनाथा महादेवी का महाभीम सिंह विद्यमान है जिसका भयंकर सिंहनाद नभ को गुञ्जारित कर देता हैं। ।।31।।

दंष्ट्राकट कटात्कारबधिरीकृतदिङ्मुखः।
चण्डोच्चण्ड इति ख्यातश्चतुर्हस्तस्त्रिलोचनः॥32॥

वह महाभीम सिंह अपनी दाढ़ों की कटकट महाध्वनि से दिशाओं बहरी बना रहा है वहीं चार हाथों और तीननेत्रों वाला प्रचण्ड चण्डनाम से विख्यात महाप्रेत।।32।।

शूलं खड्गं प्रेतपाशौ दधानो दीप्तविग्रहः।
सदा ससेवते देवीं पश्यन्नेव हि पोत्रिणीम्।।33।।

वह प्रचण्डचण्ड नामक प्रेत चमकते शरीर वाला है वह शूल और खड्ग तथा प्रेतपाश को लिये रहता है तथा सदा वज्र हाथ में लिये रहने वाली भगवती वाराही को ही देखता रहता है।33।।

किरिचक्ररथेन्द्रस्य पञ्चमं पर्व संश्रिताः।
वार्ताल्याद्या अष्ट देव्यो दिक्ष्वष्टसु च विश्रुताः।।34।।

किरिचक्ररथेन्द्र के पांचवें पर्व में संस्थित वाताली आदि आठ शक्तियां हैं जो आठों दिशाओं में व्याप्त हैं।।34।।

अष्टपर्वतनिष्पातिघोरनिर्घातनिस्वनाः।
नवनागस्फुरद्भूषा अनष्टवलतेजसः।।35।।

तथा जो आठ पर्वतों के गिरने से घोर टकराने की ध्वनि वालीं फूत्कार मारते हुए आठ भयंकर नागों (अनन्त, वासुकि, शेष, पद्मनाभ, कम्बल, शंखपाल, धातृराष्ट, तक्षक, कालिय) की वेशभूषा वालीं जिनका बल और तेज नष्ट नहीं हुआ है।।35।।

प्रकृष्टदोः प्रकाण्डोष्महुतदानवकोटयः।
सेवन्ते ललितादेव्या दण्डनाथामहर्निशम्।।36।।

ऐसी बहुत लम्बी भुजाओं की प्रचण्ड अग्नि में करोड़ों दानवों को आहूत करने वाली आठ देवियां दण्डनाथा ललितादेवी की दिन रात सेवा करती हैं ।।36।।

तासामाख्याश्च विख्याताः समाकर्णय तापस।
वाताली चैव वाराही सा वराहमुखी परा।।37।।

हे तपस्विन्! अगस्त्य जी!! उन आठ विख्यात देवियों के नाम सुनिये ये नाम हैं 1 वार्ताली, 2 वाराही, 3 वराहमुखी।।37।।

अन्धिनी रुन्धिनी चैव जृम्भिनी चैव मोहिनी।
स्तम्भिनीति रिपुक्षोभस्तम्भनोच्चाटनक्षमाः।।38।।

अंधिनी, 5 सन्धिनी, 6 जृम्भिनी, 7 मोहिनी, 8 स्तम्भिनी ये देवियां शत्रु को क्षुभित स्तभित और उच्चाटित करने में समर्थ हैं।।38।।

तस्यैव पर्वणो वामभागे सन्ततसंस्थितिः।
दण्डनाथौपवाह्यस्तु कासरो धूसराकृतिः॥39॥

उसी पर्व के वामभाग में उन देवियों की निरन्तर नित्य संस्थिति रहती हैं भगवती दण्डनाथा के पास बाहरी ओर घूसर (धुंधली) आकृति का ॥39॥

अर्थक्रोशायतः शृङ्गद्वितयः क्रोशविग्रहः।
खड्गवन्निष्ठुरैर्लोमजालेः संवृतविग्रहः॥40॥

उस भैंसे के दो सींग आधेकोश तक लम्बे हैं शरीर कोश परिमाण तक बड़ा हैं उसके शरीर में तलवार की धार जैसे तीखे पैने और कड़े लम्बे बालों के जालों से घिरा हुआ था ॥40॥

कालदण्डवदुच्चण्डवालकाण्डभयङ्करः।
नीलाञ्जनाचलप्रख्य विकटोन्नतपृष्ठभूः॥41॥

वह कालदण्ड के समान है तथा उच्चण्डबाल उसके अंग अंग पर हैं जिसकी नीलाञ्जन के समान विकट और उठी हुई भौंहें हैं ॥41॥

महानीलगिरिश्रेष्ठगरिष्ठस्कन्धमण्डलः।
प्रभूतोष्मलनिश्वासप्रसराकम्पिताम्बुधिः॥42॥

महान नील गिरी के समान श्रेष्ठ और विशाल उसके कंधे हैं बहुत अधिक शरीर की ऊष्मा से उसकी श्वांस निकल रही है वह फैलकर समुद्र को भी कम्पित कर रही हैं॥42॥

घर्घरध्वनिना कालमहिषं विहसन्निव।
वर्तते खुरविक्षिप्तपुष्कलावर्तवारिदः॥43॥

वह भैंसा अपने गले में घर्घर ध्वनि से यमराज के भैंसे की भी हंसी उड़ा रहा है ऐसा लग रहा है जब वह अपने खुरों से जमीन खोदता हैं तब वह पुष्कल और आवर्त मेघों के जैसा भयंकर लगता है।॥43॥

तस्यैव पर्वणोऽधस्तादुच्चस्थानकृनालयाः।
इन्द्रादयोऽनेकभेदा दिशामष्टकदेवताः॥44॥

उसी पर्व के नीचे उच्च चित्र विचित्रस्थान में इन्द्रादि अनेक भेद वाले आठ दिशाओं के देवता हैं ॥44॥

ललितायां कार्यसिद्धि विज्ञापयितुमागताः।
लोकस्यापि च संरक्षां संपादयितुमागताः।
तन्नामानि शृणु प्राज्ञ सङ्कोचात्कथितानि मत्।॥45॥

वे इन्द्रादि देवता भगवती ललिताम्बा की कार्यसिद्धि के लिये आये हुए हैं और साथ ही समस्त लोकों की संरक्षा के लिये आये हैं उनके नामों को मुझसे सुनो ।।45।।

इन्द्रश्चाप्सरसश्चैव सचतुष्षष्टिकोटयः।
सिद्धा अग्निश्च साध्याश्च विश्वेदेवास्तथापरे।।46।।

इन्द्र और अप्सरायें, चौसठ करोड़ सिद्धगण, अग्नि, साध्ये देव और विश्वदेवगण।।46।।

विश्वकर्मा मयश्चैव मातरश्च बलोन्नताः।
रुद्रस्य परिवाराश्च रुद्राश्चैव पिशाचकाः।। 47।।

विश्वकर्मा, मय, बलवती मातृशक्तियां रुद्र और परिचारकगण रुद्रगण और पिशाचगण।।47।।

निर्ऋती रक्षसां नाथो राक्षसा बहवस्तथा।
मित्राश्च तत्र गन्धर्वाः सदा गानविशारदाः।।48।।

निर्ऋति राक्षसों के स्वामी और अनेकों राक्षस समूह तथा मित्रगण सदा गान विशारद गन्धर्वगण।।48।।

विश्वावसुप्रभृतयो विख्यातास्तत्पुरोगमाः।
तथा भूतगणाश्चान्ये वरुणो वसवः परे।।49।।

विश्वावसु आदि विख्यात पुरोहित गण भी आए हुए थे तथा भूतगण, वरुण, अन्य वसुगण भी थे।।49।।

विद्याधराः किन्नराश्च मारुतेश्वर एव च।
तथा चित्ररथश्चैत्ररथकाननकारकः।।50।।

विद्याधर, किन्नर, मारुतेश्वर तथा चित्ररथ चैत्ररथ वनकारक भी थे।।50।।

तुम्बुरुर्नारदो यक्षः सोमो यक्षेश्वरस्तथा।
देवाश्च भगवांस्तत्र गोविन्दः कमलापतिः।।51।।

तुम्बुरु गंधर्व, नारद, यक्षगण, सोम, और यक्षों के स्वामी देवगण, भगवान् गोविन्द, कमलापति विष्णु ।।51।।

ईशानश्च जगच्चक्ररक्षकः शूलभीषणः।
ब्रह्मा चाश्विनिपुत्रौ च वैद्यविद्याविशारदौ।।52।।

ईशान, संसारचक्र के रक्षक भीषण शूल वाले शिव और ब्रह्मा, अश्विनी कुमार वैद्य विशारदगण।।52।।

धन्वन्तरिश्च भगवानथान्ये गणनायकाः।
कटक्रोडगलद्दानसंतर्पितमधुव्रताः।।53।।

भगवान धन्वन्तरि, अन्यगण नायक, हाथी के गण्डस्थल से बहने वाले मद के पान मदमत्त भ्रमर समूह।।53।।

एवंप्रकारा बहवो देवतास्तत्र जाग्रति।
पूर्वादिदिशमारभ्य परितः कृतमन्द्रिाः।।54।।

इस प्रकार के बहुत से देवता वहां पर जागते रहते हैं पूर्वदिशा से आरंभ करके चारों ओर अपने मंदिर बनाए हुए हैं ।।54।।

तत्रैव देवतांश्चक्रे शक्रासुरमरुद्दिशः।
आश्रित्य किल वर्तन्ते तदधिष्ठानदेवताः।।55।।

वहीं पर मरुत देवताओं ने दिशाओं को चक्राकार कर दिया है, उन चक्रों का आधार लेकर वहां भी अधिष्ठान देवता वहां पर विराजमान हैं।।55।।

जृम्भिनी स्तम्भिनी चैव मोहिनी तिस्र एव हि।
तस्यैव पर्वणः प्रान्ते किरिचक्रस्य भास्वतः।।56।।

विक्चक्रो का आश्रय ली हुईं वे तीन देवियां 1 जृम्भिणी, 2 स्तम्भिनी, 3 मोहिनी हैं उसी पर्व के प्रान्त भाग में चमकते हुए किरिचक्र से ।।56।।

कपालं च गदां बिभ्रदूर्ध्वकेशो महावपुः।
पातालतलजम्बालबहुलाकारकालिमा।।57।।

कपाल (नरमुण्ड) और गदा को धारण किए हुए ऊर्ध्व केश विशाल शरीर वाले पातालतल कीचड़ के बहुल आकार की कालिमा जैसे अपने ।।57।।

अट्टहास सहावज्रदीर्णब्रह्माण्डमण्डलः।
भिन्दन्डमरुकध्वानै रोदसीकन्द्रोदरम्।।58।।

अट्टहास रूपी महावज्र से ब्रह्माण्ड मण्डल विदीर्ण कर देने वाले जोर से बजाते हुए डमरू की ध्वनियों से आकाश और पृथ्वी को कन्दरा (गुफाओं) को उदर बनाते हुए ।।58।।

फूत्कारित्रिफणायुक्त फणिपाशं करे वहन्।
क्षेत्रपालः सदा भाति सेवमानः किटीश्वरीम् ।।59।।

त्रिलोकी में फूत्कार करने वाले नागपाश को हाथ में लिये हुए क्षेत्रपाल भगवती किटीश्वरी की सेवा करते हुए सदैव ही शोभित हो रहे हैं।।59।।

तस्यैव च समीपस्थस्तस्या वाहनकेसरी।
यमारुह्य प्रववृधे भण्डासुरवधैषिणी।।60।।

उसी के पास उन्हीं भगवती दण्डिनी देवी का वाहन सिंह है जिस पर आरूढ़ होकर भण्डासुर के वध की इच्छा वालीं वध कार्य रूप को बढ़ाती हैं तथा प्रवृत्त होती हैं।।60।।

प्रागुक्तमेव दण्डेशीवाहसिंहस्य लक्षणम्।
तस्यैव पर्वणोऽधस्ताद्दण्डनाथासमत्विषः।।61।।

उन देवेशी दण्डेशी के वाहन सिंह का लक्षण पूर्व में कहा गया है उसी पर्व के नीचे के भाग में दण्डनाथा के समान कान्ति वाली।।61।।

दण्डिनीसदृशाशेषभूषणायुधमण्डिताः।
श्यामाः क्रोडाननाश्चन्द्ररेखोत्तंसितकुन्तलाः।।62।।

भगवती दण्डिनी के समान ही समस्त आभूषण और आयुधों से सजी हुईं श्यामा, क्रोडानना, चन्द्ररेखा ऊपर उठे हुए केशों वाली।।62।।

हलं च मुसलं हस्ते घूर्णयन्त्यो मुहुर्मुहुः।
ललिताद्रोहिणां श्यामाद्रोहिणां स्वामिनीद्रुहाम्।।63।।

वे शक्तियां हाथ में हल मूसल लेकर ललिता भगवती से श्यामा भगवती से और अपनी स्वामिनी दण्डनाथा से द्रोह करने वालों को बार बार घूरती हुईं।।63।।

रक्तस्रोतोभिरुत्कूलैः पूरयन्त्यः कपालकम्।
निजभक्तद्रोहकृतामान्त्रमालाविभूषणाः।।64।।

उन बैर करने वाले द्रोहक करने वाले शत्रुओं के रक्तों से अपने कपालभण्डों भरती हुईं एवं अपने भक्तों से द्रोह करने वालों के रक्त से कपालों को भरती हुई वे उनकी आंतों की मालाओं को धारण की हुईं।।64।।

स्वगोष्ठीसमयाक्षेपकारिणां मुण्डमण्डलैः।
अखण्डरक्तविच्छेदैः कृतवैकक्ष्यकश्रियः।
सहस्रं देवताः प्रोक्ताः सेवमानाः किटीश्वरीम्।।65।।

अपनी गोष्ठी के समय का आक्षेप करने वालों अर्थात अपनी समाज की परम्पराओं को जो बुराई करने वाले थे, उनके अखण्ड रूप से विच्छेदों से दण्डित करने वाली वक्षः स्थल पर मालाएं धारण करने वालीं सहस्रो देवता भगवती किटीश्वरी की सेवा करती हुईं कही गईं हैं।।65।।

तासां नामानि सर्वासां दण्डिन्याः कुम्भसंभव।
सहस्रनामाध्याये तु वक्ष्यन्ते नाधुना पुनः।।66।

हे कुंभसंभव! दण्डिनी की समस्त शक्तियों के नाम सहस्त्रनामाध्याय में कहेंगे इस समय नहीं।।66।।

अथासां देवतानां च कोलास्यानां समीपतः।
वाहनः कृष्णसारङ्गो दण्डिन्याः समवस्थितः॥67॥

इसके अन्तर उन वराहमुखी देवियों के समीप से दण्डिनी भगवती का कृष्णसारंग नामक वाहन समुपस्थित है॥67॥

क्रोशार्धाधीयतः शुङ्गे तदर्धार्धायतो मुखे।
क्रोशप्रमाणपादश्च सदा चोद्धतवालधिः॥68॥

उस कृष्णसारंग के सींग आधेकोश लम्बे हैं तथा उस आधे से आधेकोश अर्थात एक चौथाई लम्बा मुख है, उसके पैर एक कोश की लंबाई के हैं, उसका सिर जो बालों के समूह को धारण किये रहताहै वह सदा ऊंचा उठा ही रहता है॥68॥

उदरे धवल छायो हुङ्कारेण महीयसा।
हसन्मारुत वाहस्य हरिणस्य पराक्रमम्॥69॥

उसके उदरभाग में सफेदरंग की छाया है, उसकी अत्यन्त तीव्रहुंकार से हंसते हुए वायु वेगवान उस हरिण का पराक्रम व्यक्त हो रहा था॥69॥

तस्यैव पर्वणो देशे वर्तते वाहनोत्तमः॥70॥

उसी पर्वभाग में उत्तम वाहन है॥70॥

किरिचक्ररथेन्द्रस्य तस्य तत्रैव पर्वणि।
वर्तते मदिरासिन्धुर्देवतारूपमास्थितः॥71॥

जो किरिचक्ररथेन्द्र है वहीं पर्व में मदिरा सिन्धुदेवता का रूप लेकर स्थित है॥71॥

माणिक्यगिरिवच्छोणं हस्ते पिशितपिण्डकम्।
दधानो घूर्णमानाक्षः स्वर्णाम्भोजस्त्रगावृतः॥72॥

वह मदिरा सिन्धु देवता माणिक्यमणि के वर्ण जैसे रक्तवर्ण के हाथ में मांस का पिण्ड लिये हुए है, उसने स्वर्ण कमलों की माला धारण कर रखी है। उसके नेत्र मद से घूमते से उसके नेत्र हैं॥72॥

मदशक्त्या समाश्लिष्टो धृतरक्तमरोजया

वह लाल कमलों को धारण की हुई मदशक्ति से अच्छी तरह आलिंगित है॥72॥

यदायदा भण्डदैत्यसग्रामः सप्रवर्तते।
युद्धे खेदमनुप्राप्ताः शक्तयः स्युः पिपासिताः॥73॥

जब जब भण्ड दैत्य से संग्राम प्रवृत्त होता है युद्ध में शक्तियां प्यास से व्याकुल हो जाती हैं, तब तब उन्हें प्यास बुझाने के लिये॥73॥

तदातदा सुरासिन्धुरात्मानं बहुधा क्षिपन् ।
रणखेदं देवतानामञ्जसाऽपाकरिष्यति॥74॥

सुरासिन्धु को बहुत प्रभारों से फेंकती हुई शीघ्र ही देवताओं की थकान को दूर कर देती हैं।।74।।

तदत्यद्भुतमेवर्षे भविष्यति न संशयः।
तदा श्रोष्यसि संग्रामे कथ्यमानं मया मुदा॥75॥

वह भी अद्भुत कार्य उस युद्ध में होगा इसमें कोई भी संशय नहीं है, तब आप मेरे द्वारा कहे गए आख्यान को आप सुनेंगे।।75।।

तस्यैव पर्वणोऽधस्तादष्टदिक्ष्वध एव च।
उपर्यपि कृतावासा हेतुकाद्या दश स्मृताः॥76॥

उसी पर्व के नीचे आठ दिशाओं में नीचे भी और ऊपर भी आवास करने वाले अत्यन्त श्रेष्ठ और पराक्रम वाले हेतुकारी दश कहे गये।।76।।

महान्तो भैरवश्रेष्ठाः ख्याता वातापितापन।
उद्दीप्तायुधतेजोभिर्दिवा दीपितभानवः॥77॥

वे दश भैरव व श्रेष्ठ महान तेजस्वी हैं और विख्यात हैं वे सहस्त्र तेज प्रकाश से प्रकाशित हैं अर्थात दिन में प्रकाशित होने वाले सूर्य के समान हैं ।।77।।

कल्पान्तकाले दण्डिन्या आज्ञया विश्वघस्मराः।
अत्युदग्रप्रकृतयः कटुदंष्ट्रारटन्मुखाः।
त्रिशूलाग्रविनिर्भिण्णमहावारिदमण्डलाः।।78।।

प्रलयकाल में दण्डनाथा की आज्ञा से वे भैरव विश्व को निगलने वाले हैं, वे अत्यन्त उग्र स्वभाव के हैं, दाढ़ों से ओठों को काटते हुए बंद मुख वाले त्रिशूल के अग्रभाग से भारी मेघ मण्डल को छिन्न भिन्न करने वाले हैं।।78।।

हेतुकस्त्रिपुगरिश्च तृतीयश्चाग्निभैरवः।
यमजिह्वैकपादौ च तौ च कालकरालकौ।।79।।

वे हैं 1 हेतुक, 2 त्रिपुराटि, 3 अग्नि भैरव, 4 यमजिह्व, 5 एकपाद, 7 काल, 7 कराल।।79।।

भीमरूपो हाटकेशस्तथैवाचलनामवान्।
एते दशैव विख्याता दशकोटिभटान्विताः।
तस्यैव किरिचक्रस्य वर्तन्ते पर्वसीमनि॥80॥

8 भीमरूप, 9 हाटकेश, 10 अचल नामों वाले हैं ये दस भैरव ही विख्यात हैं तथा सभी दस

करोड़ योद्धाओं से युक्त हैं ये उसी किरिचक्र की पर्वसीमा में विद्यमान हैं।।80।।

एवं हि दण्डनाथायाः किरिचक्रस्थदेवताः।
जृम्भिण्याद्यचलेन्द्रान्ताः प्रोक्तास्त्रैलोक्यपालनाः।।81।।

इस प्रकार दण्डनाथा देवी के किरिचक्ररथ में स्थित देवियां जृम्भिणी आदि तथा अचलादि भैरव तक कहे गये हैं, ये सभी त्रैलोक्यपावन कहे गए हैं, रक्षक हैं।।81।।

तत्रत्यैर्देवतावृन्दैर्बहवस्तत्र सङ्गरे।
दानवा मारयिष्यन्ते पास्यन्ते रक्तवृष्टयः।।82।।

वहां पर उपस्थित देवीगणों द्वारा उस युद्ध में बहुत से दानव मारे जायेंगे और उनके बरसते हुए रक्त पिये जायेंगे।।82।।

इत्थं बहुविधत्राणं पर्वस्थैर्देवतागणैः।
किरिचक्रं दण्डनेत्र्या रथरत्नं चचाल ह।।८३।।

इस प्रकार अनेक पर्वों (भागों) में स्थित देवी देवों के गणों से रक्षित भगवती दण्डनाथा का वह किरिचक्ररथ रत्नयुद्ध क्षेत्र के लिये प्रस्थित हुआ।।83।।

चक्रराजरथो यत्र तत्र गेयरथोत्तमः।
यत्र गेयरथस्तत्र किरिचक्ररथोत्तमः।
एतद्रथत्रयं तत्र त्रैलोक्यमिव जङ्गमम्।।८४।।

चक्रराजरथ जहां चल रहा था वहां उत्तम गेयरथ भी चल रहा था जहां उत्तम गेयरथ चल रहा था वहां उत्तम किरिरथ चल रहा था, ये तीनों रथ जहां थे वहां पर तीनों लोक ही चेतन रूप में उपस्थित थे अर्थात तीनों लोग जंगम होकर सशरीर ही उपस्थित हो गये हों तभी सहस्त्राधिक शक्तियों ने इन रथों में आरूढ़ होकर भण्ड से युद्ध के लिये किया।।84।।

शक्तिसेनासहस्त्रस्य मध्ये विरुरुचेतराम्।
मेरुमन्दरविन्ध्यानां समवाय इवाभवत्।।८५।।

जिस समय यह शुभ अभियान शुरू हुआ उस समय सुमेरू, मन्दराचल और विन्ध्याचल सभी एक दूसरे से मिले से हो गये।।85।।

महाघोषः प्रववृधे शक्तीनां सैन्यमण्डले।
चचाल वसुधा सर्वा तच्चक्रैरवदारिता।।८६।।

जिस समय शक्तियों के सैन्य मण्डल में युद्ध का महाघोष हुआ उस समय पृथिवी उनके चक्रों से खुदी हुई वह भी चलने जैसी हो गयीं।।86।।

ललिताचक्रराजाख्यरथनाथस्य कीर्तिता:।
षट्सारथय उद्दण्डपाशग्रहणकोविदा:॥८७॥

रथनाथ चक्रराज की स्वामिनी ललिता भगवती हैं उन उन रथों के सारथी छह हैं जो बड़े उद्दण्ड हैं और पाश (लगाम) ग्रहण करने में सिद्धहस्त हैं।।87।।

इरादेवी प्रथमतस्तथा त्रिपुरभैरवी।
संहारभैरवश्चान्यो रक्तयोगिनिवल्लभ:।।८८।।

इस प्रकार प्रथमतः ललिता देवी तथा दूसरी त्रिपुरभैरवी हैं, संहारभैरव तीसरे तथा वल्लभा रक्तयोगिनी चतुर्थ हैं।।88।।

सारसः पञ्चमश्चैव चामुण्डा च तथा परा।
एतास्तु देवतास्तत्र रथसारथयः स्मृताः॥ ८९॥

सारस पांचवीं हैं तथा चामुण्डा अन्य हैं। इनमें जो रथ की सारथि देवियां स्मरण की गईं हैं, वहां वे रथ की सारथी रूप में स्मरण की गईं हैं।89।।

गेयचक्ररथेन्द्रस्य सारथिस्तु हसन्तिका।
किरिचक्ररथेन्द्रस्य स्तम्भिनी सारथिः स्मृता ॥९०॥

रथचक्ररथेन्द्र मंत्रनाथा को इनके रथ की सारथी हसन्तिका कहीं गई हैं और किरिचक्ररथेन्द्र भगवती दण्डनाथा का इसकी सारथी स्तम्भिनी देवी कही गईं हैं।।90।।

दशयोजनमुन्नम्रो ललितारथपुङ्गव:।
सप्तयोजनमुच्छ्रायी गीतिचक्ररथोत्तमः॥९१॥

दश योजनतक ऊपर से नीचे तक विस्तार वाला भगवती ललिता का चक्ररथेन्द्र है तथा गीतिचक्रेरथेन्द्र भगवती मंत्रिणी का उत्तम रथ है जो सात योजन ऊपर से नीचे तक व्याप्त है।।91।।

षड्योजनसमुन्नम्रः किरिचक्ररथो मुने॥९२॥

हे मुनि अगस्त्य जी! भगवती दण्डनाथा का किरिचक्ररथेन्द्र छह योजन पर्यन्त ऊपर से नीचे तक व्याप्त हैं।।92।।

महामुक्तातपत्रं तु दशयोजनविस्तृतम्।
वर्तते ललितेशान्या रथ एव नचान्यतः ॥ ९३ ॥

उन भगवती का महामुक्ता छत्र दश योजन विस्तृत हैं तथा वह छत्र केवल ललिता भगवती के रथ पर ही है अन्य के रथों पर नहीं।।93।।

इत्थं बहुविधत्राणं पर्वस्थैर्देवतागणैः।
सामान्यमातपत्रं तु रथद्वन्द्वेऽपि वर्तते ॥94॥

वह रथ ही शक्ति के साम्राज्य का सूचक कहा गया है तथा सामान्य छत्र तो दोनों रथों (गेयचक्र और किरिचक्ररथ) में भी हैं।।94।।

अथ सा ललितेशानी सर्वशक्तिमहेश्वरी।
महासाम्राज्यपदवीमारूढा भुवनेश्वरी।
चचाल भण्डदैत्यस्य जयसिद्ध्यभिकाङ्क्षिणी ॥95॥

इसके अन्तर वे भगवती परमेश्वरी सभी शक्तियों की महेश्वरी हैं वे भुवनेश्वरी महा साम्राज्य की पदवी में आरूढ़ हैं वे उस भण्डासुर दैत्येन्द्र पर विजय सिद्धि की आकांक्षा रखी हुई हैं थीं उस समय।।95।।

शब्दायन्ते दिशः सर्वाः कम्पते च वसुन्धरा।
क्षुभ्यन्ति सर्वभूतानि ललितेश्या विनिर्गमे ॥96॥

जिस भगवती ललिताम्बा ने भण्ड विजय के लिये प्रस्थान किया उस समय सभी दिशायें गुंजार कर रही थीं, वसुन्धरा धरती कांप रही थी समस्त भूतप्राणी जगत् के क्षुभित हो रहे थे अर्थात हाहाकार मचा हुआ था।।96।।

देवदुन्दुभयो नेदुर्निपेतुः पुष्पवृष्टयः।
विश्वावसुप्रभृतयो गन्धर्वाः सुरगायकाः ॥97॥

देवतागण आकाश से दुन्दुभियां बजा रहे थे और पुष्पों की वर्षा कर रहे थे विश्वावसु आदि प्रमुख गन्धर्व गान कर रहे थे ।।97।।

तुम्बुरुर्नारदश्चैव साक्षादेव सरस्वती।
जयमङ्गलशब्दानि पठन्ति पटुगीतिभिः ॥98॥

तथा तुम्बुरू नारद और साक्षात् सरस्वती ने पटुगीतियों द्वारा।।98।।

हर्षसंफुल्लवदनाः स्फुरत्पुलकभूषणाः।
मुहुर्जयजयेत्येवं स्तुवाना ललितेश्वरीम् ॥99॥

गेय पदों को गाती हुईं, हर्ष से मुख प्रसन्न हो रहा था अपने आभूषणों चमकती हुई दोनों हाथों को ऊपर उठाकर जिन हाथों में रत्नजटित थे उनकी चमक फैल रही थी वे जय जय हो बार बार उच्चारण करती हुईं भगवती ललितेश्वरी की सुन्दर स्तुति कर रही थीं।।99।।

हर्षेणान्धा मदोन्मत्ताः प्रनृत्यन्तः पदेपदे।
सप्तर्षयो वसिष्ठाद्या ऋग्यजुःसामरूपिभिः।
अथर्वरूपैर्मन्त्रैश्च वर्धयन्तो जयश्रियम् ॥100॥

वसिष्ठ आदि तथा सप्तर्षियों ने ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद रूपी तथा अथर्ववेद रूपी मंत्रों के द्वारा जयश्री का संवर्धन सम्पन्न किया, ऐसे वातावरण सभी देव गन्धर्व, अप्सरादि देवगण समस्त भूतप्राणिगण हर्ष से प्रफुल्लित होकर आनन्द से उन्मत्त होकर पद पद में नाचने लगे।।100।।

हविषेव महावह्निशिखामत्यन्तपावनीम्।
आशीर्वादेन महता वर्धयामासुरुत्तमाः ॥101॥

उन वसिष्ठ सप्तर्षि ऋषियों ने वेदों के मंत्रों से युक्त हवि से अत्यन्त पवित्र यज्ञ की महाबलि की विशाल अग्नि शिखा को बड़े आशीर्वाद द्वारा संवर्धित किया उस आनन्दपूर्ण वातावरण में ।।101।।

तैः स्तूयमाना ललिता प्रचचाल रथोत्तमे।
भण्डासुरं विनिजेतुमुद्दण्डैः सह सैनिकैः ॥102॥

उन सभी देवगणों ऋषियों देवर्षियों और महर्षियों द्वारा जगत् के समस्त प्राणियों द्वारा स्तुति गान पुष्पवृष्टि किये जाने के मध्य भगवती ललिता उत्तम रथ में आरूढ् होकर निकलीं, साथ में भण्डासुर पर युद्ध में विजय की कामना थी, सेना के उद्दण्ड सैनिकगण युद्ध में विजय के हर्षातिरेक से उन्मत्त हो आगे चल रहे थे।।102।।

इति श्रीब्रह्माण्डपुराणे उत्तरखण्डे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने त्रयोदशोऽध्यायः ॥13॥

॥श्रीमन्महागणाधिपतये नमः।।

श्रीमातालिलताम्बायै नमः श्रीपादुकां पूजयामि नमः॥
ॐ वन्दे गुरुपदद्वन्द्वं अवाङ्मनसगोचरम्॥
रक्तशुक्ल प्रभामिश्रमतर्क्यं त्रैपुरं महः॥
ॐ आराध्यदेवं भक्तानां कलिदोषविनाशकम्॥
वन्दे श्रीगिरिजानन्दं शारदाश्रीमठाधिपम्।।
ॐ अखण्डं यस्यज्ञानञ्च भक्तिर्यस्यानपायिनी।।
शारदाज्योतिरीशस्य दर्शनं (पूजनं, वन्दनं) शुभमस्तुनः।।

चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥ 48 श्लोकात्मकः

[शून्यनगरोत्पातप्रादुर्भावः॥]

हयग्रीवः ।। श्री हयग्रीव बोले-ः

आकर्ण्य ललितादेव्या यात्रानिः साणनिस्वनम्।
महान्तं क्षोभमायाता भण्डासुरपुरालयाः॥१

भगवती ललितादेवी के भण्डासुर पर विजय के लिये ससैन्य और सेनापति शक्तियों के साथ युद्ध के लिये प्रस्थान का समाचार सुनने के बाद भण्डासुर के नगर में आवासों में बड़ी हलचल मच गई।।1।।

यत्तत्रासीद्दुराशस्य भण्डदैत्यस्य दुर्धियः।
महेन्द्रपर्वतोपान्ते महार्णवतटे पुरम्॥२॥

जहां कि दुर्बुद्धि तथा दुष्ट भण्डासुर का नगर था वह महेन्द्र पर्वत के पास महासमुद्र के तट पर था।।2।।

तत्तु शून्यकनाम्नैव विख्यातं भुवनत्रये।
विषंगाग्रजदैत्यस्य सदावासः किलाभवत्॥३॥

वह भण्डासुर का नगर शून्यक नाम से तीनों भुवनों में प्रसिद्ध था विषंग दैत्य के अग्रज दैत्य भण्ड का उस नगर में स्थायी निवास था।।3।।

तस्मिन्नेव पुरे तस्य शतयोजनविस्तरे।
वित्रेसुरसुराः सर्वे श्रीदेव्यागमसंभ्रमात्॥४॥

उसके सौ योजन तक फैले हुए उस भण्डासुर के ही नगर में निवास करने वाले समस्त असुरगण भगवती श्रीदेवी के चढ़ाई करने आने के समाचार से भयभीत हो गए।।4।।

शतयोजनविस्तीर्णं तत्सर्वं पुरमासुरम्।
धूमैरिवावृतमभूदुत्पातजनितैर्मुहुः॥५॥

सौ योजनों तक फैले हुए समस्त उस असुरों का नगर शून्यक उत्पात से उत्पन्न हुए धूम्र के द्वारा पूरी तरह ढंक गया।।5।।

अकाण्ड एव निर्भिण्णा भित्तयो दैत्यपत्तने।
घूर्णमानाः पतन्तिस्म महोल्का गगनस्थलात्॥६॥

उस दैत्यनगर में मकानों की दीवारें अचानक ही फटकर गिरने लगीं और आकाश से बड़ी बड़ी उल्काएं घूमती हुई चक्कर खाती हुई गिरने लगीं।।6।।

उत्पातानां प्राथमिको भूकम्पः पर्यवर्तत।
मही जज्वाल सकला तत्र शून्यकपत्तने॥७॥

उत्पातों में सबसे पहिले उस नगर में भूकम्प हुआ इसके बाद उस नगर की समस्त भूमि जलने सी लगी।।7।।

अकाण्ड एव हृत्कम्पं भेजुर्दैत्यपुरौकसः।
ध्वजाग्रवर्तिनः काका गृध्राश्चैव वलाः खगाः॥८॥

असमय में ही उस दैत्य के नगर में रहने वाले निवासियों के हृदय कांपने लगे, हृदय में भय का संचार होने लगा, ध्वजाओं के आगे उड़ते हुए कौए गीध, बगुले आदि पक्षिगण उड़ते हुए दिखे वे आकाश में चिल्ला रहे थे।।8।।

आदित्यमण्डलं दृष्ट्वा दृष्ट्वा चक्रन्दुरुच्चकैः।
क्रव्यादा बहवस्तत्र लोचनैर्नावलोकिताः।
मुहुराकाशवाणीभिः परुषाभिर्बभाषिरे॥९॥

वे पक्षिगण आकाश मण्डल की ओर देख देख कर उच्च स्वर में क्रन्दन कर रहे थे, अनेकों कच्चा मांस खाने वाले हिंस्र पशु बाघ, शेर भेड़िया, तेन्दुआ आदि को आंखों से देखा गया आकाश से भी कठोरवाणियों की ध्वनियां सुनाई देने लगीं।।।।9।।

सर्वतो दिक्षु दृश्यन्ते केतवस्तु मलीमसाः।
धूमायमानाः प्रक्षोभजनका दैत्यरक्षसाम्॥१०॥

सभी दिशाओं में उस दैत्य की ध्वजाएं धुएं से धुंधली दिखाई दे रही थीं जो दैत्य राक्षसों को विशेष क्षोभ पैदा कर रहीं थीं।।10।।

दैत्यस्त्रीणां च विभ्रष्टा अकाण्डाद्भूषणस्त्रजः।
हाहेति दूरं क्रन्दन्त्यः पर्यश्रु समरोदिषुः॥११॥

असमय में ही बिना किसी कारण के दैत्यों की स्त्रियों की आभूषणों की मालाएं टूट कर गिरने लगीं वे स्त्रियां हाहा करती दूर से क्रन्दन करती हुईं रोने लगीं।।11।।

दर्पणानां वर्मणां च ध्वजानां खड्गसम्पदाम्।
मणीनामम्बराणां च मालिन्यमभवन्मुहुः ॥१२॥

दर्पणों, कवचों ध्वजाओं के खड्गों, मणियों और वस्त्रों में मलिनता हो गई यह अपशुकन की रूपता है।।12।।

सौधेषु चन्द्रशालासु केलीवेश्मसु सर्वशः।
अट्टालकेषु गोष्ठीषु विपणीषु सभासु च॥१३॥
चतुष्किकास्वलिन्देषु प्रक्रीडेषु बलेषु च।
सर्वतोभद्रवासेषु एन्द्यावर्तादिवेश्मसु॥१४॥
विच्छन्दकेषु शुद्धान्तेष्ववरोधनपालिषु।
स्वस्तिकेषु च सर्वेषु गर्भागारपुटेषु च॥१५॥
गोपुरेषु कवाटेषु बलभीनां च सीमसु।
वातायनेषु कक्ष्यासु धिष्ण्येषु च खलूरिषु॥१६॥
सर्वत्र दैत्यनगरावासिभिर्जनमण्डलैः।
अश्रूयन्त महाघोषाः परुषा भूतभाषिताः॥१७॥
शिथिली सर्वतो जाता घोरवार्णा भयानकाः।

महलों, चन्द्रशालाओं खेल के मैदानों, भवनों, मनोरंजनगृहों सभाओं दुकानों में, गृहों के द्वारों के सामने चतूतरों में, घर के चारों ओर बाड़ियों में सैन्यालयों, छावनियों में, सर्वतोभद्र भवनों में नदियों में बनने वाले भंवरों में और घरों में, अनेकों कक्षों एवं अनेग खण्डों वाले विशाल भवनों, अन्तःपुर के कक्षों में स्वस्तिक भवनों में गर्भागार कक्षों गोपुरों में छप्परों की सीमाओं में झरोखों में कक्षों में हवन कुण्डों में खलिहानों में, सर्वत्र दैत्यनगर में रहने वाले लोग पहिले से बोली जाने वाली कठोर भयंकर महाध्वनि को सुन रहे थे।।13,14,15,16,17।।

करटैः कटुकालापैरवलोक्य दिवाकरम्॥१८॥

घोर पंखों वाले भयानक राक्षस सर्वत्र शिथिल हो गए कौओं और जहरीले सूर्यों से घिरे दिखाई देने लगे।।18।।

समराटकरोटीनां कोटयश्चापतन् भुवि।
अपतन्वेदिमध्येषु बिन्दवः शोणिताम्भसाम्॥१९

वेदियों के मध्य में लाल जल की बूंदे गिरने लगीं।।19।।

केशोण्डूकाश्च निष्पेतुः सर्वतो धूमधूमलाः॥२०॥

धूमधूसरित केश चारों ओर से गिरने लगे।।20।।

भौमान्तरिक्ष दिव्यानामुत्पातानामिति ब्रजम्।
अवलोक्य भृशं त्रस्ताः सर्वे नगरवासिनः।
निवेद्यामासुरमी भण्डाय ग्रथितौजसे॥२१॥

पृथ्वी अन्तरिक्ष और स्वर्ग में उत्पात फैल गया, जिस उत्पात को देखकर सभी नगर निवासी बहुत अधिक भयभीत हो गये और फिर उन्होंने अत्यन्त पराक्रमी भण्डासुर से निवेदन किया।।21।।

स च भण्डः प्रचण्डोष्मा तैरुत्पातकदम्बकैः।
असंजातधृतिभ्रंशो मंत्रस्थानमुपागमत्।।२२॥

और वह भण्डासुर के प्रचण्ड उत्पातों के साथ बिना धैर्य त्यागे मंत्र स्थान में पहुंच गया।।22।।

मेरोरिव वपुर्भेदं बहुरत्नविचित्रितम्।
अध्यासामास दैत्येन्द्रः सिंहासनमनुत्तमम्॥२३॥

सुमेरू पर्वत के समान शरीर वाला वह दैत्यराज भण्डासुर बहुत से रत्नों को जड़कर बनाए गए अत्यन्त उत्तम सिंहासन पर बैठा।।23।।

स्फुरन्मुकुटलग्नानां रत्नानां किरणोद्गमैः।
दीपयन्नखिलाशान्तानद्युतद्दानवेश्वरः॥२४॥

वह दानवेश्वर भण्डासुर सिंहासन में बैठा था उस समय उसने जो मुकुट पहिने हुए था उसमें लगे हुए रत्नों की किरणों के उद्गम से भी वह अशान्त और कान्तिहीन आभासित हो रहा था।।24।।

एकयोजनविस्तारे महत्यास्थानमण्टपे।
तुङ्गसिंहासनस्थं तु निषेवाते तदानुजौ॥२५॥

एकयोजन विस्तार वाले महान आस्थानमण्डप में ऊंचे सिंहासन पर बैठे उसके दोनों छोटे भाई सेवा कर रहे थे।।25।।

विशुक्रश्च विषङ्गश्च महाबलपराक्रमौ।
त्रैलोक्यकण्टकीभूतभुजदण्डभयङ्करौ॥२६॥

भण्डासुर की सेवा करने वाले उसके छोटे भाई विशुक्र और विषंग ये दोनों ही महाबली थे

महापरक्रमी थे ये दोनों ही त्रैलोक्य के कांटे थे इनके भुजदण्डों से इन्होंने सभी को भयभीत कर रखा था।।26।।

अग्रजस्य सदैवाज्ञामविलङ्घ्य मुहुर्मुहुः।
त्रैलोक्यविजये लब्धं वर्धयन्तौ महद्यशः॥२७॥

अपने अग्रज भाई भण्डासुर की आज्ञाओं का बिना उल्लंघन किये उन दोनों भाईयों ने बार बार त्रिलोकी में आक्रमण करके बड़े विस्तृत यश को प्राप्त किया था।।27

नतेन शिरसा तस्य मृगन्तौ पादपीठिकाम्।
कृताञ्जलिप्रणामौ च समुपाविशतां भुवि॥२८॥

वे दोनों भाई विशुक्र और विषंग उस भण्डासुर की पादपीठिका पर नतमस्तक होकर हाथ जोड़कर भूमि पर ही बैठ गए।।28।।

अथास्थानस्थिते तस्मिन्नमरद्वेषिणां वरे।
सर्वे सामन्तदैत्येन्द्रास्तं द्रष्टुं समुपागताः॥२९॥

इसके अनन्तर देवताओं के परम विद्वेषी भण्डासुर के उस सभास्थान में सिंहासन पर बैठ जाने पर सभी सभा के सामन्त दैत्येंन्द्र समूह उसे देखने के लिये सभा में आए।।29।।

तेषामेकैकसैन्यानां गणना नहि विद्यते।
स्वस्वनाम समुच्चार्य प्रणेमुः शून्यकेश्वरम्॥३०॥

उन आए हुए सामन्त दैत्यों की गिनती नहीं हो सकती उनमें से सभी एक एक करके अपना नाम लेते हुए शून्यकेश्वर को प्रणाम कर रहे थे।।30।।

स च तानसुरान्सर्वानतिधीरकनीनिकैः।
संभावयन्समालोकैः कियन्तं चित्क्षणं स्थितः॥३१॥

वह भण्डासुर उन असुरों को सभी को अच्छी तरह देखकर सभी का दृष्टि से स्वागत कर रहा था और वे उसके सेवक वीर सैनिक उन आये हुए सामन्त दैत्येश्वरों को आदर से बैठा रहे थे।।31।।

[भण्डादीनां मंत्रणाक्रमः॥]

अवोचत विशुक्रस्तमग्रजं दानवेश्वरम्।
मथ्यमानमहासिन्धुसमानगलनिस्वनः॥३२॥

सबके यथा स्थान बैठ जाने पर मथे जाने वाले महासिन्धु की गरजती हुई ध्वनि समान गरजते गंभीर स्वर से भण्डासुर का अनुज विशुक्र अपने बड़े भाई से बोला।।32।।

देव त्वदीयदोर्दण्डविध्वस्तबलविक्रमाः।

पापिनः पामराचारा दुरात्मानः सुराधमाः ॥३३॥

हे देव! आपकी महाबलशाली भुजाओं से जिनका बल और पराक्रम विध्वस्त हो गया था, वे पापी नीच आचरण करने वाले दुरात्मा अधम देवगण।।33।।

शरण्यमन्यतः कापि नाप्नुवन्तो विषादिनः।

ज्वलज्ज्वालामये वह्नौ पतिता नाशमागताः ॥३४॥

हे देव! आपके द्वारा पराजित होने पर अत्यन्त धैर्यहीन विवेक हीन विषादग्रस्त उन देवों को कहीं से भी शरण नहीं मिली है अतः वे पराजय आश्रयहीनता दुर्बलता आदि की मानों प्रचंड जलती हुई ज्वालाओं वाले अग्नि में झुलस रहे नाश को प्राप्त हो रहे हैं।।34।।

तस्माद्दैवात्समुत्पन्ना काचित्स्त्री बलगर्विता।

स्वयमेव किलास्राक्षीत्तान्देवान्वासवादिकान्३५

उस देव विष्णु से समुत्पन्न कोई स्त्री बल से गर्वित स्वयं ही उसके साथ इन्द्रादि देवता हैं।।35।।

तैः पुनः प्रबलोत्साहैः प्रोत्साहितपराक्रमा।

बहुस्त्रीपरिवारा च विविधायुधमण्डिता॥३६॥

पुनः उन्हीं प्रबल उत्साहों के साथ अच्छी तरह उत्साहित किए गए पराक्रम से युक्त वे देवता गण बहुत सी स्त्री परिवारों एवं अनेकों प्रकार के आयुधों को लेकर।।36।।

अस्माञ्जेतुं किलायाति हा कष्टं विधिवैशसम्।

अबलानां समूहश्चेद्बलिनोऽस्मान्विजेष्यते ॥३७॥

वे स्त्रियों के साथ हमें जीतने के लिये आ रहे हैं ये बड़े कष्ट की बात है विधि की विडम्बना है, हम बलशालियों को वे अबला स्त्रियां जीत लेंगी।।37।।

तर्हि पल्लवभङ्गेन पाषाणस्य विदारणम्।

उच्यमानमिदं हन्त परिहासाय कल्पते॥३८॥

यदि ऐसा हो गया तो यह तो वैसा ही होगा कि वृक्ष से कोमल पल्लव के प्रहार से पाषाण को तोड़ा इस कल्पना से ही परिहास होता है।।38।।

विडम्बना न किमसौ लज्जाकरमिदं न किम्।

अस्मत्सैनिकनासीरभटेभ्योऽपि भवद्भियः ॥३९॥

तथा यह विडम्बना नहीं है क्या यह लज्जाकर नहीं है कि हम सैनिकों के आगे रहने वाले योद्धाओं को भय होवे।।39।।

कान्दिशीकत्वमापन्नाः शक्राद्यास्त्रिदिवौकसः।
ब्रह्मादयश्च निर्भिण्णविग्रहा मद्बलायुधैः ॥४० ॥

क्योंकि हम लोगों के सामने पड़कर ये इन्द्रादि देवगण कान्दिशीक अर्थात युद्ध में हार कर किस दिशा में भागें (कायर का वाचक यह शब्द है) हो गए और ब्रह्मादि बल, आयुधादि से भय ग्रस्त होकर खिन्न शरीर वाले हो गये।।40।।

विष्णोश्च का कथा वास्ति वित्रस्तः स महेश्वरः ।
अन्येषामिह का वार्ता दिक्पाः सर्वे पलायिताः ४१

युद्ध में विष्णु के लिये क्या कहना वह तो है जैसा नहीं है यहां तक कि महेश्वर भी विशेष रूप से वित्रस्त हो गये भयभीत हो गये बेचारे उन इन्द्रादि तथा दिक्पालों का, वे बेचारे तो सभी भाग गये।।41।।

अस्माकमिषुभिस्तीक्ष्णैरदृश्यैरङ्गपातिभिः।
सर्वत्र विद्धमर्माणो दुर्मना विबुधाः कृताः ॥४२॥

हमारे अदृश्य तीक्ष्ण बाणों के शरीर पर आघात करने पर बिंधे शरीर वाले देवता लोग मदरहित हो गये।।42।।

तादृशानामपि महापराक्रमभुजोष्मणाम्।
अस्माकं विजयायाद्य स्त्री काचिदभिधावति ॥४३॥

वैसे हम लोग महापराक्रम का उपभोग करने वाले हैं हम पर विजय पाने के लिये आज कोई स्त्री आ रही है।।43।।

यद्यपि स्त्री तदाप्येषा नावमान्या कदाचन।
अल्पोऽपि रिपुरात्मज्ञैर्नावमान्यो जिगीषुभिः ॥४४॥

यद्यपि वह स्त्री है तथापि उसे स्त्री समझकर अबला कहकर उपेक्षा नहीं करना चाहिये क्योंकि आत्मज्ञानी पुरुषों को छोटा सा भी शत्रु उपेक्षणीय नहीं होता।।44।।

तस्मात्तदुत्सारणार्थं प्रेषणीयास्तु किङ्कराः।
सकचग्राहमाकृष्य साऽऽनेतव्या मदोद्धता ॥४५॥

इसलिये उसको पकड़ने के लिये नौकरों को भेजना आवश्यक है जो उस घमण्डी स्त्री को बाल पकड़कर घसीटते हुए यहां लायें।।45।।

देव त्वदीयशुद्धान्तवर्तिनीनां मृगीदृशाम्।
चिरेण चेटिकाभावं सा दुष्टा संश्रयिष्यति ॥४६॥

उस विशुक्र ने भण्डासुर से भरी सभा में कहा कि वह दुष्टा स्त्री आपके शुद्धान्तःपुर में रहने वाली मृगनयनी रानियों की दासी बनकर बहुत समय तक रहेंगी।।46।।

एकैकस्माद्भटादस्मात्सैन्येषु परिपन्थिनः ।
शङ्कते खलु वित्रस्तं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥४७॥

हमारी अपनी सेना में एक से एक बढ़कर शत्रुसंहार करने वाला योद्धा है जिनसे निश्चित ही विशेषतः चराचर जगत् शंकित रहता है।।47।।

अत्र देवस्य चित्तं तु प्रमाणमिति दानवः ।
निवेद्य भण्डदैत्याय क्रोधं तस्य व्यवीवृधत् ॥४८॥

इस विषय में यहां अन्य प्रमाण की कोई आवश्यकता नहीं है इसमें तो आपका ही चित्त प्रमाण है, इस प्रकार भण्डासुर के अनुज विशुक्र (विशंग) ने दैत्य राज भण्डासुर के क्रोध को बढ़ा दिया।48।।

इति श्रीब्रह्माण्डपुराणे उत्तरखण्डे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने
भण्डासुरादिमन्त्रक्रमो नाम चतुर्दशोऽध्याय ः॥१४ ॥

॥श्रीमन्महागणाधिपतये नमः।।

श्रीमातालिताम्बायै नमः श्रीपादुकां पूजयामि नमः॥
ॐ वन्दे गुरुपदद्वन्द्वं अवाङ्मनसगोचरम्॥
रक्तशुक्ल प्रभामिश्रमतर्क्यं त्रैपुरं महः॥
ॐ आराध्यदेवं भक्तानां कलिदोषविनाशकम्॥
वन्दे श्रीगिरिजानन्दं शारदाश्रीमठाधिपम्।।
ॐ अखण्डं यस्यज्ञानञ्च भक्तिर्यस्यानपायिनी।।
शारदाज्योतिरीशस्य दर्शनं (पूजनं, वन्दनं) शुभमस्तुनः।।

पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥ 55 श्लोकात्मकः

[विषङ्गकृतसन्मत्रोपदेशः॥]

हयग्रीवः।। श्री हयग्रीव बोले-ः

विषङ्गस्तु महासत्वो विचारज्ञो विचक्षणः।
इदमाह महादैत्यमग्रजन्मानमुद्धतम्॥१॥

हे कुम्भज! वह विषंग महासत्व महापराक्रमी है विचारज्ञ और कुशल था उसने अपने बड़े भाई उद्धत और महापराक्रमी भण्ड से यह कहा।।1।।

देव त्वमेव जानासि सर्वकार्यमरिन्दम।
नतु ते कापि वक्तव्यं नीतिवर्त्मनि वर्तने॥२॥

हे शत्रुका दमन करने वाले महाराज! आप ही इन सब कार्यों को जानते हो, आपकों नीतिमार्ग के व्यवहार से कहीं भी कुछ भी नहीं बोलना चाहिये।।2।।

सर्वंविचार्य कर्तव्यं विचारः परमा गतिः।
अविचारेण चेत्कर्म समूलमवकृन्तति॥३॥

सभी कुछ कार्य विचार करके ही करना चाहिये, क्योंकि विचार ही परम गति है, विचार के बिना किया गया कर्म समूल नाश कर देता है।।3।।

परस्य कटके चाराः प्रेषणीयाः प्रयत्नतः।
तेषां बलाबलं ज्ञेयं जयसंसिद्धिमिच्छुना॥४॥

शत्रु के सेना में गुप्तचरों को प्रयत्न पूर्वक भेजना चाहिये तब शत्रु का बल है या नहीं उसकी कमजोरी कहां है यह जानना चाहिये युद्ध में विजय चाहने वाले को प्रथमतः शत्रु के भेद लेना आवश्यक होता है।।।4।।

चारचक्षुर्हढप्रज्ञः सदा शङ्कितमानसः ।
अशङ्किताकारवांश्च गुप्तमन्त्रः स्वमन्त्रिषु ॥ ५ ॥

गुप्तचर दृढ़बुद्धिवाला हो, हमेशा आशंकित मन वाला हो आकृति से मुंह की मुद्रा से आशंकित आकार वाला हो ओर अपने मंत्रियों पर विश्वास रखने वाला एवं अपनी योजनाओं को गुप्त रखने वाला हो।।5।।

षड्डुपायान्प्रयुञ्जानः सर्वत्राभ्यर्हिते पदे ।
विजयं लभते राजा जाल्मो मंक्षु विनश्यति ॥६॥

इन छह उपायों का प्रयोग सभी इच्छित स्थानों में करने से राजा को युद्ध में संघर्ष में विजय मिलती है और जालिम अविवेकी राजा शीघ्र नष्ट हो जाता है।।6।।

अविमृश्यैव यः कश्चिदारम्भः स विनाशकः ।
विमृश्य तु कृतं कर्म विशेषाज्जयदायकम् ॥७॥

बिना विचार किये जो कोई किसी कार्य का आरंभ करता है वह कार्य विनाश करने वाला होता है और विचार पूर्वक जो कार्य किया जाता है वह कार्य विशेष रूप से सभी विषयों में सफलता देता है शत्रु पर विजय कराता है।।7।।

तिर्यगित्यपि नारीति क्षुद्र इत्यपि राजभिः ।
कार्या वैरिणि नावज्ञा शक्तेः सर्वत्र संभवात् ॥८॥

नारी और तिर्यक टेढ़े मेढ़े अव्यवस्थित लोग उपेक्षणीय होते हैं फिर भी राजाओं को शत्रुओं में उपेक्षा नहीं करनी चाहिये, शक्ति सभी स्थानों में हो सकती है।।8।।

स्तम्भोत्पन्नेन केनापि नरतिर्यग्वपुर्धृता।
भूतेन सर्वभूतानां हिरण्यः कण्टको हतः ॥ ९ ॥

खंबे से उत्पन्न किसी टेढ़े मेढ़े आदमी ने नर और पशु का शरीर रख कर समस्त प्राणियों के राजा हिरण्यकशिपु मार दिया था।।।9।।

पुरा हि चण्डिका नाम नारी मायाविजृम्भिणी ।
निशुम्भशुम्भौ महिषं व्यापादितवती रणे ॥१०॥

पुराकाल में कोई माया फैलाने वाली चण्डिका नामवाली नारी, जिसने युद्ध में महिषासुर को दोनों सगे भाईयों शुभ निशुंभ को मार डाली थी।।10।।

तत्प्रसङ्गेन बहवस्तया दैत्या विनाशिताः ।
अतो वदामि नावज्ञा स्त्रीमात्रे क्रियतां क्वचित् ।।११।।

उसी प्रसंग में उस युद्ध में उसने अनेकों दानव वीरों को (चण्ड मुण्ड धूम्रलोचन, रक्तबीज और महिष के साथियों) मार डाला था, इसलिये वह स्त्री है अबला है यह सोचकर कहीं भी उसकी अवहेलना उपेक्षा आदि नहीं करना चाहिये।।11।।

शक्तिरेव हि सर्वत्र कारणं विजयश्रियः ।
शक्तेराधारतां प्राप्तैःस्त्रीपुंल्लिङ्गैर्न नो भयम् ॥१२॥

शक्ति ही सभी स्थलों में सर्वत्र विजयश्री का कारण होती है शक्ति के आधार को पाएं हुए स्त्री से पुंल्लिंगों हम लोगों का भय नहीं।।12।।

शक्तिश्च सर्वतो भाति संसारस्य स्वभावतः ।
तर्हि तस्या दुराशायाः प्रवृत्तिर्ज्ञायतां त्वया ॥१३॥

शक्ति तो संसार के स्वभाव से सभी जगह प्रतीत हो जाती है इसलिये उस दुराशावाली स्त्री की प्रवृत्ति के विषय में आपको प्रयत्न करना चाहिये।।13।।

केयं कस्मात्समुत्पन्ना किमाचारा किमाश्रया ।
किंबला किंसहाया वा देव तत्प्रविचार्यताम् १४

हे देव! यह कौन हैं किससे समुत्पन्न हुई है इसका आचार दिनचर्या कैसी है, इसका कौन सा आश्रय स्थान है इसका बल क्या है, इसके सहायक कौन हैं? इन सभी पर विचार कीजियेगा।।14।।

इत्युक्तः स विषङ्गेण नीतिमर्मविदामुना ।
अवज्ञाभ्रुकुटीं चक्रे स्त्रीति हेलापरायणः ॥१५॥

इस प्रकार नीति के मर्म को जानने वाले विषंग ने सभा में भण्डासुरेन्द्र से निवेदन किया। तब भण्डासुर ने यह स्त्री ही तो है इस प्रकार अवहेलना से युक्त होकर तिरस्कार भरी भौंहें चढ़ाकर बोला।।15।।

अरे नीतिविचारोऽयं समसत्वेषु शत्रुषु ।
युज्यते वनितायां तु को विचारो महौजसाम् ॥१६॥

अरे विषंग! यह जो तुम बोल रहे हो सभा में यह नीति का विचार समान बलशाली शत्रुओं के होने पर युक्त होता है बेचारी वनिता के विषय इतने विचारों की आवश्यकता नहीं है।।16।।

अस्मद्बले महासत्वा अक्षौहिण्यधिपाः शतम् ।
पातुं समस्तजलधीनलं दग्धुं त्रिविष्टपम् ॥१७॥

हमारी इस सेना में महाबलशाली अक्षौहिणी परिमाण की सेना के स्वामी शताधिक हैं जो समस्त समुद्रों को पी जाने के लिये पर्याप्त हैं और तो और पूरे स्वर्ग को भी जला देने में समर्थ हैं।।17।।

अरे पापसमाचार किं वृथा शङ्कसे स्त्रियम् ।
तत्सर्वं हि मया पूर्वं चारद्वारा विलोकितम् ॥१८॥

अरे पाप का कुशलता से आचरण करने वाले तुम क्यों व्यर्थ ही एक स्त्री के विषय में शंका कर रहे हो, मैंने गुप्तचर के द्वारा उसके रहस्यों का पता लगा लिया है।।18।।

अग्नेः समुत्थिता काचिल्ललितानामधारिणी ।
यथार्थनामवत्येषा पुष्पवत्पेशलाकृतिः ।। १९ ॥

वह स्त्री अग्नि से प्रकट हुई है और उसका नाम ललिता है उसका स्वरूप एवं क्षमता ललिता नाम से ज्ञात हो जाती है, क्योंकि ललिता कोमलता अर्थ वाला शब्द है वह कोमल शरीर वाली है स्त्रियों जैसी आकृति मुख का वैसा रूप आकृति होना यह उसमें है।19।।

न सत्वं नच वा वीर्यं न संग्रामेषु वा गतिः ।
अश्रावि चारनिवहात्किंतु मायापरायणा ॥ २० ॥

उसमें न वीरता है, न पराक्रम है, न ही संग्रामों में गति है न ही ज्ञान है, हां एक योग्यता उसमें है कि माया में कुशल है ऐसा मैंने अपने गुप्तचरों से सुना है।।20।।

तत्सत्वेनाविद्यमानं स्त्रीकदम्बकमात्मनः ।
उत्पादितवती किंचित्तेन चैवं विचेष्टते ॥ २१ ॥

उसमें माया परायणता के सिवा और कोई क्षमता तो होगी नहीं क्योंकि युद्ध के लिये दृढ़ता कठोरता, पराक्रम होना चाहिये स्त्री शरीर में सर्वथा असम्भव है, उसने स्त्री समूह अपने मायाबल से उत्पन्न कर ली होगी सेना के नाम पर उसी के आधार उसकी चेष्टाएं हैं।।21।।

अथवा भवदुक्तेन न्यायेनास्तु महद्बलम् ।
त्रैलोक्योल्लङ्घिमहिमा भण्डः केन विजीयते ॥२२॥

अथवा आपने जो कहा उसे मान लेते हैं उसमें बहुत बल होगा। पर जो भण्ड तीनों लोकों को जीतने वाली महिमा वाला है उसे कौन युद्ध में जीत सकेगा।।22।।

इदानीमपि मद्बाहुबलसंमर्दमूर्च्छिताः ।
श्वसितुं चापि पटवो न कदाचन नाकिनः ॥२३॥

आज भी इस समय भी मेरी बाहु के संमर्दन से मूर्च्छित हुए अधमरे हुए वे स्वर्ग निवासी देवतागण ठीक श्वास भी नहीं ले सक रहे हैं।।23।।

केचित्पातालगर्भेषु केचिदम्बुधिवारिषु ।
केचिद्दिगन्तकोणेषु केचित्कुञ्जेषु भूभृताम् ॥२४॥

मेरे भय से कोई पाताल में चले गए हैं कोई समुद्रों में जल में छिपे हुए हैं कोई कोई तो दिग्दिगन्त के कोनों में और कोई वन के कुंजों में छिपे हुए हैं।।24।।

विलीना भृशवित्रस्तास्त्यक्तदारसुतश्रियः।
भ्रष्टाधिकारा बहवश्छन्नवेषाश्चरन्ति ते ।।। २५ ।।

इस प्रकार अत्यन्त भयभीत होकर वे राजा लोग देवता लोग अपनी पत्नी पुत्रों को छोड़कर राज्यश्री से रहित होकर अधिकारशून्य होकर फटे पुराने कपड़ों में ढंके छिपे रूप में इधर उधर घूम रहे हैं स्थायी कहीं पर भी नहीं ठहर रहे हैं।।25।।

एतादृशं न जानाति मम बाहुपराक्रमम् ।
अबला नचिरोत्पन्ना तेनैषा दर्पमश्नुते ॥ २६ ॥

वह स्त्री मेरे ऐसे बाहु पराक्रम को नहीं जानती क्योंकि वह उत्पन्न नहीं हुई थी अभी अभी उत्पन्न हुई है अतः वह ऐसा घमण्ड कर रही है मुझसे टकराने के लिये।।26।।

न जानन्ति स्त्रियो मूढा वृथा कल्पितसाहसाः ।
विनाशमनुधावन्ति कार्याकार्यविमोहिताः ॥२७॥

वह स्त्री मूर्खा है वह यह सब स्थिति को नहीं जानती इसलिये व्यर्थ का कल्पित साहस दिखा रही हैं क्योंकि क्या करना चाहिये और क्या नहीं करना चाहिये इसी में विमोहित किंकर्तव्यविमूढ़ विनाश की ओर ही दौड़ते जाते हैं।।27।।

अथवा तां पुरस्कृत्य यद्यागच्छन्ति नाकिनः ।
यक्षा महोरगाः सिद्धाः साध्या वा युद्धदुर्मदाः २८

अथवा उस स्त्री को आगे करके देवगण आते हैं साथ में यक्ष, महान बड़े बड़े सांप, सिद्ध साध्येदेवा और युद्ध में रत रहने वाले आते हैं।।28।।

ब्रह्मा वा पद्मनाभो वा रुद्रो वाथ सुराधिपः ।
अन्ये वा हरितां नाथास्तेषां पेष्टुमहं पटुः ॥२९॥

अधिक क्या कहा जाये यदि ब्रह्मा भी हों तो पद्मनाभ विष्णु भी हों तो और तो और रुद्र ही क्यों न हों या देवताओं का अधिप इन्द्र हो तो भी अन्य भी और कोई देवताओं के स्वामिगण आते हैं तो मैं उन सभी को अच्छी तरह कुचलने में चतुर हूं।।29।।

अथवा मम सेनासु सेनान्यो रणदुर्मदाः ।
पक्वकर्करिकापेषमिव पेक्ष्यन्ति वैरिणः ॥ ३० ॥

अथवा मेरी सेनाओं मे सेनानी लोग हैं रण में किसी से भी परास्त नहीं होते, वे ऐसे हैं जैसे पकी

हुई बेर को पीसकर पी जायेंगे उन शत्रुओं को, वे कौन-कौन हैं ।।30।।

कुटिलाक्षः कुरण्डश्च करङ्कः काकवाशितः ।
वज्रदन्तो वज्रमुखो वज्रलोमा बलाहकः ॥ ३१ ॥
सूचीमुखः फालमुखो विकर्णो विकटाननः ।
करालाक्षः करटको दमनो दीर्घजीवकः ॥ ३२ ॥
हुम्बेको हुलुमुल्लश्च कल्कसः कल्किवाहनः ।
पुल्कसः पुण्ड्रकेतुश्च चण्डबाहुश्च कुक्कुरः ॥ ३३ ॥
जम्बूकाक्षो जम्भनश्च तीक्ष्णशृङ्गस्त्रिकण्टकः ।
चन्द्रगुप्तश्चतुर्बाहुश्चकोराक्षश्चतुश्शिराः ॥ ३४ ॥
वज्रघोषश्चोर्ध्वकेशो महामायो महाहनुः।
मखशत्रुर्मखास्कन्दी सिहघोषः सिरालकः ॥३५॥
अन्धकः सिन्धुनेत्रश्च कूपकः कूपलोचनः।
गुहाक्षो गण्डगल्लश्च चण्डवर्मा यमान्तकः ॥३६॥
लट्टणः पण्डसेनश्च पुरुजित्पूर्वमारकः ।
स्वर्गशत्रुः स्वर्गबलो दुर्गाख्यः स्वर्गकण्टकः ॥३७॥
अतिमायो बृहन्माय उपमाय उलूकजित्।
पुरुषेणो विषेणश्च कुन्तिषेणः करूषकः ॥३८॥
मलदश्च करूशश्च मङ्गलो द्रुघणस्तथा ।
कोल्लाटः कुटिलाक्षश्च दाशेरो बभ्रुवाहनः ॥३९॥
दुष्टहासो धृष्टकेतुः परिक्षित्पापकञ्चुकः ।
महामोहो महादंष्ट्रो दुर्मतिः स्वर्गमेजयः ॥ ४० ॥
शठकेतुः शठवसुः शठदन्तः शठप्रियः ।
दुःशठो दुर्विनीतश्च भिन्नकर्णश्चमूरुहः ॥ ४१ ॥
अट्टहासी महाहासी सिंहहासी मदोत्कटः ।
कुम्भोत्कचः कुम्भनासः कुम्भग्रीवः कुटोदरः ॥४२॥
हस्तिमेढ्रो महाण्डश्च कुम्भाण्डः पूतिनासिकः ।
पूतिदन्तः पूतिचक्षुः पूत्यास्यः पूतिमेहनः ॥४३॥
इत्येवमादयः शूरा हिरण्यकशिपोः समाः ।

वे कौन हैं-: 1 कुटिलाक्ष, 2 कुरण्ड, 3 करंक, 4 काकवाशित, 5 वज्र दन्त, 6 वज्रमुख, 7 वज्रलोमा, 8 बलाहक, 9 सूचीमुख, 10 फालमुख, 11 विकर्ण, 12 विकटानन, 13 करालाक्ष, 14 करटक, 15 दमन, 16 दीर्घजीवक, 17 हुम्बेक, 18 हुलुमुल्ल, 19 कल्कस, 20 कल्किवाहन, 21 पुल्कस, 22 पुण्ड्रकेतु, 23 चण्डबाहु, 24 कुक्कुर, 25 जम्मूकाक्ष, 24 जम्भन, 27 तीक्ष्णशृंग, 28 त्रिकष्टक, 29 चन्द्रगुप्त, 30 चतुर्बाहु, 31 चकोराक्ष, 32 चतुशिरा, 33 वज्रघोष, 34 ऊद्‌र्ध्वकेश, 35 महामाय, 36 महाहनु, 37 मखशत्रु, 38 मावस्कन्दी, 39 सिंहघोष, 40 सिरालक, 41 अन्धक, 42 सिन्धुनेत्र, 43 कूपक, 44 कूपलोचन, 45 गुहाक्ष, 46 गण्डगल्ल, 47 चण्डवर्मा, 48 यमान्तक, 49 लट्‌टण, 50 पण्डसेन, 51 मुरुजित, 52 पूर्वमाटक, 53 स्वर्गशत्रु, 54 स्वर्गबल, 55 दुर्गाख्य, 56 स्वर्गकण्टक,57 अतिमाप, 58 बृहन्माय, 59 उपमाय, 60 उलूकजित्, 61 पुरुषेण, 62 विषेण, 63 कुन्तिषेण, 64 कुरुषक, 65 मलद, 66 कश्रुशस्थ, 67 मंगल, 68 द्रुघण, 69 कोल्लाट, 70 कुटिलाक्ष, 71 दाशेर, 72 बभ्रुवाहन, 73 दुष्टहास, 74 घुष्टकेतु, 75 परिक्षित, 76 पापकंचुक, 77 महामोह, 78 महाप्रंष्ट्र, 79 दुर्मति, 80 स्वर्गमेजय, 81 दुःसह, 86 दुर्विनीत, 87 भिन्नकर्ण, 88 चमूरूह, 89 अट्‌टहासी, 90 महाहासी, 91 सिंहहासी, 92 मदोत्कट, 93 कुंभोत्कचा, 94 कुम्भनासा, 95 कुम्भग्रीव, 96 कुटोदर, 97 हस्तिद्रो, 98 महाण्ड, 99 कुम्भाण्ड, 100 पूतिमेहन, 101 पूतिदन्त, 102 पूतिचक्षु, 103 पूत्यास्य, 104 पूतिमेहन। इस प्रकार से जितने हैं शूरवीर हैं हिरण्यकशिपु के समान हैं हिरण्याक्ष जैसे महाबली हैं मेरे पुत्र महाबलवान हैं ॥31,32,33,34,35,36,37,38,39,40,41,42,43॥

हिरण्याक्षसमाश्चैव मम पुत्रा महाबलाः ॥४४ ॥
एकैकस्य सुतास्तेषु जाताः शूराः शतं शतम् ।
सेनान्यश्च मदोद्धृत्ता मम पुत्रैरनुद्रुताः ॥४५ ॥

उनमें से एक एक पुत्र सैंकड़ों शूरों में शूर हैं मेरे सेनानी भी महान् ऊंचे हैं वे भी मेरे पुत्रों को अनुसरण करने वाले हैं।।45।।

नाशयिष्यन्ति समरे दुर्वृत्तानमराधमान् ।
एते चेत्कुपिता युद्धे सहस्राक्षौहिणीश्वराः ॥४६॥

वे सब युद्ध में बड़े बड़े वीर देवताओं का नाश कर देंगे, जो कोई युद्ध में क्रोधित सहस्र श्रेष्ठ अक्षौहिणी सेनानी हैं।।46।।

भस्मशेषि भवेद्युद्धं हा हन्त किमुताबला ।
मायाविलासः सर्वोऽपि तस्याः समरसीमनि ॥४७॥

ये सभी भस्म हो जायेंगे फिर निर्बल देवता की तो बात ही क्या है, उस ललिता के समर सीमा में ये सभी देवगण माया विलासी हैं।।47।।

महामायाविनामस्मद्बलानामामिषं भवेत् ।
तद्वृथा शङ्कया खिन्नं मा ते भवतु मानसम् ॥४८॥

महामाया से विनोद करने वाले यदि ये क्रोध करें तो इनका बल भस्म हो जायेगा, इसलिये व्यर्थ की शंका से तुम अपने मन को चिंतित मत करो।।48।।

इत्युक्त्वा भण्डदैत्येन्द्रः समुत्थाय नृपासनात् ।
उवाच निजसेनान्यं कुटिलाक्षं महाबलम् ॥४९॥

इस प्रकार कहकर नृपासन से उतरकर दैत्येन्द्र भण्डासुर ने अपने सेनानी कुटिलाक्ष महाबली से बोला।।49।।

उत्तिष्ठ रे बलं सर्वं सन्नाहय समन्ततः ।
शून्यकस्य समन्ताच्च द्वारेषु बलमर्पय ॥५०॥

अरे कुटिलाक्ष! उठो और समस्त सेना को बुलाकर शून्यक नगर के साथ द्वारों पर समस्त बल को नियुक्त कर दो।।50।।

दुर्गाणि संगृहाण त्वं कुरु क्षेपणिकाशतम् ।
दुष्टाभिचाराः कर्तव्या मन्त्रिभिश्च पुरोहितैः ।
सज्जीकुरु च शस्त्राणि युद्धमेतदुपस्थितम् ॥५१॥

तुम दुर्गों को ग्रहण करो सौ जालियां बनाओ सेना पतियों में जो कोई हों उन सभी को इस समय आगे भेजो युद्ध का क्षण उपस्थित हो गया है, मंत्रियों के साथ पुरोहित दुष्ट अभिचार कर्म मारण मोहन, उच्चाटन आदि प्रयोग शुरू कर दें।।51।।

सेनापतिषु यं कंचिद्ये प्रस्थापयाधुना ।
अनेकबलसंघातसहितं घोरदर्शनम् ॥५२॥

सभी को अनेक सेना के बल समूहों के सहित सेनानायकों को युद्ध क्षेत्र में भेजो।।52।।

तेन सङ्ग्राममये संनिपात्य विनिर्जिता ।
केशेष्वाकृष्यतां मूढा देवसत्वेन दर्पिता ॥५३॥

देवताओं के पराक्रम से दर्प युक्त उस स्त्री को केश पकड़कर खींच कर यहां ले आओ।।53।।

इत्याभाष्य चमूनाथं सहस्रपृतनाधिपम् ।
कुटिलाक्षं महासत्वं स्वयं चान्तःपुर गतः ॥५४॥

इस प्रकार सहस्त्र सेनाओं के अधिपति बड़े पराक्रमी कुटिलाक्ष को आदेश देकर स्वयं अन्तःपुर में वह दैत्येन्द्र भण्डासुर चला गया।।54।।

आपतन्त्या महादेव्या यात्रानिःसाणनिस्वनः ।
अश्रूयत च दैत्येन्द्रैरतिकर्णज्वरावहः ।।५५ ।।

इसके अनन्तर आती हुई उन ललिता महादेवी की युद्ध यात्रा भयंकर ध्वनि को दैत्येन्द्रों ने सुना, जो ध्वनि अनेक कानों को ज्वर पैदा करने वाली थी।।55।।

इति श्रीब्रह्माण्डपुराणे उत्तरखण्डे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने भण्डासुराहङ्कारवर्णन नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५ ॥

॥श्रीमन्महागणाधिपतये नमः।।

श्रीमाताललिताम्बायै नमः श्रीपादुकां पूजयामि नमः॥
ॐ वन्दे गुरुपदद्वन्द्वं अवाङ्मनसगोचरम्॥
रक्तशुक्ल प्रभामिश्रमतर्क्यं त्रैपुरं महः॥
ॐ आराध्यदेवं भक्तानां कलिदोषविनाशकम्॥
वन्दे श्रीगिरिजानन्दं शारदाश्रीमठाधिपम्।।
ॐ अखण्डं यस्यज्ञानञ्च भक्तिर्यस्यानपायिनी।।
शारदाज्योतिरीशस्य दर्शनं (पूजनं, वन्दनं) शुभमस्तुनः।।

षोडशोऽध्यायः ॥१६॥ 66 श्लोकात्मकः

[भण्डासुरसेनासन्नाहः ॥]

श्री हयग्रीव बोले-ः

अथ श्रीललितासेनानिःसाणप्रतिनिस्वनः ।
उच्चचालासुरेन्द्राणामुद्धतो दुन्दुभिस्वनः ॥१ ॥

इसके अनन्तर भगवती ललिता देवी की सेना की अति तीव्र ध्वनि की प्रतिध्वनि युद्ध करने के लिये आगे बढ़े असुरेन्द्रों की दुंदंभि की ध्वनि तीव्रता से होने लगी।।1।।

तेन मर्दितदिक्केन क्षुभ्यद्गर्भपयोधिना ।
बधिरीकृतलोकेन चकम्पे जगतां त्रयी ॥२ ॥

असुर राज भण्डासुर की उस सेना की दुन्दुभि की ध्वनि ने भी दिशाओं को मर्दित कर दिया और समुद्र में भी खलबली मचा दी एवं उस तीव्र ध्वनि ने कानों को बहरा कर दिया उस ध्वनि से तीनों लोक कांप उठे।।2।।

मर्दयन्ककुभां वृन्दं भिन्दन्भूधरकन्दरान् ।
ववृधे गगनाभोगे दैत्यनिःसाणनिस्वनः ॥३ ॥

उस दैत्य सेना की बिगुल ध्वनि ने दिशाओं को मर्दित कर दिया तथा पर्वतों की गुफाओं को भेद दिया वह ध्वनि आकाश के विस्तार में।।3।।

महानरहरिक्रोधहुंकारोद्धतमध्वनिः ।
विरसं विररासोच्चैर्विबुधद्वेषिझल्लरी ॥४ ॥

वह ध्वनि क्रोधित हुए महान नरसिंह की ध्वनि के समान थी तथा वह ध्वनि अन्यन्त नीरस और देवताओं से द्वेष करने वाली झांझ, मंजीरों वाली ध्वनि थी।।4।।

ततः किलकिलारावमुखरा दैत्यकोटयः।
समनह्यन्त सुंक्रुद्धाः प्रति तां परमेश्वरीम्॥५॥

इसके अनन्तर क्रोधित करोड़ों मुखर दैत्यों के मुख से किलकिल शब्द की ध्वनि मानों उन भगवती को चुनौती दे रही हो।।5।।

कश्चिद्रत्नविचित्रेण वर्मणा छन्नविग्रहः।
चकाशे जङ्गम इव प्रोत्तुङ्गो रोहणाचलः॥६॥

उस दैत्य सेना में कोई रत्न विचित्र से अपने ढंके हुए शरीर वाला था, जिससे ऐसा प्रतीत हो रहा था कि रोहणाचलपर्वत ही चलने वाले प्राणी जैसे आकार के खड़ा हो गया हो।।।।6।।

कालरात्रिमिवोदयां शस्त्राकारेण गोपिताम्।
अधुनीत भटः कश्चिद्दतिधौतां कृपाणिकाम् ॥७॥

कोई कोई योद्धा कालरात्रि के समान खूबचमकती हुई उस कृपाण को धारण किये हुए था जिस कृपाण को शस्त्र बनाने वाले मिस्त्री ने बहुत अच्छी तरह से बनाया हुआ हो।।7।।

उल्लासयन्कराग्रेण कुन्तपल्लवमेकतः।
आरूढतुरगो वीथ्यां चारिभेदं चकार ह॥८॥

कुछ योद्धागण अपने हाथ के अग्रभाग से सैनिकों को उल्लसित करते हुए एक हाथ में भाला लेकर घोड़े पर सवार होकर पंक्तियों बना कर चलने के लिये व्यवस्था कर रहे थे।।8।।

केचिदारुरुहुर्योधा मातङ्गांस्तुङ्गवर्ष्मणः।
उत्पातवातसंपातप्रेरितानिव पर्वतान्॥९॥

कुछ योद्धागण उत्पात मचाने वाली वायु जैसे पर्वतों को हिला देती है ऐसे ही ऊंचे ऊंचे हाथियों पर और घोड़ों पर सवार हो गए।।9।।

पट्टसैर्मुद्गरैश्चैव भिदुरैर्भिन्दिपालकैः।
द्रुघणैश्च भुसुण्डीभिः शणयैर्मुसलैरपि॥१०॥

वे सभी असुर योद्धा मुद्‌गर, बर्छी, भेदने वाला शस्त्र, वज्र, द्रुहण, बन्दूक, कुठार, मूसल।।10।।

गदाभिश्च शतघ्नीभिस्त्रिशिखैर्विशिखैस्तथा।
अर्धचक्रैर्महाचक्रैर्वक्रास्त्रैरुरगाननैः॥११॥

गदा, शतघ्नी तीन शिखाओं वाला फरसा, अनेकों शिखा वाला अस्त्र, अर्धचक्र, महाचक्र वक्रांग, सर्पमुख।।11।।

फणिशीर्षप्रभेदैश्च धनुर्भिः शार्ङ्गधन्विभिः ।

दण्डैः क्षेपणिकाशस्त्रैर्वज्रबाणैर्घरट्टकैः ॥१२ ॥

फणिशीर्ष, अनेकों प्रकार के धनुषों शाङ्र्ग धनुषों दण्डों, फेंकने वाले शस्त्रों, वज्रबाणों, पत्थरों।।12।।

यवमध्यैर्मुष्टिमध्यैर्वलयैः खण्डलैरपि ।

कट्टरैः कोणमध्यैश्च फणिदन्तैः परश्वधैः ।

पाशायुधैः पाशतुण्डैः काकतुण्डैः सहस्रशः ॥१३॥

यवमध्य अस्त्रों, मुटठी से फेंकने वाले अस्त्रों वलय, खण्डल भी और करार, कोणमध्य फणिदन्त, पाशायुध, पाशतुण्ड, काकतुण्ड हजारों ।।13।।

एवमादिभिरत्युग्रैरायुधैर्जीवहारिभिः ।

परिकर्मितहस्ताग्रा वर्मिता दैत्यकोटयः ॥१४ ॥

इस प्रकार के अत्यन्त उग्र आयुध जो प्राण हारक थे ऐसे असंख्य अस्त्रों से सुसज्जित वह असुर सेना थी।।14।।

अश्वारोहा गजारोहा गर्दभारोहिणः परे ।

उष्ट्रारोहा वृकारोहाः शुनकारोहिणस्तथा ॥१५ ॥

उन असुरों में घुड़सवार थे, कोई हाथियों पर सवार थे कोई कोई गधों पर सवार थे कोई ऊंटों पर कोई भेड़ियों पर कोई शुनक श्वानों पर सवार थे।।15।।

काकाधिरोहिणो गृध्रारोहाः कंकाधिरोहिणः ।

व्याघ्राधिरोहाश्च परे तथा सिहाधिरोहिणः ॥१६॥

कोई काकों पर, कोई गीधों पर, कोई बगुलों पर, कोई व्याघ्रों पर कोई सिंहों पर सवार थे।।16।।

शरभारोहिणश्चान्ये भेरुण्डारोहिणः परे ।

सूकरारोहिणो व्यालारूढाः प्रेताधिरोहिणः ॥१७॥

कोई शरभ पर सवार, कोई भेरूण्ड पर सवार, कोई सूकर पर सवार, कोई सर्प पर सवार और कोई कोई प्रेत पर सवार थे।।17।।

एवं नानाविधैर्वाहवाहिभिर्ललितांप्रति ।

प्रचेले प्रबलक्रोधसंमूच्छितनिजाशयैः ॥१८ ॥

इस प्रकार अनेकों वाहनों पर सवार सैनिक श्रीललितादेवी भगवती की ओर चल पड़े, जो सैनिक जीत की आशा से क्रोध से सम्मूर्छिताशय हो गये।।18।।

कुटिलाक्षश्चमूभर्ता दुर्मदं नाम दानवम्।
दशाक्षौहिणिकायुक्तं प्राहिणोल्ललितांप्रति ॥१९ ॥

सेना नायक कुटिललाक्ष ने दुर्मदनामक दानव को दस अक्षौहिणी सेना के साथ भगवती ललिता से युद्ध के लिये भेजा।।19।।

दिधक्षुभिरिवाशेषविश्वं सह बलोत्कटैः।
भटैर्युक्तः स सेनानीर्ललिताभिमुखो ययौ ॥२०॥

उत्कट सेना के साथ समस्त विश्व को भस्म कर देने की इच्छा वाले भटों के साथ वह दुर्मद सेनापति ललितादेवी की ओर गया।।20।।

भिन्दन्पटह संरावैश्चतुर्दशजगद्दरीम्।
अट्टहासं वितन्वानो दुर्मुखस्तन्मुखो ययौ ॥२१॥

ऐसा लगा कि मानों वह दुर्मुख सेनापति दस अक्षोहिणी सेना के साथ पटहादिवाद्यों की गुंजार के साथ चौदहों लोकों को भेद देगा ऐसी मुद्रा में भगवती ललितादेवी की ओर गया।।21।।

अथ भण्डासुराज्ञप्तः कुटिलाक्षो महाबलः।
शून्यकस्य पुरद्वारे प्राचीने समकल्पयत्॥२२॥

इसके अनन्तर भण्डासुर से आज्ञा प्राप्त महाबली कुटिलाक्ष ने शून्यक नगर के प्राचीन पुरद्वार में।।22।।

रक्षाणार्थ दशाक्षौहिण्युपेतं तालजङ्घकम्।
अवाचीने पुरद्वारे दशाक्षौहिणिसंयुतम्।
नाम्ना तालभुजं दैत्यं रक्षणार्थमकल्पयत्॥२३॥

रक्षणार्थ दस अक्षौहिणी सेना के साथ तालजंघ नामक असुर को तथा नवीनपुरद्वार में रक्षा के लिये दस अक्षौहिणी सेना के साथ तालभुज नामक दानव को नियुक्त कर दिया, दस अक्षौहिणी सेना की रक्षा के लिए तालभुज नामक दैत्य को उत्पन्न किया।।23।।

प्रतीचीने पुरद्वारे दशाक्षोहिणिसंयुतम्।
तालग्रीवं नाम दैत्यं रक्षणार्थमकल्पयत्॥२४॥

पश्चिम दिशा के पुरद्वार में दस अक्षौहिणी सेना के साथ तालग्रीव नामक दैत्य को रक्षार्थ नियुक्त किया।।24।।

उत्तरे तु पुरद्वारे तालकेतुं महाबलम्।
आदिदेश सुरक्षार्थं दशाक्षोहिणिसंयुतम्॥२५॥

उत्तर दिशा के नगर द्वार में दस अक्षौहिणी सेना के साथ तालकेतु दानव को सुरक्षा के लिये आदेश दिया।।25।।

पुरस्य सालवलये कटिशीर्षकवेश्मसु।
मण्डलाकारतो वस्तुं दशाक्षोहिणिमादिशत्२६

नगर के चहार दीवार पर चारों ओर ऊंचे ऊंचे महलों में कक्षों में दस अक्षौहिणी सेना को मण्डलाकार रूप में रहने के लिये आदेश दिया।।27।।

एवं पञ्चाशता कृत्वाऽक्षोहिणीभिस्तु रक्षणम्।
शून्यकस्य पुरस्यैव तद्वृत्तं स्वामिनेऽवदत् ॥ २७ ॥

कुटिलाक्ष भण्डासुर से बोलाः

देव त्वदाज्ञया दत्तं सैन्यैर्नगररक्षणम्
दुर्मदः प्रेषितः पूर्वं तां दुष्टां ललितांप्रति ॥ २८ ॥

हे देव! महाराज!! मैंने आपकी आज्ञा पाकर समस्त सेना को नगर की रक्षा में नियुक्त कर दिया है और पहिले ही दुर्मद को उस दुष्टा ललिता की ओर भेज दिया है।।28।।

अस्मत्किंकरमात्रेण सुनिरासा हि साऽबला ।
तथाऽपि राज्ञामाचारः कर्तव्यं पुररक्षणम्॥२९।।

हम किंकर मात्रों से ही वह अबला बेचारी अच्छी तरह से निराश हो गई परन्तु फिर भी नगर की रक्षा करना राजाओं का कर्तव्य है।।29।।

इत्युक्त्वा भण्डदैत्येन्द्रं कुटिलाक्षोऽतिगर्वितः ।
स्वसैन्यं सज्जयामास सेनापतिभिरन्वितः ॥३०॥

इस प्रकार भण्डासुर राज से कहकर अत्यन्त गर्वित वह कुटिलाक्ष उसने सेनपति के साथ अपनी सेना को सजाया।।30।।

[संपत्करीकृतदुर्मदवध. ॥]

यस्तु संप्रेषितः पूर्व कुटिलाक्षेण दानवः ।
स ध्वनङ्गजिनीयुक्तो ललितासैन्यमक्षिणोत् ३१

पहिले उस कुटिलाक्ष दानव ने जिस दानव को दूत रूप में भेजा था वह ध्वनियां करते हुए सेना के साथ ललितादेवी की सेना में पहुंचा।।31।।

कृत्वा किलकिलारावं भटास्तस्य सहस्रशः ।
दोधूयमानैरसिभिर्निपेतुः शक्तिसैनिके ॥ ३२ ॥

उसके दूत के पहुंचने पर किलकिल की ध्वनि करते हुए हजारों योद्धा शक्तिसेना में पहुंचे उन्हें शक्ति सैनिकों ने चमकती हुई तलवारों से उसे धरती पर गिरा दिया समाप्त कर दिया।।32।।

ताश्च शक्तय उद्दण्डस्फुरितागृहसस्वनाः ।
देदीप्यमानशस्त्राभाः समयुध्यन्त दानवैः ॥३३॥

ललितादेवी की उन उद्दण्ड शक्तियों ने अट्टाहास करते हुए दानवाकें से युद्ध किया।।33।।

शक्तीनां दानवानां च संक्षोभितजगत्रयम् ।
समवर्तत संग्रामो धूलिग्रामं तदाम्बरम् ॥ ३४ ॥

शक्तियों का तथा दानवों का वह संग्राम इतना भीषण था कि तीनों लोकों को संक्षाभित कर दिया था उस संग्राम में परस्पर वेग से वाहनों के दौड़ने से इतनी धूल उड़ी जिससे आकाश मण्डल भर गया।।34।।

रथवंशेषु मूर्च्छन्त्यः करिकर्णैः प्रचालिताः ।
अश्वनिश्वासविक्षिप्ता धूलयः प्रजुघूर्णिरे ।॥ ३५ ॥

रथों के समूहों से उठाई गई हाथियों के कानों से प्रचलित और घोड़ों की श्वास से उड़ाई गई धूल आकाश में छा गई।।35।।

तमापतन्तमालोक्य दृप्ताक्षोहिणिसंवृतम्।
संपत्करी त्वतिक्रोधादभिदुद्राव संगरे ॥ ३६ ॥

उस मद से युक्त दस अक्षौहिणी से घिरे हुए उस असुर को आते हुए देखकर भगवती सम्पत्करी अत्यन्त क्रोध से युक्त होकर युद्धक्षेत्र में उपस्थित हो गईं।।36।।

संपत्करीसमानाभिः शक्तिभिः समधिष्ठिताः ।
अश्वाश्च दन्तिनो मत्ता व्यमृदन्दानवीं चमूम् ।।३७।।

उन भगवती सम्पत्करी देवी की उनके समान शक्तियों से समधिष्ठित अर्थात् जिन पर वे शक्तियां आरूढ़ थीं वे घोड़े और हाथी जो मद से उन्मत्त हो रहे थे उन्होंने दानवी सेना का मर्दन किया।।।37।।

अन्योन्यं तुमुले युद्धे जाते किलकिलारवे ।
धूलीषु धूयमानासु ताड्यमानासु भेरिषु ॥ ३८ ॥

उस युद्ध स्थल में देवी सेना और दानव सेना एक दूसरे के साथ तुमुल किलकिल कोलाहल के साथ युद्ध करने लगीं उस युद्ध के होने से धूलि बवण्डर के आकाश में फैलने पर और रणभेरियों के बजने पर।।38।।

इतस्ततः प्रववृधे रक्तसिन्धुर्महीयसी ।
शक्तिभिः पात्यमानानां दानवानां सहस्त्रशः ॥३९॥

शक्तियों द्वारा इधर उधर मारकर गिराए गए हजारों दानवों के शरीरों से बड़ी रक्त की नदी बढ़ चली।।39।।

ध्वजानि लुठितान्यासन्विलूनानि शिलीमुखैः ।
विस्त्रस्ततत्तच्चिह्नानि समं छत्रकदम्बकैः ॥४० ॥

उस युद्ध में बाणों की वर्षा से ध्वजाएं धरती पर गिरा दी गईं, और फाड़ दी गईं तथा छत्र समूहों के साथ उनके चिन्ह मिटा दिये।।40।।

रक्तारुणायां युद्धोर्व्यां पतितैश्छत्रमण्डलैः ।
आलम्भि तुलनां सन्ध्या रक्ताभ्रहिमरोचिषा ४१

रक्त से लालवर्ण की हुई युद्ध भूमि में छत्र समूहों के गिरने से सन्ध्या के समय हिमकी (बर्फ की) कान्ति लालवर्ण की दिखाई देती है, वह युद्ध भूमि वैसी ही दिखने लगी।।41।।

ज्वालाकलापाः कल्पाग्नेरिव वारि पयोनिधेः ।
दैत्यसैन्यानि निवहाः शक्तीनां पर्यवारयन् ॥४२॥

प्रलयकाल में कल्पाग्नि के समान सुन्दर समुद्र में देवी का ज्वाला कलाप ज्वाला समूह दैत्य सेना के समूहों को आगे बढ़ने से रोक रहा था।।42।।

शक्तिच्छटोज्ज्वलच्छस्त्रधारानिष्कृत्तकन्धराः ।
दानवानां रणतले निपेतुर्मुण्डमण्डलाः ॥४३ ॥

शक्ति ने इच्छा से इच्छा से ही उज्जवल शस्त्र की धार से दानवों के मुण्डों के समूह रणभूमि में गिरे थे।।43।।

दष्टोष्ठैर्भ्रुकुटीक्रूरैः क्रोधसंरक्तलोचनैः ।
मुण्डैरखण्डमभवत्संग्रामधरणीतलम् ॥४४॥

इस प्रकार चबाये गए ओंठ और क्रूर भौहों से युक्त क्रोध से लाल नेत्रों वाले मुण्डों से वह धरणीतल अखण्ड हो गया था, अर्थात पूरा भर गया था।।44।।

एवं प्रवृत्ते समरे जगच्चक्रभयंकरे ।
शक्तयो भृशसंक्रुद्धा दैत्यसेनाममर्दयन् ॥४५॥

इस प्रकार के समय के उपस्थित हो जाने पर उस भयंकर संसारचक्र में अत्यन्त क्रोधित शक्ति चक्र ने दैत्य सेना का मर्दन करना आरंभ कर दिया।।45।।

इतस्ततः शक्तिशस्त्रैस्ताडिता मूर्च्छिता इति ।
विनेदुर्दानवास्तत्र सम्पद्देवीबलाहताः ॥४६ ॥

इधर उधर शक्तियों के शस्त्रों से ताडित किये वे असुर सैनिक मूर्च्छित होने लगे, भगवती

सम्पत्करी देवी के बल से सेना से आहत दानव उस युद्ध भूमि में विनष्ट हो गए।।46।।

अथ भग्नं समाश्वास्य निजं बलमरिन्दमः।
उष्ट्रमारुह्य सहसा दुर्मदोऽभ्यद्रवच्चमूम्।।४७।।

शत्रुओं का दमन करने वाले दुर्मद को जब यह अच्छी तरह ज्ञात हो गया कि उसकी समस्त सेना तिपर बितर कर दी गई है तब वह ऊंट पर सवार होकर अचानक सेना में पहुंच गया।।47।।

दीर्घग्रीवः समुन्नम्रः पृष्ठे निष्ठुरतोदनः।
अधिष्ठितो दुर्मदेन वाहनोष्ट्रश्चचालह।।४८।।

दीर्घग्रीव तैयार होक पीठ पर कठोर अंकुश बांधे हुए ऊंट पर सवार होकर चल दिया जिसे दुर्मद ने अधिष्ठित किया था।।48।।

तमुष्ट्रवाहनं दुष्टमन्वयुः क्रुद्धचेतसः।
दानवा निश्वसत्सर्पभीमशस्त्रा युयुत्सया ।।४९।।

उस ऊंट के वाहन को कुद्धचित्त ने सब दानवों को नष्ट कर अनुसरण किया चमकते हुए फाल वाले भालों से युद्ध की इच्छा से।।49।।

अवाकिरदसौ भल्लैरुल्लसत्फलशालिभिः।
संपत्करीचमूचक्रं वनं वार्भिरिवाम्बुदः।।५०।।

चमकते हुए भालों से सम्पत्करी देवी की सेना को उसी तरह आच्छादित कर दिया जैसे मेघ जल की धाराओं से वन को आच्छादित कर देते हैं।।50।।

तस्य दुःसहसत्वस्य ताडिता बहुभिः शरैः।
स्तम्भितेवाभवत्सेना सम्पत्कर्याः क्षणं रणे।।५१।।

उस असहनीय बल वाले दुर्मद के बहुत से बाणों से ताडित सेना क्षण भर में युद्ध स्थल में स्तम्भित सी हो गई।।51।।

अथ क्रोधारुणं चक्षुर्दधाना संपदम्बिका।
रणकोलाहलं नागमारूढायुध्यतामुना।।५२।।

तब क्रोध से लाल लाल आंखें हुईं ऐसी सम्पदम्बिका ने अपने रण कोलाहल नामक हाथी में आरूढ़ होकर युद्ध करना शुरू कर दिया।।52।।

आलोलकङ्कणक्काणरमणीयतरः करः।
तस्याश्चकर्ष कोदण्डमौवींर्माकर्णमाहवे।।५३।।

युद्ध में भगवती के हाथ का कंगन बजता हुआ हाथ की शोभा बढ़ा रहा था उस हाथ से कान

तक धनुष की प्रत्यंचा को खींचकर युद्ध में।।53।।

लघुहस्ततया तस्या नाकृष्टं नच मोक्षणम्।
ददृशे धनुषश्चक्रात्केवलं शरधोरणिः ॥५४ ॥

इस तरह बाण को चलाया कि हाथ की कुशलता के कारण न तो धनुष की डोरी को खींचते देखा केवल बाण को धनुष पर रखते हुए देख पाते थे पर बाण को छोड़ते हुए नहीं देख पाते थे।।54।।

अर्कांशुभरसंपर्कस्फुरत्प्रतिफलत्फलाः ।
शराः संपत्करीचापच्युताः समदहन्नरीम्॥५५॥

शीघ्र सूर्य और आकाश के सम्पर्क से साफ साफ फलीभूत होने वाले बाण सम्पत्करी के धनुष से छोड़े गए थे, उन्होंने शत्रुओं को भस्म कर दिया।।55।।

दुर्मदस्य च तस्याश्च सुमहद्युद्धमुद्धतम्।
अभूदन्योन्यसंघट्ट सस्फुलिङ्गशिलीमुखम्॥५६ ॥

इसके बाद दैत्य सेनापमति दुर्मद का और भगवती संपत्करी का भयंकर युद्ध आरंभ हो गया उस समय एक दूसरे के बाणों के टकराने से आग की चिनगारियां फैल रही थीं।।56।।

प्रथमं प्रसृतैबार्णैः सम्पद्देवीसुरद्विषोः।
अन्धकारः समभवत्तिरस्कुर्वन्नहस्करम्॥५७॥

पहिले ही पहिले जब संपत्करी देवी के और देवी के शत्रु का युद्ध आरंभ हुआ तो उन दोनों के छोड़े गये बाणों से हुआ अंधकार सूर्य का तिरस्कार कर रहा था।।57।।

तदन्तरे च बाणानामतिसंघट्टयोनयः ।
विस्फुलिङ्गा विद्धिरे खद्योत भ्रमचातुरीम्॥५८॥

उसी के मध्य बाणों के अत्यन्त टकराने से केन्द्र बिन्दु से बिजली के जैसी चिनगारियां निकलने लगीं जैसे जुगुनियां हों।।58।।

तयाधिरूढः सुश्रोण्या रणकोलाहलः करी ।
पराक्रमं बहुविधं दर्शयामास संगरे ॥५९ ॥

उस पर आरूढ़ देवी तब उस रण कोलाहल हाथी ने अनेकों प्रकार के पराक्रम उस युद्ध में दिखाये।।59।।

करेण कतिचिदैत्यान्पादाघातेन कांश्चन ।
उदग्रदन्तमुसलाघातैरन्यांश्च दानवान्॥६०॥

उस हाथी ने अपनी सूंडों से अनेको दैत्यों को पादाघातों से अनेकों दैत्यों को कुचल दिया और अपने उग्र दांतों (खीस) से जो मूसल जैसे थे उनसे अन्य दानवों को।।60।।

वालदण्डाहतैरन्यान्फीटकारैरपरान्दिपून्।
गात्रव्यामर्दनैरन्यान्नखाद्यातैस्तथापरान्॥६१॥

किसी दानव को उस बढ़े बालों को पकड़कर कुचल दिया किन्हीं को अपनी चिंघाण से बेहोश कर दिया किसी को अपने विशाल शरीर से रगड़ पिचल दिया किहन्ही को अपने मजबूत नखों से फाड़ दिया।।61।।

पृथुमानाभिघातेन कांश्चिदैत्यान्विमर्दयन्।
चतुरं चरितं चक्रे सम्पदेवीमतङ्गजः ।।६२ ।।

अपने विशाल शरीर को अनेकों आघातों से अनेकों दैत्यों का मर्दन उस रण कोलाहल नाम के सम्पत्करी देवी के हाथी ने कर दिया इस प्रकार उसने उस युद्ध क्षेत्र में अनेकों पराक्रम किय।।62।।

स दुर्मदः क्रुधा रक्तदृष्टिरेकेन पत्रिणा ।
सम्पत्करीमुकुटग मणिमेघमपातयन् ॥ ६३ ॥

उस दुर्मद दानव ने क्रोध से आंखें लाल करके एक बाण फेंका जिससे सम्पकरी के मुकुट में लगी हुई मणि गिर गयी।।63।।

अथ क्रोधारुणदृशा तया मुक्तैः शिलीमुखैः ।
विक्षतो वक्षसि क्षिप्रं जीवितं दुर्मदो जहौ ॥६४॥

दुर्मुद के बाण से संपत्करी के पहिने हुए मुकुट से एक मणि के गिर जाने से क्रोध में भरी हुई उन देवी ने बाणों की बौछार कर दी जिससे उस दानव का वक्षःस्थल छलनी हो गया जिससे शीघ्र ही उसके प्राण निकल गए और वह निर्जीव हो गया।।64।।

ततः किलकिलारावं कृत्वा शक्तिचमूवरैः ।
तत्सैनिकचरास्त्वन्ये निहता दानवोत्तमाः ॥६५॥

उसके बाद श्रेष्ठ शक्ति सम्पन्न शक्ति सेना ने किलकिल ध्वनि किया उस दानव के बचे हुए चुने दानवों को भी निष्प्राण करदिया।।65।।

हतावशिष्टा दैत्यास्तु शक्तिबाणखिलीकृताः ।
पलायिता रणक्षोण्याः शून्यकं पुरमाश्रयन्॥६६॥

मरने से बचे दैत्य शक्तिबाणों से तितर बितर होकर उस युद्ध भूमि से भागकर शून्यक नगर में पहुंच गये।।66।।

इति श्रीब्रह्माण्डपुराणे उत्तरखण्डे हयग्रीवागस्त्य-
संवादे ललितोपाख्याने दुर्मदवधो नाम षोडशोऽध्यायः॥ १६ ॥

॥श्रीमन्महागणाधिपतये नमः।।

श्रीमातालिताम्बायै नमः श्रीपादुकां पूजयामि नमः॥
ॐ वन्दे गुरुपदद्वन्द्वं अवाङ्मनसगोचरम्॥
रक्तशुक्ल प्रभामिश्रमतर्क्यं त्रैपुरं महः॥
ॐ आराध्यदेवं भक्तानां कलिदोषविनाशकम्॥
वन्दे श्रीगिरिजानन्दं शारदाश्रीमठाधिपम्।।
ॐ अखण्डं यस्यज्ञानञ्च भक्तिर्यस्यानपायिनी।।
शारदाज्योतिरीशस्य दर्शनं (पूजनं, वन्दनं) शुभमस्तुनः।।

सप्तदशोऽध्यायः॥१७॥42 श्लोकात्मकः

[अश्वारूढाकृत कुरुण्डवधः॥]

हयग्रीवः ।। हयग्रीव बोले-ः

तं वृत्तान्तं समाकर्ण्य संक्रुद्धो दानवेश्वरः ।
प्रचण्डेन प्रभावेन दीप्यमान इवात्मनि ॥ १ ॥

जब उन दैत्यों ने सारा वृत्तान्त उस दानवेश्वर को सुनाया तो वह कुपित हुआ, तब प्रचण्ड प्रभाव से अपनी आत्मा में जलते हुए।।1।।

स शीघ्रस्पर्शमुद्धूय खड्ग मुग्रविलोचनः ।
कुटिलाक्षं निकटगं बभाषे पृतनापतिम्॥२॥

वह भण्डसुर शीघ्रता से उग्र नेत्रों से खड्ग को ऊपर घुमाते हुए समीप में स्थित कुटिलाक्ष दानव जो सेनापति था उससे कहा।।2।।

कथं सा दुष्टवनिता दुर्मदं बलशालिनम्।
निपातितवती युद्धे कष्ट एव विधेः क्रमः ॥ ३ ॥

कैसे उस दुष्ट स्त्री ने बलशाली दुर्मद को युद्ध में मार गिराया, विधि का यह क्रम ही कष्टप्रद है।।3।।

न सुरेषु न मर्त्येषु नोरगेन्द्रेषु यद्बलम्।
अभूत्प्रतिहतं सोऽपि दुर्मदोऽबलया इतः॥४॥

वह दुर्मद इतना बली था उतना बल न देवताओं में न मनुष्यों में न ही नागराजाओं में था, ऐसे अप्रतिमबली दुर्मद को एक अबला ने मार गिराया।।4।।

तां दुष्टवनितां जेतुमाक्रष्टुं च कचे हठात्।
सेनापतिं कुरुण्डाख्यं प्रेषयाहवदुर्मदम्॥५॥

उस दुष्ट वनिता को जीतने के लिये और हठ पूर्वक केशों को पकड़कर लाने के लिये युद्ध में दुर्मद कुरुण्ड नामक सेनापति को भेजा।। 5।।

इति संबोधितस्तेन कुटिलाक्षो महाबलम्।
कुरुण्डं चण्डदोर्दण्डमाजुहाव प्रभोः पुरः॥ ६॥

इस प्रकार भण्डासुर ने कुटिलाक्ष से कहा जब उस कुटिलाक्ष ने महाबली कुरुण्ड को जो अत्यन्त बलशाली भुजदण्डों वाला था उसे अपने स्वामी के सामने प्रस्तुत किया।।6।।

स कुरुण्डः समागत्य प्रणामं स्वामिनेऽदिशत्।
उवाच कुटिलाक्षस्तं गच्छ सज्जय सैनिकम्॥७॥

वह कुरुण आया और आकर उसने अपने स्वामी प्रणाम किया तब कुटिलाक्ष ने उससे कहा कि तुम जाओ और सैनिकों से युद्ध में चलने के लिये तैयार करो।।7।।

मायायां चतुरो सिऽत्वं चित्रयुद्धविशारदः।
कूटयुद्धे च निपुणस्तां स्त्रियं परिमर्दय॥८॥

तुम माया फैलाने में चतुर हो, तुम चित्रयुद्ध अर्थात अनेक प्रकारों के युद्ध करने में कुशल हो, तुम कूटयुद्ध में भी निपुण हो, उस स्त्री का पूरी तरह मर्दन कर डालो।।8।।

इति स्वामिपुरस्थेन कुटिलाक्षेण देशितः।
निर्जगाम पुरात्तूर्णं कुरुण्डश्चण्डविक्रमः॥९॥

इस प्रकार दैत्येन्द्र भण्ड से सामने स्थित कटिलाक्ष ने आदेश दिया तब वह कुरुण्ड भयंकर पराक्रम वाला शीघ्रता से तैयारी के लिये वहां निकल आया।।9।।

विंशत्यक्षोहिणीभिश्च समन्तात्परिवारितः।
मर्दयन्त्स महीगोलं हस्तिवाजिपदातिभिः।
दुर्मदस्याग्रजश्चण्डः कुरुण्डः समरं ययौ॥१०॥

आदेश पाने के बाद बीस अक्षौहिणी सेनाओं से चारों तरफ घिरा हुआ वह हाथी, घोड़ों और पैदल सेनाओं से धरती भूगोल को रौंदता हुआ दुर्मद का बड़ा भाई वह चण्डकुरुण्ड युद्ध स्थल की ओर गया।।10।।

धूलिभिस्तुमुलीकुर्वन्दिगन्तं धीरमानसः।
शोकरोषाग्रहग्रस्तो जवनाश्वगतो ययौ॥११॥

वेग से चलने के कारण ऊपर उड़ी हुई धूलियों से भरे दिगन्त में तुमुल वाद्यों की ध्वनि करता हुआ छोटे भाई की मृत्यु के शोक से और रोष से मन से युक्त वह वेगवान घोड़े में सवार होकर

युद्ध क्षेत्र में गया।।11।।

शार्ङ्ग धनुः समादाय घोरटङ्कारनिस्वनम्।
ववर्ष शरधाराभिः संपत्कर्यामहाचमूम्॥१२॥

शार्ङ्ग धनुष को लेकर धनुष की डोर से घोर टंकार करता हुआ उसने सम्पत्करी की सेना के ऊपर बाणों की वर्षा शुरु कर दी।।12।।

पापे मदनुजं हत्वा दुर्मदं युद्धदुर्मदम्।
वृथा वहसि विक्रान्तिलवलेशान्महामदम्॥१३॥

बाण वर्षा के बाद वह सम्पत्करी से तिरस्कार पूर्वक बोला अरी पापिनि! तूने मेरे छोटे भाई जो युद्ध दमुर्मद था उस दुर्मद नामक को मार कर विजय मद मत कर उससे तुझे कोई लाभ नहीं होगा।।13।।

इदानीमेव भवतीमेभिर्नाराचमण्डलैः ।
अन्तकस्य पुरीमद्य प्रापयिष्यामि पश्य माम् ॥१४ ॥

इसी समय मैं तुझे इन असंख्य नाराच बाणों की वर्षा से यमराज की पुरी में पहुंचा देता हूं, देखती जा।।14।।

अतिंहृद्यमतिस्वादु त्वद्वपुर्वल्लिनिर्गतम्।
अपूर्वमङ्गनारक्तं पिबन्तु रणपूतनाः ॥ १५ ॥

तेरे उस हृदय को अत्यन्त और अत्यन्त स्वादिष्ट तेरी शरीर लता से रक्त का जो अपूर्व अंगना का है पान करेंगी रणपूतना।।15।।

ममानुजवधोत्थस्य प्रत्यवायस्य दुष्फलम् ।
अधुना भोक्ष्यसे दुष्टे पश्य मे भुजयोर्बलम् १६

मेंरे छोटे भाई के मारने से उठे उस बैर का दुष्टफल अब तू भोगेगी दुष्टे देख अब मेरी भुजाओं का बल।।16।।

इति सन्तर्जयन्त्संपत्करीं करिवरस्थिताम्।
सैन्यं प्रोत्साहयामास शक्तिसेनाविमर्दने ॥ १७ ॥

इस प्रकार हाथी में बैठी हुई सम्पत्करी देवी का तिरस्कार करता हुआ उसने अपनी सेना को शक्ति सेना के मर्दन के लिये प्रोत्साहित करना शुरू किया।।17।।

अथ तां पृतनां चण्डीं कुरुण्डस्य महौजसः ॥
विमर्दयितुमुद्युक्ता स्वसैन्यं प्रोदसीसहत्॥१८॥

कुरुण्ड के इस प्रकार चुनौती देने पर उन भगवती चण्डी ने भी अपनी सेना को असुर सेना का मर्दन करने के लिये तैयार किया।।18।।

अपूर्वाहवसंजातकौतुकाथ जगाद ताम्।
अश्वारूढा समागत्य स्नेहेनार्द्रमिदं वचः ॥ १९ ॥

इसी समय युद्ध में अपूर्व कौतुक प्रकट होकर संपत्करी से वह अश्वारूढ़ा भगवती स्नेह पूर्वक यह बोली।।19।।

सखि संपत्करि प्रीत्या मम वाणी निशम्यताम्।
अस्य युद्धमिदं देहि मम कर्तुं गुणोत्तरे ॥ २० ॥

हे सखि! सम्पत्करि!! प्रेम से मेरी वाणी को सुनो वह यह है कि कुछ गुण जो अच्छे हैं उन्हें दिखाने के लिये यह युद्ध मुझे दे दो।।20।।

क्षणं सहस्व समरे मयैवैष नियोत्स्यते।
याचितासि सखित्वेन नात्र संशयमाचर॥ २१ ॥

क्षण भर के लिये तुम सहन करो रुक जाओं यह दानव मेरे साथ ही युद्ध करेगा मैंने तुम से सखि के नाते याचना की है और कोई संशय करने की बात नहीं है।।21।।

इति तस्या वचः श्रुत्वा संपद्देवी कृतस्मिता।
निवर्तयामास चमूं कुरुण्डाभिमुखोत्थिताम्॥२२॥

इस प्रकार के अश्वारूढ़ा के वचनों को सुनकर स्वयं देवी मुस्कुराईं और उन्होंने कुरुण्ड के सामने खड़ी हुई अपनी सेना को वापस लौटा लिया।।22।।

अथ बालार्कवर्णाभिः शक्तिभिः समधिष्ठिताः।
तरङ्गा इव सैन्याब्धेस्तुरङ्गा वातरंहसः ॥ २३ ॥

अश्वारूढ़ा की स्नेह भरी वाणी सुन अपनी सेना को सम्पत्करी ने हटा लिया तब बाल सूर्य के समान वर्णवाली शक्तियों से घिरीं हुईं सैन्य सागर में तरंगों के समान वायु की तरह वेग दौड़ते अश्व प्रकट हो गए।।23।।

खरैः खुरपुटैः क्षोणी मुल्लिखन्तो मुहुर्मुहुः।
पेतुरेकप्रवाहेण कुरुण्डस्य चमूमुखे ।। २४ ॥

उन प्रकट हुए अश्वों की कठोर तीखी खुरों से धरती विदीर्ण हो रही थी वे सभी एक प्रवाह से कुरुण्ड की सेना के सामने आ गए।।24।।

वल्गाविभागकृत्येषु संवर्तननिवर्तने ।

गतिभेदेषु चारीषु पञ्चधारासु पातने ।।॥ २५ ॥

वे सभी अश्वारूढ़ा के अश्व लगाम खींचने के प्रकारों से चलने वाले लगाम खींचने और छोड़ने में अनेक प्रकार के संकेतों को समझा कर गति का प्रकार बदलने वाले थे, तथा गति भेदों में पांच प्रकार से खुरों की ध्वनि करते थे।।25।।

प्रोत्साहने च संज्ञाभिः करपादाग्रयोनिभिः ।

चतुराभिस्तुरङ्गस्य हृदयज्ञाभिराहवे ।। २६ ।।

जो घोड़े अपने सवार के संकेत को हाथ पैर के अग्रभागों से समझ लेते थें ऐसे हृदय की बात जानने वाले चतुर अश्वों पर सवार ।।26।।

अश्वारूढाम्बिकासैन्यशक्तिभिः सह दानवाः ।

प्रोत्साहिताः कुरुण्डेन समयुध्यन्त दुर्मदाः ॥२७॥

अम्बिका की सैन्य शक्तियों के साथ कुरुण्ड दैत्य द्वारा प्रोत्साहित दुर्मद दानवों ने युद्ध करना आरंभ कर दिया।।27।।

एवं प्रवृत्ते समरे शक्तीनां च सुरद्विषाम् ।

अपराजितनामानं हयमारुह्य वेगिनम् ।

अभ्यद्रवद्दुराचारमश्वारूढा कुरुण्डकम् ॥ २८ ॥

इस प्रकार शक्तियों का तथा असुरों का युद्ध प्रारंभ हो जाने पर शक्तियों ने न पराजित होने वाले तेज दौड़ने वाले अश्व पर सवार होकर दुराचारी कुरुण्ड पर आक्रमण कर दिया।।28।।

प्रचलद्वेणिसुभगा चलच्चन्द्रकलोज्ज्वला ।

संध्या नुरक्तशीतांशुमण्डली सुन्दरानना ॥ २९ ॥

युद्ध प्रारंभ होने पर सुन्दर वेणि वाली शरत्कालीन चन्द्रकला के समान उज्ज्वल संध्या में अनुरक्त चन्द्र मण्डल के समान सुन्दर मुख वाली।।29।।

स्मयमानेव समरे गृहीतमणिकार्मुका ।

अवाकिरच्छरासारैः कुरुण्डं तुरगासना ॥ ३० ॥

आश्चर्य के समान देवी ने युद्ध में मणि जटित धनुष को धारण करने वाली तुरगानना (अश्वारूढ़ा) देवी ने युद्ध में कुरुण्ड के ऊपर बाणों की घनघोर वर्षा की।।30।।

तुरगारूढया क्षिप्ताः समाक्रान्तदिगन्तराः ।

दिशो दश व्यानशिरे रुक्मपुङ्खाः शिलीमुखाः ॥३१॥

अश्व पर आरूढ़ देवी के द्वारा फेंके गए बाणों से दसो दिशओं के अन्तर तक को समाक्रान्त कर दिया और स्वर्ण पुंख वाले बाण सभी दिशाओं में व्याप्त हो गए।।31।।

दुर्मदस्याग्रजः क्रुद्धः कुरुण्डश्चण्डविक्रमः।
विशिखैः शार्ङ्गनिष्ठ्यूतैरश्वारूढामवाकिरत् ॥३२॥

बाणों से व्याप्त क्षेत्र देखकर दुर्मद के अग्रज कुद्ध हुआ करण्ड चण्ड पराक्रम वाला उसने अपने शार्ङ्ग धनुष से फेंके गए बाणों से अश्वारूढ़ा पर बौछार कर दी।।32।।

चण्डैः खुरपुटैः सैन्यं खण्डयन्नतिवेगतः।
अश्वारूढातुरङ्गोऽपि मर्दयामास दानवान्॥३३॥

अपने प्रचंड खुरपुटों से अति वेग से सेना को खण्ड खण्ड करते हुए अति वेग से अश्वारूढ़ा के अश्व ने भी दानवों का मर्दन कर डाला।।33।।

तस्य हेषारवाद्दूरमुत्पाताम्बुदनिस्वनाः।
अमूर्च्छयन्ननेकानि तस्यानीकानि वैरिणः ॥ ३४ ॥

उस अश्वारूढ़ा के घोड़े की हिनहिनाहट की ध्वनि से दूर समुद्र में खलभला मचा देने वाले भयंकर स्वर ने उस कुरण्ड के अनेकों वीरों को मूर्च्छित कर दिया।।34।।

इतस्ततः प्रचलिता दैत्यचक्रे हयासना।
निज पाशायुधं दिव्यं मुमोच ज्वलिताकृति ॥३५॥

जब दैत्य सेना इधर उधर भागने लगी तभी अश्व पर सवार उन देवी अश्वारूढ़ा ने अपना आयुध पाश जलता हुआ दिव्य अस्त्र उस सेना पर असुरों के ऊपर फेंका।।35।।

तस्मात्पाशात्कोटिशोऽन्ये पाशा भुजगभीषणाः।
समस्तमपि तत्सैन्यं बध्वाबध्वा व्यमूर्च्छयन् ३६

उस पाश से करोड़ों अन्य नागों जैसे भयंकर पाश सर्प उत्पन्न हो गए उन नागपाशों ने सम्पूर्ण उस दानव सेना को बांध बांध कर मूर्च्छित कर दिया।।36।।

अथ सैनिकबन्धेन क्रुद्धः स च कुरुण्डकः।
शरेणैकेन चिच्छेद तस्या मणिधनुर्गणम्॥३७॥

समस्त दानव सैनिकों के नागपाश में बंधकर मूर्च्छित हो जाने पर उस दानव कुरुण्डक ने क्रोध में आकर एक बाण के प्रहार से देवी के मणि धनुष की डोरी को काट डाला।।37।।

छिन्नमौर्वि धनुस्त्यक्त्वा भृशं क्रुद्धा हयासना।
अङ्कुशं पातयामास तस्य वक्षसि दुर्मतेः ॥ ३८ ॥

धनु की डोरी कट जाने से उस धनुष को त्याग कर क्रुद्ध अश्वारूढ़ा भगवती ने उस दुर्मति के वक्षःस्थल में अंकुश का प्रहार किया।।38।।

तेनाङ्कुशेन ज्वलता पीतजीवितशोणितः ।
कुरुण्डो न्यपतद्भूमौ वज्ररुग्ण इव द्रुमः ॥ ३९ ॥

उस अंकुश द्वारा उस कुरुण्ड का जीवन और रक्त पी लिया गया, तब वह कुरुण्ड वज्र से काटे गये पेड़ के समान युद्ध भूमि में गिर गया।।39।।

तदङ्कुशविनिष्ठ्यूताः पूतनाः काश्चिदुद्भटाः ।
तत्सैन्यं पाशनिष्पन्दं भक्षयित्वा क्षयं गताः ॥४०॥

उस अंकुश द्वारा मारे गए कुछ उदभट राक्षसगण पाश के निष्पन्द को खाकर नष्ट हो गए।।४०।।

इत्थं कुरुण्डे निहते विंशत्यक्षोहिणीपतौ।
हतावशिष्टास्तद्भृत्याः प्रपलायिषत द्रुतम्॥४१॥

इस प्रकार कुरुण्ड के मारे जाने पर जो २० अक्षौहिणी सेनापति था, तब मरने से बचे शेष राक्षसगण उसके सेवकगण तेजी से मैदान से भाग गए।

कुरुण्डं सानुजं युद्धे शक्तिसैन्यनिपातितम्।
श्रुत्वा शून्यकनाथोऽपि निशश्वास भुजंगवत्॥४२॥

छोटे भाई के साथ कुरुण्ड को शक्तिसेना ने मारडाला है यह सुनकर शून्यक नाथ भण्डासुर भी नाग जैसे श्वांस छोड़ने लगा।।४२।।

इति श्रीब्रह्माण्डपुराणे उत्तरखण्डे हयग्रीवागस्त्य- संवादे ललितोपाख्याने कुरुण्डवधो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

॥श्रीमन्महागणाधिपतये नमः।।

श्रीमाताललिताम्बायै नमः श्रीपादुकां पूजयामि नमः॥
ॐ वन्दे गुरुपदद्वन्द्वं अवाङ्मनसगोचरम्॥
रक्तशुक्ल प्रभामिश्रमतर्क्यं त्रैपुरं महः॥
ॐ आराध्यदेवं भक्तानां कलिदोषविनाशकम्॥
वन्दे श्रीगिरिजानन्दं शारदाश्रीमठाधिपम्।।
ॐ अखण्डं यस्यज्ञानञ्च भक्तिर्यस्यानपायिनी।।
शारदाज्योतिरीशस्य दर्शनं (पूजनं, वन्दनं) शुभमस्तुनः।।

अष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥ 101 श्लोकात्मकः

[करङ्कादिपञ्चसेनापतिवधः॥]

श्री हयग्रीव बोले-ः

अथाश्वारूढ्या ध्वस्ते कुरुण्डे भण्डदानवः ।
कुटिलाक्षमिदं प्रोचे पुनरेव युयुत्सया ॥ १ ॥

अश्वारूढ़ा भगवती द्वारा कुरुण्ड सेना मारा गया इस वृत्तात को सुन कर भण्ड दानव पुनः युद्ध करने की इच्छा से कुटिला दानव के सेनापति यह बोला।।1।।

स्वप्नेऽपि यन्न संभाव्यं यन्न श्रुतमितः पुरा ।
यश्च नो शङ्कितं चित्ते तदेतत्कष्टमागतम्॥ २ ॥

स्वप्न में भी जिसकी संभावना नहीं थी और इससे पहिले जो सुना नहीं था और चित्त में जिसकी शंका भी नहीं थी वह यह कष्ट सामने आया है।।2।।

कुरुण्डदुर्मदौ सत्वशालिनौ भ्रातरौ हतौ ।
दुष्टदास्याः प्रभावोऽयं मायाविन्या महत्तरः ॥३॥

कुरुण्ड और दुर्मद दोनों भाई बड़े पराक्रमशाली थे वे दोनों ही युद्ध में मारे गये, यह उस दुष्टदासी मायाविनी का बड़ा प्रभाव है।।3।।

इतः परं करङ्कादीन्पञ्च सेनाधिनायकान् ।
शतमक्षौहिणीनां च प्रस्थापय रणाङ्गणम् ॥ ४ ॥

भण्डासुर ने कुटिलाक्ष से कहा कि युद्ध भूमि में करंग आदि पांच सेनापतियों के सौ अक्षौहिणी सेना को भेजों।।4।।

ते युद्धदुर्मदाः शूराः संग्रामेषु तनुत्यजः ।
सर्वथैव विजेष्यन्ति दुर्विदग्धविलासिनीम् ।। ५ ।।

वे पांचों सेनापति युद्ध में दुर्मद है अर्थात किसी से भी युद्ध में हारने वाले नहीं शूरवीर हैं संग्राम में पूरी तरह जूझ जाते हैं वे ही उस दुर्विदग्ध को जो कठिनाई से जीती जाने वाली विलासिनी को जीत लेंगे।।5।।

इति भण्डवचः श्रुत्वा भृशं च त्वरयान्वितः ।
कुटिलाक्षः करङ्कादीनाजुहाव चमूपतीन् ॥ ६ ॥

इस प्रकार के भण्डासुर के वचनों को सुनकर कुटिलाक्ष ने उन पांचों सेनापतियों को बुलवाया।।6।।

ते स्वामिनं नमस्कृत्य कुटिलाक्षेण दर्शिताः ।
अनौ पतिष्णव इव क्रुधान्धा निर्ययुः पुरात् ॥७॥

कुटिलाक्ष के द्वारा निर्देश दिये गए वे पांचों सेनापति अपने स्वामी भण्डासुर को प्रणाम करके नगर से निकले वैसे ही क्रोध में अन्धा होकर आगे में गिरने का इच्छा करे।।7।।

तेषां प्रयाणनिःसाणरणितं भृशदुः सहम् ।
आकर्ण्य दिग्गजास्तूर्णं शीर्णकर्णा विधूर्णिरे ॥८॥

उन पांचों सेनापतियों के प्रमाण के समय युद्धवाद्यों का सेनाओं का निर्गमन शोर अत्यन्त दुःसह था, उस शोरगुल को सुन दिग्गजों ने कानों की गिराकर घूरने लगे।।8।।

शतमक्षोहिणीनां च प्रचलत्केतुमालिकम्।
उत्तरङ्गतुरङ्गालि बभौ मत्तमतङ्गजम्॥९॥

उस प्रयाण में सौ अक्षौहिणी सेनाओं उड़ते हुए ध्वजों की माला और ऊंचे ऊंचे अश्वों की तथा हाथियों की पंक्ति शोभित हो रही थी।।19।।

हेषमाणहयाकीर्णं क्रन्दद्भटकुलोद्भटम्।
बृंह्यमाणगजं गजेद्रथचक्रं चचाल तत्॥१०॥

वह सेना हिनहिनाते घोड़ों से भरी हुई योद्धाओं की ललकारों से बढ़ते हुए हाथियों की गर्जनाओं से युक्त वह रथचक्र चलने लगा।।10।।

चक्रनेमिहतक्षोणीक्षोदक्षपितरोचिषा ।
बभूवे तुहिनासारच्छन्नेनेव विवस्वता ॥ ११ ॥

तब रथ के पहिये की नेमि से खोदी गई भूमि की धूली छायी हुई थी उससे ऐसा प्रतीत हो रहा था कि सूर्य कुहरे से ढंका हुआ हो।।11।।

धूलीमयमिवाशेषमभवद्विश्वमण्डलम् ।
क्वचिच्छब्दमयं चैव निःसाणकठिनस्वनैः ॥१२॥

इस प्रकार समस्त विश्व मण्डल धूलिमय हो गया था कठिन आवाजों से कहीं पर शब्द सुनाई नहीं दे रहे थे।।12।।

उद्धृतैर्धूलिकाजालैराक्रान्ते दैत्यसैनिके ।
इयत्तया न सेनायाः संख्यापि परिभाविता ॥१३॥

धूलि समूह के जालों से आक्रान्त दैत्य सैनिक ढंक गए इतनी सेना आयी कि उसकी गणना भी न की जा सकी।।13।।

ध्वजा बहुविधाकारा मीनव्यालादिचित्रिताः ।
प्रचेलुर्धूलिकाजाले मत्स्या इव महोदधौ ॥ १४ ॥

उस सेना में अनेकों प्रकार की आकार वाली ध्वजायें थीं उनमें किन्हीं में मछली के चित्र किन्हीं में सर्प आदि के निशान बने हुए थे ऐसी वे सेनाएं उस धूली के जाल में चल रही थीं मानों महा समुद्र में असंख्य मछलियों का किलोल करना।।14।।

तानापतत आलोक्य ललितासैनिकं प्रति ।
वित्रेसुरमराः सर्वे शक्तीनां भङ्गशङ्कया ॥ १५ ॥

उस असुर सैनिकों की सेनाओं को ललिता भगवती के सैनिकों की तरफ आते देखकर सभी देवतागण भयभीत हो गए।।15।।

ते करङ्कमुखाः पञ्च सेनापतय उद्धताः ।
सर्पिणीं नाम समरे मायां चक्रुर्महीयसीम् ।।१६।।

वे करंग प्रमुख पांचों सेनापति उद्धत सेनापति थे उन्होंने युद्ध स्थल में सर्पिणी नामक माया को महती रूपिणी थी उसे पैदा कर दिया।।16।।

तैः समुत्पादिता दुष्टा सर्पिणी रणशाम्बरी ।
धूम्रवर्णा च धूम्रोष्ठी धूम्रलम्बपयोधरा ॥ १७ ॥

उन पांच असुर सेनापतियों के द्वारा उत्पन्न की गई दुष्टा वह सर्पिणी युद्ध में माया का भ्रमजाल फैलाने वाली थी उसका धुए जैसा रंग, धूये जैसे रंगे हुए ओंठ और धूम्रवर्ण के ही उसके स्तन थे।।17।।

महोदधिवदत्यन्तगम्भीर कुहरोदरा ।
पुरश्चचाल शक्तीनां त्रासयन्ती मनो रणे ॥१८॥

महासमुद्र के समान उसकी अत्यन्त गहरी नाभि थी वह युद्ध स्थल में शक्तियों डराती हुई आगे आगे चलीं।।18।।

कद्रूरिव परा दुष्टा बहुसर्पविभूषणा।
सर्पाणामुद्भवस्थानं मायामयशरीरिणाम्॥ १९ ॥

सर्पां की आदि जननी कद्रु के समान वह दुष्टा बहुत सर्पों से विभूषित माया मय शरीर वाले सर्पों की उत्पत्ति का स्थान थी।।19।।

सेनापतीनां नासीरे कम्पयन्ती महीतलम्।
वल्गितं बहुधा चक्रे शिवाघोरविराविणी ॥२०॥

सेनापतियों के सामने धरती में लोटती हुई अनेक प्रकार के घोर शब्द करती थी।।20।।

तयैव मायया पूर्वं ते सुरेन्द्रान्व्यजेषत ।
करङ्काद्या दुरात्मानः पञ्च पञ्चत्वकामुकाः ॥२१॥

उसी प्रकार पूर्व समय में माया के द्वारा उन करंक आदि पांच पांच तत्वों के कामुक असुरों को उत्पन्न किया था।।21।।

अथ प्रववृधे युद्धं शक्तीनाममरद्विषाम् ।
अन्योन्यं वीरभाषाभिः प्रोत्साहितरणक्रुधा ॥२२॥

उसी सर्पिणी की उत्पत्ति के बाद शक्तियों का तथा दैत्यों का परस्पर में वीरोचित चुनौती पूर्ण भाषाओं के प्रयोग से रण में क्रोध को बढ़ाने वाला युद्ध प्रारंभ हुआ।।22।।

अत्यन्तसङ्कुलतया नविज्ञातपरस्पराः ।
शक्तयो दानवाश्चैव प्रजह्रुः शस्त्रपाणयः ॥ २३ ॥

वे शक्तियां और दानव इतनी संख्या में घने थे कि परस्पर में एक दूसरे जान नहीं पा रहे थे और दोनों ही दल हाथो शस्त्र लिये हुए थे।।23।।

अन्योन्यशस्त्र संघट्टस मुत्थितहुताशने ।
प्रवृत्तविशिखस्तोमप्रच्छन्नहरिदन्तरे ॥ २४ ॥

वहां युद्ध स्थल में परस्पर के शस्त्र समूहों के टकराने से आग प्रकट होने लगी चलने वाले उस युद्ध में बाणों के समूह की वर्षा से सभी दिशाएं ढंग गईं।।24।।

बहुरक्तनदी पूरह्रियमाणहतद्विपे ।
मांस कर्दमनिर्मग्ननिष्पन्दरथमण्डले ॥ २५ ॥

चारों तरफ से बह रहे रक्त से रक्त की नदी इतनी गहरी थी कि हाथी भी शरमाने लगे, मांस के

कीचड़ में रथ फंस गए इन्हीं स्थितियों के कारण सभी की गति अवरुद्ध सी हो गई थी।।25।।

विकीर्णकेशशैवालविलसद्रक्त निझरे ।
अतिनिष्ठुरवीरोत्थसिहनादभयङ्करे ॥ २६ ॥

जैसे नदी में शिवा (शैवाल समूह) होते हैं वैसे इस रक्त नदी में फैले हुए बालों के गुच्छे दिख रहे थे उस युद्ध स्थल अत्यन्त निष्ठुर वीरोचित सिंहनाद की हुंकार से भयंकर।।26।।

रजोऽन्धकारतुमुले राक्षसीतृप्तिदायिनि ।
निस्त्रिंशकविनिर्भिण्णदैत्यकण्ठोत्थितासृजि ॥२७॥

हो गया था तथा उठती धूलि से अंधेरा छाया हुआ राक्षसियों को तृप्त कर रहा था, शस्त्रधारी की तलवार से छिन्न भिन्न हुए दैत्य के गले से रक्त तेजी से निकल रहा था।।27।।

प्रवृत्ते घोरसंग्रामे शक्तीनां च सुरद्विषाम् ।
अथ स्वं बलमादाय पञ्चभिः प्रेरिता सती ।
सर्पिणी बहुधा सर्पान्विससर्ज शरीरतः ॥ २८ ॥

इस प्रकार संग्राम शक्तियों और असुरों का घोर रूप में प्रवृत्त हो गया तब उन पांच सेनापतियों से प्रेरित होने पर उस सर्पिणी ने अपने शरीर से अनेकों प्रकार के सर्पों को उत्पन्न कर दिया।।28।।

तक्षककर्कोटकसमा वासुकिप्रतिमत्विषः ।
नानाविधवपुर्वर्णा नानादंष्ट्राभयङ्कराः ।
नानाविधविषज्वाला निर्दग्धभुवनत्रयाः ॥ २९ ॥

उस सर्पिणी के शरीर से निकले नाना विध सर्प तक्षक कर्कोटक आदि और वासुकि सर्पराज आदि की शरीर कान्ति वाले थे वे कई रंगों अनेक विभिन्न शरीर वाले और नाना विध जहर भरी दाढ़ों से भयंकर थे उनके फुफकार करने में तीनों लोकों में दाह करने की शक्ति थी।।29।।

दारदं वत्सनाभं च कालकूटमथाद्रम् ।
सौराष्ट्रजविषं घोरं ब्रह्मपुत्रमथापरम् ॥३०॥

उस सर्पिणी के सर्पों में जो विष था वह दारद वत्सनाभ और कालकूट सौराष्ट्र तक था ब्रह्म पुत्र के दूसरे प्रकार के विष हैं।।30।।

प्रदीपनं शौक्तिकेयमन्यान्यपि विषाणि च ।
व्यात्तैः स्वकीयवदनैर्विलोलरसनाद्वयैः ।
विकिरन्तः शक्तिसैन्ये विससृजुः सर्पिणीतनोः ॥३१॥

तथा शौक्तिकेय विष एवं अन्यान्य विषों को सर्प अपनी लपलपाती दो जीभों से शक्ति सेनाओं पर

गिराने वाले सर्प उस सर्पिणी से उत्पन्न हो गए।।31।।

धूम्रवर्णा द्विवदनाः सर्पा अतिभयङ्कराः ।
सर्पिण्या नयनद्वन्द्वादुत्थिताः सर्पकोटयः ॥३२॥

सर्पिणी के दोनों नयनों से धूम्रवर्ण के दो मुंह वाले अत्यन्त भयंकर क्रोध से दीपित सर्प निकल रहे थे।।32।।

अग्रे पुच्छे च वदनं धारयन्तः फणान्वितम्।
आस्यादानीलवपुषः सर्पिण्याः फणिनोऽभवन् ॥३३॥

वे सर्प आगे और पीछे दोनों तरफ फन से युक्त मुख धारण करते थे। इस प्रकार उस सर्पिणी के मुख से खाने वाले नीले शरीर वाले सर्प अनेकों हो गए।।33।।

अन्येशबलवर्णाभाश्चतुर्वक्त्राश्चतूरदाः ।
नासिकाविवरात्तस्या उद्गता उग्ररोचिषः ॥ ३४ ॥

अन्य बल और वर्णवाले ये दोनों ही भयंकर थे तथा चार मुख वाले और चार दाढ़ों वाले उग्र कान्ति वाले सर्प उस सर्पिणी के नासिका के छिद्र से उत्पन्न हुए।।34।।

पीतवर्णास्त्रिफणका दंष्ट्रातिविकटाननाः ।
सर्पिण्याः कर्णकुहरादुत्थिताः क्रोधदीपिताः ३५

उस सर्पिणी के कान के छिद्रों से क्रोध से उद्दीपित पीले रंग के तीन फणों वाले भयानक दाढ़ों से विकट मुह वाले सर्प निकले।।35।।

लम्बमानमहाचर्मादतिस्थूलपयोधरात् ।
नाभिकुण्डाच्च बहवो रक्तवर्णा भयानकाः ॥३६॥

उस सर्पिणी के लटकते हुए महाचर्म वाले अति स्थूल पयोधरों से तथा नाभि विवर से भी बहुत से लाल रंग के भयानक सर्प निकले।।36।।

हालाहलं वमन्तश्च प्रोत्थिताः पन्नगाधिपाः ।
विदशन्तो शक्तिसेनां दहन्तो विषवह्निभिः ।
बध्नन्तो भोगपाशैश्च निघ्नन्तः फणमण्डलैः ॥३७॥

नाभिकुण्ड से निकले वे सर्प हालाहल विष का वमन करते हुए उठ खड़े हुए जो शक्ति सेना को डस रहे थे, अपने विष की ज्वाला से जला रहे थे और अपने फणों के पाश से बांधते हुए फण मण्डलों से प्रहार कर रहे थे।।37।।

अत्यन्तमाकुली चक्रुर्ललितेशीचमूममी ।
खण्ड्यमाना अपि मुहुः शक्तीनां शस्त्रकोटिभिः ॥३८॥

इस प्रकार इन सर्पिणी के शरीर से निकले सर्पों ने ललिता भगवती की शक्ति सेना को अत्यन्त व्याकुल किया शक्तिसेना की शक्तियों ने भी शस्त्रों की भरमार से बार बार सर्पों को खण्डित भी किया।।38।।

उपर्युपरि वर्धन्ते सर्पाः स्म प्रविसर्पिणः ।
नश्यन्ति बहवः सर्पा जायन्ते चापरे पुनः ॥३९॥

शक्तियों द्वारा खण्डित किये जाने पर भी ऊपर ही ऊपर पिण्ड के पिण्ड सर्प बढ़ रहे थे इस प्रकार बहुत से सर्प नष्ट हो जाते थे फिर पुनः पैदा हो जाते थे।।39।।

एकस्य नाशसमये बहवोऽन्ये समुत्थिताः ।
मूलभूता यतो दुष्टा सर्पिणी न विनश्यति ॥४०॥

एक सर्प के नष्ट होने पर बहुत से अन्य सर्प उठ खड़े हो जाते थे परन्तु मूलभूता दुष्टासर्पिणी विद्यमान थी उसका नष्ट होना आवश्यक है।।40।।

अतस्तत्कृतसर्पाणां नाशे सर्पान्तरोगमः ॥४१ ॥

उसके रहने से सर्पों के नाश के बाद भी दूसरे सर्प प्रकट हो जाते थे।।41।।

ततश्च शक्तिसैन्यस्य शरीराणि विषानलैः ।
दह्यमानानि दुःखेन विप्लुष्टान्यभवन्रणे ॥४२ ॥

उसके बाद शक्ति सेना के सैनिकों के शरीर सर्पविष की ज्वालाओं से दग्ध हो रहे थे अतः युद्ध स्थल में शक्ति सेना दुःख से पूरी तरह विलुप्त होने लगी।।42।।

किंकर्तव्यविमूढेषु शक्तिचक्रेषु भोगिभिः ।
पराक्रमं बहुविधं चक्रुस्ते पञ्च दानवाः ॥४३ ॥

इस प्रकार उन सर्पों द्वारा शक्ति की सेना किंकर्तव्य विमूढ़ हो गई उधर पांच दानवों ने अनेक प्रकार पराक्रम शुरू किये।।43।।

करङ्को गर्दभशतैर्युक्तं स्यन्दनमास्थितः ।
उत्पातवारिद इव प्रववर्ष शरावलीः ॥४४ ॥

करंग दानव सौ गदहों से युक्त रथ में बैठ तीखी धार वाले बाणों की बौछार करने लगा।।44।।

काकवासितनामान्यः सेनानाथो गजे स्थितः ।
चक्रेण तीक्ष्णधारेण शक्तिसेनाममर्दयत्।।४५ ।।

काकवासित नाम का दानव सेनानायक एक हाथी में बैठकर युद्ध करने लगा उसने तीखी धार वाले चक्र से शक्ति सेना को पीड़ित किया।।45।।

वज्रदन्ताभिधश्चान्यो भण्डदैत्यचमूपतिः ।
वज्रबाणाभिघातेन महोष्ट्रस्थो रण व्यधात् ॥४६॥

भण्ड दैत्यपति की सेना का सेनापति अन्य दानव वज्रदन्त नाम वाला एक बड़े ऊंट पर सवार होकर युद्ध करने लगा।।46।।

अथ वज्रमुखश्चान्यश्चक्रीवन्तं महत्तरम् ।
आरुह्य कुन्तधाराभिः शक्तिचक्रममर्दयत् ॥४७॥

और एक अन्य दानव वज्रमुख नामक जो महान चक्र को रखे हुए था उसने भालों की तेज धाराओं से शक्ति सेना को पीड़ित किया।।47।।

वज्रलोमाभिधश्चान्यश्चमूनाथो महाबलः ।
गृध्रयुग्मरथारूढः प्रजहार शिलीमुखैः ॥४८॥

वज्रलोमा नाम का एक अन्य दानव जो महाबली था और सेनापति था वह दो गीधों के रथ पर सवार होकर आया और बाणों से प्रहार करने लगा।।48।।

तैः सेनापतिभिर्दुष्टैः प्रोत्साहितमहाहवे ।
शतमक्षोहिणीनां च निपपातैकहेलया ॥४९॥

उन दुष्ट सेनापतियों ने उस महायुद्ध में प्रोत्साहित सौ अक्षौहिणी सेना युद्ध में एक साथ ही टूट पड़ी।।49।।

सर्पिणी च दुराचारा बहुमायापरिग्रहा ।
क्षणेक्षणे कोटिसंख्यान्विससर्ज फणाधरान् ॥५०॥

वह दुष्टा सर्पिणी जो बहुत मायाओं रखी हुई थी वह क्षण क्षण में करोड़ों सर्पों को प्रकट कर देती थी।।50।।

तया व्याकुलितं सैन्यमवलोक्य रुषाकुला ।
नकुली गरुडारूढा संपपात रणाजिरे ॥५१॥

उस सर्पिणी के द्वारा व्याकुल की गई सेना को देख क्रोध से उफनती हुई गरूड़ की सवारी करती हुई नकुली देवी उस रणांगण में कूद पड़ीं।।51।।

प्रतप्तकनकप्रख्या ललितातालुसम्भवा ।
समस्तवाङ्मयाकारा दन्तैर्वज्रमयैर्युता ॥५२॥

वह नकुली देवी तपाए हुए सोने की वाली थी, वह भगवती ललिता देवी के तालु से प्रकट हुई थी वह नकुली समस्त वाङ्मय के आकार वाली तथा वज्र के समान कठोर दांतों वाली थी।।52।।

सर्पिण्यभिमुखं तत्र विससर्ज निजं बलम् ॥५३॥

वहां सर्पिणी के सामने उन नकुली देवी ने अपना बल उत्पन्न कर दिया।।53।।

तयाधिष्ठिततुङ्गांसः पक्षविक्षिप्तभूधरः ।
गरुडः प्राचलयुद्धे सुमेरुरिव जङ्गमः ॥५४ ॥

वह देवी गरुड़ पर सवार थीं, वह गरुड़ ऊंचे कंधों वाला था तथा पर्वत के समान पंखों वाला था ऐसा वह गरुड़ उस युद्ध में चलते हुए सुमेरी पर्वत जैसे लग रहा था।।54।।

सर्पिणीमायया जातान्सर्वान्दृष्ट्वा भयानकान् ।
क्रोधरक्तेक्षणं व्यात्तं नकुली विदधे मुखम् ॥५५॥

जब भगवती नकुली देवी ने सर्पिणी की माया से हुए भयानक सर्पों को देखा तब क्रोध से लाल नेत्रों को करके अपने मुख को खोला।।55।।

अथ श्रीनकुलीदेव्या द्वात्रिंशद्दन्तकोटिशः ।
द्वात्रिंशत्कोटयो जाता नकुलाः कनकप्रभाः ॥५६॥

इसके बाद उन नकुली देवी के बत्तीस दांतों की पंक्ति से बत्तीस करोड़ सोने की प्रभा वाले नकुल (नेवले) उत्पन्न हो गए।।56।।

इतस्ततः खण्डयन्तः सर्पिणीसर्पमण्डलम् ।
निजदंष्ट्रावमर्शेन नाशयन्तश्च तद्विषम् ॥ ५७ ॥

वे सभी नेवले सर्पिणी के सर्प मण्डल को अपनी तीक्ष्ण दाढ़ों से खण्ड खण्ड करते हुए उन सर्पों के विषों को नष्ट करने लगे।।57।।

व्यभ्रमन्समरे घोरे बभ्रवः स्वर्णबभ्रवः ।
उत्कर्णा क्रोधसंपर्काद्धृषिताशेषलोमकाः ॥५८ ॥

वे सभी नेवले ऊपर को कान उठाए तथा क्रोध से समस्त शरीर सोने के रंग वाले लोमों (केशों) को उठाए उत्फुल्ल होकर और मुंह खोल कर सर्पों को काटने लगे।।58।।

उत्पुच्छा नकुला व्यात्तवदना व्यदशन्नहीन् ।
एकैकमायासर्पस्य बभ्रुरेकैक उद्गतः ॥ ५९ ॥

युद्ध के वातावरण में मायाविनी सर्पिणी के मुख से जब एक एक सर्प निकलते थे तभी एकेक

नकुल भी पूंछ उठाकर मुंह खोले उन एकैक नागों को टुकड़े कर देते थे।।59।।

तीक्ष्णदन्तनिपातेन खण्डयामास विग्रहम् ।
भोगिभोगस्रुतै रक्तैः सृक्कणी शोणतां गते ॥ ६० ॥

नकुलों द्वारा सर्पों के खण्ड खण्ड किये जाने पर उन सर्पों के खून के प्रवाहों से उन नकुलों ओष्ठ और मुख सभी खून से रंग गये।।60।।

वहन्तो नकुलाजिह्वापल्लवैः पुप्लवुमूर्धे ॥ ६१ ॥

नेवलों के द्वारा काटे गए सर्पों के कांपते हुए शरी बार बार कुण्डली मार रहे थे।।61।।

नकुलैर्दश्यमानानामत्यन्तचटुलं वपुः ।
मुहुः कुण्डलितैभोगैः पन्नगानां व्यवेष्टत ॥ ६२ ॥

नेवलों द्वारा डसे गए अतःमृत उन सभी सर्पों की मणियां फणों से नीचे गिरकर इधर उधर बिखरी पड़ी थीं।।62।।

नकुलावलिदष्टानां नष्टासूनां फणाभृताम् ।
फणाशतसमुत्कीर्णा मणयो व्यरुचन्रणे ॥ ६३ ॥

उस युद्ध में नेवलों द्वारा डसे गए सर्पों के फणों की सर्पमणियां उन सर्पों के प्राणहीन होने पर रणभूमि में जहां तहां बिखरी पड़ी हुईं थीं।।63।।

नकुलाघातसंकीर्णफणा चक्र विनिर्गताः ।
मणयस्तन्मह। कोपवह्निज्वाला इवाबभुः ॥ ६४ ॥

नेवलों के आघात से जिन सर्पों के फन काट लिये गए थे, वे अपने चक्र से निकले हुए (फन) उसके प्रति महान बैर की ज्वाला के समान भासित हो रहे थे।।64।।

एवं प्रकारतो बभ्रुमण्डलैरवखण्डिते ।
मायामये सर्पजाते सर्पिणी कोपमादधे ॥ ६५ ॥

इस प्रकार से नेवलों द्वारा मायामय सर्पजाल के खण्ड विखण्ड कर देने पर सर्पिणी ने अत्यंत क्रोध रूप धारण किया।।65।।

तया सह महद्युद्धं कृत्वा सा नकुलीश्वरी ।
गारुडास्त्रमतिक्रूरं समधत्त शिलीमुखे ॥ ६६ ॥

उन नकुलीश्वरी देवी ने उस सर्पिणी से बड़ा युद्ध किया तथा अत्यन्त भयंकर अतिक्रूर गारुडास्त्र को अपने बाण के फन में रखा।।66।।

तद्गारुडास्त्रमुद्दामज्वालादीपितदिङ्मुखम् ।
प्रविश्य सर्पिणीदेहं सर्पमायां व्यशोषयत् ॥६७॥

वह उद्दाम गारुडास्त्र जिसकी समस्त दिशाओं को प्रकाशित करती हुईं प्रबल ज्वालायें थी वे अत्यन्त तीव्र ज्वालाएं सर्पिणी की देह में घुस गईं और सम्पूर्ण सर्पमाया को शोष लिया।।67।।

मायाशक्तिविनाशेन सर्पिणी विलयं गता ।
क्रोधं च तद्विनाशेन प्राप्ताः पञ्च चमूवराः ६८

गारुडास्त्र द्वारा सर्पमाया के नष्ट हो जाने पर सर्पिणी विलीन हो गई सर्पिणी के विलीन हो जाने पर वे पांच सेनापति गण क्रोध से भर गये।।68।।

यद्बलेन सुरान्सर्वान्सेनान्यस्तेऽवमेनिरे ।
सा सर्पिणी कथाशेषं नीता नकुलिवीर्यतः ॥६९॥

जिसके बल से वे सेनापति देव सेना की नीचा दिखा रहे थे वे सभी नकुली शक्ति के पराक्रम से वह सर्पिणी कथाशेष हो गई उसका अस्तित्व समूल नष्ट हो गया।।69।।

अथ स्वबलनाशेन भृशं क्रुद्धाश्चमूवराः ।
एकोद्योगेन शस्त्रौघैर्नकुलीं तामवाकिरन् ॥७० ॥

नकुली देवी के गरुडास्त्र से सर्पिणी की माया के तथा असुर सेना के नाश से वे सेनापतिगण अत्यन्त क्रोध में भर गये तब उन्होंने एक उद्योग से शस्त्रों के समूहों से उस नकुली देवी के ऊपर बौछार कर दी।।70।।

एकैव सा तार्थ्यरथा पञ्चभिः पृतनेश्वरैः ।
लघुहस्ततया युद्धं चकार शरवर्षिणी ॥७१ ॥

उस अकेली देव सेना की स्वामिनी नकुलेश्वरी ने गरुड़रथ में स्थित होकर उन पांचों सेनापतियों युद्ध किया हस्तलाघव से नकुली ने उन पांचों पर शरवर्षा की।।71।।

पट्ट सैर्मुसलैश्चैव भिण्दिपालैः सहस्त्रशः ।
नकुलान्खण्डयामा सुरितश्चेतश्च दानवाः ॥७२ ॥

हजारों पट्टिसों, मूसलों से और भिन्दिपालों से इधर उधर के नकुलों को दानवों ने खण्ड खण्ड किया।।72।।

ज्वलदग्निप्रकाशास्ते नकुला वैरिणां बलम् ।
वज्रसारमयैर्दन्तैर्व्यदशन्मर्मसीमसु ॥७३ ॥

जलती हुई अग्नि के प्रकाश जैसे उन नकुलों ने शत्रुओं की सेना को मर्मस्थानों में वज्रसारमय

दांतों से दंशन किया।।73।।

ततो हाहाकृतं घोरं कुर्वाणा दैत्यकिंकराः।
उदग्रदंशनकुलैर्नकुलैराकुलीकृताः ॥७४॥

उस युद्ध में वे नेवले उदग्रदंश कर रहे थे अर्थात उन दानव सैनिकों को मर्मस्थलों में प्रमुख अंगों में अर्थात कोई सिर में काट रहा था कोई कान में कोई नासिका में कोई पीठ पर अपनी पैनी दाढ़ों से उनकी आकृति ही बिगाड़ दे रहे थे।।74।।

उत्प्लुत्य गगनात्केचिद्घोरसीत्कारकारिणः।
दशन्ति स्म द्विषां सैन्यं नकुलाः प्रज्वलत्क्रुधा ॥७५॥

वे नेवले आकाश से उछलते हुए कोई भयंकर सीत्कार (सीटी) करते हुए क्रोध से उबलते हुए उन दानवों को डस रहे थे।।75।।

कर्णेषु दष्टा नासायामन्ये दष्टाः क्षयं गताः।
अपरे विलयं प्राप्ता दष्टा मर्मसु बभ्रुभिः ॥७६॥

किन्ही नेवलों ने दानवों के कानों को काटा किसी की नाक को उन नकुलों के द्वारा काटे अन्य दानव मृत्यु को प्राप्त हुए कोई भाग गये मर्मस्थानों में दंशन से व्याकुल हो गए।।76।।

विकला विद्धमर्माणो भयवित्रस्तशस्त्रकाः।
पतन्ति केचिन्नकुला दानवानां शिरस्तटे।
पृष्ठतो व्यदशन्केचिदागत्य कृतसीत्कृताः ॥७७॥

उस युद्ध में कोई कोई आकाश से दानवों के सिरों में गिरती और पीठ में दंशन करते थे कोई आकार सीत्कार की आवाज करते थे।।77।।

नकुलैरभिभूतास्ते न्यपतन्नमरद्रुहः ।। ७८ ।।

वे देवताओं के शत्रु दानव गण उन नकुलों के आक्रमण से आक्रांत होकर कोई मर्मस्थान के बिंध जाने से कोई भय से शस्त्रों से रहित होकर इधर उधर गिर रहे थे भाग रहे थे।।78।।

केचित्प्रविश्य नकुला व्यात्तान्यास्यानि वैरिणाम्।
भोगिभोगानिवाकृष्य प्रादशन्त्रसनालताः ॥७९॥

कुछ नेवले बैरियों के फैलाये हुए मुखों में घुसकर फन वाले सर्पों को रसातल से खींचकर दांतों से घाव कर रहे थे।।79।।

अन्ये कर्णेषु नकुलाः प्राविशन्देववैरिणाम्।
सूक्ष्मरूपा विशन्त्यन्ये नासारन्ध्राणि बभ्रवः ॥८०॥

उस युद्ध स्थल में कोई नेवले उन देव बैरियों के कानों में घुस जाते थे कोई कोई सूक्ष्मरूप के दानवों की नाकों के छिद्रों मु घुस उनकी श्वास में बाधा कर देते थे।।80।।

इति तैरभिभूतानि नकुलैरवलोकयन् ।
निजसैन्यानि दीनानि करङ्कः कोपमास्थितः ॥८१॥

उन नकुलों के अपनी सेना की उथल पुथल को देखकर वे दानव दीनों की तरह हो रहे थे उन्हें पता ही नहीं हो पाता था कि कहां से और किस स्थान में आक्रमण होगा तब क्रोध में युक्त कर के।।81।।

अन्येऽपि च चमूनाथा लघुहस्ता महाबलाः ।
प्रतिबनु शरस्तोमानवर्पन्वारिदा इव ॥ ८२ ॥

नेवलों के आक्रमण से पीड़ित अपनी सेना को देख अन्य सेनापति गण महाबली हाथों की फुर्ती वाले नकुली सेना पर बाणों की बौछार वर्षा कालीन मेघों की वर्षा जैसे करने लगे।।82।।

दैत्यसैन्यपतिप्रौढकोदण्डोत्थाः शिलीमुखाः ।
बभ्रूणां दन्तकोटीषु कठोरं घट्टनं व्यधुः ॥८३॥

दैत्य सेनापति ने प्रौढ़ धनुष को उठाया और उससे बाणों को फेंका वे बाण नेवलों दंत पंक्ति में टकरा कर कठोर घर्षण करने लगे।।83।।

चमूपतिशरव्यूहैराहतेभ्यः परःशतम् ।
बभ्रूणां वज्रदन्तेभ्यो निश्चक्राम हुताशनः ॥८४॥

दानव सेनापति के घोड़े मारे गए हजारों बाणों से आहत नेवलों के दांतों से बाणों की टकराहट से चिनगारियां निकलने लगीं।।84।।

पञ्चापि ते चमूनाथा विसृष्टैरेकहेलया ।
स्फुरत्फलैः शरकुलैर्बभ्रुसेनाममर्दयन् ॥ ८५ ॥

उन पांचों सेनापतियों ने एक साथ बाणों की वर्षा उस नेवलों की सेना के ऊपर की और फड़कते हुए बाणों अग्रभागों से नेवलों की सेना का मर्दन कर डाला।।85।।

इतस्ततश्चमूनाथक्षिप्तैश्च शरकोटिभिः ।
विशीर्णगात्रा नकुला नकुलीं पर्यवारयन् ॥ ८६ ॥

उन सेनापतियों के द्वारा चारों तरफ से की गई बाणों की बौछार से घायल हुए नकुल भगवती नकुली के पास पहुंचे।।86।।

अथ सा नकुली वाणी वाङ्मयस्यैकनायिका ।
नकुलानां परावृत्या महान्तं कोपमास्थिता ॥८७॥

इसके बाद वाङ्मय की एक नायिका वाणी नकुल कुलों से घिरी हुई बहुत बड़े कोप से कुपित हुईं।।87।।

अक्षीणनकुलं नाम महास्त्रं सर्वतोमुखम् ।
वह्निज्वालापरीतात्रं संदधे शार्ङ्गधन्वनि ॥ ८८ ॥

तथा कोप में भरकर उस नकुली देवी ने अक्षीणनकुल नामक महान् अस्त्र को जो सभी ओर से मार करता था उसे शार्ङ्ग धनुष में चढ़ाया।।88।।

तद्वतो विनिष्ठयूता नकुलाः कोटिसंख्यकाः ।
वज्राङ्गा वज्ररोमाणो वज्रदन्ता महाजवाः ॥८९॥

उस अक्षीण नकुल अस्त्र के संधान से उसमें से करोड़ों नकुल प्रकट हुए उनके अंग वज्र जैसे तथा रोम (केश) वज्र जैसे और दांत वज्र जैसे मजबूत और वे सभी प्रकट हुए नेवले महावेगना वाले थे।।89।।

वज्रसाराश्च निबिडा वज्रवालभयंकराः ।
वज्राकारनखैस्तूर्ण दारयन्तो महीतलम् ॥ ९० ॥

तब उस अस्त्र से निकले वे नेवले वज्रांग थे उनके रोम वज्र जैसे और भयंकर थे उनके नख वज्र जैसे सुदृढ़ जो शीघ्र ही धरती को खोद देते थे।।90।।

वज्ररत्नप्रकाशेन लोचनेनोपशोभिताः ।
वज्रसंपातसदृशनासासीत्कारकारिणः ॥ ९१ ॥

वज्ररत्न के प्रकाश जैसे चमकते हुए लोचनों से सुशोभित वज्रपात से जो कर्ण कर्कशध्वनि होती है वेसी ही नासिका की सीत्कार ध्वनि उनकी नासिकाओं से हो रही थी।।91।।

मर्दयन्तः सुरारातिसैन्यं दशनकोटिभिः ।
पराक्रमं बहुविधं तेनिरे ते निरेनसः ॥ ९२ ॥

वे नेवले अपने दांतों की पंक्तियों से असुरों की सेना को काटते हुए मर्दन करते हुए उन्होंने अनेकों प्रकार से पराक्रम का विस्तार किया।।92।।

एवं नकुलकोटीभिर्वज्रघोरैर्महानखैः ।
विदष्टाः प्रत्यवयवं विनेशुर्दानवाधमाः ॥ ९३ ॥

इस प्रकार करोड़ों नकुलों (नेवलों) ने अपने वज्र के जैसे भयानक बड़े बड़े नखों से उन दानवों

के सभी अंगों को छिन्न भिन्न किया जिससे अधम दानव समूह विनाश को प्राप्त हो गए।।93।।

एवं वज्रमयैर्बभ्रुमण्डलैः खण्डिते बले ।
शताक्षोहिणिका संख्ये स्वस्वमात्रावशेषिताः ॥९४॥

इस प्रकार वज्रमय नेवलों द्वारा समस्त असुर सेना के खण्डित हो जाने पर उस सो अक्षौहिणी संख्या वाली सेना में जब वे केवल सेनापति ही बचे।।94।।

अतित्रासेन रोषेण गृहीताश्च चमूवराः ।
संग्राममधिकं तेनुः समाकृष्टशरासनाः ॥ ९५ ॥

तब अत्यन्त त्रास से रोष पूर्वक उन सेनानायकों ने अपने धनुषों को लेकर उस संग्राम का विस्तार किया।।95।।

तैः समं बहुधा युद्धं तन्वाना नकुलीश्वरी ।
उत्प्लुत्य गरुडारूढा निपपात रणाङ्गणे ॥ ९६ ॥

उन असुरों के साथ अनेक प्रकारों से युद्ध करती हुई वे नकुलेश्वरी देवी उछलकर गरुड़ की पीठ पर बैठकर रणाङ्गण में पहुंचीं।।96।।

महाजवेन तार्येण गत्वा सा नकुलीश्वरी ।
पट्टसेन करङ्कस्य चिच्छेद कठिन शिरः ॥ ९७ ॥

और गरुड़ारूढ़ नकुलेश्वरी बड़े वेग से पहुंची और पट्टसशस्त्र द्वारा उस करंक का भयानक सिर धड़ से अलग कर दिया।।97।।

काकवासितमुख्यानां चतुर्णामपि वैरिणाम् ।
उत्पत्योत्पत्य ताक्ष्यैंण व्यलुनादसिना शिरः ॥९८॥

कौओं की तरह कांव कांव करने वाले उन शेष चारों बैरियों के सिर उन गरुड़ पर सवार देवी ने उड़उड़ कर तलवार से काट डाला।।98।।

तादृशं लाघवं दृष्ट्वा नकुल्या श्यामलाम्बिका ।
बहु मेने महासत्वां दुष्टा सुरविनाशिनीम् ॥९९॥

नकुलेश्वरी की उस लाघव भरी पराक्रम चेष्टा को देख भगवती श्यामलाम्बिका ने उस महाशक्ति दुष्ट असुरों को मारने वाली का बहुत सम्मान किया।।99।।

निजाङ्गदेवतात्वं च तस्यै श्यामाम्बिका ददौ ।
लोकोत्तरे गुणे दृष्टे कस्य न प्रीतिसम्भवः ॥१००॥

उन भगवती श्यामा ने उसे अपनी अंगदेवता का पद दे दिया लोकोत्तर गुण के दिखने पर किसका

सम्मान नहीं होगा अवश्य होगा।।100।।

हतशिष्टा भीतभीताः शून्यकायपलायिताः ।
तमुदन्तं ततः श्रुत्वा भण्डश्चण्डो रुषाभवत् ॥१०१॥

मरने से बचे आसुर शून्यक नगर की तरफ भाग गये, यह वृत्तान्त जब भण्ड ने सुना तब भयंकर क्रोधित हुआ।।101।।

इति श्रीब्रह्माण्डपुराणे उत्तरखण्डे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने करङ्ककादिपञ्चसेनापतिवधो नाम अष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

॥श्रीमन्महागणाधिपतये नमः।।

श्रीमाताललिताम्बायै नमः श्रीपादुकां पूजयामि नमः॥

ॐ वन्दे गुरुपदद्वन्द्वं अवाङ्मनसगोचरम्॥

रक्तशुक्ल प्रभामिश्रमतर्क्यं त्रैपुरं महः॥

ॐ आराध्यदेवं भक्तानां कलिदोषविनाशकम्॥

वन्दे श्री गिरिजानन्दं शारदाश्रीमठाधिपम्।।

ॐ अखण्डं यस्यज्ञानञ्च भक्तिर्यस्यानपायिनी।।

शारदाज्योतिरीशस्य दर्शनं (पूजनं, वन्दनं) शुभमस्तुनः।।

एकोनविंशोऽध्यायः॥१९॥ 103 श्लोकात्मकः

[बलाहकादिसप्तसेनापतिवधः॥]

॥हयग्रीव जी अगस्त्य जी से आगे बोले-ः

हतेषु तेषु रोपान्वो निश्वसशून्यकेश्वरः।
कुटिलाक्षमिति प्रोचे युयुत्साव्याकुलाशयः ॥१॥

उन करंगकादि पांच सेनापतियों के युद्ध में मारे जाने पर गहरी सांसे लेता हुआ क्रोधान्ध होकर वह शून्यक नगर का स्वामी भण्ड युद्ध करने की इच्छा से आकुल कुटिलाक्ष से बोला।।1।।

भद्र सेनापतेऽस्माकमभद्रं समुपागतम् ।
करङ्काद्याश्चमूनाथाः कन्दलद्भुजविक्रमाः ॥ २॥

भद्र सेनापति! अब हम लोगों की अभद्र विनाश कारी परिस्थितियां सामने आ गई हैं, हमारे करंकादि पांच सेनापति अपनी भुजाओं का पराक्रम दिखाकर।।2।।

सर्पिणीमायया सर्वगीर्वाणमद्भञ्जनाः ।
पापीयस्या तया गूढमायया विनिपातिताः ॥ ३॥

जो करंकादि समस्त देवताओं का मद खण्डित कर देने वाले थे वे उस सर्पिनी की माया से सफल हो रहे थे पर वे भी उस पापिनी नकुली की गूढ़माया से मार दिये गए।।3।।

बलाहकप्रभृतयः सप्त ये सैनिकाधिपाः ।
तानुदमभुजासत्वान्प्रहिणु प्रथनं प्रति ॥४ ॥

ये जो बलाहकादि सात सेनापति हैं उन प्रचंड भुजबल वालों को इस युद्ध में भेजो।।4।।

त्रिशतं चाक्षोहिणीनां प्रस्थापय सहैव तैः ॥५॥

तीन सौ अक्षौहिणी सेनाओं के साथ ही वे जावें।।5।।

ते मर्दयित्वा ललितासैन्यं मायापरायणाः ।
विजयाग्रेसरा भूयः संप्राप्स्यन्ति ममान्तिकम् ६

वे माया में कुशल ललिता की सेना का मर्दन करके उस ललिता को मेरे पास विजयी होकर अग्रणी होकर लेकर आयेंगे।।6।।

कीकसागर्भसजातास्ते प्रचण्डपराक्रमाः ।
बलाहकमुखाः सप्त भ्रातरो जयिनः सदा ।
तेषामवश्यं विजयो भविष्यति रणाङ्गणे ॥७॥

वे कीकसा के गर्भ से उत्पन्न हुए हैं प्रचण्ड पराक्रमी हैं उनके नाम बलाहक प्रमुख सात भाई हैं जो सदैव विजयी होते आये हैं इस युद्ध में भी वे अवश्य ही विजयी होकर आयेंगे।।7।।

इति भण्डासुरेणोक्तः कुटिलाक्षः समाह्वयत् ।
बलाहकमुखान्सप्त सेनापालान्मदोत्कटान् ॥८॥

इस प्रकार भण्डासुर के कहने पर कुटिलाक्ष ने उन बलाहक प्रमुख सात मद से उत्कट सेनापतियों को बुलवाया।।8।।

बलाहकः प्रथमतस्ततः सूचीमुखोऽपरः ।
अन्यः फालमुखश्चैव विकर्णो विकटाननः ॥९॥

भण्ड के आदेश से कटिलाक्ष उन सातों को बुलवाया उनके नाम ये थे 1 बलाहक, प्रथम तथा 2 सूचीमुख दूसरा, फिर फालगुख, 4 विकर्ण, 5 विकटानन।।9।।

करालाक्षः करटकः सप्तैते वीर्यशालिनः ।
भण्डासुरं नमस्कृत्य युद्धकौतूहलोल्वणाः ॥१०॥

6 किरालाक्ष और 7 करकट ये सातों युद्ध में कौतुहल उत्पन्न करने वाले पराक्रमी थे उन्होंने आकर भण्डासुर को प्रणाम किया।।10।।

कीकसासूनवः सर्वे भ्रातरोऽन्योन्यमादृताः ।
अन्योन्यसुसहायाश्च निरगुर्नगरान्तरात् ॥११॥

वे सातों सेनापतिगण कीकसा के पुत्र थे वे सभी भाई एक दूसरे के सहायक बनकर आसपास रहते थे; और सहायक थे वे नगर के मध्य से युद्ध के लिये निकले।।11।।

त्रिशताक्षोहिणी सेना तानन्वगगमत्तदा ।
उल्लिखन्ती केतुजालैरम्बरे घनमण्डलम् ॥१२॥

उन सातों सेनापतियों के पीछे तीन सौ अक्षौहिणी सेना भी चलने लगी।12।।

घोरसंराविणी पादाघातैर्मर्दित मेदिनी ।
पिबन्ती धूलिकाजालैरशेषानपि सागरान् ॥१३॥

घोर संग्राम करने वाली उस सेना के पैरों के आघात से पृथिवी धूलियों से समस्त सागरों को मानो पी रही थी।।13।।

भेरीनिःसाणतम्पोट्टपणवानकनिखनैः ।
नभोगुणमयं विश्वमादधाना पदेपदे ॥१४॥

युद्ध भेरी की ध्वनि तम्पोट्ट पणवआनक दुन्दुभियों के भयानक स्वर आकाश के गुण वाला पूरे विश्व में व्याप्त हो गया।।14।।

त्रिशताक्षोहिणीसेनां तां गृहीत्वा मदोद्धताः ।
प्रपेष्टुमिव विश्वस्य कैकसेयाः प्रतस्थिरे ॥१५॥

तीन सौ अक्षौहिणी सेना को लेकर मदोद्धत कीकसा के पुत्र विश्व को मर्दित करने के जैसे युद्ध क्षेत्र के लिये प्रस्थित हुए।।15।।

रोषारुणमुखाः सूर्यमण्डलोद्दीप्तकङ्कटाः ।
उद्दीप्तशस्त्राभरणाश्चेलु प्रोर्ध्वकेशिनः ॥१६॥

क्रोध से उनका मुखलाल हो रहा था, वे सूर्य मण्डल के समान चमक रहे थे चमचमाते शस्त्रों को लिये हुए बड़े बड़े ऊर्ध्वकेशों वाले चले।।16।।

सप्तलोकान्प्रमथितुं प्रेषिताः पूर्वमुत्थिताः ।
भण्डासुरेण महता जगद्विजयकारिणा ॥१७॥

उन सातों वीरों को पहिले भण्डासुर ने सातों लोकों को उन्मथित करने के लिये भेजा था उस भण्डासुर को जगद्विजय मिली थी।।17।।

सप्तलोकविमर्देन तेन दृष्टा महाबलाः ।
प्रेषिता ललितासैन्यं जेतुकामेन दुर्धिया ॥१८॥

पूर्व युद्धों में जगद्विजय होने से वे सातों वीर भण्ड की दृष्टि में थे इसीलिये उस दुष्ट बुद्धि ने जीतने की कामना से उन सेनापतियों को भेजा।।18।।

ते पतन्तो रणतलमुज्ज्वलच्छस्त्रपाणयः ।
शक्तिसेनामभिमुखं सक्रोधमभिदुद्रुवुः ॥१९॥

वे सातों सेनापतिगण रणतल को उछलते शस्त्रों को हाथों में लेकर शक्ति सेना की ओर क्रोध में भरकर दौड़े।।19।।

मुहुः किलकिलारावैर्घोषयन्तो दिशो दश ।

देव्यास्तु सैनिकं यत्र तत्र ते जग्मुरुद्धताः ॥२०॥

वे बार बार किल किला ध्वनियों से दसों दिशाओं को गुंजारित करते हुए देवी के सैनिक जहां थे वहां वे लोग पहुंचे।।20।।

सैन्यं च ललितादेव्याः सन्नद्धं शस्त्रभीषणम् ।

अभ्यमित्रीणमभवद्बद्धभ्रुकुटिनिस्वनम् ॥ २१ ॥

भगवती ललिता देवी की सेना तैयार थी भीषण शस्त्रों को तैयार कर लिया था, ऐसी सेना के साथ भ्रुकुटी टेढ़ी करके निष्ठुर युद्ध होने लगा।।21।।

पाशिन्यो मुसलिन्यश्च चक्रिण्यश्चापरा मुने ।

मुद्गरिष्यः पट्टिसिन्यः कोण्डिन्यस्तथा मुने ॥२२॥

ललिता भगवती की सेना में कोई शक्ति पाश लिये हुए थी कोई मुसल लिये थी कोई चक्र कोई मुद्‌गर कोई पट्टिस और धनुष लिये हुए थी।।22।।

अनेकाः शक्तयस्तीव्रा ललितासैन्यसंगताः ।

पिबन्त्य इव दैत्याब्धि संनिपेतुः सहस्त्रशः ॥२३॥

अनेकों तीव्र शक्तियां ललिता भगवती की सेना में थीं वे सभी दैत्यरूपी सागर को मानों पी जायेंगी इस प्रकार हजारों की संख्या में शास्त्र लेकर टूट पड़ीं।।23।।

आयातायात हे दुष्टाः पापिन्यो वनिताधमाः ।

मायापरिग्रहैर्दूरं मोहयन्त्यो जडाशयान् ॥ २४ ॥

जब युद्धारंभ हुआ तो उन बलाहकादि सात सेनापतियों ने आवाहन किया कि आओ! आओ! अरी दुष्ट पापिनि अधम स्त्रियों तुम अपनी माया के बन्धनों से जडाशय मूर्खों को मोहित कर सकती हो।।24।।

नेष्यामो भवतीरद्य प्रेतनाथनिकेतनम् ।

श्वसद्भुजगसंकाशैर्बाणैरत्यन्तभीषणैः ॥ २५ ॥

हम लोग तुम सभी को आज प्रेतनाथ के घर ले जायेंगे इसके लिये ये पैने पैने बाण भुजंडों जैसे ये अत्यन्त भयंकर प्रहार करने वाले हैं उनसे ही तुम लोगों को वश में करेंगे।।25।।

इति शक्तीर्भर्त्सयन्तो दानवाश्चक्रुराहवम् ।

शक्तयश्चापि संक्रुद्धा दानवान्प्रति कुम्भज ॥२६॥

इस प्रकार दानव शक्तियों की निन्दा करते हुए युद्ध करने लगे वहीं वे शक्तियां भी हे कुम्भज!

दानवों के प्रति क्रुधित होकर युद्ध करने लगीं।।26।।

रोषेण महताविष्टाश्चक्रुर्युद्धं सुदारुणम् ॥ २७ ॥

बड़े रोष के साथ अत्यन्त दारूण युद्ध उन शक्तियों ने किया।727।।

काचिच्चिच्छेद दैत्येन्द्रं कण्ठे पट्टिसपातनात् ।
तद्गलोल्लुठितो रक्तपूर ऊर्ध्वमुखोऽभवत् ॥ २८ ॥

उस आरंभ हुए युद्ध में किसी शक्ति ने भाले से दानव की गर्दन काट दी उसके गले से निकल कर गले के पूर से उसका मुख ऊपर उठ गया।।28।।

तत्र लग्ना बहुतरा गृध्रा मण्डलतांगताः ।
तेनैव प्रेतनाथस्य छत्रच्छविरुदञ्चिता ।। २९ ॥

उसके खून को पीने के लिये गृध्रों को मण्डल वहां आ गया उसने ही प्रेतनाथ के छत्र की छवि बिगड़ गयी अर्थात वह छत्र की शोभा चिल्लाने में बदल गयी।।29।।

काचिच्छक्तिः सुराराति मुक्तशक्त्यायुधं रणे ।
लुनतच्छक्तिनैकेन बाणेन व्यलुनीत च ॥ ३० ॥

कोई शक्ति असुर सेना को रण में मुक्त शक्ति अस्त्र से लड़ रही थी उस शक्ति ने उस आयुध को एक बाण मारकर काट दिया।।30।।

एका हस्तिनमारूढा कस्यचिदैत्यदुर्मतेः ।
उरःस्थले स्वकरिणो वप्राघातमशिक्षयत् ॥ ३१ ॥

कोई एक शक्ति हाथी में बैठकर युद्धकर रही थी उसने किसी दैत्य के वक्षःस्थल पर अपने हाथी के द्वारा व प्राघात कर रही थी अर्थात हाथी के बड़े दांतों के आघात से उन दुर्मति दैत्यों को फेंक रहे थे।।31।।

काचित्प्रतिभटारूढं दन्तिनं कुम्भसीमनि ।
खड्गेन सहसा लूत्वा स्वकुचस्य प्रियं व्यधात् ॥ ३२ ॥

कोई शक्ति विरुद्ध दैत्य के हाथी में बैठे हाथी के गण्डस्थल में अचानक खड्ग प्रहार से छिन्न कर अपने स्तनों को प्रिय कर रही थी।।32।।

करमुक्तेन चक्रेण कस्यचिद्देववैरिणः ।
धनुर्दण्डं द्विधा कृत्वा स्वभ्रुवोः प्रीतिमातनोत् ॥ ३३ ॥

किसी देवी ने हाथ से छोड़े गए चक्र से किसी देव शत्रु को धनुष दो खण्ड का कर दिया इससे अपनी भौंहों की प्रीति को बढ़ाया।।33।।

शक्तिरन्या शरैः शातैः शातयित्वा विरोधिनः ।
कृपाणयष्टिरोमाल्याः स्वकीयाया मुदं व्यधात् ॥ ३४॥

कोई अन्य शक्ति ने पैने बाणों से विरोधी को बींधकर अर्थात उस दैत्य की कृपाण यष्टि को छिन्न कर अपनी शरीर यष्टि को हर्षित किया।।34।।

काचिन्मुद्गरपातेन चूर्णयित्वा विरोधिनः ।
रथचक्रं नितम्बस्य स्वस्य तेनातनोन्मुदम् ॥ ३५॥

किसी शक्ति ने मुद्गर के प्रहार विरोधियों को चकनाचूर करके अपने रथ के पहिये के नितम्ब से अर्थात कूल्हे से अपना आनन्द बढ़ाया।।35।।

रथकूबरमुग्रेण कस्यचिद्दानवप्रभोः ।
खड्गेन भिन्दती स्वस्य प्रियमूर्वोस्ततान ह ॥३६॥

किसी शक्ति ने किसी दानव राज के रथ कूबर को उग्र खड्ग से छिन्न भिन्न किया उससे उसने अपने प्रिय उसको विस्तृत किया।।36।।

अभ्यन्तरं शक्तिसेना दैत्यानां प्रविवेश च ।
प्रविवेश च दैत्यानां सेना शक्तिबलान्तरम् ॥३७॥

शक्ति सेना दैत्यों के बीच प्रवेश कर गयी और दैत्यों की सेना शक्ति सेना के बीच प्रवेश कर गई थी।।37।।

नीरक्षीरवदत्यन्ताश्लेषः शक्तिसुरद्विषाम् ।
संकुलाकारतां प्राप्तो युद्धकालेऽभवत्तदा ॥ ३८ ॥

जैसे पानी और दूध मिलकर एक हो जाते हैं ऐसे ही शक्ति और असुर एक दूसरे झुण्डों में मिलकर हो गये उस युद्धकाल में दोनों सेनाएं संकुलाकारता को प्राप्त हो गईं।।38।।

शक्तीनां खड्गपातेन लुनशुण्डारद्वयाः ।
दैत्यानां करिणो मत्ता महाक्रोडा इवाभवन् ॥३९॥

शक्तियों के खड्ग प्रहार से दैत्यों के उन्मत हाथी सूंड कट जाने से एवं बड़े दांतों (खीसों) के टूट जाने से वे उन्मत्त गेंडे जैसे हो गए।।39।।

इत्थं प्रवृत्ते समरे वीराणां च भयङ्करे ।
अशक्ये स्मर्तुमप्यन्तःकातरत्ववतां नृणाम् ।
भीषणानां भीषणे च शस्त्रव्यापारदुर्गमे ॥ ४० ॥

इस प्रकार वीरों के भयंकर युद्ध के प्रवृत्त होने पर वह युद्ध कायरता लिये हुए मनुष्यों द्वारा स्मरण

भी नहीं किया जा सकता था उसमें शस्त्रों के व्यापार से प्रयोग से उपयोग से भीषण युद्ध में भीषण था।।40।।

बलाहको महागृध्रं वज्रतीक्ष्णस्वकञ्चुकम् ।
कालदण्डोपमं जङ्घाकाण्डे चण्डपराक्रमम् ॥४१॥

ये सात असुर सेनापति थे उनमें जोबलाहक नाम का था वह किसी से भी नहीं हारने वाला था वह महागृध्र के ऊपर सवार होकर युद्ध कर रहा था उसने वज्र से भी कठिन तीखा अपना कवच पहिने था कालदण्ड के समान था उसकी जांघें उग्र पराक्रम के लिये उचित आधार थीं, अर्थात् चण्ड पराक्रम के लिये थीं।।41।।

संहारगुप्तनामानं पूर्वमग्रेः समुत्थितम् ।
धूमवद्धूसराकारं पक्षक्षेपभयङ्करम् ॥ ४२ ॥

उस महागृध का नाम संहारगुप्त था वह पूर्व में आगे उपस्थित हो जाता था धूंए जैसे धूसर आकार वाला था, उसे पंखों के फैलने वह और भी भयंकर प्रतीत होता था।।42।।

आरुह्य विविधं युद्धं कृतवान्युद्धदुर्मदः ।
पक्षौ वितत्य क्रोशार्धसंमितौ भीमनिस्वनौ ॥४३॥

वह संहार गुप्त नामक गृध्र उसके पंख आधे कोस तक फैलते थे उनसे फड़फड़ाने से बड़ी तीव्र ध्वनि होती थी, उस पर सवार होकर उस युद्ध दुर्मद ने विविध युद्धों को किया।।43।।

अङ्गारकुण्डवत्तुण्डं विदार्याभिक्षयच्चमूम् ।
संहारगुप्तः सहसा गृध्रः क्रूरविलोचनः ।
बलाहक मुवाहोच्चैराकृष्टधनुषं रणे ॥ ४४ ॥

वह संहारगुप्त नाम वाला महागृध्र बड़ी क्रूर आंखों वाला था उसकी चोंच अंगारकुण्ड के समान थीं जो सैनिकों को विदीर्ण करके भक्षण कर रही थी उस गृध्र ने युद्ध में धनुष को खींचे हुए बलाहक को बहुत ऊंचाई तक आकाश में ले जाता था।।44।।

बलाहको धनुर्धन्वनगृधपृष्ठकृतस्थितिः ।
सपक्षशैलकूटस्थो बलाहक इवाबभौ ।।॥ ४५ ॥

उस महागृध्र की पीठ में धनुष की टंकार करता हुआ पंखे वाले शैलकूट पर्वत पर बलाहक (मेघ) हो।।45।।

सूचीमुखश्च दैत्येद्रः सूचीनिष्ठुरपक्षतिम् ।
काकवाहनमारुह्य कठिन समरं व्यधात् ॥ ४६ ॥

दूसरा सेनापति सूचीमुख (सूई के समान) कठोर पंखवाले काकवाहन पर आरूढ़ होकर कठिन युद्ध उस मैदान में करने लगा।।46।।

मत्तकासरशृङ्गाभं चञ्चूदण्डं समुद्वहन्।
कालदण्डप्रमाणेन जङ्घाकाण्डेन भीषणः ॥४७॥

उस कौए की चोंच पर्वत के श्रृंग जैसी थी और उसकी जंघाएं कालदण्ड के जैसी सुदृढ़ और भयानक थीं।।47।।

पुष्कलावर्तकसमौ जम्बालसदृशद्युती।
क्रोशमात्रायतौ पक्षावुभावपि समुद्वहन् ॥४८॥

वह प्रलयकालीन पुष्कल और आवर्तक मेघों के समान कान्ति वाला था साथ ही जल में होने वाली सिवार के समान कान्ति थी उसके दोनों पंख कोश मार्ग परिमाण तक लम्बे थे।।48।।

सूचीमुखाधिष्ठितोऽसा करटः कटुवाशितः।
ममर्द चञ्चुघातेन शक्तीनां मण्डलं महत् ॥४९॥

सुई के समान तेज चोंच से युक्त उसका मुख था तथा हाथी के गंडस्थल के समान उसका गण्डस्थल था और बहुत तेज दुर्गन्ध फैल रही थी, ऐसा वह काक शक्ति सेना पर चोंच से प्रहार कर रहा था।।49।।

अथ फालमुखः फालं गृहीत्वा निजमायुधम्।
कङ्कमारुह्य समरं चकार गिरिसंनिभम्॥५०॥

इसके बाद तीसरा सेनापति जिसका नाम फालमुख था वह अपने आयुध फाल को लेकर बगुले पर बैठकर वह पर्वत के समान दिखाई दे रहा था उसने युद्ध किया।।50।।

विकटाख्यश्च दैत्येन्द्रश्चमूभर्ता महाबलः।
भेरुण्डपतगारूढः प्रचण्डं युद्धमातनोत् ॥५१॥

विकट नामक दैत्य सेनापति महाबली बर्छी लेकर प्रचण्ड युद्ध का विस्तार कर रहा था।।।51।।

विकटाननामानं विलसत्पट्टसायुधम्।
उवाह समरे चण्डः कुक्कटोऽतिभयङ्करः ॥५२॥

विकटानन नामक सेनापति को जो पट्टस नामक शस्त्र लिये था उस समर में अतिभयानक कुक्कुट ने उसे धारण किया था।।52।।

गर्जन्कण्ठस्थरोमाणि हर्षयञ्ज्वलदीक्षणः।
पश्यन्पुरः शक्तिसैन्यं चचाल चरणायुधः ॥५३॥

वह कुक्कुट गर्जना करता हुआ कंठ के रोमों को हर्षित करता हुआ जलती आंखों वाला सामने शक्ति सैन्य को देखता हुआ चल रहा था।।53।।

करालाक्षश्चमूभर्ता षष्ठोऽत्यन्तगरिष्ठदोः ।
वज्रनिष्ठुरघोषश्च प्राचलत्प्रेतवाहनः ॥५४ ॥

वह छटवां सेनापति करालाक्ष चमूभर्ता था अत्यन्त वज्र के समान वाणी बोलने वाला था वह प्रेतवाहन पर चल रहा था।।54।।

तपःश्मशानमन्त्रेण तेन संसाधितः पुरा ।
प्रेतो भूतसमाविष्टस्तमुवाह रणाजिरे ॥५५ ॥

उस प्रेत को करालाक्ष ने श्मशान मंत्र द्वारा पूर्वकाल में सिद्ध किया थ, अतः उसमें प्रेत तथा भूत समाविष्ट हो गया था, रण क्षेत्र में उसे वाहन बनाया था।।55।।

अवाङ्मुखो दीर्घबाहुः प्रसारितपदद्वयः ।
प्रेतो वाहनतां प्राप्तः करालाक्षमथावहत् ॥५६॥

वह प्रेत जो वाणी और मुख से रहित था परन्तु लम्बी बाहें थीं दो पैरों वाला था इस वह प्रेत वाहन बना और करालाक्ष ने उस पर बैठकर युद्ध में गया।।56।।

अन्यः करटको नाम दैत्यसेनाशिखामणिः ।
मर्दयामास शक्तीनां सैन्यं वेतालवाहनः ॥५७॥

एक अन्य सेनापति दैत्य सेना का शिखामणि था वह बेताल को वाहन बनाकर शक्ति सेना को पीड़ित कर रहा था।।57।।

योजनायतमूर्तिः स वेतालः क्रूरलोचनः ।
श्मशानभूमौ वेतालमत्रेणानेन साधितः ।
मर्दयामास पृतनां शक्तीनां तेन देशितः ॥५८॥

वह बेताल योजन पर्यन्त विशाल शरीर था बड़ी क्रूर आंखें थीं करटक ने श्मशान भूमि में बेताल मंत्र से उसे सिद्ध किया था, उसके आदेश से वह बेताल शक्ति सेना को पीड़ित कर रहा था।।58।।

तस्य वेतालवर्यस्य वर्तमानोंऽससीमनि ।
बहुधायुध्यत तदा शक्तिभिः सह दानवः ॥५९॥

उस बेताल के कंधों पर वर्तमान वह दानव शक्तियों के साथ अनेकों प्रकार से युद्ध कर रहा था।।59।।

एवमेते खलात्मानः सप्त सप्तार्णवोपमाः ।
शक्तीनां सैनिकं तत्र व्याकुलीचक्रुरुद्धताः ॥६०॥

इस प्रकार ये दुष्ट सात सेनापति सात समुद्रों के समान थे, प्रातः उन सातों ने जो उद्धत थे शक्तियों के सैनिकों को व्याकुल कर दिया।।60।।

ते सप्त पूर्व तपसा सवितारमतोषयन् ।
तेन दत्तो वरस्तेषां तपस्तुष्टेन भास्वता ॥ ६१ ॥

उन सातों ने पूर्वकाल में तपस्या के द्वारा सविता को प्रसन्न किया था उनकी तपस्या से सन्तुष्ट भास्कर ने वर दिया था।।61।।

कैकसेया महाभागा भवता तपसाधुना ।
परितुष्टोऽस्मि भद्रं वो भवन्तो वृण्वतां वरम् ॥ ६२॥

सूर्य ने प्रकट होकर उन लोगों से कहा हे महाभाग कैकस्य के पुत्रों मैं आप लोगों के तप से परितुष्ट हूं तुम लोगों का कल्याण हो आप लोग वर मांगो।।62।।

इत्युक्ते दिननाथेन कैकसेयास्तपस्कृतः ।
प्रार्थयामासुरत्यर्थ दुर्दान्तं वरमीदृशम् ॥ ६३ ॥

दिननाथ सूर्य के ऐसा कहने पर वे तपस्वी कैकसेयों ने अत्यन्त दुर्दान्त ऐसे अत्यन्त असहनीय वर की प्रार्थना की।।63।।

रणेषु संनिधातव्यमस्माकं नेत्रकुक्षिषु ।
भवता घोरतेजोभिर्दहता प्रतिरोधिनः ॥ ६४ ॥

उन दानवों ने कहा कि युद्धों में आप हमारे नेत्रों की पुतलियों में रहें प्रतिरोधि आप के घोर असहनीय तेज से दग्ध हो जाये।।64।।

त्वया यदा संनिहितं तपनास्माकमक्षिषु ।
तदाक्षिविषयः सर्वो निश्चेष्टो भवतात्प्रभो ॥ ६५॥

जब हमारी आंखों से आपके द्वारा सन्निहित तेज उसके द्वारा हम जिसे भी देखें वह चेष्टारहित हो जाये।।।।65।।

त्वत्संनिधिसमृद्धेन नेत्रेणास्माकमीक्षिताः ।
स्तब्धशस्त्रा भविष्यन्ति प्रतिरोधकसैनिकाः ॥६६॥

हे सूर्य देव! आपके सान्निध्य हो हमारे नेत्रों से देखे गए शत्रुगणों के शस्त्रास्त्र स्तब्ध हो जायें चल न सकें।।66।।

ततः स्तब्धेषु शस्त्रेषु वीक्षणादेव नः प्रभो ।
निश्चेष्टा रिपवोऽस्माभिर्हन्तव्याः सुकरत्वतः ।।६७।।

तब शत्रुओं के समस्त शस्त्रों के स्तब्ध हो जाने पर रिपु चेष्टारहित हो जायेंगे तब उन्हें मारने में हमें कोई असुविधा नहीं होगी।।67।।

इति पूर्व वरः प्राप्तः कैकसे यैर्दिवाकरात् ।
वरप्रदानं यत्तत्र युद्धे सस्मेरुरुद्धताः ॥ ६८ ॥

इस प्रकार की कैकसी के सातों पुत्रों ने सूर्यदेव से जैसा वर मांगा था वैसा ही मिल गया अतः वे सभी मदोद्धत होकर युद्ध क्षेत्र में विचरण कर रहे थे।।68।।

अथ सूर्यसमाविष्टने त्रैस्तैर्विनिरीक्षिताः ।
शक्तयः स्तब्धशस्त्रौघा विफलोत्साहतां गताः॥ ६९ ॥

इसके अनन्तर सूर्य जिनके नेत्रों में समाविष्ट हो गया था ऐसे उन सातों सेनापतियों निरीक्षण की की जाती हुई उन शक्तियों के द्वारा बार बार शस्त्रों के प्रयोग करने पर भी शस्त्र समूह के स्तब्ध हो जाने से वे सभी निरुत्साहित होने लगीं।।69।।

कीकसातनयैस्तैस्तु सप्तभिः सत्वशालिभिः ।
विष्टम्भितास्त्रशस्त्राणां शक्तीनां नोद्यमोऽभवत् ॥ ७० ॥

सूर्य तेज से शक्तिशाली उन सात कैकसेयों से शक्तियों के शस्त्रास्त्र विष्टंभित हो जाने से वे उद्यम शून्य हो रही थीं।।70।।

उद्यमे क्रियमाणेऽपि शस्त्रस्तम्भेन भूयसा ।
अभिभूताः सनिश्वासं शक्तयो जोषमासत ॥७१ ॥

अत्यधिक शस्त्रों के स्तंभित हो जाने से शक्यिां उद्योग शून्य हो गईं और गहरी श्वांस लेकर शान्त हो गईं।। 71।।

अथ तेऽवसरं प्राप्य नानाप्रहरणोद्यताः ।
व्यमर्दयन्शक्तिसैन्यं दैत्याः स्वस्वामिदर्शिताः ॥ ७२ ॥

शक्तियों के शस्त्र समूहों के स्तंभित होने से निरुद्यम शक्तियों पर अपने स्वामियों के निर्देशानुसार वे दैत्य शक्ति सैन्य को पीड़ित करने लगे।।72।।

शक्तयस्तास्तत्र सैन्ये निर्व्यापारनिजायुधाः ।
अक्षोभ्यन्त शरैस्तेषां वज्रकङ्कटभेदिभिः ॥ ७३ ॥

वे शक्तियां अपनी सेना में अपने सभी शस्त्रास्त्रों को स्तंभित हो जाने के कारण निरुद्यम हो रही

थीं तब वे सातों सेनापति अपने वज्रकवचों को भी भेदने वाले बाणों से शक्तियों को क्षुभित करने लगे।।73।।

शक्तयो दैत्यशस्त्रालिविद्धगात्रस्रुतासृजः ।
सपल्लवा रणे रेजुः कंकेलिलतिका इव ॥ ७४ ॥

वे शक्तियां जिनके समस्त शस्त्रास्त्रादि असुरों के द्वारा निस्तेज कर दिये गये थे तथा वे शक्तियां भी असुरों के शस्त्रों से विंधे घायल शरीर वाली हो रही थीं वे सभी कंकोल की लता जैसी लाल वर्ण की रक्त निकलने से हो रही थीं।।74।।

हाहाकारं वितन्वानाः प्रपन्ना ललितेश्वरीम्
चुक्रुशुः शक्तयः सर्वास्तैः स्तम्भितनिजायुधाः ॥ ७५ ॥

वे घायल शक्तियां जिनके सभी आयुध स्तंभित कर दिये गए थे हाहाकार करती हुईं भगवती ललितेश्वरी के पास जाकर आक्रोश करने लगीं।।75।।

अथ देव्याज्ञया दण्डनाथा प्रत्यङ्गरक्षिणी ।
तिरस्करिणिकादेवी समुत्तस्थौ रणाजिरे ॥ ७६ ॥

उन शक्तियों के निवेदन के बाद भगवती ललिताम्बा ने दण्डनाथा से जो भगवती प्रत्यंगरक्षिणी थीं कहा तो भगवती दण्डनाथा और तिरस्करणी दोनों ही युद्ध स्थल में पहुंच गईं।।76।।

तमोलिप्ताह्वयं नाम विमानं सर्वतोमुखम् ।
महामाया समारुह्य शक्तीनामभयं व्यधात् ॥ ७७

तब तमोलिप्तांग नामक जिसके चारों ओर मुंह थे (द्वार थे) विमान पर महामाया ने बैठकर सभी शक्तियों को अभय का संकेत किया।।77।।

तमालश्यामलाकारा श्यामकञ्चुकधारिणी ।
श्यामच्छाये तमोलिप्ते श्यामयुग्यतुरंगमे ॥ ७८ ॥

तमाल वृक्ष के समान श्यामलाक्षकार वाली श्याम रंग की चोली पहिनी हुई श्याम छाया वाले अंधकार से लिप्त जुते हुए काले घोड़े वाले रथ में।।78।।

वसन्ती मोहनाभिख्यं धनुरादाय सस्वनम् ।
सिंहनादं विनयेपूनवर्पत्सर्पसन्निभान् ॥ ७९ ॥

वसन्ती मोहन नामक धनुष की टंकार करती हुई सिंहनाद करती हुई और सर्पों जैसे बाणों की बौछार करती हुई ।।79।।

कृष्णरूपभुजंगाभानयोमुसलसंनिभान् ।
मोहनास्त्रविनिष्ठयूतान्दैत्या बाणान्न सेहिरे ॥८०॥

काले सर्पों जैसे कृष्ण वर्ण के बाणों की वर्षा से मोहनास्त्र द्वारा व्याथित शत्रु सेना हो गई।।80।।

इतस्ततो मृद्यमाना महामायाशिलीमुखैः ।
प्रकोपं परमं प्राप्ता बलाहकमुखाः खलाः ॥८१॥

महामाया द्वारा फेंके गये बाणों से मर्दित होते हुए वे बलाहक आदि राक्षस गण बड़े प्रकुपित हुए।।82।।

अथो तिरस्करिण्यम्बा दण्डनाथानिदेशतः ।
अन्धाभिधं महाशस्त्रं मुमोच द्विषतां गणे ॥८२॥

इस के अनन्तर भगवती तिरस्कारिणी अम्बा ने भगवती दण्डनाथा के निर्देश से अंध नामक महा अस्त्र को शत्रु समूह पर छोड़ दिया।।82।।

बलाहकाद्यास्ते सप्त दिननाथवरोद्धताः ।
अन्धास्त्रेण निजं नेत्रं दधिरे छादितं यथा ॥८३॥

वे बलाहक आदि सात सेनापति सूर्य के वरदान से उद्धत हो रहे थे पर जब अन्धास्त्र से उनके नेत्रों में अन्धत्व आच्छादित हो गया दूसरे।।83।।

तिरस्करिणिकादेव्या महामोहनधन्वनः ।
उद्गतेनान्धबाणेन चक्षुस्तेषां व्यधीयत ॥८४॥

जब अन्धास्त्र से उन सातों के नेत्रों में अंधकार छा गया, तब तिरस्कारिणी महादेवी के महामोहन धनुष से अंधबाण से उनके नेत्रों से दिखना बंद हो गया।।84।।

अन्धीकृताश्च ते सप्त नतु प्रैक्षन्त किचन ।
तद्वीक्षणस्य विरहाच्छस्त्रस्तम्भः क्षयं गतः ॥८५॥

तिरस्कारिणी द्वारा महामोहन धनुष से छोड़े गए अन्धबाण से वे सातों अब अंधे हो गए उन्हें कुछ भी नहीं दिखाई दे रहा था, अतः न देखने से शस्त्रों का निःस्तेजीकरण होने से शस्त्रों का भी स्तंभन क्षीण हो गया।।85।।

पुनः ससिंहनादं ताः प्रोत्पत्यायुधपाणयः ।
चक्रुः समरसन्नाहं दैत्यानां प्रजिघांसया ॥८६॥

पुनः सिंहनाद करती हुई वे शक्तियां अपने हाथों से अस्त्र धारण करके दैत्यों को मारने की इच्छा से घोर युद्ध करने लगीं।।86।।

तिरस्करिणिकादेवीमग्रे कृत्वा महाबलाम् ।
सदुपायप्रसंगेन भृशं रुष्टा रणं व्यधुः ॥८७॥

युद्धारंभ होने पर शक्तियों ने महाबला तिरस्करिणि का देवी को आगे करके सदुपाय के साथ वे शक्तियां तुष्ट हुईं और फिर क्रोध में भरकर युद्ध करने लगीं।।87।।

साधु साधु महाभागे तिरस्करिणिकाम्बिके ।
स्थाने कृतस्तिरस्कारो दृशामेषां दुरात्मनाम् ॥८८॥

सभी शक्तियों ने कहा हे महाभागे! तिरस्कारिणिकाम्बिके!! आपने जो इन दुरात्माओं के नेत्रों को तेजोरहित कर दिया, यह बहुत ही उचित हुआ, अब अंधे होकर इधर उधर भटक रहे हैं।।88।।

त्वं हि दुर्जननेत्राणां तिरस्कारमहौषधिः ।
त्वया बद्धदृशानेन दैत्यचक्रेण भूयते ॥८९॥

हे अम्ब! आप ही इन दुर्जनों के नेत्रों को अंधा बनाने की महौषधि हो आपके द्वारा बांधी गई आंखों से ये दुष्ट चक्र जैसे इधर उधर चक्कर काट रहे हैं।।89।।

देवकार्यमिदं देवि त्वया सम्यगनुष्ठितम् ।
अस्माद्दृशामजय्येषु यदेषु व्यसनं कृतम् ॥९०॥

हे भगवति! हे देवि!! आपने ही यह शत्रुओं को विवश करने का उत्तम कार्य किया है, हम जैसों को इन अजेयों में विजयी बनाया है और इनकों संकटग्रस्त किया है।।90।।

तत्त्वयैत्र दुराचारानेतान्सप्त महासुरान् ।
निहताँल्ललिता श्रुत्वा संतोषं परमाप्स्यति ॥९१॥

इस कारण अब आपके द्वारा ही दुराचारी इन सातों महासुरों को आपके द्वारा समाप्त किया गया है यह सुनकर ललिता देवी परम संतोष का अनुभव करेंगी।।91।।

एवं त्वया विरचिते दण्डिनी प्रीतिमाप्स्यति ।
मन्त्रिण्यपि महाभागा यास्यत्येव परां मुदम् ॥९२॥

इस प्रकार आपके द्वारा इन दुराचारी सातों के मारे जाने पर देवी दण्डिनी परम प्रसन्न होंगी और भगवती मंत्रिणी भी परम प्रसन्न ही होंगी।।92।।

तस्मात्त्वमेतान्सप्तैव निगृहाण रणाजिरे ।
एषां सैन्यं तु सकलं नाशयाम उदायुधाः ॥९३॥

इस कारण हे देवि! आप ही इन दुष्ट सातों सेनापतियों का निग्रह करो, इधर सभी शक्तियां शस्त्रों

को उठाकर इनकी सेनाओं को समाप्त कर देंगी।।93।।

इत्युक्त्वा प्रेरिता ताभिः शक्तिभिर्युद्धकौतुकात् ।
तमोलिप्तेन यानेन बलाहकबलं ययौ ॥ ९४ ॥

ऐसा कहकर उन शक्तियों ने युद्ध कौतुक से प्रेरित हो तमोलिप्त याने से वे तिरस्कारिणिका देवी बलाहक की सेना की ओर गईं।।94।।

अस्त्रेण च रुषा चान्धं बलाहकमहासुरम् ।
आकृष्य केशेष्वसिना चकर्तान्तर्धिदेवता ॥९५॥

भगवती तिरस्करिणिका ने सूर्य प्रदत्त अस्त्र को अंधास्त्र द्वारा विफल कर दिया, अब उस बलाहक महासुर जो अंधा हो गया था, उसे बालों से पकड़ खींच कर तलवार से उसका सिर छिन्न कर दिया।।95।।

तस्य वाहनगृध्रस्य लुनाना पत्रिणा शिरः ।
सूचीमुखस्याभिमुखं तिरस्करिणिका व्रजत् ॥९६॥

उस बलाहक के सिर कट जाने पर उसके वाहन गृध्र का सिर बाण के प्रहार से छिन्न कर दिया, इसके बाद वे देवी तिरस्करिणिका उस सूचीमुख दानव के सामने आईं।।96।।

तस्य पट्टसपातेन विलूय कठिनं शिरः ।
अन्येषामपि पञ्चानां पञ्चत्वमकरोच्छरैः ॥ ९७ ॥

उस सूचीमुख दानव का सिर तेज धार वाली बर्छी से काट दिया और साथ ही उन पांचों दानवों के सिरों को बाणों के द्वारा उच्छिन्न कर दिया।।97।।

तैः सप्तदैत्यमुण्डैश्च प्रथितान्योन्यकेशकैः ।
हारदाम गले कृत्वा ननर्तान्तर्धिदेवता ॥ ९८ ॥

उन सातों दैत्यों के काटे हुए सिरों को उनके सिरों के केशों से बांधकर उन मुण्डों की माला गले में पहिनकर वे अन्तर्धि देवता खूब प्रसन्न हुईं।।98।।

समस्तमपि तत्सैन्यं शक्तयः क्रोधमूर्च्छिताः ।
हत्वा तद्रक्तसलिलैबह्वीः प्रावाहयन्नदीः ॥ ९९ ॥

उन सातों सेनापतियों की सेनाओं को क्रोध में भरी शक्तियों ने छिन्न भिन्न कर दिया तब वहां रक्त की धाराओं की नदी बह पड़ी।।99।।

तत्राश्चर्यमभूद्भूरि महामायाम्बिकाकृतम् ।
बलाहकादिसेनानीदृष्टिरोधनवैभवात् ॥ १०० ॥

इस प्रकार उस युद्ध भूमि में महामाया अम्बिका के द्वारा किया गया आश्चर्य हुआ वह यह कि बलाहकादि सातों की दृष्टि में सूर्य आवृत्त हो गया अंधकारास्त्र से इससे वे मारे गये।।100।।

हतशिष्टाः कतिपये बहुवित्राससंकुलाः ।
शरणं जग्मुरत्यार्ताः क्रन्दन्तः शून्यकेश्वरम् ॥ १०१ ॥

मरने से बचे कुछ दानव अत्यंत भयभीत व्याकुल होकर शून्यक स्वामी की शरण में चिल्लाते हुए गए।।101।।

दण्डिनी च महामायां प्रशंसन्ती पुनः पुनः ।
प्रसादमन्थरं चक्षुस्तस्यामाधाय पिप्रिये ॥१०२॥

वे शक्तियां दण्डिनी और महामाया की खुली हुई आंखों से देखती हुईं बार बार प्रशंसा कर रहीं थीं।।102।।

साधुसाध्विति तत्रस्थाः शक्तयः कम्प्रमौलयः ।
तिरस्करिणिकां देवीमश्लाघन्त पदे पदे ॥ १०३॥

साधु साधु करती हुई सिर हिलाती हुई वहां शक्तियों ने निरस्करिणी की पदे पदे प्रंशसा की।।103।।

इति श्रीब्रह्माण्डपुराणे उत्तरखण्डे हयग्रीवागस्त्यसवादे ललितोपाख्याने बलाहकादिसप्तसेनापतिवधो नाम एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

॥श्रीमन्महागणाधिपतये नमः।।

श्रीमाताललिताम्बायै नमः श्रीपादुकां पूजयामि नमः॥
ॐ वन्दे गुरुपदद्वन्द्वं अवाङ्गनसगोचरम्॥
रक्तशुक्ल प्रभामिश्रमतर्क्यं त्रैपुरं महः॥
ॐ आराध्यदेवं भक्तानां कलिदोषविनाशकम्॥
वन्दे श्रीगिरिजानन्दं शारदाश्रीमठाधिपम्।।
ॐ अखण्डं यस्यज्ञानञ्च भक्तिर्यस्यानपायिनी।।
शारदाज्योतिरीशस्य दर्शनं (पूजनं, वन्दनं) शुभमस्तुनः।।

विंशोऽध्यायः॥ २०॥ 109 श्लोकात्मकः
[विषङ्गादिपलायनम्॥]

श्री हयग्रीव बोले-ः

ततः श्रुत्वा वधं तेषां तपोबलवतामपि ।
निश्वसन्कृष्णसर्पेन्द्र इव भण्डमहासुरः ॥१॥

भगवती तिर्करिणशक्ति द्वारा उन सातों सेनापतियों के युद्ध में मारे जाने का समाचार सुनकर भण्डासुर सोचने लगा कि वे सातों तपस्या के बल से बली थे उन्हें सूर्य का सानिध्य मिला था, ऐसे वीर भी मारे गए तो वह जैसे काले सर्पराजवत् गहरी सांसे लेने लगा।।1।।

एकान्ते मन्त्रयामास समाहूय सहोदरौ ।
भण्डः प्रचण्डशौण्डीर्यः काङ्क्षमाणो रणे जयम् ।।२।।

युद्ध का समाचार सुनने के बाद रण में विजय की आकांक्षा रखते हुए प्रचण्ड घमण्डी भण्डासुर ने अपने दोनों सहोदरों को बुलवाया।।2।।

युवराजो विशुक्रोऽथ विषकाङ्क्षण यवीयसा।
भण्डासुरं नमस्कृत्य मन्त्रस्थानमुपाविशत्।।३।।

बुलाने की सूचनानुसार युवराज विशुक्र और छोटे भाई विषंग के साथ आये और उन्होंने भण्ड को प्रणाम किया फिर मंत्रस्थान में पहुंचे।।3।।

अत्याप्तैर्मन्त्रिभिर्युक्तः कुटिलाक्षपुरोगमैः।
ललिताविजये मन्त्र चकार कथिताशयः ॥४॥

मंत्र स्थान में अत्यन्त विश्वस्त मंत्रियों कुटिलाक्षादि के साथ भण्डासुर ने ललिता विजय विषय

में गंभीर विचार-विमर्श किया।।4।।

भण्डासुर बोला-ः

अहो बत कुलभ्रंशः समायातः सुरद्विषाम्।
उपेक्षामधुना कर्तुं प्रवृत्तो भगवान्विधिः ॥५॥

अहो! दुःख है कि अब देवों के शत्रु असुरों के कुल का नाश प्रसंग सामने आ गया है आज हम सभी की उपेक्षा करने के लिये बलवान विधि भी प्रवृत्त हो गया है।।5।।

मद्भृत्यनाममात्रेण विद्रवन्ति दिवौकसः।
तादृशानामिहास्माकमागतोऽयं विपर्ययः॥६॥

कहां तो मेरे ये भृत्य हैं इस नाममात्र ये सभी देव प्रमुख भयभीत हो जाते थे, अब हम सभी लोगों का विपरीत समय सामने आ गया है।।6।।

करोति बलिनं क्लीबं धनिनं धनवर्जितम् ।
दीर्घायुषमनायुष्कं दुर्दान्ता भवितव्यता ॥७॥

ये जो भवितव्यता है, बड़ी ही दुर्दान्त है इसके वशीभूत सभी को होना पड़ता है इसके प्रभाव में आश्चर्य तब होता है जब एक बलवान को एक नपुंसक डराता है, एक धनी साधन सम्पन्न को ऐ साधन हीन निर्धन धमकाता है और अधिक क्या एक दीर्घायु वाले को एक आयुहीन धमकाता है।।7।।

क्व सत्त्वमस्मद्बाहूनां केयं दुर्ललिता वधूः।
अकाण्ड एव विधिना पात्यते निष्ठुरः पविः॥८॥

कहां हमारी भुजाओं का बाहुबल और कहां यह दुष्ट ललिता स्त्री। असमय में ही विधि ने हम लोगों के ऊपर निष्ठुर वज्रपात किया है।।8।।

सर्पिणीमाययोदग्रास्तया दुर्दान्तशौर्यया।
अधिसंग्रामभूचक्रं सेनान्यो विनिपातिताः॥९॥

उस सर्पिणी की माया से जो दुर्दान्त पराक्रमवाली थी उसके सहयोग से दुर्दान्त सेनानी भी युद्ध क्षेत्र में मारे गए।।9।।

वरप्रसादाद्देवस्य दिवसानामधीशितुः।
कवलीकृतगीर्वाणाः कैकसेयाश्च पातिताः॥१०॥

दिनों के स्वामी सूर्य देव के उत्तम वरदान से अजेय वे कीकसाके सातों सेनापति भी मारे गए।।10।।

एवमुद्दामदर्पान्धा वनिता कापि मायिनी।
यदि सप्रहरत्यस्मान्धिग्बलं नो भुजार्जितम्॥११॥

इस प्रकार यदि कोई बहुत अधिक दर्पान्ध कोई मायावी स्त्री यदि अचूक प्रहार हम लोगों पर करती है तो हमारी भुजाओं से जीता हुआ बल उसे भी धिक्कार है।।11।।

इमं प्रसङ्ग वक्तुं च जिह्वा जिह्रेति मामकी।
वनिता किमु मत्सैन्यं मर्दयिष्यति दुर्मदा॥१२॥

मेरी जीभ इस प्रसंग को बोलने के लिये लजा रही है, कि एक मद से मतवाली कोई स्त्री मेरी देवजयी सेना का मर्दन करेगी।।12।।

तदत्र मूलच्छेदाय तस्या यत्नो विधीयताम्।
मया चारमुखाज्ज्ञाता तस्या वृत्तिर्महाबला॥१३॥

तो अब उसके समूल उच्छेद करने के लिये आप सभी लोग प्रयास कीजिये मैंने गुप्तचरों से यह सुना है कि उसका व्यवहार बहुत ही सुदृढ़ है उसके सामने सांगोपांग सेना रहती है उस सेना की सुरक्षा घेरे में वह पीछे स्थित रहती है।।13।।

सवेर्षामपि सैन्यानां पश्चादेवावतिष्ठते।
अग्रतश्चलितं सैन्यं हयहस्तिरथादिकम्॥१४॥

वह समस्त सैन्य विभागों के पीछे रहती है आगे सेना के घोड़े हाथी रथ पैदल सैनिक लोग चलते हैं।।14।।

अस्मिन्नेव ह्यवसरे पाणिग्राहो विधीयताम्।
पाणिग्राहमिमं कर्तु विषङ्गश्चतुरो भवेत्॥१५॥

इसी समय में ही उस स्त्री को सीधे पकड़ा जाये इस पृष्ठ भाग से शत्रु को वश करने में कुशल पीछे से विषंग है।।15।।

तेन क्रोधबलोन्मत्ता बहुसंग्राममदुर्मदाः।
दश पञ्च च सेनान्यः सह यान्तु युयुत्सया।।१६।।

उस विषंग के साथ क्रोध और बल से उन्मत्त तथा अनेक संग्रामों में न हारने वाले दस पांच सेनानी युद्ध करने की इच्छा से जाय।।16।।

पृष्ठतः परिवारास्तु न तथा सन्ति ते पुनः।
अल्पैस्तु रक्षिता सा स्यात्तेनैवासौ सुनिग्रहा।।१७।।

उस स्त्री के पीछे से रक्षा करने वाले उतने अधिक नहीं होंगे, अतः थोड़े सैनिक उसकी रक्षा में

होंगे उन सैनिकों को वश में किया जा सकता है तुम थोड़े आदमियों से उसे पकड़ सकते हो।।17।।

अतस्त्वं बहुसंनाहमविधाय बलोत्कटः।
विषङ्ग गुप्तरूपेण पाणिग्राहं समाचर॥१८॥

विषंग ! इस कारण तुम अपने साथ बहुत सेना न ले जाकर केवल बलवान चुने हुए वीर ले जाकर उसे दुष्टा को दृढ़ता से पकड़ लो।।18।।

अल्पीयसी त्वया साधे सेना गच्छतु विक्रमिन्।
सज्जाश्च सन्तु सेनान्यो दिक्पालविजयोद्धताः।।१९।।

हे पराक्रमिन् ! तुम्हारे साथ थोड़ी सेना उसे पकड़ने के लिये जाय तथा दिक्पालों पर विजय से उन्मत्त वीर सेनानी तैयार हों।।19।।

अक्षोहिण्यश्च सेनानां दशपञ्च चलन्तु ते।
त्वं गुप्तवेषस्तां दुष्टां संनिपत्य दृढं जहि॥२०॥

वे दस पांच अक्षौहिणी सेनाएं भी चलें, तुम गुप्तवेष में उस दुष्टा को गिराकर दृढ़ता पूर्वक पकड़ लेना।।20।।

सैव निःशेषशक्तीनां मूलभूता महीयसी।
तस्याः समूलनाशेन शक्तिवृन्दं विनश्यति॥२१॥

वहीं दुष्टा स्त्री समस्त शक्तियों को मूलभूत महीयसी कारण रूपा है, उसका यदि समूल नाश हो जायेगा तो समस्त शक्तिवृन्द विनष्ट हो जावेगा।।21।।

कन्दच्छेदे सरोजिन्या दलजालमिवाम्भसि।
सर्वेषामपि पश्चाद्यो रथश्चलति भास्वरः॥२२॥

जिस प्रकार जलाशय में कमलिनी की जड़ (बंद) काट देने पर कमलिनी समूल नष्ट हो जाती है इस स्त्री को यदि वश में कर लिया सभी शक्ति वृन्द निस्तेज हो जायेंगे उसकी पहिचान यह है-सभी के पीछे जो तेजस्वी रथ चलता है।।22।।

दशयोजन संपन्न निजदेह समुच्छ्रयः।
महामुक्तातपत्रेण सर्वोर्ध्वं परिशोभितः॥२३॥

उसका वह दस योजन तक फैला हुआ है और ऊंचा है उसमें सबसे ऊपर महामुक्तामणि जड़ा हुआ छत्र सुशोभित हो रहा है।।23।।

वहन्मुहुर्वीज्यमानं चामराणां चतुष्टयम्।
उत्तुङ्गके तुसंघातलिखिताम्बुदमण्डलः॥२४॥

उस रथ में चार चंवर दासियां चला रही हैं उसमें ऊंची ऊंची ध्वजायें फहरा रही होंगी उनसे ऐसा प्रतीत होगा कि मेघमंडल घिर आया है।।24।।

तस्मिन्रथे समायाति सा दुष्टा हरिणेक्षणा।
निभृतं संनिपत्य त्वं चिह्नेनानेन लक्षिताम्॥२५॥

उस रथ में बैठी हुई वह दुष्टा मृगलोचना दिखाई देगी तुम बताए हुए इन चिन्हों से पहिचान कर लेना।।25।।

तां विजित्य दुराचारां केशेष्वाकृष्य मर्दय।
पुरतश्चलिते सैन्ये सत्वशालिनि सा वधूः॥२६॥

फिर उस दुराचारा को वश में करके केशों से पकड़कर खींचकर उसका मर्दन करना, सामने चलते हुए सैन्य के वह यह कहेंगी मैं तो वधू हूं।।26।।

श्रीमात्ररक्षा भवतो वशमेष्यति सत्वरम्।
भयात्सहायभूतानां सेनेन्द्राणामिहाभिधाः॥२७॥

जब उसके केशों को पकड़कर उसे वश में करोगे तो वह यह कहेगी मैं स्त्री हूं आपको रक्षा करनी चाहिये इस तरह वह तुम्हारे वश में हो जायेगी। तुम्हारी सहायता के लिये जो सेनापति भेज रहे हैं उनके ये नाम है।।27।।

शृणु यैर्भवतो युद्धे साह्यं कार्यमतन्द्रितैः।
आद्यो दमनको नाम दीर्घजिह्वो द्वितीयकः॥२८॥

सुनों तुम्हारे सहायक रूप में जो सेना जायेगी उसमें जो वीर हैं उनके नाम इस प्रकार हैं 1 दमनक, 2 दीर्घजिह्व।।28।।

हुम्वेको हुलुमुल्लश्च कल्कसः कल्किवाहनः।
पुल्कसः पुण्ड्रकेतुश्च चण्डबाहुश्च कुकुरः॥२९॥

3 हुम्बेक, 4 हुलुमुल्ल, 5 कल्कस, 6 कल्किवाहन, 7 पुल्कस, 8 पुंड्रकेतु, 9 चण्डबाहु, 10 कुक्कुर।।29।।

जम्बुकाक्षो जम्भनश्च तीक्ष्णशृङ्गस्त्रिकण्टकः।
चन्द्रगुप्तश्च पञ्चैते दश चोक्ताश्चमूवराः॥३०॥

11 जम्बुकाक्ष, 12 जम्भन, तीक्ष्ण शृंग, 14 त्रिकंटक, 15 चन्द्रगुप्त इस प्रकार दस पहिले कहे

गए तथा बाद में पांच कहे सेनापति साथ रहेंगे।।30।।

एकैकाक्षोहिणीयुक्ताः प्रत्येकं भवता सह।
आगमिष्यन्ति सेनान्यो दमनाद्या महाबलाः ।।३१।।

आपके साथ सहयोग के लिये 15 जो दमनकादि कहे गये हैं उन सभी के साथ प्रत्येक दैत्य सेनापति के साथ एक एक अक्षौहिणी सेना रहेगी।।31।।

परस्य कटकं नैव यथा जानाति ते गतिम्।
तथा गुप्तसमाचारः पाणिग्राहं समाचर॥ ३२॥

दूसरे की सेना तुम्हारी गति विधि न जान सके उस दुष्टा को निगृहीत करने की योजना अत्यन्त ही गुप्त है।।32।।

अस्मिन्कार्ये सुमहति प्रौढिमानं समुद्वहन्।
विषङ्ग त्वं हि लभसे जयसिद्धिमनुत्तमाम्॥३३॥

इस अत्यन्त महान् और प्रौढ़तावाले कार्य में विषंग ! तुम अनुत्तम विजयसिद्धि को प्राप्त होओ।।33।।

इति मन्त्रितमत्रोऽयं दुर्मत्रो भण्डदानवः।
विषङ्गं प्रेषयामास सरथं सैन्यपालकैः॥३४॥

इस प्रकार दुर्मन्त्र भण्ड दानव ने मंत्रियों के साथ बैठकर दुर्मन्त्रणा करके विषंग को सैन्य पालकों के साथ रथ में भेजा।।34।।

अथ श्रीललितादेव्याः पाणिग्राहकृतोद्यमे।
युवराजानुजे दैत्ये सूर्योऽस्तगिरिमाययौ॥३५॥

इस के अनन्तर दैत्यों की श्री ललिता देवी को पीछे से निगृहीत करने के लिये युवराज के अनुज विषंग के आने तक सूर्य अस्ताचलगामी हो गये रात्रि आ गई।।35।।

प्रथमे युद्धदिवसे व्यतीते लोकभीषणे।
अन्धकारः समभवत्तस्य साह्यचिकीर्षया।।३६॥

प्रथम लोक भीषण युद्ध के दिन के व्यतीत होने पर चारों ओर अन्धकार सहायता करने की इच्छा से फैल गया।।36।।

महिषस्कन्धधूम्राभं वनक्रोडवपुर्द्युति।
नीलकण्ठगलच्छायं निविडं ववृधे तमः॥३७॥

वह अंधकार काले भैंस के कंधे के समान धूम की आभावाला समस्त वनांचल के शरीर की द्युति वाला नीलकण्ठ के गले की जैसी छाया वाला घना अंधकार छा गया।।37।।

कुञ्जेषु पिण्डितमिव प्रधावदिव सन्धिषु।
उज्जिहानमिव क्षोणीविवरेभ्यः सहस्रशः ॥३८॥

वह अंधेरा कुञ्जों में पिण्ड जैसा, दिन और रात्रि संधियों में दौड़ते हुए के समान और भूमि के हजारों गुफाओं के समान था ।।38।।

निर्गच्छदिव शैलानां भूरिकन्दरमन्दिरात्।
क्वचिद्दीपप्रभाजाले कृतकातरचेष्टितम्॥ ३९॥

उस अंधकार के फैलने से ऐसा प्रतीत हो रहा था कि वह अंधेरा पर्वतों की गुफाओं से निकल रहा है कहीं कहीं ऐसा लग रहा था कि जैसे दीपों की प्रभाजाल के सामने कायरों जैसी चेष्टा कर रहा हो अर्थात कायर जैसे छिपने की चेष्टा कर रहा हो।।39।।

दत्तावलम्बनमिव स्त्रीणां कर्णोत्पलत्विषि।
एकीभूतमिव प्रौढदिङ्नागमदकज्जले॥४०॥

स्त्रियों के कानों के आभूषण की चमक में जैसे आश्रय पा रहा हो कालेपन में एक हुए दिशाओं के दिङ्नागों (हाथियों) जैसे कज्जलवर्ण का था।।40।।

आबद्धमैत्रीकमिव स्फुरच्छाद्वलमण्डले।
कृतप्रियाश्लेषमिव स्फुरन्तीष्वसियष्टिषु॥४१॥

अंधकार फैला हुआ था ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मानों उस मैदान से मित्रता कर ली हो, उस अंधकार में प्रिया से आलिंगन करने जैसी असियों की खड्गों की किंवातलवारों की चमक व्याप्त हो रही थी।।।41।।

गुप्तप्रविष्टमिव च श्यामासु वनपङ्क्तिषु।
क्रमेण बहुलीभूतं प्रससार महत्तमः॥४२॥

अंधकार से काली वनपंक्तियों में मानों गुप्त रूप से वे चमक प्रविष्ट हो रही हों इस क्रम से बड़ा गहरा अंधेरा चारों तरफ छा गया।।42।।

त्रियामा वामनयना नीलकञ्चुकरोचिषा।
तिमिरेणावृतं विश्वं न किंचित्प्रत्यपद्यत॥४३॥

जब उस मैदान में घना अंधकार छा गया तलवारों की चमक हो रही थी ऐसी वह रात्रि ऐसी प्रतीत हो रही थी कि जैसे अर्धरात्रि रूपी नायिका ने नीले रंग की साड़ी पहिन ली हो।।43।।

असुराणां राक्षसानां रात्रिरेव बलावहा।
तेषां मायाविलासोऽयं तस्यामेव हि वर्धते॥४४॥

असुरों के बल को राक्षसों के बल को रात्रि ही बढ़ाती है उन असुरों राक्षसों का माया विलास रात्रि में ही बढ़ता है।।44।।

अथ प्रचलितं सैन्यं विषङ्गेण महौजसा।
धौतखड्ग लताच्छाया वर्धिष्णुतिमिरत्विषः।।४५।।

ऐसे बढ़े हुए अंधेरे से व्याप्त मैदान में उस महापराक्रमी विषंग की चलती हुई श्वेत रंग की तलवार चमक में अंधकार के छेदन करती हुई सेना चली जा रही थी।।45।।

दमनाद्याश्च सेनान्यः श्यामकङ्कटधारिणः।
श्यामोष्णीषधराः श्यामवर्णसर्वपरिच्छदाः।।४६।।

उस विषंग के जो दमनादि सेनापति थे उन्होंने काला कवच पहिना हुआ था, काली पगड़ी तथा श्याम वर्ण सभी वस्तुएं थीं ।।46।।

एकत्वमिव सप्राप्तास्तिमिरेणातिभूयसा।
विषङ्गमनु सञ्चेलुः कृताग्रजनमस्कृतिम् ।।४७।।

वे सभी विषंग के साथी दानवगण काले वर्ण के काले वस्त्रों आदि से उस काली अंधियारी रात्रि से एकता को पा रहे थे ऐसे वे राक्षस गण विषंग के पीछे अपने पूज्य आदि को प्रणाम करते हुए चले।।47।।

कूटेन युद्धकृत्येन विजिगीपुर्महेश्वरीम्।
मेघडम्बरकं नाम दधे वक्षसि कङ्कटम्।।४८।।

उस विषंग ने मंघडम्बरक नाम का कवच वक्षःस्थल में धारण किया था कूट युद्ध के कृत्यों के द्वारा महेश्वरी को जीतना चाहता था।।48।।

यथा तस्य निशायुद्धानुरूपो वेषसंग्रहः।
तथा कृतवती सेना श्यामलं कञ्चुकादिकम्।।४९।।

उस विषंग ने जैसी वह घने अंधकार पूर्ण भयानक रात्रि थी वैसा ही वेषों का संग्रह था, उसने अपनी सेना को भी काले काले समस्त वस्तुएं कवचादि वस्त्रादि धारण कराये।।49।।

नच दुन्दुभिनिस्वानो न च मर्दलगर्जितम्।
पणवानकभेरीणां नच घोषविजृम्भणम्।।५०।।

न ही उस समय दुन्दुभि की आवाज की जा रही थी न ढोल बजाये जा रहे थे, पणवानक भी नहीं बजाए जा रहे थे न ही रण भेरी द्वारा युद्ध की घोषणा की जा रही थी।।50।।

गुप्ताकाराः प्रचलितास्तिमिरेण समावृताः।
परैरदृश्यगतयो निष्कोशीकृतरिष्टयः॥ ५१॥

अंधकार से आवृत्त गुप्त रूप से दूसरों से अज्ञात गति से म्यान से तलवारों को निकाल कर वस्त्रों में छिपाए हुए ।।51।।

पश्चिमाभिमुखं यान्तीं ललितायाः पताकिनीम्।
आवृत्योत्तरमार्गेण पूर्वभागमशिश्रियन्॥५२॥

पश्चिम दिशा की ओर जाती हुई भगवती ललिता की सेना को उत्तर दिशा के मार्ग से घेर कर पूर्वभाग में आ गए असुर सैनिक।।52।।

निश्वासमपि सस्वानमकुर्वन्तः पदेपदे।
सावधानाः प्रचलिताः पाणिग्राहाय दानवाः।।५३।।

श्वास की आवाज भी न करते हुए धीरे धीरे पैरों को रखते हुए सावधान होकर चलते हुए वे दानव पाष्णिग्राह (पार्श्वभाग ग्रहण करने के लिये आगे बढ़ रहे थे)।।53।।

भूयः पुरस्य दिग्भागं गत्वा मन्दपराक्रमाः।
ललितासैन्यमेव स्वान्सूचयन्तः प्रपृच्छताम्।।५४।।

पुनः पुर के दिग्भाग ओर जाकर मन्द पराक्रम ललिता की सेना को ही अपने को सूचित करते हुए पूछते हुए।।54।।

आवृत्य निभृतं पृष्ठे कवचच्छन्नविग्रहाः।
चक्रराजरथं तुंगं मेरुमन्दसंनिभम्॥५५॥

कवच से छिपे हुए शरीर वाले आगे आकर उन्होंने देखा कि रथ है चक्रराज रथ है एकान्त में था मेरु मन्दर पर्वतों जैसा ऊंचा और विशाल था।।55।।

अपश्यन्नतिदीप्ताभिः शक्तिभिः परिवारितम्।
तत्र मुक्तातपत्रस्य वर्तमानामधस्तले॥ ५६ ॥

रथ अत्यन्तदीप्त शक्तियों से घिरा हुआ है ढंगा हुआ है वहां मोती जड़े हुए छत्र के नीचे के तल में।।56।।

सहस्त्रादित्यसङ्काशां पश्चिमाभिमुखीं स्थिताम्।
कामेश्वर्यादिनित्याभिः स्वसमानसमृद्धिभिः॥५७॥

हजारों सूर्यों के प्रकाश के समान प्रकाशवाली पश्चिम की ओर अभिमुख देवी ललिता थीं, उनके आसपास उन्हीं के समान समृद्धि वालीं कामेश्वर्यादि नित्या देवियों के साथ।।57।।

नर्मालापविनोदेन सेव्यमानां रथोत्तमे।
तां तथाभूतवृत्तान्तां तत्तादृशरणोद्यताम्॥५८॥

धीरे धीरे मनोरंजन वार्तालाप के विनोद के साथ उस उत्तम रथ में सेवा की जाती हुईं उन देवियों की प्रमुख देवी को देवी ललिता समझ कर पीछे से आक्रमण उस विषंग ने करवा दिया।।58।।

पुरोगतं महत्सैन्यं वीक्षमाणां सकौतुकम्।
मत्वानवहितामेव विषङ्गः स दुराशयः॥५९॥

उस दुराशय विषंग ने सामने उपस्थित बड़ी सेना को देखकर उस सेना के बीच में स्थित देवी को ललिता समझा कर आक्रमण करवा दिया।।59।।

पृष्ठवंशं रथेन्द्रस्य घट्टयामास सैनिकैः।
तत्राणिमादिशक्तीनां परिवारवरूथिनीम्॥६०॥

उन विषंग के सैनिकों ने उस विशाल रथ के पिछले भाग में आक्रमण कर दिया वहां पर भगवती की अणिमा आदि शक्तियां चारों ओर बैठी हुई थीं।।60।।

विपाठैः पाटयामासुरदृश्यैरन्धकारगाः।
ततश्चक्ररथेन्द्रस्य नवमे पर्वणि स्थिताः॥६१॥

उस अंधकार में गए हुए अदृश्य राक्षस सैनिकों ने पत्थरों से रथ को तोड़ दिया उसके बाद शक्तियां चक्ररथ के नौवं पर्व में स्थित हो गईं।।61।।

महाकलकलं चक्रुरणिमाद्याः परश्शतम्।
पट्टसैर्दुघणैश्चैव भिण्डिपालैर्भुसुण्डिभिः॥६२॥

उन अणिमादि शक्तियों ने महाकल कल की सैंकड़ों ध्वनियां कर दीं तथा बर्छी, द्रुघण, भिण्दिपाल, बन्दूक आदि शस्त्रों से।।62।।

कठोरवज्रनिर्घातनिष्ठुरैः शक्तिमण्डलम्।
मर्दयन्तो महासत्वाः समरं बहु तेनिरे ॥ ६३ ॥

उस अंधेरे में आये हुए असुर सैनिकों ने नाना विध शस्त्रों के प्रहारों से तथा कठोर वज्राघातों से निष्ठुर वे महापराक्रमी शक्ति मण्डल का मर्दन करते हुए युद्ध का विस्तार करने लगे।।63।।

आकस्मिकरणोत्साह विपर्यस्तायुधग्रहम् ।
अकाण्डक्षुभितं चासीद्रथस्थं शक्तिमण्डलम् ॥६४॥

परन्तु अकस्मात हुए आक्रमण से रणोत्साह से विपरीत शस्त्रग्रहण आदि अस्त व्यस्तता से उस रथ में स्थित अणिमादि शक्ति मण्डल असमय में विशेष रूप से क्षुभित हो गया।।64।।

अदृश्यमानशस्त्राणामदृश्यनिजवर्मणाम्।
तिमिरच्छन्नरूपाणां दानवानां शिलीमुखैः॥६५॥

वे असुर सैनिक घने अंधकार में अदृश्य थे उनके शस्त्र कवचादि जो उन्होंने कर रखा था वेस भी अंधकार में आच्छन्न थे उन दानवों के फेंके गए बाणों से ।।65।।

इतस्ततो बहुश्लिष्टभिन्नवर्मितमर्म तत्।
शक्तीनां मण्डलं तेन क्रन्दनं ललितां प्रति॥६६॥

इधर उधर भागते हुए अपने को बचाते हुए अचानक असुरों द्वारा फेंके बाणों के आघात से कवच छिन्न हो जाने शरीर में घाव होने से उन घायल शक्तियों का क्रन्दन रूप हाहाकार भगवती ललिता देवी के पास पहुंचा।।66।।

पर्वानुक्रमतस्तत्र संप्राप्तं सुमहद्भयम् ।
कर्णाकर्णिकयाकर्ण्य ललिता कोपमास्थिता ॥६७॥

पर्वानुक्रम से वहां बहुत ही महानभय प्राप्त हो गया था हो रहे उस उस भयानक शक्तियों के क्रन्दन की आवाज कान से दूसरे कान तक फैलती हुए वह क्रन्दन का शोर भगवती ललिता जी के कानों तक पहुंचा तो वे बहुत ही कुपित हो गईं।।67।।

एतस्मिन्नन्तरे भण्डश्चण्डदुर्मन्त्रपण्डितः ।
दशाक्षोहिणिकायुक्तं कुटिलाक्षं महौजसम् ॥६८॥

इसी बीच में चण्ड और दुर्मन्त्रणा का पण्डित उस भण्डासुर ने दस अक्षौहिणी सेना के सहित महापराक्रमी कुटिलाक्ष को भेजा।।68।।

ललितासैन्यनासीरे युद्धाय प्रजिघाय सः ॥६८॥
यथा पश्चात्कलकलं श्रुत्वाग्रे वर्तिनी चमूः ।
नागच्छति तथा चक्रे कुटिलाक्षो महद्रणम्।।६९।।
एवं चोभयतो युद्धं पश्चादग्रे तदाभवत् ।
अत्यन्ततुमुलं चासीच्छक्तीनां सैनिकं महत्।।७०।।

जैसे ही कल कल की ध्वनि सुनकर आगे सेना तैयार ही नहीं हो पा रही थी तब तक कुटिलाक्ष ने युद्धारंभ कर दिया, उस वातावरण में कल कल ध्सनि से आगे की सेना न आ सकने के बीच में कुटिलाक्ष ने महायुद्ध शुरू कर दिया तब इस प्रकार दोनों पक्षों शक्तियों और असुर सैनिकों का आपस में पहिले पृष्ठ भाग में तथा आगे से युद्ध अत्यन्त भयानक रूप से शुरू हो गया।।68,69,70।।

नक्तं ससत्वा दैत्येन्द्रास्तिमिरेण समावृताः।

इतस्ततः शिथिलतां कटकं निन्युरुद्धताः॥ ७१ ॥

रात्रि का वातावरण होने से सभी दैत्येन्द्र अंधकार में ढंके हुए थे इधर उधर शक्ति सेना की शिथिलता थी।।71।।

विषङ्गेग दुराशेन दमनाद्यैश्चमूवरैः।

चमूभिश्च प्रणिहिता न्यपतञ्शस्त्रकोटयः ॥७२॥

दुराश विषंग ने सेना युक्त दमनादि सैनिकों के साथ शक्ति सेना पर अनेकों शस्त्रों की बौछार शुरू कर दी।।72।।

ताभिर्दैत्यास्त्रमालाभिश्चक्रराजरथो वृतः।

वनावलीनिविडितः शैलराज इवाबभौ॥ ७३ ॥

भगवती ललिता का वह चक्रराज रथ अनेक शस्त्रों की बौछार से ऐसा ढंगा दिख रहा था कि जैसे विशाल शैलराज घनी वनावली से घिरा हुआ है।।73।।

आक्रान्तपर्वणाधस्ताद्विषङ्गेण दुरात्मना।

मुक्त एकः शरो देव्यास्तालवृन्तमचूर्णयत्॥७४॥

उस दुरात्मा विषंग ने रथ के पर्व के नीचे आक्रमण किया और एक बाण से उसने देवी के रथ के तालवृन्त को धराशायी कर दिया।।74।।

अथ तेनात्याहितेन संभ्रान्ते शक्तिमण्डले।

कामेश्वरीमुखा नित्या महान्तं क्रोधमाययुः॥७५॥

उस दानव दुरात्मा विषंग के इस प्रहार से शक्ति मण्डल भयभीत होने लगा तब कामेश्वरी आदि नित्याएं बड़े ही क्रोध में आ गयीं।।75।।

ईषद्भ्रकुटिसंसर्गे श्रीदेव्या वदनाम्बुजे।

अवलोक्य भृशोद्विग्ना नित्या दधुरतिक्रुधम्॥७६॥

देवी के रथ के ताल वृन्त के गिर जाने से भगवती श्री देवी का बदन कमल किंचित टेढ़ी भौंहों का हो गया तो यह देख समस्त नित्या मंडल अत्यन्त क्रोधाविष्ट हो गया।।76।।

नित्याः कालस्वरूपिण्यः प्रत्येकं तिथिविग्रहाः।

कोपमुद्वीक्ष्य सम्राज्ञ्या युद्धाय दधुरुद्यमम् ॥७७॥

भगवती की टेढ़ी भौंहों को देख प्रत्येक तिथि का शरीर वाली वे कालरूपिणी नित्याएं युद्ध के लिये तैयार हो गईं।।77।।

प्रणिपत्य च तां देवीं महाराज्ञीं महोदयाम्।

ऊचुर्वाचमकाण्डोत्थयुद्धकौतुकगद्गदम्॥७८॥

उन सभी नित्याओं ने भगवती महाराज्ञी महोदया को प्रणाम करके कहा- यह जो असमय में उठा हुआ युद्ध कौतुक है उससे वे गद्गद हो रहीं थीं॥78॥

नित्याएं बोलीं-

देविदेवि महाराज्ञि त्वयाग्रे प्रेषितां चमूम्।

दण्डिनीमत्रिनाथादिमहाशक्त्यभिपालिताम्॥७९॥

हे देवदेवि! महाराज्ञि!! आपके प्रेषित यह सेना, जिसे दण्डिनी ने मंत्रिनाथा आदि महाशक्तियों ने संरक्षित किया है॥79॥

धर्षितुं कातरा दुष्टा मायाच्छद्मपरायणाः।

पाणिग्रहणयुद्धेन बाधन्ते रथपुंगवम्॥८०॥

ये असुर छलकपट माया में संलग्न रहने वाले रथराज को पार्ष्णिबंधन में बांधना चाहते हैं॥80॥

तस्मात्तिमिरसछन्नमूर्तीनां त्रिदशद्विषाम्।

शमयामो वयं दर्प क्षणमात्रं विलोकय॥८१॥

अतः हे महाराज्ञी! अब देखिये हम लोग अंधकार में ढंके हुए देवों द्वेषी उन असुरों का क्षण में दमन कर देंगी॥81॥

या वह्निवासिनी नित्या या ज्वालामालिनी परा।

ताभ्यां प्रदीपिते युद्धे द्रष्टुं शक्याः सुरद्विषः॥८२॥

ये जो वह्निवासिनी नित्या है और दूसरी जो ज्वालामालिनी नित्या है, इन दोनों के द्वारा प्रकाशित युद्ध में वे छिपे हुए देव द्वेषी स्पष्ट दिखाई देने लगेंगे॥82॥

प्रशमय्य महादर्पं पार्ष्णिग्राहप्रवर्तिनाम्।

सहसैवागमिष्यामो रक्षितुं श्रीमदङ्गकम्॥८३॥

हम उन दुष्टों का महा अभिमान जो पार्श्वों का ग्रहण के लिये प्रवृत्त हुए हैं उनको अच्छी तरह से मर्दित करके आपके श्री चरणों में प्रणाम करने के लिये आवेंगे॥83॥

आज्ञां देहि महाराज्ञि मर्दनार्थं दुरात्मनाम्।

इत्युक्ते सति नित्याभिस्तथास्त्विति जगाद सा॥८४॥

हे महाराज्ञि! उन दुष्टों का दमन करने के लिये हम लोगों को आज्ञा दो, उन नित्यादेवियों के इस प्रकार निवेदन करने पर भगवती ललिता ने तथास्तु ऐसा कहा॥84॥

अथ कामेश्वरी नित्या कुण्डलीकृतकार्मुका।
बालारुणमिव क्रोधारुणं वक्त्र वितन्वती॥ ८५॥

इसके बाद कामेश्वरी नित्या ने धनुष को कुण्डल जैसे गोल किया, वे बालआरुण जैसे लाल वर्ण जैसे क्रोध से लाल मुख वाली हो गई।।85।।

रे रे तिष्ठत पापिष्ठा मायामद्य भिनद्मि वः।
अन्धकारमनुप्राप्य कूटयुद्धपरायणाः॥८६॥

रे रे पापिष्ठो! ठहरों आज हम तुम लोगों की माया को छिन्न भिन्न कर देंगी तुम अंधकार का सहारा लेकर छल युद्ध कर रहे हो।।86।।

इति तान्भर्त्सयन्ती सा तूणीरोत्खातसायका।
पर्वावरोहणं चक्रे क्रोधेन प्रस्खलद्गतिः॥८७॥

इस प्रकार उन कामेश्वरी ने उन की भर्त्सना करती हुईं तरकस से बाण निकालकर बड़े क्रोध से लड़खड़ाती गति से पर्व में आरोहण किया।।87।।

सज्जकार्मुकहस्ताश्च भगमालापुरःसराः।
अन्याश्च चलिता नित्याः कृतपर्वावरोहणाः॥८८॥

भगमाला नित्या को आगे करके तैयार धनुषों को हाथ में ली हुईं अन्य नित्याओं ने पर्वारोहण कर चलीं।।88।।

ज्वालामालिनि नित्या च सा नित्या वह्निवासिनी।
सज्जायुधे स्वतेजोभिः समदीपयतां रणम्॥८९॥

इसके अनन्तर ज्वालामालिनी नित्या और वह्निवासिनी नित्या ने उद्दीप्त अपने तेज से पूरे रण क्षेत्र को प्रकाशित कर दिया।।89।।

अथ ते दुष्टदनुजाः प्रदीप्ते युद्धमण्डले।
प्रकाशवपुषस्तत्र महान्तं कोपमाययुः॥९०॥

ज्वालामालिनी और वह्निवासिनी नित्याओं द्वारा युद्ध स्थल में प्रकाश कर देने से वे दुष्ट दनुज प्रकाश से अच्छी तरह दिखाई देने लगे तब कोप ग्रस्त हो गए।।90।।

कामेश्वर्यादिका नित्यास्ताः पञ्चदश सायुधाः।
ससिंहनादास्तान्दैत्यानमृद्नन्नेकहेलया।। ॥ ९१ ॥

वे पन्द्रह कामेश्वरी आदि नित्याएं आयुध ली हुईं सिंहनाद करती हुईं दौड़ी और थोड़ी ही देर में उन असुरों का मर्दन कर दिया।।91।।

महान्कलकलस्तत्र समभूयुद्धसीमनि ।
मन्दरक्षोभिताम्भोधिवेल्लत्कल्लोलमांसलः ॥९२॥

तब उस युद्ध क्षेत्र में हाहाकार उसी तरह हो रहा था जैसे मन्दराचल के क्षुभित होने पर (अमृत मंथन में समुद्र में मन्दराचल मथानी था, उसके घुमाने से समुद्र में खलभलाहट होती थी) समुद्र जल के विलोडन से क्षोभ हो रहा था।।92।।

ताश्च नित्याः कलक्काणकङ्कणैर्युधि पाणिभिः।
आकृष्यमाणकोदण्डास्तेनिरे युद्धमुद्धताः॥९३॥

उन नित्याओं के हाथ जिनमें मधुर ध्वनि करते हुए कंगन थे वे हाथ धनुष में बाण चढ़ाकर उद्धत युद्ध किया।।93।।

यामद्वितयपर्यन्तमेवं युद्धं प्रवर्तत।
नित्यानां निशितैबार्णैरक्षोहिण्यश्च संहृताः॥९४॥

इस तरह दो प्रहरों तक युद्ध प्रवर्तित हुआ उसमें नित्याओं द्वारा धनुष से फेंके गए बाणों से वह अक्षौहिणी सेना क्षीण हो गई।।94।।

जघान दमनं दुष्टं कामेशी प्रथमं शरैः।
दीर्घजिह्व चमूनाथं भगमाला व्यदारयत्।।९५।।

नित्याओं में प्रथम कामेशी ने बाणों की वर्षा द्वारा दुष्ट दमन को समाप्त कर दिया तथा भगमालिनी ने सेना पति दीर्घजिह्व को विदीर्णकर दिया।।95।।

नित्याक्लिन्ना च भेरुण्डा हुम्बेकं हुडुमुल्लकम्।
कल्कसं वह्निवासा च निजघान शितैः शरैः।।९६।।

नित्यक्लिन्ना ने भेरूण्डा ने हुम्बेक को और हुडुमुल्लक को मारा तथा वह्निवासा ने पैने बाणों से कल्कस को मार गिराया।।96।।

महावज्रेश्वरी बाणैरच्छिनत्कल्किवाहनम्।
पुल्कसं शिवदूती च प्राहिणोद्यमसादनम्॥९७॥

महावज्रेश्वरी ने कल्किवाहन को बाणों से छिन्न भिन्न कर दिया शिवदूती ने पुल्कस को यम के घर भेज दिया।।97।।

पुण्ड्रकेतुं भुजोद्दण्डं त्वरिता समदारयत्।
कुलसुन्दरिनित्या च चण्डबाहुं च कुकुरम्॥९८॥

भगवती त्वरिता ने उद्दण्ड भुजा वाले पुण्ड्रकेतु को विदीर्ण कर दिया तथा कुलसुन्दरीनित्या ने

चण्ड बाहु कुक्कुर को मार दिया।।98।।

अथ नीलपताका च विजया च जयोद्धते।
जम्बुकाक्षं जम्भनं च व्यातन्वातां रणे बलिम्।।९९।।

इसी क्रम में नीलपताका और विजया ने रण में जम्बुकाक्ष और जम्भन इन दोनों की बलि कर दी।।99।।

सर्वमङ्गलका नित्या तीक्ष्णशृङ्गमखण्डयत्।
ज्वालामालिनिका नित्या जघानोग्रं त्रिकण्टकम्।
चन्द्रगुप्तं च दुश्शीलं चित्रानित्या व्यदारयत्।।१००।।

सर्वमंगल नित्या ने तीक्ष्ण श्रृंग के खण्ड खण्ड कर दिये ज्वालामालिनिका ने उग्र त्रिकण्टक को मार दिया तथा चित्रा नित्या ने दुःशील चन्द्रगुप्त नामक असुर को विदीर्ण कर दिया।।100।।

सेनानाथेषु सर्वेषु निहतेषु दुरात्मसु।
विषङ्गः परमक्रुद्धश्चचार पुरतो बली॥१०१॥

सभी दुरात्माओं सेनानाथों के मारे पर बली विषंग क्रोध में भरकर सामने युद्ध के लिये गया।।101।।

अथ यामावशेषायां यामिन्यां घटिकाद्वयम्।
नित्याभिः सह संग्रामं विधाय स दुराशयः।।१०२।।

इसके बाद रात्रि दो घड़ी बच रही तब वह दुराशय नित्याओं के साथ संग्राम करने लगा।।102।।

अशक्यत्वं समुद्वीक्ष्य चक्रमे प्रपलायितुम्।
कामेश्वरी कराकृष्टचापोत्थैर्निशितैः शरैः॥१०३॥

कामेश्वरी नित्या के खीचे हुए धनुष से निकले पैने बाणों से घबराकर जीतना कठिन है इसलिये युद्ध स्थल भागने का क्रम बनाने लगा।।103।।

भिन्नमर्मा दृढतर विषङ्गो विह्वलाशयः।
हतावशिष्टैर्योधैश्च सार्धमेव पलायितः॥१०४॥

वह विषंग कवच के टूटने से घायल पीड़ित मन से मरने से बचे सैनिकों के साथ ही रणक्षेत्र से पलायन कर गया।।104।।

ताभिर्न निहतो दुष्टो यस्माद्वध्यः स दानवः।
दण्डनाथागरेणैव कालदण्डसमत्विषा॥१०५॥

वह विषंग उन नित्या शक्तियों का अवध्य था इसलिये उन्होंने उसे नहीं मारा क्योंकि वह भविष्य में तेज में कालदण्ड के समान भगवती दण्डनाथा के बाणों से मारा जाने वाला था।।105।।

तस्मिन्पलायिते दुष्टे विषङ्गे भण्डसोदरे।
सा विभाता च रजनी प्रसन्नाश्चाभवन्दिशः।।१०६।।

भण्डासुर के सोदर दुष्ट उस विषङ्ग के भाग जाने पर वह रात्रि विभासित हो गईं और दिशाएं प्रसन्न हो गईं।।106।।

पलायितं रणे वीरमनुसर्तुमनौचिती।
इति ताः समरान्नित्यास्तस्मिन्काले व्यरंसिषुः।।१०७।।

भागे हुए उसके पीछे जाकर मारना वीर अनुचित मानते हैं इसलिये नित्याओं ने उसे भागने दिया, यहां समर भूमि में परस्पर आनन्दोत्सव मनाया।।107।।

दैत्यशस्त्रव्रणस्यन्दिशोणितप्लुतविग्रहाः।
नित्याः श्रीललितादेवीं प्रणिपेतुर्जयोद्धताः॥१०८।।

दैत्यों द्वारा फेंके गए शस्त्रों से हुए घाव से बहते हुए रक्तरंजित शरीर वाली नित्याओं ने श्रीललिता जी को विजय हर्ष से प्रणाम किया ।।108।।

इत्थं रात्रौ महद्युद्धं तत्र जातं भयङ्करम्।
नित्यानां विक्रमैश्चापि ललिता प्रीतिमासदत्।।१०९।।

इस प्रकार रात्रि में हुए भयंकर युद्ध में नित्याओं के पराक्रमों से ललिता प्रसन्न हुईं।।109।।

इति श्रीब्रह्माण्डपुराणे उत्तरखण्डे हयग्रीवागस्त्य- संवादे ललितोपाख्याने
विषङ्गादिपलायनं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २०॥

॥श्रीमन्महागणाधिपतये नमः।।

श्रीमातालिताम्बायै नमः श्रीपादुकां पूजयामि नमः॥
ॐ वन्दे गुरुपदद्वन्द्वं अवाङ्गनसगोचरम्॥
रक्तशुक्ल प्रभामिश्रमतर्क्यं त्रैपुरं महः॥
ॐ आराध्यदेवं भक्तानां कलिदोषविनाशकम्॥
वन्दे श्रीगिरिजानन्दं शारदाश्रीमठाधिपम्।।
ॐ अखण्डं यस्यज्ञानञ्च भक्तिर्यस्यानपायिनी।।
शारदाज्योतिरीशस्य दर्शनं (पूजनं, वन्दनं) शुभमस्तुनः।।

अथ एकविंशोऽध्यायः ॥२१ ॥42 श्लोकात्मकः
[वह्निप्राकाररचना॥]

श्रीहयग्रीवः ॥ श्री हयग्रीव जी बोले-

दशाक्षौहिणिकायुक्तः कुटिलाक्षोऽतिवीर्यवान्।
दण्डनाथाशरैस्तीक्ष्णै रणे भग्नः पलायितः॥१॥

अत्यन्त पराक्रमी कुटिलाक्ष दस अक्षौहिणी सेना के साथ था वह दण्डनाथ के तीखे बाणों से घायल होकर युद्ध स्थल से भाग गया।।1।।

दशाक्षोहिणिकासैन्यं तया रात्रौ विनाशितम्।
इमं वृत्तान्तमाकर्ण्य भण्डः संक्षोभमाययौ॥२॥

रात्रि युद्ध में दण्डनाथ ने उस कुटिलाक्ष की दस अक्षौहिणी का विनाशकर दिया यह वृत्तान्त जब भण्डासुर ने सुना तो सुनकर वह अत्यन्त दुःखी हुआ।।2।।

रात्रौ कपटसंग्रामं दुष्टानां निर्जरद्रुहाम्।
मंत्रिणी दण्डनाथा च श्रुत्वा निर्वेदमापतुः॥३॥

उन देव द्वेषियों राक्षसों का रात्रि में कपट संग्राम हुआ यह सुनकर मंत्रिणी और दण्डनाथ भी शोक ग्रस्त हो गईं।।3।।

अहो बत महत्कष्टं महादेव्याः समागतम्।
उत्तानबुद्धिभिर्दूरमस्माभिश्चलितं पुरः॥४॥

यह तो बड़ा कष्टकर समाचार है जो महादेवी के सामने आया और हमारी ऊंची-ऊंची बुद्धियों से दूर हम लोगों से पुर में।।4।।

महाचक्ररथेन्द्रस्य न जातं रक्षणं बलैः।
एतच्चावसरं प्राप्य रात्रौ दुष्टैः पराकृतम्॥५॥

सेना महाचक्ररथेन्द्र का रक्षण नहीं कर सकी, इसी का अवसर पाकर उन दुष्टों ने आक्रमण कर दिया ।।5।।

को वृत्तान्तो भवेत्तत्र स्वामिन्या किं रणः कृतः।
अन्या वा शक्तयस्तत्र चक्रुर्युद्धं महासुरैः॥६॥

तथा वहां पर क्या घटना घटित हुई, क्या स्वामिनी को युद्ध करना पड़ा या अन्य कोई शक्ति ने उन महासुरों से युद्ध किया ।।6।।

विमृष्टव्यमिदं कार्यं प्रवृत्तिस्तत्र कीदृशी।
महादेव्याश्च हृदये कः प्रसङ्गः प्रवर्तते॥७॥

इस कार्य पर विचार करना चाहिये, वहां इस समय कैसी स्थिति है, भगवती महादेवी के हृदय में कौन सा प्रसंग चल रहा है वे क्या चाहती हैं ।।7।।

इति शङ्काकुलास्तत्र दण्डनाथापुरोगमाः।
मन्त्रिणीं पुरतः कृत्वा प्रचेलुर्ललितां प्रति॥८॥

इस प्रकार मन में अनेकों संकल्प विकल्प करती हुई दण्डनाथा के सामने आईं, फिर सभी मंत्रिणी को आगे करके भगवती ललिता देवी के पास गईं ।।8।।

शक्तिचक्रचमूनाथाः सर्वास्ताः पुञ्जिताः क्वचित्।
व्यतीतायां विभावर्यां रथेन्द्रं पर्यवारयन्॥९॥

मंत्रिणी और दण्ड नाथा के साथ सभी शक्तियां इकट्ठी होकर भगवती के सामने पहुंची और रात्रि के बीत जाने पर उस रथेन्द्र को भी वहां से हटा दिया ।।9।।

अवरुह्य स्वस्वयानान्मंत्रिणीदण्डनायिके।
अधस्तात्सैन्यमावेश्य तदारुरुहतू रथम्।।१०॥

फिर वे मंत्रिणी अपने रथ में दण्डनाथा अपने रथ में सवार होकर सेना को नीचे के भागों में बिठाकर फिर स्वयं भी बैठकर ।।10।।

क्रमेण नवपर्वाणि व्यतीत्य त्वरितक्रमैः।
तत्तत्पर्वगतैः शक्तिचक्रैः सम्यङ्निवेदिताम्॥११॥

वे सभी क्रम से नव पर्वों को पारकरके तेजी से उन उन पर्वों में स्थित शक्तिचक्र से सम्यक

निरुपित ।।11।।

अभजेतां महाराज्ञीं मंत्रिणी दण्डनायिके।
ते व्यजिज्ञपतां देव्यै अष्टाङ्गस्पृष्टभूतले।।१२॥

मंत्रिणी और दण्डनायिका दोनों ही महाराज्ञी भगवती के पास जाकर देवी को निवेदन कर दिया कि रथ के आठ पर्व दैत्यों ने तोड़कर भूमि में गिरा दिये हैं ।।12।।

महान्प्रमादः समभूदिति नः श्रुतमम्बिके।
कूटयुद्धप्रकारेण दैत्यैरपकृतं खलैः॥१३॥

तथा उन्होंने कहा कि हमसे यह बहुत बड़ी असावधानी हो गई, उन दुष्टों ने खलों ने क्रूरयुद्ध के प्रकारों से देवों का अपकार किया है ।।13।।

स दुरात्मा दुराचारः प्रकाशसमरात्रसन्।
कुहनाव्यवहारेण जयसिद्धिं तु काङ्क्षति॥१४॥

वह दुरात्मा दुराचारी प्रकाश में होने वाले युद्ध से डरकर छलकपट भरे व्यवहार से जीत की सिद्धि चाहता है।।14।।

दैवान्नः स्वामिनीगात्रे दुष्ठानाममरगुहाम्।
शरादिकपरामर्शो न जातस्तेन जीवितम्॥१५॥

दैवयोग से स्वामिनी के शरीर में देव द्वेषी दुष्ट असुरों के अस्त्रों का प्रभाव नहीं होता इसलिये जीवित हैं ।।15।।

एकावलम्बनं कृत्वा महाराज्ञि भवत्पदम्।
वयं सर्वेऽपि जीवामः साधयामः समीहितम्॥१६।।

हे महाराज्ञि! भगवती !! आपके चरणों का केवल एक मात्र हम सभी का अबलम्बन है, हम सभी उसी केबल पर जीवित हैं और अपनी इच्छाओं की पूर्ति करते हैं ।।16।।

अथ स्वामिनि कर्तव्यं श्रीमदङ्गस्य रक्षणम्।
मायाविनश्च दैत्येन्द्रास्तत्र मन्त्रो विधीयताम्॥१७॥

हे स्वामिनि !हे भगवति!! आपके श्रीअंगों की रक्षा करना हम सभी का कर्तव्य है, इस समय मायावी दैत्येन्द्र सभी एकत्र होकर मंत्रणा में व्यस्त हो रहे हैं ।।17।।

अपकालेषु येनैते भण्डाद्या दानवाधमाः।
कूटयुद्धं न कुर्वन्ति न विशन्ति चमूमिमाम्॥१८॥

यह उचित समय उपस्थित हुआ है क्योंकि इन दानवों पर विजयी होना है इस समय दानव भण्डादि

छल युद्ध नहीं कर रहे हैं और न ही इस सेना में प्रवेश कर रहे हैं ।।18।।

तथा महेन्द्रशैलस्य कार्य दक्षिणदेशतः।
शिविरं बहुविस्तारं योजनानां शतावधि ॥१९॥

इसी बीच हम लोग भी महेन्द्र पर्वत के दक्षिण की ओर सौ योजन विस्तार वाला शिविर बना लेवें।।19।।

वह्निप्राकारवलयं रक्षणार्थं विधीयताम्।
अस्मत्सेनानिवेशस्य द्विषां दर्पशमाय च ॥२०॥

रक्षा के लिये चारों ओर चहार दीवार बह्नि की ही हो जिससे हमारी सेना का निवास निष्कंटक होगा और शत्रु के घमण्ड का नाश करने वाला होगा ।।20।।

शतयोजनमात्रं तु मध्यदेशः प्रकल्प्यताम्।
वह्निप्राकारचक्रस्य द्वारं दक्षिणतो भवेत् ॥२१॥

उस शिविर का बीच का भाग शत योजन परिमाण का हो तथा उसमें प्रवेशद्वार दक्षिण दिशा में हो ।।21।।

यतो दक्षिणदेशस्थं शून्यकं द्विषतां पुरम्।
द्वारे च बहवः कल्प्याः परिवारा उदायुधाः।।२२।।

क्योंकि दक्षिण की ओर शत्रु भण्डासुर का नगर शून्यक नाम का है तथा उसके द्वार पर बहुत से अस्त्र शस्त्रों से युक्त सैनिक घिरे होने चाहिये ।।22।।

निर्गच्छतां प्रविशतां जनानामुपरोधकाः।
अनालस्या अनिद्राश्च विधेयाः सततोद्यमाः॥२३॥

मुख्य प्रवेशद्वार में जनों की जांच करने वाले आलस्यरहित और जाग्रत रहने वाले सदैव उद्यत्तरत हों ।।23।।

एवं च सति दुष्टानां कूटयुद्धं चिकीर्षताम्।
अवेलासु च सन्ध्यासु मध्यरात्रिषु च द्विषाम्।
अशक्यमेव भवति प्रौढमाक्रमणं भवेत् ॥२४॥

ऐसा होने पर उन युद्ध करने की इच्छा वाले दुष्ट असमय में संध्याओं में और मध्य रात्रि में युद्ध वे लोग नहीं कर सकेंगे। ।।24।।

नो चेदुराशया दैत्या बहुमायापरिग्रहाः।
पश्यतो नभवेत्सर्व विलुठन्ति महद्बलम् ॥२५॥

यदि ऐसी व्यवस्था नहीं होती है तो दुष्ट आशय वाले दैत्यगण बड़े छल कपटों को लिये हुए हमारी बड़ीसेना को भी लूट लेते हें ।।25।।

मंत्रिण्या दण्डनाथाया इति श्रुत्वा वचस्तदा।
शुचिदन्तरुचा मुक्ता वर्षन्ती ललिताब्रवीत्॥२६॥

इस प्रकार के वचनों को जो मंत्रिणी और दण्डनाथा द्वारा कहे गए थे उनको सुनकर शुद्धदन्त पंक्ति की छटा से युक्त पवित्र मुस्कान छोड़ती हुई भगवती ललिताम्बिका बोलीं।।26।।

भवतीभ्यामयं मंत्रश्चारुबुद्ध्या विचारितः।
अयं कुशलधीमार्गो नीतिरेषा सनातनी॥२७॥

आप दोनों के द्वारा यह मंत्र सुन्दर बुद्धि से विचार किया हुआ है यह कुशल बुद्धि का मार्ग है, और सनातनी नीति भी यही है ।।27।।

स्वचक्रस्य पुरो रक्षां विधाय दृढसाधनैः।
परचक्राक्रमः कार्यो जिगीषद्भिर्महाजनैः॥२८॥

वह सनातनी नीति यही है कि युद्ध में विजय की इच्छा रखने वाले महानुभाव वृहत्साधनों से अपने चक्रपुर की रक्षा की व्यवस्था करके शत्रु के पुर में आक्रमण करें ।।28।।

इत्युक्त्वा मन्त्रिणीदण्डनाथे सा ललितेश्वरी।
ज्वालामालिनिकां नित्यामाहूयैवमुवाच ह॥२९॥

इस प्रकार मंत्रिणी और दण्डनाथा से उन भगवती ललिता ने कहा और नित्या ज्वालामालिनी को बुलाकर कहा ।।29।।

वत्से त्वं वह्निरूपासि ज्वलज्ज्वालामयाकृतिः।
त्वया विधीयतां रक्षा बलस्यास्य महीयसः॥३०॥

हे वत्से! तुम अग्नि रूपा हो अग्निज्वाला की ज्वालाओं की तुम्हारी आकृति है, तुम ही बड़ी सेना की रक्षा करो ।।30।।

शतयोजनविस्तारं परिवृत्य महीतलम्।
त्रिंशद्योजनमुन्नम्रज्वालाप्राकारतां व्रज॥३१॥

भूमि क्षेत्र को सौ योजन पर्यन्त घेरकर तीस योजन ऊंची ज्वालाओं की प्राचीर का आकार बनाकर इन वीरों की रक्षा करो ।।31।।

द्वारं योजनमात्रं तु मुक्त्वान्यत्र ज्वलत्तनुः।
वह्निसालत्वमापन्ना संरक्ष सकलं बलम्॥३२॥

द्वार एक योजन विस्तार का हो बाकी सभी जगह ज्वलित अपना शरीर रखते हुए अग्नि की ज्वाला को प्राप्त करते हुए समस्त सेना की रक्षा करो ।।32।।

ज्वालामालिनिकां नित्यामित्युक्त्वा ललितेश्वरी।
महेन्द्रोत्तरभूभागं चलितुं चक्रमुद्यमम्॥३३॥

ज्वालामालिनि का नित्या से इस प्रकार कहकर ललितेश्वरी देवी ने महेन्द्र पर्वत के उत्तर भाग में जाने की तैयारी की ।।33।।

साच नित्या नित्यमभिज्वलज्वालामयाकृतिः।
चतुर्दशी तिथिमयी तथेति प्रणनाम ताम्॥३४॥

वह नित्या जिसका शरीर नित्य सभी तरफ से ज्वलित ज्वालामय था वह शुक्लपक्ष की चतुर्दशी तिथि रूपा थी, (कृष्ण पक्ष की द्वितीया) उसने भगवती से कहा वैसा ही करूंगी और उन्हें प्रणाम किया ।।34।।

तथैव पूर्वनिर्दिष्टं महेन्द्रोत्तर भूतलम्।
कुण्डलीकृत्य जज्वाल सालरूपेण सा पुनः॥३५॥

उन ज्वालामालिनिका नित्या ने पूर्व निर्दिष्ट क्रम से महेन्द्राचल के उत्तर में भूभाग में कुण्डली रूप से वह सालरूप से जलने लगी ।।35।।

नभोवलयजज्वालज्वालामालाकुलाकृतिः।
बभासे सालरूपा सा रत्नप्राकारशोभिनी॥३६॥

आकाश वलय में जलती हुई ज्वाला मालामय आकृति वाली सेना रत्ना आकार से सुशोभित हुई ।।36।।

तं प्राकारमथावीक्ष्य शक्तयः शस्त्रपाणयः।
सैनिकं दण्डनाथाया मन्त्रिनाथाचमूरपि।
न्यासामपि शक्तीनां महतीनां महद्बलम्॥३७॥

उस ज्वालामय आकार को देखकर शस्त्र हाथ में ली हुई शक्ति सेना तथा दण्डनाथा की सेना और मंत्रिनाथा की सेना भी सभी उसमें थी ।।37।।

विशङ्कटोदरं सालं प्रविवेश गतक्लमम्।
चक्रराजरथेन्द्रं तु मध्ये संस्थाप्य दण्डिनी॥३८॥

अन्य शक्तियों की महासेना परिश्रमशून्य होकर उस आकार में स्थित हुईं तथा आकार के ठीक मध्य भाग में दण्डिनी भगवती ने चक्रराज रथेन्द्र को स्थापित किया ।।38।।

वामपक्षे रथं स्वीयं दक्षे च श्यामलारथम्।
पश्चाद्भागे संपदीशीं पुरस्ताच्च हयाननाम्॥३९॥

उस आकार के मध्य चक्र राजरथ के वाम भाग में दंडिनीनाथा ने अपना रथ तथा श्यामला का रथ दाहिने ओर स्थापित किया, पश्चिम भाग में सम्पत्करी का रथ तथा सामने अश्वारूढ़ा का रथ स्थापित किया ।।39।।

एवं संवेश्य परितश्चक्रराजरथस्य सा।
द्वारे निवेशयामास विंशत्यक्षोहिणीयुताम्॥४०॥

इस प्रकार उन भगवती ने चक्रराजरथ के चारों ओर निवेशन करके द्वार देश में बीस अक्षिहिणी सेना को स्थापित किया ।।40।।

ज्वलद्दण्डायुधोदग्रां स्तम्भिनी नाम देवताम्।
या देवी दण्डनाथाया विघ्नदेवीति विश्रुता॥४१॥

जलते हुए दण्डायुध वाली अत्यंत उग्र स्वभाव वाली स्तंभिनी नाम देवता जो दंडनाथा देवी की विघ्नदेवी के नाम से प्रसिद्ध हैं ।।41।।

एवं सुरक्षितं कृत्वा शिविर पोत्रिणी ततः।
पूषण्युदितभूयिष्ठे पुनर्युद्धमुपाश्रयन्॥४२॥

इस प्रकार शिविर को सुरक्षित करके फिर दण्डिनी भगवती ने पूषन् सूर्योदय दिन में युद्ध का आश्रय लिया ।।42।।

इति श्रीब्रह्माण्डपुराणे उत्तरखण्डे हयग्रीवागस्त्य-
संवादे ललितोपाख्याने ज्वालामालिनिका- विरचितवह्निप्राकारवर्णनं नाम
एकविंशोऽध्यायः ॥२१॥

॥श्रीमन्महागणाधिपतये नमः॥

श्रीमाताललिताम्बायै नमः श्रीपादुकां पूजयामि नमः॥
ॐ वन्दे गुरुपदद्वन्द्वं अवाङ्मनसगोचरम्॥
रक्तशुक्ल प्रभामिश्रमतर्क्यं त्रैपुरं महः॥
ॐ आराध्यदेवं भक्तानां कलिदोषविनाशकम्॥
वन्दे श्री गिरिजानन्दं शारदाश्रीमठाधिपम्॥
ॐ अखण्डं यस्यज्ञानञ्च भक्तिर्यस्यानपायिनी॥
शारदाज्योतिरीशस्य दर्शनं (पूजनं, वन्दनं) शुभमस्तुनः॥

अथ द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ 82 श्लोकात्मकः

[भण्डपुत्रवधः॥]

ततः किलिकिलारावं कृत्वा शक्तिमहाचमूः।
अग्निप्राकारकद्वारान्निर्जगाम महारवाः॥१॥

इसके अनन्तर शक्तियों की महासेना किलकिला शोर करती हुईं उस अग्निप्राकारक द्वार से बाहर निकलीं॥1॥

इत्थं सुरक्षितं श्रुत्वा ललिताशिबिरोदरम्।
भूयः स ज्वरमापन्नः प्रचण्डो भण्डदानवः॥२॥

इस प्रकार भगवती ललिता के शिविर का द्वार पूर्ण सुरक्षित हो गया हे यह सुनकर दैत्येन्द्र भण्डासुर को भयंकर ज्वर चढ़ गया॥2॥

मन्त्रयित्वा पुनस्तत्र कुटिलाक्षपुरोगमैः।
विषङ्गेण विशुक्रेण सममात्मसुतैरपि॥३॥

उस भण्डासुर ने कुटिलाक्षदि और विषंग और विशुक्र के साथ अपने पुत्रों के साथ मंत्रणा की॥3॥

एकौघस्य प्रसारेण युद्धं कर्तुं महाबलः।
चतुर्बाहु मुखान्पुत्रांश्चतुर्जलधिसंन्निभान्॥४॥

मंत्रणा के अनन्तर एक साथ मिलकर युद्ध करने के लिये चारों समुद्रों के जैसे चतुर्बाहु युद्ध में प्रमुख॥4॥

चतुरान्युद्धकृत्येषु समाहूय स दानवः।
प्रेषयामास युद्धाय भण्डश्चण्डः क्रुधा ज्वलन्॥५॥

क्रोध में जलते हुए चण्ड भण्ड दानव ने युद्ध कृत्यों में चतुर उन पुत्रों को युद्ध के लिये युद्ध स्थल में भेज दिया ।।5।।

त्रिंशदेव हि तत्पुत्रा महाकाया महौजसः।
तेषां नामानि वक्ष्यामि समाकर्णय कुम्भज॥६॥

उस दैत्येन्द्र भण्डासुर के तीस ही पुत्र थे जो महाकाय और महाबली थे, उनके नामों को मैं बता रहा हूं हे कुम्भज! तुम सुनो ।।6।।

चतुर्बाहुश्चकोराक्षस्तृतीयस्तु चतुःशिराः।
वज्रघोषश्चोर्ध्वकेशो महामायो महाहनुः ॥७॥
मखशत्रुर्मघास्कन्दी सिंहघोषः सिरालकः।
अन्धकश्च त्रिनेत्रश्च कूपकः कूपलोचनः॥८॥
गुहाक्षो गण्डलश्चैव चण्डवर्मा यमान्तकः।
लड्डनः पण्डसेनश्च पुरुजित्पूर्वमारकः॥९॥
स्वर्गशत्रुः स्वर्गबलो दुर्गाख्यः स्वर्गकण्टकः।
अतिमायो बृहन्माय उपमायश्च वीर्यवान्॥१०॥

1 चतुर्बाहु, 2 चकोराक्ष, 3 चतुःशिर, 4 व्रजघोष, 5 ऊर्द्ध्वकेश, 6 महाकाय, 7 महाहनु 8 मखशत्रु, 9 मद्मस्कन्दी, 10 सिंहघोष, 11 सिरालक, 12 अन्धक, 13 त्रिनेत्र, 14 कूपक, 15 कूपलोचन 16 गुहाक्ष, 17 मण्डल, 18 चंण्डवर्मा, 19 यमान्तक, 20 लड्डन, 21 पंउसेन, 22 पुरुजित्, 23 पूर्वमारक 24 स्वर्गशत्रु, 25 स्वर्गबल, 26 दुर्ग, 27 स्वर्गकण्टक, 28 अतिमाय, 29 बृहन्माय, 30 उपमाय ।।7,8,9,10।।

इत्येते दुर्मदाः पुत्रा भण्डदैत्यस्य दुर्धियः।
पितुः सदृशदोर्वीर्याः पितुः सदृशविग्रहाः।
आगत्य भण्डचरणावभ्यवन्दन्त भक्तितः॥११॥

उस दुर्बुद्धि भण्डदैत्य के दुर्मद पुत्र थे जो पिता के समान बाहुपराक्रमी और पिता के समान शरीर वाले थे, उन्होंने आकर भक्तिपूर्वक पिता के चरणों में अभिवन्दन किया ।।11।।

तानुदीक्ष्य प्रसन्नेन लोचनेन स दानवः।
सगौरवमिदं वाक्यं बभाषे कुलघातकः॥१२॥

उन सभी पुत्रों को उस दानव ने प्रसन्न नेत्रों से देखा, और वह कुलघातक दानव बड़े गौरव के साथ उन सभी से बोला ।।12।।

भो भो मदीयास्तनया भवतां कः समो भुवि।
भवतामेव सत्वेन जितं विश्वं मया पुरा॥१३॥

अरे पुत्रों! आप लोगों जैसा इस संसार में कौन है, तुम लोगों के पराक्रम बल से मैंने पहिले इस विश्व को जीता हूं ।।13।।

शक्रस्याग्नेर्यमस्यापि निऋतेः पाशिनस्तथा।
कचेषु कर्पणं कोपात्कृतं युग्माभिराहवे।।१४॥

तुम लोगों ने ही युद्ध में इन्द्र, अग्नि, यम, निऋति तथा वरूण के केशों का कर्षण किया था।।14।।

अस्त्राण्यपि च शम्त्राणि जानीथ निखिलान्यपि।
जाग्रत्स्वेव हि युष्मासु कुलभ्रंशोऽयमागतः॥१५॥

आप लोग समस्त अस्त्र शस्त्रों को चलाना जानते हो, फिर भी आप सभी के जागते हुए ही यह कुल का भ्रंश उपस्थित हो गया है ।।15।।

मायाविनी दुर्ललिता काचित्स्त्री युद्धदुर्मदा।
बह्वीभिः स्वसमानाभिः स्त्रीभिर्युक्ता हिनस्ति नः।।१६।।

अपने ही समान बहुत सी स्त्रियों से युक्त युद्ध दुर्मदा मायाविनी ललिता नाम वाली कोई स्त्री है जो हम लोगों को मार रही है ।।16।।

तदेनां समरेऽवश्यमात्मवश्यां विधास्यथ।
जीवग्राहं च सा ग्राह्या भवद्भिर्ज्वलदायुधैः।।१७।।

तो इसको युद्ध में अवश्य ही तुम लोग अपने वश में कर लोगे आप लोग अपने प्रज्वलित आयुधों से प्राण ग्रहण कर सकते हो ।।17।।

अप्रतीपप्रतापाढ्या न्युष्मानेकां स्त्रियं प्रति।
संप्रेषणमनौचित्यं तथाप्येष विधेः क्रमः॥१८॥

अपने बेजोड़ प्रताप से समृद्ध आप सभी को केवल एक स्त्री को वश में करने के लिये भेजना सर्वथा अनुचित है पर फिर भी यह वर्तमान में विधि का विधान ही आ गया है ।।18।।

इममेकं सहध्वं च शौर्यकीर्त्योर्विपर्ययम्।
इत्युक्त्वा भण्डदैत्येन्द्रस्तान्प्राहैषीद्रणं प्रति॥१९॥

आप सभी लोग अपने पराक्रम और प्रसिद्धि के विपरीत इस एक परिस्थिति को सहन करो, ऐसा कहकर दैत्येन्द्र भण्ड ने उन सभी को युद्ध स्थल की ओर भेजा। ।।19।।

द्विशतं चाक्षोहिणीनां तत्सहायाय प्राहिणोत् ।।२०।।

वे दो सौ अक्षेहिणी सेना उन लोगों की सहायता के लिये प्रेषित किया ।।20।।

द्विशत्यक्षोहिणीसेनामुखस्य तिलकायिताः।
बद्धभ्रुकुटयः शस्त्रपाणयो निर्ययुर्गृहात् ।।२१ ।।

वे सभी भण्ड पुत्र दो सौ अक्षोहिणी सेना के सेनापति रूप में युद्ध का तिलक लगाकर भौंहे टेढ़ी कर हाथों में शस्त्र लेकर घरों से निकले ।।21।।

निर्गमे भण्डपुत्राणां भूः प्रकम्पमलम्बत।
उत्पाता विविधा जाता वित्रस्तं चाभवज्जगत् ।।२२।।

भण्ड पुत्रों के घर से निकलने से भूमि में कम्पन होने लगा उत्पात अनेकों होने लगे जगत् भी वित्रस्त होने लगा ।।22।।

तान्कुमारान्महासत्वॉल्लाजवर्षैरवाकिरन्।
वीथीषु यानैश्चलितान्पौरवृद्धपुरन्ध्रयः।।२३।।

वे महापराक्रमी भण्ड कुमार वीथियों में युद्ध स्थल जाने के लिये निकले तो उनसे ऊपर शून्यक नगर वृद्ध नागरिक और पुरनारियों ने उनके ऊपर लाजाओं (लाई) की वर्षा की ।।23।।

बन्दिनो मागधाश्चैव कुमाराणां स्तुतिं व्यधुः।
मङ्गलारात्रिकं चक्रुद्वारेद्वारे पुराङ्गनाः ।।२४।।

नगर में बंन्दियों ने मागधों ने कुमारों ने जोश बढ़ाने के लिये जोशीली स्तुतियां कीं नगर के प्रत्येक द्वारों में गृहों की पुरांगनाओं ने मंगलारती कीं ।।24।।

भिद्यमानेव वसुधा शुष्यमाणमिवाम्बरम्।
आसीत्तेषां विनियार्णे घूर्णमान इवार्णवः।।२५।।

जिस समय नगर से भण्ड पुत्रों के निकलने स्तुतियों का शोर मचा आरती खील वर्षा की धूम से ऐसा प्रतीत हो रहा था कि धरती फट जायेगी आकाश शब्द रहित हो जायेगा अधिक क्या उन सभी के निकलने पर ऐसा ज्ञात हो रहा था कि समुद्र ही घूर कर देख रहा है, इतनी ध्वनि उस समय हो रही थी ।।25।।

द्विशत्यक्षोहिणीसेनां गृहीत्वा भण्डसूनवः।
क्रोधोद्यद्भुकुटीक्रूरनिटिला निर्ययुः पुरात् ।।२६।।

वे भण्डपुत्र क्रोध से भौंहे टेड़ी कर क्रूर दृष्टि से युक्त दो सौ अक्षोहिणी सेना को लेकर शून्यकपुर से निकले ।।26।।

शक्तिसैन्यानि सर्वाणि भक्षयामः क्षणाद्रणे।
तेषामायुधचक्राणि चूर्णयामः शितैः शरैः॥२७॥

रण में हम लोग समस्त शक्ति सेना को खा जायेंगे, उन सभी के शस्त्रादि चक्रों को पैने बाणों की वर्षा से चूरा कर देंगे ।।27।।

अग्निप्राकारवलयं शमयामश्च रंहसा।
तां दुर्विदग्धां ललितां बन्दीकुर्मश्च सत्वरम्।।२८।।

उस अग्नि के परकोटे की घेरावली को वेग से ठंडा कर देंगे और बड़े वेग से उस दुर्विदग्धा ललिता को बन्दी बना लेंगे। ।28।।

इत्यन्योन्यं प्रजल्पन्तो वीरभाषणघोषणैः।
आसेदुरग्निप्राकारसविधं भण्डसूनवः॥२९॥

इस प्रकार परस्पर जोश पूर्ण भाषण करते हुए वे भण्ड पुत्र अग्नि आकार के पास आ गए ।।29।।

यौवनेन मदान्धेन भूयसा रुद्धदृष्टयः।
भ्रुकुटीकुटिलाश्चक्रुः सिंहनादं महत्तरम्॥३०॥

यौवन और बहुत अधिक मद से अन्धे हुए वे बड़े क्रोध से भौहैं टेड़ी करके भयंकर सिंहनाद करने लगे ।।30।।

विदीर्णमेव तेनासीद्ब्रह्माण्डं चण्डिमस्पृशा।
उत्पातवारिदभ्रष्टघोरनिर्घातरंहसा।।३१॥

उस घोर नाद के तीव्र स्पर्श के द्वारा ब्रह्माण्ड विदीर्ण सा हो गया और जैसे प्रलय कालीन मेघ से परस्पर टकराने से शब्द होता है ।।31।।

एतस्याननुभूतस्य महाशब्दस्य डम्बरः।
क्षोभयामास शक्तीनां श्रवांसि च मनांसि च॥३२॥

वह सिंहनाद का घोर गुंजन ऐसा था जो कभी अनुभव में नहीं आया था ऐसे उस सशब्द के महाघोष ने शक्तियों के कानों को और मन को क्षुभित कर दिया ।।32।।

आगत्य ते कलकलं चक्रुः सार्धं स्वसैनिकैः।
विविधायुधसंपातमूर्च्छद्वैमानिकच्छटम्॥३३॥

उन सभी ने अपने सैनिकों के साथ आकर कल कल करना प्रारंभ कर दिया, उनके अनेकों प्रकार के असत्र शस्त्रों के संपात से विमान की छटा भी फीकी पड़ गई ।।33।।

चतुर्बाहुमुखाञ्छ्रुत्वा भण्डदैत्यकुमार कान्।
आगतान्युद्धकृत्याय बाला कौतूहलं दधे॥३४॥

उन चतुर्बाहु आदि भण्ड दैत्य कुमारकों को युद्ध करने के लिये आये हुए सुनकर भगवती बाला ने भी युद्ध की उत्कंठा धारण की ।।34।।

कुमारी ललितादेव्यास्तस्या निकटवासिनी।
समस्तशक्तिचक्राणां पूज्या विक्रमशालिनी॥३५॥

वह कुमारी बाला उन भगवती ललिता देवी के ही निकट निवास करती थीं वे समस्त चक्रों की पूजनीया थीं और पराक्रम शालिनी थीं।।35।।

ललितासदृशाकारा कुमारी कोपमादधे।
या सदा नववर्षेव सर्वविद्यामहाखनिः॥३६॥

वह कुमारी भगवती ललिता के ही सदृश आकार वाली थीं उन्होंने क्रोध किया वे सदैव नववर्ष की ही रहती हैं वे समस्त विधाओं की खान थीं ।।36।।

बालारुणत नुश्रेणीशोणवर्णवपुर्लता।
महाराज्ञीपादपीठे नित्यमाहितसंनिधिः॥३७॥

उन कुमारी का शरीर बाल सूर्य के समान अरूण वर्ण का था, वे भगवती के पादपीठ में नित्य स्थित रहती हैं ।।37।।

ॐ अरुणकिरणजालैरंजिनाशा, विधृत जपवाटीका पुस्तकाभीति हस्ता।
इतरकरवाढ्या फुल्लकल्हार संस्था निवसतुहृदि बाला नित्य कल्याणशीला।।

तस्या बहिश्वराः प्राणा या चतुर्थं विलोचनम्।
तानागतान्भण्डसुतान्योधयिष्यामि सत्वरम्।। ३८।।

भगवती ललिता के बहिश्चर प्राण थी वे बाला तथा उन त्रिनेत्रा ललितादेवी के चौथे नेत्र थीं (अर्थात गुप्तचर भी थीं) उन बाला भगवती ने जब यह सुना कि भण्ड के पुत्र युद्ध स्थल में आ रहे हैं उनका भी उत्साह उन लोगों से युद्ध करने का हो गया ।।38।।

इति संचिन्त्य बालाम्बा महाराज्ञै व्यजिज्ञपत्।
मातर्भण्डमहादैत्यसूनवो योद्धुमागताः॥३९॥

युद्ध की इच्छा होने पर बालाम्बा ने महाराज्ञी भगवती से निवेदन किया हे मातः! उस महादैत्य भण्ड के पुत्र युद्ध करने के लिये युद्ध स्थल में आए हैं ।।39।।

तैः समं योद्धुमिच्छामि कुमारीत्वात्सकौतुका।
स्फुरन्निव च मे बाहुर्युद्धकण्डूययानया ॥४०॥

उन लोगों से मैं युद्ध करना चाहती हूं, कुमारी होने के कारण मेरे मन में बहुत ही उत्सकुता है इस समय मेरी भुजाएं युद्ध की खुजली से फड़क रही हैं ।।40।।

क्रीडा ममैपा हन्तव्या न भवत्या निवारणैः।
अहं हि बालिका नित्यं क्रीडनेष्वनुरागिणी॥४१॥

युद्ध करना मेरा खेल है आप रोक कर उस मेरी इच्छा का हनन मतकर देना, मैं बालिका हूं नित्य खेलने में अनुराग रहता है ।।41।।

क्षणं रणक्रीडया च प्रीतिं दास्यामि चेतसः।
इति विज्ञापिता देवी प्रत्युवाच कुमारिकाम्॥४२॥

हे मातः! मैं इस क्षण युद्ध के खेल से मन को प्रसन्न करुंगी ऐसा बाला द्वारा निवेदन करने पर भगवती महादेवी कुमारी बाला से बोलीं ।।42।।

वत्से त्वमतिमृद्वङ्गी नववर्षा नवक्रमा।
नवीनायुधशिक्षा च कुमारी त्वं ममैकिका॥४३॥

ऐ बेटी! तुम अभी छोटी बालिका हो तम्हारा कोमल शरीर है नौ वर्ष की हो तथा नवीन क्रम भी तुम्हारा है अभी अभी तुम्हें नवीन आयुधों की शिक्षा दी गई है अभी तुम्हारी उन शस्त्रास्त्रों में सिद्धहस्तता नहीं आ पाई है और तुम मेरी एकमात्र कुमारी हो ।।43।।

त्वां विना क्षणमात्रं मे न निश्वासः प्रवर्तते।
ममोच्छुसितमेवासि न त्वं याहि महाहवम्॥४४॥

तुम्हारे बिना एक क्षण के लिये भी मेरी निश्वास नहीं चलती तुम मेरी प्राण वायु हो तुम इस महायुद्ध में नहीं जाओ ।।44।।

दण्डिनी मन्त्रिणी चैव शक्तयोऽन्यास्तु कोटिशः।
सन्त्येव समरं कर्तुं वत्से किं त्वं प्रयास्यसि॥४५॥

दंडिनी मंत्रिणी तथा अन्य करोड़ों शक्तियां हैं वे सभी युद्ध करेंगी ही तुम व्यर्थ में क्यों निरर्थक युद्ध में जाओगी ।।45।।

इति श्रीललितादेव्या निरुद्घाणि कुमारिका।
कौमारकौतुकाविष्टा पुनर्युद्धमयाचत।।४६॥

इस प्रकार श्री ललिता देवी द्वारा रोकी गई कुमारी बाला ने अपनी कौमार आयु के कौतकवश

पुनः युद्ध में जाने एवं युद्ध करने के लिये याचना की ।।46।।

सुदृढं निश्चयं दृष्ट्वा तस्याः सा ललिताम्बिका।
अनुज्ञां कृतवत्येव गाढमालिङ्ग्य बाहुभिः।।४७।।

उन भगवती श्री ललिताम्बा ने बाला कुमारी का दृढ़ निश्चय देख कर बाहों में आलिंगन कर युद्ध में जाने की अनुमति दे दी ।।47।।

स्वकीयकवचादेकमाच्छिद्य कवचं ददौ।
स्वायुधे यश्चायुधानि वितीर्य विससर्ज ताम्।।४८।।

तब भगवती ने अपने कवच से एक कवच निकालकर बाला को दिया तथा अपने आयुधों से आयुधों को निकाल कर दिया तथा युद्ध में भेजा ।।48।।

कर्णीरथं महाराज्ञी चापदण्डात्समुत्थितम्।
हंमयुग्यशतैर्युक्तमारुरोह कुमारिका।।४९।।

महाराज्ञी ललिताम्बा ने धनुष दण्ड से समुत्थित कर्णीरथ दिया जो सैंकड़ों हंस के जोड़ों से युक्त था उसमें कुमारिका बाला आरूढ़ हुईं।।49।।

तस्या रणप्रवृत्तायां पेठुः किंन्नरयोषितः।
देवीभुजापदानानि सर्वपर्वस्थदेवताः।।५०।।

कुमारी के रण स्थल की ओर प्रयाण करने पर किंनरो की महिलाएं गान करने लगीं और सभी पर्वों में स्थित देवगण बद्धांजलि होकर नमन करने लगे ।।50।।

बद्धाञ्जलिपुटा नेमुः प्रयुक्ताशीः परम्पराः।
इतस्ततः प्रसर्पन्त्यो वेत्रहस्ताः पदेपदे।।५१।।

सभी देवगण बद्धांजलि होकर नमन करने लगे और आशीः परम्परा का प्रयोग करने लगे इधर उधर बेंत लिये हुए आने जाने लगे ।।51।।

ताभिः प्रणम्यमाना सा चक्रराजरथोत्तमात्।
अवरुह्य तले सैन्यं वर्तमानमगाहत ।।५२।।

उन सभी से प्रणाम की जाती हुईं बाला ने चक्रराज उत्तम रथ से उतर कर सैन्य दल में प्रवेश किया।।52।।

अथ तामायतीं दृष्ट्वा कुमारीं कोपपाटलाम्।
मन्त्रिणी दण्डनाथा च सभये वाचमूचतुः।।५३।।

रथ से उतरकर उन बाला को कोप से गुलाबी आभा वाली देखकर भयपूर्ण होकर मंत्रिणी और

दण्डनाथा बोलीं ।।53।।

किं भर्तृदारिके युद्धे व्यवसायः कृतस्त्वया ।
अकाण्डे किं महाराज्ञ्या प्रेषितासि रणंप्रति ।।५४।।

हे राजकुमारी ! क्या तुमने युद्ध में कभी कोई कार्य किया है तुमने तो कभी युद्ध किया ही नहीं फिर समय में महाराज्ञी ने इस युद्ध में भेज दिया है ।।54।।

तदेतदुचितं नैव वर्तमानेऽपि सैनिके।
त्वं मूर्त जीवितमसि श्रीदेव्या बालिके यतः ।।५५।।

अतः हे बालिके ! सैनिक यहां उपस्थित हैं यहां यह युद्ध करना उचित नहीं है तुम भगवती श्री देवी का जीवित प्राण हो ।।55।।

निवर्तस्व रणोत्साहात्प्रणामस्ते विधीयते।
इति ताभ्यां निरुद्धापि प्राचलद्दृढनिश्चया ।।५६।।

हम सभी आपको प्रणाम कर रही हैं आप इस रणोत्साह से वापस लौट जाओ इस प्रकार उन दोनों शक्तियों से रोके जाने पर भी बाला दृढ़ निश्चय वाली थीं वे आगे बढ़ती ही रहीं ।।56।।

अत्यन्तविस्मयाविष्टे मन्त्रिणीदण्डनायिके।
सहैव तस्या रक्षार्थं चेलतुः पार्श्वयोर्द्वयोः ।।५७।।

बाला का उत्साह देखकर मंत्रिणी और दण्डनाथा अत्यन्त विस्मय करती रहीं फिर उन दोनों शक्तियों ने बाला की रक्षा के लिय उन बाला के दोनों पार्श्वों (दांय और बांए) में चलने लगीं।।57।।

अथाज्यावरणद्वारात्ताभ्यामनुगता सती।
प्रभूतसेनायुक्ताभ्यां निर्जगाम कुमारिका ।।५८।।

इसके बाद अग्नि आवरण द्वार से उन दोनों मंत्रिणी और दंडनाथा के जो दोनों ही पर्याप्त सेना वाली थीं वे उनके साथ कुमारी उस ज्वाला परकोट से बाहर निकलीं ।।58।।

शक्तिसेनाधिनाथानां सर्वासामनुगृह्णती।
प्रणामाञ्जलिजालानि कर्णीरथकृतासना।
भण्डस्य तनयान्दुष्टानभ्यद्रवदरिन्दमा।।५९।।

उन बाला भगवती ने कर्णीरथ में आसन में बैठी हुई सभी शक्ति सेना की अधिनाथाओं की प्रणामांजलि लेकर अनुग्रह किया फिर उन्होंने जो शत्रुओं का दमन करती है भण्ड के पुत्रों के साथ युद्ध आरंभ कर दिया ।।59।।

तस्याः प्रातिस्विकं सैन्यं कुमार्या नहि वर्तते।
सर्वे हि ललितासैन्यं तत्सैन्यं समजायत॥६०॥

उन कुमारी की अपनी अलग से कोई सेना नहीं थी, सभी ललिता देवी की ही सेना थी अतः ललिता भगवती की सेना ही कुमारी की सेना हो गईं ।।60।।

ततः प्रववृधे युद्धमत्युद्धतपराक्रमम्।
ववर्ष शरजालानि दैत्येन्द्रेषु कुमारिका॥६१॥

तब वह युद्ध अत्यन्त उद्धत पराक्रम वाला था, बहुत अधिक रूप से आरंभ हो गया, उसमें कुमारी ने दैत्येद्रों के ऊपर घनघोर शरजालों की वर्षा कर दी।।61।।

भण्डासुरकुमारैस्तैर्महाराज्ञीकुमारिका।
यद्युद्धमतनोत्तत्तु स्पृहणीयं सुरासुरैः॥६२॥

भण्डासुर के उन तीस कुमारों से और महाराज्ञी ललिता भगवती की कुमारी का जो युद्ध विस्तृत हुआ वह समस्त देवताओं और असुरों के लिये अत्यन्त प्रशंसनीय था ।।62।।

अत्यन्तविस्मिता दैत्याः कुमारीं नववर्षिणीम्।
कर्णीरथस्थामालोक्य किरन्तीं शरमण्डलम्॥६३॥

उन नव वर्ष की कुमारी को कर्णीरथ में बैठी हुई बाणों की वर्षा करती हुई देखकर दैत्यगण अत्यन्त विस्मित हो रहे थे।।63।।

क्षणे क्षणे तु बालायाः क्रियमाणं महारणम्।
व्यजिज्ञपन्महाराज्ञ्यै भ्राम्यन्त्यः परिचारिकाः।।६४।।

वह कुमारी क्षण क्षण में अनेक प्रकारों का महारण कर रही थीं उसकी इस अपूर्व आक्रमता को देखती हुई परिचारिका ने महाराज्ञी से समय समय पर निवेदन किया ।।64।।

मन्त्रिणीदण्डनाथे ते विस्मयेन रणात्यजौ।
प्रेक्षकत्वमनुप्राप्ते तूष्णीमेव बभूवतुः॥६५॥

जो मंत्रिणी और दंडनाथा उन कुमारी को अल्पवयस होने के कारण युद्ध में जाने से रोक रही थीं वे भी उस युद्ध कौशल को देखकर विस्मित हो गईं, उन दोनों को प्रेक्षक के द्वारा पूरी स्थिति बताई जा रही थी यह सब सुन वे सभी चुप ही हो गईं ।।65।।

सर्वेषां दैत्यपुत्राणामेकरूपा कुमारिका।
प्रत्येकभिन्ना ददृशे विम्बमालेव भास्वतः॥६६॥

सभी दैत्य पुत्रों में कुमारिका एक रूप वाली ही थी, पर वह बिम्बमाला की चमक से सभी को

भिन्न-भिन्न दिखाई दे रहीं थीं ।।66।।

सायकैरग्निचूडालैस्तेषां मर्माणि भिन्दती।
आश्चर्य दुहती व्योम्नि पश्यतां च दिवौकसाम्।।६७।।

आग के गोले के समान बाणों से उन दैत्य पुत्रों के मर्मस्थलों को भेदती हुई वह बाला युद्ध कर रहीं थीं उसे देखकर वे देवतागण आकाश में देखते आश्चर्य कर रहे थे ।।67।।

साधुवादैर्बहुविधैर्मन्त्रिणीदण्डनाथयोः।
अर्घ्यमाना रणं चक्रे लघुहस्ता कुमारिका॥६८॥

मंत्रिणी और दंडनाथा को वे देवता गण आकाश में स्थित थे बहुत साधुवाद दे रहे थे ऐसी नव वर्षीया कन्या आपने युद्ध में दिया जो युद्ध क्षेत्र में ऐसा पराक्रम दिखा रही है ।।68।।

द्वितीययुद्धदिवसं समस्तमपि सा रणे।
प्रकाशयामास बलं ललितादुहिता निजम्॥६९॥

इस प्रकार उस कुमारिका ने द्वितीय युद्ध दिवस समस्त बिता दिया उसमें उन ललिता पुत्री ने अपना निजी बल प्रकाशित किया ।।69।।

अस्त्रप्रत्यस्त्रमोक्षेण तान्सर्वानपि भिन्दती।
रक्तोत्पलमिव क्रोधसंरक्त बिभ्रती मुखम्॥७०।।

अस्त्र पर प्रत्यस्त्र के प्रहार के द्वारा उन सभी दैत्यों के मर्मस्थलों को भेदती हुईं वे बाला लाल कमल की लालिमा जैसे तमतमाए लाल मुख वाली हो रहीं थीं ।।70।।

नारायणास्त्रमोक्षेण महाराज्ञीकुमारिका।
द्विशत्यक्षोहिणीसैन्यं भस्मसादकरोत्क्षणात्॥७१॥

फिर महाराज्ञी ललिता भगवती की कुमारी ने नारायणास्त्र का प्रयोग करके दो सौ अक्षौहिणी सेना को क्षण भर में भस्मसात कर दिया ।।71।।

अक्षोहिणीनां क्षयतः क्षणात्कोपमुपागताः।
आकृष्टगुरुधन्वानस्ते ऽपतन्नेकहेलया।। ७२ ॥

अक्षोहिणी सेना के नष्ट होने पर क्रोधित हुए उन भण्ड दैत्य कुमारों ने क्षण भर में एक साथ (तीस कुमारों ने) ही अपने अपने विशाल धनुषों को लेकर बाला पर आक्रमण कर दिया ।।72।।

ततः कलकले जाते शक्तीनां च दिवौकसाम्।
युगपत्त्रिशतं बाणानसृजत्सा कुमारिका॥७३॥

उन दैत्य कुमारों के साथ युद्ध में उद्यत हो जाने से शक्तियों का और देवताओं का शोर होने लगा

तभी कुमारी ने एक साथ ही तीस अमोघ बाणों का संधान किया ।।73।।

हस्तलाघववत्याथ मुक्तैश्चन्द्रार्धसायकैः।
त्रिशता त्रिशतं भण्डपुत्राणामाहतं शिरः॥७४॥

उन बाला भगवती ने हस्त लाघव से छोड़े गए अर्धचन्द्र फलक वाले तीस बाणों से उन तीस भण्ड दाजव के तीस सिरों को छिन्न कर दिया ।।74।।

इति भण्डस्य पुत्रेषु प्राप्तेषु यमसादनम्।
अत्यन्तविस्मयाविष्टा ववर्षुः पुष्पमभ्रगाः॥७५॥

इस प्रकार दैत्यराज भण्ड के पुत्रों के एक साथ ही यम लोक चले जाने पर आकाशगामी देवतागण अत्यन्त आश्चर्य में भरकर पुष्पों की वर्षा करने लगे ।।75।।

सा च पुत्री महाराज्ञ्या विध्वस्तासुरसैनिका।
मन्त्रिणीदण्डनाथाभ्यामालिङ्ग्यत भृशं मुदा॥७६॥

इसके अनन्तर उन महाराज्ञी भगवती ललिता की पुत्री जिसने अपने पराक्रम से दो सौ अक्षौहिणी सेना को और भण्ड के तीसों पुत्रों को युद्ध में समाप्त कर दिया था देख मंत्रिणी और दंडनाथा ने बड़े हर्ष से उसे अपने गले लगाया ।।76।।

तस्याः पराक्रमोन्मेषैर्नृत्यन्त्यो जयदायिभिः।
शक्तयस्तुमुलं चक्रुः साधुवादैर्जगत्त्रयम्॥७७॥

उन बाला के पराक्रम पूर्णजय देने वाले उन्मेषों (पलक झपकती आंखों) से नृत्य करती हुई शक्तियों ने साधुवादों से तीनों लोकों को तुमुल ध्वनि से भर दिया ।।77।।

सर्वाश्च शक्तिसेनान्यो दण्डनाथापुरःसराः।
तदाश्चर्यं महाराज्ञ्यै निवेदयितुमागताः।।७८।।

समस्त शक्ति सेना और सेनानी दण्डनाथा को आगे करके उस महान आश्चर्य का निवेदन करने के लिये महाराज्ञी के पास गईं ।।78।।

सिहासनस्थितां देवीं दृष्ट्वा नेमुः स्मयान्विताः।
कुमारिकाकृतं कर्म विनिवेद्य पुनर्गताः ॥७९॥

सिंहासन में विराजमान भगवती ललिता देवी को देखकर सभी देवगण वे शक्तियां आश्चर्ययुक्त होकर कुमारी द्वारा किया गया पराक्रम सभी निवेदन करके वापस चली गईं ।।79।।

ताभिर्निवेद्यमानानि सा देवी ललिताम्बिका।
पुत्र्या भुजापदानानि श्रुत्वा प्रीतिं समाययौ॥८०॥

वे देवी भगवती ललिताम्बिका ने उन सभी शक्तियों द्वारा बाला भगवती द्वारा किया गया बाहु पराक्रमादि का वृत्तान्त सुना उन्हें सुनकर बाला के प्रतिवात्सल्य उमड़ पड़ा ।।80।।

अङ्के पुत्रीं समारोप्य स्पृशन्ती पाणिना वपुः।
मूर्ध्न्युपाघ्राय सा देवी हृष्टा बालां व्यमुञ्चत॥८१॥

उन भगवती ने पुत्री बाला को गोद में बिठाकर उनके श्रीविग्रह शरीर का हाथों से स्पर्श किया और सिर सूंघकर स्नेह किया।।81।।

समस्तमपि तच्चक्रं शक्तीनां तत्पराक्रमैः।
अदृष्टपूर्वैर्दैत्येषु विस्मयस्य वशं गतम्॥८२॥

समस्त शक्तियों का वह चक्रसमूह कभी न देखा न सुना दैत्यों के मध्य में बाला के पराक्रम जो हए उनका स्मरण होने सभी विस्मित हो गए ।।82।।

इति श्रीब्रह्माण्डपुराणे उत्तरखण्डे हयग्रीवागस्त्यसंवादे
ललितोपाख्याने भण्डपुत्रवधोनाम
द्वाविंशोऽध्याय ॥ २२ ॥

॥श्रीमन्महागणाधिपतये नमः।।

श्रीमाताललिताम्बायै नमः श्रीपादुकां पूजयामि नमः ॥
ॐ वन्दे गुरुपदद्वन्द्वं अवाङ्मनसगोचरम्॥
रक्तशुक्ल प्रभामिश्रमतर्क्यं त्रैपुरं महः ॥
ॐ आराध्यदेवं भक्तानां कलिदोषविनाशकम्॥
वन्दे श्रीगिरिजानन्दं शारदाश्रीमठाधिपम्।।
ॐ अखण्डं यस्यज्ञानञ्च भक्तिर्यस्यानपायिनी।।
शारदाज्योतिरीशस्य दर्शनं (पूजनं, वन्दनं) शुभमस्तुनः।।

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ 104 श्लोकात्मकः

[भण्डासुरप्रलापः ॥]

श्री हयग्रीव बोले-ः

अथ पुत्रेषु नष्टेषु शोकानलपरिप्लुतः ।
विललाप स दैत्येन्द्रो मत्वा जातं कुलक्षयम्॥१ ॥

युद्ध स्थल में भगवती बाला कुमारी के द्वारा तीसों पुत्रों के सेना सहित मारे जाने के समाचार को सुनने के बाद भण्डासुर शोकाग्नि में झुलस गया और वह दैत्येन्द्र कुल का नाश हो गया मानकर विलाप करने लगा ।।1 ।।

हा पुत्रा हा गुणोदारा हा मदेकपरायणाः।
हा मन्नेत्रसुधापूरा हा मत्कुलविवर्धनाः॥२ ॥

हाय पुत्रों, हाय मेरे उदार गुणों वाले, हाय मेरी आज्ञा का पालन करने वालों, हाय मेरी ही सेवा में रहने वालों हाय मेरे नेत्रों को अमृत से भरने वालों, हाय मेरे कुल को बढ़ाने वालों ।।2 ।।

हा समस्तसुरश्रेष्ठमदभञ्जनतत्पराः।
हा समस्तासुरस्त्रीणामन्तर्मोहनमन्मथाः॥ ३ ॥

हाय समस्तदेवों के श्रेष्ठ देवों के मद का भंजन करने के लिये तत्पर रहने वाले, हाय सभी देवस्त्रियों के अंतर्हृदय और मन को मथ देने वाले ।।3 ।।

दिशत प्रतिवाचं मे ममाग्रे वल्गताधुना।
किमुदन्तमिमं तातमवमुच्य दिवं गताः॥४ ॥

हे पुत्रों ! मेरी बात का जवाब दो, मेरे अंगों, गोद में खेलो क्यों मुझे छोड़कर चले गये हो ।।4 ।।

युष्मान्विना न शोभन्ते मम राज्यानि पुत्रकाः।
रिक्तानि मम गेहानि रिक्ता राजसभापि मे॥५॥

तुम सभी लोगों के बिना मेरे सम्पूर्ण राज्य शोभा नहीं दे रहे हैं तुम लोगों के बिना मेरे सभी घर सूने हो गए हैं और वह राजसभा भी सूनी हो गई है ।।5।।

कथमेव हि निःशेषं हता यूयं दुराशया।
अप्रधृष्यभुजासत्वान्भवतो मत्कुलाङ्कुरान्॥६॥

इस प्रकार कैसे एक साथ ही सभी तुम दुराशयों वाले मारे गए तुम लोग तो मेरे वंश के अंकुर थे तुम्हारी भुजाओं में अप्रतिम बल था यह आश्चर्य की बात है ।।6।।

कथमेकपदे दुष्टा वनिता संगरेऽवधीत्।
मम नष्टानि सौख्यानि मम नष्टाः कुलश्रियः॥७॥

किस प्रकार उस दुष्ट स्त्री ने एक साथ तुम तीसों को सेना सहित उस युद्ध में मार दिया मेरा समस्त सुख नष्ट हो गया, मेरे कुल की स्त्रियां भी नष्ट हो गईं ।।7।।

इतः परं कदा वीक्षे सहासानि मुखानि वः।
भवन्तः सुकृतैर्लब्धा मम पूर्वजनुःकृतैः॥८॥

अब इसके बाद मैं कब देखूंगा तुम लोगों के खिलखिलाकर हंसते हुए मुखों को, आप सभी के सुकृतों से तथा मेरे पूर्वजन्म में किए गए कर्मों के फल से सभी कुछ पाया था, वह सभी एक साथ नष्ट हो गया ।।8।।

नाशोऽयं भवतामद्य जातो नष्टस्ततोऽस्म्यहम्।
हा हतोस्मि विपन्नोस्मि मन्दभाग्योस्मि पुत्रकाः॥९॥

हे पुत्रों! आज आप सभी का मृत्यु को प्राप्त होना उससे मैं भी नष्ट हो गया हूं हाय मैं मारा गया, हाय मैं विपत्तिग्रस्त हो गया हाय मेरा भाग्य ही नष्ट हो गया ।।9।।

इति शोकात्स पर्यश्रुः प्रलपन्मुक्तकुन्तलः।
मूर्च्छया लुप्तहृदयो निपपात नृपासनात्॥१०॥

इस प्रकार वह भण्डासुर शोक में आंसु भरे हुए प्रलाप करता हुआ बिखरे हुए सिर के केशों वाला मुर्च्छ से लुप्त हृदये गिर गया राजासन से बेहोश हो गया शून्य हृदय होकर सिंहासन से नीचे गिर गया ।।10।।

विशुक्रश्च विषङ्गश्च कुटिलाक्षश्च संसदि ।
भण्डमाश्वासयामासुर्देवस्य कुटिलैः क्रमैः ॥११॥

विशुक्र विषंग और कुटिलाक्ष ने सभा में भण्ड को आश्वासन देते हुए समझाना शुरू किया।।11।।

विशुक्रः ॥ विशुक्र बोला-ः

देव किं प्राकृत इव प्राप्तः शोकस्य वश्यताम्।
लपसि त्वं प्रति सुतान्प्राप्तमृत्यून्महाहवे।।१२।।

हे देव ! प्रकृति से प्राप्त जैसे इस शोक देखिये, इस महायुद्ध में मृत्यु को प्राप्त प्रत्येक पुत्र के प्रति विलाप कर रहे हो ।।12।।

धर्मसंपादितः पन्था वीराणामेष शाश्वतः।
अशोच्यमाहवे मृत्युं प्रवदन्ति मनीषिणः॥१३॥

वीरों का यह मार्ग शाश्वत है, धर्म सम्मत है कि युद्ध में वीरोचित मृत्यु प्राप्त करना उसके लिये शोक नहीं करना चाहिये ।।13।।

एतदेव विनाशाय शल्यवद्बाधते मनः।
यत्स्त्री समागत्य हठान्निहन्ति सुभटान्रणे॥१४॥

हे राजन ! यहां शोक की जगह यह सोचना आवश्यक है कि यह जो शोक हो रहा विनाश के कारण यह विनाश कारण मन को बाण के समान बाधित हो रहा है कि युद्ध में अच्छे अच्छे योद्धाओं को एक स्त्री आकर बलपूर्वक मार रही है ।।14।।

इत्युक्ते तेन दैत्येन पुत्रशोकं विमुञ्चता।
भण्डेन चण्डकालाग्निसदृशः क्रोध आदधे॥१५॥

विशुक्र के ऐसा कहने पर उस दैत्य भण्डासुर ने पुत्र शोक का त्याग करते हुए क्रोध से प्रलयकालीन अग्नि जैसा क्रोध धारण किया ।।15।।

स तीव्रस्पर्शमुद्धून्वन्खड्गमुग्रयमोपमम्।
विस्फारिताक्षियुगलो भृशं जज्वाल तेजसा॥१६॥

तब वह भण्डासुर क्रोधपूर्वक यम के समान खड्ग को हाथ में लेकर ऊपर घुमाता हुआ क्रोध से जलती हुई आंखों से देखता हुआ ।।16।।

इदानीमेव तां दुष्टां खड्गेनानेन खण्डशः।
शकलीकृत्य समरे शमं प्राप्स्यामि बन्धुभिः॥१७।।

और कहने लगा कि मैं इसी समय उस दुष्ट स्त्री को इस खड्ग से टुकड़े करके बन्धुओं के साथ शान्ति प्राप्त करूंगा ।।17।।

इति रोषस्खलद्वर्णः श्वसन्निव भुजङ्गमः।
खड्गं विधून्वन्नुत्थाय प्रचचालातिमत्तवत्॥१८॥

इस तरह क्रोध से वाणी जिसकी लड़खड़ा रही थी, सर्प जैसे श्वास ले रहा था ऐसा वह भण्ड खड्‌गं को लहराता हुआ अतिमत्त जैसे चल पड़ा ।।18।।

तं निरुध्य च संभ्रान्ताः सर्वे दानवपुंगवाः।
वाचमूचुरतिक्रोधाज्वलन्तो ललितां प्रति।। १९ ।।

तब सभी दाजव प्रमुखों ने उसे रोका और ललितादेवी के प्रति क्रोध में उबलते भण्ड से बोले।।19।।

न तदर्थे त्वया कार्यः स्वामिन्संरम्भ ईदृशः।
अस्माभिः सबलैर्युक्तै रणोत्साहो विधीयते॥२०॥

हे राजन! आपको अभी ऐसा कुछ नहीं करना है अभी हम अपनी सेना के साथ रण में उत्साह बनाये रखना चाहते हैं ।।20।।

भवदाज्ञाबलं प्राप्य समस्तं भुवनं हठात्।
विमर्दयितुमीशाः स्म किमु तां मुग्धभामिनीम्।।२१।।

आपकी आज्ञाबल से बल प्राप्त करके बल पूर्वक समस्त भुवन को मर्दित करने के लिये हम लोग समर्थ हैं वह बेचारी स्त्री की क्या चिन्ता ।।21।।

किं शोषयामः सप्ताब्धीन्भक्षयामोऽथवा गिरीन्।
अधरोत्तरमेवैतत्त्रैलोक्यं करवाम वा॥२२॥

बोलो क्या हम सातों समुद्रों को सुखा दें अथवा सभी पर्वतों को चूराकर डालें या समस्त त्रिलोकी को उलट पलट कर दें ।।22।।

छिनदाम सुरान्सर्वान्भिनदाम सुरालयान्।
पिनषाम हरित्पालानाज्ञां देहि महामते॥ २३ ॥

और सभी देवगणों को काट डालें, सभी देवगणों के आश्रय घर या लोकां का छिन्न भिन्न कर दें क्या सभी दिक्पालों को चूरा कर दें हे महामति! हम लोगों को आज्ञा दो ।।23।।

[विशुक्रकृतजयविघ्नयन्त्रः ॥]

इत्युदीरितमाकर्ण्य महाहंकारगर्भितम्।
उवाच वचनं भण्डः प्रतिघारुणलोचनः॥२४॥

इस प्रकार उन दानव प्रमुखों के वचनों को सुनकर जो बड़े अहंकार भरे थे प्रतिघात की भावना से भण्ड लाललाल नेत्रों वाला इन वचनों को बोला ।।24।।

विशुक्र भवता गत्वा मायान्तर्हितवर्मणा।
जयविन्नमहायन्त्रं कर्तव्यं कटके द्विषाम्॥२५॥

भण्ड बोला विशुक्र आप माया से गुप्त शरीर होकर शत्रु की सेना के बीच पहुंचों और वहां जयविघ्न महायंत्र को रखो ।।25।।

इति तस्य वचः श्रुत्वा विशुक्रो रोपरूषितः।
मायातिरोहितवपुर्जगाम ललिताबलम्।।२६।।

भण्ड के वचनों को सुनकर क्रोध में भरा हुआ विशुक्र माया से गुप्त शरीर होकर ललिता भगवती की ज्वाला परिखा से रक्षित सेना में पहुंचा ।।26।।

तस्मिन्प्रयातुमुद्युक्ते सूर्योऽस्तं समुपागतः।
पर्यस्त किरणस्तोमपाटलीकृतदिङ्मुखः।।२७।।

उस विशुक्र को जाने के लिये तैयारी हुई उसी समय सूर्य भी अस्ताचल गामी हो गया चारों ओर सूर्य की किरणें अस्त हो गईं और सभी दिग्मण्डल लाल रंग का हो गया ।।27।।

अनुरागवती सन्ध्या प्रयान्तं भानुमालिनम्।
अनुवव्राज तरसा कुञ्जरन्तुमिवोत्सुका।।२८।।

उस समय ऐसा दृश्य बना मानों संध्या नायिका अनुराग से भरी हो गईं वह नायक सूर्य के जाते हुए देखकर उसके पीछे पीछे चली वेग से चली मानों वह कुंजों में उससे मिलना चाह रही हो ।।28।।

वेगात्प्रपततो भानोर्देहसङ्गात्समुत्थिताः।
चरमाब्धेरिव पयःकणास्तारा विरेजिरे।।२९।।

जैसे ही वेग से गिरते हुए सूर्य के देह संग लिपटी तारागण रूपी स्त्रियां परम समुद्र में जल कणों के समान आकाश में चमकने लगीं ।।29।।

अथाससाद बहलं तमः कज्जलमेचकम्।
साह्यं विधातुमुद्युक्तमिव तस्य दुरात्मनः।।३०।।

संध्योपरांत का जल समूह के समान बहुत घना अंधेरा छा गया ऐसा प्रतीत हो रहा था कि उस दुरात्मा के साथ सहयोग करना चाह रहा हो ।।30।।

मायारथं समारूढो गाढशार्वरसंवृतः।
अदृश्यवपुरापेदे ललिताकटकं खलः।।३१।।

वह दुष्ट दानव विशुक्र मायारथ में सवार होकर गूढ रात्रि के समान ढंका हुआ अदृश्य शरीर वाला होकर ललिता सेना में आ गया ।।31।।

तत्र गत्वा ज्वलज्ज्वालावह्निप्राकारमण्डलम्।

शतयोजनविस्तारमालोकयत दुर्मतिः॥३२॥

उस ओर जाकर उस दुर्बुद्धि ने देखा कि जलती हुई ज्वालावाली सौ योजन के निस्तार वाली आग की चहार दीवार को देखा ।।32।।

परितो विभ्रमन्सालमवकाशमनाप्नुवन्।
दक्षिणद्वारमासाद्य निदध्यौ क्षणमुद्धतः॥३३॥

चारों ओर घूमते हुए कहीं भी घुसने के लिये स्थान नहीं मिला तब उसने दक्षिण को पाया तब उसी से वह भीतर पहुंचा ।।33।।

तत्रापश्यन्महासत्वाः सावधाना धृतव्रताः।
आरूढयानाः सन्नद्धवर्माणो द्वारदेशतः॥३४॥

वहां पर उसने देखा कि महापराक्रमी सावधान द्वार रक्षा का व्रत (निश्चय) ली हुई यान में आरूढ़ कवच को धारण की हुईं ।।34।।

स्तम्भिनीप्रमुखाः शक्तीविंशत्यक्षोहिणीयुताः।
सर्वदा द्वाररक्षार्थं निर्दिष्टा दण्डनाथया॥३५॥

भगवती दण्डनाथा ने सर्वदा द्वार की रक्षा के लिये स्तम्भिनी प्रमुख शक्तियों को बीस अक्षौहिणी सेना के साथ नियुक्त कर दिया था ।।35।।

विलोक्य विस्मयाविष्टश्चिन्तयित्वा चिरं तदा।
सालस्य बहिरेवासौ स्थित्वा यन्त्रं समातनोत्।।३६।।

उस चहार दिवारी की विशालता को तथा उन ज्वाला माला की दीवारों को देखकर आश्चर्य चकित हो गया फिर उसने कुछ देर तक चिन्तन किया फिर उस ज्वाला पर कोटे के बाहर ही ठहर कर उसने यंत्र का चिन्तन किया ।।36।।

गव्यूतिमात्रकायामे तत्समानप्रविस्तरे।
शिलापट्टे सुमहति प्रालिखयन्त्रमुत्तमम्॥३७॥

उस दानव विशुक्र ने गव्यूति आयाम (चार कोस 6 मील आयाम क्षेत्रफल) विस्तार वाले बड़े शिलापट्ट में उस यंत्र को लिखा ।।37।।

अष्टदिक्ष्वष्टशूलेन संहाराक्षरमौलिना।
अष्टभिर्दैवतैश्चापि युक्तं यन्त्रं समालिखत्॥३८॥

उसने उस चट्टान पर आठ दिशाओं पर संहार करने वाले मूल अक्षरों वाले आठ शूलों से आठ देवताओं से युक्त यंत्र को लिखा ।।38।।

अलसा कृपणा दीना निद्रा तन्द्रा प्रमीलिका।
क्लीवा च निरहङ्कारा इत्यष्टौ देवताः स्मृताः।।३९।।

उस यंत्र में जिन देवताओं के नाम लिखे थे वे ये हैं 1 अलसा, 2 कृपणा, 3 दीना, 4 निद्रा, 5 तन्द्रा, 6 प्रमीलिका, 7 क्लीबा, 8 निरहंकारा ये आठ देवता उस अलस यंत्र के कहे गये हैं। ।।39।।

देवताष्टकमेतच्च शूलाष्टकपुटोपरि।
नियोज्य लिखितं यंत्रं मायावी सममन्त्रयत्॥४०॥

ये आठ देवता आठ शूलों के ऊपर नियोजित करके यंत्र लिख कर उसे अभिमंत्रित कर दिया।।40।।

पूजां विधाय यन्त्रस्य बलिभिरछागलादिभिः।
तद्यन्त्रं वैरिकटके प्राक्षिपत्स महासुरः॥४१॥

उस यंत्र की पूजा करके और बकरे आदि की बलि देकर उसने उस यंत्र को वैरीसेना शक्ति सेना में फेंक दिया ।।41।।

प्राकारस्य बहिर्भागवर्तिना तेन दुर्धिया।
क्षिप्तमुल्लङ्घ्य वरणं पपात कटकान्तरे॥४२॥

उस आग दीवार की बाहरी भाग में उपस्थित उस दुर्बुद्धि ने ऊंचा फेंककर शक्ति सेना के बीच में फेंक दिया ।।42।।

तद्यन्त्रस्य विकारेण कटकस्थास्तु शक्तयः।
विमुक्तशस्त्राः संन्यासमास्थिता दीनमानसाः।।४३।।

उस फेंके गए यंत्र के विकार से सेना में स्थित शक्तियों ने शस्त्रों को त्याग दिया और दीनमन वाली होकर बैठ गई ।।43।।

किं हतैरसुरैः कार्यं शस्त्राशस्त्रिक्रमैरलम्।
जयसिद्ध्या फलं किंवा प्राणिहिसा च पापदा।।४४।।

वे शक्तियां कहने लगीं कि असुरों को मारने से हमें लाभ कौन सा है ओर उन्हें मारने हमें लाभ कौन सा है और उन्हें मारने के लिये इन अस्त्र शस्त्रों का प्रयोग करने प्रयोजन भी क्या है, जीत जायेंगी हम लोग तो क्या होगा और पाप देने वाली इस हिंसा से भी प्रयोजन कौन सा होगा।।44।।

अमराणां कृते कार्यं किमस्माकं भविष्यति।
वृथा कलकलं कृत्वा न फलं युद्धकर्मणा॥४५॥

देवताओं के लिये किए गए कार्यों से हमारा कौन सा लाभ होगा, व्यर्थ में कल कल करने से कोई भी फल नहीं मिलेगा।।45।।

का स्वामिनी महाराज्ञी का वा सा दण्डनायिका।
का वा सा मन्त्रिणी श्यामा भृत्यत्वं नोऽथ कीदृशम्।।४६।।

वे स्वामिनी महाराज्ञी ललिता कौन हैं, वह दण्डनायिका कौन है, या वह मंत्रिणी श्यामा कौन है और हम लोगों को भृत्य होना कैसा है ।।46।।

इह सर्वाभिरस्माभिर्भृत्यभूताभिरेकिकाम्।
वनितां स्वामिनीं कृत्वा किं फलं भोक्ष्यते परम्।।४७।।

इस युद्ध में हम सभी भृत्य हैं सेविका हैं एक वनिता की स्वामिनी बनाकर फलस्वरूप हमें क्या मिलेगा।।47।।

परेषां मर्मभिदुरैरायुधैर्न प्रयोजनम्।
युद्धं शाम्यतु चास्माकमङ्गे शस्त्रक्षतिप्रदम्।।४८।।

शत्रुओं के मर्मस्थलों को भेदने वाले आयुधों से हमारा कौन सा प्रयोजन है, यह युद्ध जिसमें हम ही लोगों के शरीर क्षत विक्षत होते हैं अब यह रुक जाय ।।48।।

युद्धे चेन्मरणं भावि वृथाऽस्युर्जीवितानि नः।
युद्धमृत्यौ भवेत्स्वर्ग इति तत्र प्रमैव का।।४९।।

जब युद्ध मरना भावि है अर्थात मरना निश्चित ही है तो फिर हम लोगों का जीना ही व्यर्थ है और युद्ध में यदि मृत्यु हो तो स्वर्ग मिलता है इसमें प्रमाण कौन सा है।।49।।

उत्साहेन फलं नास्ति निद्रैवैका सुखावहा।
आलस्यसदृशं नास्ति चित्तविश्रान्तिदायकम्।।५०।।

अब उत्साह दिखाने से कोई लाभ नहीं है एक मात्र निद्रा ही है जो सुख दे सकती है आलस्य जैसा चित्त को आराम देने वाला दूसरा कोई नहीं है।।50।।

एतादृशीश्च नो ज्ञात्वा सा राज्ञी किं करिष्यति।
तस्या राज्ञित्वमपि नः समवायेन कल्पितम्।।५१।।

शक्तियां कह रही हैं कि हमारी ऐसी हालत देख वह महारानी क्या क्या करेंगी, उनका महाराज्ञी होना भी तो हमारे ही समुदाय से है, हमारे समूह पर ही निर्भर है।।51।।

एवं चोपेक्षितास्माभिः सापि नष्टबला भवेत्।
नष्टसत्वा च सा राज्ञी कां नु शिक्षां करिष्यति।।52।।

इस प्रकार जब हम उनकी उपेक्षा कर देंगी तो वे नष्ट शक्ति हो जायेंगी जब नष्ट सेना नष्ट शक्ति हो जायेगी तब वे क्या हम लोगों पर शासन करेंगी वह शक्ति तो नष्ट हो गयी होगी।।52।।

एवमेव रणारम्भं विमुच्य विधुतायुधाः।
शक्तयो निद्रया दूरं घूर्णमाना इवाभवन्॥५३ ॥

इस प्रकार प्रलाप करती हुई उन समस्त शक्तियों ने अपने अपने आयुधों को छोड़कर युद्धारंभ छोड़कर वे शक्तियां निद्रा के वशीभूत जैसी हो गईं।।53।।

सर्वत्र मान्यकार्येषु महदालस्यमागतम्।
शिथिलं चाभवत्सर्वं शक्तीनां कटकं महत्॥५४॥

सभी मान्य कार्यों में महान आलस्य छा गया और वहां विशाल शक्तियों का सैन्य समूह सभी कुछ निष्क्रिय शिथिल हो गया ।।54।।

जयविघ्नमहायन्त्रमिति कृत्वा स दानवः।
निर्विघ्नं तत्प्रभावेन कटकं प्रममन्थिषुः॥ ५५॥

उस दानव विशुक्र ने जयविघ्न महायत्र से उस शक्ति सेना का यंत्र के प्रभाव से निर्विघ्न होकर प्रमशन कर दिया।।55।।

द्वितीययुद्धदिवसस्यार्धरात्रे गते सति।
निवृत्य नगरं भूयस्त्रिशदक्षोहिणीवृतः॥ ५६ ॥

द्वितीय युद्ध दिवस की अर्धरात्रि के व्यतीत हो जाने पर वह विशुक्र नगर से निकलकर पुनः तीस अक्षौहिणी से घिरा हुआ ।।56।।

आजगाम पुनर्दैत्यो विशुक्रः कटकं द्विषाम्।
अश्रूयत ततस्तस्य रणनिस्साणनिस्वनः॥ ५७॥

वह दैत्य नगर से निकल का शत्रुओं की सेना में आ गया शक्ति सेना ने उस असुर की सेना के रणभेरी दुन्दुभि आदि के वाद्यों के शोर को सुना।।57।।

तथापि ता निरुद्योगाः शक्तयः कटकेऽभवन्।
ततो महानुभावत्वाद्विकारैर्विन्नियन्त्रजैः॥५८॥

उन असुर सेना के रण वाद्यों के घोर कोलाहल को सुनकर वह शक्ति सेना उद्योग रहित ही रही आई, तब जयविघ्न से उत्पन्न विकारों से युक्त सेना को समझकर।।58।।

अस्पृष्टे मत्रिणीदण्डनाथे चिन्तामवापतुः।
अहो बत महत्कष्टमिदमापतितं भयम्॥५९॥

शक्ति सेना की यह स्थिति देखकर मंत्रिणी और दंडनाथा इस चिन्ता में फंस गईं और सोचने लगीं यह असमय में अचानक उपस्थित भय ने बड़ा कष्ट दे दिया ।।59।।

कस्य वाद्य विकारेण सैनिका निर्गतोद्यमाः।
निरस्तायुधसंभारा निद्रातन्द्राविघूर्णिताः॥६०॥

किसके विकार से आज ये हमारे सैनिक उद्योग रहित हो गये उन्होंने आयुध समूहों को नीचे डाल दिया है, सभी नींद और तन्द्रा (ऊंघाई) से ग्रस्त हो गये हैं।।60।।

न मानयन्ति वाक्यानि नार्चयन्ति महेश्वरीम्।
औदासीन्यं वितन्वन्ति शक्तयो निस्पृहा इमाः॥६१॥

ये आदेश के वाक्यों को मान नहीं रहे हैं न ही महेश्वरी की पूजा आदर कर रहे हैं, ये शक्तियां निस्पृह होकर उदासीनता लिये हुए हैं ।।61।।

इति ते मन्त्रिणीदण्डनाथे चिन्तापरायणे।
चक्रस्यन्दनमारूढे महाराज्ञीं समूचतुः॥६२॥

इस प्रकार वे मंत्रिणी और दण्डनाथा चिन्ता ग्रस्त हो गयीं तब वे चक्ररथ आरूढ़ होकर महाराज्ञी से सभी समस्यों को बताया ।।62।।

मंत्रिणी भगवती से बोलीं-ः

देवि कस्य विकारोऽयं शक्तयो विगतोद्यमाः।
न शृण्वन्ति महाराजि तवाज्ञां विश्वपालिताम्।।६३।।

हे देवि! यह किसका विकार तनमन पर गहराई से छा गया है समस्त शक्तियां उद्योग रहित होकर निष्क्रिय होकर निढाल हो बैठ गई हैं वे हे महाराज्ञी! विश्व का पालन करने सर्वलोक हितकारी आपकी आज्ञा को भी नहीं सुन रही हैं।।63।।

अन्योन्यं च विरक्तान्ताः पराच्यः सर्वकर्मसु।
निद्रातन्द्रीमुकुलिता दुर्वाक्यानि वितन्वते ॥६४॥

इस समय वे एक दूसरे से विलग हो गई हैं सभी कर्मों में परांगमुख हो रही हैं, नींद और आलस्य से ग्रस्त होकर एक दूसरे पर दुर्वाक्यों का प्रयोग कर रही हैं।।64।।

का दण्डिनी मन्त्रिणी का महाराज्ञी च का पुनः।
युद्धं च कीदृशमिति क्षेपं भूरि वितन्वते॥ ६५॥

कौन दण्डिनी है, मंत्रिणी कौन है और ये महाराज्ञी कौन है यह जो युद्ध हो रहा है ये कैसा है इत्यादि अनर्थक व्यर्थ प्रलय एवं मर्यादा उल्लंघन कर रही हैं।।65।।

अस्मिन्नेवान्तरे शत्रुरागच्छति महावलः।
उद्दण्डैर्भेरिनिस्वानैर्विभिन्दन्निव रोदसी॥६६॥

महाराज्ञी से वे दोनों मंत्रिणी दंडिनी शक्तियों का विवरण बता ही रहीं थीं कि इसी बीच में महाबली शत्रु सेना लेकर आ गया और वह प्रचण्ड भेरी बजा रहा था पूरे क्षेत्र की धरती को भेदने वाला कोलाहल होने लगा ।।66।।

अत्र यत्प्राप्तरूपं तन्महाराज्ञी प्रपद्यताम्।
इत्युक्त्वा सह दण्डिन्या मन्त्रिणी प्रणतिं व्यधात्।।६७।।

हे महाराज्ञी ! यहां पर जो हमने शक्ति सेना का रूप पाया वह आपको सुना दिया इस प्रकार कहकर मंत्रिणी और दंडिनी प्रणाम करके चली गईं।।67।।

ततः सा ललितादेवी कामेश्वरमुखं प्रति।
दत्तदृष्टिः समहसन्नातिव्यक्तरदावलिः॥६८॥

उन दोनों शक्तियों मंत्रिणी और दंडिनी के शक्ति सेना में जो अव्यवस्था आ गई थी उसके निवेदन के बाद उन भगवती ललितादेवी ने भगवान कामेश्वर के मुख को देखा और उन पर डालते हुए स्मित पूर्ण मुद्रा में दन्तपंक्ति किंचित् व्यक्त हुई ऐसी मंद मुस्कराहट से देखा।।68।।

तस्याः स्मितप्रभापुञ्जान्कुञ्जराकृतिमान्मुखे।
कटक्रोडगलद्दानः कश्चिद्देवो व्यजृम्भत।।६९।।

तब उनके मुख की स्मित पूर्ण मुस्कराहट की कान्ति के समूह वाला हाथी के मुख वाला कोई देव अपने हस्तिमुख के गंडस्थल से मद धारा गिराता हुए जंभाई लेता हुआ प्रकट हुआ ।।69।।

जपापटलपाटल्यपाटच्चरवपुर्युतिः।
बीजापूरं गदामिक्षुचापं शूलं सुदर्शनम्॥७०॥
अब्जपाशोत्पलं ब्रीहिमञ्जरीस्वरदाङ्कुरान्।
रत्नकुम्भं च दशभिर्हस्तैः स्वीयैः समुद्वहन्॥७१॥

जो जपापुष्प के समान लाल वर्ण वाला था जो बाल चन्द्रमां के समान शरीर की कान्ति वाला था, बीजापुर (बिजौरा नीबू) गदा गन्ने का धनुष शूल और सुदर्शन चक्र, कमल पाश नीलकमल, ब्रीहि (धान) मंजरी अपना छिन्नदांत रत्न कलश दसों हाथों में ।।70,71।।

(ध्यानः बीजापुरगदेक्षुकार्मुकरुजाचक्राब्जपाशोत्पल ब्रह्यिग्रस्वविषाण रत्नकलश प्रोद्यत्करांभोरुहः ध्येयो वल्लभया सपद्मकरयाश्लिष्टोज्वलभूषया, विश्वोत्पत्तिविपत्तिसंस्थितिकरो विघ्नेश इष्टार्थदः)

तुन्दिलश्चन्द्रचूडालो मद्बृंहितनिस्वनः।
सिद्धलक्ष्म्या समाश्लिष्टः प्रणनाम महेश्वरीम्।।७२।।

वह देव लम्बोदर था, माथे में द्वितीया की चन्द्रकलादि मद से स्वर गर्जना हो रही थी, सिद्ध लक्ष्मी अपनी शक्ति को गोद में लिये था ऐसे देव ने भगवती ललिताम्बा को प्रणाम किया ।।72।।

तया कृताशीः स महागणनाथो गजाननः।
जयविघ्नमहायन्त्रं भेत्तुं वेगाद्विनिर्ययौ।। ७३ ।।

उन मां जगतजननी भगवती ललिताम्बा से आशीर्वाद पाकर वह महागणनाथ गजानन सिद्ध गणेश उस विशुक्र के जयविघ्न महायंत्र को खण्डित करने के लिये वेग से निकल पड़ा ।।73।।

[गणेश्वरपराक्रम॥] **अथगणेश पराक्रम-ः**

अन्तरे वह्निसालस्य भ्रमन्दन्तावलाननः।
निभृतं कुत्रचिल्लग्नं जयविन्न व्यलोकयत्।।७४।।

उस शक्ति आकार के भीतर घूमते हुए उन गजवदन एकदन्त गणेश ने एकान्त में किसी स्थान में लगे हुए उस जयविघ्न यंत्र को देखा।।74।।

स देवो घोरनिर्घातनिःसहैर्दन्तपातनैः।
क्षणाच्चूर्णीकरोति स्म जयविघ्नमहाशिलाम्।।७५।।

उस यंत्र को देखते हुए ही असहनीय घोर चिग्घाण पूर्वक अपने दन्तों के प्रहार से उस विघ्न यंत्र लिखी हुई शिला को क्षण भर में चूर्ण चूर्ण कर दिया।।75।।

तत्र स्थिताभिर्दुष्टाभिर्देवताभिः सहैव सः।
परागशेषतां नीत्वा तद्यन्त्रं व्यक्षिपद्दिवि।। ७६ ।।

वहां पर स्थित दुष्ट देवताओं के यंत्र को आकाश में धूल बनाकर फेंक दिया ।।76।।

ततः किलिकिलारावं कृत्वालस्यविवर्जिताः।
उद्यताः समरं कर्तुं शक्तयः शस्त्रपाणयः।।७७।।

उस चूरा किए गए दुष्ट देवताओं के फेंक दिये जाने उस शक्ति सेना की शक्तियां जो आलस्य ग्रस्त हो गई थीं आलस्य रहित होकर युद्ध में हाथों में शस्त्र लेकर तैयार हो गईं।।77।।

स दन्तिवदनः कण्ठगलिताकुण्ठनिस्वनः।
ससर्ज सुबहूनात्मरूपान्दन्तावलाननान्।।७८।।

उस गजव्रदन महागणेश ने अपने कंठ से घोर गर्जना करने वाले असंख्य गजवदनों को जो उन महागणेश के रूप थे प्रकट कर दिया।।78।।

ते कटक्रोडविगलन्मदकज्जलचञ्चलैः।

चञ्चरीककुलैरग्रे गीयमानमहोदयाः॥७९॥

प्रकट वे असंख्य हाथियों का मुख वाले उनके भी गण्डस्थल से मद की धार बह रही थी, जिस मद की सुगन्ध से भौंरों के समूह भी मधुर गुन्जार कर रहे थे ।।79।।

स्फुटद्दाडिमकिञ्जल्कविक्षेपकररोचिषः।

सप्तवाराकरानेकहेलया पातुमुद्धताः।

आमोदप्रमुखा ऋद्धिमुख्यशक्तिनिषेविताः॥८०॥

उन सभी गजवदन वीरों के शरी से खिले हुए अनार के जल को फेंकने वाली किरणें निकल रही थीं वे सभी हाथी समुद्रों को खेल खेल में पी जाने के लिये उद्यत हो रहे थे वे सभी आमोद ऋद्धि मुख्य शक्ति से निषेवित थे।।80।।

आमोदश्च प्रमोदश्च सुमुखो दुर्मुखस्तथा।

विघ्नश्च विघ्नकर्ता च षडेते विघ्ननायकाः॥८१॥

आमोद 1 प्रमोद, 3 सुमुख, 4 दुर्मुख, 5 विघ्न, 6 विघ्नकर्ता से छह विघ्न नायक हैं।।81।।

ये सप्तकोटिसंख्यानां हेरम्बाणामधीश्वराः।

ते पुरतश्चलितास्तस्य महागणपते रणे ॥८२॥

वे सात करोड वाले हेरम्बों के अधीश्वर हैं वे सभी युद्ध में महागणपति के आगे चलते हैं।।82।।

अग्निप्राकार वलया द्विनिर्गत्य गजाननः।

क्रोधहुंकारतुमुलः प्रत्यपद्यत दानवान्॥८३॥

वे सभी गजानन उस अग्नि आकारवलय से निकलकर क्रोध से हुंकार की घोर ध्वनि करते हुए दानवों पर टूट पड़े ।।83।।

त्रिंशदक्षोहिणीजुष्टं विशुक्रं शक्रशासनम्।

अवाकिरच्छरस्तोभैरिक्षुधन्वमुखच्युतैः॥८४॥

इस युद्ध में तीस अक्षोहिणी सेना से घिरे हुए इन्द्र पर विलय पाऐ हुए विशुक्र दानव को इक्षुधनुष के द्वारा फेंके गए बाणों के समूहों से उन दानवों को ढंक दिया ।।84।।

ततः प्रचण्डफीट्कारबधिरीकृतविष्टपः।

पपात दैत्यसैन्येषु गजवक्त्रचमूगणः॥८५॥

फिर प्रचण्ड फूत्कार ध्वनि से दिशाओं को बहरा बनाते हुए गजानन की सेना दैत्य सेनाओं पर टूट पड़ी ।।85।।

अच्छिदन्निशितैबाणैर्गणनाथः स दानवान्।
गर्जितानि सुघोराणि कृत्वा हत्वा च दानवान्।।८६।।

उन गणनाथ ने फेंके गए अत्यन्त पैने बाणों से दानवों को छलनी बना दिया और समस्त दानवों को घोर गर्जनाओं को कर करके तथा उनके प्राणों को ले लेकर कमजोर कर दिया।।86।।

गणनाथेन तस्याभूद्विशुक्रस्य महौजसः।
युद्धमुद्धत हुंकारभिन्नकार्मुकनिस्वनम्।।८७।।

गणनाथ के साथ उस महापराक्रमी विशुक्र का उद्धत हुंकार भिन्न धनुष की ध्वनि वाला युद्ध हुआ।।87।।

भ्रुकुटीकुटिलं वक्त्रं दष्टोष्ठमतिपाटलम्।
विशुको युधि बिभ्राणः समयुध्यत तेनह।।८८।।

भौंहे टेढ़ी किये हुए कटे हुए अतिरक्त वर्ण ओष्ठ वाला वह विशुक्र दानव गणनाथ से लड़ रहा था।।88।।

शस्त्रा घट्टन निस्वानैर्हुंकारैश्च सुरद्विषाम्।
दैत्यसप्तिखुरक्रोड कुद्दली कुट्ट निस्वनैः।।८९।।

शस्त्रों के आपस में टकराने से असुरों की हुंकारों से दैत्यों के घोड़ों के खुरों में लगे नालों की आवाजों से तथा हाथियों की चिंग्घाड़ों से।।89।।

फीट्कारैश्च गजेन्द्राणां भटानां क्रन्दनैरपि।
हेषया च हयश्रेण्या रथचक्रस्वनैरपि।।९०।।

हाथियों की चिग्घाड़ों से योद्धाओं के चीत्कारों से घोड़ों की हिनहिनाहटों से और रथों के चक्रों की घर्धराहटों से।।90।।

धनुषां गुणनिस्वानैश्चक्रचीत्कारणैरपि।
शरशात्कारघोषैश्च वीरभाषाकदम्बकैः।।९१।।

धनुष की डोरियों की टंकारों से, चक्रों के चीत्कारों से भी और बाणों की सनसनाहट से वीरों की वीरोचित बोलियों के समूहों से।।91।।

अट्टहासैर्भटेन्द्राणां सिंहनादैश्च भूरिशः।
क्षुभ्यद्दिगन्तरं तत्र ववृधे युद्धमुद्धतम्।।९२।।

भटेन्द्रों के अट्टहासों से सिंहनादों से दिग् दिगन्तरों को क्षुब्ध करते हुए उस युद्ध भूमि में घनघोर युद्ध की वृद्धि हो गई।।92।।

त्रिंशदक्षोहिणीसेनां विशुक्रस्य दुरात्मनः।
प्रत्येकं पातयामासुर्गणनाथा महारथाः॥९३॥

उस दुरात्मा विशुक्र की तीस अक्षोहिणी सेना को उन महारथी गणनाथों ने प्रत्येक योद्धा को रणभूमि में गिरा दिया।।93।।

दन्तैर्मर्म बिभिन्दन्तो वेष्टयन्तश्च शुण्डया।
प्रोथयन्तः कर्णतालैः पुष्कलावर्तकोपमैः॥९४॥

वह गजवदन सेना उसने अनेकों दानवों को बड़े दांतों से मर्मभेदकर दिया, किन्हीं को सूंड़ में लपेट कर पसलियां तोड़ दिया किन्ही को प्रलय कालीन पुष्कर और आवर्तक मेघों की गर्जना जैसी कर्णतालों की ध्वनियों से मार गिराया।।94।।

नासाश्वासैश्च परुषैर्विक्षिपन्तः पताकिनीम्।
उरोभिर्मर्दयन्तश्च शैलवप्रसमप्रभैः।।९५।।

वे गजवदन वीर हाथी की सूंड़ की तीव्र श्वास धारा से सेना को स्थित नहीं होने दे रही थी और पर्वतों को उखाड़ने की वप्रक्रिया से असुरों के वक्षःस्थल को फाड़ रहे थे।।95।।

पेषन्तश्च पदाघातैः पीनैघ्नन्तस्तथोदरैः।
विच्छिन्दन्तश्च शूलेन कृन्तन्तश्चक्रपातनैः।
शङ्खस्वानेन महता पीडयन्तो वरूथिनीम्॥९६॥

किन्हीं दानवों को पैरों से कुचलते हुए किन्हीं को माटे उदर के भार से नीचे दवा कर मारते हुए किन्हीं को शूल से छिन्न भिन्न करते हुए किन्हीं को चक्र से छिन्न भिन्न करते हुए किसी का शंख की महान ध्वनियों से उस दानव सेना को पीड़ित करते हुए।।96।।

गणनाथमुखोद्भूता गजवक्राः सहस्रशः।
धूलिशेषं समस्त तत्सैन्यं चक्रुर्मदोद्धताः॥९७॥

उस समय गणनाथ के मुख से हजारों गजमुख महारथियों ने निकल कर मद से उद्धत होकर समस्त दानव सेना को धूल में मिला दिया।।97।।

अथ क्रोधसमाविष्टो निजसैन्य पुरोगमम्।
प्रेषयामास देवस्य गजासुरमसौ पुरः॥९८॥

इसके बाद विशुक्र ने असुर सेना आगे चलने वाले गजासुर को उन गणनाथ के सामने भेजा।।98।।

प्रचण्डसिहनादेन गजदैत्येन दुर्धिया।
सप्ताक्षोहिणियुक्तेन युयुधे स गणेश्वरः॥९९॥

तब गणेश्वर ने सात अक्षोहिणी सेना से युक्त उस गजासुर से युद्ध किया।।99।।

हीयमानं समालोक्य गजासुरभुजाबलम्।
वर्धमानं च तद्वीर्यं विशुक्रः प्रपलायितः॥१००॥

वह गजासुर अपने भुजबल को कम होता हुआ देखकर और गणेश्वर की वीरता को देखकर वह सेनापति विशुक्र युद्ध भूमि से भाग गया ।।100।।

स एक एव वीरेन्द्रः प्रचलन्नाखुवाहनः।
सप्ताक्षोहिणिकायुक्तं गजासुरममर्दयत्॥१०१॥

वहां अकेले वीरों में इन्द्र गणेश्वर ने मूषक पर सवार होकर सात अक्षोहिणी से युक्त गजासुर का भी संहार कर दिया ।।101।।

गजासुरे च निहते विशुक्रे च पलायिते।
ललितान्तिकमापेदे महागणपतिर्मृधात्॥१०२॥

गजासुर के युद्ध में मर जाने पर दानव सेनापति विशुक्र के युद्ध स्थल से भाग जाने पर वे महागणपति भगवती ललिताम्बा के पास पहुंचे ।।102।।

कालरात्रिश्च दैत्यानां सा रात्रिर्विरतिं गता।
ललिता चापि मुदिता बभूवास्य पराक्रमैः॥१०३॥

वह दैत्यों की कालरात्रि भी बिना रति (प्रेम) के बीत गई और भगवती ललिताम्बा भी उन महागणपति के पराक्रमों से मुदित हुईं।।103।।

विततार महाराज्ञी प्रीयमाणा गणेशितुः।
सर्वदैवतपूजायाः पूर्वपूज्यत्वमुत्तमम्॥ १०४ ॥

वे ललिताम्बा भगवती प्रसन्न होती हुईं उन गणेश्वर महागणेश को सभी देवताओं की पूजा के पहले गणेश का पूजन हो वह शाश्वत विधान कर दिया जो नित्य है आज तक होता चला आ रहा है।।104।।

इति श्रीब्रह्माण्डपुराणे उत्तरखण्डे हयग्रीवागस्त्यसवादे
ललितोपाख्याने गणनाथपराक्रमो नाम
त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

॥श्रीमन्महागणाधिपतये नमः।।

श्रीमातालालिताम्बायै नमः श्रीपादुकां पूजयामि नमः॥
ॐ वन्दे गुरुपदद्वन्द्वं अवाङ्मनसगोचरम्॥
रक्तशुक्ल प्रभामिश्रमतर्क्यं त्रैपुरं महः॥
ॐ आराध्यदेवं भक्तानां कलिदोषविनाशकम्॥
वन्दे श्रीगिरिजानन्दं शारदाश्रीमठाधिपम्।।
ॐ अखण्डं यस्यज्ञानञ्च भक्तिर्यस्यानपायिनी।।
शारदाज्योतिरीशस्य दर्शनं (पूजनं, वन्दनं) शुभमस्तुनः।।

चतुर्विंशीऽध्यायः ॥ २४ ॥ 122 श्लोकात्मकः

[विशुक्रविषङ्गवध]

श्री हयग्रीव जी बोलेः-

रणे भग्नं महासत्त्वं भण्डदैत्यः सहोदरम्।
निशम्य कदनं प्राप्तः संप्राप्नो वहुचिन्तया॥१॥

जब उस भण्ड दैत्य ने यह सुना कि उसका महापराक्रमी सहोदर विशुक्र भग्न हो गया अर्थात विफल हो गया और उसकी समस्त सेना का विनाश हो गया तो वह चिन्तातुर होकर बहुत दुःखी हुआ॥१॥

उभावपि समेतौ तौ युक्तौ सर्वैश्च सैनिकैः।
प्रेषयामास युद्धाय भण्डदैत्यः सहोदरौ॥२॥

तब भण्ड ने अपने दोनों सहोदर भाइयों विशुक्र और विषंग को समस्त सैनिकों के साथ युद्ध के लिये भेजा॥२॥

तावुभौ परमक्रुद्धौ भण्डदैत्येन देशितौ ।
विपङ्गश्च विशुक्रश्च महोद्यममवापतुः॥३॥

भण्ड दैत्य की आज्ञा पाकर वे दोनों दैत्य परम क्रोध में भरकर बड़े उद्योग को प्राप्त हुए॥३॥

कनिष्ठसहितं तत्र युवराजं महाबलम्।
विशुक्रमनुवव्राज सेना त्रैलोक्यकम्पिनी॥४॥

वहां विषंग ने तीनों लोकों को कंपा देने वाली सेना के साथ महाबली युवराज विशुक्र को साथ लेकर चला॥४॥

अक्षोहिणीचतुश्शत्या सेनानामावृतश्च सः ।
युवराजः प्रववृधे प्रतापेन महीयमा॥५॥

चार सौ अक्षोहिणी सेनाओं के साथ घिरा हुआ वह युवराज बड़े प्रताप के साथ युद्धस्थल को निकला ॥५॥

उलूकजित्प्रभृतयो भागिनेया दशोद्धताः।
भण्डस्य तद्भगिन्यां तु धूमिन्यां जातयोनयः॥६॥

उसके साथ उलजूकजित आदि दश बहुत ऊंचे लड़ाके भानजे थे वे दश भण्ड की बहिन धूमिनी के गर्भ से उत्पन्न हुए थे॥६॥

कृतास्त्रशिक्षा भण्डेन मातुलेन महीयसा।
विक्रमेण विवल्गन्तः सेनानाथाः प्रतस्थिरे॥७॥

मामा भण्ड ने उन दशों भांजों की शसत्र शिक्षा सम्पन्न कराई थी वे पराक्रम और बल से सम्पन्न थे इसलिये सेना का सेनापति बनाया गया॥७॥

उद्दण्डचापनिर्घोषैर्भीषयन्तो दिशो दश।
द्वयोर्मातुलयोः प्रीति भागिनेया वितेनिरे॥८॥

वे सभी अपने धनुषों की टंकार ध्वनियों से दशों दिशाओं को ध्वनित करते हुए चल रहे थे तथा विशुक्र और विषंग दोनों मामाओं के प्रेम को लोग पा रहे थे॥८॥

आरूढयानाः प्रत्येकं गाढाहङ्कारशालिनः।
आकृष्टगुरुधन्त्रानो विशुक्रमनुवव्रजुः॥९॥

वे भान्जे जो बड़े भारी धमण्ड वाले थे वे अपने अपने यानों पर सवार होकर बड़े बड़े धनुषों को ताने हुए अपने मामा विशुक्र के पीछे चल रहे थे॥९॥

यौवराज्यप्रथा चिह्नच्छत्रचामरशोभितः।
आरूढवारणः प्राप विशुक्रो युद्धमेदिनीम्॥१०॥

युवराज प्रथा के चिन्ह छत्र और चंवरों से शोभित हाथी पर आरूढ़ वह युद्ध भूमि में पहुंचा॥१०॥

ततः किलकिलारावकारिण्या सेनया वृतः।
विशुक्रः पटु दद्ध्वान सिंहनादं भयंकरम्॥११॥

उसके अनन्तर कलकल की ध्वनि करने वाली सेना से घिरा हुआ वह विशुक्र रणभेरी का भयंकर सिंहनाद किया॥११॥

तद्घोषात्क्षुभितस्वान्ताः शक्तयः संभ्रमोद्यताः।
अग्निप्राकारवलयान्निर्जग्मुर्वद्धपङ्क्तयः॥१२॥

विशुक्र के द्वारा किये गए उस सिंहनाद के घोष को सुनकर अन्तःकरण में क्षोभ उन शक्ति

सैनिकों को हो गया फिर भी वे सभी संभ्रम से युक्त होकर पंक्तिबद्ध होकर उस अग्नि आकार वलय के घेरे से बाहर निकलीं ॥१२॥

तडिन्मयमिवाकाशं कुर्वन्त्यः शस्त्ररोचिषा।
रक्ताम्बुदावृतमिव व्योम क्रोधारुणैर्मुखैः॥१३॥

वे शक्तियां अपनी कान्ति से आकाश में बिजली जैसी चमकती हुईं लाल लाल मेघों से घिरे आकाश जैसे क्रोध से लाल लाल हुए मुखों वालीं॥१३॥

अथ भण्डकनीयांसावागतौ युद्धदुर्मदौ।
निशम्य युगपद्योद्धुं मन्त्रिणीदण्डनायिके॥१४॥

इसके अनन्तर भण्ड के दोनों छोटे भाई जो युद्ध में दुर्मद थे आ गए हैं यह सुनकर दोनों के साथ युद्ध करने के लिये दोनों मन्त्रिणी और दण्डनाथा भी युद्ध स्थल में आ गयीं॥१४॥

किरिचक्रं गेयचक्रमारूढे रथशेखरे।
धृतातपत्रवलये चामराभ्यां च वीजिते॥१५॥

वे दोनों शक्तियां दंडनायिका किरिचक्र में मंत्रनाथा गेयचक्र में आरूढ़ होकर जिन रथों छत्र लगा था और जिनमें चंवर डुल रहे थे॥१५॥

अप्सरोभिः प्रनृत्ताभिर्गीयमानमहोदये।
निर्जग्मतू रणं कर्तु सहाभ्यां ललिताज्ञया॥१६॥

उस समय अप्सरायें नृत्य कर रही थीं और गीत गा रही थीं उसी शुभवेला में भगवती ललितादेवी की आज्ञा से वे दोनों मंत्रिणी और दण्डिनी देवियां युद्ध के लिये निकल पड़ीं॥१६॥

श्रीचक्ररथराजस्य रक्षणार्थ निवेशिताम्।
शताक्षोहिणिकासेनां वर्जयित्वास्त्रभीषणाम्॥१७॥

तब श्री चक्र राजरथ की रक्षा के लिये नियुक्त सौ अक्षोहिणी सेना को और भीषण अस्त्रों को छोड़कर॥१७॥

अन्यत्सर्व चमूजालं निर्जगाम रणोन्मुखम्।
पुरतः प्राचलद्दण्डनाथा रथनिषेदुषी॥१८॥

इसके अतिरिक्त अन्य सभी सेना समूह को लेकर रणक्षेत्र की ओर सामने दंडनाथा रथ में बैठी हुईं चलीं॥१८॥

एकयैव कराङ्गुल्या घूर्णयन्ती हलायुधम्।
मुसलं चान्यहस्तेन भ्रामयन्ती मुहुर्मुहुः॥१९॥

वे दंडिनी रथ में बैठी हुई अपनी एक ही अंगुली से हल शस्त्र को घुमाती हुई और दूसरे हाथ से बार-बार मूसल को घुमाती हुईं ॥१९॥

तरुणेन्दुकला चूडास्फुरत्पोत्रिमुखाम्बुजा।
इतस्ततः प्रचलितां सेनां त्रैलोक्यकम्पिनीम्॥२०॥

उन देवी के जूड़े में तरुण चन्द्र की कला चमक रही थी ऐसी वे दंडिनी वाराही इधर उधर चलती हुई त्रिलोक को कंपाने वाली सेनाओं को॥२०॥

पश्यन्ती मदिरापानवासिताधरपल्लवा।
पुरः प्रहर्त्री समरे सर्वदा विक्रमोद्धुरा॥२१॥

वे भगवती दण्डनाथा जिनके अधर मद्यपान से सुगंध छोड़ रहे थे ऐसे अधरों से युक्त मुख वाली सर्वदा विक्रम में अग्रणी युद्ध में सामने प्रहार करने वाली सेना को देखती हुईं॥२१॥

तस्या अनुप्रचलिता गेयचक्ररथस्थिता।
धनुषो ध्वनिना विश्वं पूरयन्ती मदोद्धता॥२२॥

गेयचक्र रथ में बैठी हुई धनुष की टंकार से समस्त क्षेत्र को गुंजारती हुई मद से उद्धत वह दण्डनाथा के पीछे चली॥२२॥

वेणीकृतकचन्यस्त विलसच्चन्द्रपल्लवा।
स्फुरत्तृतीयनेत्रेण सिन्दूरतिलकत्विषा॥२३॥

जिनकी वेणी में जो केश थे उनके जूड़े में चन्द्र की किरणें शोभा दे रही थीं और उनके तीन नेत्रों के साथ भाल पर सिन्दूर के तिलक कान्ति चमक रही थी॥२३॥

पाणिना पद्मरम्येण मणिकङ्कणचारुणा।
तूणीरमुखतः कृष्टं भ्रामयन्ती शिलीमुखम्॥२४॥

उनके कमल के समान रम्य पाणि से जिसमें सुन्दर मणिजड़ा हुआ कंगन शोभा दे रहा था वे तरकस से खींचे गए बाण को घुमाती हुईं॥२४॥

जय वर्धस्व वर्धस्वेत्यतिर्षसमाकुलैः।
नृत्यद्भिर्दिव्य मुनिभिर्वर्धिताशीर्वचोमृतैः॥२५॥

जय जयकार उद्घोषों तथा आगे बढ़ो आदिको बोलती हुई हर्ष से भरपूर नृत्य करती हुईं दिव्य मुनियों द्वारा अभिवर्धित आशीर्वाद वचनामृतों से॥२५॥

गेयचक्ररथेन्द्रस्य चक्रनेमिविघट्टनैः।
दारयन्ती क्षितितलं दैत्यानां हृदयैः सह॥२६॥

गेयचक्ररथेन्द्र के चाकों के नेमियों (घुरी) के घिसने की ध्वनियों से दैत्यों के हृदयों के साथ भूतल को विदीर्ण करती हुई ॥२६॥

लोकातिशायिना विश्वमनोमोहनकारिणा।
गीतिबन्धेन नारीभिर्वह्वीभिर्गतवैभवा ॥२७॥

लोक की अतिशयता वाले अर्थात लोक में अतिप्रिय विश्वजन के मन को मोहित करने वाले गीतिबन्धों से अनेक नारियों द्वारा गीत वैभव वाली ॥२७॥

अक्षोहिणीसहस्त्राणामटकं समरोद्धतम्।
कर्षन्ती कल्पविश्लेषनिर्मर्यादा ब्धिसन्निभम् ॥२८॥

ऐसी वे देवियां समर करने में अत्यन्त चतुर आठहजार अक्षिहिणी सेना को ले जाती हुई प्रलयकाल में मर्यादा खोये हुए समुद्र जैसे ॥२८॥

तस्याः शक्तिचमूचक्रे काश्चित्कनकरोचिषः।
काश्चिद्दाडिमसंकाशाः काश्चिज्जीमूतरोचिषः ॥२९॥

उन दण्डनाथा की शक्ति सेना में किसी शक्ति सैनिक की सोने जैसी कान्ति थी किसी अनार के जैसी कान्ति थी और किसी की मेघ की कांति जैसी कांति थी ॥२९॥

अन्याः सिन्दूररुचयः पराः पाटलपाटलाः।
काश्चिश्च चन्द्रिकाकाराः पराः श्यामलकोमलाः ॥३०॥

दूसरी शक्तियां सिन्दूर के रंग जैसी थीं अन्य शक्ति गुलाब के फूल जैसे वर्ण वाली थीं कोई कोई शक्ति चंद्र की कांति जैसी तथा कोई सांवली और कमल थीं ॥३०॥

अन्यास्तु हीरकप्रख्याः परां गारुत्मतोपमाः।
विशुद्धैः पञ्चभिर्वर्णैर्मिश्रितैः शतकोटिभिः ॥३१॥

अन्य शक्तियां ही जैसी कांति वाली थी कोई गेरु के समान वर्ण वाली थीं कितनी ही शक्तियां करोड़ों कामदेवों के पांच बाणों से मिश्रित ॥३१॥

व्यञ्जयन्त्यो देहरुचिं कतिचिद्विविधायुधाः।
असंख्याः शक्तयश्चेलुर्दण्डिन्याः सैनिके तथा ॥३२॥

देह की कान्ति को व्यक्त करती हुईं कई शक्तियां विविध आयुधों को लेकर चल रहीं थीं ॥३२॥

यथैव सैन्यसंनाहो मन्त्रिण्याः कुम्भसंभव।
यथाभूषणवेषादि यथा प्राभवलक्षणम् ॥३३॥

ये हयग्रीव ने अगस्त्य जी से कहा, कि जैसा सैन्य समूह मंत्रिणी का है ठीक वैसा ही भूषण और

वेषादि थे तथा जैसा प्रभाव तथा लक्षण ॥३३॥

यथा भुजस्य विक्रान्तिर्यथैवाश्रितरक्षणम्।
यथा दैत्यौघसंहारो यथा सर्वैश्च पूज्यता।
यथा भक्तिर्महाराश्यां दण्डिन्याश्च तथाखिलम्॥३४॥

जैसा भुजाओं का पराक्रम जैसा आश्रित का रक्षण और जैसा दैत्य समूहों का संहार तथा जैसे सभी प्राणियों के पूजित होना एवं जैसी भक्ति महाराज्ञी भगवती ललिता ठीक वैसी ही उन सभी शक्तियों की भक्ति उन पर भी दण्डिनी भगवती थी ॥३४॥

विशेषस्तु परं तस्याः सचिवेश्याः परं करे।
महाराज्ञीवितीर्णं तदाज्ञामुद्राङ्गुलीयकम्॥३५॥

विशेष रूप से उन दंडिनी देवी के हाथ में सचिव पद का दायित्व था, महाराज्ञी से पार हुए किसी भी नियम भगवती दण्डनाथा की आज्ञा की मुहर लगती थी ॥३५॥

इत्थं प्रचलिते सैन्ये मन्त्रिणीदण्डनाथयोः।
तद्भारभङ्गुरा भूमिर्डोलालीलामलम्बत॥३६॥

इस प्रकार मंत्रिणी और दण्डनाथा की शक्ति सेना के अग्नि आकार से बाहर आकर चलने से उन सभी के भार से भूमि झूला के डोलने जैसी डोलने लगी ॥३६॥

ततः प्रववृते युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम्।
उद्धूतधूलिजम्बालीकृत सप्तार्णवीजलम्॥३७॥

इसके अनन्तर दोनों ही सेनाओं का दैत्य सेना के साथ युद्ध रोमांचित करने घनघोर शुरू हो गया जिससे इतनी धूल वहां उठी उसने सातों समुद्रों के जल को गारा बना दिया ॥३७॥

हयस्थैर्हयसादिन्यो रथस्था रथसंस्थितैः।
आधोरणैर्हस्तिपकाः पद्गैः पद्गाश्च संगताः॥३८॥

युद्ध आरंभ होने पर घुड़सवार घुड़सवारों से रथी रथियों से तथा हाथी पर सवार हाथी सवारों से एवं पैदल पैदल सैनिकों से युद्ध करने लगे ॥३८॥

दण्डनाथा विषङ्गेण समयुध्यत संगरे।
विशुक्रेण समं श्यामा विकृष्टमणिकार्मुका॥३९॥

युद्ध में दण्डनाथा विषंग से युद्ध करने लगीं तथा श्यामला भगवती विशुक्र से मणि धनुष को तान कर युद्ध करने लगीं ॥३९॥

अश्वारूढा चकारोच्चैः सहोलूक जितारणम्।
सम्पदीशी च जग्राह पुरुषेणं युयुत्सया॥४०॥

उलूकजिता अश्वारूढ़ा उच्च के साथ युद्ध कीं संपदेश्वरी ने युद्ध करने की इच्छा से किसी पुरुष योद्धा दैत्य को पकड़ा॥४०॥

विषेणं नकुलीदेवी समाह्वास्त युयुत्सया।
कुन्तिषेणेन समरं महामाया तदाऽकरोत्॥४१॥

विषण नामक असुर के साथ नकुली देवी युद्ध की इच्छा से लड़ने लगीं और कुन्तिषेण के साथ महामाया ने युद्ध किया॥४१॥

कुरूषकेण्र दैत्येन काचिद्देवी समागता।
मलदेन समं चक्रे युद्धमुन्मत्तभैरवी॥४२॥

कुरुषकेण्र दैत्य के साथ कोई देवी युद्धार्थ आ गई मलय के के साथ उन्मत्त भैरवी ने युद्ध शुरू कर दिया॥४२॥

लघुश्यामा चकारोच्चैः करूशेन समं रणम्।
स्वप्नेशी मङ्गलाख्येन दैत्येन्द्रेण रणं व्यधात्॥४३॥

लघुश्यामा ने करूश नामक असुर के साथ बहुत ऊंचा रोमांचक युद्ध किया स्वप्नेशी देवी ने मंगल नामक असुर के साथ युद्ध किया॥४३॥

वाग्वादिनी तु जघटे दुघणेन समं रणे।
कोल्लाटेन च रुष्टेन चण्डकाल्यकरोद्रणम्॥४४॥

वाग्वादिनी ने द्रुघण के साथ युद्ध स्थल में युद्ध किया और चंडकाली ने कोल्लाट दुष्ट के साथ युद्ध किया॥४४॥

अक्षोहिणीभिर्दैत्यानां शक्त्यक्षोहिणिकास्तथा।
महान्तं समरं चक्रुरन्योन्यं क्रोधमूर्च्छिताः॥४५॥

दैत्यों की अक्षोहिणी सेनाओं से तथा शक्तियां की अक्षेहिणी सेनाओं का परस्पर क्रोध में अभिभूत सेनाओं का बड़ा भारी युद्ध आरंभ हो गया॥४५॥

प्रवर्तमाने समरे विशुक्रो दुष्टदानवः।
वर्धमानां शक्तिचमूं हीयमानां निजां चमूम्॥४६॥

युद्ध के आरंभ हो जाने पर दुष्ट दानव विशुक्र ने शक्ति सेना को प्रबल तथा अपनी दानव सेना को दुर्बल होती देखा तबा उसने॥४६॥

अवलोक्य रुषाविष्टः संकृष्टगुरुकार्मुकः।

शक्तिसैन्ये समस्तेऽपि तर्षास्त्रं प्रमुमोचह॥४७॥

उस दुष्ट दानव ने जब यह देखा तो क्रोध में भरकर अपने विशाल धनुष को खींचा और उससे सम्पूर्ण शक्ति सेना के ऊपर तर्षास्त्र का प्रयोग दिया॥४७॥

तेन दावानलज्वालादीप्तेन कथितं बलम्॥४८॥

उस छोड़े गए तर्षास्त्र की दावानल की ज्वालाओं के समान ज्वाओं से शक्ति सेना मथित होने लगी॥४८॥

तृतीययुद्धदिवसे याममात्रं गते रवौ।

विशुक्रमुक्ततर्षास्त्रव्याकुलाः शक्तयोऽभवन्॥४९॥

युद्ध के तीसरे दिन केवल सूर्य केवल प्रहर बीतने पर विशुक्र द्वारा छोड़े गए तर्षास्त्र के प्रभाव से समस्त शक्ति सेना व्याकुल होने लगी॥४९॥

क्षोभयन्निन्द्रियग्रामं तालुमूलं विशोषयन्।

रूक्षयन्कर्णकुहरमङ्गे दौर्बल्यमावहन्॥५०॥

उस तर्षास्त्र के प्रभाव से इन्द्रियां क्षुभित होने लगीं मुख में तालु सूखने लगा कानों के छिद्र रूखे होने लगे तथा अंगों में दुर्बलता छाने लगी॥५०॥

पातयन्पृथिवीपृष्ठे देहं विस्रंसितायुधम्।

आविर्बभूव शक्तीनामतितीव्रस्तृषाज्वरः॥५१॥

वे शक्तियां अपने आयुधों को अपने से अलग कर धरती पर लोटने लगीं इस प्रकार उन समस्त शक्तियों में अतितीव्र तृषाज्वर छाने लगा॥५१॥

युद्धेष्वनुद्यमकृता सर्वोत्साहविरोधिना।

तर्षेण तेन कथितं शक्तिसैन्यं विलोक्य सा।

मन्त्रिणी सह पोत्रिण्या भृशं चिन्तामवाप सा॥५२॥

तब युद्धों में निष्क्रियता होने लगी सभी उत्साह का विरोध करने लगीं इस स्थिति को तर्षास्त्र के प्रयोग से हुई देखकर पोत्रिणी के साथ मंत्रिणी भारी चिन्ता करने लगीं॥५२॥

उवाच तां दण्डनाथामत्याहित विशङ्किनी।

रथस्थितां रथगता तत्प्रतीकारकर्मणे॥५३॥

तब रथ में स्थित दण्डनाथा से रथगता मंत्रिणी बोली सखि! यह बड़ी भारी विपत्ति सामने आ गई है इससे हम सभी की बड़ी हानि हो जायेगी॥५३॥

सखि पोत्रिणि दुष्टस्य तर्षास्त्रमिदमागतम्।
शिथिलीकुरुते सैन्यमस्माकं हा विधेः क्रमः॥५४॥

हे सखि पोत्रिणि! यह उस दानव विशुक्र का छोड़ा हुआ तर्षास्त्र सामने आ गया है कैसी विधि (भाग्य) की गति है कि हमारा समस्त सैन्य शिथिल हुआ जा रहा है॥५४॥

विशुष्कतालुमूलानां विभ्रष्टायुधतेजसाम्।
शक्तीनां मण्डलेनात्र समरं समुपेक्षितम्॥५५॥

उस तृषास्त्र के प्रभाव हमारे इस शक्ति मंडल ने तालु कण्ठ के सूख जाने से व्याकुल होकर समस्त शस्त्रादि को अलग कर दिया है और युद्ध की पूरी तरह उपेक्षा कर दी है॥५५॥

न कापि कुरुते युद्धं न धारयति चायुधम्।
विशुष्कतालुमूलत्वाद्वक्तुमप्यालि न क्षमा॥५६॥

कोई भी शक्ति युद्ध नहीं कर रही है कोइ भी आयुध उठा नहीं रही है। हे सखि! तालुमूल के सूख जाने से कोई बोलने भी समर्थ नहीं है॥५६॥

ईदृशीं नो गतिं श्रुत्वा किं वक्ष्यति महेश्वरी।
दुष्टैरपकृते दैत्यैरुपायः प्रविचिन्त्यताम्॥५७॥

हम लोगों की ऐसी हालात देखकर वे महेश्वरी क्या कहेंगी उन दुष्ट दैत्यों द्वारा किये गए अपकार में कौन सा उपाय होना चाहिये यह सोचो॥५७॥

सर्वत्र व्यष्टसाहस्त्राक्षोहिण्यामत्र पोत्रिणि।
एकापि शक्तिर्नैवास्ति या तर्षेण न पीडिता॥५८॥

मंत्रनाथा ने कहा हे वाराहि! सभी जगह सोलह सहस्त्र अक्षोहिणी में यहां एक भी शक्ति ऐसी नहीं है जो तृषा से अत्यन्त व्याकुल न हो रही हो॥५८॥

अत्रैवावसरे दृष्ट्वा मुक्तशस्त्रां पताकिनीम्।
रन्ध्रप्रहारिणो हन्त बाणैर्निघ्नन्ति दानवाः॥५९॥

उसी ऐसे ही अवसर में छिद्रान्वेषी वे दानव सेना को शस्त्रादि त्यागी हुई देखते हैं तभी उन शक्तियों को बाणों से बींधते हैं॥५९॥

अत्रोपायस्त्वया कार्यो मया च समरोद्यमे॥६०॥

ऐसी समस्या में तुम्हें और मुझे इस समराद्यम उपाय सोचना चाहिये॥६०॥

त्वदीयरथपर्वस्थो योऽस्ति शीधुमहार्णवः।
तमादिश समस्तानां शक्तीनां तर्षमुक्तये॥६१॥

तुम्हारी रथ के एक भाग में शीधु का महार्णव है उसे आप आज्ञा दो कि वह समस्त शक्तियों उसके द्वारा तृषा से मुक्ति दे॥६१॥

नाल्पैः पानीयपानाद्यैरेतासां तर्षसंक्षयः।
स एव मदिरासिन्धुः शक्त्योघं तर्पयिष्यति॥६२॥

इन शक्तियों की तृषा थोड़े से पानी से शान्त नहीं होगी इन शक्ति समूहों को एक वहीं मदिरासिन्धु तृप्त कर सकेगा॥६२॥

तमादिश महात्मानं समरोत्साहकारिणम्।
सर्वतर्षप्रशमनं महाबलविवर्धनम्॥६३॥

उस युद्ध क्षेत्र में उत्साह बढ़ाने वाले उस महात्मा को जो सभी प्रकार की तृषाओं प्रशमन करता है और महाबल शक्ति को बढ़ाता है उसे आदेश दो॥६३॥

इत्युक्ता दण्डनाथा सा सदुपायेन हर्षिता।
आजुहाव सुरासिन्धुमाज्ञां चक्रेश्वरी रणे॥६४॥

ऐसा कहने पर वह दण्डनाथा अच्छे उपाय को सुनकर प्रसन्न हो गईं और चक्रेश्वरी ने रण में सुधासिन्धु को आज्ञा भेज दी॥६४॥

स मदालसरक्ताक्षो हेमाब्जस्रग्विभूषितः।
प्रणम्य दण्डनाथां तां तदाज्ञापरिपालकः॥६५॥

महासुधासिन्धु मद से अलसाई आंखों वाला स्वर्णकमलमाला से विभूषित ने भगवती की आज्ञा का परिपालन के लिये उन्हें प्रणाम किया॥६५॥

आत्मानं बहुधा कृत्वा तरुणादित्यपाटलम्।
क्वचित्तापिञ्छवच्छयामं क्वचिच्च धवलद्युतिम्॥६६॥

आज्ञा पाकर वह सुरासिन्धु स्वयं को अनेक वेषों से तरुण सूर्य के लाल वर्ण का था कहीं पर वह तमाल वृक्ष के समान श्यामवर्ण का और कहीं श्वेत कान्ति वाला होकर॥६६॥

कोटिशो मदिराधारां करिहस्तसमाकृतिम्।
ववर्ष सिन्धुराजोऽयं वायुना बहुलीकृतः॥६७॥

उस मदिरासिन्धु ने हाथियों की सूंड जैसी मोटी करोड़ों मदिरा की धाराएं वर्षा के रूप में जो वायु के झकोरों में कई धाराओं में हो रही थी वर्षाया॥६७॥

पुष्कलावर्तकाद्यैस्तु कल्पक्षयबलाहकैः।
निषिच्यमानो मद्याब्धिः शक्तिसैन्ये पपातह॥६८॥

उस सुरासिन्धु ने शक्ति सैन्य के ऊपर प्रलयकालीन पुष्कर और आवर्तक आदि मेघों से जो कल्पक्षय में काम आते थे ऐसे मेघों से सिंचन कर दिया॥६८॥

यद्गन्धाघ्राणमात्रेण मृत उत्तिष्ठति स्फुटम्।
दुर्बलः प्रबलश्च स्यात्स ववर्ष सुराम्बुधिः॥६९॥

उस सुरासमुद्र ने जो मद धाराएं छोड़ा था वे ऐसी थीं कि जो मृत प्राय धरती में पड़ा है उस धारा के सुरा की गंध सूंघने मात्र से उसमें जीव संचार हो जाता था जो दुर्बल शक्तिहीन हो गया है वह प्रबल हो जाता था॥६९॥

परार्धसंख्यातीतास्ता मद्यधारापरम्पराः।
प्रतीच्छन्त्यः पिपासातैर्मुखैः शक्तय उत्थिताः॥७०॥

सुरासिंधु द्वारा छोड़ी गई मधुधारा की परम्परा परार्थ (शंख संख्या) संख्या भी पार कर गईं उन मद धाराओं की प्रतीक्षा करती हुई शक्तियां मुख खोले हुए तत्पर हो गईं॥७०॥

यथा सा मदिरासिन्धुवृष्टिर्दैत्येषु नो पतेत्।
तथा सैन्यस्य परितो महाप्राकारमण्डलम्॥७१॥

जिस प्रकार वह मदिरा सिन्धु की वर्षा दैत्यों पर न हो वैसा उस मदिरा देवी ने सेना के चारों ओर आकार (चहार दीवारी) बाणों से बना दिया जिससे सुरा लाभ दैत्यों को न हो सके॥७१॥

लघुहस्ततया मुक्तैः शरजालैः सहस्रशः।
चकार विस्मयकरी कदम्बवनवासिनी॥७२॥

उस आकार की रचना में उस कदम्ब वनवासिनी देवी ने हल्के हाथों से फेंक गए हजारों बाणों के जालों से वह महाआकार मंडल बनाया था जो विस्मयकारक था॥७२॥

कर्मणा तेन सर्वेऽपि विस्मिता मरुतोऽभवन्॥७३॥

इस प्रकार उस विस्मय करने वाली कदम्ब वनवासिनी के कर्म से सभी मरुद्गण विस्मित हो गए॥७३॥

अथ ताः शक्तयो भूरि पिबन्ति स्म रणान्तरे।
विविधा मदिराधारा रणोत्माहविवर्धिनीः॥७४॥

अब उस आकार के भीतर वे शक्तियां पर्याप्त मात्रा में सुरा पीने लगीं वह मदिराधारा रण में उत्साह बढ़ाने वाली थी॥७४॥

यस्या यस्या मनःप्रीती रुचिः स्वादो यथा यथा।
तस्यास्तस्याः सुरसिन्धुस्ता ववर्ष तथा तथा॥७५॥

उस मदधारा में जिस जिस शक्ति को जैसा जैसा स्वाद मन में प्रीति लाता था वैसा वैसा स्वाद उसे मिल रहा था ऐसी सुरासिन्धु ने मद की धारा की वर्षा की ॥७५॥

तृतीययुद्धदिवसप्रहरद्वितयावधि।
मद्यसन्ततधाराभिः प्रववर्ष सुराम्बुधिः॥७६॥

युद्ध के तीसरे दिन के दूसरे प्रहर की अवधि तक सुरा समुद्र ने निरन्तर मद्य की धाराओं की वर्षा की॥७६॥

गौडीः पैष्टीश्च माध्वीश्च वल्कीः कादम्बरीस्तथा।
हैन्तालीर्लाङ्गलेयाश्च तालजातास्तथा सुराः॥७७॥

सुराम्बुधि ने जिन मद्यधाराओं की वर्षा की थी उस धारा में विविध पदार्थों से बनने वाली सुराएं जैसी गुड़ से बनने वाली या राब से बनने वाली या महुआ से बनने वाली, हिन्ताल, लङ्गलेया, ताल (ताड़) से बनने वाली सुराओं की धारा से शक्तियों को उद्दीपित किया॥७७॥

कल्पवृक्षोद्भवा दिव्या नानाद्रव्यसमुद्भवाः।
सुस्वादूः सौरभाढ्याश्च शुभगन्धा मद्यदाः॥७८॥

वे मद्य कल्पवृक्षों से उत्पन्न नाना द्रव्यों से उत्पन्न स्वाद युक्त सुगंधि से भरपूर और शुभगन्ध दुर्गन्धरहित तथा मद देने वाली थीं॥७८॥

बकुलप्रसवामोदा ध्वनन्तो बुद्बुदोज्ज्वलाः।
कटुकाश्च कषायाश्च मधुरास्तिक्ततास्पृशः॥७९॥

वह सुरा बकुल की सुगंध वाली बजते हुए बुलबुलों से युक्त कोई तीखी, कोई कसैली, कोई मीठी और कोई कड़वी स्वाद वाली थी ॥७९॥

बहुवर्णसमाश्लिष्टाश्छोदिनीः पिच्छिलास्तथा।
ईषदम्लाश्च कट्वम्ला मधुराम्लास्तथा पराः॥८०॥

उस सुरा के अनेकों रंग थे कोई गाढ़ी कोई बिखरी को फेन युक्त कोई कम खट्टी को तीखी खट्टी कोइ मीठी खट्टी थी॥८०॥

शस्त्रक्षतिरुजाहन्त्री रस्थिसन्धानदायिनीः।
रणश्रमहरीः शीताः कवोष्णाश्च तथा लघु॥८१॥

वे जो मदिराएं नाम से अनेक क्षतियों को हरने वाली थीं जैसे शस्त्र के घाव मिटाने वाली, रोग नष्ट करने वाली, टूटी हड्डियों को जोड़ने वालीं कोई कोई तो युद्ध की थकावट दूर करने वाली ठंडी समशीतोष्ण और पचने में हल्की थी॥८१॥

सन्तापहारिणीः किंचानुष्णाशीता जयप्रदाः।
नानाविधाः सुधाधारा वव्रर्ष मदिरार्णवः॥८२॥

वे मदिराएं दुःख चिन्ता आदि हरने वालीं कोई न गर्म न ठंडी थीं वे जय प्रदान करने वालीं थीं ऐसी नाना विध अमृतधारा की वर्षा मदिरार्णव ने की॥८२॥

अविच्छिन्न याममात्रमेकैका तत्र योगिनी।
ऐरावतकरप्रख्यां सुधाधारां मुदा पपौ॥८३॥

वहां पर जहां मदिरार्णव सुधा धारा की वर्षा कर रहा था उस युद्ध स्थल में योगिनी एक एक कर प्रत्येक योगिनी प्रहर पर्यन्त सुधा धारा जो ऐरावत कर प्रख्य अर्थात भोज्य पदार्थों से बनी धारा जो ऐरावत हाथी की सूंड़ जैसी स्थूल थी ऐसी धारा से पान किया और आनन्दित हुई॥८३॥

उत्तान वदनं कृत्वा विलोलरसनाञ्चलम्।
शक्तयः प्रपपुः शीधु मुदा मीलितलोचनाः॥८४॥

उस समय मदिरा धारा को मुंह में लेने के लिये वे योगिनियां मुंह को ऊपर उठाकर जीभ को लपलपाते हुए उस सुरा का पान आंखें मूंद मूंदकर कर रही थीं॥८४॥

इत्थं बहुविधैर्मद्यधारापातैः सुराम्बुधिः।
आगलं तर्पयित्वा ता दिव्यरूपं समास्थितः॥८५॥

इस प्रकार अनेक प्रकारों से अनेक प्रकार की मद्य धाराएं चला कर उस सुरासमुद्र ने उन समस्त योगिनीयों को तृप्त करके स्वयं दिव्यरूप में परिणत हो गया॥८५॥

पुनर्गत्वा दण्डनाथां प्रणम्य स सुराम्बुधिः।
स्निग्धगम्भीरघोषेण वाक्येनेदमुवाच ताम्॥८६॥

फिर वह सुरा समुद्र दिव्य रूप लेकर दण्डनाथा भगवती के पास जाकर प्रणाम करके गंभीर घोष के साथ ये वाक्य बोला॥८६॥

देवि पश्य महाराज्ञींदण्डमण्डलनायिके!
मया संतर्पिता मुक्ततर्षा शक्तिवरूथिनी॥८७॥

हे देवि! महाराज्ञिदण्ड मण्डलनायिके!! देखिये ये सर्म्पण शकित सेना पूर्ण रूप से तृषा रहित हो गई है मैंने उसे पूर्णरूप तृप्त कर दिया हूं॥८७॥

काश्चिन्नृत्यन्ति गायन्ति कलक्कणितमेखलाः।
नृत्यन्तीनां पुरः काश्चित्करतालं वितन्वते॥८८॥

कोई योगिनी कमर की करधनी की मधुर ध्वनि करती हुई नांच रही है कोई गा रही है कोई कोई

तो नाचती हुई योगिनियों के सामने करतल की ध्वनियां कर रही हैं ॥८८॥

काश्चिद्धसन्ति व्यावल्गद्वल्गुवक्षोजमण्डलाः।
पतन्त्यन्योन्यमङ्गेषु काश्चिदानन्दमन्थराः॥८९॥

कोई योगिनी खिलखिलाकर हंस रही है, कुछ एक दूसरे को पकड़कर स्तनों को आपस में रगड़ रही हैं, कोई योगिनी आनन्द में मग्न होकर एक दूसरे के अंगों पर पड़ रही हैं ॥८९॥

काश्चिद्वल्गन्ति च श्रोणीविगलन्मेखलाम्बराः।
काश्चिद्युद्धाय संनद्धा घूर्णयन्त्यो निजायुधम्॥९०॥

कुछ योगिनियां कमर से गिरी हुई करधनी और वस्त्र वाली हो गई हैं कोई युद्ध के लिये तैयार होकर अपने शस्त्रास्त्रो की जांच कर रही हैं ॥९०॥

इत्थं निर्दिश्यमानास्ताः शक्ती मैरेयसिन्धुना।
अवलोक्य भृशं तुष्टा दण्डिनी तमुवाच ह॥९१॥

उस सुरासिन्धु ने उन सभी शक्तियों की नाना प्रवृत्तियों को दिखाया और बताया तब भगवती दण्डिनी पूरी तरह संतुष्ट होकर बोलीं ॥९१॥

परितुष्टास्मि मद्याच्छे त्वया साह्यमनुष्ठितम्।
देवकार्यमिदं किंच त्वया निर्विघ्नितं कृतम्॥९२॥

हे सुराम्बुधि! तुमने जो सहायता की उससे मैं पूर्णतया सन्तुष्ट हूं।। तुमने इस देव सहायतारूप कार्य बड़ी चतुराई से बिना विघ्नबाधा के पूर्ण किया है ॥९२॥

अतो वा त्वं मत्प्रसादाद्वाजपेयादिके मखे।
सोमपानवदत्यन्तमुपयोज्यो भविष्यसि॥९३॥

अतः हे मद्याब्धि! तुम मेरी कृपा से वाजपेयादि वैदिक यज्ञों में सोमदान के समान ही अत्यन्त उपयोगी हो ओंगे ॥९३॥

मंत्रेण पूतं त्वां यागे पास्यन्त्यखिलदेवताः॥९४॥

मन्त्रों द्वारा पवित्र किये तुम को देवता लोग पान करेंगे ॥९४॥

यागेषु मन्त्रपूतेन पीतेन भवता जनाः।
सिद्धिमृद्धिं बलं स्वर्गमपवर्गं च विभ्रतु॥९५॥

इन यज्ञों में मन्त्रपूत मद्य का पान करने वाला जन सिद्धि ऋद्धि बल स्वर्ग और अपवर्ग (मोक्ष) धारण करें॥९५॥

महेश्वरी महादेवो बलदेवश्च भार्गवः।
दत्तात्रेयस्तथान्ये च त्वां पास्यन्ति महाजनाः॥९६॥

महेश्वरी (दुर्गा), महादेव, बलराम, परशुराम, दत्तात्रेय, ब्रह्मा विष्णु आदि विशिष्ट जन तुम्हारा पान करेंगे॥९६॥

यागे समर्चितस्त्वं हि सर्वा सिद्धिं प्रदास्यसि॥९७॥

यागों में मन्त्रों द्वारा पवित्र किये गये तुम सभी सिद्धियां प्रदान करोगे॥९७॥

इत्थं वरप्रदानेन तोषयित्वा सुराम्बुधिम्।
मन्त्रिणीं त्वरयामास पुनर्युद्धाय दण्डिनी॥९८॥

इस प्रकार सुरासमुद्र को वरों के प्रदान से सन्तुष्ट कर दाण्डिनी ने शीघ्रता से युद्ध के लिये मंत्रिणी को प्रेरित किया॥९८॥

पुनः प्रववृते युद्धं शक्तीनां दानवैः सह।
मदाट्टहासनिर्भिन्न दिगष्टकधराधरम्॥९९॥

पुनः शक्तियों का दानवों के साथ युद्ध शुरु हो गया, जो मदपूर्वक अट्टहास से भरपूर ध्वनि से आठों दिशाओं से भूमि को गुंजित कर रहा था॥९९॥

प्रत्यग्रमदिरामत्ताः पाटलीकृतलोचनाः।
शक्तयो दैत्यचक्रेषु न्यपतन्नेकहेलया॥१००॥

मदिरा के मद से मत्त लाल लाल आंखों वाली वे शक्तियां दैत्यों की सेनाओं पर एक साथ ही टूट पड़ीं॥१००॥

द्वयेन द्वयमारेजे शक्तीनां समरश्रियाम्।
मदरागेण चक्षुंषि दैत्यरक्तेन शस्त्रिकाः॥१०१॥

इस प्रकार मद की शोभा युक्त शक्तियां दोनों के द्वारा दोनों अर्थात शक्तियां मद से लाल आंखें शक्तियों की और दैत्यों के रक्त से शस्त्र लाल हो गए॥१०१॥

तथा बभूव तुमुलं युद्धं शक्तिसुरद्विषाम्।
यथा मृत्युरपि त्रस्तः कान्दिशीकत्वमागतः॥१०२॥

शक्तियों और देवद्वेषी असुरों का ऐसा तुमुल युद्ध हुआ जिससे मृत्यु भी परेशान हो गया, लोगों को कहां तक ले अर्थात अगणित मृत्युएं होने लगीं॥१०२॥

पस्खलद्पदन्यासा मदेनारक्तदृष्टयः।
स्खलदक्षरसंदर्भवीरभाषारसोद्धताः॥१०३॥

उस समय मदिरा से लाल आंखों वाली शक्तियां लड़खड़ाती हुईं और आंखें घुमाती हुईं वीर रस की भाषा बोलती हुईं युद्ध कर रही थीं॥१०३॥

कदम्बगोलका कार हृष्टमर्वाङ्गयष्टयः।
युवराजस्य सैन्यानि शक्तयः समनाशयन्॥१०४॥

कदम्ब के गोलक के समान जिनका सम्पूर्ण शरीर और आंखें दिखाई दे रही थीं ऐसी उन शक्तियों ने युवराज विशुक्र की सेना को पूरी तरह से नष्ट कर दिया॥१०४॥

अक्षोहिणीयनं तत्र दण्डिनी समदारयन्।
अक्षोहिणीसार्धशतं नाशयामाम मन्त्रिणी॥१०५॥

एक सौ अक्षोहिणी सेना का उस युद्ध स्थल में भगवती दण्डिनी ने विनाश कर दिया तथा सार्धशत (150) अक्षोहिणी सेना का विध्वंस मंत्रिणी ने कर दिया।।115।।

अश्वारूढाप्रभृतयो मदारुणविलोचनाः।
अश्रोहिणीमार्धशनं निन्युरन्त कमन्दिरम्॥१०६॥

अश्वरूढ़ा आदि शक्तियों ने, जो मद से लाल नेत्रों वाली हो रही थीं, उन्होंने अर्धशत (सार्धशत) अक्षौहिणी दैत्य सेना को यमलोक भेज दिया।।106।।

अङ्कुशेनातितीक्ष्णेन तुरगारोहिणी रणे।
उलूकजिनमुन्मथ्य परलोकातिथि व्यधान्॥१०७॥

तुरग पर सवार शक्ति ने युद्ध में अत्यन्त पैने अंकुश के प्रहार से उलूकजित् दैत्य को परलोक का अतिथि बना दिया।।107।।

सम्पत्करीप्रभृतयः शक्तिदण्डाविनायिकाः।
पुरुपेणमुग्वानन्यान्नव युद्धे व्यदारयन्॥१०८॥

सम्पत्करी आदि शक्ति दण्ड की अधिनायिकाओं ने तीक्ष्ण अस्त्रों से अन्य प्रमुख दानवों को युद्ध में विदीर्ण कर दिया।।108।।

अस्त गते वितरि ध्वम्नमर्ववलं तनः।
विशुक्र योवयामाम उयामला कोपशालिनी॥१०९॥

सूर्य के अस्त हो जाने पर समस्त सैन्य बल ध्वस्त हो जाने पर कोप में भरी हुई भगवती श्यामला ने विशुक्र के साथ युद्ध किया।।109।।

अम्बात्यस्त्रमोक्षेण भीपणेन दिवोकमाम्।
महता रणकृत्येन योधयामास मन्त्रिणी॥११०॥

उस समय श्यामला मंत्रिणी ने देवताओं के अस्त्र प्रत्यस्त्र प्रक्षेप द्वारा महान् युद्धकृत्य से युद्ध किया।।110।।

आयुधानि सुतीक्ष्णानि विशुक्रस्य महौजसः।
क्रमशः खण्डयन्ती सा केतनं रथसारथिम्॥१११॥

उस युद्ध के बीच अपने बाणों से महापराक्रमी विशुक्र के तीक्ष्ण अस्त्र शस्त्रों को खण्डित करती हुई ध्वजा सहित रथ के सारथी को समाप्त कर दिया।।111।।

धनुर्गुणं धनुर्दण्डं खण्डयन्ती शिलीमुखैः।
अस्त्रेण ब्रह्मशिरसा ज्वलत्पावकरोचिषा।
विशुक्रं मर्दयामास सोऽपतच्छिन्नविग्रहः॥११२॥

उस विशुक्र दानव के धनुष की डोरी को तथा धनुषदण्ड को बाणों के द्वारा खण्डित कर दिया तथा जलते हुए अग्नि की किरणों वाले ब्रह्मशिरस अस्त्र के द्वारा विशुक्र का मर्दन कर दिया। वह निर्जीव होकर गिर पड़ा।।112।।

विषङ्गं च महादैत्यं दण्डनाथा मदोद्धता।
योधयामास चण्डेन मुमलेन विनिघ्नती॥११३॥

महोदया दण्डनाथा भगवती ने विषङ्ग महादैत्य के साथ युद्ध करती हुई भीषण मूसल से प्रहार करती हुईं।।113।।

स चापि दुष्टो दनुजः कालदण्डनिभां गदाम्।
उद्यम्य बाहुना युद्धं चकाराशेषभीषणम्॥११४॥

उस विषङ्ग ने कालदण्ड जैसी गदा को उठाकर भुजा से जैसा युद्धक भी ना हुआ होगा वैसा भीषण युद्ध किया।।114।।

अन्योन्यमङ्गं मृगन्तौ गदायुद्धप्रवर्तिनौ।
चण्डाट्टहासमुखरौ परिभ्रमणकारिणौ॥११५॥

उस समय गदायुद्ध में दोनों योद्धा एक दूसरे के ऊपर प्रहार करते हुए प्रचण्ड अट्टाहास करते हुए चारों तरफ घूम रहे थे।।115।।

कुर्वाणौ विविधाश्वारीघूर्णन्तौ तूर्णवेष्टनैः।
अन्योन्यदण्डाहननान्मोहयन्तौ मुहुर्मुहुः॥११६॥
अन्योन्यप्रहतौ रन्ध्रमीक्षमाणौ मदोद्धतौ।
महामुसलदण्डाग्रघट्टनक्षोभिताम्बरौ।
अयुध्येतां दुराधर्षौ दण्डिनीदैत्यशेखरौ ॥११७॥

वे दोनों एक दूसरे के छिद्र देखकर प्रहार कर रहे थे उन दोनों के मुसलदण्डों के टकराने से जो

कर्णभेदी शब्द हो रहा था उससे नभ भी क्षुभित हो रहा था, इस प्रकार दण्डिनी और विषंग दोनों ही युद्ध कर रहे थे॥११६,११७॥

अथार्धरात्रसमयपर्यन्तं कृतसङ्गरा।
संक्रुद्धा हन्तुमारेभे विषङ्गं दण्डनायिका॥११८॥

आधी रात तक घोर युद्ध होता रहा तब दण्डनायिका विषंग को समाप्त करने के लिये क्रोध में भरकर युद्ध और भयंकर शुरू कर दिया॥११८॥

सा तन्मूर्ध्नि निमग्नेन हलेनाकृष्य वैरिणम्।
कठोरं ताडनं चक्रे मुसलेनाथ पोत्रिणी॥११९॥

उन वाराही दण्डनाथा ने उस शत्रु को हल से खींचकर उसके शिर में मूसल का प्रहार किया॥११९॥

ततो मुसलघातेन त्यक्तप्राणो महासुरः।
चूर्णितेन शताङ्गेन समं भूतलमाश्रयत्॥१२०॥

मूसल का मर्मभद् भीषण प्रहार होने से वह महासुर प्राणशून्य हो गया, उसके अंगों के भी सौ टुकड़े हो गए और वह भूमि पर गिर पड़ा॥१२०॥

इति कृत्वा महत्कर्म मन्त्रिणीदण्डनायिके।
तत्रैव तं निशाशेषं निन्यतुः सह शक्तिभिः॥१२१॥

इस प्रकार उन दोनों मंत्रिणी और दण्डनाथा ने बड़ा महत्वपूर्ण कार्य सम्पन्न किया तथा वहीं शक्तियों के साथ बाकी रात्रि बिताई॥१२१॥

सा रात्रिरपि भण्डस्य व्यरंसीत्सममायुषा।
रणश्रान्तं निजं सैन्यं निन्यतुः शिबिरं प्रति॥१२२॥

वह रात्रि भी भण्ड की बची आयु के साथ रण में बनी सेना को शिविर की ओर ले गयीं॥१२२॥

इति श्रीब्रह्माण्डपुराणे उत्तरखण्डे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने
विशुक्रविषङ्गवधो नाम चतुर्विंशोऽध्यायः॥२४॥

॥श्रीमन्महागणाधिपतये नमः।।

श्रीमाताललिताम्बायै नमः श्रीपादुकां पूजयामि नमः॥
ॐ वन्दे गुरुपदद्वन्द्वं अवाङ्मनसगोचरम्॥
रक्तशुक्ल प्रभामिश्रमतर्क्यं त्रैपुरं महः॥
ॐ आराध्यदेवं भक्तानां कलिदोषविनाशकम्॥
वन्दे श्री गिरिजानन्दं शारदाश्रीमठाधिपम्।।
ॐ अखण्डं यस्यज्ञानञ्च भक्तिर्यस्यानपायिनी।।
शारदाज्योतिरीशस्य दर्शनं (पूजनं, वन्दनं) शुभमस्तुनः।।

पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ 64 श्लोकात्मकः

[श्रीललिताभण्डासुरयुद्धम्]

अगस्त्यः ।। अगस्त्य जी बोले-ः

अश्वानन महाप्राज्ञ वर्णितं मन्त्रिणीबलम्।
विषङ्गस्य वो युद्धे वर्णितो दण्डनाथया॥१॥

हे महाप्राज्ञ! अश्वानन!! आपने मंत्रिणी देवी के बल का वर्णन किया है तथा युद्ध में दण्डनाथा द्वारा विषंग का वध उसका भी वर्णन किया ।।1।।

श्रीदेव्याः श्रोतुमिच्छामि रणचक्रे पराक्रमम्।
सोदरव्यापदं दृष्ट्वा भण्डः किमकरोच्छुचा॥२॥

मैं अब श्रीदेवी का रणचक्र में पराक्रम सुनना चाहता हूं तथा सोदरों की मृत्यु को देखकर शोक ग्रस्त भण्ड ने आगे क्या किया।।2।।

कथं तस्य रणोत्साहः कैः समं समयुध्यत।
सहाया केऽभवंस्तस्य हतभ्रातृतनूभुवः॥३॥

उसका रण में कैसा उत्साह रहा, किन के साथ युद्ध हुआ उसके सहायक कौन कौन हुए, जिस भंडासुर के पृत्र भाईआदि सभी मारे गए।।3।।

श्री हयग्रीव बोले-ः

इदं शृणु महाप्राज्ञ सर्वपापनिकृन्तनम्।
ललिताचरितं पुण्यमणिमादिगुणप्रदम्॥४॥

हे महाप्राज्ञ! अगस्त्य!! तुम इस समस्त पापों का खण्डन करने की श्रीललिता के चरित को सुनो, जो अणिमा आदि गुणों को देने वाला समस्त पापों को नष्ट करने वाला है ।।4।।

विषुवायनकालेषु पुण्येषु समयेषु च।
सिद्धिदं सर्वपापघ्नं कीर्तितं पञ्चपर्वसु॥५॥

विषुत क्रान्ति (मेष और तुला राशि में सूर्य आते हैं तो वह विषुव क्रांति कही जाती है मेषसंक्रांति प्रायः चैत्र में तथा तुलासंक्रांति अश्विन मास तथा कर्तिक में आती है) तथा अयनसंक्रांति (कर्क संक्रांति प्राय आषाढ़ में दक्षिणायन तथा मकरसंक्रांति लगभग पूष का अंतिम भाग तथा माघ का कृष्ण पक्ष में उत्तरायन सूर्य होते हैं) में इन दोनों संक्रांतियों में तथा पुण्य प्रदअवसरों में और पांच पर्वों में यह चरित्र पापों को नष्ट करता है सिद्धियों को देता है।।5।।

तथा हतौ रणोत्साहौ श्रुत्वा निजसहोदरौ।
शोकेन महताविष्टो भण्डः प्रविललाप सः॥६॥

जब रण में अपने दोनों सहोदरों विशुक्र और विषंग का जो रण में उत्साह से जाते थे उनके मारे जाने का समाचार जब भण्ड ने सुना तो बड़े शोक में ग्रसत होकर विलाप करने लगा।।6।।

विकीर्णकेशो धरणौ मूच्छितः पतितस्तदा।
न लेभे किंचिदाश्वासं भ्रातृव्यसनकर्शितः॥७॥

वह भण्ड केशों को बिखेरकर धरणी में मूर्छित होकर गिर गया, उसने भाईयों की मृत्यु हो जाने के कष्ट से अत्यन्त दुःखी वह श्वास भी न ले सका।।7।।

पुनःपुनश्च प्रलपन्कुटिलाक्षेण भूरिशः।
आश्वास्यमानः शोकेन मुक्तः क्रोधमवाप सः॥८॥

बार बार उठकर बहुत विलाप करते हुए उसे कुटिलाक्ष बहुत आश्वासन दे रहा था, फिर वह शोक से युक्त होकर (क्रोध में भरकर गया)।।8।।

फालं वहन्नतिक्रूरं भ्रमद्भ्रुकुटिभीषणम्।
अङ्गारपाटलं चक्षुर्निश्वसन्कृष्णसर्पवत्॥९॥

परिवार हनन से क्रोधित भाल को धारण किये अतिक्रूर अंगार जैसी लाल आंखें कर काले नाग जैसे श्वास लेता हुआ।।9।।

क्षिप्रं मुहुर्मुहुः स्पृष्ट्रा धुनानः करवालिकाम्।
क्रोधहुंकारमा तन्वनगर्जन्नुत्पातमेघवत्॥१०॥

शीघ्र बार-बार तलवार और धनुषों को छूकर क्रोध से हुंकार करता हुआ प्रलय कालीन मेघ की तरह गरजता हुआ भौंहें घुमाता हुआ।।10।।

उवाच कुटिलाक्षं द्राक्समस्तपृतनापतिम्।
ययैव दुष्टया मायाबलायुद्धे विनाशिताः॥११॥

समस्त दैत्य सेना के सेनापति कुटिलाक्ष से बोला जिस दुष्टा ने माया छल बल से युद्ध में विनाश किया है।।11।।

भ्रातरो मम पुत्राश्च सेनानाथाः सहस्त्रशः।
तस्याः स्त्रियोऽतिधूतार्याः कण्ठोत्थैः शोणितद्रवैः॥१२॥

मेरे दोनों भाईयों मेरे समस्त पुत्रों को तथा हजारों सेना पतियों को उस स्त्री ने मारा है उस अतिधूर्त स्त्री के कण्ठ से निकले रक्त से।।12।।

भ्रातृपुत्रमहाशोकवह्निं निर्वापयाम्यहम्।
गच्छरे कुटिलाक्ष त्वं सज्जीकुरु पताकिनीम्॥१३॥

भाई और पुत्रों के मारे जाने की शोकाग्नि को शान्त करूंगा, जा रे कुटिलाक्ष तुम सेना को तैयार करो।।13।।

इत्युक्त्वा कठिनं वर्म वज्रपातसहं महत्।
दधानो भुजमध्येन बघ्नन्पृष्ठे महेषुधी॥१४॥
उद्दाममौर्वीनिस्वानकठोरं धन्ववारयन्।
कालाग्निरिव संक्रुद्धो निर्जगाम निजात्पुरात्॥१५॥
तालजङ्घादिकैः साथै पुरद्वारनिवेशितैः।
चतुर्भिर्वृतशस्त्रौधैधृतवर्मभिरुद्धतैः॥१६॥

इतना कहकर उसने व्रजपात को सहन कर सकने वाले कठिन कवच को पहिना और भुजाओं के बीच बड़े धनुष को धारण करता हुआ तथा पीठ पर तरकस बांधता हुआ कठोर प्रत्यंचाा वाले धनुष को रखे हुए प्रलयकालीन अग्नि के समान क्रोध पूर्ण होकर अपने नगर से निकला भण्ड के निकलते समय भण्ड ने नगर के द्वार में नियुक्त तालजंघ आदि के साथ जो चार थे और शस्त्रों का समूह रखे थे तथा कवचादि भी पहिने हुए थे।।14,15,16।।

पञ्चत्रिंशच्चमूनाथैः कुटिलाक्षपुरःसरैः।
सर्वसेनापतीन्द्रेण कुटिलाक्षेण सक्रुधा॥१७॥

पैंतीस सेनापति थे तथा उनके आगे कुटिलाक्ष सेनापति था, तब क्रोध से भरे हुए सभी सेना के सेनपाति कुटिलाक्ष ने।।17।।

मिलित्वा तेन भण्डेन चत्वारिशच्चमूवराः।
दीप्तायुधा दीप्रकेशा निर्जग्मुर्दीप्तकङ्कटाः॥१८॥

इस प्रकार सभी सेनापतियों, कुटिलाक्ष और भण्डासुर को मिलाकर चालीस सेनापतिगण जो चमकते शस्त्रों वाले चमकते केशों वाले और चमकते हुए कवचों वाले थे ।।18।।

द्विसहस्त्राक्षोहिणीनां पञ्चाशीतिः शताधिका।
तमन्वगा ययावेकहेलया मथितुं द्विषः ॥१९॥

दो हजार पचासी सौ अक्षोहिणी सेना चमकते हुए आयुधों के साथ शत्रु का दमन करने के लिये एक बार में ही सभी निकल पड़े ।।19।।

भण्डासुरे विनियार्ते सर्वसैनिकसङ्कुले।
शून्यके नगरे तत्र स्त्रीमात्रमवशेषितम् ॥२०॥

समस्त सैनिकों से घिरे हुए भण्ड के नगर से निकल जाने पर केवल नगर में स्त्रियां ही रह गईं।।20।।

आभीलं नाम दैत्येन्द्रो रथवर्य महारथः।
सहस्त्रयुग्यसिहाढ्यमारुरोह रणोद्धतः॥२१॥

आभिल नाम दैत्येन्द्र जो महारथी था और बहुत ही रणकुशल था वह हजार सिंहों से जुड़े रथ में सवार होकर निकला।।21।।

तत्करे प्रविजज्वाल कालाग्निरिव दीप्तिमान्।
यातनानामवान्खङ्गश्चन्द्रहाससमाकृतिः॥२२॥

उस दानव के हाथ में कालाग्नि के समान चमक वाला यातना नामक खड्ग चन्द्रहास के समान आकृति वाला चमकता हुआ था ।।22।।

इतस्ततश्चलन्तीनां सेनानां धूलिरुद्धता।
वोढुं तस्या भरं भूमिरक्षमेव दिवं ययौ॥२३॥

इधर उधर चलती हुई सेनाओं की उठी हुई धूली सेना के भार को सहने के लिये आकाश में चली गई।।23।।

केचिद्भूमेरपर्याप्ताः प्रचेलुर्व्योमवर्त्मना।
केषांचित्स्कन्धमारूढाः केचिच्चेलुर्महाबलाः॥२४॥

सेना में कुछ लोगों को तो भूमि ही पर्याप्त नहीं हुई अतः वे आकाश मार्ग से कुछ तो महारथी योद्धा सैनिकों के कंधों पर सवार होकर चले ।।24।।

न दिक्षु न च भूचक्रे न व्योग्नि न च ते ममुः।
दुःखदुःखेन ते चेलुरन्योन्याश्लेषपीडिताः॥२५॥

इतनी भीड़ थी न दिशाओं में जगह रही न भूचक्र में न आकाश में जगह बची कुछ सैनिक तो दुःख दुःख के साथ परस्पर में एक दूसरे से सटकर चले।।25।।

अत्यन्तसेनासंमर्दाद्रथचक्रे विचूर्णिताः।
केचित्पादेन नागानां मर्दिता न्यपतन्भुवि॥२६॥

उस चलती हुई भीड़ की कसमसाहट में कोई भीड़ में फंसकर रथचक्र में फंस कर अंगभंग हो गया कोई हाथियों के पैरों तले आ गया तो पिचल गया और भूमि में गिर गया।।26।।

इत्थं प्रचलता तेन समं सर्वैश्च सैनिकैः।
वज्रनिष्पेषसदृशः सिंहनादो व्यधीयत॥२७॥

इस प्रकार चलते हुए उस भण्ड ने सभी सैनिकों के साथ वज्रपात होने पर ध्वनि के समान सिंहनाद किया।।27।।

तेनात्यन्तकठोरेण सिंहनादेन भूयसा।
भण्डदैत्यमुखोत्थेन विदीर्णमभवज्जगत्॥२८॥

इस प्रकार बार बार हो रहे भण्ड दैत्य के मुख से निकले अत्यन्त कर्कश सिंहनाद की ध्वनि से पूरा क्षेत्र गुञ्जारित हो गया।।28।।

सागराः शोषमापन्नाश्चन्द्रार्कौ प्रपलायितौ।
उडूनि न्यपतन्व्योम्नो भूमिर्दोलायिताभवत्॥२९॥

समुद्र सुखने लगे चन्द्र और सूर्य भागने अर्थात सभी राशियों में दोनों ग्रहों की क्रान्ति होने लगी, तारागण आकाश से गिरने लगे अर्थात् उल्कापात होने लगा और भूमि में भूकम्प आने लगे।।29।।

दिङ्नागाश्चाभवंस्त्रस्ता मूर्च्छालाश्च दिवौकसः।
शक्तीनां कटकं चाभूदकाण्डत्रासविह्वलम्॥३०॥

दिशाओं के हाथी भयभीत हो गये देवगण मूर्छित हो गए शक्तियों की सेनाएं भी असमय में उत्पन्न भय से व्याकुल होने लगी थीं ।।30।।

प्राणान्संधारयामासुः कथमप्यश्ववारणाः।
शक्तयो भयविभ्रष्टान्यायुधानि पुनर्दधुः॥३१॥

उस समय जो भयंकर सिंहनादादि शब्द हो रहे थे उनमें किसी प्रकार घोड़े हाथी ठहरे हुए थे ऐसे शब्दों से ये प्राणी बिचक जाते हैं शक्तियां भी भय से व्याकुल हो गई थीं आयुध नीचे गिर गये थे फिर से उन्होंने शस्त्रों को धारण किया।।31।।

वह्निप्राकारवलयं प्रशान्तं पुनरुत्थितम्।
दैत्येन्द्रसिहनादेन चमूनाथधनुःस्वनैः ॥३२॥

शक्तियों का वह वहिन आकार प्रशान्त होकर पुनः प्रज्वलित हो गया पहिले दैत्येन्द्र के सिंहनाद से सेना पतियों के धनुष टंकारों से वह अग्नि प्रकार मंद हो रहा था पर अब पुनः वह प्रज्वलित हो उठा है।।32।।

क्रन्दनैश्चापि योधानां जगच्छाब्दमिवाभवत् ॥३३॥

योद्धाओं के कोलाहल करने से पूरा क्षेत्र शब्दमय हो गया था।।33।।

तेन नादेन महता भण्डदैत्यविनिर्गमम्।
निश्चित्य ललितादेवी स्वयं योद्धं प्रचक्रमे ॥३४॥

भण्डासुर के उस नाद से स्वयं ललितादेवी ने युद्ध के लिये निश्चय किया और रण क्षेत्र की ओर चलीं।।34।।

अशक्यमन्यशक्ती नामा कलय्य महाहवम्।
भण्डदैत्येन दुष्ठेन स्वयमुद्योगमास्थिता ॥३५॥

अन्य शक्तियां भण्ड से युद्ध में असमर्थ हैं यह सोचकर उस महायुद्ध में स्वयं उस दुष्ट भण्डासुर से युद्ध करने के लिये निकल पड़ीं।।35।।

चक्रराजरथस्तस्याः प्रचचाल महोदयः।
चतुर्वेदमहाचक्रः पुरुषार्थमहाहयः ॥३६॥

उन महादेवी का रथ जो चक्रराज रथेन्द्र था चल पड़ा, उसके चार वेदों के ही चके थे उस रथ को खींचने वाले चार घोड़े चार पुरुषार्थ थे।।36।।

आनन्दध्वजसंयुक्तो नवभिः पर्वभिर्युतः।
नवपर्वस्थदेवीभिराकृष्टगुरुधन्वभिः ॥३७॥

उस चक्र राजरथेन्द्र की आनन्द नामक ध्वजा थी और वह रथ नौ पर्वों से युक्त था उस रथ के नवम पर्व में समस्त देवियां अपने बड़े बड़े धनुषों को ताने हुए स्थित थीं।।37।।

परार्धाधिकसंख्यातपरिवारसमृद्धिभिः।
पर्वस्थानेषु सर्वेषु पालितः सर्वतोदिशम् ॥३८॥

उन देवियों की संख्या परार्ध से अधिक थी वे सभी परिवार से भी समृद्ध थीं, सभी पर्व स्थानों में सभी दिशाओं में रक्षित।।38।।

दशयोजन मुन्नम्रश्चतुर्योजनविस्तृतः ॥३९॥

दस योजन ऊंचा और चार योजन तक फैला हुआ।।39।।

महाराज्ञीचक्रराजरथेन्द्रः प्रचलन्बभौ॥४०॥

ऐसा वह महाराज्ञी का चक्रराजरथेन्द्र चलते हुए सुशोभित हुआ।।40।।

तस्मिन्प्रचलिते जुष्टं श्यामया दण्डनाथया।
गेयचक्रं चचालाग्रे किरिचक्रं च पृष्ठतः॥४१॥

महाराज्ञी भगवती ललिता के चक्रराजरथेन्द्र के चलने पर श्यामला और दण्डनाथ को गेयचक्र आगे तो पीछे से किरिचक्र चले।।41।।

अन्यासामपि शक्तीनां वाहनानि परार्धशः।
नृसिंहोष्ट्रनरव्यालमृगपक्षिहयात्मना।
गजभेरुण्डशरभव्याघ्रवातमृगात्मना४२॥

अन्य शक्तियों की संख्या अमिट थी और उनके वाहनों की भी संख्या परार्ध (शंख) थी, उनके वाहन नृसिंह, ऊंट, नट, सर्प, मृग, पक्षी, अश्व, हाथी, भेरूण्ड (श्रृगाल) शरभ, व्याघ्र, वातमृग, इस तरह के ऐसे ही शक्तियों के वाहन थे।।42।।

एतादृशास्तु तिर्यश्वोऽप्यन्ये वाहनतां गताः।
ऊहुरुच्चावचाः शक्तीर्भण्डासुरवधोद्यताः॥४३॥

ऐसे पक्षी और पशुवाहन तो थे ही ऐसी वे शक्तियां ऊंची नीची सभी भण्डासुर के विनाश के लिये उद्यत थीं।।43।।

योजनामात्र विस्तारमपि तद्द्वारमण्डलम्।
वह्निप्राकारचक्रस्य न पर्याप्तं चमूपतेः॥४४॥

उस वह्नी आकार चक्र का द्वार मण्डल योजन भर विस्तार वाला था वह भी सेना की परम्परा के लिये पर्याप्त नहीं था इतनी असख्य सेना थी।।44।।

ज्वालामालिनिका नित्या द्वारस्यात्यन्तविस्तृतिम्।
विततान समस्तानां शक्तीनां निर्गमैषिणी॥४५॥

ज्वालामालिनिका नित्या ने समस्त शक्तियों के निकलने में सुविाा हो ऐसी इच्छा से मुख्य द्वार का अत्यन्त विस्तार फैला दिया।।45।।

अथ सा जगतां माता महाराज्ञी महोदया।
निर्जगामाग्निवरणद्वारात्तीव्रप्रतापिनी॥४६॥

इसके अनन्तर जगत की माता महाराज्ञी महोदया भगवती ललिता तीव्र प्रताप वालीं उस अग्नि

आवरण के श्रेष्ठ बढ़े हुए द्वार से बाहर निकलीं।।46।।

देवदुन्दुभयो नेदुः पतिताः पुष्ध्वृष्टयः।
महामुक्तातपत्रं तु दिवि दीप्तमदृश्यत॥४७॥

आकाश में देवताओं ने नगाड़े बजाये और पुष्पवृष्टि की महामोतियों का छत्र आकाश में चमकता हुआ दिखाई दिया।।47।।

निमित्तानि प्रसन्नानि सूचकानि जयश्रियः।
अभवॅल्ललितासैन्य उत्पातास्तु द्विषां बले॥४८॥

भगवती ललिता की सेना में जयश्री के सूचक प्रसन्न निमित्त होने लगे और शत्रुओं की सेना में उत्पात होने लगे।।48।।

ततः प्रववृते युद्धं सेनयोरुभयोरपि।
प्रसर्पद्विशिखस्तोमबद्धान्धतमसच्छटम्॥४९॥

प्रस्थान के अनन्तर देव सेना शक्तियों का और असुर सेना दानवों का युद्ध आरंभ हो गया उसमें अनेक बाणों के चलने चारों ओर घोर अंधेरा छा गया।।49।।

हन्यमानगजस्तोमस्रुतशोणितसिन्धुभिः।
ह्रियमाणशरश्छिन्नदैत्यश्वेतातपत्रकम्॥५०॥

बाणों से मारे गए हाथी समूह के बहुत अधिक रक्त की बूंदों को देखकर लज्जित हुए दैत्य अपने श्वेत छत्र से सिर को टेके हुए थे।।50।।

न दिशो न नभोभागो न भूमिर्न च किंचन।
दृष्टं तु केवलं दुष्टं रजोमात्रं चमूत्थितम्॥५१॥

न दिशाएं दिख रही थीं न आकाश दिखाई दे रहा था न ही पर्वत न भूमि केवल सेना की भागदौड़ से उड़ी हुई धूल का घना अंधेरा।।51।।

नृत्यत्कबन्धनिवह विधूततटपादपा।
दैत्य के शशतस्त्रस्तशैवालकलिकोज्ज्वला॥५२॥

उस समय सिरकटे कबन्ध नाचते हुए ऐसे लग रहे थे कि खून की नदी के किनारे के वृक्ष हों वहां मरे हुए दैत्यों के केश खून की नदी में शैवाल की अंकुर की तरह लग रहे थे।।52।।

श्वेतातपत्रवलयश्वेतपङ्कजभासुरा।
चक्रकृत्तकरिग्रामपादकूर्म परम्परा॥५३॥

दैत्यों के श्वेत छत्र वे खून की नदी में ऐसे लग रहे थे कि श्वेत कमल की भांति चमक रहे थे

शक्ति सेना के चक्रों से काटे गए हाथी नदी में कछुओं की परम्परा को व्यक्त कर रहे थे।।53।।

शक्तिध्वस्त महा दैत्यगजगण्डशिलोच्चया।
विलूनकाण्डैः पतितैः सफेनालीव चामरैः॥५४॥

शक्तियों द्वारा ध्वस्त किये गए महादैत्यों गले और गण्डस्थलों के गिरने से तथा शरीर के अंगों के कटकर गिरने से तथा सेनापतियों पर डुलने वाले चंवरों से ऐसा लगता था कि वह खून की नदी और उसमें वे छत्र फन हों।।54।।

तीक्ष्णासिवल्लरीजालनिबिडीकृततीरभूः।
दैत्यवीरेक्षणश्रेणिशुक्तिसंपुटभासुरा॥५५॥

तेज तलवार रूपी लताओं के जाल से उस खून की नदी में मानों पक्षियों को घोंसले बने हों जो दैत्य वीरों की मुक्ति के क्षण को प्रकाशित कर रहे थे।।55।।

दैत्यवाहन संघातनक्रमीनशता कुला।
प्रावहच्छोणितनदी सेनयोर्युध्यमानयोः॥५६॥

उस समय जो दैत्यों के वाहन टूट गये थे वे सभी उस खून की नदी में व्याकुल मगर, मछली प्रतीत हो रहे थे, ऐसी उस शक्ति और दैत्यों की युद्ध गति से खून की नदी बहने लगी।।56।।

इत्थं प्रववृते युद्धं मृत्योश्च त्रासकारकम्॥५७॥

इस प्रकार युद्ध दोनों सेनाओं का चल रहा था, जो मृत्यु का त्रास देने वाला था।।57।।

चतुर्थे युद्धदिवसे प्रातरारभ्य भीषणम्।
प्रहरद्वयपर्यन्तं सेनयोरुभयोरपि॥५८॥

वह युद्ध भी जो दोनों सेनाओं में चल रहा था वह चौथे दिन भी प्रातः काल से आरंभ कर दिन में प्रहरों तक भीषण रूप में हो गया।।58।।

तत्र श्रीललितायाश्च भण्डस्याप्यभवद्रणः।
अस्त्रप्रत्यस्त्रसंक्षोभतुमुलीकृत दिक्तटः॥५९॥

उस युद्ध भूमि में श्रीललितादेवी का और भण्डासुर का भी युद्ध शुरू हो गया उसमें अस्त्र शस्त्रों की कर्कश ध्वनियों से सभी दिशाएं गुजारित हो रहीं थीं।।59।।

धनुर्ज्याजातटंकारहुंकारैरतिभीषणः।
तूणीरवदनात्कर्षन्सन्दधानश्च धन्वनि॥६०॥

धनुष की प्रत्यंचाओं के टंकार से और हुंकार की ध्वनियों से अति भीषण युद्ध था, उसमें तरकस के मुख से खींचकर धनुष पर रखकर छोड़े गये बाण प्राणहारक थे।।60।।

विमुञ्चन्विशिखान्पाणिः सर्वदाऽदृश्यताहवे।
हस्तलाघववेगेन न प्राज्ञायत किंचन॥६१॥

वहां युद्ध स्थल में भगवती ललिता देवी के हाथों से जो बाण छोड़े जा रहे थे वे इतने हस्तलाधव से छोड़े जा रहे थे कि कब उन्हें तरकस से निकालते धनुष पर रखते और लक्ष्य पर छोड़ते कुछ भी पता नहीं लग पा रहा था ।।61।।

श्री हयग्रीव जी ने अगस्त्य जी को बताया- कि

महाराज्ञी कराम्भोजव्यापारः शरमोक्षणे।
सन्धाने त्वेकधा तस्या दशधा चापनिर्गमे॥६२॥

उस यज्ञ में महाराज्ञी भगवती अपने करकमलों से धनुष में एक बाण रखती थीं वह बाण धनुष दस हो जाता था धनुष से छूटने पर।।62।।

शतधा गगने दैत्यसैन्यप्राप्तौ सहस्रधा।
दैत्याङ्गसङ्गे संप्राप्ताः कोटिसंख्याः शिलीमुखाः॥६३॥

जब वह दशगुना बाण गगन में आता था तो सौ गुना हो जाता था फिर जब दैत्य सेना के बीच आता था हजार गुना फिर दैत्य के अंग से जुड़ता तब वो तिगुना हो जाता था।।63।।

शरान्धकारं सृजती भिन्दन्ती रोदसी शरैः।
मर्माभिनत्प्रचण्डस्य महाराज्ञी महेषुभिः॥६४॥

वे महाराज्ञी अपने महान बाणों से बाणों का अंधकार बनाती बाणों से आकार और भूमि का भेदन कर रही थीं तथा प्रचण्ड दैत्यों के मर्मों को भेद रही थीं।।64।।

इति श्रीब्रह्माण्डपुराणे उत्तरखण्डे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितोपाख्याने श्रीललिताभण्डासुरयुद्धं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥२५॥

॥श्रीमन्महागणाधिपतये नमः।।

श्रीमाताललिताम्बायै नमः श्रीपादुकां पूजयामि नमः ॥
ॐ वन्दे गुरुपदद्वन्द्वंअवाङ्मनसगोचरम् ॥
रक्तशुक्ल प्रभामिश्रमतर्क्यं त्रैपुरं महः ॥
ॐ आराध्यदेवं भक्तानां कलिदोषविनाशकम् ॥
वन्दे श्रीगिरिजानन्दं शारदाश्रीमठाधिपम्।।
ॐ अखण्डं यस्यज्ञानञ्च भक्तिर्यस्यानपायिनी।।
शारदाज्योतिरीशस्य दर्शनं (पूजनं, वन्दनं) शुभमस्तुनः।।

षड्विंशोऽध्यायः॥२६॥ 104 श्लोकात्मकः

श्री रश्मिमालामंत्र प्रयोग - ह्रीं-असंख्यातमहः
पुंजरीकृत विग्रहाम् रश्मिमालामहं वंदे महात्रिपुरसुंदरीम्।।

[श्रीललिताभण्डासुरदिव्यास्त्रप्रयोगः॥]

ततः कोपारुणं नेत्रं वहन्भण्डः स दानवः।
ववर्ष शरजालेन महता ललितेश्वरीम्॥१॥

इसके अनन्तर क्रोध से लाल नेत्रों को धारण किया हुआ वह भण्ड दानव ललितेश्वरी के ऊपर बड़े शरजाल से शस्त्र वर्षा करने लगा।।1।।

अन्धतामिस्त्रकं नाम महास्त्रं प्रमुमोच सः।
महातरणिबाणेन तं नुनोद महेश्वरी॥२॥

उस भण्डासुर दानव ने अन्धतामिस्त्रक नाम के महान् अस्त्र का प्रयोग किया, तब उन महेश्वरी ने महातरणि बाण से नष्ट कर दिया।।2।।

पाषण्डास्त्रं महावीरो भण्डः प्रमुमुचे रणे ।
गायत्र्यत्रंतस्य नुत्यैसस्मारजगदम्बिका॥३॥

फिर उस महावीर भण्ड ने पाखण्डास्त्र उस रण में छोड़ा तब उसके प्रतीकार के लिये भगवती ने गायत्र्यस्त्र छोड़ दिया।।3।।

अन्धास्त्रमसृजद्भण्डः शक्तिदृष्टिविनाशकम्।
चक्षुष्मती महास्त्रेण शमयामास तत्प्रसूः॥४॥

भण्ड ने शक्तियों की दृष्टि नष्ट करने के लिये अन्धास्त्र छोड़ा इसके प्रतीकार में भगवती ने चक्षुष्मती महास्त्र से उसकी उत्पत्ति को नष्ट कर दिया।।4।।

शक्तिनाशाभिधं भण्डो मुमोचास्त्रं महारणे ।
विश्वावसोरथास्त्रेण तस्य दर्पमपाकरोत्॥५॥

भण्ड ने फिर शक्तिनाश नामक अस्त्र उस महारण में छोड़ा उसके दर्प को भगवती ने विश्वाबसु अस्त्र से दूर कर दिया।।5।।

अन्तकास्त्रं ससर्जोच्चैः संक्रुद्धो भण्डदानवः।
महामृत्युञ्जयास्त्रेण नाशयामास तद्बलम्॥६॥

उस भण्ड दानव ने क्रोध में भकर अत्यन्त उच्च स्तर का 'अन्तकास्त्र' का प्रयोग कर दिया तब भगवती ने महामृत्युंजयास्त्र से उसकी शक्ति को नष्ट कर दिया।।6।।

सर्वास्त्रस्मृतिनाशाख्यमस्त्रं भण्डो व्यमुञ्चत ।
धारणास्त्रेण चक्रेशी तद्भयं समनाशयत्॥७॥

भण्डासुर ने 'सर्वास्त्रस्मृतिनाश' नामक अस्त्र का प्रयोग किया उसका प्रतीकार धारणास्त्र से करके उन चक्रेशी ने उसके भय का नाश कर दिया।।7।।

भयास्त्रमसृजद्भण्डो शक्तीनां भयदायकम्।
अभयंकरमैन्द्रास्त्रं मुमुचे जगदम्बिका ॥८॥

फिर भण्ड ने शक्तियों को भय देने वाले 'भयास्त्र' का प्रयोग किया तब जगदम्बिका ने अभयंकर ऐन्द्रास्त्र नाम के अस्त्र को छोड़कर उसके प्रभाव को समाप्त कर दिया।।8।।

महारोगास्त्रमसृजच्छक्तिसेनासु दानवः।
राजयक्ष्मादयो रोगास्ततोऽभूवन्सहस्रशः ॥९॥

उस दानव ने शक्ति सेनाओं में 'महारोगास्त्र' निर्मित किया उससे वहां राजयक्ष्मा आदि (तपेदिक टी.बी. आदि) हजारों रोग उत्पन्न हो गए।।9।।

तन्निवारणसिद्ध्यर्थं ललिता परमेश्वरी ।
नामत्रयमहामन्त्रं महास्त्रं संमुमोचह ॥१०॥

उस महारोगास्त्र के निवारण सिद्ध करने के लिये श्री ललिता परमेश्वरी ने नामत्रय महामंत्र नामक महास्त्र को छोड़ा।।10।।

अच्युतश्चाप्यनन्तश्च गोविन्दस्तच्छरोत्थिताः ।
हुङ्कारमात्र निर्दग्धरोगास्तामनमन्मुदा ॥११॥

(अच्युतानन्तगोविन्दनामस्मरणभेषजामत्।
नश्यन्ति सकलारोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम्।। श्री भगवान धन्वन्तरि)

उस भगवती द्वारा छोड़े गए नामास्त्र से अच्युत अनन्त और गोविन्द नाम शस्त्र उठे और उन तीनों ने हुंकार मात्र से समस्त रोगों को समूल नष्ट करके आनन्द से भगवती को प्रणाम किया।।11।।

नत्वा च तां महेशानीं तद्भक्तव्याधिमर्दनम्।
विधातुं त्रिषु लोकेषु नियुक्ताः स्वं पदं ययुः ॥१२

उन तीनों महामंत्रों ने महेशानी भगवती को प्रणाम किया तब भगवती ने उन तीनों को त्रिलोकी के समस्त प्राणियों की व्याधियों का समूल विनाश का निर्देश किया वे अपने इस पद में नियुक्त होकर अपने लोक में चले गए।।12।।

आयुर्नाशनमस्त्रं तु मुक्तवान्भण्डदानवः ।
कालसंकर्षिणीरूपमस्त्रं राज्ञी व्यमुञ्चत ॥ १३ ॥

भण्ड दानव ने 'आयुर्नाशन' अस्त्र का प्रयोग किया उसकी काट के लिये भगवती ने 'कालसंकर्षिणी रूप अस्त्र' का प्रयोग किया।।13।।

महासुरास्त्रमुद्दामं व्यसृजद्भण्डदानवः ।
ततः सहस्रशो जाता महाकाया महासुराः ॥१४

उस भण्ड दानव ने उद्दाम 'महासुरास्त्र' नामक शस्त्र छोड़ा जिससे हजारों महाकाय महासुर उत्पन्न होकर शक्ति सेना को पीड़ित करने लगे वे महासुर कौन थे उनके नाम इस प्रकार हैं।।14।।

मधुश्च कैटभश्चैव महिषासुर एव च ।
धूम्रलोचनदैत्यश्च चण्डमुण्डादयोऽसुराः ॥ १५ ॥

मधु, कैटभ, महिषासुर, धूम्रलोचन दैत्य और चण्डमुण्डादि असुरगण।।15।।

चिक्षुरश्चामरश्चैव रक्तबीजासुरस्तथा ।
सुम्भश्चैव निसुम्भश्च कालकेया महासुराः ।
धूम्राभिधानाश्च परे तस्मादनात्समुत्थिताः ॥१६

चिक्षुर चामर तथा रक्तबीजासुर, शुम्भ, निशुम्भ, महासुर, कालकेय और धूम्रासुर जैसे असुर से उस अस्त्र से निकल पड़े।।16।।

ते सर्वे दानवश्रेष्ठाः कठोरैः शस्त्रमण्डलैः ।
शक्तिसेनां मर्दयन्तो नर्दन्तश्च भयङ्करम्॥ १७॥

वे सभी महासुरास्त्र से निकले हुए दानव कठोर शस्त्र समूहों से शक्ति सेना का मर्दन करते हुए भयंकर नाद करते हुए नाच कूदते घूम रहे थे।।17।।

हाहेति क्रन्दमानाश्च शक्तयो दैत्यमर्दिताः ।
ललितां शरणं प्राप्ताः पाहि पाहीति सत्वरम् ॥१८॥

दैत्यों से पीड़ित सभी शक्तियां हाहाकार करती हुई क्रन्दन करती हुई बचाओं बचाओ रक्षा करो रक्षा करो चिल्लाती हुई भगवती ललिता की शरण में आईं।।18।।

अथ देवी भृशं क्रुद्धा रोषागृहसमातनोन्॥१९॥

उन शक्तियों की हालत देखकर उने हाहा करने से वे देवी अत्यधिक क्रोध में भर गयीं और रोष से अट्टहास करना शुरू कर दिया।।19।।

ततः समुत्थिता काचिद्दुर्गा नाम यशस्विनी ।
समस्तदेवतेजोभिर्निर्मिता विश्वरूपिणी ॥ २० ॥

भगवती के क्रोध से अट्टहास करने पर यशस्विनी कोई देवी दुर्गा नाम वाली उठ खड़ी हो गईं जो समस्त देवों के तेज से विश्वरूप में प्रगट हो गईं।।20।।

शूलं च शूलिना दत्तं चक्रं चक्रिसमर्पितम्।
शङ्खं वरुणदत्तं च शक्तिं दत्तां हविर्भुजा॥२१॥

शूलधारीशंकर ने शूल दिया चक्रधारी विष्णु ने चक्र दिया वरूण ने शंख दिया तथा अग्नि ने शक्ति नामक अस्त्र दिया।।21।।

चापमक्षयतूणीरं मरुद्दत्तं महाध्वनि।
वज्रिदत्तं च कुलिशं घण्टामैरावतार्पिताम्॥२२॥

भगवती दुर्गा को धनुष और अक्षय तरकस मरुद देव ने अर्पित किया इन्द्र ने व्रज और ऐरावत का घंटा दिया।।22।।

कालदत्तं महादण्डं पाशं पाशधरार्पितम् ।
ब्रह्मदत्तां कुण्डिकां च चषकं धनदार्पितम्॥२३॥

यमराज ने भगवती दुर्गा को कालदण्ड नामक महादण्ड दिया और वरूण ने पाशास्त्र दिया, कुबेर ने चषक (मदिरा प्याला) दिया ब्रह्माजी ने कुण्डिका दिया।।23।।

मृत्युदत्तौ खड्गखेटौ हारं जलधिनार्पितम् ।
विश्वकर्मप्रदिष्टानि भूषणानि च बिभ्रती ॥ २४ ॥

मृत्यु देवता ने खड्ग और खेट दिये, समुद्र ने हार अर्पित किया विश्वकर्मा के द्वारा दिये गये आभूषणों को भगवती ने धारण किया।।24।।

अङ्गैः सहस्त्रकिरणश्रेणीभासुररश्मिभिः ।

आयुधानि समस्तानि दीपयन्ती महोदया ॥२५॥

सूर्य की किरणों से सभी अंग तथा आयुध चमक रहे थे।।25।।

अन्यदत्तैरथान्यैश्च शोभमाना परिच्छदैः ।

सिहवाहनमारुह्य युद्धं नारायणी व्यधात् ॥ २६ ॥

अन्य देवताओं द्वारा दिये गए अन्य वस्त्रों से सुशोभित होती हुई वे नारायणी भगवती सिंहवाहन पर आरूढ़ होकर युद्ध करने लगीं।।26।।

तया ते महिषप्रख्या दानवा विनिपातिताः ।

चण्डिकासप्तशत्यां तु यथा कर्म कृतं तया ॥२७॥

उन भगवती के द्वारा वे महिषासुर आदि दानव गिरा दिये गए श्रीदुर्गासप्तशतीमें चण्डिका ने जो भी कार्य सम्पन्न किये थे वे सभी इस रण में किये।।27।।

तथैव समरं चक्रे महिषादिमदापहम् ।

तत्कृत्वा दुष्करं कर्म ललितां प्रणनाम सा ॥२८॥

उन भगवती नारायणी देवी ने उसी प्रकार का युद्ध और महिषासुर आदि सभी दानवों को जो भण्ड के अस्त्र से प्रकट हुए थे उन सभी के मद को नष्ट कर दिया फिर उस कठिन तम कार्य को करने के बाद उन्होंने भगवती ललिता देवी को प्रणाम किया।।28।।

मूकास्त्रमसृजद्दुष्टः शक्तिसेनासु दानवः ।

महावाग्वादिनी नाम ससर्जास्त्रं जगत्प्रसूः ॥२९॥

फिर उस दुष्ट भण्ड दानव ने शक्ति सेनाओं के ऊपर 'मूकास्त्र' प्रकटकर चलाया तो भगवती ने 'महावाग्वादिनी' नामक अस्त्र की उत्पत्ति की तथा उन जगत्माता ने उसका प्रयोग कर दिया।।29।।

विद्यारूपस्य वेदस्य तस्करानसुराधमान् ।

ससर्ज तत्र समरे दुर्मदो भण्डदानवः ॥ ३० ॥

फिर से उस दुर्मद दानव भण्ड ने विद्यारूपी वेद के तस्कर अधम असुरों को प्रकट किया।।30।।

दक्षहस्ताङ्गुष्ठनखान्महाराज्ञ्याः समुत्थितः ।

महामत्स्याकृतिः श्रीमानादिनारायणो विभुः ।

तेन ते वेदहर्तारः सोमकाद्या विनाशिताः ॥३१॥

तब भगवती के दाहिने हाथ के अंगुष्ठनख से श्रीमान आदिनारायण विभु महामत्स्य की आकृति में प्रकट हो गये और उन्होंने वेद का हरण करने वाले सोमकादि असुरों को विनष्ट कर दिया।।31।।

अर्णवास्त्रं महावीरो भण्डदैत्यो रणेऽसृजत् ।
तत्रोद्दामपयःपूरे शक्तिसैन्यैरमज्जत ।। ३२ ।।

उस महावीर भण्ड दैत्य ने उस रण स्थल में अर्णवास्त्र का सृजन किया उस अस्त्र ने शक्ति सेना को मायिक पानी की बाढ़ में डुबाना शुरू कर दिया।।32।।

अथ श्रीललितादक्षहस्ततर्जनिकानखात् ।
आदिकूर्मः समुत्पन्नो योजनायुतविस्तरः ॥ ३३॥

इसके अनन्तर श्रीललितादेवी ने अपने दांए हाथ की तर्जनी अंगुली के नख से आदिकूर्म का अवतरण किया जो बहुत विस्तृत योजन में फैला हुआ था।।33।।

धृतास्तेन महाभोगकर्परेण प्रथीयसा ।
शक्तयो हर्षमापन्नाः सागरास्त्रभयं जहुः ॥ ३४ ॥

उस प्रकट हुए आदिकूर्म ने अत्यन्त विशाल महाभोग कर्पर (कछुआ की पीठ) उस अर्णवास्त्र को धारण कर लिया जिससे समस्त शक्तियां सागरास्त्र के भय से मुक्त हो गईं।।34।।

हिरण्याक्षमहास्त्रं तु विजहौ भण्डदानवः ।
तस्मात्सहस्रशो जाता हिरण्याक्षा गदायुधाः ३५

उस भण्ड ने 'हिरण्याक्ष' नामक अस्त्र का प्रयोग किया उससे युद्ध स्थल में हजारों हिरण्याक्ष गदा लेकर प्रहार करने के लिये दौड़े।।35।।

तैर्हन्यमाने शक्तीनां सैन्ये संत्रासविह्वले ।
इतस्ततः प्रचलिते शिथिले रणकर्मणि ॥ ३६ ॥

उन हजारों हिरण्याक्षों की गदाओं के प्रहारों से विह्वल वह शक्ति सेना संत्रास से विह्वल होकर रणकार्यों से शिथिल हो गईं और वे इधर उधर बिखर गईं।।36।।

अथ श्रीललितादक्षहस्तमध्याङ्गुलीनखात् ।
महावराहः समभूच्छ्वेतः कैलाससन्निभः ॥ ३७॥

तब श्रीललिता महादेवी ने अपने दाहिने हाथ की मध्यांगुलि नख से श्वेतवर्ण कैलास पर्वत के समान महावराह को प्रकट किया।।37।।

तेन वज्रसमानेन पोत्रेणाभिविचारिताः ।
कोटिशस्ते हिरण्याक्षा मर्यमानाः क्षयं गताः ॥ ३८॥

उन प्रकट हुए महावराहों ने वज्र के सुदृढ़् दाढ़ों (खीस) से उन सभी को हिरण्याक्षों को फाड़ डाला जिससे सभी नष्ट हो गए ।।38।।

अथ भण्डस्त्वतिक्रोधाद्भ्रुकुटीं स ततान ह।

तस्या भ्रुकुटितो जाता हिरण्याः कोटिसंख्यका: ॥३९॥

अब भण्डासुर अत्यन्त क्रोध में भकर भोंहें टेढ़ी कर लिया तब उसकी टेढ़ी भौहों से करोड़ों हिरण्य (हिरण्कशिपु) प्रकट हो गए ।।39।।

ज्वलदादित्यवद्दीप्ता दीप्तप्रहरणाश्च ते ।

अमर्दयन्शक्तिसैन्यं प्रह्लादं चाप्यपीडयन् ॥४०॥

जलते हुए सूर्य के समान ज्वलित आयुधों वाले वे शक्तिसैन्य को पीड़ित करने लगे साथ ही प्रहलाद को भी पीड़ित किया।।40।।

यः प्रह्लादोऽस्ति शक्तीनां परमानन्दलक्षणः ।

स एव बालको भूत्वा हिरण्यपरिपीडितः ।

त्रिपुरां शरणं प्राप्तस्तेन राज्ञी कृपामगात् ॥४१ ॥

शक्तियों का जो परमानन्द है वहीं प्रहलाद है वह भी बालक में वहां था उस हिरण्काशिपु रूप मायिक राक्षसों ने उसे भी पीड़ित किया अर्थात् जिसने मायिक हिरण्यकशिपु थे उतने ही प्रत्येक शक्तियों की परमानंद वृत्ति प्रहलाद रूपी बालक जैसी थी उसे भी उस दानव ने पीड़ित किया तब वह प्रहलाद बालक भगवती त्रिपुरा की शरण में गया तब उस पर भी राज्ञी महादेवी ललिताम्बा ने कृपा की।।41।।

अथ शक्त्यानन्दरूपं प्रह्लादं परिरक्षितुम् ।

दक्षहस्तानामिकाग्रं धुनोति स्म जगत्प्रसूः ॥४२॥

शक्तियों के आनन्द रूप प्रहलाद की रक्षा करने के लिये भगवती ने दाहिने हाथ की अनामिका अंगुलि के नखाग्र कंपाया जिससे।।42।।

तस्माद्भुतजटाजालः प्रज्वलल्लोचनत्रयः ।

सिंहास्यः पुरुषाकारः कण्ठस्याधो जनार्दनः ॥४३ ॥

भगवती के दांये हाथ की अनामिका को अग्रभाग को कंपाने से एक अद्‌भुत जटा जालों वाला जलते हुए से तीन नेत्रों वाला असुरों का मर्दन करने पुरुषाकार प्रकट हुआ जिसका मुख सिंह का था और कण्ठ के नीचे पुरुषाकार था।।।43।।

नखायुधः कालरुद्ररूपी घोराट्टहासवान् ।

सहस्रसंख्यदोर्दण्डो ललिताज्ञानुपालकः ॥४४॥

नख ही उसके आयुध थे वह कालरूप था तथा घोर अट्टहास कर रहा था, हजारों भुजावाले

सभी ललिता की आज्ञा का पालन करने वाले थे ।।44।।

हिरण्यकशिपून्सर्वान्भण्डभ्रुकुदिसंभवान् ।
क्षणाद्विदारयामास नखैः कुलिशकर्कशैः ॥४५॥

भण्डासुर की भौंहों से उत्पन्न उन सभी हिरण्यकशिपु दानवों को अपने व्रज जैसे नखों से एक क्षण में उन सभी को विदीर्ण कर दिया ।।45।।

बलीन्द्रास्त्रं महाघोरं सर्वदैवतनाशनम् ।
अमुध्वल्ललितादेवीं प्रति भण्डमहासुरः ॥४६ ॥

फिर उस भण्ड महासुर ने बलीन्द्रास्त्र नामक अस्त्र समस्त देवताओं का नाश करने वाला था उसे भगवती ललिता देवी के प्रति छोड़ा।।46।।

तदस्त्रदर्पनाशाय वामनाः शतशोऽभवन् ।
क्षणे क्षणे वर्धमानाः पाशहस्ता महाबलाः ॥४७॥

तब उस बलीन्द्रास्त्र दर्प को नष्ट करने के लिये महाबली वामन पाश हाथ में लिये हुए क्षण क्षण में बढ़ने वाले हो गए।।47।।

बलीन्द्रास्त्रसमुद्धूतान्बध्नन्तः पाशमण्डलैः ।
दक्षहस्तकनिष्ठाग्राज्जाताः कामेशयोषितः ।
महाकाया महोत्साहास्तदस्त्रं समनाशयन् ॥४८॥

भगवती ललिता के दांए हाथ की कनिष्ठांगुलि के नखाग्र से कामेश स्त्रियों ने प्रकट होकर पाश समूहों से उन बलीद्राक्षों से उत्पन्न असुरों को बांध लिया वे कामेश योषिताएं महाकाया वाली थीं और महान उत्साह से भरपूर थीं इस भण्ड का बह बलीन्द्रास्त्र भी नष्ट हो गया।।48।।

हैहयात्रं समसृजद्भण्डदैत्यो रणाजिरे।
तस्मात्सहस्त्रशो जाताः सहस्त्रार्जुनकोटयः ॥४९॥

फिर उस युद्धस्थल में भण्ड दैत्य ने हैहयास्त्र का प्रयोग किया जिससे हजारों सहस्त्रार्जुन जैसे सैनिक प्रकट हो गये।।49।।

अथ श्रीत्रिपुरावामहस्ताङ्गुष्ठनखोत्थितः।
प्रज्वलन्भार्गवो रामः सक्रोधः सिंहनादवान् ॥५०॥

इसके अनन्तर श्रीत्रिपुरा भगवती के बांए हाथ के अंगूठे के नख से उठे हुए तेज से उद्दीप्त भार्गव राम (परशुराम) क्रोधपूर्ण सिंहनाद करते हुए प्रकट हो गए।।50।।

धारयाऽमर्दयन्नेतान्कुठारास्यः कठोरया ।
सहस्त्रार्जुनसंघातान्क्षणादेव व्यनाशयत् ॥५१ ॥

उन परशुरामों ने अपने फरसे की कठोर पैनी धार से मर्दित करते हुए उन सहस्त्रों अर्जुन समूहों को एक क्षण में ही नष्ट कर दिया।।51।।

अथ क्रुद्धो भण्डदैत्यः क्रोधहुंकारमातनोत् ॥५२ ॥

वह भण्ड ने इनके समाप्त हो जाने पर हुंकार किया।।52।।

तस्मादुंकारतो जातश्चन्द्रहासकृपाणवान्।
सहस्त्राक्षोहिणीरक्षः सेनया परिवारितः ॥५३ ॥

उस भण्ड के हुंकार से चन्द्रहास तलवार हाथ में लिया हुआ हजार अक्षौहिणीसेना से घिरा हुआ।।53।।

दशद्वयभुजः क्रूरो रावणाख्यो दशाननः ।
कनिष्ठं कुम्भकर्णं च मेघनादं च नन्दनम्।
गृहीत्वा शक्तिसैन्यं तदतिदूरममर्दयत् ॥ ५४ ॥

रावण नामक राक्षसराज जिसके दस सिर थे और बीस हाथ थे उसका छोटा भाई कुम्भकर्ण तथा पुत्र मेघनाद ये सभी उसे आनन्द देने वाले थे। इन सभी ने शक्ति सैन्य को घेरकर दूर दूर तक पीड़ित किया।।54।।

अथ श्रीत्रिपुरावामहस्ततर्जनिकानखात्।
कोदण्डरामः समभूलक्ष्मणेन समन्वितः ॥५५ ॥

तब भगवती त्रिपुरा के बांए हाथ की तर्जनी अंगुली के नख से को दण्डराम लक्ष्मण के सहित प्रकट हुए।।55।।

जटामुकुटवान्वल्ली बद्धतूणीरपृष्ठभूः ।
नीलोत्पलदलश्यामो धनुर्विस्फारयन्मुहुः ॥५६ ॥

उन कोदण्डराम के जटाओं की मुकुट थे उन्होंने अपनी पींठपर तरकस को बांध रखा था वे नीलकमल की आभा वाले थे वे अपने धनुष की टंकार बार बार कर रहे थे।।56।।

नाशयामास दिव्यास्त्रैः क्षणाद्राक्षससैनिकम्।
मर्दयामास पौलस्त्यं कुम्भकर्ण च सोदरम् ॥५७॥

उन को दण्डराम ने दिव्यास्त्रों से क्षण भर में समस्त राक्षस सैनिकों को नष्ट कर दिया तथा उस पुलस्त्य के पौत्र रावण को तथा उसके छोटे कुंभकर्ण को छलनी कर दिया।।57।।

लक्ष्मणो मेघनादं च महावीरमनाशयत्॥५८॥

और लक्ष्मण ने रावण पुत्र मेघनाद को नष्ट कर दिया।।58।।

द्विविदास्त्रं महाभीममसृजद्भण्डदानवः।
तस्मादनेकशो जाताः कपयः पिङ्गलोचनाः॥५९॥

फिर उस भण्ड ने द्विविदास्त्र नाम का अस्त्र उत्पन्न किया जिससे अनेकों पीले नेत्रों वाले वानर उत्पन्न हो गये।।59।।

क्रोधेनात्यन्तताम्रास्याः प्रत्येकं हनुमत्समाः।
व्यनाशयन्शक्तिसैन्यं क्रूरक्रेकारकारिणः॥६०॥

वे उत्पन्न हुए बंदर जिनका मुंह लाल था जो हनुमत के समान थे और बली थे वे क्रूर केंकार की आवाजें कर रहे थे और शक्ति सेना को पीड़ित कर रहे थे।।60।।

अथ श्रीत्रिपुरावामहस्तमध्याङ्गुलीनखात्।
आविर्भवद्धलधरः क्रोधमद्यारुणेक्षणः॥६१॥

भगवती त्रिपुरा के बांए हाथ की मध्य अंगुली के नख से हलधर का प्रारूप हुआ उनके नेत्र क्रोध से लाल वर्ण के हो रहे थे।।61।।

नीलाम्बरपिनद्धाङ्गः कैलासाचल निर्मलः।
द्विविदास्त्र समुद्भूतान्कपीन्सर्वान्व्यनाशयत्॥६२॥

वह पुरुष नीलवस्त्र धारण किये हुए था कैलास पर्वत के समान निर्मल था उसने अपने हल मूसल शस्त्रों से द्विविदास्त्र से उत्पन्न समस्त असुर प्राय वानरों को नष्ट कर दिया।।62।।

राजासुरं नाम महत्ससर्जास्त्रं स दानवः।
तस्मादत्रात्समुद्भूता बहवो नृपदानवाः॥६३॥

फिर उस दानव ने राजास्त्र नामक बड़ा अस्त्र निर्मित किया उस अस्त्र से अनेकों नृप जो दानव थे प्रकट हुए।।63।।

शिशुपालो दन्तवक्त्रः साल्वः काशीपतिस्तथा।
पौण्ड्रको वासुदेवश्च तथा हंसकडिम्भकौ॥६४॥

शिशुपाल (बैकुण्ठ धाम में सनकादिकों को भगवद् दर्शन से रोक देने पर द्वारपाल जयविजय को तीन जन्मों तक आसुर होने का शाप मिला तो सत्युग में हिरण्याक्ष हिरण्यकाशिपु रूप में उत्पन्न हुए त्रेता में रावण कुंभकर्ण रूप में द्वापर युग में शिशुपाल या श्री कृष्ण का मौसेरा भाई था दंतवस्त्र रूप में हुए) दन्तवक्त्र साल्व, काशीपति, पौण्ड्रक वासुदेव, रुक्मी और हंसका और डिम्भका।।64।।

शम्बरश्च प्रलम्बश्च तथा बाणासुरोऽपि च ।
कंसश्चाणूरमल्लश्च मुष्टिकोत्पलशेखरौ ॥ ६५ ॥

शम्बरासुर, प्रलम्बासुर, बाणासुर, कंस, मत्स्य चाणूर और मुष्टिक उत्पल शेखर।।65।।

अरिष्टो घेनुकः केशी कालीयो यमलार्जुनौ।
पूतना शकटश्चैव तृणावर्तादयोऽसुराः॥६६॥

अरिष्टासुर, धेनुकासुर, केशी, कालियानाग, यमलार्जुन, पूतना, शकटासुर, तृणावर्तादि असुर।।66।।

अनेकैः सह सेनाभिरुत्थिताः शस्त्रपाणयः ।
तान्विनाशयितुं सर्वान्वासुदेवः सनातनः॥ ६७ ॥

उन असुर जो राजाओं के रूप में उत्पन्न हो गए थे उन सभी को सेनाओं के साथ युद्ध में उन सभी का सेना सहित विनाश कर दिया उन सनातन वासुदेव श्रीकृष्ण ने।।67।।

श्रीदेवीवामहस्ताब्जानामिकानखसंभवः ।
चतुर्व्यहं समातेने चत्वारस्ते ततोऽभवन् ॥ ६८ ॥

श्रीदेवी के वामहस्त की अनामिका अंगुली के नख से प्रकट चतुर्व्यूह के समान वे चारव्यूह रूप प्रकट हुए।।68।।

वासुदेवो द्वितीयस्तु सङ्कर्षण इति स्मृतः ।
प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च ते सर्वे प्रोद्यदायुधाः ॥ ६९ ॥

वे चार व्यूह परिपूर्णावतार भगवान श्रीकृष्ण के जिनमें प्रथम व्यूह भगवान वासुदेव, द्वितीय व्यूह संकर्षण, बलराम जी, तीसनेव्यूह भगवान कृष्ण और रुक्मिणी पुत्र कामदेव के अवतार प्रद्युम्न और चौथे व्यूह बाणासुर की कन्या उषा के पति अनिरुद्ध ये सभी अस्त्र शस्त्र लेकर प्रकट हुए।।69।।

तानशेषान्दुराचारान्भूमेर्भारप्रवर्तकान् ।
नाशयामासुरुर्वीशवेषच्छन्नान्महासुरान् ॥७० ॥

भूमि के भार पीड़ित करने वाले उन सभी दुराचारी असुर जो राजाओं के भूमिपति राजा रूप में स्थित होकर अत्याचार कर रहे थे उन सभी प्रच्छन्न महासुरों को समूल नष्ट कर दिया।।70।।

अथ तेषु प्रणष्टेषु संक्रुद्धो भण्डदानवः ।
धर्मविप्लावकं घोरं कल्यस्त्रं सममुञ्चत ॥७१ ॥

द्वापर युग में उन सभी राजारूप असुरों के नाश के बाद भण्ड ने धर्म को दूषित करने वाले घोर कल्यस्त्र को छोड़ा।।71।।

ततः कल्यस्त्रतो जाता आन्ध्राः पुण्ड्राश्च भूमिपाः ।
किराताः शबरा हूणा यवनाः पापवृत्तयः ॥७२॥

उस कल्यस्त्र से आन्ध्र, पुण्ड्र, किरात, शबर, हूण, यवन आदि ये सभी पाप करने की स्वाभाविक प्रवृत्ति के भूमिप थे।।72।।

वेदविप्लावका धर्मद्रोहिणः प्राणिहिंसकाः ।
वर्णाश्रमेषु सांकर्यकारिणो मलिनाङ्गकाः ।
त्रिपुराशक्ति सैन्यानि भूयो भूयो व्यमर्दयन् ॥७३॥

ये सभी कल्यस्त्र से उत्पन्न हुए असुर प्रायः स्थान और वहां के निवासी वेद की मर्यादाओं का विखण्डन करने वाले धर्मद्रोही, प्राणियों की हिंसा करने वाले वर्णाश्रम व्यवस्थाओं में सांकर्य करने वाले मैले कुचैले अंगों वाले शक्ति सेना को बार बार पीड़ित करने लगे।।73।।

अथ श्रीललितावामहस्तपद्मस्य भास्वतः ।
कनिष्ठिकानखोद्भूतः कल्किर्नाम जनार्दनः ।
अश्वारूढः प्रदीप्तश्रीरट्टहासं चकार ह ॥ ७४ ॥

इसके अनन्तर भगवती ललिताम्बा के ज्योतिर्मय हस्त कमल बांए की कनिष्ठिका अंगुली के नख से उद्भूत जनार्दन कल्कि नाम वाले प्रकट हुए। वे अश्व में सवार थे तेजस्वी थे उन्होंने अट्टहास किया।।74।।

तस्यैव ध्वनिना सर्वे वज्रनिष्पेषबन्धुना ।
किराता मूर्च्छिता नेशुः शक्तयश्चापि हर्षिताः ॥७5॥

उन कल्कि की अट्टहास ध्वनि से सभी जैसे वज्र से पीस दिया गया हो ऐसे वे सभी किरातादि गण म्लेच्छ समूह मूर्छित हो गये और वे सभी शक्तियां सेना सहित हर्षित हुईं।।75।।

दशावतारनाथास्ते कृत्वेत्थं कर्म दुष्करम् ।
ललिताम्बां नमस्कृत्य बद्धाञ्जलिपुटाः स्थिताः ॥७६॥

उन दशावतारों के स्वामियों ने इस प्रकार दुष्कर कर्म कोकिया इससे प्रसन्न भगवती को प्रणाम करके हाथ जोड़कर स्थित हुए।।76।।

प्रतिकल्पं धर्मरक्षां कर्तुं मत्स्यादिजन्मभिः ।
ललिताम्बानियुक्तास्ते वैकुण्ठाय प्रतस्थिरे॥७७॥

प्रत्येक कल्प में धर्म की रक्षा करने के मत्स्यादि अवतारों के द्वारा भगवती ललिताम्बा के द्वारा नियुक्त वे सभी बैकुण्ठधाम की ओर चले गए।।77।। (कराङ्गुलि नखोत्पन्ननारायणदशाकृत्यै

नमः श्री पादुकां पूजयामि नमः)

इत्थं समस्तेष्वस्त्रेषु नाशितेषु दुराशयः ।
महामोहास्त्रम सृजच्छक्तयस्तेन मूर्च्छिताः ॥७८॥

इस प्रकार समस्त अस्त्रों के समाप्त हो जाने पर उस दुराशय भण्ड ने महामोहास्त्र का सृजन किया और उसे छोड़ा उसके प्रभाव से शक्तियां मूर्च्दित हो गईं।।78।।

शाम्भवास्त्रं विसृज्याम्बा महामोहास्त्रमक्षिणोत् ॥७९॥

तब भगवती ने उस महामोहास्त्र को समाप्त करने के लिये शाम्भवास्त्र को छोड़ा उसने महामोहास्त्र को समूल नष्ट कर दिया।।79।।

अस्त्रप्रत्यस्त्रधाराभिरित्थं जाते महाहवे ।
अस्तशैलं गभस्तीशो गन्तुमारभतारुणः॥८० ॥

उस महायुद्ध में इस प्रकार अस्त्र प्रत्यस्त्रों की धाराओं से सूर्य अस्ताचलगामी होने लगे उनमें अरूणिमा छाने लगी।।80।।

अथभण्डासुरवधः ।

अथ नारायणास्त्रेण सा देवी ललिताम्बिका ।
सर्वास्त्वक्षोहिणीस्तस्य भस्मसाकरोद्रणे ॥८१॥

इसके अनन्तर उन देवी ललिताम्बा ने 'नारायणास्त्र' का उपयोग करके भण्ड की सम्पूर्ण अक्षौहिणी सेना को भस्म कर दिया।।81।।

अथ पाशुपतास्त्रेण दीप्तकालानलत्विषा ।
चत्वारिंशच्चमूनाथान्महाराज्ञी व्यमर्दयत् ॥८२ ॥

इसके अनन्तर उन महाराज्ञी भगवती ने दीप्तिकालानल की लपटें धारण करने वाले पाशुपतास्त्र से भण्ड के उन सभी चालीस सेनापतियों को भस्म कर दिया।।82।।

अथैकशेषं तं दुष्टं निहताशेषबान्धवम्।
क्रोधेन प्रज्वलन्तं च जगद्विप्लवकारिणम् ॥८३ ॥

इसके बाद जिसके समस्त बंधु बांधव मार दिये गये जो अब अकेला बचा था ऐसे उस क्रोध से जलते हुए संसार में उत्पात करने वाले ।।83।।

महासुरं महासत्वं भण्डं चण्डपराक्रमम् ।
महाकामेश्वरास्त्रेण सहस्त्रादित्यवर्चसा ।
गतासुमकरोन्माता ललिता परमेश्वरी ॥८४॥

उस भयंकर पराक्रमी महासुर और महासत्व भण्डासुर को हजारों सूर्यों के तेज को धारण करने वाले महाकामेश्वरास्त्र से उन भगवती ललिता परमेश्वरी ने उस असुर को गतप्राण कर दिया।।84।।

ततस्तु प्रोद्गतज्वालैः शून्यकं नाम पट्टणम् ।
सस्त्रीकं च सबालं च सगोष्ठधनधान्यकम् ।।८५।।

फिर उस अस्त्र की बढ़ती हुई ज्वालाओं से शून्यक नाम की राजधानी स्त्रियों राक्षसियों सहित राक्षस बालकों सहित गोष्ठ धन, धान्य आदि सभी।।85।।

निर्दग्धमासीत्सहसा स्थलमात्रमशिष्यत ।
भण्डस्य संक्षयेणासीत्त्रैलोक्यं हर्षनर्तितम् ॥८६॥

उस भण्डासुर का कुछ भी नहीं बचा जहां नगर था वहां केवल सपाट भूमि बची उस भण्ड के संक्षीण होने से त्रिलोकी में हर्ष नृत्य होने लगे।।86।।

विजयश्रीयुतां देवीं दृष्ट्वा हर्षसमन्विताः ।
शक्तयो दध्वनुस्तूर्णं भेरीमङ्गलकाहलीः ॥८७॥

सभी शक्तियों सेनाओं ने भगवती ललिता त्रिपुरसुन्दरी को विजयश्रीयुक्त देखा तो बड़े हर्ष से युक्त हो गईं और नाना प्रकार के मंगलवाद्य भेरी मंगल काहली आदि बजाने लगीं।।87।।

अवाकिरन्पुष्पवृष्टीर्देवा हर्षसमन्विताः ।
देवदुन्दुभयो नेदुर्ववुर्वासन्तवायवः ॥८८॥

हर्ष से प्रसन्न चित्त देवों ने भी पुष्प वृष्टियां भगवती पर कीं और माङ्गलिक वाद्य बजाये तथा उस समय वसन्त ऋतु के वासन्तिक शीतल मन्द सुगन्धित वायु बहने लगे।।88।।

दिशः प्रसन्नतामापुर्नभश्च विमलं तथा।
मङ्गलारात्रिकं चक्रुर्देवगन्धर्वयोषितः ॥८९॥

उस समय जब समूल भण्ड विनष्ट हो गया तब प्रकृति भी प्रसन्न हो गईं दिशाएं प्रसन्न हो गईं, आकाश निर्मल हो गया, उस समय सभी देव, गन्धर्व और देवांगनाओं ने मंगलार्ति किया।।89।।

ननृतुश्चाप्सरःश्रेष्ठा उर्वशीमेनकादयः ।
प्लवनं विदधुर्हर्षाद्देवगन्धर्वकिन्नराः ॥९०॥

श्रेष्ठ अप्सराएं उर्वशी, मेनका, तिलोत्तमा आदि नृत्यकरने लगीं देवता गन्धर्व किन्नरादि देव जातियां हर्षातिरेक से प्रसन्न हो गईं।।90।।

स्मृत्वास्मृत्वा महाराज्याः पौरुषं तु चराचरम् ।
अभूत्कण्टकितं सर्वं किमेतदिति सस्मितम् ॥९१॥

सभी देव मनुष्य यक्षादि जगत् के सभी प्राणी बार बार स्मरण कर करके आश्चर्यचकित हो रहे थे कि यह अकल्पनीय स्थिति वातावरण कैसे बदल गया, भगवती के इस पौरुष पूर्ण पराक्रम का स्मरण सभी बार बार कर रहे थे।।91।।

विश्वावसुप्रभृतयो गन्धर्वाः सुरगायकाः ।
तुम्बुरुर्नारदश्चैव साक्षादेव सरस्वती ॥ ९२ ॥

विश्वावसु आदि देवों के गायक तुम्बुरू और नारद साक्षात सरस्वती भी।।92।।

जयमङ्गलपद्यानि पठन्ति पटुगीतिभिः ।
हर्षसंफुल्लवदनाः स्फुरत्पुलकभूषणाः ॥ ९३ ॥

सभी लोग पटुगीतियों से अर्थात विजय गीतियों से युक्त जयमंगल पद्यों का गायन करने लगे, सभी हर्ष से पुलकित रोमांचित हो रहे थे हर्ष से उन सभी के नेत्र, मुख आदि निमग्न हो रहे थे।।93।।

मुहुर्जयजयेत्येव स्तुवाना ललितेश्वरीम् ।
हर्षेणान्धा मदोन्मत्ताः प्रनृत्यन्तः पदेपदे ॥९४॥

भगवती ललितेश्वरी की जय हो जय हो इस प्रकार स्तुतियां और जय घोषकर रहे थे सभी हर्षातिरेक से उन्मत्त हो मदोत्सव हो पद पद में नाच कूद उछल रहे थे।।94।।

सप्तर्षयो वसिष्ठाद्या ऋग्यजुःसामरूपिभिः ।
अथर्वरूपैर्मन्त्रैश्च वर्धयन्तो जयश्रियम् ॥ ९५ ॥

सप्तर्षि गण वसिष्ठादि महर्षिगण ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, और अर्थववेद रूप सूक्तों से मंत्रों से जयश्री का संवर्धन कर रहे थे।।95।।

हविषेव महावह्निशिखामत्यन्तपावनीम् ।
आशीर्वादेन महता वर्धयामासुरुत्तमाः ॥ ९५ ॥

हविषाके समान महावह्नि ने अत्यन्त पवित्र शिखा ज्वाला महान् आशीर्वाद से उत्तम अभिवृद्धि किया अर्थात जो अग्नि राक्षसों के विघ्नों से दूषित हो गए थे यज्ञ कुण्डों में केवल धूम्र ही रहता था अब वहीं राक्षस बाधा समाप्त होने पर वहीं प्रसन्न होकर अपनी मंगल सूचक ज्वालाएं बढ़ा रहा है।।96।।

तैः स्तूयमाना ललिता ब्रीडानम्रीकृतानना ।
भण्डासुरं विनिर्जित्य गन्तुमुद्योगमादधे ॥ ९७ ॥

उन सभी महर्षि देवर्षि देव गन्धर्व और समस्त प्राणी, जगत के चर अचर प्राणी प्रकृति आदि के स्तुतिगान से भगवती ललिता नम्रता से सिर नवाकर अर्थात स्वीकार करती हुई विनय से वापस

लौटने के लिये उत्सुक हुईं उन्होंने मुख्य कार्य भण्डासुर रूप विपत्ति नष्ट करना इसे सांगोपांग सम्पन्न करके असुरों पर विजय करके वापस लौटने का मन बनाया।।97।।

अथ सम्पत्करी देवी चचालाग्रे स्वसेनया ।
पाशायुधसमुत्पन्ना हयारूढा स्वसेनया ॥ ९८ ॥

भगवती के वापस लौटने के निर्णय के पश्चात सम्पत्करी देवी संपत्करी देवी भगवती के अंकुश शस्त्र से प्रकट हुई थीं अंकुश शस्त्र हाथी से सम्बद्ध शस्त्र है उसीलिये सम्पत्करी अपनी सेना के आगे चलीं वहीं भगवती के पाशायुध से प्रकट अश्वारूढ़ा हयारूढ़ा, अश्वलगाम से वशीभूत होता है इसलिये पाश शस्त्र से सम्बद्ध अश्व होता है भगवती अश्वारूढ़ भी अपनी सेना के साथ आगे चलीं।।98।।

लोलाभिः केतुमालाभिरुल्लिखन्ती घनाघनम् ।
व्यचलत्पुरतो देव्या बहुविक्रमशालिनी ॥९९॥

चंचल ध्वजों के झकोंरो से बादल बिखर जाते थे ऐसे रथों में आरूढ़ बहुत पराक्रम वाली शक्तियां देवी के आगे चल रही थीं।।99।।

पार्श्वद्वयं समाश्रित्य महाराज्याः प्रचेलतुः ।
मन्त्रिणीदण्डनाथे ते आरुह्य रथपुंगवौ ॥१००॥

भगवती की दोनों बगलों का आश्रय लेकर अर्थात भगवती दांऐ पार्श्व में मंत्रिणी अपने गेयचक्र रथ में आरूढ़ होकर तथा बांए पार्श्व में दण्डनाथा अपने किरिचक्र में आरूढ़ होकर चलीं।।100।।

इत्थं विधाय सुरकार्यमनिन्द्यरूपा श्रीचक्रराजरथमण्डलमण्डनश्रीः ।
कामेश्वरी त्रिजगतां जननी बभासे विद्योतमानविभवा विजयश्रियाढ्या ॥१०१॥

इस प्रकार देवताओं के कार्यों को करके अनिन्दनीय रूप वाली श्रीचक्रराजरथ मण्डल को सजाने वाली लक्ष्मी तीनों लोकों की जननी भगवती कामेश्वरी विजय श्री से आढ्य (समृद्ध) विशेष रूप से प्रकट होने वाले मान सम्मान से विभूषित हुईं।।101।।

सैन्यं समस्तमपि संगर कर्मखिन्नं भण्डासुरप्रबलबाणकृशानुतप्तम् ।
अस्तं गते सवितरि प्रथितप्रभावा श्रीदेवता शिविरमात्मन आनिनाय ॥१०२॥

भण्डासुर के प्रबल बाणों की अग्नि से झुलसे हुए दुर्बल और अत्यंत सताए गए समस्त सैन्य समूह को सूर्य के अस्ताचल गामी हो जाने पर श्री देवता ललिता जी ने अपने शिविर में ले आईं।।102।।

यो भण्डदानववधं ललिताम्बयेमं क्लृप्तं सकृत्पठति तस्य तपोधनेन्द्र।
नाशं प्रयान्ति कदनानि धृताष्टसिद्धे- भुक्तिश्च मुक्तिरपि वर्तत एव हस्ते ॥ १०३ ॥

श्री ह्यग्रीव भगवान अगस्त्य जी से बोले हे तपोधनों में सर्वोपरि कुम्भज ! जो आराधक प्राणी मनुष्यादि श्री ललिताम्बा के द्वारा इस भण्डासुर दानव का वध वृत्तान्त एक बार भी पढ़ लेता है उसके समस्त पाप समूह नष्ट हो जाते हैं वह अष्टसिद्धियों को धारण करता है तथा भोग और मोक्ष भी हस्तगत रहते हैं।।103।।

इमं पवित्रं ललितापराक्रमं समस्त पापघ्नमशेषसिद्धिदम् ।
पठन्ति पुण्येषु दिनेषु ये नरा भजन्ति ते भाग्यसमृद्धिमुत्तमाम् ॥१०४॥

भगवती जगज्जननी श्रीमाताललितात्रिपुरसुन्दरी के इस अत्यन्त पवित्र पराक्रम को जो समस्त पापसमूहों को नष्ट करने वाला है तथा सम्पूर्ण सिद्धियों को देने वाला है जो नर पुण्यदायक दिनों में पढ़ते हैं वे उत्तम भाग्य समृद्धि को प्राप्त करते हैं।।104।।

इति श्रीब्रह्माण्डपुराणे उत्तरखण्डे हयग्रीवागस्त्य- संवादे ललितोपाख्याने भण्डासुरवधो नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

॥श्रीमन्महागणाधिपतये नमः।।

श्रीमाताललिताम्बायै नमः श्रीपादुकां पूजयामि नमः॥
ॐ वन्दे गुरुपदद्वन्द्वं अवाङ्मनसगोचरम्॥
रक्तशुक्ल प्रभामिश्रमतर्क्यं त्रैपुरं महः॥
ॐ आराध्यदेवं भक्तानां कलिदोषविनाशकम्॥
वन्दे श्रीगिरिजानन्दं शारदाश्रीमठाधिपम्।।
ॐ अखण्डं यस्यज्ञानञ्च भक्तिर्यस्यानपायिनी।।
शारदाज्योतिरीशस्य दर्शनं (पूजनं, वन्दनं) शुभमस्तुनः।।

सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥ 105 श्लोकात्मकः

[ब्रह्मादिकृतललितास्तुतिः॥]

अगस्त्यऋषि बोले-ः

अश्वानन महाप्राज्ञ श्रुतमाख्यानमुत्तमम्।
विक्रमो ललितादेव्या विशिष्टो वर्णितस्त्वया ॥१॥

हे महाप्राज्ञ! अश्वानन!! मैंने आपके द्वारा वर्णित उत्तम आख्यान का श्रवण किया, जिसमें आपने भगवती ललिताम्बा का विशिष्ट विक्रम का वर्णन हुआ था ।।1।।

चरितैरनघैर्देव्याः संप्रीतोऽस्मि हयानन ।
श्रुता सा महती शक्तिर्मन्त्रिणीदण्डनाथयोः ॥२॥

हे ह्यानन! आपने जो मंत्रिणी और दण्डनाथ के और भगवती के पुण्यप्रद चरितों को सुनाया उनसे मैं प्रसन्न तथा सन्तुष्ट हूं।।2।।

पश्चात्किमकरोत्तत्र युद्धानन्तरमम्बिका ।
चतुर्थदिनशर्वर्यां विभातायां हयानन ॥ ३ ॥

हे हयानन! उन अम्बिका ने युद्ध के बाद चौथा दिन व्यतीत हो जाने पर उसी दिन की रात्रि में भगवती ने क्या किया ।।3।।

हयग्रीवः।।

शृणु कुम्भभव प्राज्ञ यत्तया जगदम्बया ।
पश्चादाचरितं कर्म निहते भण्डदानवे ॥ ४ ॥

हे कुम्भज! प्राज्ञ!! उन जगदम्बा ने भण्ड दानव के मारे जाने के बाद जो किया उसे तुम

सुनो।।4।।

शक्तीनामखिलं सैन्यं दैत्ययुद्धशरार्दितम्।
मुहुराह्लादयामास लोचनैरमृताप्लुतैः ॥५॥

रात्रि में शिविर में भगवती ने सबसे पहिले दैत्यों के शस्त्रों से घायल शक्तियों की सेना को अमृतवर्षिणी आंखों से देखा उससे वे सभी घाव रहित हो गई और स्वस्थ हो गई।।5।।

ललिता परमेशान्याः कटाक्षामृतधारया।
जहुर्युद्धपरिश्रान्ति शक्तयः प्रीतमानसाः ॥६॥

परम ईशानी भगवती ललिता की कटाक्षामृत धारा से वे शक्तियां युद्धजन्य परिभान्ति से समूल मुक्त हो गईं स्वस्थ होकर प्रसन्न मानस वाली हो गईं।।6।।

अस्मिन्नवसरे देवा भण्डमर्दनतोषिताः।
सर्वेऽपि सेवितुं प्राप्ता ब्रह्मविष्णुपुरोगमाः ॥७॥

इसी अवसर में समस्त देवगण भण्ड के विनाश सन्तुष्ट और निर्भय होकर ब्रह्मा, विष्णु आदि प्रमुख देवों को आगे करके सेवा करने के लिये आये।।7।।

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च शक्रो दिक्पास्तथैव च।
आदित्या वसवो रुद्रा मरुतः साध्यदेवताः ॥८॥

देवा में ब्रह्मा विष्णु रुद्र इन्द्र दिग्पाल आत्य (12 आदित्य) वसु (8 वसु) रुद्र (11 रुद्र) मरुत (40 मरुद्गण) और साध्यदेवता सभी प्रार्थना के लिये आये।।8।।

सिद्धाः किंपुरुषा यक्षा निर्ऋत्याद्या निशाचराः।
प्रह्लादाद्या महादैत्याः सर्वेप्यण्डनिवासिनः।
आगत्य तुष्टुवुः प्रीत्या सिहासनमहेश्वरीम्॥९॥

प्रह्लायादि महादैत्यगण सभी ब्रह्माणण्ड निवासीजन सभी लोक आकर भगवती सिंहासनेश्वरी ललिताम्ता की स्तुति करने लगे उन्होंने भगवती को प्रसन्न किया।।9।।

ब्रह्माद्याः।। ब्रह्मादि प्रमुख देवगण स्तुति कर रहे हैं-

नमोनमस्ते जगदेकनाथे नमो नमः श्रीत्रिपुराभिधाने।
नमोनमो भण्डमहासुरघ्नि नमोस्तु कामेश्वरवामकेशि ॥१०॥

हे संसार की एकमात्र स्वामिनी तुम्हें नमस्कार है नमस्कार है हे त्रिपुरा नाम वाली भगवती आपको नमो नमः हे महासुर भण्ड दानव को समूल नष्ट करने वाली आपको नमो नमः। हे

भगवान कामेश्वर की शक्ति वामकेशि आपको प्रणाम है।।10।।

चिन्तामणे चिन्तितदानदक्षेऽचिन्त्ये चिदाकारतरङ्गमाले।
चित्राम्बरे चित्रजगत्प्रसूते चित्राख्यनित्याभिगते नमस्ते ॥११॥

हे चिन्तामणि! हे लोगों को चिन्तित दान देने में दक्ष। हे अचिन्त्ये! चिदाकारतरंगमाले! हे चित्राम्बरे! हे चित्ररूप जगत को उत्पन्न करने वाली चित्रा (पूर्णिमा तिथि की नित्या) नित्या देवि तुम्हें नमस्कार है।।11।।

मोक्षप्रदे मुग्धशशाङ्कचूडे मुग्धस्मिते मोहविभेददक्षे।
मुद्रेश्वरीचर्चितराज्यतन्त्रे मुद्राप्रिये देवि नमोनमस्ते ॥१२॥

हे मोक्ष प्रदान करने वाली, मुग्धचन्द्र को चूडा में रखने वाली, हे मुग्ध मुस्कान करने वाली, मोहबंधन को काटने में चतुर मुद्राओं की स्वामिनी राजतन्त्र की व्यवस्था करने वाली मुद्राप्रिये (दशमुद्रासमाराध्या) देवि! आपको प्रणाम है।।12।।

क्रूरासुरध्वंसिनि कोमलाङ्गि कोपेषु कालीतनुमादधाने।
क्रोडानना पालितसैन्यचक्रे क्रोडीकृताशेषदये नमस्ते ॥१३॥

हे क्रूर आतंक का ध्वसं करने वाली, हे कोमल अंगों वाली हे क्रोध में काली का शरीर धारण करने वाली हे वराहमुखि हे सैन्यचक्र का पालन करने वाली, भयहीन कर गले लगाने वाली आपकों प्रणाम है।।13।।

षडङ्गदेवीपरिवारगुप्ते षडङ्गयुक्तश्रुतिवाक्यमृग्ये।
षट्चक्रसंस्थे च षडूर्मिहन्त्रि षड्भावरूपे ललिते नमस्ते ॥१४॥

हे भगवति! छह अंगजंघाए 2 भुजाएं, 2 नेत्र इनसे पूरी तरह पुष्ट, हे देवि! षडंग युक्त वेद शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष अंग युक्त ऋग, यजु साम और अथर्ववेद के द्वारा खोजी जाने वाली षट्चक्र मूलाधार स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध, आज्ञाचक्रों में स्थित भगवति छह ऊर्मियां अस्ति जायते वर्धते विपरिणमते क्षीयते म्रियते इनको नष्ट करने वाली षड्भाव रूपे !ललिते ! नमोस्तुते! ।।14।।

कामेश्वरी मुख्य समस्तनित्या कान्तासनान्ते कमलायताक्षि।
कामप्रदे कामिनि कामशम्भोः काम्ये कलानामधिपे नमस्ते ॥१५॥

कामेश्वरी (कृष्ण पक्ष की नित्याएं) मुख्य समस्त 15 नित्या रूपिणि, कान्तासने के मध्य स्थित (कामेश्वरांकस्थिता) कमल पत्र जैसे विशाल नेत्रों वाली कामप्रदे, कामिनि कामशम्भो, काम्ये, कलाश्रीं की स्वामिनि ललिते नमस्ते।।15।।

दिव्यौघसिद्धौघनरौघरूपे दिव्ये दिनाधीशसहस्रकान्ते।
देदीप्यमाने दयया सनाथे देवादिदेवप्रमदे नमस्ते ॥१६॥

दिव्यौघ, सिद्धौघ, मानवौघ रूपे, दिव्य, दिनाधीश सूर्यकी सहस्रकिरणों वाली, हे देदीप्यमाने दया के द्वारा धन्य करने वाली देवाधिदेवों प्रकृष्ट मदवाली देवि नमस्ते।।16।।

सदाणिमाद्यष्टकसे वनीये सदाशिवात्मोज्ज्वलमञ्चवासे।
सौम्ये सदेकायनपादपूज्ये सवित्रि लोकस्य नमोनमस्ते ॥१७॥

अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य आदि दस अष्टक से सेवनीय सदाशिव ईश्वर रुद्र, विष्णु, ब्रह्मा मंच देवों से उज्ज्वल सिंहासन में विराजमान सौम्ये! सद्रूप एकायनपूज्ये! समस्त लोक की उत्पत्ति दात्रि नमो नमस्ते ।।17।।

ब्राह्मी मुखैर्मातृगणैर्निषेव्ये ब्रह्मप्रिये ब्राह्मणि बन्धहन्त्रि।
ब्रह्मामृतस्त्रोतसि राजहंसि ब्रह्मेश्वरि श्रीललिते नमस्ते ॥१८॥

1 अणिमा, 2 लघिमा, 3 महिमा, 4 ईशित्व, 5 वशित्व, 6 प्राकाम्य, 7 भुक्ति, 8 इच्छा, 9 प्राप्ति, 10 सर्वकाम सिद्धि हे भगवति! ब्राह्मीआदि दस मातृगणों द्वारा सेवित हैं हे ब्रह्मप्रिये, हे ब्रह्माणि! हे जन्ममरणादि बंधनों के नष्ट करने वाली! ब्रह्मामृत की स्रोतरूप राजहंसि! हे ब्रह्मेश्वरि! श्री ललिते! आपको प्रणाम अर्पित है।।18।।

संक्षोभिणी मुख्य समस्तमुद्रा- संसेविते संसरणहन्त्रि।
संसारलीलाकरि सारसाक्षि सदा नमस्ते ललितेऽधिनाथे ॥१९॥

संक्षोभिणी मुख्य समस्त मुद्राओं से संसेवित संसरणविकार का हनन करने वाली, संसार में लीलाओं को करने वाली सारसाक्षि संसार के स्थूलरूप और साररूप आत्मारूपी साक्षि को देखने वाली! हे अधिनाथे ललिते आपको प्रणाम समर्पित हैं।।19।।

नित्याकलाषोडशकेन कामा- कर्षिण्यधिश्रीप्रथमेन सेव्ये।
नित्ये निरातङ्कदयाप्रपञ्चे नीलालकश्रेणि नमोनमस्ते ॥२०॥

सोलह नित्याकला में प्रथम कामाकर्षिणी आदि नित्याकलापों से सेवित हे नित्ये! आतंकरहित दया प्रपंचे! नीलालक श्रेणि भगवति! आपको प्रणाम।।20।।

अनङ्गपुष्पादिभिरुन्मदाभि- रनङ्गदेवीभिरजस्त्रसेव्ये।
अभव्यहन्यक्षरराशिरूपे हतारिवर्गे ललिते नमस्ते ॥२१॥

अनंग पुष्प आदि से उन्मद अनंग देवियों द्वारा निरन्तर सेवा की जाती भव्यरहित का हनन करने

वाली अक्षर रूपे शत्रु समूह का नाश करने वाली ललिता देवि ! प्रणाम ।।21।।

संक्षोभिणी मुख्यचतुर्दशार्चि- र्मालावृतोदारमहाप्रदीपम् ।
आत्मानमाबिभ्रति विभ्रमाढ्ये शुभ्राशये शुद्धपदे नतिस्ते ॥ २२ ॥

हे संक्षोभिणी आदि मुख्य चतुर्दश अर्चिमालाक्षों से आवृत, उदार एवं महाप्रकाशयुक्त देवि ! हे आत्मा को धारण करने वाली ! हे विशेष भ्रमरूपाढ्ये ! हे शुभ्राशये ! ये शुद्ध पदवाली भगवति ! आपको प्रणाम !! ।।22।।

ससर्वसिद्ध्यादिकशक्तिवृन्दे सर्वज्ञविज्ञातपदारविन्दे ।
सर्वाधिके सर्वगते समस्त- सिद्धिप्रदे श्रीललिते नमस्ते ॥ २३ ॥

(1 संक्षोभिणी, 2 सर्वविद्राविणी, 3 सर्वाकर्षिणी, 4 सर्वाह्लादिनी, 5 सर्वसंमोहिनी, 6 सर्वस्तंभिनी, 7 सर्वजृंभणी, 8 सर्ववशंकरी, 9 सर्वरंजिनी, 10 सर्वोन्मादिनी, 11 सर्वार्थसाधिनी, 12 सर्वसंपत्तिपूरणी, 15 सर्वमंत्रमयी, 14 सर्वद्वन्द्वक्षयंकरी) सर्वाधिके सर्वगते समस्त सिद्धिप्रदे श्री ललिता नमस्ते हे सर्वसिद्धि आदि शक्ति वृन्दे ! हे सर्वज्ञ विज्ञान पदारविन्दे ! आपको प्रणाम ।।23।।

सर्वज्ञतायुक्प्रथमाभिरन्य- देवीभिरप्याश्रितचक्रभूमे ।
सर्वामराकाङ्क्षितपूरयित्रि सर्वस्य लोकस्य सवित्रि पाहि ॥ २४ ॥

सर्वज्ञता से युक्त प्रथमादिशक्तियों से भी आश्रित चक्रभूमि ! सभी देवो द्वारा आकांक्षितों को पूर्ण करने वाली ! समस्त लोकों को उत्पन्न करने वाली ! आप हमारी रक्षा करो।।24।।

वन्द्ये वशिन्यादिकवाग्विभूति- वर्धिष्णुचक्रद्युतिवाहवा हे ।
बलाहकश्यामकचे वचोब्धे वरप्रदे सुन्दरि पाहि विश्वम्॥२५॥

हे वशिनी आदिवाग विभूतिवाली अम्ब ! वर्धिष्णु श्रीचक्र की द्युति वहन करने वाली काले मेघों के समान श्याम केशों वाली वाणी की समुद्र वर देने वाली। हे सुन्दरि ! विश्व की रक्षा करो तुम्हे प्रणाम।।25।।

बाणादिकैरायुधसार्वभौमै- भण्डासुरानीकवनान्तदावैः ।
प्रत्यग्रतेजोज्वलिताम्बुराशे प्रपात्यमाने परितो नमस्ते ॥ २६ ॥

हे भगवति आप बाणादि (भगवती पांच पुष्प बाण सहकार मंजरी लाल, श्वेत, पीत और नील कमल तथा इक्षु धनुष, अंकुश और पाश) शस्त्रास्त्र धारण करने वाली हैं हे सार्वभौमे ! हे भण्डासुर की सम्पूर्ण सेना रूपी वन की दावाग्नि रूपे अत्यन्त उग्रतेज से जलते हुए बडवाग्निरूप देवि ! आप पूर्णरूप से सभी ओर से पल्यमान हो हे देवि ! आपको प्रणाम अर्पित हैं ।।26।।

कामेशि वज्रेशि भगेशिरूपे कल्ये कले कालविलोपदक्षे ।
कथावशेषीकृत दैत्यसैन्ये कामेशकान्ते कमले नमस्ते ॥ २७ ॥

हे कामेशि! हे वज्रेशि! हे भगेशि (कामेश्वरी वज्रेश्वरी, भगमालिनी) इन तीनों के रूप वाली भगवति! हे कल्यन्ये (कन्या रूपिणी बाला त्रिपुर सुन्दरी) हे कले। हे कालविलोपदक्षे! हे पराक्रमशालिनि! समस्त दैत्यप सेना को कथावशेष करने वाली, हे कामेशकान्ते! कमले! आपको प्रणाम समर्पित हैं।।27।।

बिन्दुस्थिते बिन्दुकलैकरूपे ब्रह्मात्मिके बृंहितचित्प्रकाशे ।
बृहत्कुचाभोगविलोलहारे बृहत्प्रभावे वरदे नमस्ते ॥ २८ ॥

श्री चक्र के बिन्दु में स्थित (बैंदवासनायैनमः) बिन्दु कलैकरूपे! हे ब्रह्मात्मिके! हे चित्प्रकाश का बृंहण (वर्धन) करने वाली पीनस्तनों के विस्तार में चंचल हारों वाली, बढ़े हुए प्रभाव वाली, हे वरे! आपकों प्रणाम अर्पित हैं।।28।।

कामेश्वरोत्सङ्गसदानिवासे कालात्मिके कन्दलितानुकम्पे ।
कल्पावसानोत्थितकालिरूपे कामप्रदे कल्पलते नमस्ते ॥ २९ ॥

हे भगवति! आप सदैव भगवान कामेश्वर के अंक में निवास करती हैं (कामेश्वारांक निलया) कालात्मारूप देवि, समस्त प्राणियों पर कृपा करने वाली जगदम्ब! हे भगवति कल्प के अन्त समय में प्रकट कालिरूप आप हो जाती हैं कामनाओं को पूर्ण करने वाली, कल्पलताअम्ब आपको प्रणाम अर्पित है।।29।।

सर्वारुणे सान्द्रसुधासुशीते सारङ्गशावाक्षि सरोजवक्त्रे ।
सारस्यसारस्यसदैकभूमे समस्तविद्येश्वरि संनतिस्ते ॥ ३० ॥

हे सर्वारूपे! सान्द्रसुधाशशि के समान सुशीतल! मृगशावक के समान विशाल नेत्रों वाली! कमल के मुख वाली, सारवस्तु के साररूप में सदा एक रूप में स्थिर रहने वाली (ब्रह्मात्मैक्य स्वरूपिणी, तत्वमर्थ स्वरूपिणी) समस्त विद्याओं की ईश्वरी भगवति आपको प्रणतिपूर्वक प्रणाम।।30।।

तव प्रभावेन चिदग्निजायाः श्रीशंभुनाथप्रकटीकृतायाः ।
भण्डासुराद्याः समरे प्रचण्डा हता जगत्कण्टकतां प्रयाताः ॥ ३१ ॥

हे भगवति! आपके प्रभाव से चिदग्नि में श्री शम्भुनाथ से प्रकट किये गए संसार में कंटक बने हुए भण्डासुर आदि प्रमुख दानवों का समूल संहार कर दिया गया।।31।।

नव्यानि सर्वाणि वपूंषि देवि त्वत्सान्द्र कारुण्यसुधाप्लुतानि ।
त्वया समस्तं भुवनं सहर्ष संजीवितं सुन्दरि सभ्यलभ्ये ॥३२॥

नवीन नवीन समस्त शरीरों को हे देवि! आपकी धनीभूत प्रभूतकरूणा सुधा से आपके द्वारा आप्लावित कर दिया गया है ऐसा यह समस्त संसार हर्ष पूर्वक कुशलता से पूर्णायु भोगते हुए संजीवित है।। आप सभ्य लोगों की उपलब्धि हो असम्भ्य लोगों की नहीं।।32।।

श्रीशंभुनाथस्य महाशयस्य द्वितीयतेजःप्रसरात्मको यः ।
स्थाण्वाश्रमे क्लृप्तपा विरक्तः सतीवियोगेन निरस्तभोगः ॥ ३३ ॥

पुराकाल में दक्ष के शिव को वहिस्कृत करने के लिये आयोजित यज्ञ में भगवती पत्नी दक्षकन्या सतीजी पितृमोह में पति शिव की अनिच्छा से यज्ञ में गईं, वहां उन्होंने शिव का भाग नहीं देखा तो पति का अपमान और उपेक्षा दक्ष के निष्ठुर व्यवहारों से भगवती ने अब मेरा नाम दाक्षायिणी था तब मैंने इस शिवनिंदक पिता के दिये नाम वाले इस दक्ष प्रदत्त का त्याग करती हूं ऐसा उस यज्ञ में उद्घोष कर भगवती ने योगाग्नि से शरीर को भस्म कर यह दुःखद समाचार सुन उद्दण्ड दक्ष को शिवगण वीरभद्र ने समाप्त इधर भगवान सती के शरीर कंधे से ताण्डव करने तभी भगवान विष्णु ने सुदर्शन चक्र सती के दिव्य शरीर के इंक्यावन खंड कर दिय जिनसे पूरे भारत वर्ष में इंक्यावन शक्ति पीठ बन गए जो आज तक साधकों की साधना को सफल कर रहे हैं इधर भगवान शिव सति वियोग के कारण समसत प्रवृत्तयात्मभोगों से विरक्त हो गये और स्थाणु आश्रम में अखण्ड तप में लीन हो गए।।33।।

तेनाद्रिवंशे धृतजन्मलाभां कन्यामुमां योजयितुं प्रवृत्ताः ।
वयं स्मरं प्रेरितवन्त एव तस्यान्तिकं घोरतपःस्थितस्य ॥ ३४ ॥

दक्ष यज्ञ में योगाग्नि से शरीर को दग्धकर लिया कि अब मैं पर्वत के वंश में जन्म लेकर अपने पति शिव को प्राप्त करूंगी हे भगवति! इस प्रकार जब हिमकन्या उमा का संकल्प था उसे पूर्ण करने के लिये भगवान शिव को जो समाधि में विरक्त होकर तल्लीन हैं उनका भी मन इस कन्या की ओर हो ऐसा निश्चय करके हम लोगों ने ही कामदेव को प्रेरित किया कि तुम परमविरक्त तपोनिष्ट तपस्या में लीन शिव का भी मन इस की ओर प्रेरित करो।।34।।

तेनाथ वैराग्यतपोविघात- क्रुद्धेन लालाटकृशानुदग्धः ।
भस्मावशेषो मदनस्ततोऽभू- त्ततो हि भण्डासुर एष जातः ॥३५॥

हम लोगों की प्रेरणा से बिछुड़े पति पत्नियों के सदुद्देश्य प्रेरित कामदेव ने पूजा करती हुई हिमराज कन्या उमा पार्वती की ओर मन को आकर्षित करने के लिये सम्मोहनादि पांचों बाणों का प्रहार शिव पर किया, प्रहार के प्रभाव से शिव की दृष्टि कुमारी पार्वती पर पड़ी पर तत्काल ही विवेक जाग उठा कि कन्या पर यह तो विकार है, अधर्म है पर ऐसी प्रवृत्ति में आई कहां से सोच में वृक्ष

पत्रों की ओट में बैठा हुआ धनुष ताने हुए काम को देखकर अत्यन्त क्रोध में आकर अपने ललाट में स्थित तीसरे नेत्र जो अग्नि का केन्द्र है कामदेव को भस्म कर दिया हे मातः! उसी भस्म हुए कामदेव के शरीर की भस्म से भण्डासुर का प्राकटय हुआ।।35।।

ततो वधस्तस्य दुराशयस्य कृतो भवत्या रणदुर्मदस्य ।
अथास्मदर्थे स्वतनुत्यजस्त्वं कामस्य संजीवनमाशु कुर्याः ॥ ३६ ॥

जब हे मातः! भस्म हुए काम के शरीर की भस्म से उत्पन्न हुए दुराशय अतःरण में दुर्मद भण्डासुर को आपने समूल विनष्ट कर दिया अब हम लोग आपके श्री चरणों में सविनय प्रार्थना कर रहे हैं कि हमने ही उस काम को इस कार्य में प्रेरित किया था, पति पत्नी का मिलन धर्म है यह समझा कर तो यह हमारी इच्छा की पूर्ति के लिये अपने शरीर को त्याग देने वाले काम का पुनर्जीवित कर दीखिये यह बहुत बड़ी कृपा हम सभी पर तथा कामदेव के ऊपर भी होगी, यह कामपत्नी रति इसकी दशा यह रो रही है अतः कृपा करें मातः!!।।36।।

इयं रतिर्भर्तृवियोगखिन्ना वैधव्यमत्यन्तमभव्यमाप्ता ।
पुनस्त्वदुत्पादित कामसङ्गा- द्भविष्यति श्रीललिते सनाथा ॥३७॥

हे मातः! यह कामदेव पत्नी पति के वियोग अत्यन्त दुःखी हो रही है इसने अकल्पित अभव्य वैधव्य पा लिया है इसकी दुःस्थिति को हम लोग भी सहन नहीं कर पा रहे हैं आप संभव असंभव कोई कार्य लोग उपकारी सम्पन्न करने में समर्थ इस कारण उस दीन निरपराध महिला पर कृपा करें इसको पति प्राप्त करा दीजिये।।37।।

त्वयाथ सृष्टेन मनोभवेन संमोहितः पूर्ववदिन्दुमौलिः ।
चिरं कृतात्यन्तमहासपर्यो तां पार्वतीं द्राक्परिणेष्यतीशः ॥३८॥

हे जगदम्ब! महेश्वरी!! आपके द्वारा यदि संजीवनी दृष्टि से मनोभव काम पुनः संजीवित हो जायेगा फिर वे चन्द्रमोलि शिव चिरकाल पर्यत्त अत्यंत और कठिन तपस्या करने वाली उमा अपर्णा वह पार्वती शीघ्र ही शिव को पति के रूप में प्राप्त कर लेंगी।।38।।

तयोश्च सङ्गाद्भविता कुमारः समस्तगीर्वाणचमूविनेता ।
तेनैव वीरेण रणे निरस्यः स तारको नाम सुरारिराजः ॥३९॥

फिर उन पार्वती शिव के संग से कुमार प्रकट होगा और वहीं वीर कुमार उस असुरों के राजा तारकासुर को रण में युद्ध करके उसका विनाश कर देगा।।39।।

यो भण्डदैत्यस्य दुराशयस्य मित्रं स लोकत्रयधूमकेतुः ।
श्रीकण्ठपुत्रेण रणे हतश्चेत्प्राणप्रतिष्ठैव सदा भवेन्नः ॥४० ॥

जो तारकासुर दुराशय भण्डासुर का मित्र है और तीनों लोगों में धूम केतु बना हुआ है, उसे यदि रण में श्री कण्ठशिव और पार्वती के पुत्र उसका विनाश कर देते हैं तो हम सभी लोगों के शान्ति स्थिर हो जायगी इसलिये अम्ब! आप अमृतवर्षिणी काम पुनः उज्जीवित कर दें तो रति का वैधव्य समाप्त हो जायेगा शिव का पार्वती संयोग हो जो शिव पत्नी से अभी विरहित हैं सती के योगाग्नि से शरीर त्याग देने से अब वही पार्वती रूप में हैं पर शिव परम निष्काम हो गए अब यदि पार्वती से उनका विवाह के बाद शिव भी प्रसन्न संतुष्ठ हो जावेंगे हम लोग भी कुमार प्राप्ति से असुर बाधा से मुक्त हो जायेंगे, इन सभी का एक समाधान मातः! काम का पुनः संजीवन अतः इस दीन रति पर और हम लोगों पर आपकी कृपा हो।।40।।

तस्मात्त्वमम्ब त्रिपुरे जनानामानन्दकं मन्मथवीरवर्यम्।
उत्पाद्य रत्या विधवात्वदुःखमपाकुरु व्याकुलकुन्तलायाः ॥४१ ॥

इस कारण हे अम्ब! त्रिपुरे!! प्राणियों के आनन्द देने वाले वीर मन्मथ को उत्पन्न करके रति को वैधव्य दुःख से मुक्त कर दें।।41।।

एषा त्वनाथा भवतीं प्रपन्ना भर्तुः प्रणाशेन कृशाङ्गयष्टिः ।
नमस्करोति त्रिपुराधिनाथे स्वमत्र कारुण्यकलां निधेहि ॥४२॥

इसलिये हे भगवति! त्रिपुराधिनाथे!! यह अनाथा पति से विहीना दुर्बल शरीर वाली आपके चरणों में प्रणाम कर रही है आप इस बेचारी दीन पर अपनी कारूण्यकला स्थिर कर दे इसके पति को पुनः अमृवर्षिणी दृष्टि से पुनरूज्जीवित करके रति का वैधव्य दूर करदें शिव पार्वती के कुमार से असुर का नाश होने से तारकासुर की बाधा से हम लोग मुक्त हो जायेंगे।।42।।

श्रीहयग्रीवः ।।

इत्थं स्तुत्वा महेशानीं ब्रह्माद्या विबुधोत्तमाः ।
तां रतिं दर्शयामासुर्मलिनां शोकखेदिनीम् ॥४३॥

इस प्रकार ब्रह्मा आदि देव प्रमुखों ने भगवती की स्तुति करन के बाद पति से वियोग हो जाने वैधव्य के होने के शोक से मर्माहत मलिन उस कामपत्नी रति को भगवती के सामने किया और भगवती का दर्शन कराया।।43।।

सा पर्यश्रुमुखी घूर्णकुन्तला धूलिधूसरा।
ननाम जगदम्बायै वैधव्यात्त्यक्तभूषणा ॥४४ ॥

उस पति वियोग जन्य पीड़ा से पीड़ित आंखों में आंसु भरी हुई बिखरे बालों वाली समस्त आभूषणों का त्याग की हुई रति ने जगदम्बा को प्रणाम किया।।44।।

अथ तद्दर्शनोत्पन्नकारुण्या परमेश्वरी ।
कान्तं कटाक्षयामास कामेश्वरमनिन्दिता ॥४५॥

ब्रह्मादि देवताओं द्वारा दुःखी कामपत्नी रति को भगवती को दिखाने के बाद उस रति की स्थिति को देख उन करूणामूर्ति के हृदय में करूणा की बाढ़ सी आ गई उन्होंने पति भगवान कामेश्वर को कटाक्ष युक्त नेत्रों से देखा।।45।।

ततः कटाक्षादुत्पन्नः स्मयमानमुखाम्बुजः ।
पूर्वदेहाधिकरुचिर्मन्मथो मदमेदुरः ॥४६ ॥

भगवान कामेश्वर को देखने के बाद भगवती के कटाक्ष से स्मित मुख वाले पिछली देह की आभा से अधिक उज्वल आभा वाले मद से भरे हुए मन्मथ प्रकट हो गए।।46।।

द्विभुजः सर्वभूषाढ्यः पुष्पेषुः पुण्ड्रकार्मुकः ।
आनन्दयन्कटाक्षेण पूर्वजन्मप्रियां रतिम्॥४७॥

उन प्रकट हुए कामदेव की दो भुजाएं थीं समस्त आभूषणों को धारण किये हुए थे और पुष्प बाणों को तथा पुष्प धनुष दोनों भुजाओं में धारण किये हुए पूर्वजन्म की प्रिया रति को कटाक्ष से देखते हुए उसे आनन्दित कर रहे थे।।47।।

अथ सा रतिदेवी च महत्यानन्दसागरे ।
मज्जन्ती निजभर्तारमवलोक्य मुदं गता ॥४८ ॥

कामदेव के प्रकट हो जाने पर रति ने जब अपने पति को देखा तो बड़े महान आनन्द सागर में निमग्न होती हुई अपने पति कामदेव को देखकर आनन्द सागर में लीन होती हुई स्थित हो गईं।।48।।

स च कन्दर्पवीरोऽपि नमस्कृय महेश्वरीम्।
व्यज्ञापयदिदं वाक्यं भक्तिनिर्भरमानसः ॥४९ ॥

वह कन्दर्पवीर प्रकट होने के बाद भगवती महेश्वरी को प्रणाम कर भक्ति परिपूर्ण मानस होकर भगवती से प्रार्थना करते हुए बोला-।।49।।

यद्दग्धमीशनेत्रेण वपुर्मे ललिताम्बिके ।
तत्त्वदीयकटाक्षस्य प्रसादात्पुनरागतम्॥५०॥

हे मातः! ललिताम्बिके!! मेरा शरीर जो ईशान शिव के नेत्रों से प्रकट क्रोधाग्नि से भस्म हो गया था वह आपके परम दयार्द्र संजीवक नेत्रों से पुनः प्राप्त हो गया है यह सभी आपकी करूणा से सब मंगल हुआ है।।50।।

तव पुत्रोऽस्मि दासोऽस्मि कापि कृत्ये नियुङ्क्ष्माम्।
इत्युक्त्वा परमेशानी तमाह मकरध्वजम्॥५१॥

कामदेव भगवती को प्रणाम करके बोला हे भगवति! मैं तुम्हारा पुत्र हूं तुम्हारा दास हूं, आप मुझे किसी भी कार्य में नियुक्त करेगी तो वह आपकी कृपा से पूर्ण करूंगा।। तब भगवती मकरध्वज काम से बोलीं।।51।।

श्रीदेवी बोलीं-ः

गच्छ वत्स मनोजन्मन्नभयं तत्र विद्यते।
मत्प्रंसादाज्जगत्सर्वं मोहयाव्याहताशुगः ।।५२।।

हे वत्स! मनोज काम तुम्हारे लिये सर्वत्र अभय है मेरे अनुग्रह से तुम समस्त संसार को बिना किसी बाधा के मोहित करो तथा शीघ्रगामी हो जाओ।।52।।

त्वद्बाणपातनाज्जातधैर्यविप्लव ईश्वरः।
पर्वतस्य सुतां गौरीं परिणेष्यति सत्वरम्॥५३॥

तुम्हारे द्वारा अब बाण पातन करने वे ईश्वर धैर्य के लुप्त हो जाने पर हिमालय की कन्या गौरी से बहुत जल्दी विवाह कर लेंगे।।53।।

सहस्त्रकोटयः कामा मत्प्रसादात्त्वदुद्भवाः।
सर्वेषां देहमाविश्य दास्यन्ति रतिमुत्तमाम्॥५४॥

मेरी प्रसन्नता से काम तुम से सहस्त्रों कोटि काम प्रकट होकर संसार में समस्त प्राणियों के शरीर में अविष्ट होकर वे स्त्री और पुरुष आपस में उत्तम रति प्रदान करेंगे वैरभाव या उपेक्षा या अवहेलना उनमें नहीं रहेगी।।54।।

मत्प्रसादेन वैराग्यात्संक्रुद्धोऽपि स ईश्वरः।
देहदाहं विधातुं ते न समर्थो भविष्यति ॥५५॥

मेरे तुम पर अनुग्रह होने से यदि वे ईश्वर क्रुद्ध होकर तुम्हारे द्वारा संमोहनबाण छोड़ने पर पहिले जैसे लालाट नेत्र से तुम्हारा शरीर दग्ध कर दिया था अब वैसा ही इस बार वे तुम्हारे शरीर को दग्ध नहीं कर पायेंगे।।55।।

प्रत्युतासौ कातरात्मा त्वद्बाणहृतमानसः।
स्वभार्याविरहाशङ्की देहस्यार्ध प्रदास्यति ॥५६॥

बल्कि तुम्हारे द्वारा छोड़े गए बाण के प्रहार से वे ईश्वर कातर हो जावेंगे और उन्हें पुनः विरह न हो जाये ऐसी आशंका से पार्वती को वे आधे शरीर में ही बिठा लेंगे अर्धनारीश्वर बन जायेंगे।।56।।

अद्यप्रभृति कन्दर्प मत्प्रसादान्महीयसः ।
अदृश्यमूर्तिः सर्वेषां प्राणिनां भव मोहक ॥५७॥

हे कन्दर्प ! मेरे महान् अनुग्रह से आज से लेकर सदैव ही तुम्हारा प्रभाव संसार की सृष्टि करने में सहायक होगा, तुम अदृश्यमूर्ति होकर सभी प्राणियों के मन में स्थिर होकर उनके मोहक बन जाओ।।57।।

त्वन्निन्दां ये करिष्यन्ति त्वयि वा विमुखाशयाः ।
अवश्यं क्लीबतैव स्यात्तेषां जन्मनि जन्मनि ॥५८॥

इस संसार में तुम्हारी जो भी निंदा करेंगे अथवा तुम्हारे से विमुख मनोवृत्ति के होंगे वे सभी क्लीबता को ही प्राप्त हो जायेंगे उन्हें जन्म जन्म में यही स्थिति बनी रहेगी।।58।।

ये पापिष्ठा दुरात्मानो मद्भक्तद्रोहिणश्च ये ।
तानगम्यासु नारीषु पातयित्वा विनाशय ॥५९॥

तथा जो पापी हैं दुरात्मा हैं और जो मेरे भक्तों से द्रोह करने वाले हैं उन सभी को अगम्य (सम्भोग न करने योग्य) नारियों में गिराकर उनका विनाश कर दो।।59।।

येषां मदीयपूजासु मद्भक्तेष्वादृतं मनः ।
तेषां कामसुखं सर्वं संपादय समीप्सितम् ॥६०॥

जिन नर नारियों का मन मेरी पूजाओं में तथा मेरे भक्तों के प्रति आदर पूर्ण मनोभाव हैं ऐसे उन सभी के लिये काम (इच्छा संकल्प) सुख का जो सभी को इच्छित है उसका सम्पादन तुम करना।।60।।

इति श्रीललितादेव्या कृताज्ञावचनः स्मरः ।
तथेति शिरसा बिभ्रदञ्जलिं निर्ययौ स्मरः ॥६१॥

इस प्रकार भगवती श्री ललिताम्बा के द्वारा दी गई आज्ञा को शिरोधार्य करने वचन देकर नत मस्तक होकर हाथ जोड़कर आपकी आज्ञा का पालन करूंगा कह कर वहां से चला गया।।61।।

तस्यानङ्गस्य सर्वेभ्यो रोमकूपेभ्य उत्थिताः ।
बहवः शोभनाकारा मदना विश्वमोहनाः ॥६२॥

इसके अनन्तर उन अनंग काम के समस्त अंगरोमछिद्रों से अनंत सुन्दर आकारों वाले विश्व विमोहक मदन प्रादुर्भूत हो गए साथ ही उनकी मदनों की अर्धांगिनी रति देवी भी।।62।।

तैर्विमोह्य समस्तं च जगच्चक्रं मनोभवः ।
पुनः स्थाण्वाश्रमं प्राप चन्द्रमौलेर्जिगीषया ॥६३॥

उन अनंग कामदेव ने भगवती से ऊर्जा प्राप्त करके समस्त संसार के प्राणियों को परस्पर साथियों में विमोहित करके फिर उन चन्द्रमौलि ईश्वर शिव पर विजय पाने के लिये स्थाणु शिव के आश्रम में पहुंचाा (पिछले जन्म में कामदेव को देवों ने कहा था, कि सती देह त्यागकर हिमालय की पुत्री रूप में हैं वे पुनः शिव को पत्नी होना चाह रही हैं कुमारीरूप में वे उनकी पूजा करती हैं तो तुम इन शिव का मन कुमारी पार्वती पर आकृष्ट हो ऐसा करो, कामदेव ने अपने पांचों को शिव जी को शिव जी के ऊपर छोड़ा जब उनका प्रभाव मन पर होने लगा तो उन शिव ने पूजा करती हुईं कुमारी पार्वती को देखा, पर तत्काल ही उनके मन पर परमात्मतत्व का निर्देश हुआ कुमारी पर यह विकार पूर्ण दृष्टि अधर्म है क्योंकि शिव का वाहन वृष है जो साक्षात् धर्म है, उन शिव ने वृक्ष में बैठे सशरीर काम को धनुष ताने हुए बैठा देखा तब क्रोधाग्नि से काम को भस्म कर दिया, उसी काम के भस्म से भण्डासुर उत्पन्न हुआ उसे भगवती ने मार दिया तब देवों ने भगवती से निवेदन किया भगवती हमने ही काम को शिव को पार्वती के लिये मोहित करने भेजा था क्योंकि भविष्य में शिव का पुत्र ही तारकासुर को मारेगा इसलिये शिव का पार्वती के साथ विवाह होना आवश्यक है शिव जब तक इसलिये विवाह के लिये तैयार होंगे तभी हम लोगों की यह असुर विपत्ति समस्या हल नहीं होगी अतः आप पुनः भण्डासुर के अंत के बाद काम को भी उज्जीवित कर दें और उसे पूर्ववत शक्ति दे दे।। तब भगवती ने काम को अनंग रूप में प्रकट शक्ति सम्पन्न किया, अब काम भी देवों की पूर्व कामना की पूर्ति के लिये शिव को मोहित करने उनके आश्रम में आया है)

वसन्तेन च मित्रेण सेनान्या शीतरोचिषा।
रागेण पीठमर्दैन मन्दानिलरथेन च ॥ ६४ ॥

कामदेव ने शिवजी को पुनः पार्वती की आकर्षित करने के लिये पुनः शिव से विजय पाने के लिये अपने साथ शीतकान्ति वाले मित्र वसन्त ऋतुराज को साथ में लिया शीतल मन्द सुगन्ध वायु के रथ में बैठकर।।64।।

पुंस्कोकिलगलस्वानकाहलीभिश्च संयुतः ।
शृङ्गारवीर्यसंपन्नो रत्यालिङ्गितविग्रहः ॥ ६५ ॥

नर कोकिल की पंचमध्वनि से युक्त श्रृंगार वीर रस से सम्पन्न रति के द्वारा अर्लिंगित होकर।।65।।

जैत्रं शरासनं धुन्वन्प्रवीराणां पुरोगमः ।
तपोनिष्ठं चन्द्रमौलिं ताडयामास सायकैः ॥६६॥

वह कामदेव विजय धनुष की टंकार करते हुए वीरों में अग्रणी था उसने तपोनिष्ठ चन्द्रमौलि शिव पर अपने सम्मोहनादि बाणों को छोड़ा।।66।।

अथ कन्दर्पबाणौघैस्ताडितश्चन्द्रशेखरः ।
दूरीचकार वैराग्यं तपस्तत्याज दुष्करम्॥६७॥

कामदेव के छोड़े गये बाणों के समूहों के प्रभाव से उन चन्द्रशेखर ने जो वैराग्य वृत्ति थी उसे दूर कर दियाऔर अत्यन्त कठिन जो तप कर रहे थे उसका भी त्याग कर दिया।।67।।

नियमानखिलांस्यक्त्वा ध्वस्तधैर्यः शिवः कृतः ।
तामेव पार्वतीं ध्यात्वा भूयोभूयः स्मरातुरः ॥६८॥

उन शिव ने समस्त वैराग्यवर्धक तपस्या में सहायक नियमों का त्याग कर दिया और स्मरवृत्ति से आतुर होकर उन पार्वती का चिन्तन करने लगे।।68।।

निशश्वास वहन् शर्वः पाण्डरं गण्डमण्डलम्।
बाष्पायमाणो विरहसंतप्तो धैर्यविप्लवात् ॥६९ ॥

वे शिव पार्वती का चिन्तन करते हुए बार बार गहरी श्वास छोड़ते हुए हो गए अब तो धैर्य भी विरह के प्रभाव से टूट गया वे बहुत ही अधीर हो गए।।69।।

भूयोभूयो गिरिसुतां पूर्वदृष्टामनुस्मरन्।
अनङ्गबाणदहनैस्तप्यमानस्य शूलिनः ॥७० ॥

वे शंकर काम के बाणों के प्रभाव से सन्तप्त हो गए वे पूर्वदृष्ट पार्वती का ध्यान बार बार करने लगे।।70।।

न चन्द्ररेखा नो गङ्गा देहतापच्छिदेऽभवत्।
नन्दिभृङ्गि महाकालप्रमुखैर्गणमण्डलैः ॥७१ ॥

उस विरहसन्तप्तावस्था में भगवान शिव के सिर पर स्थित निर्मल द्वितीया तिथि की चन्द्रिका भी असमर्थ हो गई शीतलता देने में और तो और वह गंगा की धारा भी असफल हो गई ये देह के ताप का शमन करने में सफल न हो सकें, शिवगण भी नन्दी भृंगी और महाकाल भैरव आदि प्रमुख गणों द्वारा।।71।।

आहृते पुष्पशयने विलुलोठ मुहुर्मुहुः।
नन्दिनो हस्तमालम्ब्य पुष्पतल्पान्तरात्पुनः ॥७२॥

लाये गए पुष्पशय्याओं में बार बार लोटते थे वे पुष्पशय्याएं भी शिव की वंदना से गर्म हो जाती थीं तब वे नन्दी के हाथ के सहारे दूसरी पुष्पशय्या में वहां भी वहीं बेचैनी तब पुनः।।72।।

पुष्पतल्पान्तरं गत्वा व्यवेष्टत मुहुर्मुहुः।
न पुष्पशयने नेन्दुखण्डनिर्गलितामृते ॥७३ ॥

दूसरी पुष्पशय्या में जाकर भी चैन नहीं मिल रहा था बार बार पुष्प शय्या बदलने से शान्ति नहीं थी न ही चन्द्र की कला से निकलने वाले अमृत से शान्ति मिल रही थी।।73।।

न हिमानीपयसि वा निर्वृतस्तद्वपुर्ज्वरः ।
स तनोरतनुज्वालां शमयिष्यन्मुहुर्मुहुः॥ ७४ ॥

न ही बर्फ से शीतल पानी से उनका वह अशरीर शरीरतापज्वर शान्त हो रहा था वे उस ताप का शमन करने के लिये बार बार प्रयत्न कर रहे थे।।74।।

शिलीभूतान्हिमपयःपट्टानध्यवसच्छिवः ।
भूयः शैलसुतारूपं चित्रपट्टे नखैर्लिखत्॥७५॥

वे शिव बर्फ की शिलाओं में बैठते थे वहां बैठकर चित्र पट्ट में नखों से फिर शैलसुता का रूप चिन्तन कर लिखते थे चित्र बनाते थे।।75।।

तदालोकनतो दूरमनङ्गार्तिमवर्धयत्।
तामालिख्य ह्रिया नम्रामीक्षमाणां कटाक्षतः ७६

वह कामदेव दूर स्थित होकर उनकी कामवेदना को और भी बढ़ा देता था इधर शिवनखों में लिखे पार्वती जी के चित्र को बनाकर लज्ला से इधर उधर देख रहे थे कटाक्ष से।।76।।

तं चित्रपटमङ्गेषु रोमहर्षिषु चाक्षिपत्।
चित्रासङ्गेन महता महत्या रतिसंपदा ॥ ७७ ॥
भूयसा स्मरतापेन विव्यथे विषमेक्षणः।
तामेव सर्वतः पश्यंस्तस्यामेव मनोदिशत्॥७८॥

वे त्रिनेत्र शिव उस चित्र के अंग स्पर्श से बड़ी रति सम्पदा से बढ़े स्मरताप से व्यथित हुए परिणामतः जहां जहां दृष्टि जाती थी वहां वहां वे पार्वती को ही देखते थे उन्हीं में अपन मन लीन कर दिया, उस चित्रपट्ट को अपने हर्ष से रोमांचित अंगों में लगाते थे और फिर बहुत अधिक चिन्ता और महती रति सम्पदा से।।77,78।।

तयैव संल्लपन्सार्धमुन्मादेनोपपन्नया ।
तन्मयीभूत हृदयस्तच्चिन्तस्तत्परायणः ॥ ७९ ॥

उनके समस्त दिन और रात्रि केवल पार्वती को हृदय में रखकर उनमें मन लगाकर तथा उनके विषय में तन्मय हृदय में उन्हीं की चिन्ता में संलग्न रहते थे।।79।।

तत्कथासुधया नीतसमस्तरजनीदिनः ।
तच्छीलवर्णनव्यग्रस्तद्रूपालोकनोत्सुकः ॥८० ॥

वे शिव पूरे दिन और रात पार्वती से सम्बद्ध चर्चा में रमे रहते थे उन पार्वती जी के शील स्वभाव के वर्णन में व्यस्त रहते थे और उनके रूप अवलोकन के लिये उत्सुक रहते थे।।80।।

तच्चारुभोगसङ्कल्पमालाकरणमालिकः ।
तन्मयत्वमनुप्राप्तस्तत्तापातितरां शिवः ॥८१ ॥

उनके अवलोकन की उत्सुकता में सुन्दर भोग संकल्प मालाकर को धारण करने के लिये उत्सुक रहते थे इसके बाद काम से अति संतप्त शिव पार्वती जी के ही ध्यान में तन्मय हो गए।।81।।

इमां मनोभवरुजमचिकित्स्यां स धूर्जटिः ।
अवलोक्य विवाहाय भृशमुद्यमवानभूत् ॥८२ ॥

ऐसा अनुभव करके वे अब पार्वती से विवाह करने के इच्छुक होने लगे।।82।।

इत्थं विमोह्य तं देवं कन्दर्पो ललिताज्ञया ।
अथ तां पर्वतसुतामाशुगैरभ्यताडयत् ॥८३ ॥

इसके बाद कामदेव ने भगवान शिव को विवाहेच्छु कर दिया तब भगवती ललिताम्बा की आज्ञा से उन पर्वत हिमराज कन्या पार्वती को भी शिव के प्रति आकर्षित करने के लिये शीघ्रगामी काम बाणों का प्रयोग शुरू कर दिया।।83।।

प्रभूतविरहज्वालामलिनैः श्वसितानिलैः ।
शुष्यमाणाधरदला भृशं पाण्डुकपोलभूः ।।८४ ॥

कामदेव द्वारा सन्तप्त करते ही अत्यधिक विरह ज्वालाओं से मलिन श्वासवायु से उनके अधर सूखने लगे और कपोल पीले पड़ गए।।84।।

नाहारे शयने नैव न स्वापे धृतिमिच्छति ।
सखीसहस्त्ररचितैर्नित्यं शीतोपचारकैः ॥८५ ॥

वे पार्वती जी शिव विरह में न भोजन में रुचि थी न ही शयन कर पा रही थीं, न ही सोने में भी बेचैनी हो रही थी धीरज नहीं रह गया था, नित्य सहस्त्रों सखियां उनके सन्ताप को शीतल करने के लिये शीतोपचार की नानाविध औषधियां लगा रही थीं।।85।।

पुनःपुनस्तप्यमाना पुनरेव च विह्वला ।
न जगाम रुजा शान्तिं मन्मथाग्नेर्महीयसः ॥८६॥

परन्तु वे पार्वती बार बार विरह संताप से व्यथित हो रही थीं पुनः विह्वल हो जाती थीं अतः उनको उस विरह रोग ताप से जिसमें मन्मथाग्नि बढ़ी हुई थी शान्ति नहीं मिल रही थी।।86।।

न निद्रां पार्वती भेजे विरहेणोपतापिता ।
स्वतनोस्तानवेनासौ पितुः खेदमवर्धयत् ॥८७॥

विरह से उपतापित पार्वती को नींद भी नहीं आ रही थी, उस प्रकार अपने शरीर के सन्ताप से उन्होंने अपने पिता के सन्ताप को और बढ़ा दिया।।87।।

अप्रतीकारपरुषं विरहं दुहितुः शिवे ।
अवलोक्य स शैलेन्द्रो महद्दुःखमवाप्तवान् ॥८८॥

आपकी पुत्री पार्वती का शिव में इतना प्रीतिपूर्ण प्रतीकार शून्य अत्यन्त कठोर विरह दुःख देखकर पिता पर्वतराज हिमालय भी बहुत दुःखी हुए।।88।।

भद्रे त्वं तपसा देवं तोषयित्वा महेश्वरम् ।
भर्तारं तं समृच्छेति पित्रा संप्रेरिता तदा ॥८९॥

तब पार्वती जी के पिता हिमालय ने उनसे कहा पुत्रि! तुम तप के द्वारा उन देव महेश्वर को सन्तुष्ट करके अपना पति उन्हें बनाओं इस प्रकार पिता से प्रेरित होकर पार्वती तप के लिये चलीं।।89।।

हिमवच्छैलशिखरे गौरी शिखरनामनि ।
चकार पतिलाभाय पार्वती दुष्करं तपः ॥९०॥

पिता की आज्ञा पाकर पार्वती हिमालय के बर्फयुक्त शैल शिखर जिसका नाम था गौरीशिखर (ज्योतिर्मठ के सामने नंदा त्रिशूली पर्वत है यहीं भगवती ने पत्ते खाना भी छोड़ दिया था इसलिये आज भी उसे पनखण्डा नाम से भी जाना जाता है वहां तपस्या देखकर माता पिता आदि सभी ने कहा- उमा तबसे उन्हें उमा नाम से भी जाता है) पार्वती जी पति की प्राप्ति के लिये उस शिखर कठिन तप किया।।90।।

शिशिरेषु जलावासा ग्रीष्मे पञ्चाग्निमध्यगा।
अर्के निविष्टदृष्टिश्च सुघोरं तप आस्थिता ॥९१॥

उस गौरी शिखर में (नन्दा त्रिशूली) शीत ऋतु में अत्यन्त शीतल जल में रहते हुए ग्रीष्म ऋतु में पंचाग्नि (धरती में चारों तरफ ऊपर सूर्य) के मध्य में सूर्य की ओर दृष्टि रखते हुए अत्यन्त कठिन तप में स्थित हो गईं।।91।।

तेनैव तपसा तुष्टः सान्निध्यं दत्तवाञ्शिवः ।
अङ्गीचकार तां भार्यां वैवाहिकविधानतः ॥९२॥

पार्वती के उसी तप से सन्तुष्ट भगवान शिव उनके पास आए और फिर उन्होंने वैवाहिक विधि विधानों से भार्या रूप में अंगीकार कर लिया।।92।।

अथ प्रालेयशैलेन्द्रदत्तां तां नलिनेक्षणाम्।
सप्तर्षिद्वारतः पूर्वं प्रार्थितामुदवोढ सः ॥ ९३ ॥

भगवान शिव के पार्वती के समीप जाने के बाद पर्वत राज हिमालय ने अपनी कमलनयना पुत्री उमा पार्वती को शिव को समर्पित किया तब सप्तर्षियों द्वारा शिव ने पूर्व प्रार्थित पार्वती को विवाह विधि से अंगीकृत किया।।93।।

तया च रममाणोऽसौ बहुकालं महेश्वरः।
ओषधिप्रस्थनगरे श्वशुरस्य गृहे वसन् ॥ ९४ ॥

विवाह के पश्चात भगवान महेश्वर भगवती पार्वती के साथ आनन्द से विहरण करते हुए बहुत समय तक ओषधिप्रस्थ नामक नगर में श्वसुर हिमालय के घर में निवास किये।।94।।

पुनः कैलासमागत्य समस्तैः प्रमथैः सह ।
पार्वतीमानिनायाद्रिनाथस्य प्रियमावहन्।।९५॥

पुनः समस्त प्रमधादिगणों के साथ कैलास पर्वत पर आकर पार्वती को लेकर पर्वतराज हिमालय को प्रिय किया।।95।।

रममाणस्तया सार्थं कैलासे मन्दरे तथा ।
विन्ध्याद्रौ हेमशैले च मलये पारियात्रके ॥९६॥

वहां महेश्वर ने भगवती के साथ कैलास में मन्दराचल में विन्ध्या चल में हेमशैल में मलयाचल में पारिपात्र स्थल में।।96।।

नानाविवेषु स्थानेषु रतिं प्राप महेश्वरः ।
अथ तस्यां ससर्जोग्रं वीर्यं सा सोढुमक्षमा ॥९७॥

नानाविध स्थानों में घूमते हुए महेश्वर ने भगवती के साथ रति को प्राप्त किया तथा उनमें पार्वती में अपना उग्रवीर्य निषेचित किया जिसे वे सहन नहीं कर सकीं।।97।।

भुव्यत्यजत्सापि वह्नौ कृत्तिकासु स चाक्षिपत् ।
ताश्च गङ्गाजलेऽमुञ्चन्सा च स्वशरकानने ॥ ९८॥

तब उस वीर्य को पृथ्वी पर गिरा दिया पृथ्वी ने अग्नि में गिरा दिया अग्नि ने कृत्तिकाओं में गिरा दिया कृत्तिकाओं ने गंगाजल में गिराया फिर उन्हीं कृत्तिकाओं ने शरकण्डों के कानन में गिरा दिया।।98।।

अत्रोद्भूतो महावीरो महासेनः षडाननः ।
गङ्गया चान्तिकं नीतो धूर्जटेर्वृद्धिमागमत्।।९९॥

तब शरकण्डों के वन में महावीर महासेन षडानन कार्तिकेय प्रकट हुए फिर गंगा के निकट ले जाए गए और वे धूर्जटि निरन्तर वृद्धि को पाने लगे।।99।।

स वर्धमानो दिवसे दिवसे तीव्रविक्रमः ।
शिक्षितो निजतातेन सर्वविद्या अवाप्तवान्॥१००॥

वह तीव्र पराक्रमी कार्तिकेय प्रतिदिन वृद्धि को प्राप्त करते हुए अपने पिता से शिक्षित होकर उन कार्तिकेय ने समस्त विधाओं को प्राप्त कर लिया।।100।।

अथ तातकृतानुज्ञः सुरसैन्यपतिर्भवन्।
तारकं मारयामास समस्तैः सह दानवैः॥१०१॥

शिक्षा प्राप्त करने के बाद पिता शिवजी से आज्ञा प्राप्त कर देवसेना के सेनापति होते हुए उन्होंने कार्तिकेय ने उस भयंकर तारकासुर का उसके समस्त दानवों के साथ संहार कर दिया।।101।।

पुनस्तारक दैत्येन्द्रवधसंतोषशालिना।
शक्रेण दत्तां स गुहो देवसेनामुपागमत्॥१०२॥

युद्ध में तारकासुर ससैन्य मारे जाने पर उस असुर के वध से संतुष्ट शक्र इन्द्र द्वारा दी गई देवसेना के साथ कार्तिकेय ने विवाह कर लिया।।102।।

सा शक्रतनया देवसेनानाम्नी यशस्विनी ।
आसाद्य रमणं स्कन्दमानन्दं भृशमादधौ ।।१०३॥

वह इन्द्रतनया यशस्विनी देव सेना नामवाली स्कंद को पति रूप में पाकर उनके साथ विहार करके परम आनन्दित हुईं।।103।।

इत्थं संमोहिताशेषविश्वचक्रो मनोभवः ।
देवकार्य सुमंपाद्य जगाम श्रीपुरं पुनः ॥१०४॥

इस प्रकार समस्त विश्वचक्र को सम्मोहित करके कामदेव देवकार्य को पूर्णतया अच्छी तरह सम्पन्न करके पुनः अपने श्रीपुर धाम में चले गए।।104।।

यत्र श्रीनगरे पुण्ये ललिता परमेश्वरी ।
वर्तते जगतामृद्ध्यै तत्र तां सेवितुं ययौ ॥१०५॥

जिस पुण्य नगर श्रीपुर में भगवती ललिताम्बा परमेश्वरी विराजमान हैं वहां से वे जगत की निष्कंटक रक्षा करती रहती हैं उनकी सेवा में वे कामदेव वहां गए।।105।।

श्री विद्योपासना में पंचदशी मंत्र के उपासक लगभग बारह दिव्य उपासकों के नाम आते हें उनमें वर्तमान में लोपामुद्रा अगस्त्योपासित हादि विद्या ''हसकल ह्रीं, हसकहल ह्रीं, सकल ह्रीं '' मंत्र

का तथा कामदेवोपासित कादिविद्या ''क ए ई ल ह्रीं, ह स क ह ल ह्रीं, स क ल ह्रीं श्रीं'' यह आज तक उपासित हो रहे हैं कादि पंचदशी का शंकरभाष्य भी प्रचलित है भाष्य को हिन्दी अनुवाद भी परमहंसी गंगा आश्रम में द्वारका शारदा पीठ द्वारका में तथा ज्योतिष्पीठ ज्योतिर्मठ उत्तराखंड में उपलब्ध हैं)।।

इति श्रीब्रह्माण्डपुराणे उत्तरखण्डे हयग्रीवागस्त्य- संवादे ललितोपाख्याने मदनपुनर्भवो नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७॥

॥श्रीमन्महागणाधिपतये नमः।।

श्रीमातालालिताम्बायै नमः श्रीपादुकां पूजयामि नमः॥

ॐ वन्दे गुरुपदद्वन्द्वं अवाङ्मनसगोचरम्॥

रक्तशुक्ल प्रभामिश्रमतर्क्यं त्रैपुरं महः॥

ॐ आराध्यदेवं भक्तानां कलिदोषविनाशकम्॥

वन्दे श्रीगिरिजानन्दं शारदाश्रीमठाधिपम्।।

ॐ अखण्डं यस्यज्ञानञ्च भक्तिर्यस्यानपायिनी।।

शारदाज्योतिरीशस्य दर्शनं (पूजनं, वन्दनं) शुभमस्तुनः।।

अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥ 184 श्लोकात्मक

॥ श्रीनगरनिर्माणम् ॥

श्री अगस्त्य जी बोले

किमिदं श्रीपुरं नाम केन रूपेण वर्तते।
केन वा निर्मितं पूर्वं तत्सर्वं विनिवेदय ॥ १ ॥

हे हयग्रीव भगवन्! यह श्रीपुर नाम क्या है? किस रूप में वर्तमान है, इसके पूर्वकाल में इसे किसने बनाया? यह सभी कुछ विस्तार से बताईयेगा ।। 1।।

कियत्प्रमाणं किंवर्णं कथयस्व मम प्रभो ।
त्वमेव सर्वसंदेहपङ्कशोषणभास्करः ॥ २ ॥

हे प्रभो! इन श्रीपुरनगर का कितना प्रमाण है, इसका वर्ण क्या है? वह सभी कुछ मुझे बताईये, आप ही समस्त संदेहरूपी पंक को सोखने के लिये सूर्य रूप हैं ।। 2।।

श्री हयग्रीव बोले-ः

यदा चक्ररथं प्राप्य पूर्वोक्तैर्लक्षणैर्युतम् ।
महायागानलोत्पन्ना ललिना परमेश्वरी ॥ ३ ॥

जैसा कि पूर्वोक्तलक्षणों से युक्त चक्ररथ को प्राप्त करके महायोग से अग्नि से उत्पन्न भगवती ललिता परमेश्वरी प्रकट हुईं।।3।।

व्यचेष्ट भण्डनामानमसुरं लोककण्टकम्।
तदा देवा महेन्द्राद्याः संतोषं बहु भेजिरे ॥ ४ ॥

महायागानल से प्रादुर्भूत भगवती ललिता परमेश्वरी ने लोक के कांटे भण्ड नामक असुर का समूल नाश कर दिया, तब महेन्द्रादि देवगण परम सन्तोष को प्राप्त हो गए ।। 4।।

अथ कामशिवस्यापि ललितायाश्च सुन्दरम्।
नित्योपभोगसेवार्थं मन्दिरं कर्तुमुद्यताः ॥५ ॥

भण्ड विजयानन्तर भगवान कामेश्वर और भगवती ललिताम्बा के लिये सुन्दरनित्य उपभोग सेवा के लिये मन्दिर निर्माण करने के लिये उद्यत हुए ।।5।।

कुमारा ललितादेव्या ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।
वर्धकिं विश्वकर्माणं सुराणां शिल्पकोविदम्॥६॥

भगवती ललिता के कुमार कार्तिकेय ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर आदि ने आज्ञा प्राप्त कर शिल्पकर्मी देवों के शिल्पकोविदों को ।।6।।

असुराणां शिल्पिनं च मयं मायाविचक्षणम्।
आहूय कृतसत्कारा ऊचिरे ललिताज्ञया ।। ७ ।।

असुरों के शिल्पी मायाकुशल मय को बुलाया, दोनों शिल्पियों का सत्कार करके ललिताम्बा की आज्ञा से निर्माण विषयक चर्चा की ।।7।।

कारण पुरष बोले-ः

भो विश्वकर्मन् शिल्पज्ञ भो भो मय महोदय।
भवन्तौ सर्वशास्त्रज्ञौ घटनामार्गकोविदौ ॥८ ॥

हे विश्वकर्मा जी शिल्पज्ञ! भोमय महोदय!! आप दोनों ही समस्त शास्त्रों के ज्ञाता हैं, घटना (निर्माण कार्य) मार्ग के भी ज्ञाता हैं।।8।।

संकल्पमात्रेण महाशिल्पकल्पविशारदौ।
युवाभ्यां ललितादेव्या नित्यज्ञानमहोदधेः ॥ ९ ॥

आप दोनों ही संकल्पमात्र से महाशिल्पकला के विशारद हैं आप लोगों द्वारा नित्यज्ञान (नित्यादेवियों का विस्तार क्षेत्र में प्रसरण आदि) महोदधि का ।।9।।

षोडशक्षेत्रमध्येषु तत्क्षेत्रसमसंख्यया ।
कर्तव्याः श्रीनगर्यो हि नानारत्नैरलंकृताः ॥१०॥

सोलह क्षेत्रों के मध्य में उस क्षेत्र की संख्या के अनुसार नाना रत्नों से अलंकारों से श्री नगर का निर्माण करना है ।।10।।

यत्र षोडशधा भिन्ना ललिता परमेश्वरी ।
विश्वत्राणाय सततं निवासं रचयिष्यति ॥११॥

जिस नगर में सोलह प्रकारों से भिन्न ललिता परमेश्वरी (सोलह रूपों वाली परन्तु एक 15 नित्या,

1 महानित्या, भगवती ललिता) विश्व की रक्षा के लिये निरन्तर निवास करेंगी ।।11।।

अस्माकं वा प्रियमिदं मरुतामपि च प्रियम्।
सर्वलोकप्रियमिदं तस्मान्नैव विलम्ब्यताम्॥१२॥

यह श्रीनगर बन जायेगा तो हमारी भलाई होगी तथा देवों का भी प्रिय होगा सभी लोगों का प्रिय होगा इस कारण अब इस कार्य के लिये विलम्ब नहीं करना चाहिये ।।12।।

इति कारणदेवानां वचनं तन्निशम्य तौ ।
विश्वकर्ममयौ नत्वा व्यभाषेतां तथास्त्विति ॥१३॥

इस प्रकार कारण पुरषों के वचनों को विश्वकर्मा ने और मय ने सुना तब उन दोनों ने उनकों प्रणाम कर कहा, कि आप जैसा चाहते हैं, वैसा ही करेंगे ।।13।।

पुनर्नत्वा पृष्टवन्तावेतान्कारणपूरुषान्।
केषु क्षेत्रेषु कर्तव्याः श्रीनगर्यो महोदयाः ॥१४॥

पुनः नमस्कार कर उन दोनों शिल्पकर्म विशारदों ने उन कारण पुरुषों से पूछा, कि किन क्षेत्रों में श्रीनगर का निर्माण करना है ।।14।।

ब्रह्माद्याः परिष्टिष्टास्ते प्रोचुस्तौ शिल्पिनौ पुनः ।
क्षेत्राणां प्रविभागं तु कल्पयन्तौ यथोचितम् ।।१५।।

जिन ब्रह्मादि से दोनों से शिल्पियों ने पूंछा तो ब्रह्मादि फिर उन दोनों से बोले कि क्षेत्रों का प्रविभाग तो यथोचित कल्पित कर लिया गया है ।।15।।

कारण पुरुष बोले-ः

प्रथमं मेरुपृष्ठे च निषधे च महीधरे ।
हेमकूटे हेमगिरौ पञ्चमे गन्धमादने ॥१६ ॥

प्रथम मेरूपवर्त पर दूसरा निषध पर्वत पर, तीसरा हेमकूट पर चौथा हिमगिरी पर पांचवां गन्धमादन पर।।16।।

नीलमेषे च शृङ्गाख्ये महेन्द्रे च महागिरौ।
क्षेत्राणि वा नवैतानि भौमानि विदितान्यथ ॥१७।।

छटवां नील पर्वत पर, सातवां मेष पर, आठवां श्रृंग पर्वत पर तथा नौवां महेन्द्र महागिरी पर ये भूमि पर निश्चित क्षेत्र ज्ञात हैं ।। 17।।

औदकानि तु सप्तैत्र प्रोक्तान्यखिलसिन्धुषु ।।
लवणाब्धीक्षुसाराब्धिसुराब्धिघृतसागराः ॥१८॥

जल वाले प्रदेश सात ही हैं, वे सात समुद्र हैं-लवण समुद्र, इक्षु समुद्र, सुरासागर, घृतसागर ।।18।।

दधिसिन्धुः क्षीरसिन्धुर्जलसिन्धुश्च सप्तमः ।
पूर्वोक्ता नव शैलेन्द्राः पश्चात्सप्त च सिन्धवः ।।१९।।

दधिसागर, क्षीर सागर और जल सागर पूर्वोक्त नव शैलेन्द्र और सात सिन्धु इस प्रकार योग से सोलह हुए ।।19।।

आहत्य षोडश क्षेत्राण्यम्बाश्रीपुर क्लृप्तये ।
एषु दिव्यानि वेश्मानि ललिताया महौजसः ।।२०।।

श्री ललिता परमेश्वरी के श्रीपुर की रचना के लिये इन सोलह क्षेत्रों को लेकर निर्माण कीजिये जिनमें महा पराक्रमी भगवती पराम्बा निवास करेंगी ।।20।।

सृजेतां दिव्यघटनापण्डितौ शिल्पिनौ युवाम्।
एषु क्षेत्रेषु कृप्तानां श्रीदेवीश्रीमहापुराम्॥ २१ ॥

दिव्यघरों की रचना करते हुए दिव्य घटनाओं को चित्रित करने में कुशल आप दोनों शिल्पी जिन क्षेत्रों में महासुर संहत्री देवी ने कार्यस्थल वे सभी स्थल नित्या नाम से ही ।।21।।

नामानि नित्यानाम्नैव प्रथितानि न संशयः।
सा हि नित्यास्वरूपेण कालव्याप्तिकरी परा ॥२२॥

वे जितने नाम हैं वे सभी नित्या नाम से प्रसिद्ध हैं इसमें जरा सा भी संशय नहीं है, वहीं नित्यास्वरूप से कालव्याप्ति की हुई परा है ।।22।।

सर्वं कलयते देवी कलनाकलया जगत्॥ २३॥

वहीं नित्यास्वरूप से सभी के विषय सोचती हुई समस्त संसार को धारण करती है।।23।।

नित्यायाश्च महाराज्ञीनित्यायाश्च न तद्भिदा ।
अतस्तदीयनाम्ना तु स्वनाम्नां प्रथनं पुराम्॥२४॥

वह महाराज्ञी नित्याओं की भी महानित्या है, उनका नित्याओं से उनमें कोई भेद नहीं है, अतः वह पुरी उसके नाम से पूर्वकाल में नाम सहित प्रसिद्ध हुई थी।।24।।

कामेश्वरीपुरी चैव भगमालापुरी तथा।
नित्यक्लिन्ना पुरीत्यादिनामानि प्रथितान्यलम्॥२५॥

वे नाम इस प्रकार थे, कामेश्वरीपुरी, भगमालापुरी नित्यक्लिन्ना पुरी इत्यादि पंचदशनित्याओं के नाम से पुरी थीं।।25।।

ततो नामादिवर्णस्य योग्ये पुण्यतरे दिने।
महाशिल्पप्रकारेण पुरी रचयतां शुभाः॥२६॥

अतः नाम के आदि वर्ण के योग्य पवित्रतम दिन में महाशिल्प के नियम सिद्धातों के अनुसार शुभ पुरियों का निर्माण कीजिये ।।26।।

इति कारणकृत्येन्द्रैर्ब्रह्मविष्णुमहेश्वरैः।
प्रोक्तौ तौ श्रीपुरीस्तेषु तेषु क्षेत्रेषु चक्रतुः॥२७॥

इस प्रकार कारणकृत्येन्द्र (निर्माणाधिकारी) ब्रह्मा, विष्णु-महेश्वर ने उन दोनों विश्वकर्मा और मय शिल्पियों को कहा तब उन दोनों शिल्पियों ने उन उन क्षेत्रों में श्रीपुरी का निर्माण किया ।।27।।

अथ श्रीपुरविस्तार पुराधिष्ठानदेवताः।
कथयाम्यवधायैव लोपामुद्रापते शृणु॥२८॥

इसके अनन्तर हयानन अगस्त्य जी से बोले हे लोपामुद्रा के पति कुम्भज! अब मैं विस्तार से श्रीपुर का विस्तार किस तरह हुआ और पुर के अधिष्ठान देवता कौन थे यह तुम्हें बताता हूं, उसे सुनो।।28।।

यो मेरुरखिलाधारस्तुङ्गः साहस्त्रयोजनः।
चतुर्दशजगचक्रसम्प्रोतनिजविग्रहः॥२९॥

जो मेरुपर्वत है वह उसका आधार है जो सहस्त्रयोजन ऊंचा है तथा चौदह जगच्चक्रों से अपने शरीर को ढंके हुए है ।।29।।

तस्य शृङ्गाणि चत्वारि शक्रनैर्ऋतवायुषु।
मध्यस्थले च जातानि प्रोच्छायस्तेषु कथ्यते॥३०॥

उस श्रीपुर के चार श्रृंग है 1 शक्र (उत्तर), 2 नैऋत्य (दक्षिण) और पश्चिम का बीच का हिस्सा वायु (पश्चिम और उत्तर का बीच का हिस्सा) और दिशाओं में है और एक मध्य स्थानों में, अब इनकी ऊंचाई को बताते हैं ।।30।।

पूर्वोक्तशुङ्गत्रितयं शतयोजनमुन्नतम्।
शतयोजनविस्तारं तेषु लोकास्त्रयो मताः॥३१॥

पूर्व में जो तीन श्रृंग कहे गये हैं उत्तरादि वे सौ योजन विस्तार वाले हैं एवं उन्नत हैं।। उनमें तीन लोक हैं ब्रह्म लोक, बैकुण्ठ और कैलास (शिव लोक) ।।31।।

ब्रह्मलोको विष्णुलोकः शिवलोकस्तथैव च।
एतेषां गृहविन्यासान्वक्ष्याम्यवसरान्तरे।।३२।।

इन तीनों ब्रह्मलोक, विष्णुलोक और शिवलोक इनके घर का क्षेत्रफल उसे मैं दूसरे अवसर पर बताऊंगा।।32।।

मध्यस्थितस्य शृङ्गस्य विस्तारं चोच्छ्रयं शृणु।
चतुश्शतं योजनानामुच्छ्रितं विस्तृतं तथा ॥३३॥

मध्य में स्थित श्रृंग का विस्तार और उसकी ऊंचाई सुनो, वह चार सौ योजन ऊंचा है और उतना ही विस्तृत है ।।33।।

तत्रैव शृङ्गे महति शिल्पिभ्यां श्रीपुरं कृतम् ।
चतुःशतं योजनानां विस्तृतं कुम्भसम्भव ॥ ३४ ॥

वहीं महान् श्रृंग पर शिल्पियों द्वारा श्रीपुर का निर्माण किया गया है हे कुंभज ! जो चार सौ योजन विस्तृत है।।34।।

तत्रायं प्रविभागस्ते प्रविविच्य प्रदर्श्यते।
प्राकारः प्रथमः प्रोक्तः कालायसविनिर्मितः ॥३५॥

वहां यह विभाग तुमसे विशेष विवेचन द्वारा प्रदर्शित करते हैं जो श्रीपुर का आकार है (चहार दिवारी) वह प्रथम, आकार है, उसका निर्माण कालायस (लोहे का संशोधित सार रूप स्टील) से किया गया है।।35।।

षट्शताधिक साहस्त्रयोजनायतवेष्टितः ॥३६॥

जो एक हजार छः सौ योजन चौड़ा है और चारों ओर से धेरे हुए है।।36।।

चतुर्दिक्षु द्वारयुतश्चतुर्योजनमुच्छ्रितः।
सालमूलपरीणाहो योजनायतमब्धिप ॥३७॥

हे समुद्र को पी जाने वाले कुम्भज ! चारों दिशाओं में द्वारों की ऊंचाई चार योजन है, जो शाल वृक्ष की मूल के समान है और योजन पर्यन्त चौड़ा है।। 37।।

सालाग्रस्य तु गव्यूतेरर्घं वातापितापन।
सालद्वारस्य चौन्नत्यमेकयोजनमाश्रितम् ॥३८॥

शाल के आगे एक वातायन है जो दो कोश लंबा है, हे वातापितापन ! अगस्त्य जी ! सालद्वार की ऊंचाई एक योजन पर्यन्त है।।38।।

द्वारे द्वारे कवाटे द्वे गव्यूत्यर्धप्रविस्तरे।
एकयोजनमुन्नम्रे कालायसविनिर्मिते ॥३९॥

प्रत्येक द्वारों में दो-दो किवाड़ (द्वार के पल्ले) जो एक-एक कोस विस्तार के हैं। तथा एक योजन ऊंचे हैं जो कालायस (स्टील) से निर्मित हैं।।39।।

उभयोरर्ग लद्वन्द्वमर्धक्रोशसमायतम्।
एवं चतुर्षु द्वारेषु सदृशं परिकीर्तितम् ॥४०॥

पूर्वोक्त शाल के आगे वातायन तथा कपाट हैं कपाटों में आधे कोश लम्बी अर्गला (सांकल) है, इस प्रकार चारों द्वारों में समान रूप में बनाए गए हैं ।।40।।

गोपुरस्य तु संस्थानं कथये कुम्भसंभव।
पूर्वोक्तस्य तु सालस्य मूले योजनसंमिते।
पार्श्वद्वये योजने द्वे द्वे समादाय निर्मितम्॥४१॥

हे कुम्भसम्भव! अब मैं गोपुर के संस्थान हैं जिन्हें मैं आपसे कहता हूं- पूर्वोक्त शाल के मूल में योजन पर्यन्त दोनों पार्श्वों (बगल में) में दो-दो योजन पर दो शाल लाकर बनाये हैं॥41॥

विस्तारमपि तावन्तं संप्राप्तं द्वारगर्भितम्॥४२॥

उनका विस्तार भी द्वार के भीतर उतना ही है॥42॥

पार्श्वद्वयद्वियोजन्या मध्ये सालस्य योजनम्।
मेलयित्वा पञ्चसंख्यायोजनं विस्तृतं मतम्॥४३॥

दोनों पार्श्व दो योजनों के हैं जो दो शाल के मध्य की दूरी है, सब मिलाकर पांच योजन का प्रमाण होता है॥43॥

द्वारपार्श्वद्वयेनैव कोशे द्वाःक्रोशयुग्मतः।
मेलयित्वा पञ्चसंख्यायोजनादूरमायतम्॥४४॥

द्वारों के दोनों पार्श्वों से ही कोस में दो कोसों के दो भाग से मिलाकर योग करें तो पांच संख्या का योजन अर्थात पांच योजन चौड़ाई आती है॥44॥

एवं प्रकारतस्तत्र गोपुरं रचितं मुने।
तस्माद्गोपुरमूलस्य वेष्टो विंशतियोजनः॥४५॥

हे मुने! इस प्रकार गोपुर का निर्माण हुआ है उसे गोपुर से वेष्टित बीस योजन तक है॥45॥

उपर्युपरि वेष्टस्य ह्रास एव प्रकीर्त्यते।
गोपुरस्योन्नतिः प्रोक्ता पञ्चविंशतियोजना॥४६॥

उस गोपुर का ऊपर ही ऊपर बाड़ का ह्रास ही कहा जाता है। इस प्रकार गोपुर की पूरी ऊंचाई पच्चीस योजन है। 46॥

योजने योजने द्वारं सकवाटं मनोहरम्।
भूमिकाश्चापि तावन्त्यो यथोर्ध्वह्रासंसंयुताः॥४७॥

योजन योजन पर कपाट युक्त मनोहर द्वार हैं और भूमि की लम्बाई भी उतनी ही है, जो ऊपर से कम होती गई॥47॥

गोपुराग्रस्य विस्तारो योजनामात्रमाश्रितः।
आयामोऽपि च तावान्वै तत्र त्रिमुकुटं स्मृतम्॥४८॥

गोपुर के आगे का विस्तार एक योजन आश्रित है, तथा उसका आयाम (लंबाई) भी उतनी ही हो वहां त्रिमुकुट स्मरण किया गया है।।48।।

मुकुटस्य तु विस्तारः क्रोशमात्रो घटोद्भव।
क्रोशद्वयसमुन्नम्रो ह्रासो गोपुरवन्मुने।।४९।।

हे कुंभज ! मुकुट का तो विस्तार कोस पर्यन्त ही है, दो कोस तक ऊंचा और नीचा भी उतना ही गोपुर के समान।।49।।

मुकुटस्यान्तरक्षोणी क्रोशार्थेन च संमिता।
मुकुटाः पश्चिमप्राच्या दक्षिणद्वारगोपुरे।।५०।।

मुकुट के बीच में आधे कोस भूमि है मुकुट पश्चिम और पूर्व में दक्षिण द्वार गोपुर में स्थित है।।50।।

दक्षोत्तरास्तु मुकुटाः पश्चिमद्वारगोपुरे।
दक्षिणद्वारवत्प्रोक्ता उत्तरद्वाः किरीटिकाः।।५१।।

दक्षिण और उत्तर से मुकुट पश्चिम द्वार गोपुर में है दक्षिण द्वार के समान उत्तर द्वार के किरीट (मुकुट) हैं।।51।।

पश्चिमद्वारवत्पूर्वद्वारे मुकुटकल्पनम्।
कालायतस्य सालस्यान्तरे मारुतयोजने।।५२।।

पश्चिम द्वार जैसे पूर्व द्वार में मकुट कल्पना है, कालायस साल के बीच में मारूत योजन (49) पर।।52।।

अन्तरे कांस्यसालः स्यात्पूर्ववद्गोपुरान्वितः।
सालमूलप्रमाणं च पूर्ववत्परिकीर्तितम्।।५३।।

और कांस्य साल के बीच में पूर्व के समान गोपुर है, शाल मूल का प्रमाण पूर्ववत् कहा गया है।।53।।

कांस्यसालोऽपि पूर्वादिदिक्षु द्वारसमन्वितः।
द्वारेद्वारे गोपुराणि पूर्वलक्षणभाञ्जि च।।५४।।

कांस्य साल भी पूर्वादि दिशाओं के द्वारों से युक्त हैं, प्रत्येक द्वार में गोपुर हैं उनके लक्षण परिमाण विस्तार आदि सभी पूर्वोक्त लक्षणों के जैसे हैं।।54।।

कालायसस्य सालस्य योऽन्तर्देशः समन्ततः।
नानावृक्षमहोद्यानं तत्प्रोक्तं कुम्भसंभव।
उद्भिज्जालं यावदस्ति तत्सर्वं तत्र वर्तते।।५५।।

कालायस साल का जो मध्यक्षेत्र सभी ओर से है, उसमें हे कुंभ संभव ! नाना प्रकार जाति के वृक्षों

का महा उद्यान है, जितने भी सृष्टि में उद्भिज्ज जाल है वे सभी पूर्णतया वहां की भूमि में विद्यमान हैं।।55।।

परस्सहस्रास्तरवः सदापुष्पास्सदाफलाः।

सदाप्रसवशोभायाः सदासौरभ्यसंकुलाः॥५६॥

उस भूमि में हजारों वृक्ष हैं जो सदैव पुष्पों से फलों से लदे रहते हैं, सदा पत्रों की शोभा से भरे हुए सदा सुगन्ध से भरपूर हैं।।56।।

चूताः कङ्केलयो लोध्रा बकुलाः कर्णिकारकाः।

शिंशपाश्च शिरीषाश्च देवदारुनमेरवः।।५७।।

उन वृक्षों में आम, अशोक, लोध्र, बकुल, (मौलसिरी), अमलतास, शीशम, शिरीष, देवदारु, नमेरु।।57।।

पुन्नागा भद्रनागाश्च मुचिलिन्दाश्च कर्पराः।

एलालवङ्गास्तक्कोलास्तथा कर्पूरशाखिनः॥५८॥

पुन्नाग, भद्रनाग, मुचिलिन्द, कट पल, एला (इलायची), लौंग, तक्कोल, कर्पूर वृक्ष ।।58।।

पीलवः काकतुण्डाश्च नलकाश्चासनास्तथा।

काञ्चनाराश्च लिकुचाः पारसा हिङ्गुलास्तथा।।५९।।

पीलु, काकतुण्डी, नलक, असन, कचनार, लकुच, पनस, हींग, ।।57।।

पाटलाश्च फलिन्यश्च जघन्या जघनेफलाः।

गणिकाश्च कुरुण्डाश्च बन्धुजीवाश्च दाडिमाः।।६०।।

पाटल, (गुलाब) फलिनी, जटिली, जघने फल, गणिका, कुरुण्ड (कटसरैया) बन्धुजीव और अनार।।60।।

अश्वकर्णा हस्तिकर्णाश्चाम्पेयाः कनकद्रुमाः।

यूथिकास्तालपर्ण्यश्च लाङ्गल्यश्च सदाफलाः॥६१॥

अश्वकर्णा, हस्तिकर्णा, चाम्पेय, कनकद्रुम (धतुरा) जूही, तालपर्णी, तुलसी, सदाफला ।।61।।

तालास्तमाला हिन्तालाः खजूराः शरबर्बराः।

इक्षवः क्षीरिणचैव श्लेष्मातकविभीतकाः ॥६२॥

ताल, तमाल, हिन्ताल, खर्जूर, शरबर्बर, ईक्ष (गन्ना), किटनी, लसोड़ा, विभीतक (बहेणा)।।62।।

हरीतक्यस्त्ववाक्पुष्पो घोण्टाल्यः स्वर्णपुष्पिकाः।

भल्लातकाश्च खदिराः शाकोटाश्चन्दनद्रुमाः॥६३॥

हरड़, अवाक् पुष्य, घोण्टाली, स्वर्णपुष्पी, भल्लातका (भिलावा, भिंलमा), खदिर (खैर), शाखोट (शखुआ), चन्दन ।।63।।

कालागरुद्रुमाः कालस्कन्धाश्चिञ्चा धवास्तथा।
उदुम्बरास्तथाश्वत्थाः शमीवृक्षा ध्रुवद्रुमाः॥६४॥

कालागरु, कालस्कंध, चिञ्चा, धव, उदुम्बर, अश्वत्थ (पीपल), शमीवृक्ष, ध्रुवद्रुम ।।64।।

रुचकाः कुटजाश्चैवेत्येवमाद्याः सहस्रशः।
नानाऋतुसमाविष्टा देव्याः शृङ्गारहेतवः॥६५॥

रुचक, कुटकी, सप्तपर्ण (छितवन)कृतमालक, कपित्थ तिन्तिणो (इमली) आदि अनेकों हजारों वृक्ष नानाऋतुओं के खिलने फूलने वाले थे, जो भगवती के श्रृंगार के कारण थे।।65।।

नानावृक्षमहोद्याने वर्तन्ते वरशाखिनः।
कांस्यसालस्यान्तराले सप्तयोजनदूरतः॥६६॥

अनेक वृक्षों से सम्पन्न महोद्यान में श्रेष्ठ जाति के वृक्ष थे, जो कांस्यसाल के मध्य में सात योजन दूर से।।66।।

चतुरश्रस्ताम्रसालः सिन्धुयोजनमुन्नतः।
अनयोरन्तरक्षोणी प्रोक्ता कल्पकवाटिका॥६७॥

चौकोर (वर्गाकार) ताम्रसाल (तांबे का भवन) है, जो समुद्र से एक योजन ऊंचा है, इन दोनों के बीच में भूमि है, जिसे कल्पवाटिका नाम से जानते हैं।।67।।

कर्पूरमज्जभिश्चारुरत्नबीजसमन्वितैः।
काञ्चनत्वक्सुरुचिरैः फलैस्तैः फलितद्रुमाः॥६८॥

जो भूमि कर्पूर की गन्ध वाले सुन्दर रत्नों से समन्वित सुनहरी छाल सुन्दर और रुचिकर फलों से वे वृक्ष फलों से भरे पड़े हैं।।68।।

चीनाम्बराणि दिव्यानि प्रवालान्यपि शाखिषु।
अमृतं स्यान्मधुरसः पुष्पाणि च विभूषणम्।।६९।।

उन वृक्षों की शाखाओं पर पीले पीले रंग के दिव्य कोमल प्रवाल और अंकुर निकल रहे है, उन वृक्षों का मधुरस अमृत है और पुष्प विभूषण हैं ।।69।।

ईदृशा बहवस्तत्र कल्पवृक्षाः प्रकीर्तिताः॥७०॥

ऐसे अनेकों कल्पवृक्ष हैं।।70।।

एषा कक्ष्या द्वितीया स्यात्कल्पवाटीति नामतः।
ताम्रसालस्यान्तराले सीससालः प्रकीर्तितः॥७१॥

इस प्रकार कल्पवाटी इस नाम से यह द्वितीय कक्ष है, ताम्रशाल के मध्य में सीससाल कहा गया है।।71।।

अनयोरुभयोस्तिर्यग्देशः स्यात्सप्तयोजनः।
तत्र सन्तानवाटी स्यात्कल्पवाटीसमाकृतिः॥७२॥

इन दोनों सालों के मध्य जो स्थान है वह सात योजन विस्तृत है, उस स्थान में सन्तानवाटी है, जो कल्पवाटी के समान बनावट वाली है।।।72।।

सीससालस्यान्तराले सप्तयोजनदूरतः।
आरकूटमयः सालः पूर्वसालसमाकृतिः॥७३॥

सीससाल के अन्तराल में सात योजन तक आरकूट (पीतल) मय साल है, जो पूर्वोक्त सालों जैसा है। ।।73।।

तयोर्मध्यमही प्रोक्ता हरिचन्दनवाटिका।
कल्पवाटीसमाकारा फलपुष्पसमाकुला।।७४॥

सीससाल और आरकूट साल इन दोनों के मध्य में हरिचन्दनवाटी है, जो कल्पवाटी के समान आकार वाली है, उसमे फल पुष्प आदि की बहुलता है । ।।74।।

एषु सर्वेषु सालेषु पूर्ववद्द्वारकल्पनम्।
पूर्ववद्गोपुराणां च मुकुटानां च कल्पनम्॥ ७५॥

इन सभी सालों में पहिले जैसे द्वार हैं, पूर्ववद् गोपुर और मुकुटों की कल्पना है, रचना है ।।75।।

गोपुरद्वारक्लृप्तिश्च द्वारेद्वारे समा मता।
आरकूटस्यान्तराले सप्तयोजनदूरतः॥७६॥

नगर द्वार से लगे हुए द्वार द्वार पर समिति बनाई गईं हैं, पीतल साल के बीच में सात योजन दूर ।।76।।

पञ्चलोहमयः सालः पूर्वसाळसमाकृतिः।
तयोर्मध्यमही प्रोक्ता मन्दारद्रुमवाटिका॥७७।।

पंचलोह मय साल है, यह भी पूर्वोक्त सालों के समान बनावट वाला है, आरकूट साल और पंचलोह साल के मध्य में मन्दार वृक्षों की वाटिका है।। 77।।

पञ्चलोहस्यान्तराले सप्तयोजनदूरतः।
रौप्यसालस्तु संप्रोक्तः पूर्वोक्तैर्लक्षणैर्वृतः॥७८॥

पंचलोह साल के बीच में सात योजन दूर तक रौप्य साल कहा गया है जो पूर्वोक्त सालों जैसे लक्षणों वाला है। ।।78।।

तयोर्मध्यमही प्रोक्ता पारिजातद्रुवाटिका।

दिव्यामोदसुसंपूर्णा फलपुष्पभरोज्ज्वला॥७९॥

उन दोनों पंचलोह और चांदी के भवनों के मध्य में पारिजात (कल्पवृक्ष) वृक्षों की वाटिका है, जो दिव्य आमोद से भरपूर है तथा फल पुष्पों के भारों से लदी हुई है। ।।79।।

रूप्यसालस्यान्तराले सप्तयोजनदूरतः।

हेमसालः प्रकथितः पूर्ववद्द्वारशोभितः॥८०॥

चांदी के साल के मध्य भाग में सात योजन दूर तक हेमसाल कहा गया है, जो पूर्ववद् द्वारों से शोभित है। ।।80।।

तयोर्मध्यमही प्रोक्ता कदम्बतरुवाटिका॥८१॥

चांदी के साल और हेम साल के मध्य में जो भूमि है, उसमें कदंब कल्पवृक्ष वाटिका स्थित है।।81।।

तत्र दिव्या नीपवृक्षा योजनद्वयमुन्नताः।

सदैव मदिरास्यन्दमेदुरप्रसवोज्जवलाः।।८२।।

वहां पर दिव्य दो योजन ऊंचे कदम्ब के वृक्ष हैं जो सदैव उज्जवल मदिरा का स्त्रवण करते रहते हैं, जिससे वह वाटिका नशीलीगंध से भरी रहती है। ।।82।।

एभ्यः कादम्बरी नाम योगिनी भोगदायिनी।

विशिष्टा मदिरोत्पन्ना मन्त्रिण्याः सततं प्रिया ।।८३।।

इन कदम्ब वृक्षों से प्रस्त्रवित कादम्बरी नामक नामक योगिनी भोगदायिनी विशिष्ट मदिरा उत्पन्न हुई है जो मन्त्रिणी श्यामलाम्बा को निरन्तर प्रिय है। ।।83।।

ते नीपवृक्षाः सुच्छाया बकुलाः पल्लवाकुलाः।

आमोदलोलभृङ्गालिझङ्कारैः पूरितोदराः॥८४॥

वे कदम्ब वृक्ष सुन्दर छाया वाले पत्तों और पल्लवों से भरे पूरे थे, वे वृक्ष आमोद प्रमोद से चंचल होकर गुञ्जार कर रहे थे। ।।84।।

तत्रैव मन्त्रिनाथाया मन्दिरं सुमनोहरम्।।८५॥

वहीं कदम्ब वन के बीच से मन्त्रिनाथा भगवती का सुमनोहर मन्दिर था। ।।85।।

कदम्बवनवाट्यास्तु विदिक्षु ज्वलनादितः।

चत्वारि मन्दिराण्युच्चैः कल्पितान्यादिशिल्पिना।।८६।।

वहीं पर मन्त्रिना था भगवती का सुन्दर और मन को सुन्दर लगने वाला मंदिर है जो चारों ओर से सभी दिशाओं से घिरा हुआ है, जो आदिशिल्पियों ने निर्मित कर दिया है ।।86।।

एकैकस्य तु गेहस्य विस्तारः पञ्चयोजनम्।
पञ्चयोजनविस्तारः सप्तावरणतास्थितिः॥८७॥

जो आदिशिल्पियों ने चार मंदिर बनाए हैं, उनमें एक एक का विस्तार पांच योजन तक का है, उस पंच योजन विस्तार में सात आवरणों से स्थिति है।।87।।

एवमन्यद्विदिक्षु स्यात्सर्वत्र प्रियकद्रुमाः।
निवासनगरी सेयं श्यामायाः परिकीर्तिता॥८८॥

इस प्रकार अन्य विशेष विदिशाओं में सर्वत्र प्रियक के वृक्ष हैं, यह भगवती श्यामलाम्बा की निवास नगरी कही गई है। ।।88।।

सेवार्थनगरी त्वन्या महापद्माटवीस्थले।
यद्यत्रैव गृहं तस्या बहुयोजनदूरतः॥८९॥

यह नगरी सेना के लिये है, सेवा के लिये नगरी तो अन्य है वह नगरी महापद्मवन स्थल में है, यहीं पर बहुत योजन दूर से उन श्रीदेवी का गृह है। ।।89।।

श्रीदेव्या नित्यसेवा तु मन्त्रिण्या न घटिष्यते।
अतश्चिन्तामणिगृहोपान्ते तु भवनं कृतम्॥९०॥

श्री देवी भगवती की सेवा जो नित्य होती है वह इन पूर्वोक्त स्थानों से मन्त्रिणी न ही कर सकेंगी, इसलिये चिन्तामणि गृह के निकट ही एक भवन विश्वकर्मा और मय शिल्पियों ने बना दिया।।90।।

तस्याः श्रीमंत्रिनाथायाः सुरत्वष्ट्रा मयेन च।
श्रीपुरे मुद्रिणीदेव्या मन्दिरस्य गुणान्बहून्।
वर्णयिष्यति को नाम यदि जिह्वा सहस्रवान्।।९१।।

उन मंत्रिनाथा के लिये चिन्तामणि गृह के निकट विश्वकर्मा और मय ने सुन्दर भवन बना दिया था उस भवन की अनेक विशेषताओं का वर्णन कौन कर सकेगा जो यदि हजारों जीभ वाला होगा, इतनी जीभों वाला कोई भी इस सृष्टि में हो ही नहीं सकता। ।।91।।

कादम्बरी सुधाताम्रनयनाः कलवीणया।
गायन्त्यस्तत्र खेलन्ति मान्या मातङ्गकन्यकाः।।९२।।

कादम्बरी मदिरा के मद से लाल नेत्रों वाली मधुर वीणा से गायन करती हुईं मान्य मातंग कन्याएं वहां क्रीड़ाएं करती हैं। ।।92।। अगस्त जी बोले-

मतङ्गो नाम कः प्रोक्तस्तस्य कन्याः कथं च ताः।
सेवन्ते मन्त्रिनाथां तां सदा मधुमदालसाः॥९३॥

हे ह्यानन ! ये मातंग नाम कौन हैं, किसने यह नाम कहा है और उसकी ये कन्याएं कौन हैं, जो सदा मधुमद में मस्त रहकर मन्त्रिनाथा की सेवा करती रहती हैं। ।।93।।

श्री हयग्रीव बोले

मतङ्गो नाम तपसामेकराशिस्तपोधनः॥९४॥

अगस्त्यजी ! यह मतंग नाम वाले तपस्याओं के एकराशि (पूर्णतपस्वी) तपोधन हैं। ।।94।।

महाप्रभावसंपन्नो जगत्सर्जनलम्पटः।
तपश्शक्त्या तीक्रया च सर्वत्राज्ञाप्रवर्तकः॥९५॥

वे मतंग बहुत बड़े प्रभावशाली संसारोत्पत्ति करने में समर्थ अपने तप की तीव्रशक्ति से सर्वत्र अनुल्लंघनीय आज्ञा करने वाले थे। ।।95।।

तस्य पुत्रस्तु मातङ्गो मुद्रिणीं मन्त्रिनायिकाम्।
घोरैस्तपोभिरत्यर्थ पूजयामास धीरधीः॥९६॥

उन मतंग का पुत्र मातंग हे, जिस धीर बुद्धि वाले ने मुद्रिणी मंत्रिनाथा भगवती की घोर तपस्या की।।।96।।

मतङ्गमुनिपुत्रेण सुचिरं समुपासिता।
मंत्रिणी कृतसान्निध्या वृणीष्व वरमित्यशात्।।९७।।

मतंग मुनि पुत्र मातंग ने भगवती बहुत काल तक उपासना किया , भगवती मंत्रिणी ने प्रसन्न होकर प्रत्यक्ष दर्शन देकर वर मांगने के लिये कहा। ।।97।।

सोऽपि सर्वमुनिश्रेष्ठो मातङ्गस्तपसां निधिः।
उवाच तां पुरो दत्तसान्निध्यां श्यामलाम्बिकाम्।।९८।।

समस्त मुनियों में सर्वोपरि उन तपोनिधि मातंग मुनि ने भगवती श्यामलाम्बा के सामने प्रणाम करते हुए कहा ।।98।।

मातंग मुनि ने कहा

देवि त्वत्स्मृतिमात्रेण मम सर्वाश्च सिद्धयः।
जाता एवाणिमाद्यास्ताः सर्वा अन्या विभूतयः॥99।।

हे देवी ! आपकी स्मृति मात्र से मुझे अणिमादि सभी सिद्धियां प्राप्त हो गईं और अन्य सभी विभूतियां भी प्राप्त हो गई हैं।।99।।

प्रापणीयं न मे किंचिदस्त्यम्ब भुवनत्रये।
सर्वतः प्राप्तकामस्य भवत्याश्चरणस्मृतेः ॥१००॥

हे अम्ब ! तीनों लोकों में मुझे प्राप्त करने योग्य अब कोई वस्तु नहीं रह गई है आपके श्रीचरणों की स्मृति के प्रभाव से सर्वतः प्राप्ति हो गई है।। 100।।

तथापि तव सान्निध्यमिदं नो निष्फलं भवेत्।
एकं वरं प्रार्थयेऽहं तं वरं पूरयाम्बिके ॥१०१ ॥

तो भी आपका जो यह सान्निध्य है वह निष्फल न हो, इसलिये मैं एक वर के लिये प्रार्थना कर रहा हूं उसे पूरा कर दीजिये ।।101।।

पूर्वं हिमवता सार्धं सौहार्दपरिहासवान्।
क्रीडामतनवं वाक्यैस्तत्र तेन प्रगल्भितम्॥१०२॥

पूर्वकाल में मैंने हिमालय के साथ सुहृदभाव से परिहास किया था उस परिहास को करते हुए क्रीड़ा को बढ़ाते हुए उन्होंने मुझसे कहा ।।102।।

अहं गौरीगुरुरिति श्लाघामात्मनि तेनिवान्।
तद्भाग्यं मम नैवाभूद्यतस्तत्राधिको गुणः ॥१०३॥

मैं गौरी का गुरु हूं इस प्रशंसा को पाने के लिये मैंने तप किया है। परन्तु मेरा उतना बड़ा भाग्य तेज नहीं है क्योंकि वहां अत्यधिक गुणों का विकास है। ।।103।।

उभयोर्गुणसाम्ये तु मित्रयोरधिके गुणे।
एकस्य कारणाज्जाते तत्रान्यस्य स्पृहा भवेत्।।१०४।।

दोनों गुणों के समान होने पर मित्र होने में अधिक गुण हैं, क्योंकि एक के कारण से उत्पन्न होने पर अन्य के लिये स्पृहा होती है, अर्थात जैसे कि मैंने तपस्या किया उससे सिद्धियां मिलीं और इच्छा होने पर पुनः तप किया तो वैभव मिला, इच्छाएं अनन्त हैं वे बढ़ती ही जाती हैं। ।।104।।

गौरीगुरुत्वश्लाघार्थं प्राप्तकामोऽप्यहं तपः।
कृतवान्मन्त्रिणीनाथे तत्त्वं मत्तनया भव।
यतो मन्नामविख्याता भविष्यसि न संशयः ।।१०५।।

इसलिये मैंने गौरी का गुरु हूं, इस श्लाघा (स्पृहा) के लिये पिछली कामनाओं की पूर्ति होने पर भी तप किया है, इसलिये हे मंत्रिनाथे ! आप मेरी पुत्री होओ, और मेरे नाम से विख्यात होओगी इसमें कोई संशय नहीं है। ।।105।।

इत्युक्तं वचनं श्रुत्वा मातङ्गस्य महामुनेः।
तथास्त्विति तिरोधत्त स च प्रीतोऽभवन्मुनिः॥106।।

इस प्रकार मातंग महामुनि के वचन सुनकर तथास्तु ऐसा कह कर देवी अन्तर्धान हो गईं और वे मुनि

प्रसन्न हो गए ।।106।।

मातङ्गस्य महर्षेस्तु पत्न्याः स्वप्ने सदामदा।
तापिच्छमञ्जरीमेकां ददौ कर्णावतंसतः ॥१०७॥

उन मातंग महामुनि की पत्नी को स्वप्न में भगवती ने अपने कर्णाभूषण से एक तापिच्छ मंजरी (तमाल वृक्ष के फूल की मंजरी) को दिया। ।।107।।

तत्स्वप्नस्य प्रभावेन मातङ्गस्य सधर्मिणी।
नाम्ना सिद्धिमती गर्भे लघुश्यामामधारयत्।।१०८।।

उस स्वप्न के प्रभाव से मातंग महामुनि की सहधर्मिणी सिद्धिमती ने गर्भ में लघुश्यामा को धारण किया। ।।108।।

तत एव समुत्पन्ना मातङ्गी तेन कीर्तिता।
लघुश्यामेति सा प्रोक्ता श्यामेयं मूलकन्दभूः।।109।।

तदनन्तर समुत्पन्न वे लधुश्यामा देवी मातंगी नाम से प्रसिद्ध हुईं, जिनकी मूल कन्द की भूमि श्यामा देवी हैं ।।109।।

पितुः सृष्टिमहाविद्यामधीत्य कलशोद्भव।
तत्प्रभावाल्लघुश्यामा ससर्ज स्वसमा बहूः।
मातङ्गकन्यका हृद्याः कोटीनामपि कोटिशः।।११०।।

हे कुंभज! उन लघुश्यामा ने सृष्टिमहाविद्या तत्व का पिता से लेकर अध्ययन किया, उस महाविद्या के प्रभाव से उन्होंने ही जैसी करोड़ों शक्तियां उत्पन्न कर दीं वे मातंग कन्याएं हृदयाकर्षक थीं और करोड़ों की संख्या में थीं। ।।110।।

लघुश्यामा महाश्यामा मातङ्गीवृन्दसंयुता।
अङ्गशक्तित्वमापन्ना सेवते प्रियकप्रियाम्॥१११॥

लघु श्यामा, महाश्यामा आदि मातंगी समूह से युक्त है वे सभी भगवती अंगशक्तित्व को प्राप्त (प्रधान के अंग रक्षक) होकर प्रिय का प्रिय कार्य संपन्न कराती हैं ।।111।।

इति मातङ्गकन्यानामुत्पत्तिः कुम्भसंभव ।
कथिताः सप्तकक्ष्याञ्च साला लोहादिनिर्मिताः॥112।।

हे कुम्भ संभव! अगस्त्यजी! इस प्रकार मातंग कल्याओं का विवेचन किया तथा लोहसालादि निर्मित साल सात कक्षों वाले हमने तुमसे कहा है ।।112।।

अगस्त्य जी बोलेः-

लोहादिसप्तसालानां रक्षका ये वसन्ति वै।
तन्नाम कीर्तय प्राज्ञ येन वै संशयच्छिदा ।।११३।।

हे भगवन! लोहादि सालों के रक्षक जो हैं, उनके नामादि बतावें जिससे मेरा संशय दूर हो जावे।।113।।

हयग्रीव बोलेः-

नानावृक्षमहोद्याने वर्तते कुम्भसंभव।
महाकालः सर्वलोकभक्षकः श्यामविग्रहः ।।११४।।

हे अगस्त्य जी! उस नाना वृक्ष महोद्यान में श्याम शरीर वाले सर्वलोकभक्षक महाकाल रहते हैं।।114।।

श्यामकञ्चुकधारी च मदारुणविलोचनः।
ब्रह्माण्डचषके पूर्ण पिबन्विश्वरसासवम्।।११५।।

वे महाकाल श्यामकंचुक धारण किये हुए हैं मद् से लाल लाल विलोचन वाले हैं ब्रह्माण्ड रूपी चषक (प्याले) में विश्वात्मक आसव (मद्य) का सेवन करते हैं। ।।115।।

महाकाली घनश्यामामनङ्गाद्रोमपाङ्ग्यन्।
सिंहासने समासीना कल्याणे कलनात्मके।।११६।।

वे घने काले मेघ के समान वर्णवाली अनंग से आर्द्र महाकाली को अपांग दृष्टि से देखते हुए सृष्टि कब हुई, कब तक रहेगी, कब संहार होगा आदि कलना में आसक्त कल्पान्त के विषय में चिन्तन रत सिंहासन में विराजमान ।।116।।

ललिताध्यानसंपन्नो ललितापूजनोत्सुकः।
वितन्वँल्ललिताभक्तेष्वायुषो दीर्घदीर्घताम्।
कालमृत्युप्रमुख्यैश्च किङ्करैरभिसेवितः ।।११७।।

उस समय वे महाकाल महाराज्ञी ललिताम्बा के ध्यान में रहते हैं तथा ललिता के पूजन करने के उत्सुक हैं तथा ललितोपासकों की दीर्घायुष्यता को करने वाले हैं एवं वे स्वयं काल मृत्यु के सेवकों द्वारा सेवित हैं ।।117।।

महाकालीमहाकालौ ललिताज्ञाप्रवर्तकौ।
विश्वं कलयतः कृत्स्नं प्रथमोद्यानवासिनौ।।११८।।

महाकाली और महाकाल ये ललिताम्बा भगवती की आज्ञा से किसी भी कार्य में प्रवृत्त होते हैं तथा दोनों ही विश्व की गणना करते हैं अर्थात कितना समय सृष्टि का व्यतीत हुआ और कितना बाकी है, कब किसका समय पूरा हो रहा है आदि गणना में संलग्न रहते हुए प्रथम उद्यान में निवास करते हैं (प्रथम आकार कालायस का है) ।।118।।

कालचक्रं महत्तत्र तस्यैवासनतां गतम्।
चतुरावरणोपेतं मध्येबिन्दुमनोहरम् ॥११९॥

उस प्रथम उद्यान कालायस नाम वाले में काल चक्र आसन (आधार) बना हुआ है, जिसके चार आवरणों से युक्त मनोहर बिन्दु है ।।119।।

त्रिकोणं पञ्चकोणं च षोडशच्छदपङ्कजम्।
अष्टारपङ्कजं चैव महाकालस्तु मध्यगः॥१२०॥

वे चार आवरण और बिन्दु इस प्रकार हैं- 1 त्रिकोण, 2 पंचकोण, 3 सोलह दल कमल, 4 आठ त्रिकोण कमल तथा बिन्दु मध्य में जिसमें महाकाल हैं ।।120।।

त्रिकोणे तु महाकल्पा महासन्ध्या महानिशा।
एतास्तिस्रो महादेव्यो महाकालस्य शक्तयः।।१२१।।

उस काल चक्र के बिन्दु में महाकाल, त्रिकोण में महाकल्पा, महासंध्या और महानिशा शक्तियां हैं जो महाकाल की शक्तियां हैं ।।121।।

पञ्चकोणे कृता त्रेता द्वापरा च कलिस्तथा।
मन्वन्तरा च विज्ञेया महाकालस्य शक्तयः।।१२२।।

उस काल चक्र से पंचकोण में कृत युग (सतयुग), त्रेतायुग, द्वापर युग, और कलियुग तथा मन्वन्तर (14 मन्वन्तर) हैं ये महाकाल की शक्ति हैं ।।122।।

तत्रैव पञ्चकोणाग्रे प्रत्यूषा च पितृप्रसूः।
प्राह्लापराह्ला मध्याह्ला पञ्च कालस्य शक्तयः।।१२३।।

वहीं पंचकोण के आगे भाग में प्रन्युषा, पितृप्रसू, प्राह्न, अपराह्न और मध्याह्न ये पांच काल की शक्तियां हैं ।।123।।

अथ षोडशपत्राब्जे स्थिताः शक्तीमुने शृणु।।१२४।।

इसके बाद हे मुनि! षोडशपत्र कमल में जो शक्तियां हैं उनके नाम सुनो ।।124।।

दिना निशा तमिस्रा च ज्योत्स्नी चैव तु पक्षिणी।
प्रदोषा च निशीथा च प्रहरा पूर्णिमापि च।।१२५।।
राका चानुमती चैव तथैवामावसी पुनः।
सिनीवाली कुहूर्भद्रा उपरागा च पोडशी ॥१२६।।

1 दिन, 2 निशा 3 तमिस्त्रा, 4 ज्योत्स्नी, 5 पक्षिणी, 6 प्रदेषा, 7 निशीथा, 8 प्रहरा, 9 पूर्णिमा।10 राका, 11 अनुमती, 12 अमावाास्यिका, 13 सिनीवाली, 14 कुहु, 15 भद्रा, 16 उपरागा।।125,126।।

एताः षोडश पत्रस्थाः शक्तयः षोडश स्मृताः।
कला काष्ठा निमेषा च क्षणा चैव लवा त्रुटिः॥127॥

अब सोलह दल कमल वासिनी शक्तियों के नाम इस प्रकार हैं-यथा 1 कला, 2 काष्ठा, 3 निमेषा, 4 क्षणा, 5 लवा, 6 त्रृटि ॥127॥

मुहूर्ता कुतपा होरा शुक्लपक्षा तथैव च ।
कृष्णपक्षायना चैव विषुवा च त्रयोदशी॥१२८॥

7 मुहूर्ता, 7 कुतपा, 9 होरा, 10 शुक्लपक्षा, 11 कृष्णपक्षा, 12 अयना (दक्षिणायन, उत्तरायण) (दक्षोत्तर) 13 विषुव (काल संधि, मेष और तुला) ।128॥

संवत्सरा च परिवत्सरेदावत्सरापि च।
एताः षोडशपत्राप्रवासिन्यः शक्तयः स्मृताः॥१२९॥

14 संवत्सरा, 15 परिवत्संरा, 16 इडावत्सरा, ये सोलह पत्रों के आगे निवास करने वाली शक्तियां हैं ॥129॥

इद्वत्सरा ततश्चेन्दुवत्सरा वत्सरापि च।
तिथिर्वारा च नक्षत्रा योगा च करणापि च।
एताश्च शक्तयो नागपत्राम्भोरुहसंस्थिताः॥१३०॥

इद्वत्सरा, इन्दुवत्सरा, अवत्सरा, तिथि, वार, नक्षत्र, योग, करण ये शक्तियां नाग पत्र कमल से संस्थित हैं ॥130॥

कलिः कल्या च कलना काली चेति चतुष्टयम्।
द्वारपालकतां प्राप्तं कालचक्रस्य भास्वतः ॥१३१॥

कलि, कल्या (कल्पा) कलना और काली ये चार तेजस्वी काल चक्र के द्वारपाल हैं ॥131॥

एता महाकालदेव्यो मदप्रहसिताननाः ॥१३२॥

ये सभी महाकाल देवियां मद से भरे चषक धारण किये हुए मद से प्रहसित मुख वाली हैं ॥132॥

मदिरापूर्णचषकं पिशितं चारुणप्रभम्।
दधानाः श्यामलाकाराः सर्वाः कालस्य योषितः॥133॥

ये सभी महाकाल देवियां मदिरा से भरे चषक धारण किये हुए और मद से प्रहसित मुखवाली हैं ये सभी महाकाल की पत्नियां (शक्तियां) हैं ॥133॥

ललितापूजनध्यानजपस्तोत्रपरायणाः।
निषेवन्ते महाकालं कालचक्रासनस्थितम्॥१३४॥

तथा ये चारों शक्तियां परमेशानी भगवती ललिताम्बा की पूजा, ध्यान, जप, स्तोत्र पाठ में संलग्न होकर काल चक्रासन में स्थित महाकाल की सेवा करती हैं। 134।।

अथ कल्पकवाट्यास्तु रक्षकः कुम्भसंभव।
वसन्तर्तुर्महातेजा ललिताप्रियकारकः॥ १३५॥

इस के अनन्तर हे कुम्भज! कल्पकवाटी के रक्षक रूप में भगवती ललिताम्बा का प्रिय करने वाले महा तेजस्वी वसन्तऋतु हैं ।।135।।

पुष्पसिंहासनासीनः पुष्पमाध्वीमदारुणः।
पुष्पायुधः पुष्पभूपः पुष्पच्छत्रेण भूषितः।।१३६।।

वह कल्पकवाटी रक्षक पुष्पों के सिंहासन में आसीन है, पुष्पों के मधु रस से अरूण वर्ण है, उसके आयुध पुष्पों के हैं और वह पुष्पों के आभूषण धारण किये हुए है तथा पुष्प के छत्र से सुशोभित है।136।।

मधुश्रीर्माधवश्रीश्च द्वे देव्यौ नस्य दीव्यतः।
प्रसूनमदिरामत्ते प्रसूनशरलालसे ।।१३७।।

उन देदीप्यमान वसन्त की मधु श्री (चैत्रमास) और माधव श्री (वैसाख मास) ये दो देवियां हैं जो वसन्त की पत्नियां हैं जो पुष्पों की मदिरा से मत्त हैं और वसन्त के पुष्पबाणों की लालसा वाली हैं।।137।।

सन्तानवाटिकापालो ग्रीष्मर्तुस्तीव्रलोचनः।
ललिताकिंकरो नित्यं तस्या आज्ञाप्रवर्तकः।।१३८।।

सन्तान वाटिका के रक्षक रूप में तीक्ष्ण लोचन ग्रीष्म ऋतु है ये नित्य ललिता भगवती के सेवक हैं और उनकी आज्ञा का पालन करने वाले लागू करने वाले हैं ।।138।।

शुक्रश्रीश्च शुचिश्रीश्च तस्य भार्ये उभे स्मृते।
हरिचन्दनवाटीषु मुने वर्षतुर्ना स्थिता ॥१३९॥

शुक्रश्री (ज्येष्ठ मास) और शुचि श्री (आषाढ़ मास) ये दो उन ग्रीष्म ऋतु की भार्या हैं, हे मुने! हरिचन्दन वाटी तो वर्षा ऋतु द्वारा रक्षित है ।।139।।

स वर्षर्तुर्महातेजा विद्युत्पिङ्गललोचनः।
वज्राट्टहासमुखरो मत्तजीमूतवाहनः ॥१४०॥

वह हरिचन्दन वाटी का रक्षक वर्षर्तु बड़ा तेलस्वी है बिजली की चमक वाले पिंगल नेत्रों का है, वज्र की जैसी कठोर ध्वनि का अट्टहास करने वाला है और वह उमड़ते घुमड़ते मदमस्त मेघों का वाहन वाला है ।।140।।

जीमूतकवचच्छन्नो मणिकार्मुकधारकः।
ललिता सूजनध्यान जपस्तोत्रपरायणः ॥१४१ ॥

वह वर्षर्तु मेघों का कवच धारण किये हुए है, उसका धनुष इन्द्रधनुष (मणि धनुष) है, वह भगवती ललिताम्बा के पूजन ध्यान जप और स्तोत्र पारायण में संलग्न है ।।141।।

वर्तते विन्ध्यमथनत्रैलोक्याह्लादकारकः।
नभश्रीश्च नभस्यश्रीः सरसा सस्यमालिनी।।१४२।।

हे विंध्यमदमथन! वह वर्षर्तु तीनों लोकों को ग्रीष्म की तपन शान्त कर आह्लाद देता है, उसकी नभ श्री (श्रावणमास) नभस्य श्री (भाद्रपद मास) रस पूर्ण हैं सस्य (फसल) की माला धारण की हुई हैं।।142।।

अम्बा दुला नितत्नी चाभ्रयन्ती मेघयन्तिका।
वर्षयन्ती चुपुणिका वारिधारा च शक्तयः।।१४३।।

अम्बा, दुला, नितन्ती, अभ्रयन्ती, मेघयन्तिका, वर्षयन्ती, चुपुणिका ये मेघों का नियन्त्रण करने वाली मेघयन्त्रिकाएं हैं निरन्तर बरसती हुईं जल की धाराएं वर्षा ऋतु की शक्तियां हैं ।।143।।

वर्षर्तोर्द्वादश प्रोक्ता मदारुणविलोचनाः।
ताभिः समं स वर्षर्तुः शक्तिभिः परमेश्वरीम्।।१४४।।

मद से रक्तिम नेत्रों वाली बरसती हुईं वे शक्तियां बारह हैं उन बारह शक्तियों के साथ वह वर्षा ऋतु भगवती प्रकृति स्वरूपा ललिताम्बा की ।।144।।

सदैव पूजयन्नास्ते निजोत्थैथैः पुष्पमण्डलैः।
ललिताभक्तदेशांस्तु भूषयत् सस्यसंपदा॥१४५॥

निज अर्थात अपने द्वारा उत्पन्न किये गए पुष्प समूहों से सदैव पूजन करते हुए वह वर्षाऋतु भगवती ललिता परमेश्वरी के भक्तों के निवास देशों को अपनी पुष्प, सुमन सम्पदा से आभूषित करती रहती है ।।145।।

तद्वैरिणां तु वसुधामनादृष्ट्या निपीडयन्।
वर्तते सततं देवीकिंकरो जलदागमः ॥ १४६ ॥

तथा जो उन ललितादेवी के शत्रु स्थान हैं वहां की भूमि को अनावृष्टि और अतिवृष्टि से पीड़ित करते हैं वे देवी के किंकर मेघ समूह ।।146।।

मन्दारवाटिकायां तु सदा शरदृतुर्वसन्।
तां कक्ष्यां रक्षति श्रीमॉल्लोकचित्तप्रसादनः।।१४७।।

मन्दारवाटिका में सदैव लोक के चित्त को प्रसन्न करने वाले शरद ऋतु निवास करते हुए उस

वाटिका की भूमि की रक्षा करते हैं ।।147।।

इषश्रीश्च तथोर्जश्रीस्तस्यर्तोः प्राणनायिके।
ताभ्यां सह ऋतुः श्रीमान्निजोत्थैः पुष्पमण्डलैः ।।148।।
अभ्यर्चयति सम्राज्ञीं श्रीकामेश्वरयोषितम्।
हेमन्तर्तुर्महातेजा हिमशीतलविग्रहः ॥१४९॥

इषश्री (आश्विन मास) और ऊर्जश्री (कार्तिक मास) ये दो मास उस शरद ऋतु की प्राण नायिकाएं हैं, इनके साथ वह शरद ऋतु अपने में उत्पन्न नानाविघ पुष्प मण्डलों से कामेश्वर प्रिया सम्राज्ञी का पूजन करते हैं, नवरात्रोपासनादि (शारदीय नवरात्र शरत्पूर्णिमा एवं महालक्ष्मी पूजा तथा देवोत्थाली प्रबोधोत्सव) पर्वों में शरत् के बाद हेमन्त ऋतु महातेजस्वी और हिम (बर्फ) से ठंडे शरीर वाला आता है ।।148,149।।

सदा प्रसन्नवदनो ललिताप्रियकिंकरः।
निजोत्थैः पुष्पसम्भारैरर्चयन् परमेश्वरीम्।।१५०।।

वह हेमन्त ऋतु सदा प्रसन्न मुख रहता है, भगवती ललिता का प्रिय सेवक है, वह सदैव ही अपने प्रकृति के अनुसार फूले हुए पुष्प सामग्रियों से परमेश्वरी की अर्चा करता हुआ ।।150।।

पारिजातस्य वाटीं तु रक्षतील्वलमर्दन।
सहश्रीश्च सहस्यश्रीस्तस्य द्वे योषितौ शुभे ॥१५१॥

हे इल्वलदैत्यमर्दन! अगस्त्य! पारिजात वृक्ष की वाटिका का रक्षण करते रहता है, उसकी सह श्री (मार्गशीर्ष-अग्रहन मास) और सहस्य श्री (पौष मास) थे उसकी पत्नियां हैं ।।151।।

कदम्बवनवाट्यास्तु रक्षकः शिशिराकृतिः।
शिशिरर्तुर्मुनिश्रेष्ठ वर्तते कुम्भसंभव ।।१५२॥

हे मुनि श्रेष्ठ कुम्भसम्भव! वह शिशिर की जैसी बर्फीली आकृति वाला शिशिर ऋतु कदम्बवनवाटी का रक्षक है ।।152।।

सा कक्ष्या तेन सर्वत्र शिशिरीकृतभूतला।
तद्वासिनी ततः श्यामा देवता शीतलाकृतिः ।।१५३।।

उन शिशिर ऋतु ने समस्त कक्ष्या भू क्षेत्र को तुषार युक्त बना दिया है वहां निवास करने वाली देवी शीतलाकृति श्यामा हैं ।।153।।

तपश्रीश्च तपस्यश्रीस्तस्य द्वे योषिदुत्तमे।
ताभ्यां सहार्चयत्यम्बां ललितां विश्वपावनीम्।।154।।

उस शिशिर ऋतु की तपश्री (माघ मास) तपस्यश्री (फाल्गुन मास) ये दो उत्तम पत्नियां हैं इनके वह माध्य पुष्पों श्वेतकुन्द पुष्प तथा पलास पुष्प (टेसू) से विश्वपावनी माता ललिता की पूजा करता है ।।154।।

अगस्त्य जी बोले-

गन्धर्ववदनश्रीमन्नानावृक्षादिसप्तके।
प्रथमोद्यानपालस्तु महाकालो मया श्रुतः ॥१५५॥

श्रीमान् हयग्रीव!! नाना जाति प्रकार के वृक्षों से युक्त प्रथम उद्यान पालक महाकाल हैं यह मैंने सुना।।155।।

चतुरावरणं चक्रं त्वया तस्य प्रकीर्तितम्।
षण्णामृतूनां सर्वेषां कल्पकायासु वाटिषु ।
पालकत्वं श्रुतं त्वत्तश्चक्रदेव्यस्तु न श्रुताः।।१५६।।

आपने उनका चार आवरणों वाला चक्र भी सुनाया और अन्य छः ऋतुओं का सभी का कल्पक आदि वाटिकाओं में पालक होने का विवरण भी हमने सुना पर उन चक्रों की देवियां कौन हैं यह नहीं सुना ।।156।।

अत एव वसन्तादिचक्रावरणदेवताः।
क्रमेण ब्रूहि भगवन्सर्वज्ञोऽसि यतो महान्।।१५७।।

अतएव वसन्नादि चक्र के आवरण देवताओं को क्रम से आप बताईये, क्योंकि भगवन्! आप महान् हैं और सर्वज्ञ हैं ।।157।।

हयग्रीव जी बोले-

आकर्णय मुनिश्रेष्ठ तत्तच्चक्रस्थदेवताः ॥ १५८ ॥

हे मुनि श्रेष्ठ! आप उन चक्रों में स्थित देवताओं के नाम सुनिये ।।158।।

कालचक्रं पुरा प्रोक्तं वासन्तं चक्रमुच्यते।
त्रिकोणपञ्चकोणौ च नागच्छदसरोरुहम्॥१५९॥

कालचक्र हमने पहिले ही बता दिया है उसे ही वासन्त चक्र कहा जाता है, वही ऋतुओं का चक्र है, उस चक्र में त्रिकोण, पंचकोण और नागपत्र (दलआठ) कमल हैं ।।159।।

षोडशारं सरोजं च दशारद्वितयं पुनः।
चतुरस्त्रं च विज्ञेयं सप्तावरणसंयुतम्॥१६०॥

षोडश दल कमल दो दसत्रिकोण हैं फिर चार त्रिकोण सात आवरणों से युक्त हैं ।।160।।

तन्मध्ये विन्दुचक्रस्थो वसन्तर्तुर्महाद्युतिः।
तदङ्गद्वयसंलग्ने मधुश्रीमाधवश्रियौ॥१६१॥

उनके मध्य में बिन्दुचक्र उसमें महातेजस्वी वसन्त ऋतु विद्यमान है वहां एक दूसरे से संलग्न मधुश्री और माधव श्री (चैत्र और वैशाख) हैं ।161।।

उभाभ्यां निजहस्ताभ्यामुभयोः स्तनमेककम्।
निपीडयन्नन्यहस्तयुगलेन ससौरभम्।।१६२।।

जो दोनों अपने हाथों से एक दूसरे के स्तनों को एक के एक को पकड़े हुए हैं तथा दूसरे अन्य हस्त युगल से पीड़ित करते हुए सौगन्ध्य से युक्त ।।162।।

खपुष्पमदिरापूर्णचषकं पिशितं महत्।
एवमेव च सर्वर्तुध्यानं विन्ध्यविमर्दन ॥१६३॥

पुष्प सहित मदिरा से भरे प्याले और मांस खण्ड को लिये हुए हैं इसी प्रकार ही है विन्ध्यविर्मदन! अगस्त्य!! सभी ऋतुओं का ध्यान क्रम है ।।163।।

वर्षर्तोस्तु पुनर्ध्याने शक्तिद्वितयमादिमम्।
अङ्कस्थितं तु विज्ञेयं शक्तयोऽन्याः समीपगाः।।164

वर्षा ऋतु के पुनर्ध्यान में दो शक्ति आदिम को गोद में स्थित समझना चाहिये तथा अन्य शक्तियां उनके समीप रहने वाली हैं ।।164।।

अथ वासन्तचक्रस्थदेवीः शृणु वदाम्यहम्।
मधुशुक्लप्रथमिका मधुशुक्लद्वितीयका ॥१६५ ॥

हे विन्ध्यमर्दन ! अगस्त्य!! अब मैं वासन्त चक्र में स्थित देवियों के विषय में बता रहा हूं उसे सुनो। उन देवियों में, मधु शुक्ल प्रतिपदा, मधु शुक्ल द्वितीया का (मधु शुक्ल द्वितीया तिथि) ।।165।।

मधुशुक्लतृतीया च मधुशुक्लचतुर्थिका।
मधुशुक्ला पञ्चमी च मधुशुक्ला च षष्ठिका।।१६६।।

मधु शुक्ल तृतीया, मधु शुक्ल चतुर्थी, मधु शुक्ल पंचमी, मधु शुक्ल षष्ठी ।।166।।

मधुशुक्ला सप्तमी च मधुशुक्लाष्टमी पुनः।
नवमी मधुशुक्ला च दशमी मधुशुक्लतः ॥ १६७॥

मधुशुक्ल सप्तमी, मधुक्लाष्टमी, मधुशुक्ला नवमीं, मधुशुक्ल दशमीं।।167।।

मधुशुक्लैकादशी तु द्वादशी मधुशुक्लतः।
मधुशुक्लत्रयोदश्या मधुशुक्लचतुर्दशी ॥१६८॥

मधु शुक्ल सप्तमी, मधु शुक्ल अष्टमी, मधु शुक्ल नवमीं, मधु शुक्ल दशमी, मधु शुक्ल एकादशी, मधु शुक्ल द्वादशी, मधु शुक्ल त्रयोदशी, मधु शुक्ल चतुर्दशी ।।168।।

मधुशुक्ला पूर्णिमा च प्रथमा मधुरुष्णतः।
मधुकृष्णद्वितीया च मधुकृष्णतृतीयका ॥१६९॥

मधु शुक्ल पूर्णिमा (अब आगे कृष्ण पक्ष प्रारंभ) मधु कृष्ण प्रथमा (प्रतिपदा) मधु कृष्ण द्वितीया, मधु कृष्ण तृतीया ।।169।।

मधुकृष्णचतुर्थी च मधुकृष्णा तु पञ्चमी।
षष्ठी तु मधुकृष्णा स्यात्सप्तमी मधुकृष्णतः १७०।।

मधु कृष्ण चतुर्थी, मधु कृष्ण पंचमी, मधु कृष्ण षष्ठी, मधु कृष्ण सप्तमी ।।170।।

मधुकृष्णाष्टमी च स्यान्नवमी मधुकृष्णतः।
दशमी मधुकृष्णा तु विन्ध्यदर्पनिषूदन ॥१७१॥

मधु कृष्ण अष्टमी, मधु कृष्ण नवमीं और हे विन्ध्यदर्पनिषूदन! मधु कृष्ण दशमी तिथि हैं।।171।।

मधुकृष्णैकादशी तु द्वादशी मधुकृष्णतः।
मधुकृष्ण त्रयोदशी मधुकृष्णचतुर्दशी।
मध्यमा चेति विज्ञेयास्त्रिंशदेतास्तु शक्तयः १७२।।

मधु कृष्णएकादशी, मधु कृष्णद्वादशी, मधु कृष्णत्रयोदशी, मधु कृष्णचतुर्दशी और मधु कृष्णअमावास्या ये तीस शक्तियां (शुक्लपक्ष की 15 कृष्णपक्ष की 15) मधुमास (चैत्रमास) वसन्तऋतु की हैं ।।172।।

एवमेव प्रकारेण माधवाख्योपरि स्थिताः।
शुक्लप्रतिपदाद्यास्तु शक्तयत्रिंशदन्यकाः ॥१७३॥

मधु जैसे माधव (वैशाख) मास की भी शुक्ल, प्रतिपदा से कृष्ण अमा तक तीस शक्तियां कुल वसन्त ऋतु की 60 शक्तियां हैं ।।173।।

मिलित्वा षष्टिसंख्यास्तु ख्याता वासन्तशक्तयः।
स्वैःस्वैमन्त्रौस्तत्र चक्रे पूजनीया विधानतः ॥१७४॥

मधु मास की तीस माधवमास की तीस दोनों के योग से साठ शक्तियां वसन्त ऋतु की होती हैं, विधान पूर्वक अपने अपने द्वारा उनकी पूजा करनी चाहिए ।।174।।

वसन्तचक्रराजस्य सप्तावरणभूमयः।
षष्टिः स्याद्देवताषष्टिस्तासु भूमिषु संस्थिताः।
प्रविभज्यार्चनीयास्स्युस्तत्तन्मंत्रेण साधकैः ।।१७५।।

वासन्त चक्रराज में सात आवरण भूमियां हैं उनमें 60 देवता 60 भूमियों में स्थित हैं अतः विभाग करके अलग उनकी अलग अलग पूजा उन उन मन्त्रों से साधक लोगों को करना चाहिए।।175।।

यथा वासन्तचक्रेषु तथैवान्येषु चतुर्षु।
देवतास्तु परं भिन्नाः शुक्रशुच्यादिभेदतः ।।१७६।।

जिस प्रकार वासन्त चक्रराजों में शक्ति स्थान एवं पूजा विधान है, उसी तरह से प्रत्येक मास भेद से साठ शक्तियों की पूजा अलग अलग मासों के देवता तथा उनसे सम्बद्ध मंत्रों से पूजा होगी ऐसा नहीं कि एक मास देवता, सभी मासों में वे ही होंगे प्रत्येक मास का देवता अलग होगा एवं मंत्र भी अलग होंगे ।।176।।

शुक्रशुक्लप्रथमिका शुक्रशुक्लद्वितीयका।
एवमेव प्रकारेण शुक्लकृष्णादि कीर्तयेत्॥१७७॥

शुक्र शुक्ल प्रथमा (प्रतिपदा) शुक्र शुक्ल द्वितीया इत्यादि आगे की शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा (15) तक कृष्ण पक्ष की अमा (30) तक ऊहा करके चिन्तन करे ।।177।।

एवमेव प्रकारेण शुचिशुक्लादि भेदतः।
शक्तयः षष्टिसंख्याता ग्रीष्मचक्रे महोदयाः ।।१७८।।

शुक्रे (ज्येष्ठ) शुचि (आषाढ़) इन भेदों से ग्रीष्म चक्र में महोदया शक्तियां साठ होती हैं।।178।।

एवं वर्षर्त्वादिचक्रे भेदान्नभनभस्यजान्।
षष्टिः षष्टिस्तु शक्तीनां चक्रे चक्रे प्रतिष्ठिता ।।१७९।।

इसी प्रकार वर्षा ऋतु चक्र में देवियों की संख्या साठ है उनमें नभ (श्रावण मास) नभस्य (भाद्रपद मास) मासों के आधार पर अर्थात श्रावण शुक्ल पक्ष की 15, और कृष्ण पक्ष की 15, दोनों मिलकर 30 हुईं इसी तरह भाद्रपस मास की शुक्ल पक्ष की 15, योग से 30 शक्तियां हुईं इनके योग से नभ और नभस्य की शक्तियां साठ (60) हो जाती हैं इसी प्रकार से प्रत्येक ऋतुचक्र में साठ-साठ शक्तियां प्रतिष्ठित हैं ।।179।।

ग्रन्थविस्तरभीत्या तु तत्संख्यानाद्विरम्यते।
आर्तव्यः शक्तयस्त्वेता ललिताभक्तसौख्यदाः।।180।।

ग्रन्थ विस्तार के भय से चक्रों में उन मासों के दोनों पक्षों की गणना से कुल शक्तियों का चिन्तन

कैसे किया जाता हे, उसका पूर्व में कहे गए चक्रों के क्रम में निर्देश किया गया है, आगे के संख्यान से विराम लेते हैं, ये सभी शक्तियां ललिता देवी के (प्रकृति) भक्तों को सुख प्रदान करती हैं ।।180।।

ललितापूजनध्यानजपस्तोत्रपरायणाः।
कल्पादिवाटिकाचक्रे सञ्चरन्त्यो मदालसाः ।।१८१।।

ये सभी शक्तियां भगवती ललिता परमेश्वरी के ध्यान में पूजन में, जप में, स्तोत्र में संलग्न रहती हैं और कल्पवाटिका आदि चक्रों में ये मदालसा शक्तियां विचरण करती हुईं ।।181।।

स्वस्वपुष्पोत्थमधुभिस्तर्पयन्त्यो महेश्वरीम्।
मिलित्वा चैव संख्याताः षष्ट्युत्तरशतत्रयम्।।१८२।।

ये विचरण करती हुईं शक्तियां अपनी अपनी छहों ऋतुओं के काल में आने वाले वनस्पतियों के पत्रों से, पुष्पों से, फलों से, छाया से, मधुर जल के वृक्षों की जड़ों के स्थान से निकलने वाले झरनों से महेश्वरी का तर्पण करती हैं पूरे वर्ष की सम्पूर्ण शक्तियां की संख्या तीन सौ साठ हो जाती है ।।182।।

एवं सप्तसु सालेषु पालकाश्चक्रदेवताः।
नामकीर्तनपूर्वं तु प्रोक्तास्तुभ्यं प्रपृच्छते ।।१८३।।

इस प्रकार कालायस आदि सातों सालों में उनके रक्षक पालक और शक्तियां उनके नामादि उल्लेख के साथ हमने तुम्हारे जिज्ञासा करने पर तुम्हारे सामने ही उल्लेख किया ।।183।।

अन्येषामपि सालानामुपादान स्वरूपकम्।
विस्तारं तत्र शक्तीश्च कथयाम्यवधारय ।।१८४।।

पिछले उल्लेख के बाद आगे अन्य सालों का उपादान (मूल कारण) का स्वरूप कैसा है, इत्यादि विस्तार से कहता हूं साथ ही वहां शक्तियां कौन-कौन हैं, इन सभी का वर्णन सावधानी से सुनो ।।184।।

इति श्रीब्रह्माण्डपुराणे उत्तरखण्डे हयग्रीवागस्त्यसंवादे
ललितोपाख्याने अष्टाविंशोऽध्यायः ।। २८ ।।

॥श्रीमन्महागणाधिपतये नमः।।

श्रीमाताललिताम्बायै नमः श्रीपादुकां पूजयामि नमः॥
ॐ वन्दे गुरुपदद्वन्द्वं अवाङ्मनसगोचरम्॥
रक्तशुक्ल प्रभामिश्रमतर्क्यं त्रैपुरं महः॥
ॐ आराध्यदेवं भक्तानां कलिदोषविनाशकम्॥
वन्दे श्रीगिरिजानन्दं शारदाश्रीमठाधिपम्।।
ॐ अखण्डं यस्यज्ञानञ्च भक्तिर्यस्यानपायिनी।।
शारदाज्योतिरीशस्य दर्शनं (पूजनं, वन्दनं) शुभमस्तुनः।।

एकोनत्रिंशोऽध्यायः॥ २९॥ 101 श्लोकात्मक

॥ रत्नसाललक्षणादि ॥

हयग्रीव जी बोलेः

कथितं लोहसालानां लक्षणं शिल्पिभिः कृतम् ।
अथ रत्नमयाः सालाः प्रकीर्त्यन्तेऽवधारय ॥१॥

हे मुने! हमने अभी तक शिल्पियों विश्वकर्मा और मय द्वारा सहयोगियों के साथ बनाए गये लोहसालाओं के लक्षणों का वर्णन तुम्हारे सामने किया अब आगे रत्नसालाओं का वर्णन करते हैं उन्हें सावधानी से सुनो ।।1।।

सुवर्णमयसालस्य पुष्परागमयस्य च ।
सप्तयोजनमात्रं स्यान्मध्ये ऽन्तरमुदाहृतम्॥२॥

सुवर्णमय शाल और पुष्परागमय शाल के मध्य सात योजन मात्र का अन्तर उदाहृत हुआ है अर्थात् कहा गया है ।।2।।

तत्र सिद्धाः सिद्धनार्यः खेलन्ति मदलालसाः।
रसै रसायनैश्चैव खड्गैः पादाञ्जनैरपि॥३॥

वहां मद मत्त सिद्ध पुरुष और सिद्ध नारियां रसों से रसायनों से भी तथा खड्गों से और पादाञ्जनों से खेलते हैं ।।3।।

ललितायां भक्तियुक्तांस्तर्पयन्त्यो महाजनान्।
वसन्ति विविधांस्तत्र पिबन्त्यो मदिरारसान्॥४॥

भगवती ललिता परमेश्वरी की भक्ति से सम्पन्न विविध महाजनों को तृप्त करते हुए मद्यरस का पान करते हुए विविध क्रीड़ाएं करते हुए निवास करते हैं ।।4।।

पुष्परागादिसालानां पूर्ववद्द्वारक्लृप्तयः।
पुष्परागादिसालेषु कवाटार्गलगोपुरम्॥५॥

पुष्पराग आदि शालों के पूर्वद्वारों के समान पुष्पराग आदि शालों में कपाट, सांकल और मुख्य दरवाजे (गोपुर) सजे हुए हैं ।।5।।

पुष्परागादिजं ज्ञेयमुद्यदादित्यभास्वरम्।
हेमप्राकारचक्रस्य पुष्परागमयस्य च ॥ ६ ॥

पुष्पराज (पुखराज) से उत्पन्न उच्च किरणें उच्च कोटि की चन्द्र और सूर्य की किरणों जैसी देदीप्यमान हैं। हेम (स्वर्ण) प्राकार चक्र-अर्थात स्वर्ण की चहार दिवारी तथा पुष्परागमय चक्र के ।।6।।

अन्तरे या स्थली सापि पुष्परागमयी स्मृता ।
वक्ष्यमाणमहासालकक्ष्यासु निखिलास्वपि ॥ ७ ॥

बीच में जो स्थली है वह भी पुष्परागमयी कही गई है, कहे गए सभी महासाल के कक्षों में भी।।7।।

तद्वर्णाः पक्षिणस्तत्र तद्वर्णानि सरांसि च।
तद्वर्णसलिला नद्यस्तद्वर्णाश्च मणिद्रुमाः ॥८॥

पुखराज वर्ण के पक्षी हैं, पुखराज वर्ण तालाब हैं, उसी वर्ण की नदियां हैं, और उसी वर्ण के मणिद्रुम (वृक्ष) हैं ।।8।।

सिद्धजातिषु ये देवीमुपास्य विविधैः क्रमैः।
त्यक्तवन्तो वपुः पूर्वं ते सिद्धास्तत्र साङ्गनाः ॥९॥

सिद्ध जातियों में अनेकों क्रमों से देवी की उपासना पूर्वकाल में की है और शरीर त्याग दिया है वे सिद्ध पुरुष अपनी अंगना (पत्नी) सहित हैं ।।9।।

ललितामन्त्रजप्तारो ललिताक्रमतत्पराः।
ते सर्वे ललितादेव्या नामकीर्तनकारिणः ॥ १० ॥

उस स्थान में वे सभी सिद्ध दम्पति ललिता मन्त्र का जप करने वाले हैं वे सभी पूजा के क्रम में तत्पर रहते हैं वे सभी भगवती ललिताम्बा देवी के नाम कीर्तन करने वाले हैं ।।10।।

पुष्परागमहासालान्तरे मारुतयोजने।
पद्मरागमयः सालश्चतुरस्रः समन्ततः ॥ ११ ॥

पुष्पराग महासाल के बीच मारूत (49 योजन) योजन में सभी ओर से चौकोर पद्मरागमय साल है।।11।।

स्थली च पद्मरागाढ्या गोपुराद्यं च तन्मयम्।
तत्र चारणलोकस्था पूर्वदेहविनाशतः ॥१२॥
सिद्धिं प्राप्ता महाराज्ञीचरणाम्भोजसेवकाः।
चारणानां स्त्रियश्चापि चार्वङ्ग्यो मदलालसाः॥१३॥

उस चौकोर स्थल का भूमि उसमें पद्मराग मढ़ा हुआ है वैसा ही पद्मरागमय गोपुर है उसमें चार चारण देश में रहने वाले पूर्व देह के समाप्त हो जाने से भगवती महाराज्ञी के चरण कमलों के सेवक सिद्धि प्राप्त किये हुए रहते हैं उन चारणों की स्त्रियां भी सर्वाङ्ग. सुन्दर और मद से अलस रहती हैं॥12,13॥

गायन्त्यो ललितादेव्या गीतिबन्धं मुहुर्मुहुः।
तत्रैव कल्पवृक्षाणामधस्ताद्वेदिकास्थिताः ॥१४॥

वे सभी वराङ्गनाएं श्री ललिता देवी के गीतिबन्धों को बार-बार गाती हुईं उसी जगह कल्पवृक्षों के नीचे वेदियों में बैठी रहती हैं ।।14।।

भर्तृभिः सहचारिण्यः पिबन्ति मधुरं मधु।
पद्मरागमहासालान्तरे मारुतयोजने ।।१५ ।।

वहां अपने पतियों के साथ मधुर मदिरा पीती हैं, पद्मराग महासाल के मध्य भाग में मारूत योजन में।।15।।

गोमेधिकस्य सालस्तु पूर्वसालसमाकृतिः ।
तदन्तरे योगिनीनां भैरवाणां च कोटयः ॥१६॥

गोमेद पतथर का साल पूर्वसाल के समान आकार वाला है उसके भीतर योगिनियों की और भैरवों की कोटियों की संख्या में निवास करती हैं ।।16।।

कालसंकर्षणीमेनां सेवन्ते तत्र मूर्तयः।
गोमेधिकमहासालान्तरे मारुतयोजने।
अतितुङ्गो हीरसालस्तयोर्मध्यं च हीरभूः ॥१७॥

गोमेद महाभवन के अन्दर मारुत योजन में अत्यन्त उच्च हीरसाल के मध्य में हीरभू विद्यमान है।।17।।

तत्र देवीं समभ्यर्च्य पूर्वजन्मनि कुम्भज ।
वसन्त्यप्सरसां वृन्दैः साकं गन्धर्वपुंगवाः ।
महाराज्ञी गुणगणान्गायन्त्यो वल्लकीस्वनैः ॥१८॥

वहां हीर भू में अप्सराओं के समूहों के साथ गन्धर्व श्रेष्ठ गण महाराज्ञी भगवती ललिता परमेश्वरी

के गुण गणों का गान वीणा के स्वरों के साथ ।।18।।

कामभोगेकरसिकाः कामसंनिभविग्रहाः।
सुकुमारप्रकृतयः श्रीदेवीभक्तिशालिनः ॥१९॥

वे सभी काम भोगों के रसिक कामदेव के जैसे कमनीय शरीर वाले कोमल सौम्य स्वभाव के तथा श्रीदेवी की भक्ति में तल्लीन ।।19।।

उर्वशी मेनका चैव रम्भा चालम्बुसा तथा।
मञ्जुघोषा सुकेशी च पूर्वचित्तिधृताचिका ॥२०॥

उन दिव्य अप्सराओं में उर्वशी, मेनका, रम्भा, अलम्बुसा, मञ्जुघोषा, सुकेशी, पूर्वचित्ति और घृताची ।।20।।

कृतस्थला च विश्वाची पुञ्जिकस्थलया सह।
तिलोत्तमेति देवानां वेश्या एतादृशोऽपराः २१।।

कृतस्थला, विश्वाची, पुंजिकस्थला के साथ तिलोत्तमा इनके जैसी और भी वेश्याएं ये देवों की वेश्याएं हैं। ।।21।।

गन्धर्वैः सह नव्यानि कल्पवृक्षमधूनि च।
पिबन्त्यो ललितादेवीं ध्यायन्त्यश्च मुहुर्मुहुः ॥२२ ।।

ये सभी दिव्य अप्सराएं गन्धर्वों के साथ तत्काल निकाले गए नव्य कल्पवृक्ष के मधु का भगवती ललिता परमेश्वरी का ध्यान और उनके गुणों का गान करती हुई पान करती हैं ।।22।।

स्वसौभाग्यविवृद्ध्यर्थं गणयत्यश्च तन्मनुम्।
चतुर्दशसु चोत्पन्नाः स्थानेष्वप्सरसोऽखिलाः २३।।

अपने सौभाग्य की विवृद्धि के लिये उनके अमोघ मंत्रों का चिन्तन, जप करती हुईं चौदह मन्वन्तरों में उत्पन्न समस्त अप्सराएं भगवती के उन सालों में स्थानों में आनन्द पूर्वक निवास करती हैं ।।23।।

तत्रैव देवीमर्चन्त्यो वसन्ति मुदिताशयाः ॥२४॥

वहीं निवास करती हुईं भगवती की अर्चना करती हुई प्रसन्न मन से निवास करती हैं ।।24।।
अगस्त्य जी बोले-ः

चतुर्दशापि जन्मानि तासामप्सरसां विभो।
कीर्तय त्वं महाप्राज्ञ सर्वविद्याकलानिधे ॥ २५॥

हे महाप्राज्ञ ! इन अप्सराओं के चौदह जन्मों को बतावें आप सभी विद्याओं की कलाओं के निधि हैं ।।25।।

हयग्रीव बोले

ब्रह्मणो हृदयं कामो मृत्युरुर्वी च मारुतः।
तपनस्य कराश्चन्द्रकरा वेदाश्च पावकः ॥ २६ ॥

हे कुम्भज! ब्रह्मण (ब्राह्मण) हृदय, काम, मृत्यु, पृथ्वी, वायु, तपन के किरण, चन्द्र किरण, वेद और अग्नि ।।26।।

सौदामिनी च पीयूषं दक्षकन्ये जलं तथा।
जन्मनः कारणान्येतान्यामनन्ति मनीषिणः २७।।

विद्युत् पीयूष (अमृत) दक्षकन्या तथा जल, इन सभी को मनीषीजन जन्म का कारण मानते हैं।।27।।

गीर्वाणपण्यनारीणां स्फुरत्सौभाग्यसंपदाम्।
एताः समस्ता गन्धर्वैः साकमर्चन्ति चक्रिणीम्॥28

ये सभी देवांगनाएं अपने अपने सौभाग्य सम्पदा की स्फुरणा से युक्त ये सभी गन्धर्वों के साथ चक्रेश्वरी की अर्चना करती हैं ।।28।।

किन्नराः सह नारीभिस्तथा किम्पुरुषा मुने।
स्त्रीभिः सह मदोन्मत्ता हीरकस्थलमाश्रिताः २९।।

किन्नर नारियों के साथ तथा किम्पुरुष भी है मुनि! स्त्रियों के साथ मदोत्मत्त होते हुए उसी हीरक स्थल में आश्रित होते हैं ।।29।।

महाराज्ञीमन्त्र जपैर्विधूताशेषकल्मषाः।
नृत्यन्त्यश्चैव गायन्त्यो वर्तन्ते कुम्भसंभव ॥३०॥

हे कुंभज! भगवती महारानी के मंत्र के जपों से समस्त कल्मषों का विनाश हो गया है ऐसे भक्त जन गुणगान करते हुए नृत्यादि करते हैं ।।30।

तत्रैव हीरकक्षोण्यां वज्रा नाम नदी मुने ।
वज्राकारैर्निबिडितैर्भासमाना तटद्रुमैः ॥ ३१ ॥

हे मुनि! वहीं हीरक भूमि में वज्रा नाम्नी नदी जो वज्र के आकार के बने नदी किनारे के वृक्षों से भी समान है ।।31।।

वज्ररत्नैः सिकतिला वज्रद्रवमयोदका।
सदा वहति सा सिन्धुः परितस्तत्र पावनी ॥३२।।

वह नदी वज्र रत्नों की बालुवली द्रवित वज्रमय जल वाली पवित्र वह नदी सदैव बहती रहती है ।।32।।

ललितापरमेशान्या भक्ता ये मानवोत्तमाः।
ते तस्या उदकं पीत्वा वज्ररूपकलेवराः।
दीर्घायुषश्च नीरोगा भवन्ति कलशोद्भव ॥३३॥

हे कुंभज! ललिता परमेश्वरी के परम भक्त जो श्रेष्ठ मानव हैं वे पूर्ण भक्ति रखते हैं वे उस नदी का जल पीकर वज्ररूप शरीर वाले होते हैं वे दीर्घायु वाले, रोगरहित होते हैं ।।33।।

भण्डासुरेण गलिते मुक्ते वज्रं शतक्रतुः।
तस्यास्तीरे तपस्तेपे वज्रेशीं प्रति भक्तिमान्।।३४।।

भण्डासुर ने जब शतक्रतु इन्द्र पर वज्र छोड़ा था तब उस वज्र से गलित होने पर भक्तिमान इन्द्र ने उसी नदी के किनारे तप किया था और भगवती की आराधना की थी ।।34।।

तज्जलादुदिता देवी वज्रं दत्वा बलद्विषे।
पुनरन्तर्दधे सोऽपि कृतार्थः स्वर्गमेयिवान्॥३५॥

तब उस वज्रा नामक नदी से वज्रेशी देवी प्रकट हुईं और उन्होंने इन्द्र को वज्र दिया और अन्तर्धान हो गईं और इन्द्र भी कृतार्थ होकर अपनी राजधानी स्वर्ग में चला गया।। 35।।

अथ वज्राख्यसालस्यान्तरे मारुतयोजने।
वैडूर्यसाल उत्तुङ्गः पूर्ववद्गोपुरान्वितः ॥ ३६ ॥

इसके अनन्तर वज्राख्यसाल के मध्य में मारुत योजन परिमाण में उत्तुंग वैदूर्यसाल है, जिसका गोपुर पूर्व में कहे गए गोपुरों जैसा है ।।36।।

स्थली च तत्र वैडूर्यनिर्मिता भास्वराकृतिः ॥३७॥

उस वैडूर्य साल में स्थल भी वैडूर्यनिर्मित है जो सूर्यवत् आकृति वाला है ।।37।।

पातालवासिनो ये ये श्रीदेव्यर्चनसाधकाः ।
ते सिद्धमूर्तयस्तत्र वसन्ति मदमेदुराः ॥३८॥

पाताल लोक निवासी जो जो हैं वे श्रीदेवी के अर्चक हैं साधक हैं वे सिद्धमूर्ति मदयुक्त उस भूमि में निवास करते हैं ।।38।।

शेषकार्कोटक महापद्मवासुकिशङ्खकाः।
तक्षकः शङ्खचूडश्च महादन्तो महाफणः।
इत्येवमादयस्तत्र नागा नागस्त्रियोऽपि च ॥३९॥

शेषनाग, कर्कोटक, महापद्म, वासुकि, शंखक, तक्षक, शंखचूड़ महादन्त और महाफण ऐसे अनेकों नाग और नागों की स्त्रियां भी ।।39।।

बलीन्द्रप्रमुखानां च दैत्यानां धर्मवर्तिनाम्।
गणस्तत्र सदा नागैः सार्धं वसंति साङ्गनः ४० ।।

बलीन्द्र प्रमुख धर्मवर्ति दैत्यों के समूह वहां नागों के साथ पत्नियों के साथ रहते हैं ।।40।।

ललितामन्त्रजप्तारो ललिताशास्त्रदीक्षिताः।
ललितापूजका नित्यं वसन्त्यसुरभोगिनः ।।४१ ।।

भगवती ललिता परमेश्वरी के मन्त्र का जप करने वाले ललिता शास्त्र में दीक्षित और नित्य ललिता भगवती के पूजन में संलग्न असुर और नाग निवास करते हैं ।।41।।

तत्र वैडूर्यकक्ष्यायां नद्यः शिशिरपाथसः।
सरांसि मत्तहंसानि सारसालङ्कृतानि च।
भवनानि च दिव्यानि वैडूर्यमणिवन्ति च ।।४२ ।।

वहां वैडूर्य से बने कक्षों में नदियां ठंडा जल देने वाली हैं सरोवर हैं उनमें मत्तहंस सारस आदि क्रीड़ारत हैं, वहां जो भवन हैं वे सभी वैडूर्यमणि से ही निर्मित हैं ।।42।।

तेषु क्रीडन्ति ते नागा असुराश्च सहाङ्गनाः।
वैडूर्याख्यमहासालान्तरे मारुतयोजने ।।४३ ।।

उन वैडूर्य मणियुक्त भवनों में वे नाग और असुरगण पत्नियों के साथ क्रीड़ाएं करते हैं। उस वैडूर्य नामक महासाल के मध्य सात योजन ।।43।।

इन्द्रनीलमयः सालश्चक्रवाक इवापरः।
तन्मध्यकक्ष्याभूमिश्च नीलरत्नमयी मुने ।। ४४ ।।

पर इन्द्र नीलमणि से निर्मित भवन जो दूसरे चक्रवाक जैसा है उसके मध्य नीलरत्नमयी कक्ष्या भूमि हैं ।।44।।

तत्र नद्यश्च मधुराः सरांसि मधुराणि च।
नानाविधानि वस्तूनि भोग्यानि सरसान्यपि ४५ ।।

वहां पर नदियां मीठे जल वाली हैं एवं सरोवर भी मधुर जल वाले हैं वहां अनेकों प्रकारों की भोग्य वस्तुएं और रसपूर्ण वस्तुएं हैं ।।45।।

ये भूलोकगता मर्त्या ललितामन्त्रसाधकाः।
ते देहान्ते शक्रनीलकक्ष्यां प्राप्य वसन्ति हि ४६ ।।

जो भूलोक में रहने मर्त्यप्राणि हैं भगवती ललिता के मन्त्र की साधना में संलग्न हैं वे देहान्त के बाद इसी इन्द्र नीलमणि की कक्षा में आकर निवास करते हैं ।।46।।

तत्र दिव्यानि वस्तूनि भुञ्जाना वनितासखाः।
पिवन्तो मधुरं मद्यं नृत्यन्तो भक्तिनिर्भराः ॥४७॥

वहां वे भक्तगण अपनी पत्नियों के साथ दिव्य वस्तुओं का उपभोग करते हुए मधुर मद्य का पान करते हैं और भक्ति पूर्ण होकर नृत्यादिक करते हैं ।।47।।

सरस्तटेषु सिन्धूनां कूलेषु कलशोद्भव।
लतागृहेषु रम्येषु मण्डपेषु महर्द्धिषु ॥४८॥

उन सरोवरों में तथा उन नदियों के तटों में हे कलशोद्भव! लतागृहों में समृद्ध समस्त साधनों से सम्पन्न मण्डपों में मंदिरों में ।।48।।

सदा जपन्तः श्रीदेवीं वदन्तश्चापि तद्गुणान्।
निवसन्ति महाभागा नारीभिः परिवेष्टिताः।।४९।।

वर्णन करते हुए नारियों (सुवासिनी) से घिरे हुए ।।49।।

कर्मक्षये पुनर्यान्ति भूलोके मानुषीं तनुम्।
पूर्ववासनया युक्ताः पुनरर्चन्ति चक्रिणीम्।।५०।।

जब कर्मफलों का क्षय हो जाता है तब भूलोक में मनुष्य शरीर प्राप्त करते हैं तब वे पूर्व वासना से युक्त होकर पुनः भगवती चक्रिणी ललिताम्बा की अर्चना करते हैं ।।50।।

पुनर्यान्ति श्रीनगरे शक्रनीलमहास्थलीम्।
तत्स्थलस्यैव संपर्काद्रागद्वेषसमुद्भवैः।
नीलैर्भावैः सदा युक्ता वर्तन्ते मनुजा मुने ॥५१॥

तब फिर पुनः श्री ललिताम्बा के श्रीनगर इन्द्र नील मणि की स्थली में पहुंचते हैं। हे मुने! उस इन्द्र नीलमणि के स्थल के संपर्क से राग, द्वेष से उत्पन्न नीलभावों से सदा युक्त होकर मनुष्य वर्तमान रहते हैं।।51।।

ये पुनर्ज्ञानिनो मर्त्या निर्द्वन्द्वा नियतेन्द्रियाः।
ते मुने चिन्मया भूत्वा प्रविशन्ति महेश्वरीम्।।५२।।

उनमें जो ज्ञानी निर्द्वन्द्व और नियत इन्द्रियों वाले अर्थात जो प्राणि बैर रहित और जितेन्द्रिय हैं वे चिन्मय होकर भगवती महेश्वरी के श्रीविग्रह में विलीन हो जाते हैं ।।52।।

इन्द्रनीलाख्यसालस्यान्तरे मारुतयोजने।
मुक्तारत्नमयःसालः पूर्ववद्गोपुरान्वितः ॥५३॥

इन्द्रनील नामक साल के मध्य भाग में मारुत (49) योजन के भीतर मोतीरत्नों से निर्मित साला

भवन है वहां भी पहिले जैसा गोपुर बना हुआ है ।।53।।

अत्यन्तभासुरस्वच्छस्तयोर्मध्यस्थली मुने।
सर्वापि मुक्ताखचिता शिशिरातिमनोहरा ॥५४॥

हे मुने! उन दोनों सालों इन्द्र नीलमणि साल और मुक्तारत्नमय साल के बीच में जो स्थली है, वह भी पूरी की पूरी मुक्तारत्नों से जड़ी हुई है और शीतल प्रकृति की है और मनोहर है ।।54।।

ताम्रपर्णी महापर्णी सदामुक्ता सदोदका।
एवमाद्या महानद्यो वहन्त्यत्र महास्थले ।। ५५ ॥

उस महास्थल में ताम्रपर्णी और महापर्णी आदि और भी महा नदियां बहती हैं, जिनका जल मोतियों जैसा स्वच्छ है और मधुर है ।।55।।

तासां तीरेषु सर्वेऽपि देवलोकनिवासिनः।
वसन्ति पूर्वजनुषि श्रीदेवीमन्त्रसाधकाः ॥५६ ॥

पुन समस्त नदियों के किनारों में सभी देवलोक निवासिगण निवास करते हैं तथा वे ही जिन्होंने पूर्वजन्म में श्रीदेवी के मंत्र की साधना की है ।।56।।

पूर्वाद्यष्टसु भागेषु लोकाः शक्रादिगोचराः।
मुक्तासालस्य परितः संयुज्य द्वारदेशकान्॥५७॥

पूर्वादिअष्ट भागों में इन्द्रादि गोचर लोक हैं जो मुक्तासाल के चारों ओर द्वार देशों को ।।57।।

मुक्तासालस्य नीलस्य द्वारयोर्मध्यदेशतः।
पूर्वभागे शक्रलोकस्तत्कोणे वह्निलोकभूः ॥५८॥

संयुक्त कर मुक्तासाल और इन्द्रनील के द्वारों के बीच की भूमि से पूर्वभाग में इन्द्रलोक है तथा उसके कोने में अग्निलोक की भूमि है ।।58।।

याम्यभागे यमपुरं तत्र दण्डधरः प्रभुः।
सदा श्रीदेवतामंत्राजापी तीव्रस्वभाववान्॥५९॥

उसके दक्षिण भाग में यमपुर है वहां दण्डधा प्रभु यमराज सदा श्री देवता के मन्त्र का जप करते हैं वे प्राणियों के कर्मानुसार दण्ड देते हैं उग्र स्वभाव के हैं ।।59।।

आज्ञाधरो यमभटैश्चित्रगुप्तपुरोगमैः।
सार्धं निपीडयत्येव श्रीदेवीसमयद्रुहः ।।६०।।

यमराज की आज्ञा का पालन करने वाले यमदूतों से और चित्रगुप्तादि प्रमुखों के साथ श्री देवी भगवती की आज्ञा का पालन कर रहे हैं अर्थात् भगवती की आज्ञा है कि जिसने जैसा कर्म किया

है उसे वैसा ही फल देना जिसने शुभ कर्म किया है स्वर्गादिलोक मृत्युलोक में उत्तमवर्णों में जनम आदि जिन्होंने अशास्त्रीय, धर्म विरुद्ध, समाज विरुद्ध, कुल विरुद्ध कर्म नशे में अभिमान में नस्तिकता आदि में निन्दित कर्म किया है नरकादि लोक, मृत्युलोक में अधम योनियों में सीमाहीन दण्ड विधान करों और आगे निन्दित कम बताए हैं ।।60।।

गुरुशप्तान्दुराचाराल्ललिता द्वेषकारिणः।
कूटभक्ति करान्मूर्खास्तब्धानत्यन्तदर्पितान् ॥६१॥

इस प्रकार प्राप्त करके गुरुजनों से अभिशप्तों को दुराचारियों को, देवी ललिता भगवती एवं प्रकृति से द्वेष करने वालों को छल कपट पूर्ण भक्ति करने वालों को, मूर्खों को, स्तब्धों अर्थात शासन या समाज या नारी आदि पर अत्याचार होने पर चुप रहने वाले लोगों को और अत्यन्त सारहीन घमण्ड करने वालों को ।।61।।

मन्त्रचोरान्कुमत्रांश्च कुविद्याधर्ममाश्रितान्।
नास्तिकान्पापशीलांश्च वृथैव प्राणिहिंसकान्।।६२।।

बुरे अशास्त्रीय और स्वार्थ वश स्वयं बनाये मंत्रों का उच्चारण करने वाले, कुत्सित मंत्र जपने वाले, निन्दित विद्या और धर्म का आश्रय लेने वाले, नास्तिक, पापाचरण के स्वभाव वाले और व्यर्थ ही प्राणिहिंसा करने वाले मनुष्यों को ।।62।।

स्त्रीद्विष्टाँलोकविद्विष्टानन्यानपि च पापिनः।
कालसूत्रे रौरवे च कुम्भीपाके च कुम्भज ॥६३॥

स्त्रियों से द्वेष करने वालों, लोगों से विशेष द्वेष रखने वालों और पाखण्ड का पालन करने वालों लोगों को, कालसूत्र, रौरव, कम्भीपाक नरकों में डालें, हे कुम्भज! यह विधान यमराज का है।।63।।

असिपत्रवने घोरे कृमिभक्षे प्रतापने ।
लालाभक्षे सूचिवेधे तथैवाङ्गारतापने ।। ६४ ॥

असिपत्रवन, घोर कृति भक्ष जो बहुत संताप देता है, उसकें तथा लाला (लार) भक्ष सूची (सुई) वेध तथा अंगारतापन नामक नरक में।।65।।

एवमादिषु कष्टेषु नरकेषु घटोद्भव।
पातयत्याज्ञया तस्याः श्रीदेव्याः सुमहौजसः ६५।।

हे कुम्भज! इस तरह के कष्टपूर्ण नरकों में श्री ललिता परमेश्वरी की आज्ञा से वे महातेजस्वी यमराज दण्ड देते हैं ।।65।।

तस्यैव पश्चिमे भागे निर्ऋतिः खड्गधारकः।
राक्षसं लोकमाश्रित्य वर्तते ललितार्चकः ॥६६॥

उसी के पश्चिम भाग में खड्गधारक निर्ऋति कोणेश हैं (मृत्यु) देवी राक्षसलोक का आश्रय लेकर भगवती की अर्चक है ।।66।।

तस्य चोत्तरभागे तु द्वारयोरन्तरस्थले।
वारुणं लोकमाश्रित्य वरुणो वर्तते सदा ॥६७॥

उसी निर्ऋति के उत्तर की तापन दोनों द्वारों के मध्य स्थल पर वरुणलोक का आश्रय लेकर सदा वरुण निवास करते हैं ।।67।।

वारुण्यास्वादनोन्मत्तः शुभ्राङ्गो झषवाहनः।
सदा श्रीदेवतामन्त्रजापी श्रीक्रमसाधकः ॥६८॥

वहीं वरुण लोक में श्री वरुण पश्चिमाधिपति हैं वे वारुणी के आस्वादन से मत्त हैं शुभ्र अंगों वाले हैं और मकरवाहन हैं वे सदा श्री देवता के मन्त्रजप करने वाले पंचदशीमंत्र के देवाराधकों में वरुण हैं उन्होंने भी मंत्र का आविष्कार किया है ।।68।।

श्रीदेवतादर्शनस्य द्वेषिणः पाशबन्धनैः।
बध्वानयन्नधोमार्ग भक्तानां बन्धमोचकः ॥६९॥

श्री देवता भगवती के दर्शन का पूजन का उनके विषय में विवेचन का द्वेष करने वालों को पाशबन्धनों से बांधकर अर्थात् दुर्वाणी के प्रयोग के प्रेरित वाले मन और बुद्धि तथा दुष्ट अधोमार्ग में डालते हैं और भगवती के भक्तों के प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष तथा वर्तमान जन्म के तथा पिछले जन्मों के समस्त बन्धनों को काट देते हैं बन्धन मुक्त कर देते हैं अर्थात् जीवन्मुक्त, विदेहमुक्त कर देते हैं ।।69।।

तस्य चोत्तरकोणे तु वायुलोको महाद्युतिः।
तत्र वायुशरीराश्च सदानन्दमहोदयाः ॥७०॥

उसके उत्तर भाग में उत्तर कोण में महान् तेजस्वी वायुलोक है, वहां सभी प्राणी वायवीय शरीरधारी हैं सदैव आनन्दमग्न महोदय सिद्धगण रहते हैं ।।70।।

सिद्धा दिव्यर्षयश्चैव पवनाभ्यासिनोऽपरे।
गोरक्षप्रमुखाश्चान्ये योगिनो योगतत्पराः ॥७१॥

सिद्ध दिव्य ऋषिगण और प्राणायाम साधना में संलग्न तथा गोरखनाथ प्रमुख अन्य योगिगण, योगसाधन में तत्पर।।71।।

एतैः सह महासत्वस्तत्र श्रीमारुतेश्वरः।
ध्वजहस्तो मृगवरे वाहने महति स्थितः ॥७२॥

इन योगियों के साथ महासत्व श्री मारुतेश्वर ध्वजा हाथ में लेकर श्रेष्ठ मृगवाहन में आरुढ़।।72।।

ललिताजपनिध्यानक्रमपूजनतत्परः।
सप्तधा भिन्नमूर्तिश्च वर्तते कुम्भसंभव ॥ ७३ ॥

हे घट्टोद्भव! वे समस्त योगिजन समस्त सहयोगियों के साथ श्री ललिता देवी के मंत्र, जप, पूजन, ध्यान क्रम में तत्पर रहकर सब प्रकार से भिन्न मूर्ति वाले श्री मारुतेश्वर हैं।।73।।

इडा च पिङ्गला चैव सुषुम्ना तस्य शक्तयः।
तिस्रो मारुतनाथस्य सदा मधुमदालसाः ॥७४॥

इन मारुतनाथ की तीन शक्तियां इडा, पिंला और सुषुम्णा ये सभी मधुमद में मस्त होकर ।।74।।

आनन्दपूरिताङ्गीभिरन्याभिः शक्तिभिर्वृतः।
स मारुतेश्वरः श्रीमान्सदा जपति चक्रिणीम्।।७५।।

आनन्द में भरपूर अंगों वाली अन्य शक्तियों से घिरे हुए वे श्रीमान् मारुतेश्वर भगवति चक्रिणी के मंत्र का जप करते रहते हैं ।।75।।

येन सत्वेन कल्पान्ते त्रैलोक्यं सचराचरम्।
परागमयतां नीत्वा विनाशयति तत्क्षणात्॥७६॥

उस साधना से प्राप्त सत्व के द्वारा कल्पान्त कें चराचर सहित तीनों लोकों को धूलिमय बनाकर तत्क्षण विलीन कर देते हैं ।।76।।

तस्य सत्वस्य वृद्ध्यर्थं तामेव ललितेश्वरीम्।
पूजयन्भावयन्नास्ते सर्वाभरणभूषिताम्॥७७॥

उस सत्व की वृद्धि के लिये उन्हीं भगवती ललितेश्वरी की भावना तथा पूजन एवं उनके सर्वाभरण परिपूर्णरूप का चिन्तन करते रहते हैं ।।77।।

तल्लोकपूर्वभागस्थे यक्षलोके महाद्युतिः।
यक्षेन्द्रो वसति श्रीमांस्तद्द्वारद्वन्द्वमध्यगः॥७८॥

उस वायुलोक के पूर्वभाग में स्थित महातेजस्वी यक्षलोक में श्रीमान यक्षेन्द्र उन दोनों के मध्य भूमि में निवास करते हैं ।।78।।

निधिभिश्च नवाकारैर्ऋद्धिवृद्ध्यादिशक्तिभिः।
सहितो ललिताभक्तान्पूरयन्धनसंपदा॥७९॥

वे यक्षराज निधियों के साथ नए नए आकारों वाली ऋद्धि वृद्धि आदि शक्तियों के साथ ललिताम्बा के भक्तों को धन सम्पदा से परिपूर्ण करते हुए ।।79।।

यक्षीभिश्च मनोज्ञाभिरनुकूलप्रवृत्तिभिः।
विविधैर्मधुभेदैश्च संपूजयति चक्रिणीम्॥८०॥

तथा मन को सुन्दर लगने वाली अनुकूल प्रवृत्तियों वाली यक्षिणी समूहों द्वारा विविध प्रकार के मधु भेदों से भगवती चक्रिणी का पूजन करते हैं ।।80।।

मणिभद्रः पूर्णभद्रो मणिमान्मणिकन्धरः।
इत्येवमादयो यक्षसेनान्यस्तत्र सन्ति वै॥८१॥

मणिभद्र, पूर्णभद्र, मणिमान् मणिकन्धर आदि यक्ष सेनापति समूह वहां रहते हैं ।।81।।

तल्लोकपूर्वभागे तु रुद्रलोको महोदयः।
अनर्धरत्नखचितस्तत्र रुद्रोऽधिदेवता ॥८२॥

उस लोक के पूर्व भाग में अनर्घरत्नजटित महोदय रुद्रलोक है वहां रुद्र अधिदेवता निवास करते हैं ।।82।।

सदैव मन्युना दीप्तः सदा बद्धमहेषुधिः।
अधिज्यं च धनुर्बिभ्रज्ज्वलत्पिङ्गललोचनः ॥८३॥

ओ अनेक रत्नों से खचित रहते हुए मन्यु (क्रोध) से उद्दीप्त सदैव अमोघ बाण को धनुष में चढ़ाए रहते हैं और तेज से जलते हुए पिंड्गल नेत्रों वाले ।।83।।

जटामुकुटशोभाढ्यः सर्वाभरणभूषितः।
स्वसमानैर्महासत्वैर्लोकनिर्दाहदक्षिणैः ॥८४॥

जटाओं के ही मुकुटों से शोभायमान समस्त आभूषणों से विभूषित तथा अपने ही समान महापराक्रमी महासत्वशाली पुरुषों से समस्त लोकों को दग्ध करने में कुशल ।।84।।

अधिज्यकार्मुकैर्दक्षै : षोडशावरणस्थितैः।
आवृतः सततं वक्त्रेजपन्श्रीदेवतामनुम्॥८५॥

सदैव धनुष की प्रत्यंचा को ताने हुए कुशल रुदगण सोलह आवरणों से घिरे हुए हैं (स्थित हैं) निरन्तर मुख से श्रीदेवता का मन्त्र जप करते हुए ।।85।।

श्रीदेवीध्यानसंपन्नः श्रीदेवीपूजनोत्सुकः।
अनेक कोटिरुद्राणीगणमण्डितपार्श्वभूः ॥८६॥

श्रीदेवी भगवती के ध्यान से सम्पन्न श्री देवी के पूजन करने के लिये सदैव उत्सक जिनके दोनों

बगलों की भूमि में अनेक करोड़ों रुद्राणियों के समूह घिरे हुए हैं ।।86।।

ताश्च सर्वाः प्रदीप्ताङ्ग्यो नवयौवनगर्विताः।
ललिताध्याननिरता सदासवमदालसाः ॥ ८७ ॥

वे सभी रुद्राणियां प्रदीप्त अंगों वाली हैं नव यौवन से गर्वित हैं भगवती के ध्यान में संलग्न और मधुमद में अलस रहती हैं ।।87।।

ताभिश्च साकं स श्रीमान्महारुद्र त्रिशूलभृत्।
हिरण्यबाहुप्रमुखैरन्यै रुद्रैर्निषेवितः ॥ ८८ ॥

इन शक्तियों के साथ वे श्रीमान् त्रिशूलधारी महादेव हिरण्यबाहु आदि प्रमुख अन्य रुद्रगणों से सेवित हैं ।।88।।

ललितादर्शन भ्रष्टानुद्धतान्गुरुधिक्कृतान्।
शूलकोट्या विनिर्भिद्य नेत्रोत्थैः कटुपावकैः।
दहंस्तेषां पशून्भृत्यान्प्रजाश्चैव विनाशयन्॥८९॥

जो रुद्रगण ललितादेवी के दर्शन रहित हैं उद्दण्ड हैं गुरुजनों से धिक्कृत हैं ऐसे निन्दित अमर्यादित अभिशप्त प्राणियों लोगों पर शूल के अग्र भाग से प्रहार करते हैं, नेत्रों से निकली नेत्राग्नि से जला देते हैं उन लोगों की पशु सम्पत्ति, नौकर सेवक और भाई बन्धु कुटुम्बी और सम्बन्ध वाले समस्त जुड़े हुए लोगों को मान, सम्मान श्री तेज कान्ति आदि से रहित कर देते हैं ।।89।।

आज्ञाधरो महावीरो ललिताज्ञाप्रवर्तकः।
रुद्रलोकेऽतिरुचिरे वर्तते कुम्भसंभव ॥ ९० ॥

हे कुम्भ सम्भव! अत्यन्त रुचिर रुद्र लोग में वे आज्ञाधारण करने वाले भगवती ललिता की आज्ञा के पालन करने वाले महावीर हैं ।।90।।

महारुद्रस्य तस्यर्षे परिवाराः प्रमाथिनः।
ये रुद्रास्तानसंख्यातान्को वा वक्तुं पटुर्भवेत्।। ९१ ।।

हे ऋषे! उन महारुद्र के परिवार सभी प्राणियों का मन्थन करने में समर्थ हैं उन सभी के रुद्रलोक में अनन्त संख्या में निवास करते उन रुद्रगणों को कौन रोकने समर्थ हो सकता है (यजु रुद्री 5म में ॐ असंख्यातासहस्त्राणिषेरुद्राऽअधिभूम्याम. तेषागुंमूसहस्त्रयोजने वधन्वानितन्मसि मंत्र 16)।।91।।

ये रुद्रा अधिभूम्यां च सहस्त्राणां सहस्त्रशः।
येऽन्तरिक्षे च वर्तन्ते सहस्त्राणां सहस्त्रशः ॥९२॥

जो रुद्र उस अधिकृत भूमि में हजारों हजार की संख्या में हैं और द्युलोक में भी हजारों हजार की संख्या में विद्यमान हैं ।।92।। रुद्री यजु. ॐ अस्मिन्महत्यर्णवेऽन्तरिक्षे भवाऽअधि। तेषांगुम् सहस्त्रयोजने वधन्वा नितन्मसि।।

दिवि येऽपि च वर्तन्ते सहस्राणां सहस्रशः।
येषामन्नमिषुश्चैव येषां वातास्तथेषवः ॥९३॥

जो भी रुद्रगण दिवलोक स्वर्गलौक में हजारों हजार हैं जिनके अन्न रूपी बाण हैं और वात रूपी बाण है ।।93।।

येषां च वर्षमिषवः प्रदीप्ताः पिङ्गलेक्षणाः।
अर्णवे चान्तरिक्षे च वर्तमाना महौजसः ॥९४॥

जिनके वर्षा रूपी बाण हैं मेघों में प्रदीप्त विद्युल्लेखा ही जिनके नेत्र हैं वे महातेजस्वी रुद्रगण समुद्र में तथा अन्तरिक्ष में वर्तमान है ।।94।।

जटावन्तो धनुष्मन्तो नीलग्रीवा विलोहिताः।
ये भूतानामधिभुवो विशिखासः कपर्दिनः ॥९५॥

वे जटाओं वाले विशेष शिक्षाओं वाले धनुष धारण किये हुए नीलग्रीवाओं वाले लाल लाल नेत्रों वाले समस्त प्राणियों के उत्पन्न करने वाले हैं ।।95।।

ये त्वन्नेषु विविध्यन्ति पात्रेषु पिबतो जनान्।
ये पथां रक्षका रुद्रा ये च तीर्थनिवासिनः ९६।।

जो रुद्रगण अन्नों में विविधता पैदा करते हैं अर्थात जिस अन्न का बीज है उससे वही अन्न उत्पन्न होगा, यह नहीं कि गेहु से बाजरा होगा, गेहूं से गेहूं बाजरा से बाजरा ही होगा, (आज कल जो संकरीकरण हो रहा है उसमें बीजांकुर परिवर्तन नहीं हो पा रहा है यह है कि संकरित अन्न गेहूं का रूप कुछ भिन्न हो पर बीज वहीं रहेगा और जो पात्रों में पीते हुए लोगों में विविधता करते हैं जो रास्ते में पथिकों की सहसा आने वाले प्राण संकटों (हिंस्त्र पशु, डाकू, लुटेरे, सर्वादिसे) से रक्षा करते हैं और जो तीर्थों में निवास करते हैं कल्पवास आदि करते हैं उनकी रक्षा करते हैं ।।96।।

सहस्रसंख्या ये चान्ये सृकावन्तो निषङ्गिणः ।
ललिताज्ञाप्रणेतारो दिशो रुद्रा वितस्थिरे ॥९७॥

जो हजारों की संख्या में धनुषबाण और तरकस एवं खड्ग को धारण किये हुए हैं वे भगवती ललिताम्बा की आज्ञाओं का प्रणेता हैं उनकी आज्ञाओं का पालन कराने वाले होकर समस्त दिशाओं में फैले हुए हैं।। 97।।

ते सर्वे सुमहात्मानः क्षणाद्विश्वत्रयीदहाः।
श्रीदेवीध्याननिष्णाताश्रीदेवीमन्त्रजापिनः ॥९८॥

वे सभी सुमहात्म गुणों से युक्त हैं एक क्षण में ही त्रिलोकी को भस्म करने में समर्थ हैं वे श्रीदेवी भगवती के ध्यान में संलग्न भक्तों को श्रीदेवी अम्बा के मन्त्र जप करने वालों को भक्तों को ।।98।।

श्रीदेवतायां भक्तांश्च पालयन्ति कृपालवः।
षोडशावरणं चक्रं मुक्ताप्राकारमण्डले ॥९९ ॥

वे सभी दयालु स्वभाव के हैं वे श्री देवता में भक्ति करने वालों का रक्षण एवं पालन करते हैं वे षोडशावरण चक्र जो मुक्ता प्राकार मण्डल में है उनसे सम्बद्ध भक्तों का पालन करते हैं ।।99।।

आश्रित्य रुद्रास्ते सर्वे महारुद्रं महोदयम्।
हिरण्यबाहुप्रमुखा ज्वलन्मन्युमुपासते ।।१०० ॥

वे सभी रुद्रगण महोदय महारुद्र के आश्रित हैं वे हिरण्यबाहु प्रमुख प्रज्ज्वलित क्रोध वाले महादेव का ही आश्रय लेते हैं ।।100।।

इति ते रत्नसालस्थाः कक्ष्यास्तत्र स्थिता अपि।
संक्षेपतो मया प्रोक्ता मुक्ताख्यावरणावधि १०१।।

इस प्रकार मैंने उन सभी की स्थिति रत्नसाल में थी, उसका संक्षेप में वर्णन तुम्हारे जिज्ञासा करने पर मुक्ताख्यावरण पर्यन्त सुना दिया ।।102।।

इति श्रीब्रह्माण्डपुराणे उत्तरखण्डे हयग्रीवागस्त्यसंवादे
श्रीललितोपाख्याने एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥२९ ॥

॥श्रीमन्महागणाधिपतये नमः।।

श्रीमाताललिताम्बायै नमः श्रीपादुकां पूजयामि नमः॥

ॐ वन्दे गुरुपदद्वन्द्वं अवाङ्मनसगोचरम्॥

रक्तशुक्ल प्रभामिश्रमतर्क्यं त्रैपुरं महः॥

ॐ आराध्यदेवं भक्तानां कलिदोषविनाशकम्॥

वन्दे श्री गिरिजानन्दं शारदाश्रीमठाधिपम्।।

ॐ अखण्डं यस्यज्ञानञ्च भक्तिर्यस्यानपायिनी।।

शारदाज्योतिरीशस्य दर्शनं (पूजनं, वन्दनं) शुभमस्तुनः।।

त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ 102 श्लोकात्मक

॥ श्रीरुद्रालयरुद्रं विशेषनामानि॥ (शतरुद्रियविधानम्)

श्री अगस्त्य जी बोले-ः

षोडशावरणं चक्रं किं तद्रुद्राधिदैवतम्।
तत्र स्थिताश्च रुद्राः के केन नाम्ना प्रकीर्तिताः १।।

षोडशावरण जो आपने पिछले विवरण में बताया था उसमें सभी रुद्रगण निवास करते हैं तो वह कैसा उसका विस्तृत विवरण तथा उसमें जो रुद्र हैं तो क्या उसके रुद्र अधिदेवता हैं उसमें स्थित रुद्र कौन हैं किस नाम से व्यवहार होता है ।। 1 ।।

केस्वावरणबिम्वेषु किंनामानो वसन्ति ते ।
यौगिकं रौढिकं नाम तेषां ब्रूहि कृपानिधे !॥२॥

वे सभी किन किन आवरणबिम्बों में किन किन नामों से निवास करते हैं उन सभी के योग परकनाम तथा प्रसिद्धि से जो नाम हो वह बतावें, हे कृपानिधि! ये जिज्ञासा आपके पिछले विवरण से उत्पन्न हो गई है। ।।2 ।।

श्रीहयग्रीव बोले।

तत्र रुद्रालयः प्रोक्तो मुक्ताजालकनिर्मितः।
पञ्चयोजनविस्तारस्तत्संख्यायामशोभितः॥३॥

वहां पर जो निर्माण हुआ है उसका नाम रुद्रालय है वह मुक्ताओं के जालों से निर्मित हुआ है उसका पांच योजन तक विस्तार है वैसे वह सीमित संख्या में शोभित नहीं है वह सीमा से परे हैं।।3 ।।

षोडशावरणैर्युक्तो मध्ये पीठमनोहरः।
मध्यपीठे महारुद्रो ज्वलन्मन्युस्त्रिलोचनः॥४॥

वह रुद्रालय सोलह आवरणों से युक्त है मध्य में पीठ से मनोहारी है उस मध्य पीठ में महारुद्र क्रोध से उग्र जलते हुए तीन लोचनों वाले हैं ।।4।।

सज्जकार्मुकहस्तश्च सर्वदा वर्तते मुने।
त्रिकोणे कथिता रुद्रास्त्रय एव घटोद्भव॥५॥

वे महारुद्र प्रत्यंचा चढ़ाए धनुष सर्वदा हाथ में लिये रहते हैं हे मुने! कुंभज! त्रिकोण में तीन रुद्र कहे गये हैं ।।5।।

हिरण्यबाहुः सेनानीर्दिशां पतिरथापरः।
वृक्षाश्च हरिकेशाश्च तथा पशुपतिः परः॥६॥

हिरण्यबाहु सेनापति हैं जो दिशाओं के पति हैं वृक्ष और हरिकेश तथा पशुपति दूसरे हैं ।।6।।

सस्पिञ्जरस्त्विषीमांश्च पथीनां पतिरेव च।
एते षट्कोणगाः किंच बभ्रुशास्त्वष्टकोणके॥७॥

सस्पिञ्जर और इषीमान पथियों के पति हैं, ये षटकोण में स्थित गण हैं बभ्रुशा अष्ठकोण में हैं।।7।।

विव्याध्यन्नपतिश्चैव हरिकेशोपवीतिनौ ।
पुष्टानां पतिरप्यन्यो भवो हेतिस्तथैव च ॥८॥
दशपत्रे त्वावरणे प्रथमो जगतां पतिः ।
रुद्राततायिनौ क्षेत्रपतिः सूतस्तथापरः ॥९॥

वे अष्ठकोण में इस प्रकार हैं 1 बभ्रुशा, 2 विव्याधि 3 अन्नपति, 4 हरिकेश, 5 उपवीति, 6 पुष्टानांपति, 7 भव, 8 हेति दशपत्र आवरण में तो प्रथम जगतां पति हैं दूसरे रुद्र आततायी क्षेत्र पति हैं तथा अपर सूत हैं ।।8,9।।

अहन्त्योऽन्यो वनपती रोहितः स्थपतिस्तथा।
वृक्षाणां पतिरप्यन्य एते सज्जशरासनाः ॥१०॥

न हनन करने योग्य अन्य वनपति, रोहित, स्थपति, वृक्षाणां पति और भी अन्य धनुषबाण लिये स्थित हैं ।।10।।

मन्त्री च वाणिजश्चैव तथा कक्षपतिः परः ।
भुवन्तिस्तु चतुर्थः स्यात्पञ्चमो वारिवस्कृतः ११।।

मन्त्री और वाणिज (वणिक व्यापारी) तथा दूसरे कक्षपति भुवन्ति चतुर्थ हैं पंचम वारिवस्कृत हैं ।।11।।

ओषधीनां पतिश्चैव षष्ठः कलशसंभव।

उच्चैर्घोषाक्रन्द्रयन्तौ पत्तीनां च पतिस्तथा ॥१२॥

औषधियों का पति षष्ठ हे हे कुम्भज ! उच्च घोष से क्रन्दन करते हुए पत्तियों के पति सातवे हैं।।12।।

कृत्स्नवीतश्च धावंश्च सत्त्वनां पतिरेव च ।

एते द्वादशपत्रस्थाः पञ्चमावरणस्थिताः ॥१३ ॥

कृत्स्नवीत और धावं प्राणियों के पति हैं ये सभी द्वादशपत्र में स्थित पंचमावरण में स्थित हैं ।13।।

सहमानश्च निव्याधिराव्याधिनिपतिस्तथा ।

ककुभश्च निषङ्गी च स्तेनानां च पतिस्तथा ॥ १४॥

निषङ्गी स्यादिषुधिमांस्तस्कराणां पतिस्तथा।

वञ्चंश्च परिवञ्चंश्च स्तायूनां च पतिस्तथा ॥१५॥

निचेरुश्चेति विज्ञेयाः षष्ठावरणदेवताः।

आद्यः परिचरोऽरण्यपतिः किंच सुकावृधः १६।।

जिघांसन्तो मुष्णतां च पतयः कुम्भसंभव ।

असिमन्तश्च सुप्राज्ञ तथा नक्तंचरा सुने ॥१७।।

1 सहमान, 2 निव्याधि, 3 आव्याधिनियों का पति, 4 ककुभ, 5 निषङ्गी, 6 स्तेनों के पति,7 निषङ्गी, 8 इषुधिमान तथा 9 तस्करों का पति, 10 वञ्चन 11 परिवंचन, 12 स्तायु पति और 13 निचेरु ये षष्ठावरण के देवता हैं 1 आद्यः, 2 परिचर, 3 अरण्य, 4 पति, 5 सृकावृध (वायु में प्रवेश करने वाले) हे कुम्भज ! 6 मुष्णता मारने की इच्छा वाले स्वामिगण, 7 असीमन्त, 8 सुप्राज्ञ, 9 नक्तचर (रात्रियों में विचरण करने वाले) ।।14, 15,16,17।।

प्रकृन्तानां पतिश्चैव उष्णीषी च गिरिवरः।

कुलुञ्चानां पतिश्चैवेषुमन्तः कलशोद्भव ॥ १८ ॥

धन्वाविनश्चातन्वानाः प्रतिपूर्वदधानकाः।

आयच्छन्तः षोडशैते षोडशारनिवासिनः॥१९॥

हे कलशोद्भव ! प्रकृतियों के स्वामी 10 उष्णीषी, 11 गिरिञ्चर कुलुंचों के स्वामी, 12 इषुमन्त, 13 धन्वाविद, 14 आतन्वान, 15 प्रतिपूर्वदधानक, 16 आयच्छन्त ये सभी षोडशार में निवास करते हैं ।।18,19।।

विसृजन्तस्तथास्यन्तो विध्यन्तश्चापि सिन्धुप।

आसीनाश्च शयानाश्च स्वपन्तो जाग्रतस्तथा २०।।

हे समुद्र को पी लेने वाले! ये सभी विशेष रचना करने वाले, स्थिर विधि का अन्त करने वाले ये सभी आसीन रहते हुए शयन करते हुए सोते हुए और जाग्रत रहते हुए ।।20।।

तिष्ठन्तश्चैव धावन्तः सभाश्चैव सभाधिपाः।
अश्वाश्चैवाश्वपतय आव्याधिन्यस्तथैव च ॥२१॥

बैठते हुए, दौड़ते हुए सभ्य हैं और सभ्यों के रक्षक हैं अश्वपति हैं आव्याधिन्य हैं ।।21।।

विविध्यन्तश्चोगणाश्च तृंहन्त्यो विन्ध्यमर्दन।
गृत्साश्चाष्टादशविधा देवता अष्टमावृतौ ॥२२॥

इनका प्रकार के गणाध्यक्ष जो बहुत बड़े हैं हे विन्ध्यमर्दन! गृत्सआदि अष्टादश विधदेवता अष्टम आवृत्ति में हैं ।।22।।

अथ गृत्सपतिश्चैव व्राता व्रातपतिस्तथा।
गणाश्च गणपाश्चैव विरूपा विश्वरूपकाः ॥२३॥
महान्तः क्षुल्लकाश्चैव रथिनश्चारथाः परे।
रथाश्च रथपत्याख्याः सेनाः सेनानयस्तथा ॥२४॥
क्षत्तारः सङ्ग्रहीतारस्तक्षाणो रथकारकाः।
कुलालाश्चेति रुद्रास्ते नवमावृतिदेवताः ॥२५॥

इसके बाद 1 गृत्स, 2 गुत्साधिपति, 3 व्रात 4 व्रातपति, 5 गण, 6 गणपाधिपति, 7 विश्वरूप, 8 विरूप, 9 महान, 10 क्षुल्लक, 11 रथी, 12 अरथी, 13 रथ, 14 रथपति, 15 सेना, 16 सेनानी, 17 क्षत्तार, 18 संगृहीतार, 19 तक्षाण, 20 रथकारक, 21 कुलाल, ये रुद्र नवमावरण के देवता हैं ।।23,24,25।।

रुद्रास्त्वेते विश्वरूपा विशत्पत्रेष्ववस्थिताः।
कर्माराश्चैव पुञ्जिष्टा निषादाश्चेषुकृद्गणाः ॥२६॥

ये समस्त रुद्र विश्वरूप हैं बीस पत्रों में अवस्थित हैं, 1 कर्मा, 2 पुंजिष्ट, 3 निषाद, 4 इषुकृद्गण।।26।।

धन्वकारा मृगयवः श्वनयः श्वान एव च।
अथ श्वपतयश्चैव भवो रुद्रो घटोद्भव ॥२७॥

हे कुम्भज! 5 धन्वकार, 6 मृगयव, 7 शुनि (कुतिया), 8 श्वान, 9 श्वपति, 10 अश्व, 11 अश्वपति, 12 भव, 13 रुद्र ।।27।।

शर्वः पशुपतिर्नीलग्रीवश्च शितिकण्ठकः।
कपर्दी व्युप्तकेशश्च सहस्राक्षस्तथा परः ॥२८॥

13 शर्व, 14 पशुपति, 15 नीलग्रीव, 16 शितिकंष्ठ, 17 कपर्दी, 18 व्युप्तकेश, 19 सहस्त्राक्ष।।28।

शतधन्वा च गिरिश: शिपिविष्टश्च कुम्भज।
मीदुष्टम इति प्रोक्ता रुद्रा दशमसालगा: ॥२९॥

हे कुंभज! 21 शतधन्वा, 22 गिरिश, 23 शिपिविष्ट, और 24 मीढुष्टम ये रुद्र दशम साल में जाने जाते हैं ।।29।।

अथैकादशचक्रस्था इषुमद्ध्रस्ववामना:।
बृहश्च वर्षीयांश्चैव वृद्धः संवृध्वना सह ॥३०॥
अग्र्यः प्रथम आशुश्चाजिरोऽन्यः शीघ्र्यशीभ्यकौ।
ऊर्म्यावस्वन्यरुद्रौ च स्त्रोतस्यो द्वीप्य एव च ३१।।
ज्येष्ठश्चैव कनिष्ठश्च पूर्वजापरजौ तथा।
मध्यमश्चापगल्भश्च जघन्यश्च घटोद्भव ॥३२॥
चतुर्विंशतिसंख्याता एते रुद्रा महाबला:।
बुघ्न्यश्चैव तु सोभ्यश्च प्रतिसर्यकयाम्यकौ ॥३३॥
क्षेम्योर्वर्यौ च खल्यश्च ततः श्लोक्यावसान्यकौ।
वन्यकक्ष्यश्रवाश्चैव ततोऽन्यस्तु प्रतिश्रव: ॥३४॥
आशुषेणस्त्वाशुरथः शूरश्च तपसां निधे।
अवभिन्दंश्च वर्मी च वरूथी बिल्मिना सह ३५।।
कवची श्रुतश्च श्रुतसेनो दुन्दुभ्य एवच।
आहनन्यश्च धृष्णुश्चेत्येते षड्विंशतिः स्मृता: ॥३६॥

इसके बाद एकादश चक्रस्थ रुद्र देवता, 1 इषुमत्, 2 ह्रस्ववामन, , 3 बृहत्, 4 वर्षीयान, 5 वृद्ध, 6 संवृध्व 7 अग्य, 8 प्रथम, 9 आशु, 10 अजिर, 11 शीघ्र्य, 12 शीभ्यक, 13 ऊर्मि, 14 आवस्वन, 15 रुद्र, 16 स्त्रोतस्य, 17 द्वीप्य हे घटोद्भव! 18 ज्येष्ठ, 19 कनिष्ठ, 20 पूर्वज, 21 अपरज, 22 मध्यम, 23 अपगल्भ, 24 जघन्य, ये चौबीस रुद्रगण महाबलवान हैं ये सभी एकादश चक्र में स्थित है इसके बाद 1 बुघ्न्य, 2 सोभ्य, 3 प्रतिसर्यक, 4 याम्यक 5 क्षेम्य, 6 ओवर्य, 7 खल्य, 8 श्लोक्य, 9 अवसान्यक, 10 वन्य, 11 कक्ष्य, 12 श्रव् 13 प्रतिश्रव14 आशुषेण, 15 आशुरथ, 16 शूर, हे तपोनिधि! 17 अवभिन्द, 18 वर्मी, 19 वरुथी, 20 विल्मी 21 कवची, 22 श्रुत, 23 श्रुतसेन, 24 दुन्दुभि, 25 आहन्य, 26 धुष्णु,

ये छब्बीस, (षड्विंशति) कहे गये हैं ।।30,31,32,33,34, 35, 36।।

द्वादशावरणस्थाश्च महाकाया महाबलाः।
प्रमृशश्चैव दूतश्च प्रहितश्च निषङ्गिकः ॥ ३७ ॥
अन्यस्त्रिषुधिमानन्यस्तीक्ष्णेषुश्च तथायुधी।
स्वायुधश्च सुधन्वा च स्रुयः पथ्यश्च कुम्भज ३८।।
काट्यो नीप्यस्तथा सूयः सरस्यो विन्ध्यमर्दन।
तथा चान्यो नाद्यनामा वैशन्तः कूप्य एव च ३९।।
अवट्यवर्ष्या वर्ष्याश्च मेध्यो विद्युत्य एव च।
ईभ्यातप्यौ तथा वात्यो रेष्मियश्च तथा परः ४०।।
वास्तव्यो वास्तुपश्चैव सोमश्चेति महाबलाः।
त्रयोदशावरणगा बहिस्त्रिंशद्दलेष्वमी ॥४१ ॥

द्वादशावरण में स्थित महाकाय और महाबली हैं 1 प्रमृश, 2 दूत, 3 प्रहित, 4 निषड्ंगी, हे कुम्भज! 5 अन्य इषुधिमान (जो युद्ध में और लकड़ी काट छांट वाले हैं), 6 स्वायुध, 7 सुधन्वा, 8 स्रुत्य, 9 पश्य, 10 काट्य, 11 नीप्य, 12 सूद्य, 13 सरस्य, 14 विन्ध्यमर्दन, 15 नाथमान, 16 वैशन्त, 17 कूप्य18 अवट्य, 19 वर्ष्या, 20 मेध्य, 21 विद्युत्य, 22 ईश्या 23 अतप्य, 24 वात्य, 25 रेष्म्य26 वास्तव्य, 27 वास्तुप, 28 सोम, महाबल हैं, अब त्रयोदश वरणस्थ तीस दलों में ये हैं-यथा।।41,37,38,39,40,।।

संस्थिताः सर्वगा रुद्राः शृण्वन्यामावृतिं मुने।
रुद्रताम्रारुणाः शङ्गस्तथा पशुपतिर्मुने ।॥ ४२ ॥
उग्रो भीमस्तथैवाग्रेवधदूरेवधावपि।
हन्ता चैव हनीयांश्च वृक्षाश्च हरिकेशकाः ॥४३।
तारश्शंभुर्मयोभूश्च शङ्करश्च मयस्करः।
शिवश्शिवतरश्चैव तीर्थ्यः कूल्यस्तथैव च॥४४॥
पार्यो वार्यः प्रतरणोत्तरणौ च घटोद्भव।
आतार्यालाद्यनामानौ शष्प्यफेन्यौ तथा परौ ४५।।

संस्थित है और सर्वत्र गतिशील है वे इस प्रकार हैं 1 रुद्र, 2 ताम्र, 3 अरूण, 4 शंग, 5 पशुपति 6 उग्र, 7 भीम, 8 अग्रेवध, 9 दूरेवध, 11 हन्ता, 11 हनीय, 12 वृष, 13 हारिकेशक14 तार, 14 शम्भु, 16 मयोभू, 17 शंकर, 18 मयस्कर, 19 शिव, 20 शिवहर, 21 तीर्थ्य, 22 कूल्य

हे घटप्रभव! 23 पार्य, 24 अवार्य, 25 प्रतरण, 26 उत्तरण, 27 आतार्य, 28 आलाष, 29 शष्प्य, 30 फेन्य।।42,43,44,45।।

एते त्रिशन्महारुद्रा दीप्तकोपा उदायुधाः ।
चतुर्दशावरणगा महारुद्रमुपासते ।।४६ ।।

ये तीस महारुद्र हैं जो दीप्ति कोप हैं और उदायुध हैं अर्थात क्रोधपूर्ण हैं और शस्त्र उठाए रखते हैं ये चौदहवें आवरण में स्थित महारुद्र शिव की उपासना करते हैं ।।46।।

सिकत्यश्च प्रवाहश्च इरिण्यश्च प्रपथ्यकः ।
किंशिलः श्रयणश्चैव कपर्दी च पुलस्तिकः ।।४७।।

हे मुने! 1 सिकत्य, 2 प्रवाह, 3 इरिण्य, 4 प्रपश्यक, 5 किंशिल, 6 क्षयण, 7 कपर्दी, 8 पुलस्त्य।।47।।

गोष्ठयो गृह्यस्तल्प्यगेह्यौ काट्यः स्याद्गह्वरेष्टकः ।
हृदय्यश्च निवेष्प्यश्च पांसव्यश्च रजस्यकः ।।४८ ।।

9 गोष्ठय, 10 गृह्य, 11 तल्प्य, 12 गेह्य, 13 काट्य, 14 गह्वर, 15 इष्टक, 16 हृद्यय, 17 निवेष्प्य, 18 पांसव्य, 19 रजस्यक ।।48।।

शुष्क्यो हरित्यो लोप्यश्चोलप्योर्ग्यौ सूर्य एव च ।
पर्णश्च पर्णशद्यश्च तथाऽपगुरमाणकः ।।४९ ।।

20 शुष्स्य, 21 हरित्य, 22 लोप्य, 23 ओलप्य, 24 ऊर्ग्य , 25 सूर्म्य, 26 पर्ण, 27 पर्षशद्, 28 अपगु, अमाणक ।।49।।

अभिन्नन्नाखिवदंश्चैव प्रखिवदन्किरिकास्तथा।
देवानां हृदयाश्चैव द्वात्रिंशद्रुद्रदेवताः ।।५० ।।

29 अभिन्न, 30 नास्त्रिवद, 31 प्राखिवा 32 किटिक ये देवों के हृदय बत्तीस रुद्रदेवता हैं।।50।।

वर्तन्ते सायुधाः प्राज्ञ नित्यं पञ्चदशावृतौ ।
द्वात्रिंशत्सु दलेष्वेते जगद्वन्द्या महामुने ।।५१ ।।

ये सभी अपने अपने अस्त्रों शस्त्रों सहित प्राज्ञ! पन्द्रह वें आवरण में बत्तीस दलों में हे महामुनि! ये जगद्वन्द्य निवास करते हैं ।।51।।

षोडशे त्वावरणके पूर्वादिद्वारवर्तिनः।
विक्षीणका विचिन्वत्कास्तथाऽऽनिर्हतनामकाः ५२।।

सोलवे आवरण में तो पूर्वादिद्वारों में रहने वाले विक्षिणद्गण और विचिन्वत्कगण तथा निर्हत नामक ।।52।।

आमीवत्काश्च दीप्तास्त्रा महारुद्रमुपासते।
इति षोडशसालेषु स्थितै रुद्रैः सहस्रशः ॥५३॥

आमीवत्का ये चारों द्वारों पर निश्चित रूप से तप करते हुए महारुद्र की उपासना करते हैं साथ में पूर्वोक्त सोलह सालों के प्रत्येक पत्रों (दलों) में स्थित हजारों रुद्रों के साथ ध्यान में निमग्न रहते हैं ।।53।।

सेवितस्तु महारुद्रो ललिताज्ञाप्रवर्तकः।
वर्तते जगतामृद्ध्यै मुक्तासालेशकोणके ॥५४॥

इस तरह सोलह सालों में स्थित हजारों रुद्रगणों से सेवित महारुद्र ललिताम्बा की आज्ञा का पालन करने वाले जगत की समृद्धि वृद्धि के लिये मुक्तासाल के ईशकोण में विद्यमान रहते हैं।।54।।

शतरुद्रियसंख्याता एते रुद्रा महाबलाः।
ललिताभक्तिसंपन्नान्पालयन्ति दिवानिशम् ।।५५।।

महाबली रुद्रगण इनकी संज्ञा है शतरुद्रीय ये ललिता भक्ति में सम्पन्न जनों का पालन दिन रात करते रहते हैं ।।55।। (शतधाभार्वितो रुद्रः शतधा गदितोऽपिवा। मनोजं देहजं दुःखं सर्वं हरति शङ्करः।।)

अभक्ताँललितादेव्यां प्रत्यूहैर्यो जयन्त्यमी।
इत्थं शक्रादिदिक्पाला मुक्तासालं समाश्रिताः।।५६।।

जो भगवती ललिता देवी के भक्त नहीं हैं ऐसे उन लोगों को अनेक प्रत्यूहों में जोड़ देते हैं। इस प्रकार इन्द्रादि दिक्पालगण मुक्तासाल में आश्रय लिये हुए हैं ।।56।।

ललितापरमेशान्याः सेवामेव वितन्वते।
अथ मुक्ताख्यसालस्यान्तरे मारुतयोजने ॥५७॥

वे इन्द्रादि दिक्पाल ललिता परमेश्वरी की सेवा में तत्पर रहते हैं इसके बाद अब मुक्तासाल के भीतर मारुत (40) योजन में ।।57।।

सालो मरकताभिख्यश्चतुर्योजनमुच्छ्रितः।
पूर्ववद्गोपुरादीनां संस्थानैश्च सुशोभितः ॥५८॥

वह साल मरकत साल नाम वाला हैं चार योजनों तक ऊंचा है, उसमें पहिले जैसे ही गोपुर आदि

बने हुए संस्थानों से सुशोभित हैं। ।58।।

यत्र श्रीदण्डनाथाया दहनादिविदिग्गताः।
चत्वारो निलयाः प्रोक्ता मंत्रिणीगृहविस्तृताः।।५९।।

वहां श्रीदण्डनाथा के दहन आदि दिग्गज हैं वहां पर चार गृह हैं जो मंत्रिणी भगवती के कहे गए हैं ।।59।।

किरिचक्ररथेन्द्रस्य याः पर्वाणि समाश्रिताः।
भण्डासुरमहायुद्धे ता देव्यस्तत्र जाग्रति ॥६०॥

किरिचक्ररथेन्द्र की जो पर्वों में समाश्रित शक्तियां हैं वे जब भण्डासुर से युद्ध चल रहा था तब ये सभी देवियां वहां जाग रही थीं ।।60।।

सर्वा स्थली मरकतश्रेणिभिः खचिता शुभा ।
हेमतालवनाढ्या च सर्ववस्तुसमाकुला ॥ ६१ ॥

वहां सभी स्थली मरकतमणियों की पंक्तियां से जड़ी हुई हैं शुभकारिणी हैं वहां हेमताल अर्थात् स्वर्णिम तालवनों से भरपूर और सभी वस्तुओं से भरी हुई हैं ।।61।।

तत्र देव्यः समस्ताश्च दण्डनाथासमश्रियः।
हेलोद्घूर्णहला घूर्णमुसलाः सञ्चरन्त्यपि ॥ ६२ ॥

वहां पर देवी दण्डनाथा के समान शोभावाली समस्त देवियां हैं जो हलों को हल से भी घातक मूसलों को घुमाती हुई संचरण करती रहती हैं ।।62।।

संख्यातीतास्तालवृक्षा नवस्वर्णविचित्रिताः।
योजनायतकाण्डाश्च दलैर्युक्ता विशङ्कटैः ॥ ६३॥

असंख्यताल वृक्ष नवस्वर्ण की विचित्रता वाले हैं जिनकी शाखाएं योजन पर्यन्त फैली हुई हैं जो विशाल एवं मजबूत पत्रों से युक्त हैं ।।63।।

हेमत्वचोऽतिसुस्निग्धाः सुच्छायाः फलभङ्गुराः।
आमूलाग्रं लम्बमानास्तालाहाला घटाकुलाः ॥६४॥

जिनकी सोने की छाल अत्यन्त सुन्दर और चिकनी है उनकी छाया भी सुन्दर है डालियों में फलों के समूह लटके हुए हैं उन वृक्षों के मूल (जड़) से ऊपर अग्रभाग तक ताड़ी मदिरा के घड़े लटके हुए हैं ।।64।।

वर्तन्ते दण्डनाथायाः प्रीत्यर्थं शिल्पिभिः कृताः ।
तत्र तालसुरापूरं पीत्वापीत्वा मदाकुलाः ॥६५॥

जो भगवती दण्डनाथा की प्रसन्नता के लिये शिल्पियों ने बनाए हैं उस तालसुरापूर रस का आस्वादन पी पीकर मदाकुल ।।65।।

जृम्भिन्याद्याश्चक्रदेव्यो हेतुकाद्याश्च भैरवाः।
सप्त निग्रहदेव्यश्च नृत्यन्ति मदविह्वलाः ॥ ६६ ॥

ऋम्भिणी आदि चक्रस्थ देवियां और हेतुक आदि समस्त भैरवगण और सात निग्रह करने वाली शक्तियां मद से विह्वल नृत्य करते हैं ।।66।।

चतुर्विदिक्षु दण्डिन्या यत्र यत्र महद्गृहम्।
तत्र पूर्वादिदिग्भागे देवीसदृशवर्चसः ॥ ६७ ॥

चारों दिशाओं विदिशाओं में दंडिनी के जहां जहां बड़े घर बने हैं वहां पूर्वादि दिग्भागों में देवी के समान तेज वाली हैं ।।67।।

उन्मत्तभैरवी चैव स्वप्नेशी च तिरस्कृतिः।
तथा किरिपदादेवी सेवन्ते दण्डनायिकाम्।।६८।।

और उन्मत भैरवी स्वप्न की स्वामिनी और तिरस्करणी और किरिपदा देवियां भगवती दण्डनायिका की सेवा करती हैं ।।68।।

एषा कक्ष्या मरकतप्रकृतिः सर्वतोदिशम्।
निवासो दण्डनाथायाः केवलं चाभिमानिकाः ।।६९।।

यह कक्षा सभी दिशाओं में मरकत मणि की है इनमें दण्डनाथा का निवास केवल अभिमानिक है अर्थात् भवन हैं तो उनमें निवास भी होगा परन्तु भगवती का स्थान ।।69।।

तस्यास्तु सेवावासोऽन्यो महापद्माटवीस्थले।
तत्कक्ष्यातिदवीयस्त्वात्सेवार्थं तत्र तद्गृहम्।।७०॥

उन भगवती दण्डनाथा सेवावास अन्य है जो महापद्माटवी के स्थल पर है वहां उसकी रक्षा के लिये उनकी महादेवी ने उनके लिये वह घर बनवा दिया हैं। 70।

अथो मरकताकारसालान्तः सप्तयोजने।
प्राकारो विद्रुमाकारः प्रातरर्यमपाटलः ॥ ७१ ॥

इसके अनन्तर मरकतमणि से बने साल सात योजन पर मूंग के आकार का निर्मित प्राकार (चहार दिवारी) है जो प्रातःकालीन सूर्य के समान पाटल (ईषत्श्वेतरक्त) वर्ण का है ।।71।।

तत्र स्थली च सकला विद्रुमेणैव निर्मिता।
तत्र विद्रुमसङ्काशो ब्रह्मा नलिनविष्टरः ।।७२॥

ब्रह्मलोकात्समागत्य सार्थ सर्वैर्मुनीश्वरैः ।
सदा श्रीललितादेव्याः सेवनार्थमतन्द्रितः ॥७३॥

वहां पर स्थल समस्त विद्रुममणि से ही निर्मित है वहां विद्रुम जैसे पद्म के आसन पर विराजमान ब्रह्माजी ब्रह्मलोक से सभी मुनीश्वरों के साथ आकर संकल्प है कि बिना आलस्य के श्री ललिताम्बा की सेवा करना ।।72,73।।

मरीच्याद्यैः प्रजासृग्भिर्वर्तते साकमब्धिप।
चतुर्दशापि विद्यास्ता उपविद्याः सहस्त्रशः ॥७४॥

हे समुद्र का पान करने वाले! ऋषिवर्य, आज्ञासृष्टि करने मरीचि आदि ऋषि श्रेष्ठों के साथ चौदह विद्याएं हजारों उपविद्याएं ।।74।।

चतुष्षष्टिकलाश्चैव शरीरिण्यो महत्तराः।
प्राकारे विद्रुमाकारे ब्रह्मलोकं समाश्रिताः।
वर्तते जगतामृध्यै ललितादेवताज्ञया ।। ७५ ॥

चौंसठ कलाएं प्रत्यक्ष शरीर धारण कर विद्रुमाकार आकार क्षेत्र में ब्रह्मलोक से आकर भगवती ललिताम्बा की आज्ञा से जगत की वृद्धि के लिये सदैव तत्पर रहती हैं ।।75।।

अथ विद्रुमसालस्यान्तरे मारुतयोजने।
माणिक्यमण्डपं नाम कक्ष्यान्तरमुदीरितम्॥७६॥

उस विद्रुमसाल के मध्य मारुत योजन के अन्तर पर माणिक्यमण्डय नामक अन्य कक्ष है।।76।।

नानारत्नकृतः सालः पूर्ववद्गोपुरान्वितः।
माणिक्यमण्डपस्थाने परितः सर्वतोदिशम्॥७७।।
वर्तते विष्णुलोकस्तु ललितापूजनोत्सुकः।
तत्र वैष्णवलोके तु विष्णुः साक्षात्सनातनः ।।७८।।

अनेक प्रकार के रत्नों से युक्त साल पूर्ववत् गोपुर से युक्त है उस माणिक्य मण्डपस्थान में सभी दिशाओं में चारों तरफ वहां भगवती की पूजा करने के लिये उत्सुक विष्णुलोक है उस वैष्णव लोक में साक्षात् सनातन विष्णु विराजमान है ।।77,78।।

चतुर्धा दशधा चैव तथा द्वादशधा पुनः।
विभिन्नमूर्तिः सततं वर्तते माधवः सदा ॥ ७९ ॥

उस वैष्णवलोक में साक्षात सनातन विष्णु ही चार प्रकारों से दश प्रकारो से फिर बारह प्रकारों से तथा विभिन्न मूर्तियों से विद्यमान रहते हैं ।।79।।

भण्डासुरमहायुद्धे ये श्रीदेवीनखोत्थिताः ।
दशावतारनाथास्तु तेऽपि माणिक्यमण्टपे ॥८०॥

भण्डासुर से महायुद्ध में श्रीदेवी के नखों से उद्भूत दशावतार नाथ भी माणिक्य मण्डप में हैं।।80।।

पूर्वकक्ष्यान्तरेभ्यस्तु तत्कक्ष्यायां विशिष्टता ।
उपर्याच्छादनामात्रं माणिक्यदृषदां गणैः ॥८१॥

पूर्व कक्षाओं के अन्दर से उस कक्ष्या में विशेषता है वह यह है कि उसमें विशेष रूप से माणिक्य पत्थरों के समूहों से ऊपर से ढंके हुए मात्र रहते हैं ।।81।।

तत्र कक्ष्यान्तरे देवः शङ्खचक्रगदाधरः ।
भिन्नो द्वादशमूर्त्या च पूर्वाद्याशासु रक्षति ॥८२॥

वहां उस माणिक्यमण्डप के मध्य में भगवान शंख, चक्र, गदाधर विष्णु उन द्वादश आदित्य मूर्तियों से भिन्न मूर्तियों से उसकी रक्षा करते हैं ।।82।।

जाम्बूनदप्रभश्चक्री पूर्वस्यां दिशि केशवः ।
पश्चान्नारायणः शङ्खी नीलजीमूतसंन्निभः ॥८३॥

उस मण्डप की पूर्व दिशा में जाम्बुनदस्वर्णाभ सुदर्शन चक्रधारी केशव रक्षा करते हैं पश्चिम दिशा में काले मेघ के समान वर्णवाले शंखधारी नारायण रक्षा करते हैं ।।83।।

इन्दीवरदलश्यामस्तथोर्ध्वं माधवोऽवति ।
गोविन्दो दक्षिणे पार्श्वे धन्वी चन्द्रप्रभो महान्।।८४।।

नीलकमल दल के जैसे श्यामवर्ण माधव उन दोनों दिशाओं के ऊदुर्घ्वभाग की रक्षा करते हैं और धनुषधारी चन्द्रकान्ति वाले गोविन्द दक्षिण दिशा की रक्षा करते हैं।।84।।

उत्तरे हलभृद्विष्णुः पद्मकिञ्जल्कसन्निभः ।
आग्नेय्यामरविन्दाक्षो मुसली मधुसूदनः ॥८५॥

उत्तर दिशा की रक्षा कमल की भीतर की कलियों में स्वर्णिमवर्ण वाले हलभृद् विष्णु करते हैं आग्नेयकोण कोण की कमल नेत्र मूसलधारी मधुसूदन रक्षा करते हैं ।।85।।

त्रिविक्रमः खड्गपाणिर्नैरृत्यां ज्वलनप्रभः ।
वायव्यां वामनो वज्री तरुणादित्यदीप्तिमान्।।८६।।

खड्गपाणि त्रिविक्रम अग्नि के समान प्रज्वलित वाले नैरृत्यकोण की रक्षा करते हैं तथा मध्याहन कालिक सूर्य के समान दीप्ति वाले वज्रायुध हाथ में लिये हुए वामन वायव्य कोण की

रक्षा करते हैं ।।86।।

ईशान्यां पुण्डरीकाक्षः श्रीधरः पट्टसायुधः ।
विद्युत्प्रभो हृषीकेशो ह्यवाच्यां दिशि मुद्गरी।।८७।।

श्री धर पुण्डरीकाक्ष पट्टसायुध लिये हुए ईशान कोण की रक्षा करते हैं तथा बिजली की प्रभावाले मुद्‌गर हाथ में लिये हुए हृषीकेश अधोदिशा की रक्षा करते हैं। ।।87।।

पद्मनाभः शार्ङ्गपाणिः सहस्त्रार्कसमप्रभः ।
माणिक्य मण्टपस्थानमनुलोमेन वेष्टते ॥८८॥

शार्ङ्गधनुष हाथ में लिये हुए सहस्त्रों सूर्य के समान प्रभावाले पद्मनाभ विष्णु माणिक्य चक्र स्थान को अनुलोम क्रम से अर्थात सीधे क्रम से घेरे रहते हैं। अनुलोम अर्थात बाईं ओर से दाईं ओर वाला ।।88।।

सर्वायुधः सर्वशक्तिः सर्वज्ञः सर्वतोमुखः ।
इन्द्रगोपकसङ्काशः पाशहस्तोऽपराजितः ॥ ८९ ॥

सभी आयुधों वाले सर्वशक्तिमान् सर्वज्ञ इन्द्र गोप के वर्ण जैसे वर्ण वाले हाथ में पाश लिये असुरों से अपराजित ।।89।।

दामोदरस्तु सर्वात्मा ललिताभक्तिनिर्भरः।
माणिक्यमण्टपस्थानं प्रतिलोमेन वेष्टते ॥ ९० ।

वे सर्वात्मा दामोदर जो ललिता भक्ति में निर्भर रहते हैं वे माणिक्य मंडप स्थान प्रतिलोम क्रम से धेरे रहते हें अर्थात दायीं और से बायीं ओर जाते हैं ।।90।।

इति द्वादशभिदेवैर्भगवानम्बुजेक्षणः ।
माणिक्यमण्टपगते विष्णुलोके विराजते ॥९१॥

इस प्रकार बारह भेदों में भगवान कमलनयन माणिक्य मण्डप में स्थित विष्णुलोक में रहते हैं।।91।।

अथ नानारत्नसालान्तरे मारुतयोजने ।
सहस्त्रस्तम्भकं नाम मण्टपं सुमनोहरम्॥९२॥

अनेकों रत्नों वाले साल के मध्य सात योजन के अन्तर पर सहस्त्रस्तम्भक नाम का मण्डप सुन्दर मनोहर है ।।92।।

नानारत्नैस्तु खचितं नानाकल्पैरलंकृतम्।
नानारत्नकृतः सालस्तुङ्गस्तत्राभिवर्तते ॥ ९३ ॥

जो रत्नमंडप अनेक रत्नों से जड़ा हुआ है और अनेक रत्नों से अलंकृत है वहां एक साल है जो अनेक रत्नों से अलंकृत है वहां यह भी है ।।93।।

एका पङ्क्ति सहस्रेण स्तम्भस्तिर्यक्प्रवर्तते।
तादृश्यः पङ्क्तयो बह्वयः स्तम्भानां तु चतुर्दिशम्।।९४।।

जिसमें एक पंक्ति हजारों स्तम्भों की टेढ़ी लगी हुई है उसी तरह की अनेकों पंक्तियां चारों दिशाओं में लगी हुई हैं ।।94।।

उपर्याच्छादनं चापि पूर्ववद्रत्नदारुभिः ।
शिवलोकस्तत्र महाञ्जागर्ति स्फुरितद्युतिः ॥९५॥

उसकी ऊपरी छत रत्नजटित कड़ियों से आच्छादित है वहां पर जगमगाती युति वाले शिवलोक विद्यमान हैं ।।95।।

शैवागमा मूर्तिमन्तस्तत्राष्टाविंशतिः स्मृताः।
नन्दिभृङ्गिमहाकालप्रमुखास्तत्र चोत्तमाः ॥९६॥

मूर्तिमान शैवागम 28 की संख्या में विद्यमान हैं वहां नन्दी भृंगी महाकाल प्रमुखगण है ।।96।।

षट्त्रिंशत्तत्र देवाश्च गजवक्त्राः सहस्रशः।
शिवलोकोत्तमे तस्मिन्सहस्रस्तम्भमण्टपे ।।९७।।

वहां छत्तीस देवगण और सहस्रों गजवक्त्र (हाथी के सिर वाले) उस सहस्र स्तंभ मण्डप में शिवलोक में हैं।। 97।।

ईशानः सर्वविद्यानां राजते चन्द्रशेखरः।
ललिताज्ञापालकश्च ललिताज्ञाप्रवर्तकः ॥९८॥

उस शिवलोक में भगवान चंदशेखर समस्त विद्याओं के ईश्वर ईशान वहां पर हैं जो भगवती ललिता की आज्ञा के पालक हैं और उनकी आज्ञा को सर्वत्र फैलाने वाले भी हैं।। 98।।

ललितामन्त्रजापी च नित्यमानन्दमानसः।
शैव्या दृष्ट्या स्वभक्तानां ललितामन्त्रसिद्धये ।।९९।।

भगवती ललिता के मंत्र का जप करने वाले नित्य आनन्दपूर्ण मानस वाले शैवी दृष्टि से कल्याणमयी दृष्टि से अपने भक्तों में ललिता मंत्र की सिद्धि प्रकट हो जाय तो ऐसी दृष्टि वाले हैं।।99।।

अन्तर्बहिस्तमःपुञ्जनिर्भेदनपटीयसीम्।
महाप्रकाशरूपां तां मेधाशक्तिं प्रकाशयन्॥१००॥

भीतर बाहर के समस्त अज्ञान रूपी अंधकार को विच्छिन्न करने में अत्यंत चतुर महा प्रकाश रूप उस मेधाशक्ति को वे प्रकाशित करते हैं ।।100।।

सर्वज्ञः सर्वकर्ता च सहस्रस्तम्भमण्टपे।
वर्तमानो महादेवः श्रीदेवीमेव सेवते ॥१०१ ॥

वे सर्वज्ञ सर्वकर्ता महादेव उस सहस्रस्तंभ मंडप में स्थित रहते हुए ललिता देवी की आराधना ही करते रहते हैं ।।101।।

इत्थं कारणकृत्येन्द्राः श्रीदेवीभक्तिनिर्भराः।
तत्तत्सालान्समाश्रित्य वर्तन्ते कुम्भसंभव ॥१०२॥

हे कुम्भज ! इस प्रकार वे नाना कृत्यों के स्वामी श्री देवी की भक्ति में निर्भर उन उन सालों के मध्य में आश्रय लेकर विद्यमान रहते हैं ।।102।।

इति श्रीब्रह्माण्डपुराणे उत्तरखण्डे इयश्रीवागस्त्यसंवादे
श्रीललितोपाख्याने त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

॥श्रीमन्महागणाधिपतये नमः।।

श्रीमाताललिताम्बायै नमः श्रीपादुकां पूजयामि नमः॥
ॐ वन्दे गुरुपदद्वन्दं अवाङ्मनसगोचरम्॥
रक्तशुक्ल प्रभामिश्रमतर्क्यं त्रैपुरं महः॥
ॐ आराध्यदेवं भक्तानां कलिदोषविनाशकम्॥
वन्दे श्री गिरिजानन्दं शारदाश्रीमठाधिपम्।।
ॐ अखण्डं यस्यज्ञानञ्च भक्तिर्यस्यानपायिनी।।
शारदाज्योतिरीशस्य दर्शनं (पूजनं, वन्दनं) शुभमस्तुनः।।

एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ 113 श्लोकात्मक

॥ महापद्माटवीवर्णनम् ॥

श्री हयग्रीव ऋषि अगस्त्य जी से बोले !

अथ वापीत्रयादीनां कक्ष्याभेदान्प्रचक्ष्महे।
येषां श्रवणमात्रेण जायते श्रीर्महोदया।।१।।

अब पिछले वर्णन में विभिन्न सालों के तथा उनमें निवासादि के वर्णन के अनन्तर मैं अब आपको तीन वापियों के कक्ष्या भेदों को बताऊंगा, जिनके श्रवण मात्र से मनुष्य श्रीसम्पन्न हो जाता है।।1।।

सहस्रस्तम्भसालस्यान्तरे मारुतयोजने।
मनो नाम महासालः सर्वरत्नविचित्रितः॥२॥

हजार खम्भों वाले साल में मध्य मारुत (49) योजन पर सभी रत्नों से विचित्रित मन नाम का एक महासाल है ।।2।।

पूर्ववद्गोपुरद्वारकवाटार्गल संयुतः।
तन्मध्यकक्ष्याभागस्तु सर्वोऽयमृतवापिका।।३।।

पूर्ववद् गोपुर द्वार, किवाड़, सांकल से युक्त उस साल के मध्य भाग में अमृतवापियाँ (बावली) हैं।।3।।

यत्पीत्वा योगिनः सिद्धा वज्राकाया महाबलाः।
भवन्ति पुरुषाः प्राज्ञ तदेव हि रसायनम्॥४॥

जिनका जल पीकर योगी, सिद्ध वज्र शरीर और महाबली हो जाते हैं हे प्राज्ञ! यह वही रसायन है।।4।।

तस्याममृतवाप्यां तु वर्तते तोयतां गतम्।
तद्गन्धाघ्राणमात्रेण सिद्धिकान्तापतिर्भवेत्॥५॥

हे कुंभज ! उस वापी में जो जल है उसका स्पर्श भी न हो केवल उसकी गंध मात्र से ही साधक निष्पाप हो सिद्धि रूपी कान्ता का पति हो जाता है ।।5।।

अस्पृशन्नपि विन्ध्यारे पुरुषः क्षीणकल्मषः।
उभयोः सालयोर्मध्ये सुधावापीतटद्वयम्॥६॥

हे विन्ध्यारे ! उस जल का बिना स्पर्श किये उसकी गन्ध मात्र से पुरुष के पाप क्षीण हो जाते हैं दोनों सालों के मध्य में अमृत वापी दो तट हैं ।।6।।

अर्धक्रोशसमायाममन्यत्सर्वं च वापिका।
चतुर्योजनदूरं तु तलं तस्या जलान्तरे॥७॥

उन दो तटों के किनारों पर आधे कोस की विस्तार वाली और अन्य सभी छोटी वापियां हैं अमृतमयी वापी का नीचे का तल चार योजन जल के अन्तर में है ।।7।।

सोपानावलयस्तस्यां नानारत्नविचित्रिताः।
स्वर्णवर्णा रत्नवर्णास्तस्या हंसाश्च सारसाः॥८॥

उस अमृतवापी की सीढ़ियां अनेक प्रकार के रत्नों से विचित्रित हैं उनमें स्वर्णवर्ण के एवं रत्नों के वर्ण वाले अनेक हंस और सारसगण क्रीड़ाएं करते रहते हैं ।।8।।

आस्फाल्यते तटद्वन्द्वं तरङ्गैरतिचञ्चलैः।
पक्षिणस्तज्जलं पीत्वा रसायनमयं नवम्।।
अजरामरतां प्राप्तास्तत्र विन्ध्यनिषूदन॥९॥

हे अगस्त्य जी ! उस वापी के दोनों तटों में अत्यन्त चंचल लहरों से खेलते हुए वे पक्षिगण आपस में चोंचों से एक दूसरे से लड़ने के लिए तत्पर रहते हैं वे सभी से रसायनमय जल को पीकर अजर और अमरता को प्राप्त हो गये हैं ।।9।।

सदाकूजितलक्ष्येण तत्र कारण्डवद्विजाः।
जपन्ति ललितादेव्या मन्त्रमेव महत्तरम्॥१०।।

वहां कारण्डवद्विज पक्षी सदा कूजते हुए उस वापी के चक्कर लगाते हुए भगवती ललिताम्बा का महत्तर मंत्र का जप करते रहते हैं ।।10।।

परितो वापिकाचक्रपरिवेषेण भूयसा।
न तत्र गन्तुं भागोऽस्ति नौकावहनमन्तरा ।।११॥

चारों ओर वापी के चक्रों के विस्तार से केवल नौका वाहन के अतिरिक्त कोई साधन नहीं है जाने के लिए।।11।।

आज्ञया केवलं तत्र मत्रिणीदण्डनाथयोः ।
तारानाम महाशक्तिर्वर्तते तरणीश्वरी ॥ १२ ॥

वहां केवल मंत्रिणी और दण्डनाथा की आज्ञा से ही जाया जा सकता है, वहां तारा नाम वाली महाशक्ति हैं जो तरिणीश्वरी मानी जाती हैं ।।12।।

वाह्यस्तत्रोत्पलश्यामास्ताराया: परिचारिकाः ।
रक्तनौकासहस्रेण खेलन्ति सरसीजले ॥ १३ ॥

वहां पर नील कमल के समान तारा भगवती की नीलवर्णा अनेकों परिचारिकाएं रत्नजटित हजारों नौकारूपों में बैठकर क्रीड़ा करती हैं ।।13।।

अपरं पारमायान्ति पुनर्यान्ति परं तटम्।
वीणावेणुमृदङ्गादि वादयन्त्यो मुहुर्मुहुः ॥ १४ ॥

ये सभी परिचारिकाएं वीणा, वेणु, मृदंगादि वाद्यों को बजाती हुईं बारबार एक तट से दूसरे तट में तथा बाद में पुनः वापस उसी तट में आ जाती हैं।।14।।

कोटिशस्तत्र ताराया नाविक्यो नवयौवनाः ।
मुहुर्गायन्ति नृत्यन्ति वाहयन्ति मुहुस्तरीः ॥१५॥

भगवती तारा देवी की करोड़ों नवयौवना नाविकियां नौकाओं को जल धारा में बार बार घुमाती हुई गाती हैं और नृत्यादि करती हैं ।।15।।

अरित्रपाणयः काश्चित्काश्चिच्छृङ्गाम्बुपाणयः ।
पिबन्त्यस्तत्सुधातोयं सञ्चरन्त्यस्तरीशतैः ॥१६॥

उन नाविक्याओं में कोई नाव का लंगर हाथ में लिये हुए नाव चला रही है कोई श्रृंग और जल हाथ ली हुई है कोई उस अमृत तुल्य जल को पीती हुई सैंकड़ों नावों को चला रही थीं ।।16।।

तासां नौकावाहिकानां शक्तीनां श्यामलत्विषा ।
प्रधानभूता ताराम्बा जलापच्छमनक्षमा ॥१७॥

उन नौका वाहिनी शक्तियों में प्रधान भगवती ताराम्बा हैं जो जल सम्बंधी समस्त आपदों का शमन करने में समर्थ हैं ।।17।।

आज्ञां विना तयोस्तारा मंत्रिणीदण्डनाथयोः ।
त्रिणेत्रस्यापि नो दत्ते वापिकाम्भसि सन्तरम् ।।१८।।

वे भगवती तारा, मंत्रिणी और दण्डनाथा की आज्ञा के बिना त्रिनेत्र शिव को भी वापी के जल में तरने के लिये नाव नहीं देती हैं ।।18।।

गायन्तीनां चलन्तीनां नौकाभिर्मणिचारुभिः।
महाराज्ञीमहौदार्यं पठन्तीनां पदे पदे ।।
पिवन्तीनां मधु स्फीतं माणिक्यचषकोदरैः ॥१९॥

मणिरत्न जड़ित नौकाओं में गाती हुईं महाराज्ञी की महती उदारता का पद पद में गुणगान करती हुई माणिक्य के प्यालों में बहुत मधु भरकर पान करती हुईं घूमती हैं ।।19।।

प्रतिनौकं मणिगृहे वसन्तीनां मनोहरे।
तारातरणिशक्तीनां समत्रायोऽतिसुन्दरः ॥२०॥

मनोहर माणिगृह में अलग-अलग नौकाओं में निवास करती हुईं भगवती तारा की तरणिशक्तियों का समुदाय अतिसुन्दर था भयावह नहीं था ।।20।।

काश्चिन्नौकाः सुवर्णाढ्याः काश्चिद्रत्नकृता मुने।
मकराकारमापन्नाः काश्चिन्नौका मृगाननाः ॥२१॥

अनेक प्रकार की नौकाएं वहां थीं कई नौकाएं सुवर्ण निर्मित थीं कई नौकाएं रत्नों से जड़ी हुईं थीं, किसी नाव का मुख मगर जैसा था किसी का हिरन जैसा था ।।21।।

काश्चित्सिहानना नावः काश्चिद्दन्तावलाननाः।।२२।।

किसी नाम का मुख सिंह जैसा और किसी नाव का हाथी जैसा मुख था ।।22।।

इत्थं विचित्ररूपाभिनौकाभिः परिवेष्टिताः।
ताराम्बा महतीं नौकामधिरूढा विराजते॥२३॥

इस प्रकार विचित्र रूपवाली नौकाओं से घिरी हुई वे ताराम्बा एक बड़ी नाव में विराजमान हैं।।।23।।

आत्मानुरूपरूपेण ललितामन्त्रजापिना ।
सार्धं प्रियतमेनैव रत्नासनमुपेयुषी ॥२४॥

वे भगवती ताराम्बा अपने ही रूपवाले भगवती ललिताम्बा का मंत्र जपने वाले प्रियतम के ही साथ रत्नासन में बैठीं हुईं थीं ।।24।।

अनुलोमविलोमेन संचारं वापिकाजले।
तन्वाना सततं तारा कक्ष्यामेनां हि रक्षति ।।२५।।

एक तरफ से आने में फिर दूसरी ओर से लौटने में उस कक्षा में निरन्तर भ्रमण करती हुईं भगवती

तारा रक्षा में तत्पर रहती हैं। ।।25।।

मनस्सालस्यान्तराले सप्तयोजनदूरतः।
बुद्धिसाल इति ख्यातश्चतुर्योजनमुच्छ्रितः॥२६॥

मनस्साल के अन्तराल में सात योजन की दूरी पर बुद्धिसाल नामक प्रसिद्ध साल है जो चार योजन तक ऊंचा हैं ।।26।।

तन्मध्यकक्ष्याभागस्तु सर्वोऽप्यानन्दवापिका ।।२७।।

इस बुद्धि साल के भीतर मध्य कक्षा भाग में सभी को आनन्दित करने वाली आनन्दवापी हैं।।27।।

तत्र दिव्यं महामद्यं बकुलामोदमेदुरम्।
प्रतप्तकनकच्छायं तज्जलत्वेन वर्तते ।।२८॥

वहां पर बकुल (मोरछल्ली) की सुगन्ध से दिव्य महामद्य है जो तपाए हुए सोने के जैसी स्वर्णिम रूप वाली मद्य है ।।28।।

आनन्दवापिकागाधः पूर्ववत्परिकीर्तितः।
सोपानादिक्रमश्चैव पक्षिणस्तत्र पूर्ववत्॥२९॥

आनन्द बावड़ी की गाथा पूर्व में कही गई बाबड़ियों के समान है वहां सीढ़ियो का क्रम भी पूर्ववत् है तथा पक्षियों की भी स्थिति पूर्ववत् है ।।29।।

तत्रत्यं सलिलं मद्यं पायंपायं तटस्थिताः।
विहरन्ति मदोन्मत्ताः शक्तयो मदपाटलाः ॥३०॥

वहां का जो जल है वह मद्य गुण वाला है उसे पी पीकर तट में स्थित शक्तियां मद से पाटल (गुलाबी) वर्ण वाली मदोन्मत होकर घूमती रहती है। 30।।

साक्षाच्च वारुणी देवी तत्र नौकाधिनायिका।
यां सुधामालिनीमाहुर्यामाहुरमृतेश्वरीम्॥३१॥

वहां पर साक्षात् वारुणी देवी ही नौकाओं की अधिनायिका है जिसे सुधामालिनी कहा गया है और जिसे अमृतमालिनी भी कहते हैं ।।31।।

सा तत्र मणिनौकास्था शक्तिसेनासमावृता।
ईषदालोकमात्रेण त्रैलोक्यमददायिनी ।।३२ ।।

वह अमृतेश्वरी देवी शक्ति सेना से घिरी हुई नौका में स्थित रहती है वह भगवती हल्के रूप से देखने मात्र से तीनों लोकों की मदमत्तकर देती हैं ।।32।।

तरुणादित्यसङ्काशा मदरक्तकपोलभूः ।
पारिजातप्रसूनस्त्रक्परिवीतकचोच्चया॥३३॥

मध्याह्न कालिक तरुण सूर्य के समान मद से युक्त जिनके कपोल हैं जो पारिजात के पुष्पों की माला धारण की हुई हैं और बाल सिर में कुछ बिखरे से हैं ।।33।।

वहन्ती मदिरापूर्णं चषकं लोलदुत्पलम्।
पक्कं पिशितखण्डं च मणिमात्रे तथान्यके ॥३४॥

वे मदिरा से भरे हुए प्याले को और कमल को हिला रहीं हैं तथा मणिपात्र में तथा अन्य पात्रों में पकाए हुए मांस खण्ड रखे हुए हैं ।।34।।

नायकेनानुकूलेन साकं श्रीमन्त्रजापिना।
पक्कं तरणिश्रेणीनायिका तत्र राजते ॥ ३५ ॥

भगवती के मंत्र जापक प्रिय नायक के साथ वे वारुणी नावों की श्रेणी नायिका वहां विराजमान हैं।।35।।

साप्याज्ञयैव सर्वेषां मन्त्रिणीदण्डनाथयोः ।
ददाति वापीतरणं त्रिणेत्रस्यापि नान्यथा ॥ ३६॥

सभी को नाव वे तब देती हैं जब मंत्रिणी और दण्डनाथा की आज्ञा हो जाय वे इन दोनों की आज्ञा के बिना त्रिनेत्र को भी नहीं देती हैं ।।36।।

अथ बुद्धिमहासालान्तरे मारुतयोजने ।
अहङ्कारमहासालः पूर्ववगोपुरान्वितः ॥ ३७ ॥

इस के आगे बुद्धि महासाल के अन्तर में सात योजनों में अंहकार महासाल है जो पूर्ववद् गोपुरों से युक्त हैं ।।37।।

तयोस्तु सालयोर्मध्यकक्ष्याभूरखिला मुने।
विमर्शवापिका नाम सौषुम्णामृतरूपिणी ॥ ३८ ॥

उन दोनों सालों के बुद्धि साल और अंहकार साल के मध्य समस्त भूमि मे है मुने! विमर्शवापिका नाम की वापी हैं जिसमें सौषुम्ण नामक अमृत वाली है। ।38।।

यन्महायोगिनामन्तर्मनोमारुतपूरिते ।
सुषुम्णादण्डविवरे जागर्ति परमामृतम्॥३९॥

जो महायोगियों के अन्तर्मन को वायु से भर देती है उस सुषुम्णा के दण्डविचर में परमामृत विद्यमान रहता है।।39।।

तदेव तस्याः सलिलं वापिकायास्तपोधन।

पूर्ववत्तटसोपाना पक्षिनौकाभिधा स्मृता ॥४०॥

हे तपोधन! जैसे पूर्व बावड़ियों के तट की सीढ़ियां पक्षियों और नौकाओं आदि का वर्णन हुआ है वैसा ही यहां भी है ।।40।।

तत्र नौकेश्वरी देवी कुरुकुल्येति विश्रुता।

तमालश्यामलाकारा श्यामकञ्चुकधारिणी ॥४१॥

वहां पर नौकेश्वरी देवी कुरुकुल्या भगवती इसी नाम से विश्रुत हैं वे तमाल वृक्ष से समान श्यामल आकार वाली हैं श्यामल कंचुक धारण कर रखा हैं ।।41।।

नौकेश्वरीभिरन्याभिः स्वसमानाभिरावृता।

रक्तारित्रकरा नित्यमुल्लसन्मदमांसला ।।

प्रियंकरेण संयुक्ता प्रियेण श्रीक्रमोत्सुका ॥४२॥

वह नौकेश्वरी अपने ही समान अन्य शक्तियों से घिरी हुईं हाथ में लाल रंग की तलवार लिये मदमांसल पुष्ट शरीर से उल्लसित होती हुई अपने प्रियतम के श्री मंत्रजाप के साथ सुशोभित हो रही हैं ।।42।।

परितो भ्राम्यति मुने मणिनौकाधिरोहिणी।

वापिकापयसोऽगाधः पूर्ववत्परिकीर्तितः ॥४३॥

हे मुनि! मणि नौका पर सवार नौकेश्वरी देवी चारों तरफ घूम रही हैं वह बाबड़ी भी पूर्वोक्त बाबड़ियों के समान अगाध जल वाली कही गई है ।।43।।

अथाहङ्कारसालस्यान्तरे मारुतयोजने।

सूर्यबिम्बमयः सालश्चतुर्योजनमुच्छ्रितः ॥४४॥

वह सूर्य जैसे तेजवाला महासाल है, उसकी भी प्रभा वैसी ही व्याप्त है।।44।।

सूर्यस्य यादृशं तेजस्तादृक्तत्र प्रभोदयः ॥४५॥

उस अहंकार महासाल के अन्तर में सात योजन में सूर्य बिम्बमय महासाल जो चार योजनों तक ऊंचा है।45।।

तन्मध्यकक्ष्यावसुधा खचिता कुरुविन्दकैः।

तत्र बालातपोद्गारः सर्वदा वर्तते मुने ॥४६॥

हे मुने! उसके मध्य कक्ष भूमिलाल मणियों से जड़ी हुई है वहां बालातप से सूर्य भगवती का सदैव निवास रहता है। ।।46।।

तस्य स्पर्शनमात्रेण सुरसिद्धनरासुराः।
सूर्यवच्च प्रकाशन्ते तेजोरूपत्वमागताः ॥ ४७ ॥

उसके स्पर्श मात्र से देवता सिद्ध मनुष्य और असुर गण समूह तेजोरूपत्व को प्राप्त होकर सूर्य के समान प्रकाशित होते हैं ।।47।।

तत्र बालातपोद्गारे ललिता परमेश्वरीम्।
प्रति तीव्र तपस्तप्त्वा सूर्योऽलभत तां द्युतिम्।।४८।।

वहां उस बाला तपोद्गार में भगवती ललिता परमेश्वरी की प्रसन्नता के लिये तीव्र तप करके सूर्य ने वह द्युति को प्राप्त किया है ।।48।।

ग्रहराशिगणाः सर्वे नक्षत्राण्यपि तारकाः।
तत्रैव हि तपस्तप्त्वा लोकभास्वरतां गताः ॥४९॥

नवग्रह बारह राशिगणऔर सभी करण योगादि तथा सत्ताईस नक्षत्रगणों ने और अन्य आकाश मण्डल में स्थित तारागणों ने उसी स्थान में आराधना करके लोक को भास्वर करने की क्षमता प्राप्त की ।।49।।

मार्ताण्डभैरवस्तत्र भिन्नो द्वादशधा मुने ।
शक्तिभिस्तैजसीभिश्च कोटिसंख्याभिरन्वितः।।५०।।

हे कुम्भज! मुने! वहां पर बारह भेदों से विभक्त सहस्त्रों कोटियों में तैजसी शक्तियों से युक्त मार्तण्ड भैरव भगवती के ध्यान में तल्लीन होकर स्थित हैं ।।50।।

महाप्रकाशरूपश्च मदारुणविलोचनः ।
कङ्केलितरुषण्डेषु नित्यं क्रीडारसोत्सुकः ॥५१ ॥

वे मार्तण्ड भैरव महाप्रकाश रूप हैं, मद से अरुण नेत्र हैं वहां के वृक्षों के समूहों में नित्य ही क्रीड़ारस से उत्सुक रहते हैं ।।51।।

वर्तते विन्ध्यदपरिऽपारे यस्तमसि स्थितः ।
महाप्रकाशनाम्नास्ति तस्य शक्तिर्महीयसी ॥५२॥

हे विन्ध्यदर्प के शत्रु ! अगस्त्य! क्रीड़ारस के उत्सुक उस वापी के तीर पर भगवती के चिन्तन में लीन होकर स्थित हैं उन मार्तण्ड भैरव की महा प्रकाशनाम की एक बड़ी शक्ति है ।।52।।

चक्षुष्मत्यपरा शक्तिश्छायादेव्यपरा स्मृता।
इत्थं तिसृभिरेताभिः शक्तिभिः परिवारितः।।५३।।

चक्षुष्मतीनाम्नी एक अपरा शक्ति तथा छायादेवी पराशक्ति हैं इस प्रकार तीन शक्तियों से परिवार

युक्त हैं ।।53।।

ललिताया महेशान्याः सदा विद्यां हृदा जपन्।
तद्भक्तानामिन्द्रियाणि भास्वराणि प्रकाशयन्।।५४।।

वे मार्तण्ड भैरव तीन शक्तियों से परिवारित होकर भगवती ललिताम्बा के मंत्र का हृदय से जप करते हुए भगवती के भक्तों की इन्द्रियों को तेज युक्त प्रकाशित करते हुए ।।54।।

बहिरन्तस्तमोजालं समूलमवमर्दयन्।
तत्र बालातपोद्गारे भाति मार्ताण्डभैरवः ॥५५॥

वे मार्तण्ड भैरव अपनी उन तीन शक्तिों द्वारा भक्तों के अन्तर अंधकार बाह्य अंधकार को समूल नष्ट करते हुए बालातपोद्गार वे भासित होते हुए सुशोभित हो रहे हैं ।।55।।

सूर्यबिम्बमहासालान्तरे मारुतयोजने ।
चन्द्रविम्वमहासालश्चतुर्योजनमुच्छ्रितः ॥५६॥

सूर्य बिम्ब महासाल के मध्य मारुत योजन पर चन्द्र बिम्ब महासाल है जो चार योजन ऊंचा है।।56।।

पूर्ववद्गोपुरद्वारकवाटार्गलसंयुतः ।
तन्मध्यभूः समस्तापि चन्द्रिकोद्गार उच्यते ॥५७॥

उस चन्द्र बिम्ब महासाल में गोपुर, द्वार, किवाड़ और सांकल युक्त हैं उसके बीच की समस्त भूमि को चन्द्रिकोद्गार कहा जाता है ।।57।।

तत्रैव चन्द्रिकोद्गारे तपस्तप्त्वा सुदारुणम्।
अत्रिनेत्रसमुत्पन्नश्चन्द्रमाः कान्तिमाययौ ॥५८॥

उसी चन्द्र बिम्ब महासाल में अत्यन्त कठोर तपस्या करके अत्रि मुनि के नेत्र से उत्पन्न चन्द्रमा ने कान्ति को पाया ।।58।।

तत्र श्रीसोमनाथाख्यो वर्तते निर्मलाकृतिः।
देवस्त्रैलोक्यतिमिरध्वंसी संसारवर्तकः ॥५९ ॥

वहां चन्द्रिकोद्गार में तपस्या से निर्मल कान्ति वाले श्री सोमनाथ जी हैं वे देव तीनों लोकों के अंधेरे का विध्वंस करने वाले संसार के प्राण हैं ।।59।।

पिबंश्चषकसंपूर्णं निर्मलं चन्द्रिकामृतम् ।
सप्तविंशतिनक्षत्रशक्तिभिः परिवारितः ॥
सदा पूर्णनिजाकारो निष्कलङ्कनिजाकृतिः ॥६०॥

वे चन्द्रमा निर्मल चन्द्रिकाचषक भरे हुए उसे पीते हुए साथ में सत्ताइस नक्षत्रों से घिरे हुए सदैव अपने पूर्ण निज आकार में अपनी निष्कलंक आकृति को रखे रहते हैं ।।60।।

तत्रैव चन्द्रिकोद्गारे वर्तते भगवाञ्छशी।
ललिताया जपैर्ध्यानैः स्तोत्रैः पूजाशतैरपि ॥६१॥

वही चन्द्रिकोद्गार में भगवान शशि हैं जो भगवती ललिताम्बा के मंत्र जप से ध्यान से, स्तोत्रों से और अनेक पूजा प्रकारों से ।।61।।

अश्विन्यादियुतस्तत्र कालं क्षिपति चन्द्रमाः ॥६२॥

अश्विनी आदि सत्ताईस नक्षत्रों से परिवारित चन्द्रमा अपना समय व्यतीत करते हैं ।।62।।

अन्याश्च शक्तयस्तारानामधेयाः सहस्रशः।
सन्ति तस्यैव निकटे सा कक्ष्या तत्प्रपूरिता ।।६३।।

अन्य शक्तियाँ तारा नाम वाली हजारों की संख्या में उन्ही चंद्र के निकट रहती हैं इस प्रकार वह कक्षा हमेशा भरी हुई रहती है ।।63।।

अथ चन्द्राख्यसालस्यान्तरे मारुतयोजने।
शृङ्गारनामा सालोऽस्ति चतुर्योजनमुच्छ्रितः ।।६४।।

इस चन्द्राख्य साल मारुत योजन के अन्तर श्रृंगार नामक साल है जो चार योजनों तक ऊंचा है ।।64।।

शृङ्गाररागरूपैस्तु कौस्तुभैरेव निर्मितः।
महाशृङ्गारपरिखा तन्मध्यवसुधाखिला ॥६५॥

वह साल श्रृंगार घर के रूप में कौस्तुभ मणियों से ही निर्मित है उसके चारों ओर महाश्रृंगार परिखा है उसके बीच में विशाल भूमि है ।।65।।

परिखावलये तत्र शृङ्गाररसपूरिते ।
शृङ्गारशक्तयः सन्ति नानाभूषणभासुराः ॥६६॥

वहां परिखावलय जो श्रृंगार रस से भरपूर था उसमें नाना उज्ज्वल आभूषणों से देदीप्यमान सहस्त्रों श्रृंगार शक्तियां थीं ।।66।।

तत्र नौकासहस्रेण संचरन्त्यो मदोद्धताः ।
उपासते सदा मत्तं नौकास्थं कुसुमायुधम् ॥६७॥

वहां हजारों नौकाओं में मदोन्नत शक्तियां संचरण करती हुईं सदामत्त नौका में बैठे हुए कुसुमायुध की आराधना करती रहती हैं ।।67।।

स तु संमोह्यत्येव विश्वसंमोहकारिभिः।
विशिखैरखिलॉल्लोकाँ ललिताज्ञावशंवदः ॥ ६८ ॥

वह कामदेव ललिताम्बा की आज्ञा से कार्य करने वाला विश्व को मोहित करने वाले पुष्प बाणों से समस्त विश्व को सम्मोहित करते रहते हैं ।।68।।

तत्प्रभावेण संमूढा महापद्माटवीस्थलम्।
न गन्तुं पारयन्त्येव सुरसिद्धनरासुराः ॥ ६९ ॥

उन कामदेव के प्रभाव से देव, सिद्ध, नर और गण उस महापद्माटवी स्थल में चाहे जब जाने में उत्सुक नहीं होते ।।69।।

ब्रह्मविष्णुमहेशास्तु शुद्धचित्ताः स्वभावतः।
तस्याज्ञया परं यान्ति महापद्माटवीस्थलम् ॥७०॥

किन्तु ब्रह्म, विष्णु, और महेश स्वभावतः शुद्धचित्त हैं तब उन महादेवी की आज्ञा से महापद्माटवी स्थल में जाते हैं।।70।।

विनीताः शुद्धवेषाश्च ललिताभक्तिनिर्भराः।
सावधानेन मनसा यान्ति पद्माटवीस्थलम् ॥७१॥

जो विनीत हैं शास्त्र तथा समाज के नियम ये युक्त हैं। शुद्ध वेष अर्थात् अपनी परम्परागत शुद्ध परम्परानुसार वेष भूषादि धारण करने वाले भगवती की भक्ति में सदैव तत्पर मनोवृत्तिवाले साधकजन सावधान मन से अर्थात् काम, क्रोध, लोभ, ईर्ष्या द्वेषादि मनोविकारों से रहित हो तभी उस पद्मावटी स्थल में जाते हैं ।।71।।

संसारिणश्च रागान्धा बहुसंकल्पकल्पनाः।
मोहाकुलाश्च पुरुषा विकल्पक्षोभधूसराः ॥ ७२ ॥

संसारी प्राणी रागान्ध धन, स्त्री, पुत्रादि में आसक्त बहुत से संकल्पों की कल्पना करने वाले, मोहवृत्ति से चंचल चित्त, विकल्प के क्षोभ से निरास स्वभाव वाले पुरुष ।।72।।

प्रभूतरागगहनां प्रौढव्यामोहदा यिनीम्।
महाशृङ्गारपरिखां तरितुं न विचक्षणाः ॥ ७३ ॥

अनेक प्रकार की रागवृत्ति की गहनता से और अत्यन्त उच्च प्रणयोन्माद देने वाली महा श्रृंगाररूप परिधि को पार करने में कुशल नहीं होते ।।73।।

यस्मादजय्यसौन्दर्यस्त्रैलोक्यजनमोहनः।
महाशृङ्गारपरिखाधिकारी वर्तते स्मरः ॥ ७४ ॥

क्योंकि अजेय सौन्दर्ययुक्त तीनों लोकों के जन समूह का मन मोहित करने वाले मदन उस महा श्रृंगार परिखा के अधिकारी हैं ।।74।।

तस्य सत्यमतिक्रम्य महतामपि मोहनम्।
महापद्माटवीं गन्तुं न कोऽपि भवति क्षमः ७५।।

सभी महत्वपूर्ण महान जनों को भी मोहित कर देने वाले काम का अतिक्रमण करके कोई भी महापद्माटवीं में जाने समर्थ नहीं है ।।75।।

अथ शृङ्गारसालस्यान्तरे मारुतयोजने ।
चिन्तामणिगृहं नाम चक्रर।जमहालयः ॥७६ ॥

इस श्रृंगार साल के मध्य मारुत योजन में चिन्तामणि नाम का श्रीचक्रराज का महालय है ।।76।।

तन्मध्यभूः समस्तापि परितो रत्नभूषिता।
महापद्माटवी नाम सर्वसौभाग्यदायिनी ॥७७॥

उसके मध्य की समस्त भूमि चारों तरफ से रत्नों से जटित है उसका नाम महासौभाग्यदायिनी महापद्माटवी हैं।।77।।

शृङ्गाराख्यमहासाळपर्यन्तं गोपुरं मुने।
चतुर्दिक्ष्वप्येवमेव गोपुराणां व्यवस्थितिः ॥७८॥

हे मुने! श्रृंगार महासाल पर्यन्त गोपुर हैं इस प्रकार वहां चारों दिशाओं में भी इसी प्रकार गोपुरों की स्थिति है।।78।।

सर्वदिक्ष्वत उक्तानि गोपुराणि शतं मुने ।
सालास्तु विंशतिः प्रोक्ताः पञ्चसंख्याधिकाः शुभाः।।79।।

हे मुने! वहां सभी दिशाओं में सैंकड़ों गोपुर कहे गये हैं पर सालों की संख्या पच्चीस ही है क्योंकि पंच संख्या अधिक शुभ होती है ।।79।।

सर्वेषामपि सालानां मूलं योजनसंमितम्।
पद्माटवीस्थलं वक्ष्ये सावधानो मुने शुणु ॥८०॥

सभी सालों की नींव एक योजन तक गहरी है इसके ऊपर पद्माटवी स्थल का वर्णन करुंगा हे मुने! उसे तुम सावधानी से सुनना ।।80।।

समस्तरत्नखचिते तत्र षड्योजनान्तरे ।
परितः स्थलपद्मानि महाकाण्डानि सन्ति वै ।।८१।।

वहां छह योजन तक समस्त रत्नों से जटित भूमि है उसके चारों ओर स्थल पद्म हैं और अनेकों

महाकाण्ड हैं ।।81।।

काण्डास्तु योजनायामा मृदुभिः कण्टकैर्वृताः।
पत्राणि तालदशकमात्रायामानि सन्ति वै ॥८२॥

वहां जो महाकाण्ड हैं उनमें सभी योजन एक एक योजन तक लम्बे चौड़े हैं जो कोमल कांटों से घिरे हुए हैं उनमें जो पत्ते हैं वे दस लाल पत्रों के समान लम्बे हैं ।।82।।

केसराश्च सरोजानां पञ्चतालसमायताः ।
किष्कुशतसमुन्नम्राः कर्णिकाः परिकीर्तिताः ८३।।

उन कमलों के केसर (पराग) पांच ताड़ पत्रों जैसे लम्बे हैं उनकी कर्णिकाएं दस ताड़ पत्रों के जैसी लम्बी है। ।।83।।

अत्यन्तकोमलान्यत्र सदा विकसितानि च ।
नवसौरभ्यहृद्यानि विशङ्कटदलानि च ॥८४ ॥

वे महाकमल अन्यन्त कोमल हैं तथा वे सदैव खिलते रहते हैं, वे कमल नवीन सौरभ से युक्त हैं और विशाल और सुदृढ़ पत्रों वाले हैं।।84।।

बहुशः सन्ति पद्मानि कोटीनामपि कोटिशः।
महापद्माटवीकक्ष्यापूर्वभागे घटोद्भव ॥८५ ॥

हे कुम्भज! इस प्रकार उस महापद्माटवी के कमल करोड़ों करोड़ कमल हैं। जो उस महापद्माटवी के पूर्वभाग में स्थित हैं ।।85।।

क्रोशोन्नतो वह्निरूपो वर्तुलाकारसंस्थितः।
अर्धयोजनविस्तारः कलाभिर्दशभिर्युतः ॥८६ ॥

मुने!!आगे महापद्माटवी की कक्ष्या के पूर्व भाग एक कोश तक ऊंचा अग्निरूप वर्तुल आकार रूप में स्थित आधे योजन विस्तार वाला दश कलाओं से युक्त ।।86।।

अर्घ्यपात्रमहाधारो वर्तते कुम्भसंभव ।
तस्याधारस्य परितः शक्तयो दीप्तविग्रहाः ॥८७॥

हे कुम्भज! वह अर्घ्यपात्र का विशाल आधार है, उस आधार के चारों ओर तेजः पूर्ण शरीरधारिणी शक्तियां घेरे हुए स्थित हैं।।87।।

धूम्रार्चिः प्रमुखा भान्ति कला दश विभावसोः।
दीप्ततारुण्यलक्ष्मीका नानालङ्कारभूषिताः ॥८८॥

वहां चारों ओर जो कलाएं हैं वे धूम्रार्चि आदि प्रमुख दस कलाएं विभावसु अग्नि की हैं, जो दीप्त

तरुणता की शोभा से युक्त हैं, नानाविध अलंकारों से विभूषित हैं।।88।।

आधाररूपं श्रीमन्तं भगवन्तं हविर्भुजम्।
परिष्वज्यैव परितो वर्तन्ते मन्मथालसाः ॥८९॥

वे सभी अग्निकलशक्तियां आधार रूप में स्थित श्रीमान् भगवान हविर्भुज बह्निदेव का आलिंगन करके कातरोन्मन्त होकर स्थित हैं।।89।।

धूम्रार्चिरूष्मा ज्वलिनी ज्वालिनी विष्फुलिङ्गिका
सुश्रीः सुरूपा कपिला हव्यकव्यवहे अपि ।
एता दश कलाः प्रोक्ता बह्नेराधाररूपिणः ॥९०॥

1. धूम्रर्चि, 2. ऊष्मा, 3. ज्वलिनी, 4. ज्वालिनी, 5. विष्फुलिङ्गिका, 6. सुश्रीः, 7. सुरूपा, 8. कपिला, 9. हव्यवाहा, 10. कव्यवाहा ये दस कलाएं पात्राधार रूप वह्नि की हैं।।90।।

तत्राधारे स्थितो देवः पात्ररूपं समाश्रितः।
सूर्यस्त्रिलोकी तिमिरप्रध्वंसी प्रथितोदयः ॥ ९१ ॥

उस पात्र रूप आधार में त्रिलोक अंधकार का ध्वंस करने वाले जिनके उदय की आराधना की जाती है, संन्ध्योपसना द्वारा।। 91।।

सूर्यात्मकं तु तत्पात्रं सार्धयोजन मुन्नतम् ।
योजनामात्रविस्तारं महाज्योतिः प्रकाशितम् ॥९२॥

अग्नि आधार पात्र पर सूर्यात्मक जो पात्र है वह आधे योजन तक उन्नत है और योजन मात्र तक विस्तार वाला है, वह महाज्योतिरूप से प्रकाशित हो रहा है।।92।।

तत्पात्रे परितः सक्तवपुषः पुत्रिका इव ।
वर्तन्ते द्वादशकला रवेर्भास्वररोचिषः ॥ ९३ ॥

उस सूर्य पात्र के चारों तरफ शरीर से संलग्न अर्थात् सटी हुई पुत्री के समान अत्यन्त उज्ज्वल किरणों वाले सूर्य की बारह कलाएं हैं।।93।।

तपिनी तापिनी धूम्रा मरीचिर्मालिनी रुचिः ।
सुषुम्ना भोगदा विश्वा बोधिनी धारिणी क्षमा ।।94।।

सूर्यकला इस प्रकार हैं 1 तपिनी, 2 तापिनी, 3 धूम्रा, 4 मरीचि, 5 मालिनी, 6 रुचि, 7 सुषुम्रा, 8 भोगदा, 9 विश्वा, 10 बोधिनी, 11 धारिणी, 12 क्षमा ।। 94।।

तस्मिन्पात्रे महानन्दकारणं परमामृतम्।
सर्वोषधरसाढ्यं च हृद्यसौरभ्यसंयुतम्।।९५।।

उस पात्र में महानन्द का कारण परमामृत है, जो समस्त औषधियों के रस से सम्पन्न है हृदय के लिये हितकारी है, सौरभ से भरपूर है ।।95।।

नीलोत्पलैश्च कह्लारैरम्लानैरतिसौरभैः।
वास्यमानं सदा हृद्यं शीतलं लघु निर्मलम्।।९६।।

वह परमामृत बिना मुरझाए नील कमलों से तथा श्वेत कमलों से अत्यन्त सुगन्धित हर समय हृदय को हितकर शीतल हल्का और निर्मल है ।96।।

चलद्वीचिशतोदारं ललिताभ्यर्चनोचितम्।
सदा शब्दायमानं च भासते सिद्धिकारणम्।।
तदर्घ्यममृतं प्रोक्तं निशाकरकलामयम्॥९७॥

उस पात्र में अमृत सैंकड़ों लहरों से बहता हुआ भगवती ललिताम्बा की पूजा के लिये उचित है तथा सदा बहता हुआ शब्द करता रहता है वह सिद्धिकारण है उस अर्घ्य को अमृत कहा गया है वह चन्द्रकलामय (16 कलाएं) कहा गया है।।97।।

तस्मिंस्तनीयसी नौकां मणिक्कृल्प्तां समास्थिताः।
निशाकरकला हृद्याः क्रीडन्ति नवयौवनाः।।९८।।

उसमें एक मणिजटित छोटी नौका है जिसमें हृदयाकर्षक मनोहारी नवयौवनाएं चन्द्र कलाएं नित्य क्रीड़ाएं करती रहती हैं।।98।।

अमृता मानदा पूषा पुष्टिस्तुष्टी रतिधृतिः।
शशिनी चन्द्रिका कान्तिर्ज्योत्स्ना श्रीः प्रीतिरङ्गदा ।।99।।
पूर्णा पूणार्मृता चेति कलाः पीयूषरोचिषः।
नवयौवनसंपूर्णाः सदा प्रहसिताननाः ॥१००॥

चन्द्रकलायें यथा 1 अमृता, 2 मानदा, 3 पूषा, 4 पुष्टि, 5 तुष्टि, 6 रति, 7 धृति, 8 शशिनी, 9 चन्द्रिका, 10 कान्ति, 11 ज्योत्स्ना, 12 श्री, 13 प्रीति, 14 अंगदा, 15 पूर्णा, 16 पूर्णामृता ये कलाएं अमृत कलाएं हैं। ये सदैव नव यौवन से सम्पन्न हैं सदैव प्रसन्न मुख रहती हैं ।।99,100।।

सृष्टिर्बुद्धिः स्मृतिर्मेधा कान्तिर्लक्ष्मीर्युतिः स्थिरा।
स्थितिः सिद्धिरिति प्रोक्ताः क्रीडन्ति ब्रह्मणः कलाः।।101।।

1 सृष्टि, 2 बुद्धि, 3 स्मृति, 4 मेधा, 5 कान्ति, 6 लक्ष्मी, 7 युति, 8 स्थिरा, 9 स्थिति, 10 सिद्धि ये ब्रह्माजी की कलाएं हैं जो नित्य क्रीड़ा रत रहती हैं ।।101।।

जरा च पालिनी शान्तिरीश्वरी रतिकामिके।

वरदाह्लादिनी प्रीतिर्दीर्घा चेति हरेः कलाः ।।१०२।।

1 जरा, 2 पालिनी, 3 शान्ति, 4 ईश्वरी, 5 रति, 6 कामिका, 7 वरदा, 8. ह्लादिनी, 9 प्रीति, 10 दीर्घा, ये कलाएं श्री हरि की हैं ।।102।।

तीक्ष्णा रौद्री भया निद्रा तन्द्री क्षुत्क्रोधिनी क्रिया।

उत्कारी मृत्युरप्येता रौद्रास्तत्र स्थिताः कलाः ।।103।।

1 तीक्ष्णा, 2 रौद्री, 3 भया, 4 निद्रा, 5 तन्द्री, 6 क्षुधा, 7 क्रोधिनी, 8 क्रिया, 9 उत्कारी, 10 मृत्यु ये दश कलाएं रुद्र की हैं ।।103।।

ईश्वरस्य कलाः पीता श्वेता चैवारुणा सिता ।

चतस्र एव प्रोक्तास्तु सदाशिवकला अथ ।।१०४।।

1 पीता, 2 श्वेता, 3 अरुणा, 4 श्वेता, (सिता) ये चार ही कलाएं ईश्वर की हैं सदाशिव कलाएं इस प्रकार हैं यथा-।।104।।

निवृत्तिश्च प्रतिष्ठा च विद्या शान्तिस्तथैव च।

शुद्धिका दीपिका चैत्र रेचिका चैव मोचिका ।।१०५।।

परा सूक्ष्म्या च विन्ध्यारे तथा सूक्ष्म्यामृता कला।

ज्ञानामृताप्यायिनी च व्यापिनी व्योमरूपिका ।।106।।

एताः षोडश संत्रोक्तास्तत्र क्रीडन्ति शक्तयः।

क्षुद्रा नौकां समारूढास्ततश्चेतश्च चञ्चलाः ।।१०७।।

1 निवृत्ति, 2 प्रतिष्ठा, 3 विद्या, 4 शान्ति, 5 शुद्धिका, 6 दीपिका, 7 रेचिका, 8 मोचिका 9 परा, 10 सूक्ष्म्या हे विन्ध्यारे! 11 सूक्ष्मामृत कला, 12 ज्ञाना, 13 अमृतताप्यायिनी, 14 व्यापिनी, 15 व्यापिनी, 16 व्योमरूपिका ये सोलह शक्तियां कहीं गईं हैं जो वहां नित्य क्रीड़ारत रहती हैं।ये सभी रुद्र नौकाओं में समारूढ़ होकर चंचल चित्त वाली शक्तियां क्रीड़ा करती रहती हैं ।।105,106, 107।।

शक्तिरूपेण खेलन्ति तत्र विद्याः सहस्रशः।

अर्घ्यसंशोधनार्थाय कल्पिताः परमेष्ठिना ।।१०८।।

शक्तिरूप से हजारों विद्याएं वहां क्रीड़ा करती हैं परमेष्ठी ने अर्घ्य संशोधन के लिये कल्पना की है ।।१०८।।

तदर्घ्यममृतं पीत्वा सदा माद्यन्ति शक्तयः।

महापद्माटवीवासा महाचक्रस्थिता अपि ।।१०९।।

उस अर्घ्यामृत का पान करके वे शक्तियां मद युक्त हो जाती हैं वे महापद्माटवी में निवास करती हैं महाचक्र में निवास करती हैं ॥१०९॥

मुहुर्मुहुः पीयमानमुपर्युपरि वर्धते।
मुहुर्मुहुर्नवंनवं मुहुश्चावद्धसौरभम्॥११०॥

बार बार पीते हुए ऊपर ही ऊपर वृद्धि को प्राप्त होता है बार बार नया नया रूपलेता है, बार बार सौगन्ध को बढ़ाता है ॥११०॥

रत्नकुम्भसहस्रैश्च सुवर्णघटकोटिभिः।
आपूयार्पूर्य सततं तदर्घ्यममृतं महत्।।१११॥

सहस्रों रत्न कुम्भों से स्वर्ण निर्मित करोड़ों घटों से भर भरकर निरन्तर उस महान् अर्घ्यामृत (विशेषार्घ्यामृत) को पीती रहती हैं वे समस्त शक्तियां ।।१११॥

चिन्तामणिगृहस्थानां परिचारिकशक्तयः ।
अणिमादिकशक्तीनामर्पयन्ति मदोद्धताः ॥११२॥

चिन्तामणि रत्न निर्मित गृहों में स्थित देवियों की मदोन्नत परिचाारिक शक्तियां अणिमादिक शक्तियों की पूजा करती हैं ॥११२॥

महापद्माटवीकक्ष्यापूर्वभागेअर्घ्यकल्पनम्।
इत्थं समीरितं पश्चात्तत्रान्यपि कथ्यते ॥११३॥

इस प्रकार महायद्माटवीकक्ष्या के पूर्वभाग में अर्घ्यकल्पना कही गई है इसके बाद वहां और भी कुछ कहा जाता है, वह आगे प्रसंग में कहा जायेगा ॥११३॥

इति श्रीब्रह्माण्डपुराणे उत्तरखण्डे हयग्रीवागस्त्यसंवादे
श्रीललितोपाख्याने एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

॥श्रीमन्महागणाधिपतये नमः।।

श्रीमाताललिताम्बायै नमः श्रीपादुकां पूजयामि नमः॥
ॐ वन्दे गुरुपदद्वन्द्वं अवाङ्मनसगोचरम्॥
रक्तशुक्ल प्रभामिश्रमतर्क्यं त्रैपुरं महः॥
ॐ आराध्यंदेवं भक्तानां कलिदोषविनाशकम्॥
वन्दे श्री गिरिजानन्दं शारदाश्रीमठाधिपम्।।
ॐ अखण्डं यस्यज्ञानञ्च भक्तिर्यस्यानपायिनी।।
शारदाज्योतिरीशस्य दर्शनं (पूजनं, वन्दनं) शुभमस्तुनः।।

द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ 103 श्लोकात्मक

॥ चिन्तामणिगृहान्तरवर्णनम्॥

हयग्रीवः॥ श्री हयग्रीव जी बोले ! :-

चिन्तामणिगृहस्याग्निदिग्भागे कुण्डमानलम्।
योजनामात्रविस्तारं योजनासमखातकम्॥१॥

चिन्तामणिगृह के आग्नेयकोण में एक योजन विस्तार वाला और एक योजन ऊंचा गहरा कुण्ड है।।1।।

तत्र ज्वलति चिद्वह्निः सुधाधाराशतार्चितः।
परमैश्वर्यजनकः पावनो ललिताज्ञया ॥२॥

वहां चिद्‌तत्व रूप वाली वह्नि अमृत की सैंकड़ों धाराओं से अर्चित होकर सदैव प्रज्वलित रहती है, वह चिदग्नि परमेश्वरी ललिताम्बा की आज्ञा से परमैश्वर्य को प्रकट करने वाला पावन वह्नि है ।।2।।

अनिन्धनो महाज्वालः सुधया तर्पिताकृतिः ।
कंकेलिपल्लवच्छायस्तत्र ज्वलति चिच्छिखी॥३॥

वह अग्नि बिना इन्धन के जलने वाली महाज्वाला अमृत तत्वसंतर्पित है अतः वह कंकेली अशोक वृक्ष के पत्ते की कान्ति के समान चिद्रूपअग्नि निरन्तर प्रज्वलित रहता है ।।3।।

तत्र होत्री महादेवी होता कामेश्वरः परः।
उभौ तौ नित्यहोतारौ रक्षतः सकलं जगत्॥४॥

उस चिदग्नि में महादेवी होत्री हैं और परमेश्वर कामेश्वर होता है, ये दोनों ही नित्य हवन करने वाले हैं और सम्पूर्ण जगत् के रक्षक हैं ।।4।।

अनुत्तरपराधीना ललिता संप्रवर्तिका।
ललिताचोदितः कामशङ्करोपि प्रवर्तकः ॥५॥

अनुत्तर परम शिव उनकी वामाङ्ग ललिता सम्प्रवर्तिका हैं प्रवृत्त करने वाली हैं भगवती ललिता से प्रेरित कामदेव भी प्रवर्तक हैं ॥5॥

चिन्तामणिगृहेन्द्रस्य रक्षोभागाम्बुजाटवौ।
चक्रराजरथश्रेष्ठस्तिष्ठत्युन्नतविग्रहः ॥६॥

चिन्तामणि गृहेन्द्र के रक्षो भाग नैऋत्य (दक्षिण दिशा) में कमल वन है जहां उन्नत विग्रह चक्रराजरथेन्द्र स्थित हैं ॥6॥

नवभिः पर्वभिर्युक्तः सर्वरत्नमयाकृतिः।
चतुर्योजनविस्तारो दशयोजनमुन्नतः ॥७॥

वह चक्रराजरथेन्द्र नौ पर्वों से युक्त है, समस्त रत्न उसमें स्थित हैं वह चार योजनों तक विस्तृत है और दस योजन तक ऊंचा है ॥7॥

यथोत्तरं ह्रासयुक्तः स्थूलत्वक्कूपरोज्वलः।
चतुर्वेदमहाचक्रः पुरुषार्थमहाहयः ॥८॥

तथा ह्रास युक्त बहुत ऊंचा शब्द करने वाला उसका कूर्परा-कूबर उज्जवल है उसके चारों वेद (ऋग, यजुः साम अथर्व) उस चक्र राजरथ के घोड़े हैं ॥8॥

अलङ्कृतो ध्वजश्रेण्या चामरैरभिमण्डितः।
भण्डा सुरमहायुद्धे कृतसाहसिकक्रियः ॥९॥

ध्वज श्रेणी से अलंकृत है और चंवरों से अभिमण्डित है, भण्डासुर से महायुद्ध समय में अनेक साहसिक क्रियाएं जिसने किया था ॥9॥

पूर्वोक्तलक्षणैर्युक्तो मुक्ताच्छत्रेण शोभितः।
वर्तते रथमूर्धन्यः श्रीदेव्यासनपावितः ॥१०॥

पूर्वोक्त लक्षणों से युक्त मोतियों से निर्मित छत्र से शोभित सभी रथों में मूर्धन्य वह चक्रराजरथ भगवती के आसन परम पावन रूप है ॥10॥

चिन्तामणिगृहेन्द्रस्य वायुभागाम्बुजाटवौ।
गेयचक्ररथेन्द्रस्तु मंत्रिण्याः प्रतितिष्ठति ॥११॥

चिन्तामणि गृहराज के वायु भाग में कमल वनी में भगवती मंत्रिणी का गेय चक्रराजरथेन्द्र स्थित है ॥11॥

चिन्तामणिगृहेन्द्रस्य रुद्रभागाम्बुजाटवौ।
वल्लभो दण्डनाथायाः किरिचक्रमहारथः॥१२॥

चिन्तामणिगृहेन्द्र के रुद्र भाग में कमल वनी में किरिचक्र में भगवती दण्डनाथा का प्रिय महारथ है ।।12।।

एतद्रथत्रयं सर्वक्षेत्रश्रीपुरपङ्क्तिषु ।
समानमेव विज्ञेयमन्तस्था देवता यथा ॥१३॥

ये तीनों रथ श्रीपुर के सभी क्षेत्र पंक्तियों में समान हैं, इन तीनों रथों में समान रूप से देवता स्थित हैं।।13।।

आनलं कुण्डमाग्नेये यत्तिष्ठति सदा ज्वलत्।
तत्पश्चिमे तु गायत्री तत्पश्चाद्भयंकरः ॥ १४ ॥

अग्निकोण में सदा प्रज्ज्वलित रहने वाला अग्निकुण्ड है, उसके पश्चिम में गायत्री विद्यमान हैं, उसके पश्चात् अभयंकर।।14।।

घृणिः सूर्यश्च तत्पश्चादोंकारस्य च मन्दिरम्।
देवी तुरीयगायत्री चक्षुष्मत्यपि तापस ॥ १५ ॥

हे तपस्वी! उसके पश्चात् उष्णता प्रदान करने वाली घृणि सूर्य विद्यमान है, फिर ओंकार का मंदिर है, फिर तुरीय गायत्री देवी हैं, फिर चक्षुष्मती देवी हैं।।15।।

अथ गन्धर्वराजश्च पथि षड्रुद्र एव च ।
ताराम्बिका भगवती तत्पश्चाद्भागतः स्थिता ।।१६।।

इसके आगे गंधर्वराज विश्वावक्षु फिर रुद्र की परिषद् हैं, इसके बाद ताराम्बिका भगवती अपनी शोभा से युक्त स्थित हैं।।16

चिन्तामणिगृहेन्द्रस्य रक्षोभागं समाश्रितः।
नामत्रयमहामन्त्रवाच्योऽस्ति भगवान्हरिः।।१७।।

चिन्तामणि गृहेन्द्र के रक्षाभाग (नैऋत्य) में समाश्रित नामत्रय महामन्त्र (अच्युत, अनन्त, गोविंद) वाच्य भगवान् हर विद्यमान हैं।।17।।

(भगवान धन्वन्तरि ने कहा है- अच्युतानन्तगोविन्दनामस्मरणभेषजात्। नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम्।।)

महागणपतिस्तस्योत्तरे कृतनिकेतनः ।
पञ्चाक्षरीमन्त्रवाच्यस्तस्य चाप्युत्तरे शिवः ॥१८॥

उनके उत्तर में महागणपति स्थित हैं और उनके भी उत्तर में पंचाक्षरी मंत्रवाच्य भगवान् शिव स्थित हैं।।18।।

अथ मृत्युञ्जयेशश्च वाच्यख्यक्षरमन्त्रतः।
धारणाख्या सरस्वत्यध्यस्य चोत्तरवासिनी ॥१९॥

इसके अनन्तर मृत्युञ्जयेश का तीन अक्षरों का मन्त्र हैं, उससे उत्तरवासिनी धारणाख्या सरस्वती हैं।।19।।

अकारादिक्षकारान्तवर्णमूर्तेस्तु मन्दिरम्।
मातृकाया उत्तरतस्तस्या विन्ध्यनिषूदन ॥ २० ॥

अकारदि क्षकारान्त वर्ण मूर्ति का मन्दिर है, हे विध्यनिषूदन! मातृका के उत्तर की ओर उनका।।20।।

तदुत्तरे संपदीशी फालसंकर्षिणी तथा।
श्रीमहाशम्भुनाथश्च ललितोत्पत्तिकारणम्॥२१॥

उत्तर में सम्पदीशी देवी तथा कालसंकर्षिणी देवी हैं, फिर महाशंभुनाथ जो देवियों की उत्पत्ति के कारण माने जाते हैं।।21।।

श्रीपराम्बा च विशदव्योत्स्ना निर्मलविग्रहा।
उत्तरोत्तरमेतास्तु देवताः कृतमन्दिराः ॥ २२ ॥

विशद ज्योत्स्ना वाली श्री पराम्बा निर्मल विग्रह वाली हैं, उनके उत्तरोत्तर देवियों के मंदिर हैं।।22।।

बाला चैवान्नपूर्णा च हयारूढा तथैव च।
श्रीपादुका च तत्रस्था उत्तरोत्तरमन्दिराः ॥२३॥

बाला, अन्नपूर्णा और हयारूढ़ा पादुकाएं हैं, उसके उत्तरोत्तर मंदिर हैं।।23।।

चिन्तामणिगृहेन्द्रस्य पश्चिमद्वारभागतः।
उत्तरोत्तरवासिन्यो देवता अपरा मुने ॥२४॥
लघुश्यामा च वाग्वादिन्यथ श्रीनकुलाम्बिका।
श्यामा परा चतस्त्रस्ता वायव्यान्तं समाश्रिताः।।25।।
चिन्तामणिगृहेन्द्रस्य वायव्यवसुधादितः।
महापद्माटवौ त्वन्या देवताः कृतमन्दिराः ॥ २६ ॥

चिन्तामणि गृहेन्द्र के पश्चिम द्वार भागतः अर्थात् वायव्य कोण से हे मुने! अपरादेवता उत्तरोत्तर वासिनी लघुश्यामा, वाग्वादिनी श्री नकुलाम्बि श्यामा, परा चारों वायव्य में सामाश्रित हैं चिन्तामणि गृहेन्द्र के वायव्य भूमि भाग से महापद्माटवी से तो अन्यादेवता हैं, जिन्होंने मंदिर बना लिया है।।24,25,26।।

उन्मत्तभैरवी चैव स्वप्नवाराहिका परा।
तिरस्करिणिकाम्बा च तथान्या पञ्चमी परा ।
यथापूर्वं कृतगृहा एता देव्यो महोदयाः ॥ २७ ॥

वहां पर उन्मत भैरवी तथा दूसरा मंदिर स्वप्नवाराही देवी का, फिर तिरस्कारणि अम्बा तथा अन्य पांचवी परा का जैसे कि पूर्व में गुरु बने हुए हैं, वैसे ही देवियों के हैं।।27।।

श्रीपूर्तिश्च महादेवी श्रीमहापादुकापि च ।
यथापूर्वं कृतगृहे एते द्वे देवतोत्तमे ॥ २८ ॥

श्री पूर्ति महादेवी (त्रयोदशाक्षरी मूल मंत्र) श्री महापादुका ये दो उत्तम देवताएं इनके भी पूर्ववत् गृह हैं ।।28।।

शङ्करेण षडाम्नायसागरे प्रतिपादिताः ।
या विद्यास्ताः समस्ताश्च महापद्माटवीस्थले।।२९।।

भगवान शङ्कर ने जो षडाम्नाय सागर (पूर्व दक्षिण, पश्चिम, उत्तर ऊर्ध्व, और अनुत्तर) में प्रतिपादन किया है जो जो विद्याएं (देवीमंत्र) कहीं हैं वे सभी महापद्मादवी स्थल में विद्यमान हैं।।29।।

इत्थं श्रीरश्मिमालाया मणिक्लृप्ता महागृहाः।
उच्चध्वजाः ससालाश्च सोद्यानाश्च तपोधन।।
चिन्तामणिगृहेन्द्रस्य पूर्वद्वारस्य सिन्धुप ॥३०॥

इस प्रकार हे तपोधन! श्री रश्मिमाला के मणियों जैसे मंत्रों के विशालगृह उनमें उच्च ध्वजाएं बड़े-बड़े साल और उद्यान हैं हे सिन्धुप! चिन्तामणि गृहेन्द्र के पूर्वद्वार के ।।30।।

दक्षिणे पार्श्वभागे तु मन्त्रिनाथागृहं महत्।
वामभागे दण्डनाथाभवनं रत्ननिर्मितम्॥३१॥

दाहिने पार्श्वभाग में विशाल मन्त्रिनाथा का गृह विद्यमान है तथा बांए पार्श्वभाग में रत्न निर्मित श्री दण्डनाथा का भवन स्थित है ।।31।।

ब्रह्म विष्णुमहेशानामध्ये स्थानस्य पूर्वतः।
भवनं दीपिताशेषदिक्चक्रं रत्नरश्मिभिः ॥ ३२ ॥

ब्रह्मा, विष्णु और महेश के भवन अर्ध्यस्थान के पूर्व की ओर हैं जो अपने भवनों में संलग्न रत्नों की चमकीली रश्मियों से दशों दिशाओं को उज्जवल कर रहे हैं ।।32।।

समस्ता देवता एता ललिताभक्तिनिर्भराः।
ललितामन्त्रजप्याश्च श्रीदेवीं समुपासते ॥ ३३ ॥

समस्त देवतागण (सात्विक राजसिक, एवं तामसिक आदि) भगवती ललिता की भक्ति पर ही निर्भर रहते हैं और भगवती के मंत्र का जप करते हुए उन्हीं की उपासना करते हैं ।।33।।

पूर्वोक्तमर्ध्यस्थानं च पूर्वोक्तं चार्ध्यकल्पनम्।
याम्यद्वारप्रभृतिषु सर्वेष्वपि समं स्मृतम्॥३४॥

पूर्व में कहे गए अर्ध्यस्थल (पूजा के स्थान) तथा पूर्व में कहे गए अर्ध्यकल्पन (पूजा की कल्पना) दक्षिणद्वार आदि सभी में समान रूप से स्मरण किये गए हैं ।।34।।

अथ चिन्तामणिगृहं वक्ष्ये शृणु महामुने।
श्रीपट्टणस्य मध्यस्थ योजनद्वयविस्तृतम्॥३५॥

इसके आगे मैं हे महामुनि! चिन्तामणिगृह का वर्णन करुंगा उसे आप सुनो वह भी पट्टन के मध्य में स्थित है वह दो योजनों तक विस्तृत है ।।35।।

तस्य चिन्तामणिमयी भित्तिः क्रोशसुविस्तृता।
चिन्तामणिशिलाभिश्च छादिनीभिस्तथोपरि।।३६।।

उस चिन्तामणि गृह की चिन्तामणिमयी भित्ति एक क्रोश तक विस्तृत है तथा वे चिन्तामणि नामक अमूल्य पत्थरों की शिलाओं वाली ऊपर की छतों से पूरी तरह ढंकी हुई है। ।।36।।

संवृता कूटरूपेण तत्र स्थूपिसमुन्नता।
गृहभित्तिस्तथोन्नम्रा चतुर्योजनदूरतः ॥ ३७ ॥

प्रधान रूप से वहां बहुत ऊंची है, गृह की दीवार उसी प्रकार चार योजनमान से उसी प्रकार ऊंची है।।37।।

विंशतिर्योजनं तस्य चोन्नम्रा स्थूपिरुच्यते।
यथोर्ध्वह्राससंयुक्तस्थौल्या त्रिमकुटोज्वला ।।३८।।

उसकी भूमि बीस योजन ऊंची उससे ऊपर शब्दों से संयुक्त तीन मुकुटों से उज्ज्वल स्थल है।।38।।

स्थितानीच्छाक्रियाज्ञानरूपाणि मकुटान्यृषे।
सदा देदीप्यमानानि चिन्तामणिमयानि च ३९।।

हे ऋषिश्रेष्ठ ! ये इच्छा ज्ञान और क्रिया रूप वाले मुकुट हैं तथा वे देदीप्यमान हैं और चिन्तामणिमय भी हैं। ।39।।

चिन्तामणिगृहे सर्वं चिन्तामणिमयं स्मृतम्।
तस्य द्वाराणि चत्वारि क्रोशार्धायामभाञ्जि च ।।४०।।

चिन्तामणिमय गृह में सभी चिन्तामणिमय अमूल्य पत्थर से बने हुए हैं उसके चार द्वार आधे कोश

की लम्बाई वाले हैं ।।40।।

क्रोशार्धार्धे च विस्तारो द्वाराणां कथितो मुने ।
द्वारेषु सर्वेष्वपि च चिन्तामणिगृहान्तरे ।।४१ ॥

अणिमा आदि का आधे-आधे कोश का विस्तार द्वारों का कहा गया है हे मुने! सबद्वारों पर फिर चिन्तामणि गृह के मध्य में ।।41।।

पिण्डिता ललितादेव्या देहलौहित्यसिन्धवः।
तरुणार्क सहस्राभाश्चन्द्रवच्छीतला अपि ॥४२॥

ललिता देवी की लोहित की नदी के समान मूर्ति रखी हुई है जो हजारों तरुण सूर्यों की आभावाली है और चन्द्रमा के समान शीतल भी है ।।42।।

मुहुः प्रवाहरूपेण प्रसरन्ति महामुने ।
पूर्वाम्नायमयं चैत्र पूर्वद्वारं प्रकीर्तितम्॥४३॥

हे महामुने! जो शीतलता के साथ बार बार प्रवाह रूप से प्रवाहित होती रहती है पूर्वाम्नायमयद्वार ही पूर्व द्वार कहा गया है ।।43।।

दक्षिणद्वारदेशस्तु दक्षिणाम्नायलक्षणः।
पश्चिमद्वारदेशस्तु पश्चिमाम्नायलक्षणः ॥४४॥

दक्षिण द्वार का जो स्थान है, वह दक्षिणाम्नाय लक्षणों वाला कहा गया है, तथा पश्चिम द्वार का देश पश्चिमाम्नाय कहा गया है।।44।।

उत्तरद्वारदेशः स्थादुत्तराम्नायलक्षणः।
गृहराजस्यान्तराले भित्तौ खचितदण्डकाः॥४५॥

उत्तर द्वार देश उत्तराम्नाय लक्षण वाला है, गृहराज के अन्तर्गत दीवार में जगह-जगह पिलर लगे हुए हैं।।45।।

रत्नप्रदीपा भास्वन्तः कोट्यर्कसदृशत्विषः।
परितस्तत्र वर्तन्ते भासयन्तो गृहान्तरम्॥४६॥

जिनमें रत्न प्रदीप जो करोड़ों सूर्यों की कान्ति वाले हैं, चारों ओर हैं, उनकी आभाओं से गृहों का अन्तर भी प्रकाशमान हो रहा है।।46।।

चिन्तामणिगृहस्यास्य मध्यस्थाने महीयसि।
अत्युच्चे वेदिकाभागे विन्दुचक्र महत्तरम्॥४७॥

इस चिन्तामणि गृह के मध्य स्थान में जो कि बहुत विस्तृत है उसमें बहुत ऊंचे वेदिका भाग में महान बिन्दुचक्र है ।।47।।

चिन्तारत्नगृहोत्तुङ्ग भित्तेर्बिन्दोश्च मध्यभूः।
भित्तिक्रोशं परित्यज्य क्रोशत्रयमुदाहृतम्॥४८॥
तत्र क्रोशत्रये स्थानमणिमाद्यात्मरोचिषाम्।
क्रोशत्रयं समस्तं तद्धस्तसख्याप्रकारतः ॥४९॥

चिन्तामणि गृह की उत्त्रुंग दीवार और बिन्दु के बीच में जो भूमि है वह दीवार का कोस छोड़कर तीन कोस बताई गई है अर्थात् एक कोस में बिन्दु है। (चिन्तारत्नगृह की उत्तुंग दीवार और बिन्दु के बीच में जो भूमि है वह दीवार एक कोश छोड़कर तीन कोश बताई गई है अर्थात एक कोश में बिन्दु है) वहां बिन्दु से तीन कोश स्थान में वहां पर अणिमा आदि आठ सिद्धियां अपनी कान्ति से पूरे तीनों कोश हाथ की संख्या प्रकार से ।।48,49।।

चतुर्विंशतिसाहस्रहस्तैः संमितमुच्यते।
बिन्दुपीठेशपर्यन्तं चतुर्दशविभेदतः ॥५०॥

चौबीस हजार हाथों से उसकी माप है अर्थात चौबीस हजार हाथ याने तीन कोश यह नाप है यही दूरी बिन्दु से दीवार की है जिसमें अणिमा आदि आठ सिद्धियां निवास करती हैं ।।50।।

अन्तरे भेदिते जाते हस्तसंख्या मयोच्यते ।
पद्माटवीस्थलाश्चिन्तामणिवेश्मान्तरं मुने ॥५१ ॥
हस्तविंशतिमुन्नम्रं तत्र स्युरणिमादयः ।
अणिमान्तर विस्तारश्चतुर्नल्वसमन्वितः ॥५२॥

बिन्दु पीठेश पर्यन्त चतुर्दश हाथ के भेद से संख्या मेरे द्वारा कही जा रही हैं हे मुने! पद्मटवी स्थल से लेकर चिन्तामणि गृह का अन्तर बीस हाथ से भेद से ऊंचा स्थान है वहां आणिमा आदि सिद्धियां हैं अणिमा आदि की गृह से दूरी चार नल्व तक है।।51,52।।

किष्कुचतुः शतीनल्वः किष्कुर्हस्त इतीर्यते ।
तत्रान्तरे ऽणिमाद्यास्तु पूर्वादिकृतमन्दिराः ॥५३॥

उन अणिमादि सिद्धियों का अन्तर चार नल्व तक हैं चार सौ किष्कू का एक नल्व तथा एक किष्कू एक हाथ का होता है ।।53।।

अणिमा महिमा चैव गरिमा लघिमा तथा ।
ईशित्वं च वशित्वं च प्राकाम्यं भुक्तिरेव च ५४।।
इच्छा प्राप्तिः सर्वकामेत्येताः सिद्धय उत्तमाः ।
रससिद्धिर्मोक्षसिद्धिबलसिद्धिस्तथैव च ॥५५॥

खड्गसिद्धिः पादुकायाः सिद्धिरञ्जनसिद्धिका ।
वाक्सिद्धिर्लोहसिद्धिश्च देहसिद्धिरनन्तरम् ।।५६।।

अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, ईशित्व वशित्व, प्राकाम्य, भुक्ति, इच्छा, प्राप्ति, सर्वकामा उत्तम सिद्धियां कहीं गई हैं रससिद्धि मोक्ष सिद्धि बलसिद्धि खड्गसिद्धि, पादुकासिद्धि, अञ्जनसिद्धि, वाकसिद्धि, लोहसिद्धि, और देहसिद्धि ।।54,55,56।।

एतादृश्यः सिद्धयस्तु बह्वयोऽन्या योगिसंमताः ।
अत्रान्तरे तु परितः सेवन्ते परमेश्वरीम्।। ५७।।

ऐसी बहुत सी अन्य सिद्धियां योगिसम्मत हैं बीच में जो अन्तर है वहां चारों ओर से ये सिद्धियां परमेश्वरी की सेवाएं करती रहती हैं ।।57।।

कोटिशस्सिद्धयस्तस्मिन्नणिमाद्यन्तरे शुभे।
नवलावण्यसम्पूर्णाः स्मयमानमुखाम्बुजाः ।।५८।।

वे उस शुभ अणिमादि के स्थान के अन्तर में कोटिशः सिद्धियां नव लावण्य से पूर्ण स्मितमुखों वाली वे ।।58।।

ज्वलच्चिन्तामणिकराः सदा षोडशवार्षिकाः।
अत्युदारप्रकृतयः खेलन्ति मदविह्वलाः ।। ५९ ।।

समुज्वल चिन्तामणि हाथ में ली हुई सदा सोलह वर्ष की अत्यन्त उदार स्वभाव वाली मद में विह्वल वे खेलती रहती हैं ।।59।।

तस्याणिमाद्यन्तरस्योपरिष्टात्सुमनोहरम्।
हस्तविंशतिमुन्नत्रं चतुर्नल्वप्रविस्तरम्।।६०।।

उन अणिमा आदि सिद्धियों के बीच के ऊपर सुन्दर मनोहर बीस हाथ ऊंचा चार नल्व (1600 हाथ) विस्तार वाला ।।60।।

चतुर्दिक्षु च सोपानपङ्क्तिभिः सुमनोहरम्।
ब्राह्मयाद्यन्तरधिष्ण्यं स्यात्तत्र देवीः स्थिताः शृणु ।।61।।

चारों दिशाओं में सीढ़ियों की पंक्तियों से अत्यन्त मनोहर ब्राह्मयादि अन्तर हवन कुण्ड है वहां देवियां स्थित हैं वह सुनो ।।61।।

ब्राह्मी माहेश्वरी चैव कौमारी वैष्णवी तथा।
वाराही चैव माहेन्द्री चामुण्डा त्वथ सप्तमी ६२।।

1 ब्राह्मी, 2 माहेश्वरी, 3 कौमारी व वैष्णवी, 5 वाराही, 6 माहेन्द्री, 7 चामुण्डा ।।62।।

महालक्ष्मीरष्टमी तु तत्रैताः कृतमन्दिराः।
नानाविधायुधाढ्याश्च नानाशक्तिपरिच्छदाः ६३॥

8 महालक्ष्मी इन आठों के लिये वहां मंदिर बने हुए हैं ये देवियां नाना प्रकार के आयुधों से सुसम्पन्न हैं अनेकों प्रकार की शक्तियों से चारों ओर आवृत हैं ॥63॥

पूर्वादिदिशमारभ्य प्रादक्षिण्यकृतालयाः।
अथ ब्राह्मयाद्यन्तरस्योपरिष्टात्कुम्भसभव ॥ ६४॥

हे कुम्भ सम्भव! इन शक्तियों ने पूर्व आदि दिशाओं से आरंभ कर दक्षिण दिशा तक अपने घर बनाए हैं इसके अन्तर ब्राह्मीआदि देवी के मंदिर के अन्दर उसके ऊपर ॥64॥

हस्तविंशतिमुन्नम्रं चतुर्नल्वप्रविस्तरम्।
मुद्रान्तरमिति ज्ञेयं तत्र मुद्राः कृतालयाः ॥ ६५॥

बीस हाथ ऊंचा चार नल्व (1600 हाथ) विस्तृत मुद्राओं का मध्य भाग है, जिसमें मुद्रा के निवास गृह बने हुए हैं।

संक्षोभद्रावणाकर्षवश्योन्मादमहाङ्कुशाः।
खेचरीवीजयोन्याख्या स्त्रिखण्डा दशमी पुनः ६६॥

1 संक्षोभण, 2 द्रावण, 3 आकर्षण, 4 वश्य, 5 उन्माद, 6 महांकुश, 7 खेचरी, 8 बीजा, 9 योनि, 10 त्रिखण्डा ये दश मुद्राएं हैं। (दशमुद्रावा समाराध्या) ॥66॥

पूर्वादिदिशमारभ्य मुद्रा एताः प्रतिष्ठिताः।
अत्यन्तसुन्दराकारा नवयौवनविह्वलाः ॥ ६७॥

पूर्व आदि दिशाओं से आरंभ करके ये मुद्राएं प्रतिष्ठित हैं ये मुद्राएं अत्यन्त सुन्दर आकार वाली हैं और नव यौवन मद से समन्वित हैं ॥67॥

कान्तिभिः कमनीयाभिः पूरयन्त्यो गृहान्तरम् ।
सेवन्ते मुनिशार्दूल ललितापरमेश्वरीम्॥६८॥

ये मुद्राएं अपनी कमनीय कान्तियों से घर के अन्तर भाग को पूरित कर रही हैं हे मुनि श्रेष्ठ! ये सभी ललिता परमेश्वरी की सेवा करती हैं (दश (नव) मुद्रा समाराध्या श्री पादुकां पूजयामिनमः- ल.स. स्तोत्र) ॥68॥

अन्तरत्रयमेतत्तु चक्रं त्रैलोक्यमोहनम्।
एतस्मिन्छक्तयो यास्तु ता उक्ता प्रकटाभिधाः ६९॥

इन तीनों के बीच में तीनों लोकों को मोहित करने वाला त्रैलोक्यमोहन नामक चक्र है इसमें

शक्तियां हैं जिनमें वे प्रकट आदि शक्तियां कही गईं हैं। ।।69।।

एतासां समधिष्ठात्री त्रिपुराचक्रनायिका।
तच्चक्रपालनकरी मुद्रा संक्षोभणात्मिका ।। ७० ।।

इन शक्तियों की अधिष्ठात्री चक्र नायिका भगवती त्रिपुरा हैं उस चक्र की पालन करने वाली शक्ति संक्षोभणात्मिका मुद्रा (सर्वसंक्षोभिणी) है ।।70।।

अथ मुद्रान्तरस्योर्ध्वं प्रोक्तं नित्याकलान्तरम्।
हस्तविंशतिमुन्नम्रं चतुर्नल्वप्रविस्तरम्।।७१ ।।

इसके बाद इस संक्षोभिणी मुद्रा के मध्य के ऊपर नित्या कलान्तर है जो बीस हाथ ऊंचा और चार नल्व (1600 हाथ) विस्तार वाला हे जिसमें उत्तरोत्तर ।।71।।

पूर्ववच्चैव सोपानमुत्तरोत्तरमिष्यते।
नित्याकलान्तरे तस्मिन्कामाकर्पिणिकामुखाः ७२।।

पूर्ववत् यहां भी सोपान (सीढ़ियां) उत्तरोत्तर विद्यमान हैं वहां नित्याकला के मध्य में कामाकर्षिणि का प्रमुख शक्तियां हैं ।।72।।

परितः कृतसंस्थानाः षोडशेन्दुकलात्मिकाः।
तर्पयन्त्यो दिशां चक्रं सुधास्यन्दैः सुशीतलैः ७३।।
तासां नामानि मत्तस्त्वमवधारय कुम्भज ।
कामाकर्षिणिका नित्या बुद्ध्याकर्षिणिका परा ७४।।

चारों ओर संस्थान बनाए हुए सोलह चन्द्र कलात्मिका दिशाओं के चक्र को सुन्दर और शीतल अमृत बिन्दुओं से तर्पण करती हुईं। हे कुंभज ! आप मुझसे उनके पवित्र नामों को सुनो- 1 कामाकर्षिणिका नित्या, 2 बुद्धयाकर्षिणिका परा ।।73,74।।

अहङ्काराकर्षिणी च शब्दाकर्षिणिका तथा ।
स्पर्शाकर्षिणिका नित्या रूपाकर्षिणिका तथा ७५।।

3 अहंकाराकर्षिणिका, 4 शब्दाकर्षिणिका, 5 स्पर्शाकर्षिणी, नित्या, 6 रूपाकर्षिणिका ।।75।।

रसाकर्पिणिका नित्या गन्धाकर्षिणिका कला।
चित्ताकर्षिणिका नित्या धैर्याकर्षिणिका कला ७६।।

7 रसाकर्षिणिका नित्या,8गंधाकर्षिणिका कला,9 चित्ताकर्षिणिका नित्या,10 धैर्याकर्षिणिका कला ।।76।।

स्मृत्याकर्पिणिका नित्या नामाकर्षिणिका कला।
बीजाकर्षिणिका नित्या चात्माकर्षिणिका कला ।।77।।

11 स्मृत्याकर्षिणिका नित्या, 12 नामाकर्षिणिका कला, 13 बीजाकर्षिणिका नित्या, 14 आत्माकर्षिणिका कला ।।77।।

अमृताकर्षिणी नित्या शरीराकर्षिणी कला ।
एतास्तु गुप्तयोगिन्यस्त्रिपुरेशी च चक्रिणी ॥७८॥

15 अमृताकर्षिणिका नित्या, 16 शरीराकर्षिणिका कला, ये सोलह गुप्त योगिनियां हैं इनकी चक्रिणी त्रिपुरेशी हैं ।।78।।

सर्वाशापूरकाभिख्यचक्राधिष्ठानदेवता ।
एतच्चक्रे पालिका तु मुद्राद्राविणिकाभिधा ॥७९॥

सर्वाशापूरक नाम का चक्र अधिष्ठान देवता है इस चक्र में पालिका द्राविणी नाम की मुद्रा है।।79।।

नित्याकलान्तरादूर्ध्वे धिष्ण्यमत्यन्तसुन्दरम्।
हस्तविंशतिमुन्नम्रं चतुर्नल्वप्रविस्तरम्॥८०॥

नित्या कलान्तर से ऊपर अत्यन्त सुन्दर हवन कुण्ड है वह बीस हाथ ऊंचा और चार नल्व (1600 हा) विस्तार वाला है ।।80।।

प्रागवत्सोपानसंयुक्तं सर्वसंक्षोभणाभिधम्।
तत्राष्टौ शक्तयस्तीवा मदारुणविलोचनाः ॥८१॥

पूर्वोक्त सोपानों से यहां भी स्थिति है उसका नाम सर्व संक्षोभण हैं उसमें आठ तीव्र तेजवाली शक्तियां हैं जिनके नेत्र मद से लाल वर्ण के हो रहे हैं ।।81।।

नवतारुण्यमत्ताश्च सेवन्ते परमेश्वरीम्।
कुसुमा मेखला चैव मदना मदनातुरा॥८२॥

ये शक्ति नूतन तरूणता से मत्त हैं ये भगवती परमेश्वरी की सेवा करती हैं उनके नाम इस प्रकार हैं यथा 1 कुसुमा, 2 मेखला, 3 मदना, 4 मदनातुरा, 5 रेखा, 6 वेगिनी, 7 अंकुश, 8 मालिनी ये आठ शक्तियों के नाम हैं ।।82।।

रेखा वेगिन्यङ्कुशा च मालिन्यष्टौ च शक्तयः।
कोटिशस्तत्परीवाराः शक्तयोऽनङ्गपूर्विकाः ॥८३॥

इन आठ शक्तियों के करोड़ों परिवार है इनके प्रत्येक नाम में अनंग नाम जुड़ा है यथा 1 अनंगकुसुमा, 2 अनंगमेखला, 3 अनंगमदना, 4 अनंगमदनातुरा, 5 अनंगरेखा, 6 अनंगवेगिनी, 7 अनंगांकुशां, 8 अनंगमालिनी ।।83।।

सर्वसंक्षोभणमिदं चक्रं तत्र तु चक्रिणी।
सुन्दरी नाम विज्ञेया नाम्ना गुप्ततरा स्मृता ॥८४॥

यह सर्वसंक्षोभण नाम का चक्र तथा उस चक्र की अधिकारिणी शक्ति देवी सुन्दरी हैं वह गुप्ततरा नाम वाली भी हैं ।।84।।

तच्चक्रपालनकरी मुद्राकर्षिणिका स्मृता ।
अनङ्गशक्त्यन्तरस्योपरिष्टात्कुम्भसंभव ॥८५॥

हे कुंभसंभव ! उस चक्र का पालन करने वाली मुद्राकर्षिणिका नाम वाली हैं अनंगशक्ति के बीच में ऊपर से बीस हाथ है।।85।।

हस्तविंशतिमुन्नस्त्रं चतुर्नल्वप्रविस्तरम्।
संक्षोभिण्याद्यन्तरं स्यात्सर्वसौभाग्यदायकम् ॥८६॥

बीस हाथ ऊंचा और चार नल्व (1600 सौ हाथ) विस्तृत संक्षोभिणी के अन्दर की ओर सभी को सौभाग्य देने वाला सर्वसौभाग्यदायक है ।।86।।

सर्वसंक्षोभिणीमुख्यास्तत्र शक्तय उद्धताः।
चतुर्दश वसन्त्येव तासां नामानि मच्छृणु ॥८७॥

वहां सर्वसंक्षोभिणी मुख्य शक्तियां उद्दत शक्तियां हैं । वहां वे चौदह शक्तियां अगस्त्य जी ! वह मुझसे सुनो ।।87।।

सर्वसंक्षोभिणी शक्तिः सर्वविद्राविणी तथा।
सर्वाकर्षिणिका शक्तिः सर्वाह्लादिनिका तथा।।८८।।
सर्वसंमोहिनी शक्तिः सर्वस्तम्भनशक्तिका।
सर्वजम्भनशक्तिश्च तथा सर्ववशंकरी ॥८९ ॥
सर्वरञ्जनशक्तिश्च सर्वोन्मादनशक्तिका।
सर्वार्थसाधनी शक्तिः सर्वसंपत्तिपूरणी ॥९०॥
सर्वमन्त्रमयी शक्तिः सर्वद्वन्द्वक्षयंकरी।
एताश्च संप्रदायाख्याश्चक्रिणीपुरवासिनी ॥९१॥

1 सर्वसंक्षोभिणी, 2 सर्वविद्राविणी, 3 सर्वाकर्षिणिका, 4 सर्वाह्लादिनिका 5 सर्वसंमोहिनी, 6 सर्वस्तम्भना, 7 सर्वजम्भन, 8 सर्ववशंकरी 9 सर्वरंजन शक्ति, 10 सर्वोन्मादनी, 11 सर्वार्थसाधनी, 12 सर्वसम्पत्तिपूरणी 13 सर्वमन्त्रमयी शक्ति, 14 सर्वद्वंद्वक्षयंकरी ये सम्प्रदाय नामक चक्रिणी के पुर में रहने वाली शक्तियां है ।।88,89,90,91।।

मुद्रा च सर्ववश्याख्या तश्चक्रे रक्षिका मता।
कोटिशः शक्तयस्तत्र तासा किंकर्य उद्धताः ॥९२॥

7 उस चक्र में मुद्रा सर्ववश्या नाम वाली है जो उस चक्र में रक्षिका है यहां करोड़ों शक्तियां हैं उन शक्तियों की किंकरियां भी कही गई हैं ।।92।।

संक्षोभिण्याद्यन्तरस्योपरिष्टात्कुम्भसंभव।
हस्तविंशतिमुन्नत्रं चतुर्नल्वप्रविस्तरम् ।। ९३ ।।

हे कुंभसंभव ! संक्षोभिणी आदि के बीच में ऊपर बीस हाथ ऊंचे और चार नल्व (1600 हाथ) विस्तार वाला ।।93।।

सर्वसिद्ध्यादिकानां तु मंदिरं धिष्ण्यमुच्यते।
सर्वसिद्धिप्रदा चैव सर्वसंपत्प्रदा तथा ॥ ९४ ॥

सर्वसिद्धि आदि देवियों का मंदिरांगण कहा जाता है, वे देवियां इस प्रकार उनके नाम हैं यथा 1 सर्वसिद्धिप्रदा, 2 सर्वसम्पत्प्रदा ।।94।।

सर्वप्रियङ्करी शक्तिः सर्वमङ्गलकारिणी।
सर्वकामप्रदा देवी सर्वदुःखविमोचनी ।।९५॥

3 सर्वप्रियंकरी, 4 सर्वमंगलकारिणी, 5 सर्वकामप्रदा, 6 सर्वदुःख विमोचिनी ।।95।।

सर्वमृत्युप्रशमनी सर्वविघ्ननिवारिणी।
सर्वाङ्गसुन्दरी देवी सर्वसौभाग्यदायिनी ॥९६॥

7 सर्वमृत्युप्रशमनी, 8 सर्वविघ्ननिवारिणी, 9 सर्वाङ्गसुन्दरी, 10 सर्वसौभाग्यदायिनी ।।96।।

एता देव्यः कुलोत्तीर्णा योगिन्यो नामतः स्मृताः।
चक्रिणी श्रीश्च विज्ञेया चक्रं सर्वार्थसाधकम्।।९७।।

ये देवियां कुलोत्तीर्णा नाम से ये योगिनियां कहीं गई हैं इस चक्र की स्वामिनी श्री हैं और यह चक्र सर्वार्थसाधक नामक है ।।97।।

सर्वोन्मादनमुद्रास्य चक्रस्य परिपालिका।
सर्वसिद्ध्याद्यन्तरस्योपरिष्टात्कुम्भसंभव ॥९८॥
हस्तविंशतिमुन्नम्रं चतुर्नल्वप्रविस्तरम्।
सर्वज्ञाद्यन्तरं नाम्ना सर्वरक्षाकरं परम्।।
चक्रं महत्तत्र देव्यः सर्वज्ञायाः प्रकीर्तिताः।।९९।।

सर्वोन्मादन मुद्रा इस चक्र की परिपालिका है। हे कुम्भ सम्भव ! महा सिद्ध्यादि चक्र के भीतर

ऊपर की ओर बीस हाथ ऊंचा और चार नल्व (1600 हाथ) विस्तार वाला चक्र महत्तर है और दिव्य है, सर्वज्ञा आदि देवियों का यह चक्र है ।।98,99।।

सर्वज्ञा सर्वशक्तिश्च सर्वैश्वर्यप्रदायिनी।
सर्वज्ञानमयी देवी सर्वव्याधिविनाशिनी ।।१००।।

उन सर्वज्ञादि के नाम इस प्रकार हैं- यथा 1 सर्वज्ञा, 2 सर्वशक्ति, 3 सर्वैश्वर्य प्रदायिनी, 4 सर्वज्ञानमयी, 5 सर्वव्याधिविनाशिनी ।।100।।

सर्वाधारस्वरूपा च सर्वपापहरा तथा।
सर्वानन्दमयी देवी सर्वरक्षास्वरूपिणी ॥१०१ ॥

6 सर्वाधार स्वरूपा, 7 सर्वपापहरा, 8 सर्वानन्दमयी, 9 सर्वरक्षास्वरूपिणी ।।101।।

सर्वेप्सितप्रदा चैता निगर्भायोगिनीश्वराः।
मालिनी चक्रिणी प्रोक्ता मुद्रा सर्वमहाङ्कुशा।।१०२।।

10 सर्वेसिप्सतप्रदा, इस प्रकार ये निगर्भ योगिनीश्वरी हैं मालिनी और चक्रिणी इस चक्र की रक्षिका है तथा मुद्रा सर्वमहांकुशा है। ।।102।।

इति चिन्तामणिगृहे सर्वज्ञाद्यन्तरावधि।
चक्राणि कानिचित्प्रोक्तान्यन्यान्यपि मुने शृणु॥103।।

इस प्रकार हे मुने ! चिन्तामणिगृह में सर्वज्ञादि जो देवियां जिनके अन्तर्गत हैं उन चक्रों का वर्णन किया है अब आगे अन्यान्य चक्रों का भी वर्णन आप सुनिये ।।103।।

इति श्रीब्रह्माण्डपुराणे उत्तरखण्डे हयग्रीवागस्त्यसंवादे श्रीललितोपाख्याने
द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

॥श्रीमन्महागणाधिपतये नमः।।

श्रीमाताललिताम्बायै नमः श्रीपादुकां पूजयामि नमः॥
ॐ वन्दे गुरुपदद्वन्द्वं अवाङ्मनसगोचरम्॥
रक्तशुक्ल प्रभामिश्रमतर्क्यं त्रैपुरं महः॥
ॐ आराध्यदेवं भक्तानां कलिदोषविनाशकम्॥
वन्दे श्रीगिरिजानन्दं शारदाश्रीमठाधिपम्।।
ॐ अखण्डं यस्यज्ञानञ्च भक्तिर्यस्यानपायिनी।।
शारदाज्योतिरीशस्य दर्शनं (पूजनं, वन्दनं) शुभमस्तुनः।।

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥ 110 श्लोकात्मक

॥ गृहराजान्तरकथनम् ॥

श्री हयग्रीवजी श्री अगस्त्य जी को सम्बोधित करते हुए बोले- यथा

सर्वज्ञाद्यन्तरालस्योपरिष्टात्कुम्भसंभव।
हस्तविंशतिमुन्नम्रं चतुर्नल्वप्रविस्तरम्।।१।।

हे अगस्त्य जी ! सर्वज्ञादि अन्तराल के ऊपर बीस हाथ ऊंचा और चार नल्व (1600 हाथ) विस्तार वाला ।।१।।

वशिन्याद्यन्तरं ज्ञेयं प्राग्वत्सोपानमण्डितम्।
सर्वरोगहरं नाम्ना तश्चक्रं भुवि विश्रुतम्॥२॥

वशिनी आदि शक्तियां जिसके मध्य में हैं उस चक्र का नाम सर्वरोगहर भूभाग में प्रसिद्ध है ॥२॥

वशिन्याद्यास्तत्र देव्यः पूर्वादिदिगनुक्रमात्।
स्वरैस्तु सहिता तत्र प्रथमा वशिनीश्वरी॥३॥

वहां उस चक्र में पूर्वादि दिशाओं के क्रम से वशिनी आदि शक्तियां हैं स्वरों (सोलह स्वर अं, अः) के सहित वहां प्रथम वशिनी देवी हैं ॥३॥

कवर्गसहिता तत्र कामेश्वर्याख्यवाङ्मयी।
चवर्गजुष्टा वागीशी मेदिन्याख्या तृतीयका॥४॥

इसके अनन्तर कवर्ग (कखगघङ.) सहित दूसरी कामेश्वरी नाम्नी वाग्देवी हैं फिर च वर्ग (च छ ज झ ञ्) जुड़ी वागीशी मेदिनी नाम्नी तीसरी हैं ॥४॥

टवर्गमण्डिताकारा विमलाख्या सरस्वती।
तवर्गेण ततोपान्ता पञ्चमी बागथारुणा॥५॥

आगे ट वर्ग (ट ठ ड ढ ण) मण्डित आकार वाली चौथी नाम्नी सरस्वती हैं तथा त वर्ग (त थ द ध न्) वर्णों से युक्त पांचवीं वाक् अरूणा हैं ॥५॥

पवर्गेण परिस्फीता षष्ठी तु जयिनी मता।
यादिवर्णचतुष्केण सर्वेश्वर्याख्यवाङ्मयी॥६॥

प वर्ग (प फ ब भ म्) वर्णों से सजी हुई षष्ठी (छठी) जयिनी मानी गई हैं यादि (यरलव) चतुष्कोण रूप वर्णों वाली सातवीं सर्वेश्यादिवाङ्मयी देवी है॥६॥

शादिकाक्षरषट्केन कौलिनी त्वष्टमी मता।
एता देव्यो जपारक्ता मुक्ताभरणमण्डिताः॥७॥

श वर्ण वाले (श ष स ह) आठवीं कौलिनी देवी मानी गई हैं ये देवियां मोतियों के आभूषणों से विभूषित हैं ये देवियां जपाकुसुम के रंग जैसी रक्तवर्णा हैं अथवा भगवती के मंत्र जप में तल्लीन हैं॥७॥

सदास्फुरद्गद्यपद्यलहरीललिताननाः।
काव्यैश्च नाटकैश्चैव वेदान्तार्थैः स्तवोत्तमैः॥८॥

वे सभी देवियां (वशिनी, कामेश्वरी, वागीशी, मेदिनी, विमला सरस्वती, अरूणा, जयिनी, सर्वैश्वर्या, कौलिनी) गद्य पद्य लहरी (झाल मंजीरा आदि वाद्यों के साथ) गाने वाली मानी गई हैं वे सभी काव्यों से नाटकों से वेदान्त अर्थों से युक्त उत्तम स्तवों से भगवती की आराधना करती रहती हैं॥८॥

अलङ्कारादिशब्दैश्च मधुरैः कर्णहारिभिः।
विनोदयन्त्यः श्रीदेवीं वर्तन्ते कुम्भसंभव॥९॥

अलंकारादिशब्दैश्च काव्यादि में शाब्दालंकार और अर्थालंकारादि नव रसों का प्रयोग मधुरता बढ़ाने वाला और कानों में मधुरता का आभास कराने वाले प्रयोगों से हे कुंभज ! भगवती का विनोद करती हैं॥९॥

एता रहस्यनाम्नैव ख्याता वातापितापन।
नायिका त्वस्य चक्रस्य सिद्धा नाम्ना प्रकीर्तिता ॥१०॥

हे वातापितापन ! ये शक्तियां रहस्य नाम से ही प्रसिद्ध हैं इनकी नायिका और इस चक्र की देवी सिद्धा नाम्नी कही गई है॥१०॥

अस्य चक्रस्य संरक्षाकारिणी खेचरी मता।
वशिन्याद्यन्तरालस्योपरिष्टाद्विन्ध्यतापन ॥११॥

हे विन्ध्यमदमर्दक ! इस चक्र की संरक्षा कारिणी शक्ति खेचरी हैं वशिनी आदि के अन्तराल के अनन्तर॥११॥

हस्तविंशतिमुन्नम्रं चतुर्नल्वप्रविस्तरम्।
अस्त्रचक्रमिति ज्ञेयं तत्र बाणाधिदेवताः॥१२॥

बीस हाथ ऊंचा और चार नल्व (1600 हाथ) विस्तार वाला अस्त्र चक्र मानना चाहिये वहां बाणाधिदेवता हैं॥१२॥

पञ्च कामेश्वरीबाणाः पञ्च कामेश्वराशुगाः।
अङ्कुशद्वितयं दीप्तमादिस्त्रीपुंसयोर्द्वयोः॥१३॥

वहां पांच कामेश्वरी भगवती के बाण (द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः) हैं और पांच भगवान कामेश्वर शीघ्रगामी बाण (यां रां लां वां सां) हैं तथा इन बाणों की ये अधिदेवता हैं वहीं अंकुशद्वय की अधिदेवता दो हैं आदि स्त्री और आदि पुरुष की दीप्ति आदि दो हैं॥१३॥

धनुर्द्वयं च विन्ध्यारे नवपुण्ड्रेक्षुकल्पितम्।
पाशद्वयं च दीप्ताङ्गं चत्वार्यस्त्राणि कुम्भज॥१४॥

हे विन्ध्यारे! दो धनुष हैं जो नव पुण्ड्रों के इक्षु (गन्ना) में कल्पित हैं दो दीप्ति आभा वाले पाश हैं। हे कुम्भज! इस प्रकार ये चार अस्त्र हैं॥१४॥

कामेश्वर्यास्तु चत्वारि चत्वारि श्रीमहेशितुः।
आहत्याष्टावायुधानि प्रज्वलद्दीप्तिभाञ्जि च ॥१५॥

भगवती कामेश्वरी के चार भगवान कामेश्वर के चार दोनों मिलकर आठ आयुध प्रबल दीप्ति को धारण करने वाले हैं॥१५॥

भण्डासुरमहायुद्धे दुष्टदानवशोणितैः
पीतैरतीव तृप्तानि दिव्यास्त्राण्यत्र जाग्रति ॥१६॥

भण्डासुर महायुद्ध में दुष्टदानवों के रक्तों के पीने से वे अत्यन्त तृप्त दिव्य अस्त्र वहां उस चक्र में जागते रहते हैं॥१६॥

एतेषामायुधानां तु परिवारायुधान्यलम्।
वर्तन्तेऽस्त्रान्तरे तत्र तेषां संख्या तु कोटिशः ॥१७॥

इन पूर्वोक्त आयुधों के तो अनेकों आयुध परिवार हैं वे सभी इन अस्त्रों के बीच में विद्यमान हैं उनकी संख्या भी करोड़ों में हैं ॥१७॥

वज्रं शक्तिः शतघ्नी च भुसुण्डी मुसलं तथा।
कणयः पट्टसं चैव मुद्गरं भिण्डिपालकम्॥१८॥

वज्र, शक्ति, शतघ्नी, भुशुण्डी, मुसल, कृपाण, पट्ठस, मुद्‌गर और भिण्डिपाल (भिन्दीपाल)॥१८॥

एवमादीनि शस्त्राणि सहस्त्राणां सहस्त्रशः।

अष्टायुधमहाशक्तीः सेवन्ते मदविह्वलाः ॥१९॥

इस प्रकार ये शस्त्र हजारों हजार की संख्या में ये सभी मदमस्त होकर अष्टायुघ महाशक्ति की (भगवती कामेश्वरी और भगवान कामेश्वर के आठों आयुध)सेवा करते हैं ॥१९॥

अथ शस्त्रान्तरालस्योपरि वातापितापन।

हस्तविंशतिमुन्नम्रं चतुर्नल्वप्रविस्तरम् ॥२०॥

हे वातापितापन कुंभज! उन शस्त्रों के अन्तर में बीस हाथ ऊंचा तथा चार नल्व (1600 हाथ) विस्तार वाला ॥२०॥

धिष्ण्यं तु समयेशीनां स्थानं चतसृणां मतम्।

कामेश्याद्यास्तत्र देव्यस्तिस्त्रोऽन्या तु चतुर्थिका ॥२१॥

जिसमें समयेशी शक्तियों का हवन कुण्ड है, चार शक्तियों का है वहां हवन कुण्ड में कामेशी आदि तीन देवियां हैं और चौथी शक्ति ॥२१॥

सैव निःशेषविश्वानां सवित्री ललितेश्वरी।

तिसृणां शृणु नामानि कामेशी प्रथमा मता ॥२२॥

वह चौथी शक्ति ललितेश्वरी समस्त अशेष विश्वों की जननी है उनतीन शक्तियों के नाम तुम सुनों उनमें प्रथम शक्ति कामेशी हैं ॥२२॥

वज्रेशी भगमाला च ताः सेवन्ते सहस्त्रशः।

सर्वेषां दर्शनानां च या देव्यो विविधाः स्मृताः ॥२३॥

2 वज्रेशी, 3 भगमाला ये सभी हजारों देवियां भगवती ललिता की सेवा करती हैं, सभी दर्शनों की जो देवियां वे सभी अनेकों प्रकार से स्मरण की गई हैं ॥२३॥

ताः सर्वास्तत्र सेवन्ते कामेश्यादीर्महोदयाः।

एतासां च प्रसङ्गेषु नित्यानां च प्रसज्जने ॥२४॥

वे सभी कामेशादि देवियां वहां भगवती ललिता परमेश्वरी की सेवा करती हैं। इन सभी के प्रसंगों में और नित्या देवियों के चक्रिणी योगिनियों के प्रसंग में श्री देवी पूर्णा भगवती हैं ॥२४॥

चक्रिणीनां योगिनीनां श्रीदेवी पूरणात्मिका।

या कामेश्वरवामाङ्ककलिता ललिताम्बिका ॥२५॥

चक्रिणी (श्री यंत्र के नवआवरण, उनकी देवी चक्रिणी) आदि योगिनियों की श्री देवी पूरणात्मिका हैं जो भगवान कामेश्वर के वामांग में स्थित भगवती ललिताम्बिका हैं ॥२५॥

कामेश्यादिचतुर्थी सा नित्यानां षोडशी मता।
योगिनीचक्रदेवीनां नवमी परिपूर्तिका॥२६॥

कामेशी आदि चतुर्थी हैं, वह नित्याओं की षोडशी कही गई हैं, चक्र देवियों की योगिनी नवमीं परिपूर्ति करने वाली हैं॥२६॥

समयेश्यन्तरालस्योपरिष्टादिल्वलान्तक।
नाथान्तरमिति प्रोक्तं हस्तविंशतिमुन्नतम्॥२७॥

समयेशी आदि के अन्तराल के ऊपर हे इल्वलान्तक! नाथान्तर चक्र कहा गया है जो बीस हाथ ऊंचा हैं॥२७॥

चतुर्नल्वप्रविस्तारं प्राग्वत्सोपानमण्डितम्।
तत्र नाथा महादेव्या योगशास्त्रप्रवर्तकाः॥२८॥

और (चार नल्व (1600 हाथ) विस्तृत पूर्ववत सीढ़ियों से युक्त वहां महादेवी के स्वरूपनाथ जो योगशास्त्र के प्रवर्तक हैं॥२८॥

सर्वेषां मन्त्रगुरवः सर्वविद्यामहार्णवाः।
चत्वारो युगनाथास्तु लोकानामभिगुप्तये॥२९॥

वे नाथ समस्त मंत्रों के गुरु हैं समस्त विद्यारूप महार्णव हैं वे चार युगनाथ समस्त लोकों की अभिरक्षा के लिये॥२९॥

सृष्टा कामेशदेवेन तेषां नामानि मन्च्छृणु।
मित्रेशोड्डीशषष्ठीशचर्याख्याः कुम्भसंभव॥३०॥

हे कुंभज! भगवान कामेश्वर देव ने उनकी सृष्टि की है, उनके नाम तुम मुझसे सुनो उन के ये नाम हैं 1 मित्रेश, 2 उड्ड्रीश, 3 षष्टीश और 4 चर्यानन्दनाथ॥३०॥

तैः सृष्टा बहवो लोका रक्षार्थं पादुकात्मकाः।
दिव्यौघा मानवौघाश्च सिद्धौघाः सुरतापसाः॥३१॥

उन्होंने अनेकों लोगों की रक्षा के लिये पादुकात्मकों की सृष्टि की उनमें दिव्यौघ, मानवौघ और सिद्धौद्य तपस्वी देव॥३१॥

प्राप्तसालोक्यसारूप्यसायुज्यादिकसिद्धयः।
महान्तो गुरवस्तांस्तु सेवन्ते चतुरो गुरून्॥३२॥

जिन्होंने सालोक्य, सारूप्य, सायुज्य, सामीप्य और सार्ष्टिआदि मोक्ष सिद्धियां प्राप्त कर ली हैं, ऐसे गुरुजन इन चार औद्य की सेवा करते हैं॥३२॥

अथ नाथान्तरालस्योपरिष्टाद्धिष्ण्यमुत्तमम्।
हस्तविंशतिमुन्नम्रं चतुर्नल्वप्रविस्तरम्।
नित्यान्तरमिति प्रोक्तं नित्याः पञ्चदशात्र वै ॥३३॥

नाथान्तराल के ऊपर उत्तम यज्ञवेदी है, जो बीस हाथ ऊंची और चार नल्व (1600 हाथ) विस्तार वाला नित्यान्तर चक्र है जिसमें पन्द्रह नित्याएं स्थित हैं ॥३३॥

अथ कामेश्वरी नित्या नित्या च भगमालिनी।
नित्यक्लिन्नापि च तथा भेरुण्डा वह्निवासिनी ॥३४॥

उन नित्याओं के नाम इस प्रकार हैं- यथा 1 कामेश्वरी, 2 भगमालिनी, 3 नित्यक्लिन्ना, 4 भेरुण्डा, 5 वाह्निवासिनी ॥३४॥

महाविद्येश्वरी दूती त्वरिता कुलसुन्दरी।
नित्या नीलपताका च विजया सर्वमङ्गला ॥३५॥

6 महाविद्येश्वरी, 7 दूती, 8 त्वरिता, 9 कुल सुन्दरी, 10 नील पताका, 11 नित्या नित्या, 12 विजया, 13 सर्वमंगला ॥३५॥

ज्वालामालिनिका चित्रेत्येताः पञ्चदशोदिताः।
एता देवीस्वरूपाः स्युर्महाबलपराक्रमाः ॥३६॥

14 ज्वालामालिनिका, 15 चित्रा ये पन्द्रह तिथि नित्याएं कही गई हैं, ये सभी देवी स्वरूप हैं महाबली और महापराक्रमवाली हैं ॥३६॥

प्रथमामुख्यतिथितां गता व्याप्तजगत्रयाः।
कालरूपा वर्तमानाः कालमासविचक्षणाः ॥३७॥

ये तिथिगण देवियां तीनों कालों (भूत, वर्तमान, भविष्य) में रहने वाली तथा काल को ग्रास करने वाली अर्थात समय का ग्रास करती जाती हैं समय व्यतीत होता रहता है ॥३७॥

ब्रह्मादीनामशेषाणां चिरकालमुपेयुषाम्।
तत्तत्कालशतायुष्यरूपा देव्याज्ञया स्थिताः ॥३८॥

इन कालरूप तिथिरूप देवियों के लिये ब्रह्माआदि समस्त देवों ने चिरकाल तक देवी की उपासना की, तब भगवती ललितेश्वरी की आज्ञा से उस उस समय की शतायुष्य (सौ वर्ष की आयु) के रूप में स्थित हुईं ॥३८॥

नित्योद्यता निरातङ्का श्रीदेव्यङ्गस्य रक्षकाः।
सेवन्ते जगतामृद्ध्यै ललितां स्वैक्यरूपिणीम् ॥३९॥

ये सभी देवियां (नित्याएं) भगवती ललिता के अंग से प्रकट हुईं हैं ये देवियां नित्य उद्यत हो, नित्य निरातंक होकर संसार की समृद्धि के लिये चित् स्वरूपिणी ललिता भगवती की सेवा करती हैं॥३९॥

तासां भवनतां प्राप्ता दीप्ताः पञ्चदश स्वराः।
विसृष्टिबिन्दुचक्रे तु षोडश्या भवनं मतम्॥४०॥

उन पन्द्रह तिथि नित्याओं के भवन स्वरूप अर्थात् निवास स्थान, परम दीप्तिमान पन्द्रह स्वर हैं (अ आ इ, ई, उ ऊ, ऋ लृ, ए, ऐ ओ, अं अः) विसृष्टि चक्र के बिन्दु चक्र में (अः) भगवती षोडशीका भवन माना गया है॥४०॥

अथ नित्यान्तरालस्योपरिष्टात्कुम्भसंभव।
अङ्गदेव्यन्तरं प्रोक्तं हस्तविंशतिमुन्नतम्॥४१॥

इसके बाद नित्यान्तराल के ऊपर अंगदेवी का अंतराल कहा गया है, हे कुंभज! वह भी बीस हाथ ऊंचा है॥४१॥

चतुर्नल्वप्रविस्तारं प्राग्वत्सोपानमण्डितम्।
तस्मिन्हृदयदेव्याद्याः शक्तयः सन्ति वै मुने॥४२॥

हे मुने! वह अन्तराल चतुर्नल्व (1600 हाथ) विस्तृत है पहिले जैसे सोपानों से शोभित है, उसमें हृदयदेवी आदि शक्तियां हैं॥४२॥

हृदयदेवी च शिरोदेवी शिखादेवी तथैव च।
मर्मदेवी नेत्रदेवी शस्त्रदेवी षडीरिताः॥४३॥

1 हृदयदेवी, 2 शिरोदेवी, 3 शिखा देवी, 4 मर्मदेवी (कवच देवी) 5 नेत्र देवी, 6 शस्त्र देवी (अस्त्र देवी) ये छह अंगदेवियां हैं॥४३॥

अत्यन्तसन्निकृष्टास्ताः श्रीकामेश्वरसुभ्रुवः।
नवलावण्यपूर्णाङ्ग्यः सावधाना धृतायुधाः॥४४॥

ये सभी देवियां सुन्दर भौंहों वाले श्री कामेश्वर के अत्यन्त सन्निकट हैं नवीन सौन्दर्य से परिपूर्ण अंगों वाली आयुधों को धारण करने वाली और सावधान हैं॥४४॥

परितो बिन्दुपीठस्य भ्राम्यन्त्यो दीप्तमूर्तयः।
ललिताम्बाङ्गरक्षिण्यो वर्तन्ते वशिनां वर॥४५॥

ये संयमियों में श्रेष्ठ कुंभज! वे दीप्त मूर्तियां अंग देवियां बिन्दु पीठ के चारों ओर भ्रमण करती हुईं ललिताम्बा की अंगरक्षिणी देवियां हैं॥४५॥

अथाङ्ग देव्यन्तरस्योपरिष्टान्मण्डलाकृति।
बिन्दुनाम महापीठं दशहस्तसमुन्नतम् ॥४६॥

इसके आगे अंगदेवियों के अन्तर भाग के ऊपर मण्डल जैसी आकृति वाला बिन्दु नामक महापीठ है, जो दस हाथ तक समुन्नत है ॥४६॥

नल्वाष्टकप्रविस्तारमुद्यदादित्यसन्निभम्।
बिन्दुपीठमिति ज्ञेयं श्रीपीठमिति घुष्यते ॥४७॥

आठ नल्वों (3200 हाथ) का विस्तार वाला उदित होते सूर्य जैसा दीप्तिमान है, उसे बिन्दु पीठ नाम से जानते हैं श्रीपीठ भी घोषित किया जाता है ॥४७॥

महापीठमपि ज्ञेयं विद्यापीठमपीष्यते।
आनन्दपीठमपि च पञ्चाशत्पीठरूपधृत् ॥४८॥

उसे महापीठ भी कहते हैं, और विद्यापीठ रूप से भी मानते हैं तथा आनन्दपीठ भी कहते हैं तथा पञ्चाशत् पीठ धारी भी जानते हैं ॥४८॥

तत्र श्रीललितादेव्याः पञ्चब्रह्ममयं महत्।
जागर्ति मञ्चरत्नं तु प्रपञ्चं त्रयमूलकम् ॥४९॥

उस बिन्दुपीठ में श्री ललितादेवी के महान् पंच ब्रह्ममय हैं जो श्रेष्ठ पंच रत्न तथा प्रपञ्चत्रय मूलक है ॥४९॥

तस्य मध्यस्य पादास्तु चत्वारः परिकीर्तिताः।
दशहस्तसमुन्नम्रा हस्तत्रितयवेष्टनाः ॥५०॥

उस मंच के चार पाये कहे जाते हैं, जो दस हाथ ऊंचे और तीन हाथ मोटे हैं ॥५०॥

ब्रह्मविष्णुमहेशनेश्वररूपत्वमागताः।
शक्तिभावमनुप्राप्ताः सदा श्रीध्यानयोगतः ॥५१॥

उस मंच के पाये के रूप में ब्रह्मा, बिष्णु, रुद्र और ईश्वर रूप में और सदाशिव पांच ब्रह्म हैं, जो सदा श्री देवीध्यान में निमग्न रहने से शक्ति भाव को प्राप्त हो गए हैं ॥५१॥

एकस्तु मञ्चपादः स्याज्जराकुसुमभासुरः।
ब्रह्मात्मकः स विज्ञेयो बह्निदिग्भागमास्थितः ॥५२॥

उस बिन्दुचक्र के अग्निकोण में स्थित मञ्चका पाया है, वह जपाकुसुम (जासौन) के जैसे उज्ज्वल वर्ण का है, वह ब्रह्मा का पाया इस रूप से जाना जाता है ॥५२॥

द्वितीयो मञ्चपादस्तु महानीलोत्पलप्रभः।
विष्णवात्मकस्स विज्ञेयो रक्षोदिग्भागमाश्रितः ॥५३॥

मंच का दूसरा पाया नीलकमल के वर्ण का है, वह विष्णवात्मक है। वह नैर्ऋत्य कोण में स्थित है॥५३॥

तृतीयो मञ्चपादस्तु शुद्धस्फटिकनिर्मलः।
रुद्रात्मकः स विज्ञेयो वायुदिग्भागमाश्रितः॥५४॥

तीसरा मञ्च का पाया शुद्ध निर्मल स्फटिक के समान निर्मल है, वह रुद्रात्मक है, वायुकोण (वायव्य कोण पश्चिम और उत्तर का कोना) में स्थित है॥५४॥

चतुर्थो मञ्चपादस्तु कर्णिकारकडार रुक् ।
ईश्वरात्मा स विज्ञेय ईशदिग्भागमाश्रितः॥५५॥

मंच का चौथा पाया जो कर्णिकार कडार वर्ण का (अमलतास) है, वह ईश्वरात्मक हैं और ईशान कोण में स्थित है॥५५॥

एते सर्वे सायुधाश्च सर्वालङ्कारभूषिताः।
उपर्यधः स्तम्भरूपा मध्ये पुरुषरूपिणः॥५६॥

ये सभी मंचों के देवता (ब्रह्मा, बिष्णु, रुद्र और ईश्वर) अपने अपने आयुधों के साथ समस्त आभूषणों से विभूषित हैं, मंच के चारों पाये ऊपर तथा नीचे के भाग में दण्डरूप तथा मध्यभाग में इन्ही मंच देवताओं की पुरुषाकृति मूर्ति है॥५६॥

श्रीध्यानमीलिताक्षाश्च श्रीध्यानान्निश्चलाङ्गकाः।
तेषामुपरि मञ्चस्य फलकस्तु सदाशिवः ॥५७॥

ये चारों ध्यान मुद्रा में निमीलितनेत्र (नेत्रों को बन्द किय हुए हैं) हैं और भगवती के ध्यान करने में समस्त अंग निश्चल हैं इनके ऊपर फलक भाग में सदाशिव हैं॥५७॥

विकासिदाडिमच्छायश्चतुर्नल्वप्रविस्तरः।
नल्वषट्कायामवांश्च सदा भास्वरमूर्तिमान्॥५८॥

जो खिले हुए अनार की कान्ति के समान चार नल्व (1600 हाथ) विस्तार वाला तथा नल्व षट्क अर्थात 6 नल्व (36 सौ हाथ) आयाम वाला चमकता हुआ दीप्तिमान है॥५८॥

अङ्गदेव्यन्तरारम्भान्मञ्चस्य फलकावधि।
चिन्तामणिमयाङ्गानि तत्त्वरूपाणि तापस॥५९॥

अंगदेव्यन्तराल के आरंभ से मंच के फलक सीमा तक हे तापस! तत्वरूप चिन्तामणि मय अंग हैं अर्थात छत्तीस निवेशनों के साथ सीढ़ियों पर चढ़ते हुए मंच तक पहुंच सकते हैं॥५९॥

सोपानानि विभासन्ते षट्त्रिंशत्ता निवेशनैः।
आरोहस्य क्रमेणैव सोपानान्यभिदध्महे॥६०॥

यहां छत्तीस निवेसनों के साथ सीढ़ियां सुशोभित होती हैं जो आरोहण के क्रम में हम देखते हैं ॥६०॥

भूमिरापोऽनलो वायुराकाशो गन्ध एव च।
रसो रूपं स्पर्शशब्दोपस्थपायुपदानि च॥६१॥
पाणिवाग्घ्राणजिह्वाश्चर्म चक्षुस्त्वक्छ्रोत्रमेव च।
अहङ्कारश्च बुद्धिश्च मनः प्रकृतिपूरुषौ॥६२॥
नियतिः कालरागौ च कला विद्या च मायया।
शुद्धविद्येश्वरसदाशिवशक्तिशिवा इति॥६३॥

भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश, गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द, उपस्थ, पायु, पैर, हाथ, वाणी, नासिका, जिह्वा, त्वचा, चक्षु, श्रोत्र, अहंकार, बुद्धि, मन, प्रकृति और पुरुष, (समस्त पच्चीस तत्व) नियति, काल, राग, कला, विद्या, माया, शुद्ध, विद्यवेश्वर, सदाशिव, शक्ति, शिव॥६१,६२,६३॥

एताः षट्त्रिंशदाख्यातास्तत्त्वसोपानङ्क्तयः॥६४॥

ये छत्तीस सीढियां तत्व सोपान पंक्तियां हैं॥६४॥

एषा सोपानपङ्क्तिश्च मध्यपूर्वदिशं श्रिता।
मञ्चस्य पादनिकटे सूर्यकोटिसमप्रभा॥६५॥

यह सोपान पंक्ति मंच की पूर्व दिशा में आश्रित है, मंच के पाद के निकट करोड़ों सूर्यों की प्रभा के समान प्रभा युक्त॥६५॥

मध्येमध्ये धगधगत्कार्तस्वरविराजिता।
मुक्तागुलुच्छकलित शिरोभागेन भासुरा॥६६॥

मध्य मध्य में धगधगाता हुआ स्वर्ण उससे विराजित मोतियों के गुच्छों से सुशोभिता शिरोभाग से उद्दीप्त॥६६॥

नानारत्नमयी दृश्या ताम्बूलद्रववासिता।
धुर्धूरकुसुमाकारा कलाची वर्ततेऽब्धिप॥६७॥

हे अब्धिप्! अगस्त्यजी! वह भूमि नाना रत्नों वाली ताम्बूल रस से सुगंध युक्त धुर्धूरकुसुम के आकार वाली है॥६७॥

अथ मञ्चस्योपरिष्टाद्धंसतूलिकतल्पकम्।
हस्तत्रयसमुन्नम्रं चतुर्नत्वप्रविस्तरम्॥६८॥

उस मंच के ऊपरी भाग में हंसों के चित्रों से लिखी गई गद्दी है और तीन हाथ ऊंचा है चार नल्व (3200 हाथ) विस्तृत ॥६८॥

पादोपधानमूर्धोपधानद्वन्द्वविराजितम्।
गण्डूकानां चतुष्टय्या शोभितं पाटलत्विषा ॥६९॥

जिस पर पादोपधान (पैरों का तकिया) मूर्धोपधान (सिर का तकिया) इन दोनों से विराजित वह आसन गुलाबी आभा से युक्त सुशोभित हो रहा है ॥६९॥

तस्योपरिष्टात्कौसुम्भवसनेनोत्तरच्छदः।
शुचिना मृदुना क्लृप्तः पद्मरागमणित्विषा ॥७०॥

उस आसन के ऊपर रेशमी वस्त्र से आच्छादित पवित्र और सुकोमल पद्मरागमणि की किरणों से युक्त ॥७०॥

तस्योपरि वसन्पूर्वदिङ्मुखो दययान्वितः।
शृङ्गारवेषरुचिरः सदा षोडशवार्षिकः ॥७1॥

उसके ऊपर रहते हुए पूर्व दिशा की ओर मुख किये हुए दया से युक्त श्रृंगार युक्त वेष से रुचिकर सदैव सोलह वर्ष की आयु वाले ॥७1॥

उद्यन्भास्कर बिम्बाभश्चतुर्हस्तस्त्रिलोचनः।
हारकेयूरमुकुट कटकाद्यैरलङ्कृतः ॥७२॥

वे भगवात कामेश्वर ऊगते हुए सूर्य के समान तेजस्वी, उनकी चार भुजायें थीं वे हार, केयूर, मुकुट, कटकादि अंलकारों से सुसज्जित थे ॥७२॥

कमनीय स्मितज्योत्स्ना परिपूर्णकपोलभूः।
जागर्ति भगवानादिदेवः कामेश्वरः परः ॥७३॥

कमनीय मुस्कान की ज्योत्स्ना से भरे पूरे कपोल मण्डल वाले भगवान आदिदेव कामेश्वर शिव चैतन्य हैं ॥७३॥

तस्योत्सङ्गे समासीना तरुणादित्यपाटला।
सदा षोडशवर्षा च नवयौवनदर्पिता ॥७४॥

उन भगवान श्री कामेश्वर के अंक (गोद) में विराजमान तरूण सूर्य के समान गुलाबी आभावाली सदा सोलह वर्ष की आयु वाली नवयौवन से परिपूर्ण ॥७४॥

आमृष्टपद्मरागाभचरणाब्जनखच्छटा।
यावकश्रीनिर्व्व्यपेक्षपादलौहित्यवाहिनी ॥७५॥

भगवती के शरीर की कान्ति बिना मसले कमल की आभा के समान चरण कमलों के नखों की छटा चन्दन और कमल की छठा युक्त सुन्दर हैं बिना महावर लगाए हुए उनके चरण कमलों पर महावर की लालिमा विद्यमान है ॥७५॥

कला निस्वनमञ्जीरपतत्कङ्कणमनोहरा।
अनङ्गवीर तूणीरदर्पोन्मथनजङ्घिका ॥७६॥

कल-कल ध्वनि करते हुए पैरों में घुंघरू और हाथों में कंगन मोहित करने वाले हैं तथा जांघें अनंग के श्रेष्ठ तरकस के दर्प को व्यक्त कर रही हैं ॥७६॥ (4 शिञ्जानमणिमञ्जीरमण्डित श्रीपदाम्बुजा - श्री पादुकां पूजयामि नमः।। ल.स. नाम)

करिशुण्डाकदलिका कान्तितुल्योरुशोभिनी।
अरुणेन दुकूलेन सुस्पर्शेन तनीयसा ॥७७॥

हाथी की सूंड केले के स्तम्भ की कान्ति के समान दोनों जंघाएं हैं जो छूने में अत्यन्त सुन्दर फैले हुए लाल दुपट्टे से अलंकृत नितम्ब वाली भगवती हैं ॥७७॥

अलङ्कृतनितम्बाढ्या जघनाभोगभासुरा।
अर्धोरुकग्रन्थिमती रत्नकाञ्चीविराजिता ॥७८॥

अरूण दुकुल से अलंकृत नितम्ब वाली जंघाओं के विस्तार से सुन्दर दिखाई देने वाली भगवती हैं ॥७८॥

नतनाभिमहावर्तत्रिवल्यूर्मिप्रभाझरी।
स्तनकुङ्मलहिन्दोलमुक्तादामशतावृता ॥७९॥

झुकने पर उनकी नाभिका जो गर्त है वह तथा उनकी जो त्रिवली है उनसे भंवरों से युक्त नदी की शोभा वाली है ॥७९॥

अतिपीवरवक्षोजभारभङ्गुरमध्यभूः।
शिरीषदाम कौमल्यशालिनश्चतुरो भुजान् ॥८०॥

उनके स्तन खिले हुए फूल के समान झूलते हुए मोतियों की कान्ति से युक्त और अति स्थूल उनके भार से मध्यभाग झुका हुआ है, तथा शिरीष पुष्प के समान कोमल पत्र की आभा वाली उनकी चारों भुजाएं हैं ॥८०॥

केयूरकङ्कणश्रेणीमण्डितान्सोर्मिकाङ्गुलीन्।
वहन्ती परिसंमृष्टशङ्खसुन्दरकन्धरा ॥८१॥

बाजूबंद, कंगन, की पंक्तियों से मण्डित हाथों और अंगुलियों वाली उनकी हथेलियां हैं तथा वे अपने पति कामेश्वर शिव से अपनी शंख के समान सुन्दर ग्रीवा चिपकाए हुए हैं ॥८१॥

मुखदर्पणवृन्ताभचिबुका पाटलाधरा।
शुचिभिः पङ्क्तिबद्धैश्च विद्यारूपैर्विभास्वरैः॥८२॥

उनके मुखरूपी दर्पण में गुलाब के समान टोढ़ी और अधर अत्यंत सुशोभित हैं वे श्वेत पंक्तियां और विद्यारूप चमकते हुए॥८२॥

कुन्दकुड्मलसच्छायैर्दन्तैर्दर्शितचन्द्रिका।
स्थूलमौक्तिकसन्नद्धनासाभरणभासुरा॥८३॥

कुन्द फूल और चमेली के फूल के समान सुशोभित दांतों से चांदनी फैला रही हैं, मोटे मोटे मोतियों से युक्त अनेकों प्रकार के आभूषणों से नासिका के आभूषण (नथनी, वेसर आदि) आभा युक्त थीं॥८३॥

केतकान्तर्दलद्रोणीदीर्घदीर्घविलोचना।
अर्धेन्दुतुलिते फाले सम्यक्लृप्तालकच्छटा॥८४॥

केतकी (केवड़े) के पत्र के समान उनकी कमर हैं बड़ी बड़ी विशाल आंखें हैं तथा अर्धचन्द्रमा के समान (अष्टमी तिथि का चन्द्र) भाल में संवारे हुए केशों की शोभा बढ़ा रहे हैं॥८४॥ (4 अष्टमीचन्द्रबिभ्राजदलिकस्थलशोभिता श्री पादुकां पूजयामि नमः ल.स. नाम)

वालीवतंसमाणिक्यकुण्डलामण्डितश्रुतिः।
नवकर्पूरकस्तूरी सदामोदितवीटिका॥८५॥

उनके कान में माणिक्य जड़ा कुण्डल है अर्थात माणिक्य जड़ित कर्णाभूषण युक्त उनका कर्ण है उनके मुख में नवीन कर्पूर और कस्तूरी से सदैव सुगन्धयुक्त ताम्बूल, बीड़ा है॥८५॥

शरच्चारुनिशानाथमण्डलीमधुरानना।
चिन्तामणीनां सारेण क्लृप्तमचारुकिरीटिका॥८६॥

शरत्कालीन चन्द्रमण्डल के समान मधुर उनका मुखमण्डल है चिन्तामणियों के सार भाग से निर्मित जिनका किरीट है॥८६॥

स्फुरत्तिलकरत्नाभफालनेत्रविराजिता।
गाढान्धकार निविडश्यामकुन्तलसंहतिः॥८७॥

चमकते हुए तिलक रूप रत्न की आभा वाला मस्तक उस पर नेत्र विराजित है एवं गाढ़े काले अन्धकार से आवृत घर के अंधकार के समान उनके घुंघराले बालों की वेणी हैं॥८७॥

सीमन्तरेखाविन्यस्तसिन्दूरश्रेणिभासुरा।
स्फुरश्चन्द्रकलोत्तसा मदालोलविलोचना॥८८॥

मस्तक पर सीमन्त रेखा (मांग) सिन्दूर की पंक्ति चमक रही है, चमकती हुई चन्द्रिका के मतवाले उनके चञ्चल नेत्र हैं ॥८८॥

सर्वश्शृङ्गारवेपाढ्या सर्वाभरणमण्डिता।
समस्तलोकमाता च सदानन्दविवर्धिनी ॥८९॥

सम्पूर्ण समस्त श्रेष्ठ श्रृंगार वेश से सम्पन्न समस्त आभूषणों से सुसज्जित समस्त लोकों की माता, सदानंद का विवर्धन करने वाली अर्थात समस्त संसार के लिये सदैव आनंद का संवर्धन करने वाली हैं ॥८९॥

ब्रह्मा विष्णुगिरीशेशसदाशिवनिदानभूः।
अपाङ्गरिङ्खत्करुणा निर्झरीतर्पिताखिला ॥९०॥

वे भगवती ब्रह्मा, विष्णु, गिरीश, ईश और सदाशिव की निदान=मूल कारण हैं। वे सदा अपनी आंखों से बहती हुई करुणा की निर्झरी से समस्त प्राणिजगत का कल्याण करती हैं ॥९०॥

भासते सा भगवती पापघ्नी ललिताम्बिका।
अन्यदैवतपूजानां यस्याः पूजाफलं विदुः ॥९१॥

वे भगवती पापों का विध्वंस करने वाली ललिताम्बिका अपने रूप में सर्वत्र आभासित हो रही हैं, अन्य देवताओं की पूजा भी जिसकी पूजा का फल माना गया है ॥९१॥

यस्याः पूजाफलं प्राहुर्यस्या एव हि पूजनम्।
तस्याः श्रीललितादेव्या वर्णयामि कथं वपुः ॥९२॥

जिसकी पूजा का फल कहा गया है, वह फल जिसका पूजन हुआ है वही है ऐसी उन भगवती ललिता देवी के श्री विग्रह का वर्णन मैं कैसे कर सकता हूं, शक्ति मुझमें नहीं है ॥९२॥

वर्षकोटिसहस्रेणाप्येकांशो नहि वर्ण्यते।
वर्णना नाम वाग्रूपा वाचस्तस्यां कुतो गतिः ॥९३॥

करोड़ों वर्षों में भी एक भाग का भी वर्णन नहीं किया जा सकता वर्णन वाणी रूप है अर्थात वाणी से शब्दों से वर्णन हो सकता है यहां उस वाणी की कौन सी गति होगी कहा नहीं जा सकता ॥९३॥

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।
बहुना किमिहोक्तेन तत्त्वभूतमिदं शृणु ॥९४॥

क्योंकि समस्त वाणियां तो मन के साथ किसी विषय को प्राप्त न कर सकने के कारण निष्फल लौट आती हैं जब मन ही असमर्थ है तो वाणी भी कैसे समर्थ हो सकती है फिर भी इस तत्वभूत विषय को आप सुनो ॥९४॥

न पक्षपातान्न स्नेहान्न मोहाद्वा मयोच्यते।
सन्तु कल्पतरोः शाखा लेखिन्यस्तपसां निधे॥९५॥

मैं न किसी पक्षपात से न स्नेह से और न मोह से कह रहा हूं, वास्तविक बात मैं कह रहा हूं कि कल्पवृक्ष शाखा लेखिनी हो हे तपोनिधि॥९५॥

मषीपात्राणि सर्वेऽपि सप्त सन्तु महार्णवाः।
पञ्चाशत्कोटिविस्तीर्णा भूमिः पत्रत्वमृच्छतु॥९६॥

सातों महासमुद्र स्याही के पात्र हो जायें और पचास कोटि विस्तीर्ण भूमि कागज बन जाय॥९६॥

तस्य लेखनकालोऽस्तु परार्धाधिकवत्सरैः।
लिखन्तु सर्वे लोकास्तु प्रत्येकं कोटिबाहवः॥९७॥

लिखने का समय परार्ध काल से भी अधिक दिनों का हो जाये परार्ध (एक शंख वर्ष) और सभी लोक करोड़ों हाथों से लिखने लगे तो भी॥९७॥

सर्वे बृहस्पतिसमा वक्तारो यदि कुम्भज।
अथापि तस्याः श्रीदेव्याः पादाब्जैकाङ्गुलिद्युतेः॥९८॥

हे कुंभज! सभी बोलने वाले शब्दज्ञान में अर्थज्ञान में देवगुरु बृहस्पति के समान योग्यता एवं शक्ति रखते हों अर्थात् दैवी शक्ति सम्पन्न भी क्यों न हों तो भी उन श्री देवी के पदकमल की एक अंगुली की द्युति की सीमा नहीं बता सकते॥९८॥

सहस्रांशेष्वेकैकांशवर्णना नहि जायते।
अतो वाग्वृत्तिरखिला निष्फला तद्गुणस्तुतौ॥९९॥

भगवती की एक अंगुली की कान्ति के सहस्त्राशों में से एक अंश का भी वर्णन नहीं हो सकता अर्थात् उनके गुणों के विषय में जहां मन, प्राण, वाक् का प्रवेश ही नहीं है तो वर्णन वाणी का विषय कैसे हो सकता है॥९९॥

बिन्दुपीठस्य परितश्चतुरस्रतया स्थिता।
महामायायवनिका लम्बते मेचकप्रभा॥१००॥

बिन्दुपीठ के चारों ओर चतुरस्त्र के रूप में स्थित मेघों की प्रभा वाली महामाया रूपी पर्दा लटक रहा है॥१००॥

देव्या उपरिहस्तानां विंशतिद्वितयोद्धतम्।
इन्द्रगोपवितानं तु बद्ध त्रैलोक्यदुर्लभम्॥१०१॥

उन भगवती के ऊपरी खाली आकाश में चालीस हाथ ऊर्ध्व तीनों लोकों में दुर्लभ इन्द्र

ग्रोपवितान (तम्बू) तना हुआ है ॥१०१॥

तत्रालङ्कारजालं तु वर्तमानं मनोहरम्।
मद्वाणी वर्णयिष्यन्ती कण्ठ एव ह्रिया हता॥१०२॥

उस इन्द्र गोपवितान तम्बू में मनोहर अलंकारों का असीमित जाल अनेक प्रकार के आकारों में लटक रहा है, मेरी वाणी उन सभी का वर्णन किस तत्व से बने हैं, उनके इस आकार की सार्थकता इनमें कैसी है इत्यादि वर्णन मेरी वाणी करेगी तो मेरा कण्ठ ही जहां वैखरीवाणी है वह लज्जा से दब गया है॥१०२॥

सैव जानाति तत्सर्वं तत्रत्यमतुलं गुणम्।
मनसोऽपि हि दूरे तत्सौभाग्यं केन वर्ण्यते॥१०३॥

वहां के जितने भी गुण हैं उनको वे ही भगवती ललिता जानती हैं वहां उनकी गति भी नहीं पहुंच सकती उस सौभाग्य का वर्णन कौन कर सकता है॥१०३॥

इत्थं भण्डमहादैत्यवधाय ललिताम्बिका।
आविर्भूता चिदनलाद्धननिःशेषदानवा॥१०४॥

इस प्रकार भण्डासुर महादैत्य के वध के लिये प्रकट हुई श्री ललिताम्बिका देवी ने चिद्रूप अग्नि से समस्त दैत्यों को नष्ट कर दिया॥१०४॥

दिव्यशिल्पिजनैः क्लृप्तं षोडशक्षेत्रवेश्मितम।
अधिष्ठाय श्रीनगरं सदा रक्षति विष्टपम्॥१०५॥

ऐसी वे भगवती दिव्य शिल्पिजनों द्वारा सोलह क्षेत्र वाले घरों को अधिष्ठित कर सदैव श्रीनगर विष्टप (आसन) की रक्षा करती हैं॥१०५॥

इत्थमेव प्रकारेण श्रीपुरान्यन्यकान्यपि।
न भेदः कोपि विन्यासे नाममात्रे पुरां भिदा॥१०६॥

इसी प्रकार से अन्य श्रीपुर भी हैं उनमें कोई भेद नहीं है केवल नाममात्र भेद से वे पुर हैं॥१०६॥

श्रीपुराण्यखिलान्येव नित्यानि ललितेच्छया।
अवकाशमनन्तानां भक्तानां च वितन्वते॥१०७॥

भगवती ललिताम्बा की इच्छा से समस्त श्रीपुर नित्य हैं अनन्त भक्तजनों को अवसर प्रदान करते हैं दर्शनादिका॥१०७॥

नानावृक्षमहोद्यानमारभ्येति क्रमेण ये।
वदन्ति श्रीपुरकथां ते यान्ति परमां गतिम्॥१०८॥

जो मनुष्य अनेकों प्रकार के वृक्षों महोद्यानों से आरंभ करके इस क्रम से श्रीपुर की कथा का वर्णन करते हैं वे परमगति (मोक्ष) को प्राप्त करते हैं ॥१०८॥

आकर्णयन्ति पृच्छन्ति वितन्वन्ति च ये नराः।
ये पुस्तके धारयन्ति ते यान्ति परमां गतिम्॥१०९॥

तथा जो मनुष्य इस कथा को सुनते हैं, पूछते हैं, जिज्ञासा करते हैं, इस कथा का चयन करते हैं प्रकारान्तरों से वृद्धि करते हैं, जो पुस्तक में धारण करते हैं अर्थात् इसका लेखन करते हैं वे परमगति (मोक्ष) को प्राप्त करते हैं ॥१०९॥

ये श्रीपुरप्रकारेण तत्तत्सालान्विभेदतः।
कृत्वा शिल्पिजनैर्दिव्यं श्रीदेव्यायतनं महत्।
संपादयन्ति सद्भक्तास्ते यान्ति परमां गतिम्॥११०॥

जो मनुष्य श्रीपुर के प्रकार को पढ़कर उसके अनुसार स्थानों का विभेद कर शिल्पकारों द्वारा श्रीदेवी के महान आयतन को बनवाते हैं वे मनुष्य परमगति को प्राप्त होते हैं ॥११०॥

इति श्रीब्रह्माण्डपुराणे उत्तरखण्डे हयग्रीवागस्त्यसंवादे श्रीललितोपाख्याने त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

॥श्रीमन्महागणाधिपतये नमः।।

श्रीमाताललिताम्बायै नमः श्रीपादुकां पूजयामि नमः॥
ॐ वन्दे गुरुपदद्वन्द्वं अवाङ्मनसगोचरम्॥
रक्तशुक्ल प्रभामिश्रमतर्क्यं त्रैपुरं महः॥
ॐ आराध्यदेवं भक्तानां कलिदोषविनाशकम्॥
वन्दे श्री गिरिजानन्दं शारदाश्रीमठाधिपम्।।
ॐ अखण्डं यस्यज्ञानञ्च भक्तिर्यस्यानपायिनी।।
शारदाज्योतिरीशस्य दर्शनं (पूजनं, वन्दनं) शुभमस्तुनः।।

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ 83 श्लोकात्मक

॥मन्त्रराजतत्साधनादिकथनम्॥

श्री अगस्त्य जी बोले!

श्रुतमेतन्महावृत्तमाविर्भावादिकं महत् ।
भण्डासुरवधश्चैव देव्याः श्रीनगरस्थितिः॥१॥

हे हयग्रीव जी! मैंने आपके श्रीमुख से भगवती श्री ललिताम्बा जी के महान् श्रीचक्र के (चिन्तामणि गृहरूप) आविर्भावादिक को तथा महादैत्य भण्डासुर के ससैन्य वध वृत्तांत को एवं श्रीनगर की स्थिति का वर्णन सुना॥१॥

इदानीं श्रोतुमिच्छामि तस्या मन्त्रस्य साधनम्।
तद्भक्तानां लक्षणं च सर्वमेतन्निवेदय॥२॥

इस समय मैं उन भगवती के उस अलौलिक सबमें सर्वोपरि मन्त्र का साधन क्रम तथा भगवती के भक्तों के लक्षण आदि सभी सुनना चाहता हूं, कृपया वह सभी मुझे सुनाईयेगा॥२॥

श्री हयग्रीव जी बोलेः-

सर्वेभ्योऽपि पदार्थेभ्यः शाब्दं वस्तु महत्तरम्।
सर्वेभ्योऽपि हि शब्देभ्यो वेदराशिर्महामुने॥३॥

हे अगस्त्य जी! सभी पदार्थों में शब्द रूप वस्तु महान् है, तथा समस्त शब्दों में वेद राशि महान् है॥३॥

सर्वेभ्योऽपि हि वेदेभ्यो वेदमंत्रा महत्तराः।
सर्वेभ्यो वेदमंत्रेभ्यो विष्णुमंत्राः महत्तराः॥४॥

सभी वेदों में वेदमन्त्र महत्वशाली है, सभी वेद मन्त्रों से विष्णुमन्त्र महत्वशाली हैं॥४॥

तेभ्योऽपि दौर्गा मन्त्रास्तु महान्तो मुनिपुङ्गव।
तेभ्योऽपि गाणपत्यास्तु मन्त्रा दिव्या महत्तराः॥५॥

उन विष्णु मन्त्रों से दुर्गामन्त्र महत्वशाली हैं उन दुर्गामन्त्रों में भी श्रीगणेशमन्त्र महान् है॥५॥

तेभ्योऽप्यर्कस्य मन्त्रास्तु तेभ्यः शैवा महत्तराः।
तेभ्योऽपि लक्ष्मीमन्त्रास्तु तेभ्यः सारस्वता वराः॥६॥

उन गणेश मन्त्रों से सूर्य के मन्त्र महत्तर हैं सूर्य मन्त्रों से भी शैव मन्त्र श्रेष्ठतर है शैव मन्त्रों से भी महत्तर लक्ष्मी मन्त्र तथा लक्ष्मी मन्त्रों से भी अधिक माहात्म्यशाली सारस्वतमन्त्र होते हैं महत्वपूर्ण॥६॥

तेभ्योऽपि गिरिजामन्त्रास्तेभ्यश्चाम्नायभेदजाः।
सर्वाम्नायमनुभ्योऽपि वाराहीमनवो वराः॥७॥

उन सभी मन्त्रों से गिरिजा मन्त्र महत्वशाली हे उनके बाद आम्नाय भेद से (पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, ऊर्द्व, अनुत्तर) श्रेष्ठ हैं उन आम्नाय भेद से युक्त मन्त्रों से श्रेष्ठ वाराहीमन्त्र महत्तर हैं॥७॥

तेभ्यः श्यामामनुवरा वरिष्ठा इल्वलान्तक।
तेभ्योऽपि ललितामन्त्रा दशभेदविभेदिताः॥८॥

उप वाराही मन्त्रों से महत्तर मन्त्र श्यामा भगवती के मन्त्र हैं, हे इल्वलांतक! उन श्यामा मन्त्रों से अधिक महत्वशाली ललितामन्त्र जो दश भेदों में विभक्त है वे हैं॥८॥

तेषु द्वौ मनुराजौ तु वरिष्ठौ विन्ध्यमर्दन।
लोपामुद्राकामराजाविति ख्यातिमुपागतौ॥९॥
हादिस्तु लोपामुद्रा स्यात्कामराजस्तु कादिकः।
हंसादेर्वाच्यतां यातः कामराजमहेश्वरः॥१०॥

उन दशविध ललिता मन्त्रों में हे विन्ध्यदमर्दन! दो मन्त्र विशिष्ट हैं वे हैं एक है लोपामुद्रा मन्त्र हादि (हसकल ह्रीं हसकहल ह्रीं सकल ह्रीं) दूसरा है- कामराज मंत्रकादि (कएईल ह्रीं हसकहल ह्रीं सकल ह्रीं श्रीं) हदिलोपामुद्रा (श्री अगस्त्य जी की धर्म पत्नी) मन्त्र है और कादि कामराज मन्त्र है इस मन्त्र के ॠषि कामदेव हैं ये दो मंत्र सर्वश्रेष्ठ हैं उनसे ऊपर कोई मन्त्र नहीं है। हंसादि मंत्र से कामराज महेश्वर ने वाच्यता को प्राप्त किया है॥९,१०॥

स्मरादेर्वाच्यतां याता देवी श्रीललिताम्बिका।
हादिकाद्योर्मन्त्रयोस्तु भेदो वर्णत्रयोद्भवः॥११॥

स्मरादि से श्री ललिताम्बिका ने वाच्यता प्राप्त की है हादि और कादि मंत्रों से तीन वर्णों का उद्भव हुआ॥११॥

तयोस्तु कामराजोऽयं सिद्धिदो भक्तिशालिनाम्।
शिवेन शक्त्या कामेन शक्त्या चैव तु मायया॥१२॥

उन दोनों में (हादि कादि में) यह कामराज मंत्र भक्तिशालियों को सिद्धि देते हैं शिव ने शक्ति से, काम ने शक्ति से और माया से॥१२॥

हंसेन भृगुणा चैत्र कामेन शशिमौलिना।
शक्रेण भुवनेशेन चन्द्रेण च मनोभुवा॥१३॥

हंस ने भृगुद्वारा काम ने शशिमौलि से इन्द्र ने भुवनेश से और मनोभव ने चन्द्रमा से॥१३॥

क्षित्या हृल्लेखया चैत्र प्रोक्तो हंसादिमन्त्रराट्।
कामादिमन्त्रराजस्तु स्मरयोनिश्रियो मुखे॥१४॥

कामादि मंत्र राज को स्मरयोनि वाला तथा लक्ष्मी के मुख वाला कहा है॥१४॥ (क्लीं ह्रीं श्री स्मरयोनि श्री)

पञ्चत्रिकमहाविद्यां ललिताम्बाप्रवादिकाम्।
ये जपन्ति महाभागास्तेषां सर्वत्र सिद्धयः॥१५॥

पंचत्रिक (पंचदशी मंत्र) महाविद्या वाले ललिताम्बा के प्रवाचिक मंत्र को जो महाभाग साधक जपते हैं उनके लिये सर्वत्र सिद्धियां हैं॥१५॥

सद्गुरोस्तु मनुं प्राप्य त्रिपञ्चार्णपरिष्कृतम्।
सम्यक्संसाधयेद्विद्वान्वक्ष्यमाणप्रकारतः॥१६॥

सद्गुरु से मंत्र को प्राप्त कर जो पंचदशी मंत्र कहा गया है, दीक्षा के बाद सम्यक रूप से विद्वान् (विद्या, शक्ति मंत्र युक्त विद्वान्) (त्रिशती माहात्य में कहा गया हैः- शिल्पादि ज्ञानयुक्तेविद्वच्छब्दः प्रयुज्यते। मौक्षैकहेतुविद्या सा श्री विद्यैवन संशयः।।84।। तस्माद् विद्याविदेवात्र विद्वान् विदवाजितीर्यते। स्वय विद्याविशेषज्ञो विद्यामाहात्म्यवेद्यपि।।85।।) कहे जाने वाले क्रम से आराधना करे॥१६॥

तत्क्रमं तु प्रवक्ष्यामि सावधानो मुने शृणु॥१७॥

अगस्त्य जी ! वह क्रम में आपके सामने कहूंगा आप सावधानी से सुनियेगा॥१७॥

प्रातरुत्थाय शिरसि स्मृत्वा कमलमुज्वलम् ।
सहस्रपत्रशोभाढ्यं सकेसरसुकर्णिकम्॥१८॥

साधक सद्गुरु से पंचदशी मंत्र प्राप्त कर प्रातः (ब्रह्ममुहूर्त 5 बजे) निद्रा त्यागकर अपने ब्रह्मरन्ध्र में स्त्रहस्त्रदल कमल जो तेजसमुज्ज्वल है उसका ध्यान करे वह कैसा है, वह सहस्त्रपत्रों से भरापूरा है और पत्रों के केन्द्र स्थान में सुन्दर वर्ण केसर युक्त है॥१८॥

तत्र श्रीमद्गुरुं ध्यात्वा प्रसन्नं करुणामयम्।
ततो बहिर्विनिर्गत्य कुर्याच्छौचादिकाः क्रियाः॥१९॥

उस सहस्त्रदल कमल में करुणापूर्ण प्रसन्न गुरुवर्य का ध्यान कर के मानसिक पंचोंपचारों से पूजन चिन्तन करके शयन स्थान से बाहर आकर आरंभ में शौचाादि क्रियाएं सम्पन्न करे॥१९॥

अथागत्य च तैलेन सामोदेन विलेपितः।
उद्धर्तितश्च सुस्नातः शुद्धेनोष्णेन वारिणा॥२०॥

शौचाादि से निवृत्त होकर स्नानगृह में तैलाभ्यंग (उबटन आदि) करके शुद्ध ताजे उष्णजल से अच्छी तरह स्नान करे॥२०॥

आपः स्वभावतो मेध्याः किं पुनर्वह्निसंयुताः।
तस्मादुष्णोदके स्नायात्तदभावे यथोदकम्॥२१॥

हे मुने! जल स्वभाव से ही पवित्र होता है यदि उस जल का संयोग अग्नि से हो जाय तो वह अत्युत्तम होता है, क्योंकि जल में आगन्तुक काई आदि दोष भी आ जाते हैं इसलिये उस जल को अग्नि से तपा लेना चाहिए यदि यह सुविधा न हो तो शुद्ध जल से ही स्नान करें॥२१॥

परिधाय पटौ शुद्धौ कौसुम्भौ वाथवारुणौ।
आचम्य प्रयतो विद्वान हृदि ध्यायन्पराम्बिकाम्॥२२॥

स्नान के बाद शुद्ध धुले नील रहित वस्त्र या कोशे के वस्त्र या अरुण वर्ण के धौत उप वस्त्र धारण कर आचमन कर (आचमन करने में फुरकने की आवाज नहीं होना चाहिए, आचमन जल मंत्र पूर्वक ब्राह्मण हृदय, क्षत्रिय कंठतक वैश्य जिह्वा के अन्तक जल पहुंचे ऐसा नियम निर्देश शास्त्रों में मिलता है) विद्वान अर्थात पंचदशी विद्या (मंत्र) से दीक्षित को विद्वान कहा गया है यथार्थरूप में हृदय में भगवती का ध्यान करते हुए॥२२॥

ऊर्ध्वपुण्ड्रं त्रिपुण्ड्रं वा पट्टवर्धनमेव वा।
अगस्त्यपत्राकारं वा धृत्वा फाले यथोचितम्॥२३॥

इसके बाद अपने मस्तक पर चंदन का ऊर्ध्वपुण्ड्र (U) या त्रिपुण्ड्र (≡) या पूरे माथे पर चन्दन लेप या अगस्त्य के पत्र के आकार जैसा चन्दन लेप कर तिलक धारण करें॥२३॥

चारुकर्पूरकस्तूरीचन्दनादिविलेपितः।
भूषणैर्भूषिताङ्गश्च चारुशृङ्गारवेषधृक्॥२४॥

सुगन्धित कर्पूर कस्तूरी केशर चन्दनादि लेप से युक्त आभूषणों से आभूषित होकर सुन्दर वेश धारण कर॥२४॥

आमोदिकुसुमस्त्रग्भिरवतंसितकुन्तलः।
सङ्कल्पभूषणो वाथ यथाविभवभूषणः।
अन्तर्बहिश्च शुद्धात्मा सन्ध्यावन्दनमाचरेत्॥२५॥

सुगन्धित पुष्पों की माला से आभूषित अथवा यथोपलब्ध वस्तु धारण कर अन्तर बाहर शुद्धात्मा होकर सन्ध्यावंदन करे॥२५॥

अश्वत्थपत्राकारेण पात्रेण सकुशाक्षतम्।
सपुष्पचन्दनं चार्घ्यं मार्ताण्डाय समुत्क्षिपेत्॥२६॥

पीपल के पत्ते जैसे आकार वाला अर्ध्यपात्र उसमें जल कुश और अक्षत डालकर तथा पुष्प और चन्दन डाल भगवान मार्तण्ड को अर्ध्य ओर उपस्थान करें॥२६॥

तथार्घ्यं भानवे दत्त्वा ललितायास्त्रिरर्घ्यकम्।
तर्पयित्वा यथाशक्ति मूलेन ललितेश्वरीम्॥२७॥

सूर्य को अर्ध्य देने और उपस्थान करने के बाद भगवती ललिताम्बा को तीन अर्ध्य प्रदान करें तथा यथाशक्ति तर्पण करके मूलमन्त्र से भगवती का तर्पण करें॥२७॥

देवर्षिपितृवर्गांश्च तर्पयित्वा विधानतः।
मौनी विशुद्धहृदयः प्रविश्य मुखमन्दिरम्॥२८॥

फिर देव, ऋषि, पितृ वर्ग का तर्पण विधानुसार करके प्रमुख मन्दिर में मौनी होकर शुद्ध हृदय (रागद्वेष रहित) प्रवेश करें॥२८॥

न्यासखण्डे वक्ष्यमाणान्कृत्वा न्यासाननुक्रमात्।
मृद्वासने समासीनो ध्यायेच्छ्रीनगरं महत्॥२९॥

न्यास खण्ड में कहे जाने वाले न्यासों को यथोपदेश न्यास करें कोमल ऊर्णासन या रेशमी रक्तवर्ण आसन में आसीन होकर विशाल श्रीनगर अर्थात श्रीचक्र का ध्यान करें॥२९॥

नानावृक्षमहोद्यानमारभ्य ललितावधि।
ध्यायेच्छ्रीनगर दिव्यमबहिर्मानसः शुचिः॥३०॥

तथा साधक नाना वृक्षोद्यान से लेकर श्री साधना में नवकुल वृक्ष हैं वट, पीपल, ऊमर, नीम, कदम्ब, इमली, (तिंतिड़ी), विभीतक, श्वेतार्क, पलासों इनका ध्यान करते हुए भगवती तक तथा दिव्य बाहर और भीतर से पवित्र भाव में श्रीनगर (श्री चक्र) का ध्यान करें॥३०॥

पूजाखण्डोक्तमार्गेण पूजां कृत्वा विचक्षणः।
अक्षमालां समादाय चन्द्रकस्तूरिवासिताम्॥३१॥

पूजा खंड में कहे गये क्रमानुसार बुद्धिमान पूजा करके फिर अक्षमाला (अ से लेकर क्ष पर्यन्त सीधा और उल्टा गिनने से एक सौ तथा अकचटतपरादि पयश 8 वर्ग मिलाकर 108 माला अक्षमाला है) उसी अक्षमाला के कामना भेद से विभिन्न वस्तुओं के दानों की भी अक्षमाला ही संज्ञा होती है जो अक्ष माला चन्दन कर्पूर कस्तूरी से सुगन्धित हो ॥३१ ॥

उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा जपेत्सिहासनेश्वरीम्।
षट्त्रिशलक्षसख्या तु जपेद्विद्या विचक्षणः ॥३२॥

विद्वान् साधक उत्तरदिशा की ओर या पूर्व दिशा की ओर मुख करके सिंहासनेश्वरी का ध्यान करते हुए छत्तीस लाख की संख्या में पंचदशीविद्या का जप करें (विशेषः- शास्त्रोक्ति है पुरश्चरण कलियुग में चतुर्गुणित होता है, ''कलौचतुर्गुणं प्रोक्तम'' वर्तमान में शरीर समय क्षमता तथा समय को देखते हुए गुरुजनों ने रास्ता बताया है कि नवलाख जप का संकल्प लेकर चलने चतुर्गुणित 36 लाख हो जाता है, माला जप में गुरियां आपस में न टकराएं जृम्भा (जंभाई) आदि से बचें आचमन में श्रोत्राचमन भी किया जाता है अर्थात दाहिने कर्णस्पर्श ॥३२ ॥

तद्दशांशस्तु होमः स्यात्तद्दशांशस्तु तर्पणम्।
तद्दशांशं ब्राह्मणानां भोजनं समुदीरितम् ॥३३॥

जप का दशमांश होम, होम की संख्या का दशमांश तर्पण, तर्पण की संख्या का दशमांश ब्राह्मण भोजन यदि क्रम एक पुरश्चरण का कहा गया है। विशेषः- 36 लाख का दशमांश 36 हजार एक वाक्य है उसमें यह कहा है कि दशमांश का भी दशमांश ले सकते हैं तो दशमांश 36 हजार का दशमांश, 36 सौ होगा होम, 36 सौ का दशमांश 360 होगा इसमें तर्पण तथा 36 सौ का दशमांश होगा 36 इतने ब्राह्मणों का भोजन) ॥३३ ॥

एवं संसिद्धमंत्रस्तु कुर्यात्काम्यजपं पुनः।
लक्षमात्रं जपित्वा तु मनुष्यान्वशमानयेत् ॥३४॥

पुरश्चरण विधान का पालन करके जिस कामना से जप करेगा उसे सफलता मिलेगी यथा-एक लाख जप करके विद्वान् मनुष्यों को वश में कर लेता है ॥३४ ॥

लक्षद्वितयजापेन नारीः सर्वा वशं नयेत्।
लक्षत्रितयजापेन सर्वान्वशयते नृपान् ॥३५॥

दो लाख जप करने से समस्त नारी जगत को वश में कर लेता है यदि तीन लाख जप कर ले तो समस्त नरेशों को वश में कर लेता है ॥३५ ॥

चतुर्लक्षजपे जाते क्षुभ्यन्ति फणिकन्यकाः।
पञ्चलक्षजपे जाते सर्वाः पातालयोषितः॥३६॥

चार लाख जपने से नाग कन्याएं क्षुभित होती है, पांच लाख जप करने से समस्त पाताल वासिनी नारियां वशीभूत होती हैं॥३६॥

भूलोकसुन्दरीवर्गो वश्यः षड्लक्षजापतः।
क्षुभ्यन्ति सप्तलक्षेण स्वर्गलोकमृगीदृशः॥३७॥

छह लाख जप से भूलोक स्थित समस्त नारीवर्ग वशीभूत हो जाता है सात लाख जप से स्वर्गलोक की स्वर्ग अप्सराएं वशीभूत होती हैं॥३७॥

देवयोनिभवाः सर्वेऽप्यष्टलक्षजपाद्वशाः।
नवलक्षेण गीर्वाणानखिलान्वशमानयेत्॥३८॥

देव योनियों में जन्म लेने वाले समस्त प्राणिवर्ग आठ लाख जप से वशीभूत होते हैं नव लाख जप से समस्त वाणियों को वश में किया जा सकता है॥३८॥

दशलक्षेण शक्रादिदिक्पालान्वशमानयेत्।
लक्षैकादशजापेन ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान्॥३९॥

दश लाख जप के प्रभाव से इन्द्रादि दशों दिक्पालों को वश में कर लेता है तथा एकादश लाख जप काम्य जप से ब्रह्मा, विष्णु, और महेश को अनूकूल बना लेता है॥३९॥

लक्षद्वादशजापेन सिद्धीरष्टौ वशं नयेत्।
इन्द्रस्येन्द्रत्वमेतेन मन्त्रेण ह्यभवत्पुरा॥४०॥

बारह लाख जप से आठों सिद्धियों अणिमादि को वश में ले आता है। प्राचीन काल में इसी मंत्र के जप के प्रभाव से इन्द्र का इन्द्रत्व इसी मंत्र के प्रभाव से हुआ था, अर्थात इसी मंत्र के प्रभाव से सामान्य व्यक्ति इन्द्र बना, बिष्णु का विष्णु होना इसी मंत्र से तथा इसी मंत्र से शिव भगवान शिव बने॥४०॥

विष्णोर्विष्णुत्वमेतेन शिवस्य शिवतामुना।
इन्दोश्चन्द्रत्वमेतेन भानोर्भास्करता मुने॥४१॥

(इस श्लोक की ऊपरी लाईन का अर्थ ऊपर 40वें श्लोक में है) इन्द्र का इन्द्रत्व चन्द्र का चन्द्रत्व तथा भानु (सूर्य) का भानुत्व भी इसी मंत्र के प्रभाव से हुआ॥४१॥

सर्वेषामपि देवानां तास्ताः सिद्धय उज्ज्वलाः।
अनेन मन्त्रराजेन जाता इत्यवधारय॥४२॥

समस्त देवताओं का भी देवत्व और वे सभी उज्ज्वल सिद्धियां इसी मंत्र राज से ही सम्पन्न हुईं ऐसा निश्चय करो ॥४२ ॥

य एतन्मन्त्रजापी तु सर्वपापविवर्जितः।
त्रैलोक्यसुन्दराकारो मन्मथेन समाकृतिः ॥४३ ॥

इस मंत्र राज का जप करने वाला तो समस्त पापों से विरहित हो जाता है, और त्रैलोक्य में सबसे सुन्दर आकृति वाला मन्मथ के समान आकृति वाला हो जाता है ॥४३ ॥

सर्वाभिः सिद्धिभिर्युक्तः सर्वज्ञः सर्वपूजितः।
दर्शनादेव सर्वेषामन्तरानन्दपूरकः ॥४४ ॥

भगवती के मंत्र जापक में जो विशिष्टताएं प्रकट होती हैं उस विषय में भगवान हयग्रीव श्री अगस्त्य जी से कह रहे हैं। हे मुने ! पंचदशी मंत्रजापक समस्त सिद्धियों से सम्पन्न हो जाता है वह सर्वज्ञ होता है समस्त प्राणियों से पूजित होता है, उसके केवल दर्शन मात्र से सभी का अन्तस्तल आनंद से भरपूर होता है ॥४४ ॥

वाचा वाचस्पतिसमः श्रिया श्रीपतिसन्निभः।
बले मरुत्समानः स्यात् स्थिरत्वे हिमवानिव ॥४५ ॥

वह वाणी से वाचस्पति के समान श्रीसमान श्री से श्रीपति के समान तथा बल में मरुद्वायु के समान एवं स्थैर्य में हिमालय के समान ॥४५ ॥

औन्नत्ये मेरुतुल्यः स्याङ्गांभीर्येण महार्णवः।
क्षणात्क्षोभकरो मूर्त्या ग्रामपल्लीपुरादिषु ॥४६ ॥

ऊंचाई में मेरू के समान, गम्भीरता में महासमुद्र जैसा एकक्षण में यदि क्षोभ युक्त हो जाये तो वह गांव मुहल्ला, नगरादि में क्षोभ उत्पन्न कर सकता है ॥४६ ॥

ईषद्भ्रूभङ्गमात्रेण स्तम्भको जृम्भकस्तथा।
उच्चाटको मोहकश्च मारको दुष्टचेतसाम् ॥४७॥

किंचित भ्रूभङ्ग मात्र से लोगों की गति में अवरोध, लोगों में आलस्य वृत्ति बढ़ा देना, लोगों में उच्चाटन (भगाना) और मोहित कर देना तथा दुष्ट चित्त वालों का मारक हो जाता है ॥४७ ॥

क्रुद्धः प्रसीददति हठात्तस्य दर्शनहर्षितः।
अष्टादशसु विद्यासु निरूढिमधिगच्छति ॥४८ ॥

क्रोधी व्यक्ति उसे देखते ही प्रसन्न हो जाता है, वह अठारहों विद्याओं में वह प्रसिद्धि प्राप्त कर लेता है ॥४८ ॥

मन्दाकिनीपुरसमा मधुरा तस्य भारती।
न तस्याविदितं किंचित्सर्वशास्त्रेषु कुम्भज॥४९॥

हे कुम्भज! उसकी वाणी मंदाकिनी गंगा के समान मधुर हो जाती है, सम्पूर्ण शास्त्रों में उसके लिये कोई भी विषय अज्ञात नहीं रहता॥४९॥

दर्शनानि च सर्वाणि कर्तुं खण्डयितुं पटुः।
तत्त्वं जानाति निखिलं सार्वज्ञं चाधिगच्छति॥५०॥

समस्त दर्शन शास्त्र निर्मित करने में तथा खण्डन में भी कुशल तथा समस्त तत्वों का ज्ञाता तथा वह सर्वज्ञता को प्राप्त कर लेता है॥५०॥

सदा दयार्द्रं हृदयं तस्य सर्वेषु जन्तुषु।
तत्कोपाग्नेर्विषयतां गन्तुं नालं जगत्रयम्॥५१॥

उस साधक का समस्त प्राणियों के प्रति दयार्द्र हृदय हो जाता है उसके कोपाग्नि की ज्वाला में जगत्त्रय भस्म हो सकता है॥५१॥

अरण्ये पट्टणे वापि देवालयमठेषु वा।
यत्र कुत्रापि तिष्ठन्तं तं धावन्ति मृगीदृशः॥५२॥

इस मन्त्रराज का जप करने वाले के दर्शन अवसर पर वह चाहे तो कहीं पर भी स्थित हो वन में, नगर में या देवालय में या मठों में कहीं भी हो महिलाएं उन्मत्त होकर उसकी ओर ही दौंड़ती हैं॥५२॥

वात्याहतं यथा पाण्डुपत्रं भ्रमति भूतले।
तद्वदभ्रमन्ति चित्तानि दर्शने तस्य सुभ्रुवाम्॥५३॥

वायु से गिराए गए पीले पत्ते भूतल में उड़ते रहते हैं वैसे ही नारियों के हृदय उसके दर्शनमात्र से कम्पित होते रहते हैं॥५३॥

वनितानवनीतानां विद्रावणमहानलम्।
तं सेवन्ते समस्तानां विद्यानामपि पङ्क्तयः॥५४॥

संसार में नवनीत के समान महिलाओं के कोमल हृदय को द्रवित करने में अग्नि के समान समस्त विद्याओं की पंक्तियां भी उस मंत्र जापक की सेवा अर्थात् अनुकूलता आदि निर्णयों का प्रयोग करती हैं, मानों उसकी सेवा कर रही हों॥५४॥

चन्द्रार्कमण्डलद्वन्द्वकुचमण्डलशोभिनी।
त्रिलोकीललना तस्य दर्शनादनुरज्यति॥५५॥

हे मुने! चन्द्र और सूर्य मण्डल इन दोनों मण्डलों के मानों दो स्तन मण्डल हों ऐसी त्रिलोकी रूपिणी ललना जिसके लिये कामना करती है॥५५॥

अन्यासां तु वराकीणां कि वक्तव्यं तपोधन।
पट्टणेषु च वीथीषु पानगोष्ठीषु वेश्मसु॥५६॥
धिष्ण्येषु देवावासेषु मठेष्वाश्रमधामसु।
अन्तःपुरेषु मार्गेषु सुपर्वोपवनेषु च॥५७॥
तीर्थेषु गिरिकूटेषु गङ्गाद्यासु नदीषु च।
तत्कीर्तिघोषणा पुण्या सदा घुमघुमायते॥५८॥

जब त्रिलोकी का यह हाल हो जाता है, तो अन्य बेचारी महिलाओं की क्या कथा नगरों में, गलियों में, मद्यपान गोष्ठी में, घरों में यज्ञ स्थलों में, देवालयों में मठों में आश्रम क्षेत्रों में अन्तःपुरों में मार्गों में तथा सुन्दर पर्वकालों में एवं उपवनों में तीर्थों में गिरिशिखरों में गङ्गा आदि देवनदियों में उनके माहात्म्य की घोषणा सदैव ध्वनित होती रहती है॥५६,५७,५८॥

तस्य दर्शनतः पापजालं नश्यति पापिनाम्।
तद्गुणा एव घुष्यन्ते सर्वत्र कविपुंगवैः॥५९॥

उस देवीभक्त के दर्शन मात्र से पापियों के पाप जाल छिन्न भिन्न हो जाते हैं तत्सम्बन्धी गुणों की ही सर्वत्र श्रेष्ठ कवियों द्वारा घोषणा होती है॥५९॥

भिन्नैर्वर्णैरायुधैश्च भिन्नैर्वाहनभूषणैः।
ये ध्यायन्ति महादेवीं तास्ताः सिद्धीर्भजन्ति ते॥६०॥

भिन्न वर्णों से युक्त आयुधों से भिन्न वाहनों से, भिन्न भूषणों से जो भक्त महादेवी का चिन्तन करते हैं वे उन उन सिद्धियों को प्राप्त कर लेते हैं॥६०॥

महामन्त्रराज के तीनों खण्डों (कादि, हादि, सादि) शरीर में चिन्तन यथाः-

मनोरादिमखण्डस्तु कुन्देन्दुधवलद्युतिः।
आहृच्चक्रं ज्वलज्ज्वालश्चिन्तनीयस्तु मूलके॥६१॥ (कादिकूट)

पंचदशी महामंत्र का प्रथम खण्डर (4 कएईल ह्रीं) यह कादिकूट कुन्द पुष्प के समान श्वेत वर्ण या चन्द्रमा की श्वेतद्युति वाला है, हृदय चक्र (अनाहत) में यह प्रथम कादिकूट प्रज्वलितज्वाला युक्त है इसका चिन्तन मूलाधार (वं शं षं सं) चक्र में करें॥६१॥

इन्द्रगोपकसंकाशो द्वितीयो मनुखण्डकः।
विभावनीयो हृच्चक्र आफालान्तं ज्वलच्छिखः॥६२॥ (हादिकूट)

पंचदशी महामंत्र का द्वितीय खंड (4 हसकहल ह्रीं) यह हादिकूट इन्द्रगोप के वर्ण के समान रक्तवर्ण वाला जलती हुई अग्नि शिख के समान हृदय चक्र से लेकर भालपर्यन्त चिन्तन करना चाहिये ॥६२ ॥

अथ लालाटपट्टस्थद्विदलाम्बुजकोटरे।
विभावनीयस्तार्तीयखण्डो दुरितखण्डकः ॥६३ ॥ (सादिकूट)

इसके अनन्तर दुरितों का खण्डन करने वाला पंचदशी महामंत्र का तृतीय खण्ड है जो सादिकूट (4 सकल ह्रीं, श्रीं) है जो चन्द्रमा की कान्ति वाला शुभ्रवर्ण बिम्ब है मुक्ति के लिये इसका ध्यान किया जाता है यह कूट भ्रूमध्य द्विदल (हं कं) में ध्येय है ॥६३ ॥

मुक्तौ ध्येया शशिज्योत्स्ना धवलाकृतिरम्बिका।
रक्तसन्ध्यकरोचिः स्याद्वशीकरणकर्मणि ॥६४ ॥

मुक्ति कामना में चन्द्रमा की चन्द्रिका जैसे शुभ्राकृति भगवती का ध्यान करें, वशीकरण कर्मों में रक्तवर्ण संध्या की लाली जैसी छवि का चिन्तन भगवती का करें ॥६४ ॥

कवित्वे विशदाकारा स्फटिकोपलनिर्मला।
धनलाभे सुवर्णाभा चिन्त्यते ललिताम्बिका ॥६५ ॥

कवित्व की कामना में स्फटिकमणि के निर्मल विशद आकार वाली भगवती का चिन्तन करें, धन लाभ के लिये भगवती ललिताम्बिका का सुवर्ण जैसी आभा का चिन्तन करें ॥६५ ॥

सर्वसंपत्तिलाभे तु श्यामलाङ्गी विचिन्त्यते।
नीला च मूकीकरणे पीता स्तम्भनकर्मणि ॥६६ ॥

समस्त सम्पत्ति लाभ की कामना में भगवती का श्यामलांगी रूप में चिन्तन मूकीकरण में नीलवर्णा तथा स्तम्भनकर्म में पीतवर्णा का ध्यान ध्यान करें ॥६६ ॥

आमूलमाब्रह्मबिलं ज्वलन्माणिक्यदीपवत्।
ये ध्यायन्ति महःपुञ्जं ते स्युः संसिद्धसिद्धयः ॥६७ ॥

जो मनुष्य जलते हुए माणिक्य दीप के समान आमूल ब्रह्मयोनि महापुञ्ज का ध्यान करते हैं वे समस्त सम्यकरूप से संसिद्ध सिद्धियों को प्राप्त करते हैं ॥६७ ॥

एवं बहुप्रकारेण ध्यानभेदेन कुम्भज।
विभावयन्तः श्रीदेवीं भजन्ते महतीं श्रियम् ॥६८ ॥

हे कुम्भज! इस प्रकार से एवं बहुत प्रकारों से ध्यान भेद से श्री देवी ललिताम्बा का ध्यान करते हैं वे महती लक्ष्मी को प्राप्त करते हैं ॥६८ ॥

प्राप्यते सद्भिरेवैषा नासद्भिस्तु कदाचन।
यैस्तु तप्तं तपस्तीव्रं तैरेषात्मनि धीयते॥६९॥

यह लक्ष्मी सज्जनों मर्यादानिष्ट साधु पुरुषों द्वारा प्राप्त की जाती है असज्जन अमर्यादित लोगों द्वारा कभी भी प्राप्त नहीं की जा सकती जिन्होंने तीव्र तप किया है वे ही लोग आत्मा में ध्यान करते हैं॥६९॥

यस्य नो पश्चिमं जन्म स्वयं यो वा न शङ्करः।
न तेन लभ्यते विद्या ललिता परमेश्वरी॥७०॥

उसका बाद में जन्म नहीं होता है जो स्वयं शङ्कर नहीं है उसके द्वारा ललिता परमेश्वरी की विद्या प्राप्त नहीं की जा सकती॥७०॥

वंशे तु यस्य कस्यापि भवेदेष मनुर्यदि।
तद्वंश्याः सर्व एव स्युर्मुक्तास्तृप्तास्तु कुम्भज॥७१॥

यदि जिस किसी के वंश में यह मंत्र है तो उसके वंशज सभी लोग मुक्ति क्षेत्र में पहुंच जाते हैं और कृतकृत्य हो जाते हैं, हे कुंभज! यह उस मंत्र का प्रभाव है॥७१॥

गुप्ताङ्गुप्ततरैवैषा सर्वशास्त्रेषु निश्चिता।
वेदाः समस्ताः शास्त्राणि वदन्ति ललितेश्वरीम्॥७२॥

यह विद्या सभी शास्त्रों में गुप्त से भी गुप्त और निश्चित तथ्य है कि वेद और समस्त शास्त्र भगवती ललिताम्बा की स्तुति करते हैं॥७२॥

इयमेवात्मविद्या स्यादियमेव परा गतिः।
इयमेव महत्तीर्थमियमेव महत्फलम्॥७३॥

ये भगवती ललिताम्बा ही आत्म विद्या हैं ये ही परम गति हैं, ये ही महान् तीर्थ हैं, ये ही समस्त साधनों का महान् फल हैं॥७३॥

इमां ध्यायन्ति मुनयो ध्यायन्तीमां च योगिनः।
अर्चयन्ति सुरश्रेष्ठाः सर्वदा सर्वसिद्धिदाम्॥७४॥

समस्त मुनिगण इन्हीं का ध्यान करते हैं और समस्त योगिजन भी इन्हीं का ध्यान करते हैं, श्रेष्ठ देवगण सर्वदा समस्त सिद्धि देने वाली इन्हीं की पूजा करते हैं॥७४॥

न प्राप्यते कुचारित्रैः कुत्सितैः कुटिलाशयैः।
वेदबाह्यैर्वृथातर्कैर्वृथाविभ्रान्तबुद्धिभिः॥७५॥

वे भगवती ललितेश्वरी बुरे चरित्र वालों, नीच पुरुषों कुटिल आशय रखने वालों ईश्वर को न मानने वालों नास्तिकों वृथा तर्क करने वालों वृथा बुद्धि को भटकाने वालों नष्ट पुरुषों॥७५॥

नष्टैरशीलैरुच्छिष्टैः कुलभ्रष्टैश्च निष्ठुरैः।
दर्शनद्वेषिभिः पापशीलैराचारनिन्दकैः॥७६॥
चार्वाकमतनिष्णातैर्गर्वितैः परदूषकैः।
अनात्मज्ञैरनल्पेर्ष्यैः क्रोधनैर्गुरुबाधकैः॥७७॥
उद्धतैरुद्धतालापैर्दाम्भिकैरतिमानिभिः।
एतादृशानां मर्त्यानामियमत्यन्तदुर्लभा।
कथंचिदपि लब्धापि विद्या तेषु पराङ्मुखी॥७८॥

नष्ट पुरुषों शीलरहितों समाज में बहिष्कृतों कुलभ्रष्टों निष्ठुरों दर्शनों से द्वेष रखने वालों पापाचरण शीलों तथा सदाचार की निन्दा करने वालों चार्वाक दर्शन (देहात्मवादी) में निष्णात, घमण्डी, अपने को सबसे अधिक मानने वालों के द्वारा, आत्मा का ज्ञान न रखने वालों ईर्ष्याग्रस्त क्रोधी स्वभाव वाले और गुरुद्वेषी उद्धत, उद्धत वार्तालाप करने वाले, दम्भी और स्वयं को सर्वश्रेष्ठ मानने वाले इस प्रकार के मनुष्यों को यह अत्यन्त दुर्लभ है यदि किसी भी प्रकार से इन अयोग्यों और अपात्रों ने प्राप्त कर भी लिया हो तो भी यह विद्या जाग्रत है वह ऐसे लोगों से अनुकूल नहीं होती॥७६,७७,७८॥

इति पृष्टं त्वयाख्यातं सर्वपूज्या मयेरिता।
देवतानां च पूज्यत्वमस्याः प्रोक्तं घटोद्भव॥७९॥

श्री ह्यग्रीव बोले हे घटोद्भव! मुने! देवताओं की भी ये पूज्या हैं तुमने जो जिज्ञासा की वह मैंने तुमसे कहा, यह भगवती सर्वपूज्या हैं॥७९॥

भण्डासुरवधायैषा प्रादुर्भूता चिदग्नितः।
महात्रिपुरसुन्दर्या मूर्तिस्तेजोविजृम्भिता॥८०॥

देवों की प्रार्थना पर यह भगवती भण्डासुर के विनाश के लिये चिदग्नि कुण्ड से प्रकट हुईं, यह महा त्रिपुर सुन्दरी मूर्ति सम्पूर्ण तेज से युक्त हैं॥८०॥

कामाक्षी च विधात्रा तु प्रस्तुता ललितेश्वरी।
ध्यायतः परया भक्त्या तां परां ललिताम्बिकाम्॥८१॥

विधाता ने कामाक्षी नाम से ललितेश्वरी को प्रस्तुत किया है, उन पराशक्ति ललिताम्बा का पराभक्ति द्वारा (कामना रहित भक्ति) ध्यान करने वाले परम शिव ने॥८१॥

सदाशिवस्य मनसो लालनाल्ललिताभिधा।
यद्यत्कृतवती कृत्यं तत्सर्व विनिवेदितम्॥८२॥

उन पराशक्ति ललिताम्बिका का परा भक्ति से ध्यान करते हुए सदाशिव के मन का लालन करने के कारण वे ललिता इस नाम से जानी जाती हैं। उन भगवती ने जो जो कृत्य सम्पन्न किये उन सभी का निवेदन तुम्हारी जिज्ञासानुसार किया गया है ॥८२ ॥

पूजाविधानमखिलं शास्त्रोक्तेनैव वर्त्मना।
खण्डान्तरे वदिष्यामि तद्विलासं महाद्भुतम् ॥८३ ॥

श्री हयानन भगवान कह रहे हैं कि हे मुने! हमने शास्त्रोक्त विधान से भगवती की पूजा का विधान कह दिया है, अब दूसरे खण्ड में उनका अद्‌भुत विलास मैं तुम्हारे सामने कहूंगा ॥८३ ॥

इति श्रीब्रह्माण्डपुराणे उत्तरखण्डे हयग्रीवागस्त्यसंवादे
श्रीललितोपाख्याने चतुस्त्रिंशोऽध्याय ॥३४॥

॥श्रीमन्महागणाधिपतये नमः।।

श्रीमाताललिताम्बायै नमः श्रीपादुकां पूजयामि नमः॥
ॐ वन्दे गुरुपदद्वन्द्वं अवाङ्मनसगोचरम्॥
रक्तशुक्ल प्रभामिश्रमतर्क्यं त्रैपुरं महः॥
ॐ आराध्यदेवं भक्तानां कलिदोषविनाशकम्॥
वन्दे श्रीगिरिजानन्दं शारदाश्रीमठाधिपम्।।
ॐ अखण्डं यस्यज्ञानञ्च भक्तिर्यस्यानपायिनी।।
शारदाज्योतिरीशस्य दर्शनं (पूजनं, वन्दनं) शुभमस्तुनः।।

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥ 127 श्लोकात्मक

॥ काञ्चीमाहात्म्यवर्णनम् ॥

श्री अगस्त्य जी श्री हयग्रीवजी से बोले- आरंभ में उस परमतत्व का वंदन

अनाद्यनन्तमव्यक्तं व्यक्तानामादिकारणम्।
आनन्दबोधैकरसं तन्महन्मन्महे महः॥१॥

हे भगवन्! ह्यग्रीव!! जो परमतत्व अनादि है, अनन्त है और अव्यक्त है तथा व्यक्त क्षरात्मक जगत् का आदिकारण है, परन्तु उसका बोध-केवल एकमात्र जो आनन्दबोध का एक ही आस्वादन करने योग्य है उस परमतत्व को हम सभी गुरुशिष्य मिलकर आत्मसमर्पण पूर्वक अभिवन्दन करते हैं॥१॥

अश्वानन महाप्राज्ञ वेदवेदान्तवित्तम।
श्रुतमेतन्महापुण्यं ललिताख्यानमुत्तमम्॥२॥

हे ह्यग्रीव! महाप्राज्ञ! वेद वेदान्त विज्ञों में सर्वश्रेष्ठ !!!! मैंने आपके श्रीमुख से इस महान् पुण्यदायक सर्वोत्तम भगवती ललिता का ललिताख्यान सुना॥२॥

सर्वपूज्या त्वया प्रोक्ता त्रिपुरा परदेवता।
पाशाङ्कुशधनुर्बाण परिष्कृतचतुर्भुजा॥३॥

हे हयानन! आपने उन परदेवता त्रिपुरा को सर्वपूज्या कहा है, जिनका स्वरूप आपने व्यक्त किया कि वे चतुर्भुजा हैं चारों हाथों में पाश, अंकुश, धनुष (इक्षु धनुः) और पांचबाण धारण की हुई हैं॥३॥

तस्या यन्त्रमिति प्रोक्तं श्रीचक्रचक्रभूषणम्।
नवावरणमीशानीश्रीपुरस्याधिदैवतम्॥४॥

उनका पूजनीय यन्त्र समस्त चक्रों का भूषण श्रीचक्र है जो नौ आवरणों से युक्त है, उसकी

परमदेवता भगवती ईशानी उस यंत्र की अधिदेवता हैं ॥४॥

काञ्चीपुरे पवित्रेऽस्मिन्महीमण्डलमण्डने।
केयं विभाति कल्याणी कामाक्षीत्यभिविश्रुता॥५॥

इस सुन्दर भूमण्डल पर इस पवित्र कांचीपुर में ये कौन कल्याणी हैं इनके विषय में सुना जाता है कि ये कामाक्षी नाम से प्रसिद्ध हैं ॥५॥

द्विभुजा विद्युदुल्लासविलसत्तनुवल्लरी।
अदृष्टपूर्वसौन्दर्या परज्योतिर्मयी परा॥६॥

इनकी दो भुजाएं हैं विद्युद् जैसे अनेकों आभरणों से विभूषित तनुलता है ऐसा सौन्दर्य कभी नहीं देखा गया और उनकी पराज्योति विभूषित हो रही है ॥६॥

अगस्त्येनैवमुक्तः सन् परानन्दादृतेक्षणः।
ध्यायंस्तन्त्रैपुरं तेजो हयग्रीवो महामनाः॥७॥
इति ध्यात्वा नमस्कृत्य तमगस्त्यमथाब्रवीत्।
रहस्यं संप्रवक्ष्यामि लोपामुद्रापते शृणु॥८॥

अगस्त्य मुनि के ऐसा कहने पर परानंद से आदृत नेत्रों वाले उस परम तेज का ध्यान करते हुए महामना हयग्रीव इस प्रकार का ध्यान करते हुए उनके श्री विग्रह की कान्ति से तल्लीन होते हुए अगस्त्य जी से बोले- हयग्रीव बोले मैं वह रहस्य तुम्हें सुनाऊंगा लोपामुद्रा के पति तुम उसे सुनना ॥७,८॥

आद्या पुण्यपरा स स्याच्चित्परा त्वादिकारणम्।
अनाख्येति त्रयीप्रोक्तस्वरूपा तत्त्वचिन्तकैः॥९॥

पहली जो अत्यन्त अणुतरा (सूक्ष्मतर) थी वह चित्परा थीं और आदि कारण थीं अर्थात चिद्रूप में सबसे पहिले अत्यन्त सूक्ष्मरूप में थीं, तत्व का चिन्तन करने वालों द्वारा उसके स्वरूप से उसे अनाख्या नाम से कहा गया जो तीन भेदों में है 1 आद्या, 2 सिद्धा, 3 परापरा ॥९॥

द्वितीया भूतले सिद्धा परा द्विभुजसंयुता।
दक्षहस्ते योगमुद्रां वामहस्ते तु पुस्तकम्॥१०॥

उसके बाद दो भुजाओं से युक्त द्वितीया शुद्ध परा हुईं जो दाएं हाथ में योगमुद्रा और बाएं हाथ में पुस्तक लिये हुए थीं ॥१०॥

बिभ्रती हिमकुन्देन्दुमुक्तासमवपुर्द्युतिः।
परापरा तृतीया स्याद्बालार्कायुतसंमिता॥११॥

वह द्वितीया शक्ति परानाम्नी जिसके शरीर की द्युति हिम जैसी श्वेत कुन्द पुष्प जैसी शुभ्र या चन्द्र जैसी तथा मोतियों जैसी शुभ्र आभा थी, तीसरी देवी परापरा नाम्नी जो प्रातः कालीन सूर्य जैसी आभा युक्त थीं॥११॥

सर्वाभरणसंयुक्ता दक्षहस्तधृताम्बुजा।
वामोरुन्यस्तहस्ता च किरीटार्थेन्दुभूषणा॥१२॥

वह देवी सभी आभूषणों से विभूषित थीं दाएं हाथ में कमल रखे हुए थीं और अपने बांए ऊरु में हाथ रखे हुए थीं उनके किरीट में अर्धेन्दुकला शोभित हो रही थी॥१२॥

पश्चाच्चतुर्भुजा जाता सा परा त्रिपुरारुणा।
पाशाङ्कुशेक्षुकोदण्डपञ्चबाणलसत्करा॥१३॥

वह अनादि अनन्त व्यापिनी शक्ति प्रथम भेद में आद्या, द्वितीय भेद में परा, तृतीय भेद में परापरा अब वही शक्ति चौथे रूप में चतुर्भुजा होकर वह परा त्रिपुरा चतुर्भुज रूप में हो गई जिसके चारों हाथों में पाश, अङ्कुश, इक्षु धनुष और पंचबाण शोभा दे रहे हैं॥१३॥

ललिता सैव कामाक्षी काञ्चयां ख्यातिमुपागता।
सरस्वतीरमा गौर्यस्तामेवाद्यामुपासते॥१४॥

वे ललिता ही कामाक्षी जो काञ्ची में प्रसिद्ध हुईं वे ही सरस्वती वे ही रमा हैं वे ही गौरी उनकी उपासना इन्हीं के माध्यम से करते हैं॥१४॥

श्री ह्यग्रीव आगे बोले-

रहस्यं संप्रवक्ष्यामि लोपामुद्रापते शृणु।
नेत्रद्वयं महेशस्य काशीकाञ्चीपुरीद्वयम्॥१५॥

हे लोपामुद्रा के पति! कुंभज! मैं एक रहस्य बता रहा हूं सुनो, श्री महेश के दो नेत्र हैं एक काशीपुरी, दूसरा काञ्चीपुरी, ये दो नेत्र हैं श्री महेश के॥१५॥

विख्यातं वैष्णवं क्षेत्रं शिवसान्निध्यकारकम्।
काञ्चीक्षेत्रे पुरा धाता सर्वलोकपितामहः॥१६॥

शिव के सान्निध्य को कराने वाला यह वैष्णव क्षेत्र नाम से विख्यात है, पूर्वकाल में धाता ब्रह्मा ने जो समस्त लोकों के पितामह हैं॥१६॥

श्रीदेवीदर्शनार्थाय तपस्तेपे सुदुष्करम्।
आत्मैकध्यानयुक्तस्य तस्य व्रतवतो मुने॥१७॥

हे मुने! अगस्त्य जी! उन लोक पितामह ब्रह्मा ने अत्यन्त दुष्कर तप भगवती के दर्शन की कामना

से किया जब उन्होंने अपनी आत्मा पर ध्यान लगाया उन व्रत धारण किये हुए॥१७॥

प्रादुरास पुरो लक्ष्मीः पद्महस्तपुरस्सरा।
पद्मासने च तिष्ठन्ती विष्णुना जिष्णुना सह॥१८॥

तभी उनके सामने हाथ में कमल लिये हुए परालक्ष्मी प्रकट हो गईं जो सब पर विजय प्राप्त करने वाले श्री विष्णु के साथ पद्मासन में विराजमान थीं॥१८॥

सर्वशृङ्गारवेषाढ्या सर्वाभरणभूषिता।
सिहासनेश्वरी ख्याता सर्वलोकैकरक्षिणी॥१९॥

वे परालक्ष्मी समस्त श्रृंगार वेष से सम्पन्न थीं समस्त आभूषणों को धारण की हुई थीं वे सिंहासनेश्वरी नाम से प्रसिद्ध थीं वे समस्त लोकों की एक मात्र रक्षिका थीं॥१९॥

तां दृष्ट्वाद्भुतसौन्दर्यां परज्योतिर्मयीं पराम्।
आदिलक्ष्मीमितिख्यातां सर्वेषां हृदयस्थिताम्॥२०॥

उन अद्‌भुत सौन्दर्ययुक्त पर ज्योतिर्मयी परा आदि लक्ष्मी उस नाम से विख्यात सभी प्राणियों के हृदय में विराजमान हैं॥२०॥

यामाहुस्त्रिपुरामेव ब्रह्मविष्ण्वीशमातरम्।
कामाक्षीति प्रसिद्धां तामस्तौषीत्पूर्णभक्तिमान्॥२१॥

जिन त्रिपुरा माता को ही ब्रह्मा विष्णु और महेश की माता कहते हैं वे ही कामाक्षी इस नाम से प्रसिद्ध उनकी ब्रह्माजी स्तुति करने लगे॥२१॥

ब्रह्मा बोले।

जय देवि जगन्मातर्जय त्रिपुरसुन्दरि।
जय श्रीनाथसहजे जय श्रीसर्वमङ्गले॥२२॥

हे देवि ! आपकी जय हो, समस्त जगत की माता आपकी जय हो, हे त्रिपुर सुन्दरि ! आपकी जय हो इकाई (व्यष्टि) में तीन पुर स्थूल सूक्ष्म और कारण शरीर, समूह (समष्टि) में भूर्भुवःस्वर्लोक की सुन्दरी आत्मा) हे श्रीनाथ सहजे ! आपकी जय हो, हे सर्वमंगल्ये आपकी जय हो (प्रसिद्ध मंत्र दुर्गासप्तशती में (सर्व मंगल्य मागंल्ये शिवे सर्वार्थ साधिके शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोस्तुते)॥२२॥

जयेशे करुणारासे जय शृङ्गारनायिके।
जय विद्यैकसिद्धेशि वन्दनीयपदे शुभे॥२३॥

हे करुणा की राशि ! ईशे ! आपकी जय हो हे श्रृंगार नवरसराज की नायिके ! आपकी जय हो !

विद्या (शक्तिमंत्र) एकमात्र सिद्धे ईशि! आपक जय हो, वन्दनीय चरण कमलों वाली शुभे! आपकी जय हो॥२३॥

जयजय जगदम्ब नित्यरूपे जयजय सन्नुतलोकसौख्यदात्रि।
जयजय हिमशैलकीर्तनीये जयजय शंकरकामवामनेत्रे॥२४॥

हे जगदम्ब! नित्यरूप वाली आपकी जय हो, जय हो जय हो, स्वर्गलोक को सौख्य देने वाली आपकी जय हो! हिमालय द्वारा कीर्तन की जातीं आपकी जय हो, हे भगवति ! भगवान कामेश्वर की वामनेत्रे! आपकी जय हो॥२४॥

जगज्जन्मस्थितिध्वंसविधानानुग्रहान्मुहुः।
या करोति स्वसंकल्पात्तस्यै देव्यै नमोनमः॥२५॥

जो भगवती जगत् की एवं जगत् के प्रपंच को जन्म देती है, जो उसे स्थिर रखने वाली है और उसका विध्वंस करने वाली तथा समस्त प्रपंच को धारण करने वाली तथा बार-बार सृष्टि का अनुग्रह करने वाली हैं, जो अपने संकल्प से यह सब करती हैं। ऐसी उन देवी को बार-बार नमो नमः (नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः)

वर्णाश्रमाणां सांकर्यकारिणः पापिनो जनान्।
निहन्ति याऽतितीक्ष्णास्त्रैस्तस्यै देव्यै नमोनमः॥२६॥

जो देवी वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्रवर्ण) में और आश्रमों में (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास) संकरता (आशास्त्रीय विरुद्ध गोत्र और ऊंच नीच तथा नीच उच्च आदि बेमेल रक्त परमाणु विरुद्ध जन्मादि विवाहिद सम्बंध ये सांकर्य दोष वाले हैं) करने वाले पापियों मनुष्यों को अत्यन्त तीक्ष्णास्त्रों से मारती हैं ऐसी देवी को बार-बार प्रणामर्पित है।।26।।

नागमैश्च न वेदैश्च न शास्त्रैर्न च योगिभिः।
न वेद्या या स्वसंवेद्या तस्यै देव्यै नमोनमः॥२७॥

जिनको न आगमाशास्त्रों से न वेदों से न शास्त्रों से न ही योगियों के अनुभवों से जाना जा सकता है, जो स्वयं ही जानने योग्य हैं अर्थात् जिसकी कृपा से ही जाना जा सकता है ऐसी उस देवी को बार-बार प्रणाम है।।27।।

रहस्याम्नाय वेदान्तैस्तत्त्वविद्भिर्मुनीश्वरैः।
परं ब्रह्मेति या ख्याता तस्यै देव्यै नमोनमः॥२८॥

रहस्य युक्त आम्नाय विधानों से वेदान्तों की निर्णीत तत्वों से तथा तत्ववेत्ताओं से जो परंब्रह्म के रूप में उपदेश की गई ऐसी जो देवी हैं, उन्हें बार-बार प्रणाम अर्पित है।।28।।

हृदयस्थापि सर्वेषां या न केनापि दृश्यते।
सूक्ष्मविज्ञानरूपायै तस्यै देव्यै नमोनमः॥२९॥

जो भगवती समस्त प्राणियों के हृदय में स्थित होने पर भी किसी के भी द्वारा दृष्टिगोचर या अनुभूति में नहीं आती, जो सूक्ष्मविज्ञान रूपा है ऐसी उन देवी को प्रणाम समर्पित करता हूं।।29।।

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः।
यद्ध्यानैकपरा नित्यं तस्यै देव्यै नमोनमः॥३०॥

ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर और सदाशिव जिसके एक मात्र ध्यान में तत्पर रहते हैं, ऐसी देवी को प्रणाम।।30।।

पञ्चकारणकृत्येन्द्रा यदाज्ञामेव बिभ्रति।
साम्राज्यसंपदीशायै तस्यै देव्यै नमोनमः॥३१॥

पाँच कारण देवों को (सृष्टि=ब्रह्मा, स्थिति=विष्णु, संहार=रुद्र, निरोध=ईश्वर, अनुग्रह=सदाशिव) जिसकी आज्ञा मानते हैं ऐसी साम्राज्यसम्पदीशा भगवती को प्रणाम।।31।।

वेदा निःश्वसितं यस्या वीक्षितं भूतपञ्चकम्।
स्मितं चराचरं विश्वं तस्यै देव्यै नमोनमः॥३२॥

जिनकी श्वास वेद है, जिसके वीक्षण से भूत पंचक (आकाश, वायु, तेज, रस, गंध) प्रकट होते हैं, मुस्कराहट, जिनकी समस्त विश्व है ऐसी भगवती को प्रणाम अर्पित है।।32।।

सहस्रशीर्षा भोगीन्द्रो धरित्री तु यदाज्ञया।
धत्ते सर्वजनाधारा तस्यै देव्यै नमोनमः॥३३॥

हजारों फणों वाले अनन्त शेष नाग जिनकी आज्ञा से पृथिवी को अपने फणों में धारण करते हैं, जो धरती समस्त प्राणियों की आधार है, ऐसी भगवती को प्रणाम अर्पित है।।33।।

ज्वलत्यग्निस्तपत्यर्को वातो वाति यदाज्ञया।
ज्ञानशक्तिस्वरूपायै तस्यै देव्यै नमोनमः॥३४॥

जिनकी आज्ञा से अग्नि प्रज्ज्वलित रहती है, सूर्य तपता है तथा वायु बहती रहती है, ऐसी ज्ञान शक्ति स्वरूपा भगवती को प्रणाम करते हैं।।34।।

पञ्चविंशतितत्त्वानि मायाकञ्चुकपञ्चकम्।
यन्मयं मुनयः प्राहुस्तस्यै देव्यै नमोनमः॥३५॥

भूमि आदि प्रकृति पुरुष पर्यन्त पच्चीस तत्व पांच माया रूप कंचुक तत्व जिनसे युक्त आपको मुनिगण कहते हैं ऐसी उन भगवती देवी को प्रणाम करता हूं॥३५॥(14)

शिवशक्तीश्वराश्चैव शुद्धविद्यः सदाशिवः।
यदुन्मेपविभेदाः स्युस्तस्यै देव्यै नमोनमः॥३६॥

शिव शक्ति ईश्वर शुद्ध विद्या, सदाशिव आदि रूप जिनके उन्मेष (प्रकाश) हैं ऐसी भगवति आपको प्रणाम अर्पित है॥३६॥(15) (शिवाद्यवनिपर्यन्त षट्त्रिंशत् तत्व रूपिणी - श्रीपादुकां पूजयामि नमः)

गुरुर्मंत्रो देवता च प्रणवः प्राण एवच।
या विराजति चिद्रूपा तस्यै देव्यै नमोनमः॥३७॥

गुरु, मंत्र, देवता, प्रणव (ओम) और प्राण जो इनमे चिद्रूप से विराजित है उसे मैं प्रणाम करता हूं॥३७॥(16)

सर्वात्मनामन्तरात्मा परमानन्दरूपिणी।
श्रीविद्येति स्मृता या तु तस्यै देव्यै नमोनमः॥३८॥

सभी आत्माओं की अन्तरात्मा हैं तथा जो परमानन्दरूपिणी हैं, जिनका श्री विद्या के ही रूप से स्मरण किया जाता ऐसी उन देवी को बार-बार प्रणाम है॥३८॥(17)

दर्शनानि च सर्वाणि यद्गीतानि विदुर्बुधाः।
तत्तन्नियमरूपायै तस्यै देव्यै नमोनमः॥३९॥

विद्वानगण सभी दर्शनों को जिनका अंग मानते हैं जिनसे सम्बन्धित उन उन नियमों की स्वरूपिणी भगवती को प्रणाम करता हूं॥३९॥(18)

या भाति सर्वलोकेषु मणिमन्त्रौषधात्मना।
तत्त्वोपदेशरूपायै तस्यै देव्यै नमोनमः॥४०॥

जो समस्त लोकों में मणि, मंत्र और औषध की आत्मा रूप से सभी में व्याप्त हैं तत्वों के उपदेश रूप में जो कही जाती हैं उन्हें मैं प्रणाम करता हूं॥४०॥(19)

देशकालपदार्थात्मा यद्यद्वस्तु यथातथा।
तत्तद्रूपेण या भाति तस्यै देव्यै नमोनमः॥४१॥

देशकाल और पदार्थात्मक जो वस्तु जैसी तैसी है अर्थात जिस देश में जिस काल में जैसी है वह वस्तु उसमें उस काल में वैसी दिखाई देती है अतः उस देश में और उस काल में जो पदार्थात्मा वह सब कुछ आप ही हो, वेदान्त में ''सर्वंखल्विदं ब्रह्म नेहनानास्ति किञ्चन'' कहा जाता आप (परब्रह्मस्वरूपिणी पादुकां पूजयामि नमः) सर्वत्र व्याप्त हैं मैं आपको प्रणाम कर रहा हूं॥४१॥(20)

हेयप्रतिभटाकारा कल्याणगुणशालिनी।
विश्वोत्तीर्णेति विख्याता तस्यै देव्यै नमोनमः॥४२॥

हे भगवति ! हेय अर्थात अनात्म या अतद् मिथ्या वस्तु के विरुद्ध आत्मतद् वस्तु के रूप में हैं अर्थात तत्वमसि महावाक्य का मूर्त अर्थ हैं कल्याण गुणमयी हैं मैं शरणागत हूं कृपा करें सौः ल. मे. भवानित्वंदासे मयिवितर दृष्टिं सकरूणाम् इति स्तोतुं वाञ्छन् कथयति भवानित्वंत्वमितियः तदैवत्वं तस्मै दिशसिनिजसायुज्यपदवीं मुकुन्द ब्रह्मेन्द्र स्फुट मुकुटनीराजितपदाम् ॥४२॥(22)

इति स्तुत्वा महादेवीं धाता लोकपितामहः।
भूयोभूयो नमस्कृत्य सहसा शरणं गतः ॥४३॥

इस प्रकार महादेवी की स्तुति कर लोकपितामह ब्रह्माजी बारम्बार नमस्कार करके उनकी शरण में गए॥४३॥ (22)

संतुष्टा सा तदा देवी ब्रह्माणं प्रेक्ष्य सन्नतम्।
वरदा सर्वलोकानां वृणीष्व वरमित्यशात् ॥४४॥

सम्यक रूप से शरणापन्न ब्रह्माजी को देखकर वे भगवती सन्तुष्ट हुईं और समस्त लोकों को वर देकर निर्भय करने वाली वे भगवती बोली बोलों क्या चाहते हो॥४४॥(23)

ब्रह्माजी बोलेः-

भवत्या दर्शनेनैव कृतार्थोऽस्मि न संशयः।
तथापि प्रार्थये किंचिल्लोकानुग्रहकाम्यया॥४५॥

ब्रह्माजी ने कहा, कि हे भगवति ! मैं आपके दर्शन मिल जाने से ही पूर्ण रूप से कुतार्थ हूं इसमें जरा सा भी संशय नहीं है तो भी मेरी प्रार्थना है वह भी समस्त लोकों पर आपका अनुग्रह हो यह कामना है॥४५॥

कर्मभूमौ तु लोकेऽस्मिन्प्रायो मूढा इमे जनाः।
तेपामनुग्रहार्थाय नित्यं कुर्वत्र सन्निधिम् ॥४६॥

हे मातः ! इस कर्मभूमि लोक (मर्त्यलोक) में प्रायः अधिकांश प्राणी अज्ञान से मूढ़ ही रहते हैं उन पर अनुग्रह करने के लिये आप यहां नित्य सन्निधि करें॥४६॥

तथेति तस्य तं कामं पूरयामास सा तदा।
अथ धाता पुनस्तस्या देव्यास्त्वर्धासनस्थितम्॥४७॥

ब्रह्माजी की वाणी सुनकर भगवती ने तथास्तु कहा इस प्रकार ब्रह्माजी की कामना पूर्ण किया फिर ब्रह्मा जी ने उन देवी के आसन की कल्पना की॥४७॥

श्रीदेवीसोदरं नत्वा पुण्डरीकाक्षमच्युतम्।
तत्सांनिध्यं सदा काञ्च्यां पूरयामास चादृतः॥४८॥

फिर ब्रह्माजी ने भगवती के सहोदर भगवान् पुण्डरीकाक्ष अच्युत को प्रणाम कर भगवती के साथ रहने के लिये कांची में निवास करें यह प्रार्थना की वह भी स्वीकृत हो गई ॥४८ ॥

ततस्तथा करिष्यामीत्यब्रवीच्च जनार्दनः।
अथ तुष्टो जगद्धाता पुनः प्राह महेश्वरौ ॥४९ ॥

उसके बाद श्री विष्णु ने भी कहा कि मैं भी वैसा ही करुंगा अर्थात कांची में रहूंगा, ब्रह्माजी संतुष्ट होकर भगवती से बोले ॥४९ ॥

शिवोऽप्यत्रैव सांनिध्यं तव प्रीत्या करोत्विति।
अथ श्रीत्रिपुरादक्षभागात्कामेश्वरः परः ॥५० ॥

ब्रह्माजी ने भगवती से पुनः प्रार्थना की, कि शिव भी यहीं आपके साथ विराजमान हों तो भगवती के मौन को स्वीकृति मानकर भगवान परब्रह्म कामेश्वर भी वहां भगवती के दाएं भाग में प्रतिष्ठित हो गये ॥५० ॥

ईशानः सर्वविघ्नानामीश्वरः सर्वदेहिनाम्।
आविरास महादेवः साक्षाच्छृङ्गारनायकः ॥५१ ॥

वे समस्त प्राणियों के ईशान समस्त विद्याओं के ईश्वर समस्त देहियों के साक्षात् श्रृंगार नायक कामेश्वर महादेव आविर्भूत हो गए ॥५१ ॥

ततः पुनः श्रीकामाक्षीभालनेत्रकटाक्षतः।
किंचिद्विलासादुत्पन्ना महागौरी महोज्वला ॥५२ ॥

पुनः श्री कामाक्षी के भाल में स्थित नेत्र के कटाक्ष से महागौरवर्ण वाली महागौरी प्रकट हो गईं ॥५२ ॥

सर्वशृङ्गारवेषाढ्या महालावण्यशेवधिः।
अथ श्रीपुण्डरीकाक्षो ब्रह्मणा सह सादरः ॥५३ ॥
कारयामास कल्याणमादिस्त्रीपुंसयोस्तयोः।
आखण्डलादयो देवा वसुरुद्रादिदेवताः ॥५४ ॥
मार्कण्डेयदिमुनयो वसिष्ठादिमुनीश्वराः।
योगीन्द्राः सनकाद्याश्च नारदाद्याः सुरर्षयः ॥५५ ॥

यह बाला समस्त श्रृंगार साधनों से सजी हुई थी और महासौन्दर्य की अमूल्य कोष थीं, इसके बाद श्री पुण्डरीकाक्ष विष्णु ने पद्मसंभव ब्रह्माजी के साथ आदर सहित इसके बाद पुण्डरीकाक्ष विष्णु ने उन दोनों आदि स्त्री पुरुष का आदर सहित कल्याण (विवाह विधि) कराया, वहां इन्द्रादि

देवता आठों वसु ग्यारह रुद्रादिदेवता उस कल्याणविधि में मार्कण्डेय आदि मुनिगण वसिष्ठादि मुनीश्वर और सनकादि योगेन्द्र तथा नारदादि देवर्षिगण वहां थे ॥५५,५३,५४,॥

वामदेवप्रभृतयो जीवन्मुक्ताः शुकादयः।
यक्ष किंनरगन्धर्वसिद्ध विद्याधरोरगाः ॥५६॥

वामदेवादि और शुकादि जीवन्मुक्त तथा यक्ष किन्नर गन्धर्व सिद्ध विद्याधर उरग (सर्पादि) गण ॥५६॥

गणाप्रणीर्महाशास्ता दुर्गाद्याश्चैव मातरः।
या यास्तु देवताः प्रोक्तास्ताः सर्वाः परमेश्वरीम् ॥५७॥

गणों के अग्रणी, महाशास्ता, दुर्गा आदि मातृगण तथा जो जो अन्य देवतागण कहे गए हैं वे सभी परमेश्वरी को ॥५७॥

भद्रासहविमानस्था नेमुः प्राञ्जलयस्तदा।
मनसा निर्मितं धात्रा मध्ये नगरमद्भुतम् ॥५८॥

भद्रा के साथ विमान में स्थित परमेश्वरी को बद्धाञ्जलि होकर नमन किया, फिर ब्रह्मा जी ने मनः संकल्प से नगर के मध्य में अद्भुत ॥५८॥

मन्दिरं परमेशान्या मनोहरतमं शुभम्।
श्रीमता वासुदेवेन सोदरेण महेश्वरः ॥५९॥

भगवती का अत्यन्त मनोहर शुभ मन्दिर निर्मित कर दिया ॥५९॥

तत्रोदपूर्वकं दत्तां महागौरीमुपेयिवान्।
देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिः पपातह ॥६०॥

वहां हाथ में जल लेकर संकल्प पूर्वक दी हुईं महागौरी के विवाह सम्पन्न किया तब वहां आकाशचारी देवों ने दुन्दुभियां बजाईं और अभूत पुष्प वृष्टि की ॥६०॥

दंपत्योर्जगतां पत्योः पाणिग्रहणमङ्गलम्।
को वा वर्णयितुं शक्तो यदि जिह्वासहस्रवान् ॥६१॥

उस समय जगतपति दोनों दम्पतियों के विवाह में जो मंगल हुआ उस का वर्णन करने में कोई भी समर्थ नहीं भले ही वह हजार जिह्वाओं वाला हो ॥६१॥

आदिश्रीमन्दिरस्यास्य वायुभागे महेशितुः।
विस्तृतं भुवनश्रेष्ठं कल्पितं परमेष्ठिना ॥६२॥

आदि श्री मन्दिर की वायव्यकोण में परमेष्ठी ब्रह्मा ने भगवान महेश का विस्तृत श्रेष्ठ भवन

बनाया ॥६२॥

श्रीगृहस्याग्निभागे तु विचित्रं विष्णुमन्दिरम्।
इत्थं ता देवतास्तत्र तिस्रः संनिहिताः सदा ॥६३॥

श्री गृह के अग्निकोण में विचित्र विष्णु मन्दिर है इस प्रकार वहां तीनों देवता सदैव एक साथ स्थित हैं ॥६३॥

यदा प्रदक्षिणीकृत्य तत्परं दंपती उभौ।
प्राप्तौ संभावनागारं तदा विधिजनार्दनौ ॥६४॥

तब परिक्रमा करके उन दोनों दम्पतियों को ब्रह्मा और विष्णु ने संभावनागार को प्राप्त किया ॥६४॥

समुपागम्य सभ्यानां समस्तानां यथाविधि।
सत्कारं वैदिकैर्मंत्रैः कथयामासतुर्मुदा ॥६५॥

उस सभागार में आकर यथाविधि समस्त आये हुए सभ्यों का वैदिक मंत्रों से आनन्द पूर्वक दोनों ने सत्कार किया ॥६५॥

आद्यापि लक्ष्मीः सर्वेषां पुरतः परमेश्वरी।
विरिञ्चिं दक्षिणेनाक्ष्णा वामेन हरिमैक्षत ॥६६॥

सबसे पहिले आद्या लक्ष्मी ने सभी के सामने दक्षिण नेत्र से ब्रह्माजी को तथा वामनेत्र से श्रीहरि को देखा ॥६६॥

दृष्टिमात्रे तदा वाणी कमला ते उभे ततः।
प्रादुर्भूते प्रभापुञ्जपञ्जरान्तरसंस्थिते ॥६७॥

तब ''का'' नाम से वाणी (सरस्वती) और ''मा'' नाम से कमला ये दोनों ही तब प्रभापुञ्ज में इस प्रकार प्रकट हो गईं जिस प्रकार पिंजरे से किसी को निकाल दिया जाता है ॥६७॥

श्रीदेवतां नमस्कृत्य बद्धाञ्जलिपुटे उभे।
जय कामाक्षिकामाक्षीत्युच्चैः स्तुत्वा प्रणेमतुः ॥६८॥

उसके बाद उन परमेश्वरी के नेत्रों की प्रभा से उत्पन्न दोनों देवियां भी वाणी और कमला ने ललिताम्बा भगवती को हाथ जोड़कर प्रणाम करती हुईं 'कामाक्षि कामाक्षि' कहती हुईं उच्च स्वर से स्तुति करते हुए प्रणाम किया ॥६८॥

मूर्ते च गङ्गायमुने तत्र सेवार्थमागते।
तिस्रः कोट्योऽर्धकोटी च या या तीर्थाधिदेवताः ॥६९॥

तब वहां गंगा और यमुना शरीर धारण कर प्रकट हुईं और सेवा के लिये तत्पर हुईं साढ़े तीन करोड़

जो तीर्थों के अधिदेवता थे वे भी ॥६९ ॥

सेवार्थं त्रिपुराम्बायास्तास्ताः सर्वाः समागताः।
तयोः कराभ्यामादाय चामरे भारतीश्रियोः॥७०॥

सेवा के लिये त्रिपुराम्बा के निकट पहुंचे तब भगवती सरस्वती ने और लक्ष्मी ने हाथों में चंवर लेकर त्रिपुरेश्वरी पर डुलाना आरंभ कर दिया।॥७०॥ (4 लक्ष्मीवाणीनिषेविता-श्री पादुकां पूजयामि नमः)

श्रीदेवीमुपतस्थाते वीजयन्त्यौ यथोचितम्।
अनर्घ्यरत्नखचितकिङ्किणीचितदोर्लते ॥७१॥

बहूमूल्य रत्नों से जड़े हुए कंगनों को हाथ में धारण किये हुए आदि श्री के नेत्रों से प्रकट उन वाणी और लक्ष्मी ने श्री देवी के निकट उपस्थित होकर चंवर डुलाने की सेवा की ॥७१॥

आदिश्रीनयनोत्पन्ने ते उभे भारतीश्रियौ।
संवीक्ष्य सर्वजनता विशेषेण विसिस्मिये॥७२॥

आदि श्री के नयनों से प्रकट वे दोनों भारती और श्री ने समस्त जनता को देख कर विशेष रूप से विस्मय से ॥७२॥

तदाप्रभृति कल्याणी कामाक्षीत्यभिधा दधौ।
यदुच्चारणमात्रेण श्रीदेवी संप्रसीदति॥७३॥

कल्याणी श्री ललिता भगवती का नाम कामाक्षी यह नाम दे दिया जिस 'कामाक्षी' इस महामंत्र रूप नाम के उच्चारण से भगवती प्रसन्न होती हैं॥७३॥

कामाक्षीति त्रयो वर्णाः सर्वमङ्गलहेतवः।
अथ सा जगदीशानी वेदवेदाङ्गपारगैः॥७४॥

कामाक्षी इति ये तीन वर्ण सम्पूर्ण मंडलों के प्रधान कारणभूत हैं इसके अनन्तर उन जगदीशानी ने वेद वेदांग पारग॥७४॥

विधौ नित्यं निषीदेति संदिदेश सरस्वतीम्।
सापि वाणीश्वरी गङ्गाहस्ते निक्षिप्य चामरम्॥७५॥

वैदिक विधीविधानों नित्य ही प्रतिष्ठित हो ऐसा सरस्वती को निर्देश किया, तब वह वागीश्वरी भी चंवरों को गंगा के हाथों में सौंपकर॥७५॥

पश्यतां सर्वदेवानां विधातुर्मुखमाविशत्।
इन्दिरा च महालक्ष्म्या संदिष्टा तुष्ट्या तथा॥७६॥

सभी देवों के देखते देखते वे सरस्वती विधाता ब्रह्माजी के मुख में विलीन हो गईं, उसके बाद महालक्ष्मी के द्वारा इन्दिरा (कमला) को आदेश दिया कि वह यथोचित निवास के लिये ॥७६॥

ययौ नित्यनिवासाय विष्णोर्वक्षस्थलं मुदा।
तदाज्ञां शिरसा धृत्वा रमा विष्णुश्च भक्तितः॥७७॥
तावुभौ दंपती नत्वा महात्रिपुरसुन्दरीम्।
प्रार्थयामासतुर्भूयस्तदावरणदेवताम्॥७८॥

भगवान विष्णु के वक्षः स्थल को ग्रहण करें, उनकी इस आज्ञा के अनुसार कमला ने भगवान विष्णु के वाम वक्षः स्थल पर नित्य निवास कर लिया, उन भगवती की आज्ञा को शिर से स्वीकार कर रमा और विष्णु भक्तिपूर्वक उन दोनों दम्पती ने महात्रिपुर सुन्दरी को प्रणाम करके प्रार्थना की कि उस त्रिपुर सुन्दर नगर की आवरण देवता निश्चित कर दें॥७७,७८॥

तथास्त्विति वरं दत्त्वा तयोस्त्रिपुरसुन्दरी।
तदावरणदेवत्वं प्राप्तौ पद्माच्युतौ मुदा॥७९॥

उनकी प्रार्थना पर भगवती ने तथास्तु कह कर स्वीकृति दे दी तब से वे पद्मालक्ष्मी और अच्युत विष्णु उस त्रिपुरनगर के रक्षक आवरण देवता के रूप में हैं॥७९॥

स्वपत्नीमुत्तरे स्थाप्य दक्षिणे स्थितवान्स्वयम्।
अथोवाच महागौरीं महात्रिपुरसुन्दरी॥८०॥

तब विष्णु ने अपनी पत्नी को श्रीनगर के उत्तरी भाग में स्थिर किया तथा स्वयं भी दक्षिण हिस्से में स्थिर हो गये इसके बाद भगवती महात्रिपुर सुन्दरी ने महागौरी से कहा॥८०॥

वत्से त्वं नित्यमत्रैव वसतिं कुरु शोभने।
कल्पयित्वा तदा गौरीं त्रिपुरा परमेश्वरी॥८१॥

हे वत्से! तुम अन्य रूप धारण करो और यहीं हे शोभने! नित्य निवास करो ऐसा कहकर त्रिपुरा परमेश्वरी॥८१॥

पश्यतां सर्वदेवानां तत्रैवान्तरधीयत।
तत्र सापि महागौर्याः प्रतिविम्बं मनोहरम्॥८२॥

गौरी को निर्देश देकर त्रिपुरा परमेश्वरी सभी के देखते देखते वहीं से अन्तर्धान हो गईं और वहां वे महागौरी अपना मनोहर प्रतिबिम्ब॥८२॥

चकार दिव्यदेहेन महागौरीसमाकृति।
तरुणारुणकहार सौन्दर्यचरणद्वयम्॥८३॥

दिव्य देह से महागौरी जैसी आकृति कल्पित की, उनके दोनों चरण रक्तवर्ण कमल के सौन्दर्य से युक्त थे॥८३॥

क्वणत्कनकमञ्जीरपिञ्जरीकृतपीठकम्।
विद्युदुल्लासवसन मनोज्ञमणिमेखलम्॥८४॥

दोनों हाथों के कंगनों ने मंजीरों की ध्वनि से उस शक्तिपीठ को ध्वनित कर दिया, उनकी कमर में मणिजटित कर्धनी बिजली की तरह चमक रही थी॥८४॥

रत्न कङ्कणकेयूर विराजितभुजद्वयम।
मुक्तावैडूर्यमाणिक्यनिबद्धोदरबन्धनम्॥८५॥

रत्न जड़े हुए कंगन और बाजूबन्दों से उनकी दोनों भुजाएं सुशोभित थीं, मोती वैदूर्य माणिक्य जड़ित श्रेष्ठ उदर बन्धन धारण किये हुए थीं॥८५॥

विभ्राजमानमध्येन वलित्रितयशोभिना।
जाह्ववीसरिदावर्तशोभिनाभिविभूषितम्॥८६॥

उदर में मध्य में तीन वलय की शोभा बढ़ रही थी, गंगा नदी में आवर्त (भंवर) की शोभा से नाभि विभूषित थी॥८६॥

पाटीर पङ्ककर्पूरकुङ्कुमालंकृतस्तनम्।
आमुक्तमुक्तालंकारभासुर स्तनकञ्चुकम्॥८७॥

चन्दन कर्पूर और कुंकुम (केसर) के लेप से उनके स्तन अलंकृत थे, उनमें आवरण के रूप में जो कंचुक (चोली) था वह मोती आदि अलंकारों से अलंकृत थी॥८७॥

विनोदेन कटीदेशलम्बमानकराम्बुजम्।
माणिक्यशकलाबद्धमुद्रिकाभिरलकृतम्॥८८॥

विनोद के रूप में कमर से नीचे लटकने वाला वस्त्र माणिक्य के टुकड़ों से बद्ध मुद्रिकाओं (मुहरों) से अलंकृत था॥८८॥

दक्षहस्ताम्बुजा सक्तस्निग्धोत्पलमनोहरम्।
आढ्यमाप्रपदीनैश्च दिव्या कल्पकदम्बकैः॥८९॥

वे अपने दांए हाथ में स्निग्ध उज्ज्वल और मनोहर कमल लिये हुए थीं वे पैरों के अग्र भाग तक लटकती हुई कल्पवृक्ष के फूलों की माला से शोभा पा रही थीं॥८९॥

दीप्तभूषण रत्नांशुराजिराजित दिङ्मुखम्।
तप्तहाटकसंक्लृप्तरत्नग्रीवोपशोभितम्॥९०॥

प्रदीप्त आभूषणों में लगे रत्नों की कान्ति से दिशाओं को प्रकाशित करने वाला उनका मुख है तथा तपे हुए स्वर्ण में लगे हुए रत्नों के भूषण से उनकी ग्रीवा शोभित थी ॥९० ॥

माङ्गल्यसूत्ररत्नांशुश्रोणिमन्थरकन्धरम्।
पालीवतंसमाणिक्यताटङ्क परिभूषितम् ॥९१ ॥

मांगलिक सूत्र रत्नों की किरणों से लाल उनके अधर (अघरोष्ठ) और ग्रीवा थी वे कान की ओर में लटकते हुए झुमका माणिक्य जटित कुण्डल से सुशोभित थे ॥९१ ॥

जपाविद्रुमलावण्यललिताधरपल्लवम्।
दाडिमीफलबीजाभदन्तपङ्क्तिविराजितम् ॥९२ ॥

जपा पुष्प (जासौन) और मूंगे के लावण्य से अत्यन्त सुन्दर उनके अधर पल्लव दोनों ओष्ठ थे अर्थात, उनके ओष्ठ जासौन और मूंगे के समान लाल वर्ण के थे तथा अनार के बीजों की आभा के समान उनकी दन्तपंक्ति सुशोभित थीं ॥९२ ॥

मन्दमन्दस्मितोल्लासिकपोलफलकोत्पलम्।
औपम्यरहितोदार नासामणिमनोहरम् ॥९३ ॥

मन्द मन्द मुस्कान से उल्लासित उनका कोमल कपोल फलक था उनकी नासिका में लगा हुआ मणि इतना मनोहर था कि उसकी कहीं उपमा ही नहीं थी ॥९३ ॥

विकसत्तिलपुष्पश्रीविजयोद्यतनासिकम्।
ईषदुन्मेषमधुरनीलोत्पलविलोचनम् ॥९४ ॥

खिले हुए तिलपुष्प की शोभा के समान उन्नत उनकी नासिका थी कम खिले हुए मधुर नीलकमल के समान उनकी आंखें थीं ॥९४ ॥

प्रसूनचापचापश्रीललितभ्रूविलासितम्।
अर्धेन्दुतुलिताधारपूर्णेन्दुरुचिराननम् ॥९५ ॥

नवीन पुष्पबाण की शोभा से शोभित उनकी भौंहे थीं तथा अर्धचंद्र जिनके भाल पर हो ऐसा पूर्णचन्द्रमा के समान उनका रुचिर मुख था ॥९५ ॥

सान्द्रसौ रभसंपन्नकस्तूरीतिलकोज्ज्वलम्
मत्तालिमालाविलसदल काढ्य मुखाम्बुजम् ॥९६ ॥

सान्द्र (घनी) सुरभि से सम्पन्न कस्तूरी के तिलक से उज्ज्वल मदमत भौंरों की पंक्तियों के समान अलकावलि (केश पाश) से सजा हुआ जिनका मुख कमल था ॥९६ ॥

पारिजात प्रसूनस्त्रग्वाहिधम्मिल्लबन्धनम्।
अनर्ध्यरत्नखचितमकुटाञ्चितमस्तकम्॥९७॥

उनके सिर के केशों का जूड़ा जो बंधा हुआ था वह कल्पवृक्ष के फूलों से सजा हुआ था, उनका मस्तक बहुमूल्य रत्नों से जड़ित मुकुट से विराजित था॥९७॥

सर्वलावण्यवसतिभवनं विभ्रमश्रियः।
शिवो विष्णुश्च तत्रत्याः समस्ताश्च महाजनाः॥९८॥
विम्बस्य तस्य देव्याश्च ममेदं जगृहुस्तदा।
अथ तद्विम्बमीशानी स्वतन्त्रा प्रविवेश॥९९॥

उनके भवन की शोभा सम्पूर्ण समस्त लावण्य का वास भवन थी, शिव विष्णु आदि वहां स्थित समस्त महाजनों ने उन देवी के बिम्ब का मर्म ग्रहण किया अर्थात वहां उपस्थित शिव-विष्णु आदि और अन्य महाजनों ने भगवती बिम्ब ग्रहण कर लिया अर्थात उन छवि को हृदय में स्थापित कर ली॥९८,९९॥

अग्रतः सर्वदेवानामाश्चर्येण प्रपश्यताम्।
विम्बाकृत्यात्मना विम्वे संप्रविश्य स्थितां च ताम्॥१००॥

देखते हुए सभी देवों के आगे आश्रय द्वारा बिम्ब बनाकर के बिम्ब में प्रवेश करके देवी स्थित हो गईं॥१००॥

दृष्ट्वा भूयो नमस्कृत्य पुनः प्रार्थितवान्विधिः।
पूर्णब्रह्ममहाशक्ते महात्रिपुरसुन्दरि॥१०१॥

तब बिम्ब में स्थित देखकर नमस्कार करके ब्रह्मा ने पुनः प्रार्थना की हे पूर्ण ब्रह्म! महाशक्ते! महात्रिपुर सुन्दरी॥१०१॥

श्रीकामाक्षीति विख्याते नमस्तुभ्यं शिवे परे।
किंचिद्विज्ञापयाम्यम्ब शृणुष्व कृपया मम॥१०२॥

हे भगवति ! आप श्री कामाक्षी इस नाम से विख्यात हैं हे शिवे! परे! आपको प्रणाम अर्पित हैं मैं कुछ निवेदन आपसे कर रहा हूं हे अम्ब! कृपया आप सुने॥१०२॥

अत्रैव तु महागौर्या महेशस्योभयोरपि।
श्रीदेवि नित्यकल्याणि विवाहः प्रतिवत्सरम्॥१०३॥

हे नित्य कल्याणि! श्री देवि ! महागौरी और महेश इन दोनों का विवाह प्रति वर्ष हो॥१०३॥

कर्तव्यो जगतमृद्ध्यै सेवायै च दिवौकसाम्।
भूलोकेऽस्मिन्महादेवि विमूढा जनता अपि॥१०४॥

हे महादेवि ! इस भूलोक में जनता अत्यन्त विमूढ़ है अतः प्रतिवर्ष होने वाले विवाह को देखकर भक्ति पूर्ण होकर नमन करेंगे, जगत की समृद्धि होगी और देवताओं की सेवा होगी ॥१०४॥

तां दृष्ट्वा भक्तितो नत्वा प्रयान्तु परमां गतिम्।
तथेत्याकाशवाण्या तु ददौ तस्योत्तरं परा ॥१०५॥

उस विवाहोत्सव को प्रतिवर्ष देखकर मनुष्य भक्तिपूर्ण होकर परम शान्ति को प्राप्त करेंगे परम गति का लाभ होगा यह प्रार्थना सुनकर उन परा भगवती ने आकाशवाणी से वैसा ही हो यह उत्तर दिया ॥१०५॥

विससर्ज च सर्वास्तान्स्वनिकेतनिवृत्तये।
तदद्भुततम शीलं स्मृत्वा स्मृत्वा मुहुर्मुहुः ॥१०६॥

उस अद्भुतशील का बार बार स्मरण करके उन देवी को नमस्कार करके वे सभी लोग अपने अपने निवास स्थल की ओर चले गए ॥१०६॥

तां नमस्कृत्य ते सर्वे ततो जग्मुर्यथागतम्।
पितामहस्तु हृष्टात्मा मुकुन्देन शिवेन च ॥१०७॥

उन भगवती को प्रणाम करके वे सभी लोग जहां से आए थे वहां वापस लौट गए पितामह ब्रह्मा, मुकुन्द विष्णु भगवान और भगवान शिव के साथ ॥१०७॥

सार्धं श्रीमन्दिरे तत्र मण्डपे तां निवेश्य च।
आराध्य वैदिकैः स्तोत्रैः साष्टाङ्गं प्रणनाम सः ॥१०८॥

उन्होंने वहां श्री मन्दिर में मंत्रों से युक्त उन्हें स्थापित कर वैदिक स्तोत्रों से प्रणाम किया ॥१०८॥

अथाकाशगिरा देवी ब्रह्माणमिदमब्रवीत्।
विष्णुं शिवं च स्वस्थाने समाधाय समाहितः ॥१०९॥

इसके बाद आकाशवाणी ने ब्रह्माजी से यह कहा-विष्णु शिव को अपने स्थान पर समाधान कर समाहित चित्त से ॥१०९॥

प्रतिसंवत्सरं तत्र सेवां कुरु दृढाशयः।
स्वयं व्यक्तमिह श्रीश मित्रेशाम्बसमन्वितम् ॥११०॥

हे दृढ़ाशय ब्रह्माजी ! आप विष्णु और शिव को अपने स्थान में बिठाकर प्रत्येक वर्ष वहां सेवा करों क्योंकि वहां श्रीश विष्णु मित्रेश अम्बिका से समान्वित हैं ॥११०॥

श्रीकामगिरिपीठं तु साक्षाच्छ्रीपुरमध्यगम्।
वामभागे श्रितं लक्ष्म्या विष्णुनान्यत्र सेवितम् ॥१११॥

क्योंकि वहां वामभाग में लक्ष्मी के साथ संयुक्त हैं श्री कामगिरिपीठ तो साक्षात् श्री ललितेश्वरी त्रिपुराम्बा का श्रीपुर मध्य स्थान है ॥१११॥

चिदानन्दाकाररूपं सर्वपीठाधिदैवतम्।
अदृश्यमूर्तिं सर्वाद्यमाराधय यथाविधि ॥११२॥

अतः चिदानन्दाकार रूप वाली समस्त पीठों की अधिदैवत देवी की अदृश्य मूर्ति को यथाविधि स्थापित करो, क्योंकि भगवती त्रिपुरेश्वरी ललिताम्बा अव्यक्त स्वरूप वाली हैं ॥११२॥

श्रीमनोहरनक्षत्रे कदलीनालिकेरकैः।
अर्चिष्यन्ति मनुष्यास्तल्लोकानामभिवृद्धये ॥११३॥

शुभ मन को प्रिय नक्षत्र में कदली (केला) नालिकेर (नारियल) उपचारों से मनुष्य अर्चना करेंगे उन लोकों की अभिवृद्धि के लिये ॥११३॥

इदानीं त्वं तदाभ्यर्च्य यथाविधि विधे मुदा।
मदुक्तमखिलं कृत्वा निजलोकं तु पालय ॥११४॥

इस समय तुम हे विधे ! आनन्द पूर्वक यथाविधि अर्चना करके मैंने जैसा तुमसे कहा है, उसके अनुसार अपने लोक का (ब्रह्माण्ड) का पालन करो ॥११४॥

इत्युक्तो भगवान्ब्रह्मा तथा कृत्वा तदीरितम्।
निक्षिप्य हृदि तां देवीं निजधाम जगाम सः ॥११५॥

इस प्रकार जब देवी ने कहा तब भगवान ब्रह्मा ने वैसा ही किया जो देवी ने कहा था, फिर हृदय में उन देवी को धारण कर वे अपने धाम (ब्रह्मलोक) में चले गए ॥११५॥

इति ते तत्त्वतः प्रोक्तं कामाक्षीशीलमद्भुतम्।
साक्षादेव महालक्ष्मीमिमां विद्धि घटोद्भव ॥११६॥

इस प्रकार श्री हयग्रीव जी ने अगस्त्यजी से कहा हे घटोद्भव ! हमने इस प्रकार भगवती कामाक्षी का अद्भुत शील चरित्र तुम से कहा ये साक्षात् ही महालक्ष्मी हैं, ऐसा तुम जानो ॥११६॥

य इदं शृणुयान्नित्यं यश्चापि प्रयतः पठेत्।
तस्य भुक्तिश्च मुक्तिश्च करस्था नात्र संशयः ॥११७॥

हे कुम्भज ! जो मनुष्य इस कामाक्षी चरित्र को नित्य ही प्रयत्न पूर्वक पाठ करेगा, उसके लिये भोग और मोक्ष दोनों हस्तगत हैं इसमें जरा सा भी संशय नहीं है ॥११७॥

बृहस्पतिसमो बुद्ध्या सर्वविद्याधिपो भवेत्।
आदिनारायणः श्रीमान्भगवान्भक्तवत्सलः ॥११८॥

बुद्धि से बृहस्पति के समान समसत विधाओं का अधिपति हो जाता है हे अगस्त्य जी ! भगवान भक्तवत्सल आदि नारायण श्रीमान् ने॥११८॥

तपसा तोषितः पूर्व मयापि चिरकालतः।
सारूप्यमुक्तिं कृपया दत्त्वा पुत्रस्य मे प्रभुः॥११९॥

मैंने भी चिरकाल तक तपस्या करके उन्हें प्रसन्न किया उससे उन आदि नारायण ने सारूप्य मुक्ति देकर मुझ पुत्र को सरूप्य मुक्तिप्रदान की॥११९॥

महात्रिपुरसुन्दर्या माहात्म्यं समुपादिशत्।
तत्प्रसादादहं किंचिद्वेद्मि वक्ष्ये नचान्यथा॥१२०॥

उन्होंने कृपा करके श्री महालक्ष्मी त्रिपुरसुन्दरी का माहात्म्य मुझे उपदेश के रूप में दिया उनके ही कृपा प्रसाद से ही मैं थोड़ा जानता हूं अब मैं कुछ भी अन्यथा नहीं कहूंगा॥१२०॥

रहस्यमन्त्रवद्वक्ष्ये शृणु तत्त्वं समाहितः।
न ब्रह्मा नच विष्णुर्वा न रुद्रश्च त्रयोप्यमी॥१२१॥

अब रहस्य मंत्र बताऊंगा, उसे तुम सावधानी से सुनो।। न ब्रह्मा न विष्णु और न ही रुद्र ये तीनों भी नहीं जानते॥१२१॥

मोहिता मायया यस्यास्तुरीयस्तु सचेश्वरः।
सदाशिवो न जानाति कथं प्राकृतदेवताः॥१२२॥

ये तीनों ही उनकी माया से मोहित हैं और वह सदाशिव भी नहीं जानते तब प्राकृत देवता आदिगण कैसे जान सकते हैं॥१२२॥

सदाशिवस्तु सर्वात्मा सच्चिदानन्दविग्रहः।
अकर्तुमन्यथाकर्तुं शक्तो यस्या अनुमहान्॥१२३॥

सदा शिव तो सभी आत्माओं की आत्मा हैं, तथा वे सच्चिदानन्द रूप हैं जिसके अनुग्रह से अकर्तुम् या अत्यथा काल क्रम गति को प्रभावित करने में समर्थ हैं॥१२३॥

सदेकचित्तदेवाहं मन्यमानो महेश्वरः।
तन्मायामोहितो भूत्वा ह्यवशः शवतामगात्॥१२४॥

मैं सदैव महेश्वर को मानने वाला हूं उनकी माया से मोहित होकर अवश होकर शवता को प्राप्त हो जाता हूं॥१२४॥

सैव कारणमेतेषामुत्पत्तौ च लयेऽपि च।
किंचिदत्र विशेषोऽस्ति वक्तव्यांशेऽपि तच्छृणु॥१२५॥

इन सब ब्रह्मा विष्णु महेश आदि सभी की उत्पत्ति, स्थिति विलय में कारण वहीं भगवती ललितेश्वरी ही हैं, परन्तु यहां बताने योग्य कोई विशेष अंश भी है उसे सुनो ॥१२५॥

ब्रह्मादीनां त्रयाणां च तुरीयस्त्वीश्वरः प्रभुः।
चतुर्णामपि सर्वेषामादिकर्ता सदाशिवः ॥१२६॥

ब्रह्मा विष्णु रुद्र चौथे ईश्वर इन चारों के आदिकर्ता सदाशिव हैं ॥१२६॥

एतद्रहस्यं कथितं तस्याश्चरितमद्भुतम्।
भूय एव प्रवक्ष्यामि सावधानमनाः शृणु ॥१२७॥

श्री हयग्रीव जी बोले हे कुम्भज ! लोपामुद्रापते ! इस रहस्य को मैंने तुमसे कह दिया है अब उनके और भी अद्‍भुत चरित्र हैं उनको पुनः बताऊंगा, उन्हें तुम सावधानी से सुनो ॥१२७॥

इति श्रीब्रह्माण्डपुराणे उत्तरखण्डे हयग्रीवागस्त्यसंवादे
ललितोपाख्याने पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥३५॥

॥श्रीमन्महागणाधिपतये नमः।।

श्रीमाताललिताम्बायै नमः श्रीपादुकां पूजयामि नमः॥
ॐ वन्दे गुरुपदद्वन्द्वं अवाङ्मनसगोचरम्॥
रक्तशुक्ल प्रभामिश्रमतर्क्यं त्रैपुरं महः॥
ॐ आराध्यदेवं भक्तानां कलिदोषविनाशकम्॥
वन्दे श्रीगिरिजानन्दं शारदाश्रीमठाधिपम्।।
ॐ अखण्डं यस्यज्ञानञ्च भक्तिर्यस्यानपायिनी।।
शारदाज्योतिरीशस्य दर्शनं (पूजनं, वन्दनं) शुभमस्तुनः।।

षट्त्रिंशोऽध्यायः 151 श्लोकात्मकः

[श्रीमत्त्रिपुरसुन्दर्या दशरथाय पुत्रवरदानम्॥]

श्री अगस्त्यजी बोले !

श्रीकामकोष्ठपीठस्था महात्रिपुरसुन्दरी।
किं किं विलासमकरोत् कामाक्षीत्यपि विश्रुता॥१॥

हे भगवन श्री हयग्रीवजी ! श्री काम कोष्ठ (कांची कामकोटि) पीठ में स्थित भगवती महात्रिपुर सुन्दरी श्री ललिताम्बा ने जो कामाक्षी नाम से भी प्रसिद्ध हैं उन्होंने इस भूण्मडल में कौन-कौन से विलास पूर्ण कार्य किये॥१॥

श्रीकामाक्षीति सा देवी महात्रिपुरसुन्दरी।
भूमण्डलस्थिता देवी किं करोति महेश्वरी॥२॥

वे भगवती महात्रिपुर सुन्दरी ललिताम्बा महेश्वरी इस भू-मण्डल में स्थित होकर क्या करती है? हे प्रवचन करने वालों में श्रेष्ठ प्रवक्ता! इनके दिव्यचरित को मुझे सुनाने की कृपा कीजिये॥२॥

एतस्याश्चरितं दिव्यं वद से बदतां वर ।
अत्र स्थितापि सर्वेषां हृदयस्था घटोद्भव॥३॥

श्री हयग्रीव जी बोले-

हे कुम्भज ! वह भगवती भूमण्डल में इस काञ्चीपीठ में स्थित होकर भी समस्त प्राणियों (चर, अचर, अर्धचर आदि) के हृदय में स्थित रहती हैं ।।3।।

न तत्कर्मानुरूपं सा प्रदत्ते देहिनां फलम्।
यत्किंचिद्वर्तते लोके सर्वमस्या विचेष्टितम्॥४॥

वे भगवती समस्त प्राणियों को उनके कर्मों के अनुरूप फल देती हैं इस लोक में जो कुछ भी

हो रहा है वह सभी इनकी इच्छा से हो रहा है ॥४॥

किंचिच्चिन्तयते कश्चित्स्वच्छन्दं विदधात्यसौ।
यस्या एवावतारास्तु त्रिपुराद्याश्च शक्तयः ॥५॥

कोई कुछ चिन्तन करता है यह भगवती स्वच्छन्द रूप से स्वयं विधान करती हैं, उन्हें किसी भी निमित्त की आवश्यकता नहीं रहती, जिसके ये अवतार ही जो विभिन्न रूपों में हुए हैं और वे शिवशक्ति रूप में हैं ये सभी उन त्रिपुरा की शक्तियां हैं ये सभी अवतार सृष्टि, पालनादि में सहकारी होते हैं ॥५॥

इयमेव महालक्ष्मीः ससर्जात्र त्रयं पुरा।
पुंसां त्रयाणामावासं शक्तीनां तिसृणामपि ॥६॥

इन महालक्ष्मी ने पूर्वकाल में तीन अण्डों का सृजन किया तीनों शक्तियां का आवास वे महात्रिपुर सुन्दरी ही थीं ॥६॥

एकस्मादण्डतो जातावम्बिकापुरुषोत्तमौ।
श्रीविरिञ्ची ततोऽन्यस्मात्परस्माद्भारतीशिवौ ॥७॥

एक अण्ड से अम्बिका और पुरुषोत्तम (विष्णु) हुए, दूसरे से श्री और विरञ्चि हुए और एक और अन्य से भारती (सरस्वती) और शिव हुए ॥७॥

इन्दिरां योजयामास मुकुन्देन महेश्वरी।
पार्वत्या परमेशानं सरस्वत्या पितामहम् ॥८॥

उन भगवती महेश्वरी त्रिपुराम्बा ने मुकुन्द विष्णु के साथ इन्दिरा लक्ष्मी जी को युक्त किया, परम ईशान शिव के साथ भगवती पार्वती संयुक्त हुईं और पितामह ब्रह्मा भारती सरस्वती से संयुक्त हुए ॥८॥

ब्रह्माणं सर्वलोकानां सृष्टिकार्ये न्ययुङ्क्त सा।
वासुदेवं परित्राणे संहारे च त्रिलोचनम् ॥९॥

उन सर्वशक्तिमयी त्रिपुराम्बा ने ब्रह्माजी को समस्त लोकों की सृष्टिकार्य में नियुक्त किया, भगवान वासुदेव विष्णु को रक्षा में पालन कार्य में नियुक्त किया तथा संहारकार्य में त्रिलोचन रुद्र को नियुक्त किया ॥९॥ यही बात सौन्दर्यलहरी स्तोत्र में भगवान आद्य शंकराचार्य जी ने कहा है आगे है। सौन्दर्यलहरी स्तोत्र में भगवान आद्य शंकराचार्य जी ने भी यही कहा है। वह इस प्रकार हैं-ः

जगत्सूते धाता हरिरवति रुद्रः क्षपयते। तिरस्कुर्वन्नेतत्स्वमपि वपुरीशस्तिरयति।।
सदापूर्वः सर्वं तदिदमनुगृह्णाति शिव। स्तवाज्ञामालम्ब्य क्षणचलितयोर्भ्रूलतिकयोः ।। सौःलं.24।।

त्रयोऽपि च महालक्ष्मीं ध्यायन्तः सर्वदा मुदा।
ब्रह्मलोके च वैकुण्ठे कैलासे च वसन्त्यमी ॥१०॥

वे सभी तीनों युग्म देव ब्रह्माजी भारती सहित ब्रह्मलोक में निवास करते हैं लक्ष्मी जी के साथ विष्णु बैकुण्ठ में तथा पार्वती जी के साथ शिव कैलास में निवास करते हैं ॥१०॥

कदाचित्पार्वती देवी कैलासशिखरे शुभे।
विहरन्ती महेशस्य पिधानं नेत्रयोर्व्यधात् ॥११॥

किसी समय भगवती पार्वती देवी ने शुभ कैलास पर विहार करते हुए शंकर जी के दोनों नेत्रों को हाथों से ढंक दिया ॥११॥

चन्द्रसूर्यौ यतस्तस्य नेत्रे तस्माज्जगत्त्रयम्।
अन्धकारावृतमभूदनेनस्कं समन्ततः ॥१२॥

भगवान शिव के दोनों नेत्र चन्द्र और सूर्य हैं इन प्रकाशात्मक दोनों के ढंग जाने से तीनों लोकों में घना अंधेरा चारों ओर व्याप्त हो गया घना अंधकार के छाने से सभी जगत् प्रक्रिया असंतुलित हो गईं ॥१२॥

ततश्च सकला लोकास्त्यक्तदेवपितृक्रियाः।
इतिकर्तव्यतामूढा न प्राज्ञायत किंचन ॥१३॥

नेत्रों में पलक आने से उनके ढंक लेने से समस्त लोकों में देव पूजा पितृतर्पणादि समस्त क्रिया उच्छिन्न हो गईं इस किंकर्तव्यमूढ़ता का कारण किसी को समझ में ही नहीं आ रहा था ॥१३॥

तद्द्रष्ट्वा भगवानुद्रः पार्वतीमिदमब्रवीत्।
त्वया पापं कृत देवि मम नेत्रपिधानतः ॥१४॥

इस प्रकार लोकों की अस्थिरता को देखकर भगवान रुद्र पार्वती जी यह बोले-देवि ! तुमने मेरे चन्द्र सूर्य नेत्रों को बन्द करके पापाचरण किया है ॥१४॥

ऋषयस्त्यक्ततपसो हतयज्ञाश्च वैदिकाः।
सर्वं च वैदिकं कर्म त्वया नाशितमम्बिके ॥१५॥

चन्द्र और सूर्य के लुप्त होने से अन्धकार छा गया लोकों में तब जितने ऋषिगण उनकी तपस्या भंग हो गई जितने भी वैदिक थे उनकी समस्त यज्ञ प्रक्रियायें अंधकार से आहत हो गईं समस्त वैदिक लौकिक तुम्हारे द्वारा मेरे दोनों नेत्रों को हाथों से ढंगने के कारण यह विषम स्थिति समस्त लोकों में व्याप्त हो गई है ॥१५॥

तस्मात्पापस्य शान्त्यर्थं तपः कुरु सुदुष्करम्।
गत्वा काश्यां व्रतं तत्र किंचित्कालं समाचर ॥१६॥

इसलिए पाप की शान्ति के लिये अत्यन्त कठोर तप करो और तप, व्रत का पालन करो, तुम काशी में जाकर कुछ समय तक करो॥१६॥

पश्चात्काञ्चीपुरं गच्छेः (गत्वा) कामाक्षी तत्र राजते।
आराधय स्वयं नित्यां सर्वपापहरां शिवाम्॥१७॥

काशीपुरी के बाद कांचीपुर में जाकर वहां भगवती कामाक्षी विराजमान हैं वहां उन समस्त हरण करने वाली शिवा की नित्य स्वयं सेवा करो॥१७॥

तुलसीमग्रतः कृत्वा कम्पाकूले तपः कुरु।
इत्यादिश्य महादेवस्तत्रैवान्तरधीयत॥१८॥

तुलसी को सामने करके कम्पा नदी के किनारे तपाचरण करो ऐसा आदेश करके भगवान महादेव वहीं से अन्तर्हित हो गए॥१८॥

तथा कृतवती सापि भर्तुराज्ञानुवर्तिनी।
चिरेण तपसा क्लिष्टामनन्यहृदयां शिवाम्॥१९॥

तब पार्वती ने पति की आज्ञा मानकर वैसा ही पालन किया तब बहुत समय बीत जाने पर कठोर तप करने वाली पार्वती के सामने उपस्थित होकर भगवती कामाक्षी ने कहा-॥१९॥

अग्रतः कृतसांन्निध्या कामाक्षी वाक्यमब्रवीत्।
वत्से तपोभिरत्युग्रैस्तव प्रीतास्मि सुव्रते॥२०॥

कठोर तप करने वाली अनन्य हृदय पार्वती के सामने भगवती कामाक्षी बोलीं पुत्रि ! सुव्रते !! वत्से !!! तुम्हारे द्वारा किये गये अत्युग्र तप से मैं सुप्रसन्न हूं॥२०॥

उन्मील्य नयने पश्चात्पार्वती स्वपुरः स्थिताम्।
बालार्कायुतसंकाशां सर्वाभरणभूषिताम्॥२१॥

बाद में यह सुनकर पार्वती ने अपने नेत्रों को खोला तो देखा सामने खड़ी हुई भगवती हैं वे बाल सूर्य के समान अरूण वर्ण की थीं वे समस्त आभूषणों को धारण की हुई थी॥२१॥

किरीटहारकेयूर कटकाद्यैरलंकृताम्।
पाशाङ्कुशेक्षुकोदण्ड चापबाणल सत्कराम्॥२२॥

वे भगवती मुकुट हार, केयूर करधनी आदि अलंकारों से सर्वांग विभूषित थीं, उन्होंने अपने चारों हाथों में पाश, अंकुश, इक्षुधनुष पंचसायक धारण की हुई थीं॥२२॥

किरीट मुकुटोल्लासि चन्द्ररेखाविभूषणाम्।
विधातृहरिरुद्रेश सदाशिवपदप्रदाम्॥२३॥

वे भगवती जिनके किरीट मुकुट में निष्कलंक चन्द्र कला विभूषित थीं, वे ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर और सदाशिव को पद देने वाली थीं ॥२३ ॥

सगुणं ब्रह्म यामाहुस्तथोत्तरपदाभिधाम्।
प्रपञ्चद्वयनिर्माणकारणां च पराम्बिकाम् ॥२४ ॥

प्रपञ्च, अर्थात वे सगुण साकार ब्रह्म तथा निर्गुण निराकार ब्रह्म का निर्माण करने वाली है ऐसी पराम्बिका हैं, जिनको सगुण ब्रह्म साकार कहा गया है वे दोनों प्रपंचों का निर्माण करने वाली थीं ॥२४ ॥

तां दृष्ट्वाथ महाराज्ञीमानन्दाश्रुपरिप्लुता।
पुलकाञ्चितसर्वाङ्गी हर्षेणोत्फुल्ललोचना ॥२५ ॥

उन महाराज्ञी महात्रिपुर सुन्दरी भगवती को सामने उपस्थित देखकर पार्वती जी के रोमाञ्च हो गया आनन्द के आंसु बहने लगे और हर्ष से नेत्र खिल उठे ॥२५ ॥

चण्डिका मङ्गलाद्यैश्च सहासस्वरवीजनैः।
प्रणिपत्य च साष्टाङ्गं कृत्वा चैव प्रदक्षिणाम् ॥२६ ॥

तब पार्वती जी ने चण्डिका, मंगला आदि अपनी सखियों के साथ महाराज्ञी को साष्टांग प्रणाम किया और परिक्रमा की ॥२६ ॥

बद्धाञ्जलिपुटा भूयः प्रणता स्वैक्यरूपिणी।
ननाम कृपया वीक्ष्य महात्रिपुरसुन्दरी ॥२७ ॥

हाथ जोड़कर नमन करती हुई अपने में ही ऐक्य रूपिणी पार्वती ने प्रणाम किया तब यह देखकर भगवती महात्रिपुर सुन्दरी ललिताम्बा कामाक्षी ने कहा ॥२७ ॥

बाहुभ्यां संपरिष्वज्य सस्नेहमिदमब्रवीत् ।
वत्से लभस्व भर्तारं रुद्रं स्वस्थानसंस्थितम् ॥२८ ॥

भगवती कामाक्षी ने अपनी बाहों से आलिंगन कर स्नेह पूर्वक यह कहा वत्से! तुम अपने मनवांछित पति को रुद्र को प्राप्त करो जो अपने स्थान में सुस्थित हैं ॥२८ ॥

लोके त्वमपि रक्षार्थ ममाज्ञामनुवर्तय।
अहं त्वमिति को भेदस्त्वमेवाहं न संशयः ॥२९ ॥

लोक में तुम भी लोक रक्षा के लिए मेरी आज्ञा का पालन करो मुझमें और तुममें कोई भेद नहीं है, इस में जरा सा भी संदेह नहीं है ॥२९ ॥

किं पापं तव कल्याणि त्वं हि पापनिकृन्तनी।
आमनन्ति च योगीन्द्रास्त्वामेव ब्रह्मरूपिणीम् ॥३० ॥

भगवती महात्रिपुर सुन्दरी ने कहा कल्याणी ! तुम्हारा क्या पाप है अरे तुम तो पापों को नष्ट करने वाली हो, समस्त योगीन्द्रगण तुमको ब्रह्मरूपिणी मानते हैं ॥३०॥

लीलामात्रमिदं वत्से परलोकविडम्बनम्।
इत्यूचुषीं महाराज्ञीमम्बिका सर्वमङ्गला ॥३१॥

हे वत्से ! यह तो लीला मात्र है कि मैं और तुम अलग अलग हो, यह तो लोक की विडम्बना मात्र है, यह भगवती सर्व मंगला ने अम्बिका ने महाराज्ञी त्रिपुर सुन्दरी को देखते हुए कहा ॥३१॥

भक्त्या प्रणम्य पश्यन्ती परां प्रीतिमुपाययौ।
स्तुवन्त्यामेवं पार्वत्यां तदानीमेव सा परा ॥३२॥

भगवती पार्वती भगवती महात्रिपुर सुन्दरी को प्रणाम करके उन्हें देखती हुई परम प्रीति से युक्त हो गईं तब वह परा भगवती स्तुति करती हुईं पार्वती के श्रीविग्रह में ॥३२॥

प्रविष्टा हृदयं तस्याः प्रहृष्टाया महामुने।
अथ विस्मयमापन्ना चिन्तयन्ती मुहुर्मुहुः ॥३३॥

हे महामुनि अगस्त्य ! वे भगवती उन अत्यन्त हर्षमग्न पार्वती के हृदय में प्रविष्ट हो गईं तब बार-बार चिन्तन करती हुईं भगवती पार्वती विस्मय युक्त हो गईं ॥३३॥

स्वप्नः किमेष दृष्टो वा मया किमथवा भ्रमः।
इत्थं विमृश्य परितः प्रेरयामास लोचने ॥३४॥

तब पार्वती जी सोचने लगीं कि यह जो अनुभूत हुआ जो मैंने देखा वह स्वप्न है या और कोई भ्रम है इस प्रकार चिन्तन करती हुई वे सभी ओर विस्मय से देखने लगीं ॥३४॥

जया च विजया पश्चात्सख्यावालोक्य सस्मिते।
प्रसन्नवदना सा तु प्रणते वदतिस्म सा ॥३५॥

चारों ओर देखने पर जया और विजया ये दोनों सखियां भी मुस्करा रही थीं, तब प्रसन्नवदना पार्वती जी उनसे बोलीं ॥३५॥

एतावन्तमहं कालं कुत्रायाते युवां प्रिये।
मया दृष्टा तु कामाक्षी युवां च किमपश्यतम् ॥३६॥

हे सखियों ! तुम लोग इतने समय तक कहां थीं, मैंने जिन भगवती कामाक्षी को देखा है, क्या तुम लोगों ने भी देखा है ॥३६॥

सख्यौ तु तद्वचः श्रुत्वा प्रहर्षोत्फुललोचने।
पुष्पाणि पूजनार्हाणि पुरतोऽस्या निधाय तु ॥३७॥

वे दोनों जया विजया सखियां पार्वती जी के वचनों को सुनकर हर्ष से खिले नेत्रों वाली उन दोनों ने पूजा योग्य पुष्पों को उनके सामने रख कर ॥३७॥

सत्यमेवाधुना दृष्टा ह्यावाभ्यामपि सा परा।
न स्वप्नो न भ्रमो वापि साक्षात्ते हृदयं गता ॥३८॥

यह सत्य है कोई भ्रम या स्वप्न नहीं है हमने भी देखा है और यह भी देखा है कि वे आपके हृदय में प्रवेश कर गयी हैं ॥३८॥

इत्युक्त्वा पार्श्वयोस्तस्या निषण्णे विनयानते।
एकाम्रमूले भगवान्भवानीविरहार्तिमान् ॥३९॥

उन दोनों सखियों के विनय पूर्वक यह करने पर तथा उन दोनों के दोनों पाश्वों (बगलों में) बैठ जाने पर पार्वती जी ने एक आम्र की जड़ में भवानी के विरह में व्याकुल भगवान शिव ॥३९॥

गौरीसंप्राप्तये दध्यौ कामाक्षीं नियतेन्द्रियः।
तत्रापि कृतसांनिध्या श्रीविद्यादेवता परा ॥४०॥

भगवती गौरी की प्राप्ति के लिये नियतेन्द्रिय होकर भगवती का ध्यान किया वहां भी जहां शिव थे पराभगवती श्रीविद्या सन्निधि में ॥४०॥

आचष्ट कृपया तुष्टा ध्यायन्तं निश्चलं शिवम्।
अलं ध्यानेन कंदर्पदर्पघ्न त्वं ममाज्ञया ॥४१॥

वहां भी भगवती पहुंची और देखा ध्यान करते हुए निश्चल शिव को देखा वे बोलीं हे दर्पघ्न! शिव!! पर्याप्त हुआ ध्यान अब तुम मेरी आज्ञा से ॥४१॥

अङ्गीकुरुष्व कंदर्पं भूयो मच्छासने स्थिताम्।
एकाम्रसंज्ञं मत्पीठमिहैव निवसन्सदा ॥४२॥

अब तुम पुनः मेरे शासन में कामदेव को स्वीकार करो, एकाम्र नामक इस मेरे पीठ में यहीं सदा निवास करते हुए ॥४२॥

त्वमेवागत्य मत्प्रीत्यै संनिधौ मम सुव्रत।
गौरीमनुगृहाण त्वं कम्प्रानीरनिवासिनी ॥४३॥

हे सुव्रत ! शिव !! मेरी प्रसन्नता के लिये मेरी सन्निधि में तुम स्वयं आकर कम्पा नदी के किनारे निवास करने वाली गौरी को अनुगृहीत करो ॥४३॥

कामद्वयं त्यजेदाशु योगजं तद्वियोगजम्।
इत्युक्त्वान्तर्दधे तस्य हृदये परमा रमा ॥४४॥

अब तुम पार्वती के योग में होने वाले तथा उनके वियोग से होने दोनों संतापों को नष्ट कर दो, ऐसा कहकर वे देवी अन्तर्हित हो गई वे परमा रमा हृदय में ॥४४॥

शिवोऽप्युत्थाय सहसा धीरः संहृष्टमानसः।
तस्या अनुग्रहं लब्ध्वा सर्वदेवनिषेवितः ॥४५॥

धैर्यशाली प्रसन्नचित्त भगवान शिव भी उन भगवती का अनुग्रह प्राप्त कर हृदय में उन्हीं का ध्यान करते हुए सभी देवों से सेवित हुए ॥४५॥

हृदि ध्यायंश्च तामेव महात्रिपुरसुन्दरीम्।
यद्विलासात्समुत्पन्ना लयं यान्ति च यत्र वै ॥४६॥

हृदय में उन्हीं महात्रिपुर सुन्दरी का ध्यान करने लगे जिन भगवती के विलास मात्र से समस्त चराचर जगत् उत्पन्न होता है स्थिति को प्राप्त करता है तथा अंत में उन्हीं में ही लीन भी हो जाता है ॥४६॥

जगच्चराचरं चैतत्प्रञ्चद्वितयात्मकम्।
भूषयन्तीं शिवाङ्कं यामनुकम्पार्द्रमानसाम् ॥४७॥

जिन भगवती महात्रिपुर सुन्दरी के विलास से यह चराचरात्मक जगत् जो कि स्थावर जंगम दो प्रपंचों वाला है वह समूल जिनमें विलीन हो जाता है। इस प्रकार भगवती के अनुग्रह से वे गौरी जो कम्पा नदी के तट में तप कर रहीं थीं वे शिव के वहां पहुंचने पर उनके अंक में विराजित हुईं ॥४७॥

अङ्गीकृत्य तदा गौरीं वैवाहिकविधानतः।
आदाय वृषमारुह्य कैलासशिखरं ययौ ॥४८॥

इस प्रकार भगवान शिव ने कम्पातीर निवासिनी गौरी को वैवाहिक विधानों से स्वीकार कर उन्हें लेकर वृषारुढ़ हो कैलास शिखर की ओर चले गए ॥४८॥

पुनरन्यन्महाप्राज्ञ समाकर्णय कुम्भज।
आदिलक्ष्म्याः प्रभावं तु कथयामि तवानघ ॥४९॥

हे महाप्राज्ञ ! कुम्भज ! अगस्त्य ! ! पुनः अन्य वृत्तान्त सुनो हे अनघ ! अब मैं आदि लक्ष्मी के प्रभाव को कहता हूं ॥४९॥

सभायां ब्रह्मणो जातु समवेतास्त्रिमूर्तयः।
दिक्पालाश्च सुराः सर्वे सनकाद्याश्च योगिनः ॥५०॥

ब्रह्मा जी की सभा में त्रिमूर्ति शिव विष्णु और ब्रह्मा सभी दिक्पाल, सभी देवगण तथा सनकादि योगिगण इकट्ठे हुए ॥५०॥

देवर्षयो नारदाद्या वसिष्ठाद्याश्च तापसाः।
ते सर्वे सहितास्तत्र ब्रह्माणं च कपर्दिनम्॥५१॥

नारदादि देवर्षिगण वसिष्ठादि तापस गण एकत्रित हुए तब वहां सभी लोग ब्रह्मा और कपर्दी शिव में दोनों के पांच पांच मुख होने से पहिचान नहीं पा रहे थे॥५१॥

द्वयोः पञ्चमुखत्वेन भेदेन विविदुस्तदा।
अन्योन्यं पृष्टवन्तस्ते ब्रह्मा कः कश्च शंकरः॥५२॥

उस सभा में ब्रह्मा और शिव के पांच-पांच मुख होने से समझ नहीं पा रहे थे कि कौन ब्रह्मा और कौन शंकर॥५२॥

तेषां संवदतां मध्ये क्षिप्रमन्तर्हितः शिवः।
तदा पञ्चमुखो ब्रह्मासीनो नारायणस्तयोः॥५३॥

उन परस्पर बोलने वालों के मध्य में शीघ्र ही भगवान शिव अन्तर्हित हो गए तब सभा में पंचमुख ब्रह्मा और श्वेतवर्ण नारायण थे॥५३॥

उभयोरपि संवादस्तदा ब्रह्माणमब्रवीत्।
अज मन्नाभिकमलाज्जातस्त्वं यन्ममात्मजः॥५४॥

उन दोनों में ब्रह्मा और विष्णु में संवाद होने लगा, उसमें विष्णु बोले अज ! तुम मेरे नाभिक मल से उत्पन्न हुए हो अतः तुम मेरे आत्मज (पुत्र) हो॥५४॥

सृष्टिकर्ता त्वहं ब्रह्मा नामसाधर्म्यतस्तथा।
त्वं च रुद्रश्च मे पुत्रौ सृष्टिकर्तुरुभौ युवाम्॥५५॥

जिस ब्रह्मा का अर्थ सृष्टि करने वाला तो सृष्टि करने वाला मैं ही हुआ, क्योंकि मैंने तुम्हें नाभिकमल में उत्पन्न किया है ऐसी स्थिति में तुम और रुद्र दोनों ही मेरे पुत्र हो॥५५॥

इति मायामोहितयोरुभयोरन्तरे सह।
तयोश्च स्वस्य माहात्म्यमहं ब्रह्मेत्यदर्शयत्॥५६॥

तब माया से मोहित उन दोनों ब्रह्मा और विष्णु के बीच मे महान् हूं मेरा माहात्म्य अधिक है मैं ब्रह्मा हूं यह प्रदर्शन किया॥५६॥

प्रादुरासीन्महाज्योतिस्स्तम्भरूपो महेश्वरः।
ज्ञात्वैवैनं महेशानं विष्णुस्तूष्णीं ततः स्थितः॥५७॥

इसी बीच में महान् ज्योतिस्तम्भ के रूप में महेश्वर प्रकट हो गए यह महेश ही हैं ऐसा समझकर विष्णु चुप होकर एक तरफ बैठ गए॥५७॥

पञ्चवक्त्रस्ततो ब्रह्मा अमत्यैव समास्थितः।
ब्रह्मणशिरसामूर्ध्वं ज्योतिश्चक्रमभूत्पुरः॥५८॥

उसके बाद पंचमुख वाले ब्रह्मा उस ज्योतिस्तम्भ को मान्यता न देते हुए खड़े हो गए, तब ब्रह्मा के सिरों के ऊपर जो ज्योतिश्चक्र था॥५८॥

तन्मध्ये संस्थितो देवः प्रादुरासोमया सह।
ऊर्ध्वमुत्क्षिप्य भूयस्तमवमत्य वचोऽब्रवीत्॥५९॥

उसके मध्य में संस्थित देव भगवती उमा के साथ प्रकट होकर स्थित थे, तब ब्रह्मा जी ने ऊपर की ओर देखा और अवहेलना (उपेक्षा) करके वचन बोले॥५९॥

तन्निशम्य भृशं क्रोधमवाप त्रिपुरान्तकः।
विष्णुमेवं तदालोक्य क्रोधेनेवाविकारतः॥६०॥

ब्रह्माजी के अवहेलनात्मक वचनों को सुनकर त्रिपुरान्तक शिव अत्यन्त क्रोधपूर्ण हो गए, इस प्रकार विष्णु को देखकर क्रोध के ही विकार से॥६०॥

तयोरेव समुत्पन्नो भैरवः क्रोधसंयुतः।
मूर्धानमेकं चिच्छेद नखेनैव तदा विधेः॥६१॥

क्रोध से युक्त भैरव समुत्पन्न हो गए तब उन भैरव ने ब्रह्मा के मूर्धा में स्थित मस्तक को नख से ही छिन्नकर दिया॥६१॥

हाहेति तत्र सर्वेऽपि क्रन्दन्तश्च पलायिताः।
अथ ब्रह्मकपालं तु नखलग्नं स भैरवः॥६२॥

भैरव द्वारा नख से ब्रह्मकपाल छिन्नकर देने पर वहां हाहाकार मच गया तथा वहां उपस्थित सभी लोग चिल्लाते हुए भाग गए यहां जो ब्रह्मकपाल छिन्न था वह भैरव के नख में चिपका हुआ था॥६२॥

भूयोभूयो धुनोतिस्म तथापि न मुमोच तत्।
तद्ब्रह्महत्यामुक्त्यर्थं चचार धरणीतले॥६३॥

बार बार हाथ के कांपने पर भी वह नख से अलग नहीं हो रहा था, तब उस ब्रह्महत्या से मुक्त होने के लिये भैरव धरणीतल में अनेक स्थानों पर घूमे॥६३॥

पुण्यक्षेत्राणि सर्वाणि गङ्गाद्याश्च महानदीः।
न तु ताभिर्विमुक्तोऽभूत्कपाली ब्रह्महत्यया॥६४॥

समस्त पुण्यक्षेत्र में जाने पर भी और समस्त देवनदियों गंगाजी आदि में भी परन्तु उस ब्रह्म हत्या

से वे कपाली मुक्त नहीं हो सके ॥६४॥

विषण्णवन्महादीनो निःश्रीक इव लक्षितः।
चिरेण प्राप्तवान्कांचीं ब्रह्मणा पूर्वमुज्झिताम् ॥६५॥

तब वे कपाली दुःखी मुख वाले शिव श्रीरहित दिख रहे थे बहुत काल तक विभिन्न पुण्य क्षेत्रों में भ्रमण करने के बाद यदृच्छया (आत्मप्रेरणा) से पहिले निवास की हुई नगरी कांची में पहुंचे ॥६५॥

तत्र भिक्षामटन्नित्यं सेवमानः परां श्रियम्।
पञ्चतीर्थे प्रतिदिनं स्नात्वा भूलक्षणाङ्किते ॥६६॥

वहां उस कांची नगरी में रोज भिक्षाटन करते हुए परा भगवती श्रीदेवी की सेवा करते हुए रह रहे थे, वे भूलक्षणों से अंकित पंचतीर्थ में प्रतिदिन स्नान करते थे ॥६६॥

कंचित्कालं चकारोग्रं प्रभ्रान्त इव विह्वलः।
काञ्चीक्षेत्रनिवासेन क्रमेण प्रयताशयः ॥६७॥

कुछ समय तक भूले भटके से दुःखी अवस्था में वहां निवास करते रहे कांचीक्षेत्र में निवास करने से उन प्रयत्नशील ॥६७॥

निर्धूतनिखिलातङ्कः श्रीदेवीं मनसा वहन्।
उत्तरे सेवितुं लक्ष्म्या वासुदेवेन दक्षिणे ॥६८॥

आशय वाले के समस्त आतंकभाव और चेष्टाएं समाप्त हो गईं वे मन से श्रीदेवी भगवती का स्मरण करते हुए उत्तर में लक्ष्मीजी की सेवा की और दक्षिण में भगवान वासुदेव की पूजा की ॥६८॥

श्रीकामकोष्ठमागत्य पुरस्तात्तस्य संस्थितः।
आदिलक्ष्मीपदध्यान माततान यतात्मवान् ॥६९॥

फिर श्री कामकोटि क्षेत्र में आकर उसके सामने स्थित हो गए और संयत होकर वे भैरव रूप शंकर आदि लक्ष्मी के श्री चरणों के ध्यान में मग्न हो गए ॥६९॥

यथा दीपो निवातस्थो निस्तरङ्गो यथाम्बुधिः।
तथान्तर्वायुरोधेन न चचाळाऽचलेश्वरः ॥७०॥

जिस प्रकार वायु रहित स्थान में स्थापितदीप निश्चल होता है तथा तरंग रहित समुद्र जैसे शान्त रहता है, उसी तरह प्राणायाम से वायु का नियन्त्रण करने से वे अचलेश्वर निश्चल स्थिर हो गए थे ॥७०॥

तैलधारावदाच्छिन्नामनवच्छिन्नभैरवः।
वितेने शैलतनयानाथः श्रीध्यानसंततिम् ॥७१॥

वे समाधि में तैल धारावत् अनवच्छिन्न (एक लय) होकर वे भैरव शैलतनयनाथ श्री भगवती के ध्यान में स्थिर हो गए वह उनकी ध्यान मगनता की सन्तति विस्तार सबसे अपूर्व था यहां तक कि ॥७१ ॥

न ब्रह्मा नैव विष्णुर्वा न सिद्धः कपिलोऽपि वा।
नान्ये च सनकाद्या वा मुनयो वा शुकादयः॥७२॥

न ब्रह्मा न ही विष्णु न सिद्ध कपिल मुनि अन्य सनकादिकों की तथा मुनिगणों श्री शुकादि की भी वैसी नहीं हुई जैसी समाधि की स्थिरता उनकी हुई ॥७२ ॥

तथा समाधिनिष्ठायां न समर्थाः कथंचन।
अथ श्रीभावयोगेन श्रीभावं प्राप्तवाञ्छिवः॥७३॥

जो समाधिनिष्ठता भगवान शिव की हुई वैसी समाधिनिष्ठता में कोई भी इस सृष्टि में किसी भी प्रकार समर्थ होता वे भगवान इस तरह तैलधारावत् श्री भावयोग से भगवान शिव ने श्रीभाव को प्राप्त कर लिया ॥७३ ॥

ततः प्रसन्ना श्रीदेवी प्रभामण्डलवर्तिनी।
अर्धरात्रे पुरः स्थित्वा वाचं प्रोवाच वाङ्मयी॥७४॥

तब प्रकाश मण्डल में रहने वाली श्रीदेवी ने प्रसन्न हो अर्धरात्रि (निशीथकाल में) में शिव के सामने स्थित तो वह वाङ्मयी वाणी में कहा ॥७४॥

श्रीकण्ठ सर्वपापघ्न किं पापं तव विद्यते।
मद्रूपस्त्वं कथं देहः सेयं लोकविडम्बना॥७५॥

श्री कण्ठ ! तुम समस्त पापों का खण्डन करने वाले हो कहां से पापबन्धन होगा तुम तो मेरे रूप वाले हो यह देह का भेद तो लोक विडम्बना मात्र है, इस माया के प्रभाव से लोग तुम्हें और मुझे भिन्न भिन्न समझते हैं ॥७५ ॥

श्रीभूते ब्रह्महत्यायाः क्षणान्मुक्तो भविष्यसि।
इत्युक्त्वान्तर्दधे तत्र महासिंहासनेश्वरी॥७६॥

कल सबेरा होने पर ब्रह्महत्या के पाप से क्षणभर में मुक्त हो जाओगे, ऐसा कहकर वे सिंहासनेश्वरी भगवती अन्तर्हित हो गईं।॥७६ ॥

भैरवोऽपि प्रहृष्टात्मा कृतार्थः श्रीविलोकनात्।
निनाय तं निशाशेषं श्रीध्यानैकपरायणः॥७७॥

भगवती श्रीदेवी के दर्शन हो जाने से कृतार्थ भैरव की आत्मा हर्षित हो गई, फिर वे उन्होंने शेष

रात्रि में उन्हीं श्री देवी के ध्यान लीन हो गए॥७७॥

प्रातः पञ्चमहातीर्थे स्नात्वा संध्यामुपास्य च।
पुनःपुनर्धुनोतिस्म करलग्नं कपालकम्॥७८॥

प्रातः पंचमहातीर्थ में स्नानकर और संध्योपासना करके वे भैरव बार बार कर लग्न कपाल को हिलाने लगे॥७८॥

तथापि तत्तु नास्त्रंसत्स निर्वेदं परं गतः।
स्वप्नः किमेष माया वा मानसीभ्रान्तिरेव वा॥७९॥

वैसी चेष्टा करने पर भी वह हाथ से नहीं गिरा तो वे पुनः दुःखी हो गए और सोचने लगे कि रात्रि जो देखा सुना वह केवल स्वप्न ही तो नहीं था या कोई माया थी या मन की भ्रान्ति ही थी॥७९॥

मुहुरेवं विचिन्त्येशः सोऽभवद्व्याकुलाशयः।
स्वयमेव निगृह्याथ शोकं धीराग्रणीः शिवः॥८०॥

बार-बार इस प्रकार विचार कर ईश्वर भैरव का मन हृदय व्याकुल हो गया, फिर उन्होंने उस शोक वेग को स्वयं धैर्य धारण कर निग्रहीत किया॥८०॥

तुलसीमण्डलं नत्वा पूजयित्वा पुरः स्थितः।
निगृहीतेन्द्रियग्रामः समाधिस्थोऽभवत्पुनः॥८१॥

और तुलसी मण्डल को नमन कर भगवती श्री देवी के सामने स्थित होकर समस्त इन्द्रिय समूह पर नियन्त्रण कर पुनः समाधिस्थ हो गए॥८१॥

याममात्रे गते देवी पुनः सांनिध्यमागता।
अलं समाधिना शंभो निमज्जात्र सरोजले॥८२॥

रात्रि के कुछ समय बीत जाने पर वे देवी पुनः सान्निध्य में आईं और उनसे कहा शम्भो ! समाधि बहुत हो चुकी तुम अब इस सरोवर में स्नान करो॥८२॥

इत्यादिश्य तिरोधत्त सोऽपि चिन्तामुपागमत्।
इयं च माया स्वप्नो वा किं कर्तव्यं मयाथवा॥८३॥

ऐसा आदेश करके देवी अन्तर्हित हो गईं तब वे भी चिन्तित हो गए, कि यह कोई माया है या स्वप्न है मुझे अब क्या करना चाहिये॥८३॥

श्वोभूते ब्रह्महत्यायाः क्षणान्मुक्तो भविष्यसि।
इत्युक्त श्रीपरादेव्या मयातीतमिदं दिनम्॥८४॥

मुझसे श्रीदेवी ने कहा कि तुम कल प्रातः क्षण भर में ब्रह्महत्या से मुक्त हो जाओगे, यह जो

भगवती ने कहा इसके भी एकरात्रि और एक दिन बीत गए॥८४॥

एवं सर्व च मिथ्यैवेत्यधिकं चिन्तया वृतः।
भगवान्व्योमवाण्या तु निमजात्रेति गर्जितः॥८५॥

इस प्रकार यह सब मिथ्या ही है ऐसा सोचकर वे अधिक ही चिन्ता से घिर गए तब आकाशवाणी द्वारा तुम जल में डूबकर स्नान करों कि गर्जना हुई॥८५॥

अथ शङ्कां समुत्सार्य तत्त्वं निश्चित्य शंकरः।
निममज्ज सरस्यां तु गङ्गायां पुनरुत्थितः॥८६॥

आकाशवाणी को सुनकर शंकर भगवान ने उसे ही सार समझा और जल में स्नान किया उस सरोवर में डूब गए और गंगा में निकले॥८६॥

तत्र काशीं समालोक्य किमेतदिति चिन्तयत्।
स मुहूर्त स्थितस्तूष्णीं नखलीनकपालकः॥८७॥

वे जब गंगा की धारा के बाहर आए तो देखा वे काशी नगरी में हैं एक क्षण में मूक होकर जब देखते हैं कि नख में चिपका हुआ कपाल भी नहीं है॥८७॥

ललाटंतपमुद्वीक्ष्य तरणि तरुणेन्दुभृत्।
भिक्षार्थ नगरीमेनां प्रविवेश वशी शिवः॥८८॥

तब वे नवीन चन्द्रकला को धारण करने वाले शिव ललाट को तपाने वाले सूर्य को (मध्याह्नकालिक सूर्य) देखकर इस नगरी में भिक्षा के लिये वे संयमी शिव निकले॥८८॥

गृहाणि कानिचिद्गत्वा प्रतोल्यां पर्यटन्भवः।
स पथ्यदग्रतः कांचित्काञ्चीश्रीदेवताकृतिम्॥८९॥

कुछ घरों में जाकर गली में घूमते हुए भव शंकर ने सामने किसी महिला को कांची श्री देवी जैसी आकृति वाली को देखा॥८९॥

भिक्षां ज्योतिर्मयीं तस्मै दत्वा क्षिप्रं तिरोदधे।
क्षणाद्ब्रह्मकपालं तत्प्रच्युतं तन्नखाग्रतः॥९०॥

तब उन भगवान शिव को वह दिव्य शक्ति ज्योतिर्मयी भिक्षा देकर शीघ्र ही अन्तर्हित हो गई, इधर शिव ने देखा कि एक क्षण में ही वह ब्रह्मकपाल नख से अलग होकर गिर गया॥९०॥

तद्दष्ट्राद्भुत्तमीशानः कामाक्षीशीलमद्भुतम्।
प्रसन्नवदनाम्भोजो बहु मेने मुहुः परम्॥९१॥

तब भगवान शिव ने अद्‌भुत शील भगवती कामाक्षी को देखा उसे देखकर वे प्रसन्न मुख कमल

वाले उन शिव ने उन देवी को बहुत शक्तिशाली माना ॥९१ ॥

परा काञ्चीपुरी रम्या पुण्या कम्पानदी परा।
देवता सैव कामाक्षीत्यासीत्सभावना पुरः ॥९२ ॥

फिर वह नगरी कांचीपुरी रमणीक है पुण्यमयी है, वैसी ही वहां वह कम्पानदी पुण्या है, वहां की देवता भगवती कामाक्षी हैं, जैसा आज वहां हुआ है जिसकी सम्भावना थी वह पूरी हुई, ब्रह्म हत्या से मुक्ति मिल गई है ॥९२ ॥

इत्थं देवीप्रभावेन विमुक्तः संकटाद्हरः।
स्वस्थः स्वस्थानमगमच्छ्लाघ्यमानः परां श्रियम् ॥९३ ॥

इस प्रकार देवी के प्रभाव से हर शंकर संकट से मुक्त हुए वे स्वस्थ चित्त से अपने निजी निवास की ओर भगवती पराश्री के प्रभाव की प्रशंसा करते हुए गए ॥९३ ॥

पुनरन्यं प्रवक्ष्यामि विलासं शृणु कुम्भज।
प्रभाव श्रीमहादेव्याः कामदं शृण्वतां सदा ॥९४ ॥

हे कुम्भज ! इसके बाद का आख्यान मैं तुमसे कहूंगा, जिसमें भगवती का विलास, उनका प्रभाव है, वे महादेवी सुनने वालों की कामनाओं को सदा पूरी किया करती हैं ॥९४ ॥

अयोध्याधिपतिः श्रीमान्नाम्ना दशरथो नृपः।
सतानरहितस्तिष्ठन्बहुकाल शुचाकुलः ॥९५ ॥

अयोध्या पति श्रीमान राजा दशरथ बहुत समय तक सन्तान रहित रहे इसलिये वे बहुत समय तक शोक से चिन्ता से व्याकुल रहे थे ॥९५ ॥

रहस्याहूय मतिमान्वसिष्ठं स्वपुरोहितम्।
उवाचाचारसंशुद्धः सर्वशास्त्रार्थवेदिनम् ॥९६ ॥

उन राजा दशरथ ने एकान्त में अपने समस्त शास्त्रों के अर्थ को जानने वाले अपने पुरोहित वसिष्ठ जी को बुला उनसे कहा ॥९६ ॥

दशरथ जी बोले-

हे नाथ बहवोऽतीताः समा नाद्यापि विद्यते।
संततेर्मम संतापः संततं वर्धतेतराम् ॥९७ ॥

हे नाथ ! श्री गुरो ! ! बहुत वर्ष व्यतीत हो गए अभी तक सन्तति की प्राप्ति नहीं हुई है इस कारण मेरे अन्त स्तल में चिन्ता सदैव बनी रहती है, उससे मेरी व्याकुलता बढ़ती जा रही है ॥९७ ॥

किं कृते मम संतानवृद्धिः स्यात्तन्निवेदय।

कौन सा प्रयास करने पर मुझे सन्तान वृद्धि का सुख मिलेगा वह कृपा कर बतावें।।
वसिष्ठ जी बोले-

शृणु वंशं महाराज रहस्यं कथयामि ते॥९८॥

हे महाराज ! वंश के विषय में सुनो मैं तुम्हें रहस्य बता रहा हूं॥९८॥

अयोध्या मथुरा माया काशी कांची अवन्तिका।
एताः पुण्यतमाः प्रोक्ताः पुरीणामुत्तमोत्तमाः॥९९॥

अयोध्या, मथुरा, माया (हरिद्वार) काशी कांची, अवन्तिका (उज्जैन) ये सभी अत्यन्त पवित्र पुरियों में श्रेष्ठतम कही गई हैं॥९९॥

अस्याः सान्निध्यमात्रेण महात्रिपुरसुन्दरीम्।
अर्चयित्वा त्वयोध्यायाममुष्या अधिदेवताम्॥१००॥

इन पुरियों में से एक पुरी में निवास मात्र से भगवती प्रसन्न होती हैं, इसलिये उनकी अधिदेवता की अर्चना अयोध्या में करते हैं॥१००॥

नैतस्याः सद्दशी काचिद्देवता विद्यतेऽपरा।
एनामेवार्चयन्त्यन्याः सर्वाः श्रीदेवता नृप॥१०१॥

इन भगवती त्रिपुर सुन्दरी के समान अन्य कोई देवी नहीं हैं इन्हीं देवी की आराधना समस्त देवियां देवता आदि सदैव करते रहते हैं॥१०१॥

ब्रह्मविष्णुमहेशाद्याः सश्रीकाः सर्वदां सदा।
नारिकेलफलालीभिः पनसैः कदलीफलैः॥१०२॥

ब्रह्मा विष्णु महेशादि देवगण अपनी अपनी पत्नियों के साथ सर्वदा पूजा करते हैं भेंट में नारियल कटहल केले आदि फलों से॥१०२॥

मध्वाज्यशर्कराप्राज्यैस्तथा पायसराशिभिः।
सिद्धद्रव्यविशेषैश्च पूजयेत्त्रिपुराम्बिकाम्॥१०३॥

भगवती की पूजा मधु घृत शर्करा और प्रचुर पायस (खीर) तथा सिद्ध द्रव्यों से (त्रिमधु, मधु घृत और दधि) इनके बिना भगवती नैवेद्य स्वीकार नहीं करती, अतः यह सिद्ध द्रव्य अनिवार्य है, इन्हीं भगवती महात्रिपुर सुन्दरी का अर्चन करें॥१०३॥

अभीष्टमचिरेणैव संप्रदास्यति सैव ते।
इत्युक्तवन्तमभ्यर्च्य गुरुमिष्टरुपायनैः॥१०४॥

वे भगवती तुम्हें शीघ्र ही तुम्हारे अभीष्ट को पूरा करेंगी इस प्रकार गुरु वसिष्ठ जी ने राजा दशरथ

से कहा, इसके बाद राजा ने गुरु का सुन्दर भेंट वस्तुओं से सम्मान किया ॥१०४॥

स्वेष्टसंप्राप्तये भूयो विससर्ज विशांपतिः।
ततो गुरूक्तरीत्यैव ललितां परमेश्वरीम् ॥१०५॥

अपने अभीष्ट अपने पुत्र प्राप्ति की कामना की प्राप्ति के लिये पुनः विशेष व्यवस्था की, उसके अनन्तर श्री गुरुवर्य ने जो रीति का निर्देश किया था उसके अनुसार उन्होंने भगवती ललिता परमेश्वरी की ॥१०५॥

अर्चयामास राजेन्द्रो भक्त्या परमया युतः।
एवं प्रतिदिन पूजां निवाय प्रीतमानसः ॥१०६॥

अर्चना परम भक्ति से परिपूर्ण होकर राजेन्द्र दशरथ ने की, इस प्रकार प्रतिदिन वे प्रसन्न चित्त से पूजन करके ॥१०६॥

अयोध्यादेवताधाग्नि शिश्ये तत्रैव संगतः।
अर्धरात्रे व्यतीते तु निभृतोल्लासदीपके ॥१०७॥

इस प्रकार प्रतिदिन पूजा करके अयोध्याधाम को वहां पर अर्थसंगत कर दिया, आधी रात बीत जाने पर चमकते दीपों के शान्त हो जाने पर ॥१०७॥

किंचिन्निद्रालसस्यास्य पुरतस्त्रिपुराम्बिका ।
पाशाङ्कुशधनुर्बाणपरिष्कृतचतुर्भजा ॥१०८॥

कुछ निद्रा से आलस्य युक्त दशरथ जी के सामने भगवती त्रिपुराम्बिका उपस्थित हुईं, वे अपने चारों हाथों में पाश, अंकुश, इक्षुधनु और पांच बाण धारण किये हुए थीं ॥१०८॥

सर्वशृङ्गारवेषाढ्या सर्वाभरणभूषिता।
स्थित्वा वाक्यमुवाचेदं मन्दमिन्दुमतीसुतम् ॥१०९॥

सभी श्रृंगारां से सुसज्जित तथा समस्त आभूषणों से आभूषित भगवती उन इन्दुमती के पुत्र दशरथ के सामने उपस्थित होकर मंद स्वर में बोलीं ॥१०९॥

अस्ति पंक्तिरथ श्रीमन्पुत्रभाग्य तवानघ।
प्रविघातककर्माणि सन्ति पूर्वकृतानि ते ॥११०॥

हे अनघ ! तुम्हारी भाग्यपंक्ति में पुत्र प्राप्ति योग है, पर पूर्वजन्म में कुछ प्रतिघातक कर्म हैं, जिनसे विलम्ब हो रहा है ॥११०॥

तादृशां कर्मणा शान्त्यै गत्वा काचीपुरं वरम्।
स्नात्वा कम्पासरस्या च तत्र मां पश्य पावनीम् ॥१११॥

इसलिये वैसे कर्मों की शान्ति के लिये आप श्रेष्ठ कांचीपुर में जाकर कम्पा सरोवर में स्नान करके पवित्र करने वाली मेरा दर्शन करों॥११९॥

मध्येकाञ्चीपुरी मत्कं दहराकाशमध्यगम्।
कामकोष्ठं विपाप्मापि सप्तद्वारविलान्वितम्॥११२॥

वहां कांचीपुर के मध्य में पापरहित सात द्वारों से युक्त कामकोष्ठ है जो पुरुषों के साम्राज्य का सूचक है॥११२॥

साम्राज्यसूचकं पुंसां त्रयाणामपि सिद्धिदम्।
प्राङ्मुखी तत्र वर्तेऽहं महासिहासनेश्वरी॥११३॥

वह कामकोष्ठ पुरुषों के साम्राज्य का सूचक है तथा पुरुषों के तीन पुरुषार्थ धर्म, अर्थ और काम की सिद्धि देने वाला है वहां मैं महासिंहासनेश्वरी पूर्व दिशा की ओर मुख करके वर्तमान हूं॥११३॥

महालक्ष्मीस्वरूपेण द्विभुजा पद्मधारिणी।
चक्रेश्वरी महाराज्ञी ह्यदृश्या स्थूलचक्षुषाम्॥११४॥

वहां महालक्ष्मी स्वरूप से दो भुजाएं एवं कमल पुष्प ली हुईं चक्रेश्वरी महाराज्ञी स्थूल नेत्र वालों के लिये अदृश्या॥११४॥

ममाक्षजा महागौरी वर्तते मम दक्षिणे।
सौन्दर्यसारसी या सा सर्वाभरणभूषिता॥११५॥

मेरे नेत्रों से प्रकट महागौरी मेरे दक्षिण भाग में विद्यमान हैं वह देवी सौन्दर्य के सार की सीमा हैं अर्थात तीनों लोकों के सार सौन्दर्य की सीमा हैं वे समस्त आभूषणों से विभूषित हैं॥११५॥

मया तु कल्पितावासा द्विभुजा पद्मधारिणी।
महालक्ष्मीस्वरूपेण किंवा कृत्यात्मना स्थिता॥११६॥

भगवती महात्रिपुर सुन्दरी ने दशरथ जी से कहा कि मैंने ही दो भुजाओं वाली पद्मधारिणी को आवास दिया है वे वहां लक्ष्मी के स्वरूप में वहां स्थित हैं॥११६॥

आपीठान्मौलिपर्यन्तं पश्यतस्तां ममाशजाम्।
पातकान्याशु नश्यन्ति किंपुनस्तूपपातकम्॥११७॥

वहां पीठ से लेकर पीठ की शिखा तक मेरे अंश से उत्पन्न उन महागौरी को देखते ही समस्त पाप शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं फिर छोटे-मोटे उपपातकों की बात ही क्या॥११७॥

कुवासना कुबुद्धिश्च कुतर्कनिचयश्च यः।
कुदेहश्च कुभावश्च नास्तिकत्वं लयं व्रजेत्॥११८॥

उस दिव्य क्षेत्र में जाने पर उनके दर्शन करने पर बुरी वासना, बुरी बुद्धि, कुतर्क करने का निश्चय बुरा शरी मन के बुरे विचार और वेद निन्दा ईश्वर का अस्तित्व न मानना आदि सभी स्थूल सूक्ष्म दुर्भाव विलीन हो जाते हैं ॥११८॥

कुरुष्व मे महापूजां सितामध्वाज्यपायसैः।
विविधैर्भक्ष्यभोज्यैश्च पदार्थैः षड्रसान्वितैः ॥११९॥

हे राजन ! वहां जाकर तुम मेरी महापूजा सिता मधु, घृत और पायस तथा अनेक भक्ष्य एवं भोज्य पदार्थों तथा षड्रसों से ॥११९॥

तत्रैव सुप्रसन्नाहं पूरयिष्यामि ते वरम्।
उपदिश्य च सम्राज्ञी दिव्यमूर्तिस्तिरोदधे ॥१२०॥

वहीं कांचीपुरी में तुम्हारी की हुई पूजा से प्रसन्न होकर तुम्हें वर प्रदान करुंगी, इस प्रकार स्वप्न में उपदेश करके दिव्यमूर्ति त्रिपुरसुन्दरी भगवती अन्तर्हित हो गईं ॥१२०॥

राजापि सहसोत्थाय किमेतदिति विस्मितः।
देवीमुद्बोध्य कौसल्यां शुभलक्षणलक्षिताम् ॥१२१॥

राजा दशरथ भी सहसा उठकर यह क्या है ऐसा सोचकर विस्मित हो गए फिर उन्होंने अपनी पत्नी शुभलक्षणा कौसल्या जी को जगाकर ॥१२१॥

तस्यैतद्रात्रिवृत्तान्तं कथयामास सादरः।
तत्समाकर्ण्य सा देवी संतोषमभजत्तदा ॥१२२॥

उन रानी कौसल्या जी से रात्रि में जो वृतान्त उन्होंने स्वप्न में देखा था वह सादर उन्हें सुनाया, उसे सुनकर वे देवी कौसल्या जी भी सन्तुष्ट हुईं ॥१२२॥

प्राप्तहर्षो नृपः प्रातस्तया दयितया सह।
आत्मनः सचिवोपेतः काञ्चीपुरमुपागमत् ॥१२३॥

प्रातःकाल राजा दशरथ अपनी प्रिय रानी के साथ मुख्य सचिव के साथ कांचीपुर में पहुंचे ॥१२३॥

स्नात्वा कम्पातरङ्गिण्यां दृष्ट्वा देवीं च पावनीम्।
पञ्चतीर्थे ततः स्नात्वा देव्या कौशल्यया नृपः ॥१२४॥

वहां कम्पानदी में स्नान कर पवित्र भगवती का दर्शन किया फिर देवी कौसल्या जी के साथ पंचतीर्थ में स्नान किया ॥१२४॥

गोभूवस्त्र हिरण्याद्यैस्तत्तीर्थक्षेत्र वासिनः।
प्रीणयित्वा सपत्नीकस्तान्नत्वा शक्तिपूजकान् ॥१२५॥

फिर राजा ने उस तीर्थ क्षेत्र में निवास करने वाले समस्त लोगों को गो, भूमि, वस्त्र स्वर्णादि वस्तुओं को भेंट में देकर उन सभी को प्रसन्न किया और उन सभी शक्ति के आराधकों को प्रणाम किया॥१२५॥

अथालयं समाविश्य महाभक्त्या नृपोत्तमः।
प्रदक्षिणत्रयं कृत्वा विनयेन समन्वितः॥१२६॥

वे नृपश्रेष्ठ दशरथ ने विशुद्ध भक्तिमय होकर मन्दिर में प्रवेश किया और विनय पूर्वक बद्धांजलि होकर तीन प्रदक्षिणाएं कीं॥१२६॥

ततः संनिधिमागन्य देव्या कौसल्यया सह।
श्रीकामकोष्ठनिलयां महात्रिपुरसुन्दरीम॥१२७॥

उसके बाद देवी कौसल्या के साथ आकर श्रीकामकोष्ठ निलय की महादेवी महात्रिपुर सुन्दरी॥१२७॥

त्रिमूर्तिजननीमम्बां दृष्ट्रा श्रीचक्ररूपिणीम्।
प्रणिपत्य च साष्टाङ्गं भार्यया सह भक्तिमान्॥१२८॥

जो ब्रह्मा विष्णु और महेश तीनों मूर्तियों की जननी हैं तथा श्रीचक्ररूपिणी हैं उनका दर्शन कर साष्टांग प्रणाम उन भक्तिमान ने पत्नी के साथ किया॥१२८॥

स्वपुरे त्रैपुरे धाम्नि पुरेक्ष्वाकुप्रवर्तिते।
दुर्वाससा सशिष्येण पूजार्थ पूर्वकल्पिते॥१२९॥

फिर प्रणाम करके अपने पुर त्रिपुराधाम में इक्ष्वाकु द्वारा प्रवर्तित शिष्यों सहित दुर्वासा ऋषि द्वारा पूजा के लिये पूर्व कल्पित॥१२९॥

दासीदासध्वजारोहमहोत्सवसमन्विते।
तत्र स्वगुरुणोक्त च कृत्वा स्वात्मार्थपूजनम्॥१३०॥

पूजा में दासी, दास, ध्वजा रोहण तथा घर के जो भी उत्सव होते हैं वे सभी करते हुए अपने गुरु द्वारा कहे गए के अनुसार उन्होंने सब प्रकार से पूजा पाठ किया॥१३०॥

रात्रौ स्वप्ने तु यद्रूपं दृष्टवांस्त्रैपुरं महः।
तदेवात्रापि संदध्यौ संनिधौ राजसत्तमः॥१३१॥

रात्रि में स्वप्न में जिस रूप को उन्होंने अपने अयोध्या महल में देखा था उसी रूप को उन राजश्रेष्ठ दशरथ ने कांची में देखा॥१३१॥

चिरं ध्यात्वा महाराजः सुवासांसि बहूनि च।
दिव्यान्यायतनान्यस्यै दत्त्वा स्तोत्रं चकारह॥१३२॥

तब बहुत देर तक उनका ध्यान कर महाराज पर्याप्त संख्या में अनेक सुन्दर वस्त्रा भूषणों तथा दिव्य आयतनों को इन देवी को समर्पित कर स्तुति की ॥१३२॥

पादाग्रलम्बपरमाभरणाभिरामे मञ्जीररत्नरुचिमञ्जुलपादपद्मे।
पीताम्बर स्फुरितपेशल हेमकाञ्चीकेयूरकङ्कणपरिष्कृतबाहुवल्ली ॥१३३॥

हे! चरणों के अग्रभाग तक लटकने वाले आभूषणों से सुन्दर लगने वाली, हे ! रत्नजटित घुंघुरुओं के रत्नों की कान्ति से युक्त सुन्दर पाद पद्मों वाली, हे ! पीत वस्त्र पर चमकती हुई कोमल सोने के घुंघुरुओं से युक्त करधनी वाली, हे! बाजूबन्द और कंगन से सजी हुई भुजलता वाली भगवती! मेरे हृदय में निवास करो॥१३३॥

पुण्ड्रेक्षु चापविलसन्मृदुवामपाणे रत्नोर्मिका सुमशरान्धृतदक्षहस्ते।
वक्षोजमण्डलविलासिवलक्षहारे पाशाङ्कुशाङ्गदलस द्भुजशोभिताङ्गि ॥१३४॥

हे! पुण्ड्र इक्षुधनुष से सुशोभित बाएं कोमल हाथों वाली, हे! रत्नों की चमक से युक्त पुण्पबाणों से सुशोभित दक्ष (दाएं) हाथों वाली हे! स्तनों पर सुशोभित स्वच्छ हार वाली, हे! पाश अंकुश, बाजूबंद में जड़े रत्नों से युक्त बाहु से सुशोभित श्री विग्रह वाली, आप मेरे हृदय में निवास करो॥१३४॥

वक्त्राश्रिया विजितशारदचन्द्र बिम्वे ताटङ्क रत्नकरमण्डितगण्डभागे।
वामे करेऽपि च कमण्डलुमादधाने वक्षोजमण्डलविलासिवलक्षहारे ॥१३५॥

हे! मुख की शोभा से शरत्कालीन चन्द्र बिम्ब को जीतने वाली, हे! वाम हस्त में भी कमण्डलु को धारण की हुईं, हे! वक्षोज मण्डल में समुज्ज्वल विभिन्न रत्नमय हारों को धारण की हुई आप मेरे हृदय में वास करो॥१३५॥

माणिक्यसूत्रमणिभासुरकम्बुकण्ठि ताटङ्करत्नकरमण्डितगण्डभागे।
मन्दस्मितस्फुरणशालिनि मञ्जुनासे नेत्रश्रिया विजितनीलसरोजपत्रे ॥१३६॥

हे! माणिक्य जटित सूत्र की मणि चमकती हुई शंखग्रीवा, वाली देवि! हे! मस्तक पर द्वितीया के निष्कलंक चन्द्र की कला से युक्त केशपाश वाली भगवति! हे! मन्द मुस्कान के स्फुरण वाली सुन्दर नासिका वाली तथा अपने नेत्रों की शोभा से नील कमल के पत्र की शोभा को जीतने वाली देवि ! आप मेरे हृदय में निवास करो॥१३६॥

सुभ्रलते सुवदने सुललाटचित्रे योगीन्द्र मानससरोज निवासहंसि।
रत्नानुविद्धतपनीय महाकिरीटे सर्वाङ्गसुन्दरि समस्तसुरेन्द्रवद्ये ॥१३७॥

हे ! सुन्दर भौहों वाली, सुन्दर मुख वाली, सुन्दर मस्तक से विचित्र हे! योगीन्द्रजनों के मानस

कमल में निवास करने वाली हंसि (आत्मकला) हे! रत्नों से अनुविद्ध चमकते हुए महा किरीट वाली, हे! सर्वांड्ग सुन्दरी! समस्त देवों तथा देवेन्द्र में वंदनीय माँ ! मेरे हृदय में ही निवास करो॥१३७॥

काङ्क्षानुरूपवरदे करुणार्द्रचित्त साम्राज्यसपदभिमानिनि चक्रनाथे।
इन्द्रादिदेव परिसेवितपादपद्मे सिंहासनेश्वरि परे मयि संन्निधेयाः॥१३८॥

हे! इच्छानुरूप वर प्रदान करने वाली, करूणाभाव से आर्द्रचित्त वाली, साम्राज्य सम्पदा के अभिमान वाली अर्थात साम्राज्यय शालिनी श्री चक्रनाथे, श्री चक्र की स्वामिनी, इन्द्रादि देवों द्वारा परिसेवित चरण कमलों वाली, सिंहासनेश्वरी, श्री महात्रिपुर सुन्दरी ललिताम्बा परमेश्वरी श्रीमाता! आप मेरे हृदय में विराजमान हो जाओ॥१३८॥

इति स्तुत्वा स भूपालो बहिर्निर्गत्य भक्तितः।
तस्यास्तु दक्षिणे भागे महागौरीं ददर्श ह॥१३९॥

इस प्रकार स्तुति कर वे राजा दशरथ भक्तिपूर्ण होकर बाहर आए उन्होंने भगवती महात्रिपुर सुन्दरी के दाहिने भाग में श्री महागौरी का दर्शन किया॥१३९॥

प्रणम्य दण्डवद्भूमौ कृत्वा चैनां स्तुतिं पुनः।
दत्त्वा चास्यै महार्हाणि वासांसि विविधानि च॥१४०॥

राजा दशरथ ने उन भगवती को भूमि में दण्डवत् प्रणाम किया और पुनः स्तुति की तथा उन्हें बहुमूल्य वस्त्रादि अनेकों प्रकार के अर्पित किये॥१४०॥

अमूल्यानि पराध्यानि भूषणानि महान्ति च।
ततः प्रदक्षिणीकृत्य निर्गत्य सह भार्यया॥१४१॥

और साथ ही अनेकों महामूल्य आभूषणों को अर्पित किया, फिर उनकी प्रदक्षिणा करके पत्नी के साथ निकलकर॥१४१॥

स्वगुरूक्तविधानेन महापूजां विधाय च।
तामेव चिन्तयंस्तत्र सप्तरात्रमुवास सः॥१४२॥

अपने गुरुवर्य द्वारा बताये गए विधान से महा पूजा सम्पन्न करके उन भगवती का ही चिन्तन करते हुए वहीं काञ्चीपुरी में सात रात्रि (सात दिन) तक निवास किया॥१४२॥

अष्टमे दिवसे देवीं नत्वा भक्त्या विलोकयन्।
अभीष्टं देहि देवीति प्रार्थयामास चेतसा॥१४३॥

आठवां दिन आने पर उन्होंने भगवती को प्रणाम कर भक्तिपूर्ण दर्शन करते हुए प्रार्थना की कि

हे देवि ! मुझे मेरा अभीष्ट प्रदान करो ऐसी मन ही मन से प्रार्थना की ॥१४३ ॥

सुप्रसन्ना च कामाक्षी सान्तरिक्षगिराऽवदन्।
भविष्यन्ति मदंशास्ते चत्वारस्तनया नृप ॥१४४ ॥

तब उनकी प्रार्थना से भगवती कामाक्षी प्रसन्न हुईं तब अन्तरिक्ष से वाणी प्राप्त हुई, उसमें भगवती ने कहा राजन् ! मेरे अंश से तुम्हारे चार पुत्र होंगे ॥१४४ ॥

इत्युदीरितमाकर्ण्य प्रमोदविकसन्मुखः।
श्रिय प्रणम्य साष्टाङ्गमनन्यशरणः पराम् ॥१४५ ॥

इस प्रकार हुई आकशवाणी को सुनकर प्रसन्न मुख राजा ने भगवती को अनन्य शरण होकर साष्टांग प्रणाम किया ॥१४५ ॥

आमन्त्र्य मनसैवाम्बां सस्त्रीकः सह मन्त्रिभिः।
अयोध्यानगरीं प्रापदिन्दुमत्यास्तु नन्दनः ॥१४६ ॥

उसके बाद मन से ही अम्बा भगवती को आमंत्रित कर इन्दुमती के पुत्र दशरथ जी पत्नी और मन्त्रियों के साथ अयोध्या नगरी में वापस आ गए ॥१४६ ॥

एवंप्रभावा कामाक्षी सर्वलोकहितैषिणी।
सर्वेषामपि भक्तानां कांक्षितं पूरयत्यलम् ॥१४७ ॥

इस प्रकार के प्रभाव वाली सर्वलोक हितैषिणी भगवती कामाक्षी हैं जो सभी भक्तों के अभीष्टों को पूरा करने में पर्याप्त हैं ॥१४७ ॥

एवं लोकेषु बहवः कामाक्षीं परदेवताम्।
उपास्य विधिवद्भक्त्या प्राप्ताः कामानशेषतः ॥१४८ ॥

इस प्रकार अनेकों भक्तों ने सभी लोकों में रहने वालों ने परदेवता कामाक्षी की विधिवत उपासना करके भक्ति समर्पित करके अनेकों अभीष्ट प्राप्त किया ॥१४८ ॥

अद्यापि प्राप्नुवन्त्येव भक्तिमन्तः फलं मुने।
अनेके च भविष्यन्ति कामाक्ष्याः करुणादृशा ॥१४९ ॥

आज भी अनेक भक्तिमान अभीष्ट मनोरथ फल प्राप्त करते हैं अनेकों आने वाले समय में भी भगवती करूणा दृष्टि वाली कामाक्षी की कृपा प्राप्त करेंगे ॥१४९ ॥

माहात्म्यमस्याः श्रीदेव्याः को वा वर्णयितुं क्षमः।
नाहं न शम्भुर्न ब्रह्मा न विष्णुः किमुतापरे ॥१५० ॥

इन श्रीदेवी के माहात्म्य का वर्णन करने में कौन समर्थ है, मैं भी नहीं न शंभु न ब्रह्मा न विष्णु

औरों की तो क्या शक्ति है ॥१५०॥

इति ते कथितं किंचित्कामाक्ष्याः शीलमुज्ज्वलम्।
शृण्वतां पठतां चापि सर्वपापहरं स्मृतम्॥१५१॥

इस प्रकार मैंने तुमसे कुछ थोड़ा बहुत भगवती का उज्ज्वल शील वर्णित किया है यह सुनने वालों का पढ़ने वालों का सभी का समस्त पापों को हरने वाला है, यह अमोघ है ॥१५१॥

इति श्रीब्रह्मोत्तरखण्डे हयग्रीवागस्त्यसंवादे ललितो
पाख्याने षट्त्रिंशोऽध्याय ॥ ३६ ॥

श्रीमाताललिताम्बायै नमः श्रीपादुकां पूजयामि नमः॥
ॐ वन्दे गुरुपदद्वन्द्वं अवाङ्मनसगोचरम्॥
रक्तशुक्ल प्रभामिश्रमतर्क्यं त्रैपुरं महः॥
ॐ आराध्यदेवं भक्तानां कलिदोषविनाशकम्॥
वन्दे श्रीगिरिजानन्दं शारदाश्रीमठाधिपम्।।
ॐ अखण्डं यस्यज्ञानञ्च भक्तिर्यस्यानपायिनी।।
शारदाज्योतिरीशस्य दर्शनं (पूजनं, वन्दनं) शुभमस्तुनः।।

सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥ 87 श्लोकात्मकः

[॥ श्रीयन्त्रप्रकारोपासनादिकथनम्॥]

श्री अगस्त्य बोले-

कीदृशं यन्त्रमेतस्या मन्त्रो वा कीदृशो वरः।
उपदेष्टा च कीदृग्वा शिष्यो वा कीदृशः स्मृतः॥१॥

इन भगवती महात्रिपुर सुन्दरी ललिता कामाक्षी देवी का यन्त्र का रूप कैसा है, इनका मन्त्र का रूप कैसा है, तथा इसका उपदेश करने वाला कैसा हो इसका यन्त्र मंत्र का अधिकारी शिष्य कैसा हो॥१॥

सर्वज्ञस्त्वं हयग्रीव साक्षात्परमपूरुषः।
स्वामिन्मयि कृपादृष्ट्या सर्वमेतन्निवेदय॥२॥

हे भगवन! ह्यग्रीवजी!! आप सर्वज्ञ हैं साक्षात्परम पुरुष हैं, हे स्वामिन्! मुझमें कृपा दृष्टि से सभी कुछ निवेदन करें॥२॥

श्री ह्यग्रीव बोलेः-

यन्त्रं श्रीचक्रमेवास्याः सेयं हि त्रिपुराम्बिका।
सैषैव हि महालक्ष्मीः स्फुरतामात्मनः पुरः॥३॥

इनका यन्त्र भी चक्र ही है और यह सब त्रिपुराम्बा ही हैं, वहीं यह ही महालक्ष्मी हैं, यही श्री चक्र में प्रस्फुटित होती है श्रीचक्र में आत्मा के रूप में व्यक्त होती है तब यह चक्र प्रकाशमय रूप में व्यक्त होता है, इसका माहात्म्य अनन्त है, इसकी कृपा से ही इसे जान सकते हैं, अन्यथा नहीं॥३॥

पश्यति स्म तदा चक्रं ज्योतिर्मयमजृम्भत।
अस्य चक्रस्य माहात्म्यमपरिज्ञेयमेव हि॥४॥

तब यह ज्योतिर्मय चक्र प्रकट हुआ था, अतः इस चक्र का माहात्म्य अपरिज्ञेय ही है॥४॥

साक्षात्सैव महालक्ष्मीः श्रीचक्र चेति तत्त्वतः।
यदभ्यर्च्य महाविष्णुः सर्वलोकविमोहनम्॥५॥

तत्वरूप से यह चक्र ही साक्षात् महालक्ष्मी है- जिस श्री चक्र की पूजा करके महा विष्णु महालक्ष्मी समस्त लोकों को विमोहित करने वाला॥५॥

कामसमोहिनीरूपं भेजे राजीवलोचनः।
अर्चयित्वा तदीशानः सर्वविद्येश्वरोऽभवन्॥६॥

कामसंमोहिनी रूप उन राजीव लोचन ने धारण किया, जिसकी अर्चना करके भगवान ईशान शिव समस्त विद्याओं के अधीश्वर हो गए॥६॥

तामाराध्य विशेषेण ब्रह्मा ब्रह्माण्डसुरभून्।
मुनीनां मोहनश्वासीत्स्मरो यद्वरिवस्यया॥७॥

जिसकी विशेष रूप से आराधना करके ब्रह्माजी ब्रह्माण्ड निर्माता बने उनकी पूजा से ही कामदेव मुनियों को भी मोहित करने वाले तथा योग्य बने॥७॥

श्रीदेव्याः पुरतश्चक्र हेमरौप्यादिनिर्मितम्।
निधाय गन्धैरभ्यर्च्य षोडशाक्षरविद्यया॥८॥

सोने अथवा चांदी आदि (स्फटिक और अन्य रत्न) में निर्मित श्री देवी का चक्र बनवाकर सामने रखकर षोडशाक्षर विद्या मन्त्र से गन्धादि द्रव्यों से अर्चना करके॥८॥

प्रत्यहं तुलसीपत्रैः पवित्रैर्मङ्गलाकृति।
सहस्रं मूलमत्रेण श्रीदेवीध्यानसंयुतः॥९॥

प्रतिदिन पवित्र तुलसी पत्रों से मंगलाकृतिरूप में स्थित हो एक हजार मूल मन्त्रों से श्रीदेवी के ध्यान में स्थित होकर॥९॥

अर्चयित्वा च मध्वाज्यशर्करापायसैः शुभैः।
अनवद्यैश्च नैवेद्यैर्मार्पापूपैर्मनोहरैः॥१०॥

अर्चना करके शुभ मधु, घृत, सिता (शर्करा) पायस (खीर) और निर्दोष नैवेद्य, बटक (उड़द के बड़े) अनूय (पुआ, मालपूड़ा) आदि स्वादिष्ट॥१०॥

यः प्रीणाति महालक्ष्मी मतिमान्मण्डलत्रयम्।
सहसा तस्य सान्निध्यमाधत्ते परमेश्वरी।
मनसो वाञ्छितं यच्च प्रसन्ना तत्प्रपूरयेत्॥११॥

जो बुद्धिमान् तीन मण्डलों में महालक्ष्मी को प्रसन्न करता है तो वह परमेश्वरी उसके पास सहसा

ही सान्निध्य करती हैं और प्रसन्न होकर मनोवाञ्छित जो भी होता है, उसे पूरा कर देती हैं॥११॥

धवलैः कुसुमैश्चक्रमुक्तरीत्या तु योऽर्चयेत्।
तस्यैव रसनारङ्गे नित्यं नृत्यति भारती॥१२॥

जो साधक श्वेत सुगन्धित पुष्पों से उक्त रीति से अर्चना करता है, तो वह भारती देवी उसकी जिह्वास्थली में सदैव नृत्य करती हैं॥१२॥

पाटलैः कुसुमैश्चक्रं योऽर्चयेदुक्तमार्गतः।
सार्वभौमं च राजानं दासवद्वशयेदसौ॥१३॥

पूर्वोक्त रीति से ही पूजा करता हुआ व्यक्ति यदि लाल पुष्पों गुलाब, जपाकुसुम आदि पुष्पों से श्री चक्र की पूजा करे तो वह सार्वभौम राजा को भी वशीभूत का लेता है॥१३॥

पीतवर्णैः शुभैः पुष्पैः पूर्ववत्पूजयेच्च यः।
तस्य वक्षस्थले नित्यं साक्षाच्छ्रीर्वसति ध्रुवम्॥१४॥

जो साधक शुभ पीले रंग के फूलों से पूर्ववत् श्री चक्र का पूजन करता है तो उसके वक्षः स्थल में निश्चित ही श्री निवास करती हैं॥१४॥

दुर्गन्धैर्गन्धहीनैश्च सुवर्णैरपि नार्चयेत्।
सुगन्धैरेव कुसुमैर्गन्धैश्चाभ्यर्चयेच्छिवाम्॥१५॥

दुर्गन्धित या गन्धहीन सुन्दर दिखने वाले पुष्पों से पूजा निषिद्ध है, सुगन्धित पुष्प, चन्दनादि से ही शिवा की आराधना करें॥१५॥

कामाक्ष्येव महालक्ष्मीश्चकं श्रीचक्रमेव हि।
श्रीविद्यैव पराविद्या नायको गुरुनायकः॥१६॥

भगवती कामाक्षी ही महालक्ष्मी हैं (नायकी गुरुनायिका) चक्र श्री चक्र ही है, श्री विद्या ही पराविद्या हैं और नायक ही गुरुनायक हैं॥१६॥

एतस्या मन्त्रराजस्तु श्रीविद्यैव तपोधन॥१७॥

इसका मंत्रराज तो श्रीविद्या ही है- हे तपोधन!!॥१७॥

कामराजान्तमन्त्रान्ते श्रीबीजेन समन्विता।
षोडशाक्षरविद्येयं श्रीविद्येति प्रकीर्तिता॥१८॥

कामराज के अंत तक के मंत्र जो श्री देवी के बीज मंत्र से युक्त हैं यह विद्या षोडश अक्षर वाली श्री विद्या ही कही गई है॥१८॥

इत्थं रहस्यमाख्यान गोपनीयं प्रयत्नतः।
तिसृणामपि मूर्तीनां शक्तिर्विद्येयमीरिता॥१९॥

इस प्रकार यह प्रयत्न पूर्वक गोपनीय रहस्य बताया गया है, तीनों मूर्तियों (सरस्वती, लक्ष्मी और रौद्री) की शक्ति यही श्री विद्या में अन्तर्निहित है॥१९॥

सर्वेषामपि मन्त्राणां विद्यैषा प्राणरूपिणी।
पारंपर्येण विज्ञाता विद्येयं बन्धमोचनी॥२०॥

समस्त मंत्रों की भी यही श्रीविद्या प्राणरूपिणी है, परम्परा से यदि यह गुरुमुख से प्राप्त होती है तो यह समसत बन्धों से मुक्ति देती है॥२०॥

संसारतापहरिणी जरामृत्युविनाशिनी।
पूजिता दुःखदौर्भाग्यव्याधिदारिद्र्यनाशिनी॥२१॥

संसार में होने वाले ताप (योग, वियोग सुख दुःख आदि) हरने वाली जरा (बुढ़ापा) मृत्यु (अकाल मृत्यु आदि) नाशिनी यह पूजिता होने पर मनुष्य के दुःख दुर्भाग्य रोग (मानसिक, शारीरिक आदि) तथा दरिद्रता आदि का नाश करने वाली हैं॥२१॥

स्तुता विघ्नौघशमनी ध्याता सर्वार्थसिद्धिदा।
मुद्राविशेषतत्त्वज्ञा दीक्षाक्षपितकल्मषा॥२२॥

जहां वास्तव में स्तुति की जाती है भगवती विघ्नों के समूहों का नाशकर देती हैं, भगवती का गम्भीरता से यदि ध्यान किया जाता है तो वे समस्त कामनाओं की सफलता प्रदान करती हैं, भगवती नवमुद्रासमाराध्या (पूर्णाभिषिक्त दशमुद्रासमाराध्या) हैं जो इना विशिष्ट मुद्राओं के तात्पर्यों को जानता है, वह श्री गुरु से दीक्षा प्राप्त कर समस्त कल्मषों का विनाश कर देता है॥२२॥

अर्चयन्परमेशानीमभीष्टफलमाप्नुयात्।
धवलाम्बरसंवीतां धवलावासमध्यगाम्॥२३॥
पूजयेद्धवलैः पुष्पैर्ब्रह्मचर्ययुतो नरः।
धबलैरेव नैवेद्यैर्दधिक्षीरौदनादिभिः॥२४॥
संकल्पधवलैर्वापि पूजयेत्परमेश्वरीम्।
श्रीबालात्र्यक्षरीबीजैः क्रमात्खण्डेषु योजिताम्॥२५॥
षोडशाक्षरविद्यानामबहिर्मानसः शुचिः।
अनुलोमविलोमेन प्रजपन्मातृकाक्षरैः॥२६॥

श्री गुरु से विधिवत् दीक्षा प्राप्त शिष्य यदि परमेशानी भगवती की पूजा करता है, तो उसे अभीष्ट

फलों की प्राप्ति होती है, कोई श्वेतवस्त्र धारण कर श्वेतवर्ण घर में स्थित हो श्वेतवर्ण वस्त्र धारण की हुईं श्वेतवर्ण भवन में स्थित भगवती का यदि भक्त ब्रह्मचर्य भाव से युक्त होकर श्वेत पुष्पों से पूजन करता है तथा श्वेत नैवेद्य दधि, दूधओदन (भात) आदि भोज्य पदार्थों से श्वेत संकल्पों (श्वेत विचारों अर्थात राग, द्वेष रहित ऊंचा नीचा रहित छोटा बड़ा रहित महिलाओं में जातिभेद रहित मातृभाव आदि श्वेत संकल्प हैं) से परमेश्वरी की आराधना करे, उसमें भी श्री बाला की त्र्याक्षरी (ऐं क्लीं सौः) बीज मंत्रों को क्रमशः पंचदशी के तीन खण्डों में जोड़कर (ऐंकादि, क्लीहादि सौः सादि खण्ड) षोडशी मंत्र से पवित्र होकर बाहर भीतर पवित्र अंतःकरण से पूजा करने पर अनुलोम (सीधे जप)विलोम (उल्टे से सीधे)जप से तथा मातृकाक्षरों से(अं आं इं, ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं लॄं एं ऐं ओं औं अं अः) भावना करते हुए श्रीदेवी षोडशाक्षरी विद्या को अंतर्मुख भाव से पवित्रतापूर्वक जो मातृका के वर्णों से अनुलोम-विलोम क्रम में जप करता है, वह देवी का प्रिय होता है।।२३,२४,२५,२६।।

भावयन्नेव देवाग्रे श्रीदेवीं दीपरूपिणीम्।
मनसोपांशुना वापि निगदेनापि तापस॥२७॥

भावना करते हुए देवता के आगे दीपरूपिणी भगवती का चिन्तन हुए हे तपस्वी अगस्त्य जी! मानसिक या उपांशु (केवल स्वयं को सुनाई दे) तथा निगद (वाचिक जप) करते हुए॥२७॥

श्रीदेवीन्याससहितः श्रीदेवीकृत विग्रहः।
एकलक्षजपेनैव महापापैः प्रमुच्यते॥२८॥

भगवती श्रीदेवी के न्यास (मन्त्रन्यास, लघुसोढा, महाषोढ़ा, मातृकान्यास, श्री चक्रन्यासादि) सहित श्रीदेवी की मूर्ति बनाकर एक लाख जप से ही महापातकों से मुक्त हो जाता है॥२८॥

लक्षद्वयेन देवर्षे सप्तजन्मकृतान्यपि।
पापानि नासयत्येव साधकस्य परा कला॥२९॥

दो लाख जप से सातजन्मों में किए गए पापों को साधक की वह पराकला नष्ट कर देती है॥२९॥

लक्षत्रितयजापेन सहस्रजनुपातकैः।
मुच्यते नात्र संदेहो निर्मलो नितरां मुने।
क्रमात्षोडशलक्षेण देवीसान्निध्यमाप्नुयात्॥३०॥

तीन लाख जप करने से साधक हजार जन्मों के पातकों से मुक्त हो जाता है इसमें रंच मात्र भी संदेह नहीं है हे मुने! वह निश्चित ही निर्मलान्त करण हो जाता है, इसी क्रम से यदि उसने सोलह लाख जप कर लिया तो वह भगवती का सायुज्य प्राप्त कर लेता है॥३०॥

पूजा त्रैकालिकी नित्यं जपस्तर्पणमेव च।
होमो ब्राह्मणभुक्तिश्च पुरश्चरणमुन्यते॥३१॥

जो साधक तीनों कालों में (प्रातः, मध्याहन, सायं) नित्य जप तर्पण होम और ब्राह्मण भोजन कराये तो वह पुरश्चरण कहा जाता है॥३१॥

होमतर्पणयोः स्वाहा न्यासपूजनयोर्नमः।
मंत्रान्ते पूजयेद्देवीं जपकाले यथास्थिताम्॥३२॥

होम और तर्पण में स्वाहा, न्यास और पूजन में नमः तथा मंत्र जप के बाद देवी का पूजन करे॥३२॥

जपाद्दशांशं होमः स्यातद्दशांशं तु तर्पणम्।
तद्दशांशं ब्राह्मणानां भोजनं विन्ध्यमर्दन॥३३॥

हे अगस्त्य जी! जितनी संख्या में जप हो तो उसका दसवां भाग उसमें होम करें, जितनी संख्या में होम है उसका दसवां भाग उसमें तर्पण करें तथा तर्पण की संख्या का दसवां भाग उतनी संख्या में ब्राह्मण भोजन करायें॥३३॥

देशकालोपघाने तु यद्यदङ्गं विहीयते।
तत्सख्याद्विगुणं जप्त्वा पुरश्चार्यां समापयेत्॥३४॥

देश, काल उपघात में जो अंग छूट जाता है तो उस अंग दुगुना जप करके पुरश्चरण सम्पन्न करें॥३४॥

ततः काम्यप्रयोगार्थं पुनर्लक्षत्रयं जपेत्॥३५॥

इसके अन्तर काम्य प्रयोग के लिये पुनः तीन लाखजप करें॥३५॥

व्रतस्थो निर्विकारश्च त्रिकालं पूजने रतः।
पश्चाद्वश्यादिकर्माणि कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि॥३६॥

व्रत में स्थित मन वाणी कर्म में निर्विकार रहकर जो तीनों कालों में पूजन करता है बाद में वश्यादि कर्म करता है उसे सिद्धि प्राप्त होती है॥३६॥

अभ्यर्च्य चक्रमध्यस्थो मंत्री चिन्तयते यदा।
सर्वमालानमरुणं साध्यमप्यरुणीकृतम्॥३७॥

श्रीचक्र के मध्य में स्थित होकर जब साधक मंत्र जप करता है तब वह स्वयं को अरुणा वर्ण का तथा साध्य को भी अयुणवर्णका कर लेता है॥३७॥

ततो भवति विन्ध्यारे सर्वसौभाग्यसुन्दरः।
वल्लभः सर्वलोकानां वशयेन्नात्र संशयः॥३८॥

हे विन्ध्यारे! तब वह सर्वसौभाग्यों से सुन्दर हो जाता है समसत लोकों में सभी का प्रिय हो जाता

है तथा तभी अपना अनुकूल बना लेता है ॥३८॥

रोचनाकुङ्कमाभ्यां तु समभागं तु चन्दनम्।
शतमष्टोत्तरं जध्वा तिलकं कारयेद्बुधः॥३९॥

गो रोचन और केशर और चन्दन सभी समभाग करके एक सौ आठ बार जप करके तिलक करें॥३९॥

ततो यमीक्षते वक्ति स्पृशते चिन्तयेच्च यम्।
अर्थेन च शरीरेण स वशं याति दासवत्॥४०॥

तब वह जिसे देखता है बोलता है स्पर्श करता या चिन्तन करता है वह उसका अर्थ से शरीर से पूर्णवशीभूत दास जैसा हो जाता है॥४०॥

तथा पुष्पं फलं गन्धं पानं वस्त्रं तपोधन।
शतमष्टोत्तर जभ्वा यस्यै संप्रेष्यतै स्त्रियै।
सद्य आकृष्यते सा तु विमूढहृदया सती॥४१॥

हे तपोधन! तथा जो साधक पुष्प, फल, गन्ध (इत्र, चन्दन) पान, (ताम्बूल बीड़ा) वस्त्र से वस्तुएं भगवती का मंत्र 108 बार जप कर जिस अभीप्सित स्त्री के लिये सम्प्रेषित करता है तो वह शीघ्र ही विचार शूज्य होकर उस साधक के आकर्षित हो जाती है ॥४१॥

लिखेद्रोचनयैकान्ते प्रतिमामवनीतले।
सुरूपां च शृङ्गारवेषाभरणमण्डिताम्॥४२॥
तद्भालगलहृन्नाभिजन्ममण्डलयोजिताम्।
जन्मनाम महाविद्यामंकुशान्तर्विदर्भितम्॥४३॥
सर्वाङ्गसधिसलीनमालिख्य मदनाक्षरम्।
तदाशाभिमुखो भूत्वा त्रिपुरीकृतविग्रहः॥४४॥
बध्वा तु क्षोभिणीं मुद्रां विद्यामष्टशतं जपेत्।
संयोज्य दहनागारे चन्द्रसूर्यप्रभाकुले॥४५॥

जो साधक एकान्त में धरणीतल में सुन्दर रूप वाली श्रृंगार वेषभूषा और आभूषणों सजी हुई उस मूर्ति के भाल से हृदयगला, नाभि, घुटने पर्यन्त जन्मनाम महाविद्या अंकुश से लेकर कुशों तक सर्वांग संधिसंलीन मदनाक्षर से (क्लीं) चित्रित कर उसी दिशा की ओर मुख करके त्रिपुरेश्वरी के श्री विग्रह संक्षोभिणी मुद्रा बांधकर चन्द्र सूर्य की प्रभा दहनागार संयुक्त कर अष्टोत्तर रात जप करे॥४२,४३,४४,४५॥

ततो विह्वलितापाङ्गीमनङ्गशरपीडिताम्।
प्रज्वलन्मदनोन्मेष प्रस्फुरज्जघनस्थलाम्॥४६॥

उसके बाद व्याकुल नेत्रों वाली कामदेव के बाण से पीड़ित प्रज्ज्वलित कामाग्नि से फड़कती जघनस्थल वाली ॥४६॥

शक्तिचक्रे लसद्रश्मिवलनाकवलीकृताम्।
पुरीकृत सुचारित्रविशालनयनांकुशाम्॥४७॥

शक्तिचक्र में सुशोभित किरण को कवलीकृत की हुई सुचरित्र को दूर की हुई विशाल नयन पंकजों वाली ॥४७॥

आकृष्टनयनां नष्टधैर्यसल्लीनजीविकाम्।
मन्त्रयन्त्रौषध महामुद्रानिगडबन्धनाम्॥४८॥

और आकृष्ट नयनों वाली जिसका धैर्य और लज्जा पूरी तरह नष्ट हो गई है मंत्र, यंत्र औषध महामुद्रा नाम श्रृंखला से बंधी हुई ॥४८॥

नवानुरागसधान वेपमानहृदम्बुजाम्।
मनोधिकमहामन्त्रपवमानाहताम्शुकाम्॥४९॥

नवीन अनुराग के संधान कांपते हुए हृदय कमल वाली विशाल नेत्र कमलवाली मन में अधीर महामंत्र वायु से उड़ाया हुआ वस्त्र ॥४९॥

विमूढामिव विक्षुब्धामिव प्लुष्टामिवाद्भुताम्।
लिखितामिव निःसज्ञामिव प्रमथितामिव॥५०॥

विमूढ़ जैसी विक्षुब्ध जैसी विदग्ध जैसी चित्रलिखित जैसी चेतना रहित जैसी, काम प्रपीड़ित जैसी ॥५०॥

निलीनामिव निश्चेष्टामिवान्यत्वं गतामिव।
स्फुरन्मंत्रानिलोद्धूतवेणुपत्राकृतिं च खे॥५१॥

विलीन हुई जैसी के समान निश्चेष्टा के जैसी कुछ और ही हुई जैसी घूमती हुई जैसी नभ में वायु से उड़ाए गए बांस के पत्ते जैसी आकृति वाली ॥५१॥

भ्रमन्तीं भावयेन्नारी योजनानां शतादपि॥५२॥

आकाश में घूमती हुई सौ योजन दूरी पर रहने वाली ॥५२॥

चक्रमध्यगतां पृथ्वीं सशैलवनकाननाम्।
चतुःसमुद्रपर्यन्त ज्वलन्तीं चिन्तयेत्ततः॥५३॥

श्री चक्र के मध्य में स्थित पर्वत वन और काननों वाली चार समुद्र पर्यन्त प्रज्ज्वलित पृथ्वी का चिन्तन करें ॥५३॥

षणमासाभ्यासयोगेन जायते मदनोपमः।
दृष्ट्वाऽऽकर्षयते लोकं दृष्ट्वैव कुरुते वशम्॥५४॥

छह मास पर्यन्त मंत्राभ्यास के योग से मदन जैसा साधक हो जाता है वह देखकर ही लोगों को आकर्षित कर लेता है और देखकर ही अपने वशीभूत लोगों को कर लेता है॥५४॥

दृष्ट्वा संक्षोभयेन्नारीं दृष्ट्वा हरते विषम्।
दृष्ट्वा करोति वागीशं दृष्ट्वा सर्वं विमोहयेत्॥५५॥

देखकर ही नारी को संक्षुभित कर देता है देखकर ही विष बाधा समाप्त कर देता है, देखकर ही मनुष्य अच्छा वक्ता बन जाता है और देखकर ही सभी को मोहित कर लेता है॥५५॥

दृष्ट्वा चातुर्थिकादींश्च ज्वरान्नाशयते क्षणात्॥५६॥

वह देखते ही सामने वाले व्यक्ति को चौथे दिन आने वाले ज्वर को क्षण भर में शमित कर देता है॥५६॥

पीतद्रव्येण लिखितं चक्रं गूढं तु धारयेत्।
वाक्संभवादिना क्षिप्रं कुरुते नात्र संशयः॥५७॥

पीले रंग से लिखित गूढ़ श्रीचक्र को धारण करे यदि धारण किया तो वह चक्र बोलने वाले की वाणी का स्तम्भन शीघ्र ही कर लेता है इसमें संशय नहीं है॥५७॥

महानीलीरसेनापि शत्रुनामयुतं लिखेत्।
दक्षिणाभिमुखो वह्नौ दग्ध्वा मारयते रिपून्॥५८॥

महानीली रस से भी (नीलम या पन्ना का पानी या स्याही) इस चक्र के साथ शत्रु के अयुत (10 सहस्त्र) नाम लिखे और दक्षिण दिशा की ओर मुख करके आग में जला दें तो वह शत्रु को नष्ट कर देता है॥५८॥

महिषाश्वपुरीषाभ्यां गोमूत्रैर्नाम टंकितम्।
आरनालस्थितं चक्रं विद्वयं कुरुते द्विषाम्॥५९॥

भैंसा और अश्वलीद में गोमूत्र से नाम लिखता है चांवल के माड़ में चक्र को रख दिया जाये तो वह शत्रुओं में आपस में विद्वेष कर देता है॥५९॥

युक्त्वा रोचनया नाम काकपक्षेण मध्यगम्।
लम्बमानं तदाकाशे उच्चाटनकर परम्॥६०॥

गोरोचन को पानी में घोलकर श्रीचक्र के मध्य में कौए के पंख को रख दें या पंख से लिखकर लटका दें तो वह उच्चाटन करने वाला होता है॥६०॥

दुग्धलाक्षारोचनाभिर्महानीलीरसेन च।
लिखित्वा धारयेश्चक्र चातुर्वर्ण्य वशं नयेत्॥६१॥

दूध, महावर, लाख, महानीली के रस से लिखित चक्र को धारण करने चारों वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) वश में रखता है॥६१॥

अनेनैव विधानेन जलमध्ये यदि क्षिपेत्।
सौभाग्यमतुलं तस्य स्नानपानान्न संशयः॥६२॥

इसी विधान यदि उस चक्र को जल में फेंक दिया जाय तो उस व्यक्ति को स्नान, पान आदि सभी प्रकार का अतुल सौभाग्य प्राप्त होता है, इसके कोई भी संखय नहीं है॥६२॥

चक्रमध्यगतं देशं नगरीं वा वराङ्गनाम्।
ज्वलन्तीं चिन्तयेन्नित्यं सप्ताहात्क्षोभयेन्मुने॥६३॥

हे मुने! श्रीचक्र के मध्य में किसी देश, नगरी या किसी सुन्दर स्त्री को जलती हुई चिन्तन नित्य करेगा तो सप्ताहभर में वह उन्हें क्षुभित कर लेगा॥६३॥

लिखित्वा पीतवर्णं तु चक्रमेतद्यदाचरेत्।
पूर्वाशाभिमुखो भूत्वा स जयेत्सर्ववादिनः॥६४॥

यदि कोई इस चक्र को पीले रंग में लिखकर पूर्व दिशा की ओर मुख करके वाद करें तो वह सभी प्रतिवादियों पर विजयी होता है॥६४॥

सिन्दूरवर्णलिखितं पूजयेदुत्तरामुखः।
यदा तदा च स्ववशो लोको भवति नान्यथा॥६५॥

कोई साधक जब सिन्दूर वर्ण से उत्तर दिशा की ओर मुख करके लिखता है तो तब वह समस्त लोक (समाज) को अपने वश में कर लेता है अन्य और किसी प्रकार से नहीं॥६५॥

चक्रं गैरिकयालिख्य पूजयेत्पश्चिमामुखः।
यः स सर्वाङ्गनाकर्षवश्यक्षोभकरो भवेत्॥६६॥

जो श्री चक्र को गेरू से लिखकर पश्चिम दिशा की ओर मुख करे पूजित करता है तो वह समस्त स्त्रियों को आकर्षित वशीभूत तथा उन्हें क्षुभित कर देता है॥६६॥

पूजयेद्विन्ध्यदपरि रहस्यकचरो गिरौ।
अजरामरतां मन्त्री लभते नात्र संशयः॥६७॥

हे विन्ध्यमद के शत्रु! यदि कोई साधक एकान्त में अकेला पर्वत पर श्री चक्र का पूजन करे वह अजरता (बुढ़ापा रहित) अमरता (दीर्घायुष्य) प्राप्त करता है इसमें जरा भी सन्देह नहीं है॥६७॥

रहस्यमेनत्कथितं गोपितव्यं महामुने।
गोपनात्सर्वसिद्धिः स्याद्भ्रंश एव प्रकाशनात्॥६८॥

हे महामुनि! हमने यह साधना का रहस्य आपसे सुपात्र जानकर कहा है पर यह गोपनीय है बिना परिचय के सभी से और अयोग्यों को कुपात्रों को मालूम नहीं होना चाहिये गोपनीयता से सिद्धि है, प्रकाशन से सिद्धि भ्रंश ही होता है॥६८॥

अविधाय पुरश्चर्यां यः कर्म कुरुते मुने।
देवताशापमाप्नोति नच सिद्धिं स विन्दति॥६९॥

बिना पुरश्चरण किये हे मुने! जो कोई इन कर्मों को करता है तो उसे देवता का शाप मिलता है और वह सिद्धि भी प्राप्त नहीं कर पाता॥६९॥

प्रयोगदोषनुयर्थ पुनर्लक्ष जपेद्बुधः।
कुर्याच्च विधिवत्पूजां पुनर्योग्यो भवेन्नरः॥७०॥

प्रयोग में दोषों को नष्ट करने के लिये बुद्धिमान विधिवत् पूजा करे तब वह साधना के योग्य होगा॥७०॥

निष्कामो देवना नित्यं योऽर्चयेद्भक्तिनिर्भरः।
तामेव चिन्तयन्नास्ते यथाशक्ति मनुं जपन्॥७१॥

जो भक्तिपूर्ण होकर नित्य ही निष्काम भावना से अर्चन करता है उन्हीं भगवती का चिन्तन करता है और यथाशक्ति मंत्र जप करता है तो॥७१॥

सैव तस्यैहिकं भारं वहेन्मुक्तिं च साधयेत्।
सदा संनिहिता तस्य सर्व च कथयेत सा॥७२॥

उस निष्काम भक्त की इस जन्म की समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति वह माता करती हैं और मुक्ति भी देती हैं, सदैव उसके निकट रहती हैं सदा सचेत करती रहती हैं॥७२॥

वात्सल्यसहिता धेनुर्यथा वत्समनुत्रजेन्।
तथानुगच्छेत्सा देवी स्वभक्तं शरणागतम्॥७३॥

जिस तरह वात्सल्यपूर्ण गौ अपने नवजात बछड़े के लिये तत्पर रहती है बछड़े के लिये वह शेर से भी नहीं डरती (ये वात्सल्य शब्द वत्सल शब्द से बना है, वत्सल शब्द का अपभ्रंश बछड़ा है, वात्सल्य शब्द में गौ के वत्स का उदाहरण का विकल्प नहीं है पुत्र प्रेम में वात्सल्य शब्द ही प्रयुक्त होता, इतना गहरा इस शब्द का हृदय में प्रवेश है) उसी प्रकार भगवती अपने शरणागत भक्त के लिये उसके पीछे अनुसरण करती हैं॥७३॥

अगस्त्यः। अगस्त्य जी बोलेः-

शरणागतशब्दस्य कोऽर्थो वद हयानन।
वत्सं गौरिव यं गौरी धावन्तमनुधावति ॥७४॥

हे देव! हयानन जी-: शरणागत शब्द का अर्थ क्या है इसी आप बतावें जिस वत्स के पीछे गाय दौड़ती है क्या वैसे ही धवन्त अर्थात शरीर से मन से चंचल भक्त के पीछे गौरी माँ पीछे पीछे चलती हैं, यही अर्थ है क्या? ॥७४॥

हयग्रीवः॥ श्री हयग्रीव जी बोलेः-

यः पुमानखिलं भारमैहिकामुष्मिकात्मकम्।
श्रीदेवतायां निक्षिप्य सदा तद्गतमानसः॥७५॥

जो मनुष्य अपने इस लोक के और अन्य स्वयं कर्तृत्वादि मिथ्या अभिमानों को त्याग कर भगवती श्री देवता में अपने आप को समर्पित कर तद्गत मानस हो जाता है, वह शरणागत है ॥७५॥

सवार्नुकूलः सर्वत्र प्रातिकूल्यविवर्जितः।
अनन्यशरणो गौरीं द्दढ संप्रार्थ्य रक्षणे॥७६॥

सर्वत्र सब प्रकार से उन मां के अनुकूल रहता हुआ उनके विपरीत न रहता हुआ गौरी श्रीमाता के अतिरिक्त और किसी की शरण में न रहता हुआ मां गौरी से ही अपनी रक्षा की दृढ़ प्रार्थना करके रहता है ॥७६॥

रक्षिष्यतीति विश्वासस्तत्सेवैकप्रयोजनः।
वरिवस्यातत्परः स्यात्स एव शरणागतः॥७७॥

ऐसे सुदृढ़ निश्चय वाला भक्त जिसे यह निश्चित विश्वास है कि वे मेरी श्री मां मेरी रक्षा करेंगी ही और उसका एक ही प्रयोजन है कि मुझे उनकी सेवा ही करना है, ऐसा निश्चय करके जो उनकी पूजा करने में ही तत्पर रहता है वही वास्तव में शरणागत है ॥७७॥

यदाकदाचित्सति निन्दनादौ निन्दन्ति लोकास्तनुमेव नो माम्।
इति स्वरूपं सुधिया समीक्ष्य विषादखेदं न भजेत्प्रपन्नः॥७८॥

इस संसार में दैनिक जीवन में जब कभी निन्दा की प्रवृत्ति का सामना करना लोगों के निन्दा करने पर यदि यह विचार हो कि ये लोग तो दिखने वाले इस नाशवान शरीर को ही लक्ष्य करके निंदा कर रहे हैं मैं तो इसमें रहते हुए भी निर्लिप्त हूं इस प्रकार सुन्दर स्वस्थ बृद्धि से समीक्षा करके जो होने वाली निंदा आदि से खिन्न नहीं होता वहीं प्रपन्न से शरणागत है (भगवती प्रपन्न परिजाताय हैं) ॥७८॥

अनुकूलस्य संकल्पः प्रतिकूलस्य वर्जनम्।
रक्षिष्यतीति विश्वासो गोमृत्ववरणं तथा॥७९।।

अनुकूलता का संकल्प (अर्थात मैं भगवती के अनुकूल ही रहूंगा) प्रतिकूल का निषेध और वे मेरी रक्षा ही करेंगी ऐसा दृढ़ विश्वास तथा वे ही रक्षक हैं ऐसी धारणा हो॥७९।।

आत्मनिक्षेपकार्पण्ये षडविधा शरणागतिः।
अङ्गीकृत्यात्मनिक्षेपः पञ्चाङ्गनीतराणि तु॥८०॥

अपने आपको समर्पण में छह प्रकार की शरणागति होती है 1 अनुकूल रहने का संकल्प, 2 प्रतिकूल रहने का परित्याग, 3 वे मेरी अवश्य ही रक्षा करेंगी, यह दृढ़ विश्वास, 4 रहस्य छिपाने की प्रवृत्ति, 5 आत्म निक्षेप अर्थात अपना पूरी तरह समर्पण, 6 कार्पण्य अर्थात स्वयं को दीन हीन समझना॥८०॥

विशेष- पूज्य महाराज जी का स्वामी अखंडानंद जी सरस्वती से जबलपुर में मिलना हुआ, तब महाराज जी 20-21 वर्ष की आयु में थे पू. महाराज जी स्वामी अखण्डानंद जी सरस्वती से (ये स्वामी जी ब्रह्मलीन शंकराचार्य स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती के शिष्य थे पू. करपात्री जी भी इनके संचासी शिष्य और अपने पूज्य महाराज भी इनके शिष्य थे) यह जिज्ञासा की जिसका उल्लेख पू. महाराज जी ने स्वामी जी से पूछा था, कि शरणागति का स्वरूप क्या है तब अखण्डानंद जी ने कहा- शरणागति एक सिद्ध पदार्थ है। दृश्य मात्र की शरण अधिष्ठान चेतन ही है, जब तक उसका बोध नहीं होता तब तक अशरण होने का भ्रम बना रहता है जब यथार्थ शरणागति का बोध होता है तब उस भ्रम निवृत्ति होती है शरणागति कोई क्रियाभाव या स्थिति नहीं है क्रिया विधि मूल है भाव विश्वास मूलक है स्थिति अभ्यास मूलक है वास्तविक शरणागति अधिष्ठान चेतन का बाध ही है चेतन केवल अपना आत्मा ही है, अन्य नहीं।

नह्यस्य सदृशं किंचिद्भक्तिमुक्त्योस्तु साधनम्।
अमानित्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवम्।
आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः॥८१॥

यह आत्म निक्षेप कार्यण्यादि षडविश शरणागति के भेद हैंउनसे बढ़कर और कोई सुगम साधन भक्ति और मुक्ति के साधन में नहीं है, स्वयं में अभिमान न होना, प्रदर्शनादि दंभ प्रवृत्ति का न होना, अहिंसा, क्षमाशीलता, सरलता, आचार्य की सेवा, बाह्य, भीतर पवित्रता, स्थिरता, धैर्य, स्वयं पर नियंत्रण॥८१॥

इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहंकार एव च।
जन्ममृत्युजगव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम्॥८२॥

पांचों ज्ञानेन्द्रियों के अर्थों में वैराग्य (कर्णन्द्रिय शब्दः त्वचाा स्पर्श, नेत्र, रूप, जिह्वा रस,

नासिका गंध, पांच कर्मेन्द्रियां मुख, हाथ पैर, उपस्थ, और पायु) अहंहार रहित होना, जन्म में मृत्यु में, बुढ़ापे में, रोग में, दुःख और दोषों का विचार करना ॥८२ ॥

असक्तिरनमिष्वङ्गः पुत्रदारगृहादिषु।
नित्य च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु ॥८३ ॥

सभी में अनासक्ति इनमें अधिक आवश्यकता से अधिक मन संयोजन-पुत्र, पत्नी गृहादि बंधुबान्धवों में अनासक्ति अनावश्यक लगाव आदि न करना, नित्य ही सुख दुःख में प्रिय अप्रिय में, शीतोष्ण ताव आदि समचित्त रहना इष्ट और अनिष्ट प्राप्ति में समान चित्त रहना ॥८३ ॥

मयि चानन्यभावेन भक्तिरव्यभिचारणी।
विविक्तदेशसेवित्वमरनिर्जनसम्सदि ॥८४ ॥

श्रीमाता भगवती में अनन्य भाव से निष्काम भक्ति करना, जन कोलाहल से रहित स्थान में निवास जन समूह से दूर रहना ॥८४ ॥

अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम्।
एतानि सर्वदा ज्ञानसाधनानि समभ्यसेत् ॥८५ ॥

अध्यात्म ज्ञान में नित्य लगे रहना और तत्वज्ञान के लिये अर्थ का गम्भीरता से विचार करना, इन सभी ज्ञान के साधनों को सदैव अभ्यास करते रहना चाहिये ॥८५ ॥

तत्कर्मकृत्तत्परमस्तद्भतः सङ्गवर्जितः।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स याति परां श्रियम् ॥८६ ॥

इस प्रकार उन भगवती कामाक्षी के सेवा आदि कर्म करने वाला उनके प्रति परम भक्ति रखने वाला, उनका भक्त आसक्ति रहित सभी प्राणियों में बैर न रखने वाला जो साध है वहीं उन पराशक्ति महात्रिपुर सुन्दरी ललिताम्बा कामाक्षी का सान्निध्य प्राप्त करता है ॥८६ ॥

गुरुस्तु मादृशो धीमान्ख्यातो वा नहि तापनः।
शिष्योपि त्वादृशः प्रोक्तो रहस्यान्नायदेशिकैः ॥८७ ॥

हे तापस ! मेरे जैसा बुद्धिमान गुरु और कहीं नहीं है जो रहस्य, मर्मविद् हो, और तुम्हारे जैसा कोई जिज्ञासु शिष्य भी नहीं है जो वे वेदांग, ब्राह्मण, उपनिषद आरण्यक उपनिषदों के विषय में जानता हो और जानने की जिज्ञासा रखने वाला हो, यदि शिष्य होना है तो तुम्हारे जैसा ही हो ॥८७ ॥

इति श्रीब्रह्मोत्तरखण्डे हयग्रीवागस्त्यसंवादे
ललितोपाख्याने सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥३७ ॥

॥श्रीमन्महागणाधिपतये नमः।।

श्रीमातालिताम्बायै नमः श्रीपादुकां पूजयामि नमः॥
ॐ वन्दे गुरुपदद्वन्दमवाङ्मनसगोचरम्॥
रक्तशुक्लप्रभामिश्रमतर्क्यं त्रैपुरं महः॥
ॐ आराध्यदेवं भक्तानां कलिदोषविनाशकम्॥
वन्दे श्रीगिरिजानन्द शारदाश्रीमठाधिपम्।।
शारदाज्योतिरीशस्य दर्शनं (पूजनं, वन्दनं) शुभमस्तुनः॥

अष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥३८॥

[मुद्रालक्षणप्रकारादिकथनम्॥]

अगस्त्यः।। श्री अगस्त्य जी बोले-

मुद्राविरचनारीतिमश्वानन निवेदय।
याभिर्विरचिताभिस्तु श्रीदेवी संप्रसीदति॥१॥

हे हयानन जी ! आप मुझे मुद्रा की रचना का प्रकार बताने की कृपा करें, जिन मुद्राओं की रचना और प्रदर्शन से श्रीदेवी बहुत ही प्रसन्न होती हैं॥१॥

श्री हयग्रीव जी बोले-

आवाहनी महामुद्रा त्रिखण्डेति प्रकीर्तिता।
परिवृत्य करौ स्पष्टमङ्गुष्ठौ कारयेत्समौ॥२॥

हे ऋषिवर्य ! आवाहनी और त्रिखण्डा महामुद्राएं कही गईं हैं, दोनों हाथों को परिवृत (बंद) करके दोनों अंगूठों को सम करें और अनामिका के अंतर्गत तर्जनी को टेढ़ी कर कनिष्ठा सम रहें वह आवाहनी है॥२॥

अनामान्तर्गते कृत्वा तर्जन्यौ कुटिलाकृतौ।
कनिष्ठिके नियुञ्जीत निजस्थाने तपोधन॥३॥

हे तपोधन ! इस श्लोक का अर्थ पिछले श्लोक में है॥३॥

संक्षोभिण्याख्यमुद्रां तु कथयाम्यधुना शृणु।
मध्यमे मध्यगे कृत्वा कनिष्ठाङ्गुष्ठरोधिते।
तर्जन्यौ दण्डवत्कृत्वा मध्यमोपर्यनामिके॥४॥

हे अगस्त्य ! मैं अब संक्षोभिणी मुद्रा को बता रहा हूं, उसे सुनो मध्यमा अंगुली बीच में करके कनिष्ठा को अंगूठे से रोक कर दोनों तर्जनी को दण्डवत् करके मध्यमा के ऊपर दोनों अनामिका को करे॥४॥

एतस्या एव मुद्राया मध्यमे सरले यदि।
क्रियेते विन्ध्यदर्परि मुद्रा विद्राविणी मता॥५॥

इसी संक्षोभिणी मुद्रा में यदि हे विन्ध्यदर्परि ! मध्यमाओं को सीधी कर दें तो वह विडाविणी मुद्रा बन जाती है॥५॥

मध्यमातर्जनीभ्यां तु मध्यगे कलशोद्भव।
इयमाकर्षिणी मुद्रा त्रैलोक्याकर्षणक्षमा॥६॥

हे कुम्भज ! मध्यमा और तर्जनी दोनों अंगुलियों के द्वारा कनिष्ठिका और अनामिका को समान करने पर यह मुद्रा त्रिलोकाकर्षण में समर्थ होती है॥६॥

पुटाकारौ करौ कृत्वा तर्जन्यावंकुशाकृती।
परिवर्तक्रमेणेत्र मध्यगे तदधोगते॥७॥

हाथों की मुट्ठी बांधकर दोनों तर्जनियों को तर्जनी के नीचे करने पर॥७॥

क्रमेणानेन देवर्षे मध्यगेमध्यगेऽनुजे।
अनामिके तु सरले तद्बहिस्तर्जनीद्वयम्॥८॥
दण्डाकारौ ततोऽङ्गुष्ठौ मध्यमावर्तदेशगौ।
मुद्रेषोन्मादिनी नाम्ना ख्याता वातापितापन॥९॥

इसी क्रम से मध्यमा को बीच में करने पर अनामिका को सीधी करने पर उसके बाहर दोनों तर्जनियों को करने पर उसके दोनों अंगूठों को दण्डाकार करके मध्यमा के पास करने पर यह मुद्रा उन्मादिनी नाम से हैं वातापि को नष्ट करने वाले अगस्त्य जी ! विख्यात है॥८,९॥

अस्यास्त्वनामिका युग्ममधः कृत्वाङ्कुशाकृति।
तर्जन्यावपि तेनैव क्रमेण विनियोजयेत्॥१०॥

इसी मुद्रा में दोनों अनामिकाओं को नीचे करके अंडंकुश की आकृति बनाकर तर्जनियों को भी उसी क्रम में लगायें तो॥१०॥

इयं महांकुशा मुद्रा सर्वकार्यार्थसाधिका।
सव्यं दक्षिणदेशे तु दक्षिणं सव्यदेशतः॥११॥

बाएं हाथ को दाएं तरफ और दाएं हाथ को बाएं तरफ॥११॥

वामोरूकृत्वा देवर्षे हस्तौ संपरिवर्त्य च।
कनिष्ठानामिके युक्त्वा क्रमेणानेन तापस॥१२॥

हे देवर्षें ! दोनों हाथों को करके तथा दोनों हाथों को पूरी तरह उलटकर कनिष्ठा और अनामिका

को क्रम से मिलाने पर ॥१२॥

तर्जनीभ्यां समाक्रान्ते सर्वोर्ध्वमपि मध्यमे।

लोपामुद्रापतेऽङ्गुष्ठो कारयेत्सकलावपि॥१३॥

तर्जनियों से समाक्रान्त करने पर सबके ऊपर मध्यमा को रखने पर हे लोपामुद्रा के पति ! अगस्त्य जी ! यह सर्वोत्तम खेचरी नाम्नी मुद्रा है ॥१३॥

इयं तु खेचरी नाम मुद्रा सर्वोत्तमोत्तमा।

एतद्विज्ञानमात्रेण योगिनीनां प्रियो भवेत्॥१४॥

यह खेचरी मुद्रा नाम से प्रसिद्ध है यह मुद्रा सर्वोंत्तमोत्तमा है इसके विज्ञान मात्र से साधक योगिनियों का प्रिय हो जाता है ॥१४॥

परिवर्त्य करौ स्पृष्ट्रावर्धचन्द्रसमाकृती।

तर्जन्यङ्गुष्ठयुगुलं युगपद्योजयेत्ततः॥१५॥

अधः कनिष्ठावष्टब्धमध्यमे विनियोजयेत्।

अथैवं कुटिले योज्य सर्वाधस्तादनामिके।॥१६॥

बीजमुद्रेयम चिरात्सर्वसिद्धिप्रवर्तिनी॥१७॥

दोनों हाथों को परिवर्तित करके दोनों को एक दूसरे से स्पर्श कराकर अर्धचन्द्रमा के समान आकृति करके तर्जनी को दोनों अंगूठों में एक साथ लगा दें तथा नीचे कनिष्ठा को मध्यमा में लगाएं इस प्रकार इन सबको टेढ़ी करके सबसे नीचे अनामिका को करने पर यह ब्रज मुद्रा है जो शीघ्र ही सब सिद्धियों को देने वाली है ॥१५,१६,१७॥

मध्या मे कुटिलाकारे तर्जन्युरि संस्थिते।

अनामिकामध्यगते तथैव हि कनिष्ठिके॥१८॥

दोनों मध्यमा अंगुलियों को टेढ़ी करके दोनों तर्जनियों पर रखने पर अनामिकाओं को बीच में करने पर उसी तरह कनिष्ठिकाओं को भी बीच में करने पर ॥१८॥

सर्वा एकत्र संयोज्य चाङ्गुष्ठपरिपीडिताः।

एषा तु प्रथमा मुद्रा योनिमुद्रेति संस्थिता॥१९॥

सबको एक जगह मिलाकर सबसे ऊपर अंगूठे रहने पर यह प्रथमा मुद्रा है जो योनिमुद्रा नाम से कही गई है१९॥

एता मुद्रास्तु देवर्षे श्रीदेव्याः प्रीतिहेतवः।

पूजाकाले प्रयोक्तव्या यथानुक्रमयोगतः॥२०॥

हे देवर्षे ! ये सभी मुद्राएं श्रीदेवी भगवती ललिताम्बा को प्रसन्न करने की कारण हैं ऐसा श्री हयाननजी ने कहा, कि इनको पूजा के समय यथा क्रम से प्रयुक्त करना चाहिए॥२०॥

इति श्रीब्रह्मोत्तरखण्डे हयग्रीवागस्त्यसंवादे

ललितो- पाख्यानेऽष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥३८॥

॥श्रीमन्महागणाधिपतये नमः।।

श्रीमाताललिताम्बायै नमः श्रीपादुकां पूजयामि नमः॥
ॐ वन्दे गुरुपदद्वन्दमवाङ्मनसगोचरम्॥
रक्तशुक्लप्रभामिश्रमतर्क्यं त्रैपुरं महः॥
ॐ आराध्यदेवं भक्तानां कलिदोषविनाशकम्॥
वन्दे श्रीगिरिजानन्द शारदाश्रीमठाधिपम्।।
शारदाज्योतिरीशस्य दर्शनं (पूजनं, वन्दनं) शुभमस्तुनः॥

एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥ ४४ श्लोकात्मकः

[देवीदर्शनदीक्षावर्णनम्।]

अगस्त्यः॥ श्री अगस्त्य जी बोले-

अश्वानन महाप्राज्ञ करुणामृतवारिधे।
श्रीदेवीदर्शने दीक्षा यादृशी तां निवेदय॥१॥

हे ह्यग्रीव जी ! हे महाप्राज्ञ!! हे करुणामृत वारिधे!! आप कृपा कर यह बताईये कि श्री देवी भगवती के दर्शन में जैसी दीक्षा हो, उसका वर्णन कीजिये ऐसा निवेदन है॥१॥

श्री ह्यग्रीव जी बोले-

यदि ते देवताभावो यया कल्मषकर्दमाः।
क्षाल्यन्ते च तथा पुंसां दीक्षामाचक्ष्महेऽत्र तां॥२॥

हे कुम्भज ! यदि आपका उन श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी ललिताम्बा कामाक्षी के प्रति देवीभाव है जिसके द्वारा समसत पापपंक धुल जाते हैं और पुरुष निष्पाप हो जाता है, वह यहां तुम्हारे जिज्ञासा करने पर कह रहा हूं॥२॥

हस्ते शिवपुरं ध्यात्वा जपेन्मूलाङ्गमालिनीम्।
गुरुः स्पृशेच्छिष्यतनुं स्पर्शदीक्षेयमीरिता॥३॥

हाथ में शिवपुर का ध्यान करते हुए मूलांगमालिनी का ध्यान और जप करना चाहिये फिर श्री गुरुशिष्य के शरीर का स्पर्श करें यह स्पर्श दीक्षा कही जाती है॥३॥

निमील्य नयने ध्यात्वा श्रीकामाक्षीं प्रसन्नधीः।
सम्यक्पश्येद्गुरुः शिष्यं दृग्दीक्षा सेयमुच्यते॥४॥

फिर प्रसन्न बुद्धि रखते हुए दोनों नेत्रों को बंद कर श्री कामाक्षी भगवती का ध्यान करके श्री गुरुवर्य शिष्य को देखें, तो वह दृग्दीक्षा कही जाती है॥४॥

गुरोरालोकमात्रेण भाषणात्स्पर्शनादपि।
सद्यः संजायते ज्ञान सा दीक्षा शाम्भवी मता॥५॥

गुरु के देखने मात्र से बोलने से और स्पर्श करने से भी शीघ्र ज्ञानोदय हो जाता है, उसे शाम्भवी दीक्षा कहा गया है॥५॥

देव्या देहो यथा प्रोक्तो गुरुदेहस्तथैव च।
तत्प्रसादेन शिष्योऽपि तद्रूपः सम्प्रकाशते॥६॥

देवी का श्रीविग्रह जैसा होता है वैसा ही श्री गुरु का देह भी वैसा ही होता है उन गुरु की भगवती की कृपा से शिष्य का भी उसी रूप में प्रकाशित होता है॥६॥

चिरं शुश्रूषया सम्यक् तोषितो देशिकेश्वरः।
तूष्णीं संकल्पयेच्छिष्यं सा दीक्षा मानसी मता॥७॥

बहुत समय तक सेवा करने से वे देशिकेश्वर गुरु अच्छी तरह सन्तुष्ट हो जाते हैं तो चुपचाप शिष्य का मन चिन्तन एवं संकल्प करें तो वह मानसीदीक्षा॥७॥

दीक्षाणामपि सर्वासामियमेवोत्तमोत्तमा।
आदौ कुर्यात्क्रियादीक्षां तत्प्रकारः प्रवक्ष्यते॥८॥

सभी दीक्षाओं में भी यह दीक्षा सर्वोत्तम है सबसे पहिले यह करना चाहिये यह क्रियादीक्षा है, इसका प्रकार हम आगे वर्णन कर रहे हैं॥८॥

शुक्लपक्षे शुभदिने विधेयः शुद्धमानसः।
जिह्वास्यमलशुद्धिं च कृत्वा स्नात्वा यथाविधि॥९॥

शुक्लपक्ष में किसी शुभ दिन में शुद्ध और पवित्र प्रसन्न मानस से युक्त होकर जीभ और मुख की शुद्धिकर उनमें मल का निसिरिण कर शुद्ध जलस्नान करके॥९॥

संध्याकर्म समाप्याथ गुरुदेहे परां स्मरन्
एकान्ते निवसन्श्रीमान्मौनी च नियताशनः॥१०॥

सन्ध्योपासन गायत्री जप सम्पन्न करके गुरुदेह में परा भगवती स्मरण का एकान्त में रहते हुए श्रीमान् मौनी रूप में निश्चित पवित्र भोजन से निवृत्त हो॥१०॥

गुरुश्च तादृशो भूत्वा पूजामन्दिरमाविशेन्।
देवीसूक्तेन संयुक्तं विद्यान्यासं समातृकम्॥११॥

गुरु भी वैसे ही हों तथा पूजा मंदिर में प्रकाश कर देवी सूक्त के पाठ के साथ श्रीविद्यामंत्र मातृकावर्ण से सम्पुटित॥११॥

कृत्वा पुरुषसूक्तेन षोडशैरुपचारकैः।
आवाहनासने पाद्यमर्घ्यमाचमनं तथा॥१२॥

पुरुषसूक्त सोलह उपचारों से पूजा, जिसमें आसन, आवाहन पाद्य अर्ध्य और आचमन करें॥१२॥

स्नान वस्त्रं च भूषां च गन्धः पुष्पं तथैव च।
धूपदीपौ च नैवेद्य ताम्बूलं च प्रदक्षिणाम्॥१३॥

स्नान, वस्त्र, आभूषण, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, और दक्षिणा और प्रदक्षिणा सम्पन्न कर॥१३॥

प्रणामश्चेति विख्यातैः प्रीणयेत्त्रिपुराम्बिकाम्।
अथ पुष्पाञ्जलिं दद्यात्सहस्त्राक्षरविद्यया॥१४॥

फिर इन उपचारों को समर्पित करने के बाद भगवती त्रिपुराम्बा को प्रणाम करें उन्हें प्रसन्न करे इसके बाद सहस्त्राक्षर विद्या से भगवती के श्री चरणों में पुष्पांजलि अर्पित करें॥१४॥
सहस्त्राक्षर विद्या इस प्रकार है-

''ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ऐ क्लीं सौः ॐनमस्त्रिपुरसुन्दरि हृदये देवि शिरो देवि शिखा देवि कवचे देवि नेत्रे देवि अस्त्रे देवि कामेश्वरि भगमालिनि नित्यक्लिन्ने भेरुण्डे वह्निवासिनि महावज्रेश्वरि विद्येश्वरि परशिवदूति त्वरिते कुलसुन्दरि नित्ये नीलपताके विजये सर्वमङ्गले ज्वालामालिनि चित्रे महानित्ये परमेश्वरि मित्रीशमयि षष्ठीशमय्युड्याणमयि चयार्नाथमयि लोपामुद्रामय्यगस्त्यमयि कालतापनमयि धमार्चार्यमयि मुक्तकेशीश्वरमयि दीपकलानाथमयि विष्णुदेवमयि प्रभाकरदेवमयि तेजोदेवमयि मनोजदेवमयि अणिमासिद्धे महिमासिद्धे गरिमासिद्धे लघिमासिद्धे ईशित्वसिद्धे वशित्वसिद्धे प्राप्तिसिद्धे प्राकाम्यसिद्धे रससिद्धे मोक्षसिद्धे ब्राह्मि माहेश्वरि कौमारि वैष्णवि वाराहि इन्द्राणि चामुण्डे महालक्ष्मि सर्वसंक्षोभिणि सर्वविद्राविणि सर्वाकर्षिणि सर्ववशंकरि सर्वोन्मादिनि सर्वमहाङ्कुशे सर्वखेचरि सर्वबीजे सर्वयोनि सर्वत्रिखण्डिनि त्रैलोक्यमोहनचक्रस्वामिनि प्रकटयोगिनि बौद्धदर्शनाङ्गि कामाकर्षिणि बुद्ध्याकर्षिण्यहंकाराकर्षिणि शब्दाकर्षिणि स्पर्शाकर्षिणि रूपाकर्षिणि रसाकर्षिणि गन्धाकर्षिणि चित्ताकर्षिणि धैर्याकर्षिणि स्मृत्याकर्षिणि नामाकर्षिणि बीजाकर्षिण्यात्मकर्षिण्यमृताकर्षिणि शरीराकर्षिणि गुप्तयोगिनि

सवार्शापरिपूरकचक्रस्वामिन्यनङ्गकुसुमेऽनङ्ग लेखेऽनङ्गमदनेऽनङ्गमदनातुरेऽनङ्गरेखेऽनङ्ग वेगिन्यनङ्गाङ्कशेऽनङ्गमालिनि गुप्ततरयोगिनि वैदिकदर्शनाङ्गि सर्वसंक्षोभकारकचक्रस्वामिनि पूर्वान्नायाधिदेवते सृष्टिरूपे सर्वसंक्षोभिणि सर्वविद्राविणि सर्वाकर्षिणि सर्वाह्लादिनि सर्वसंमोहिनि सर्वस्तम्भिनि सर्वजृम्भिणि सर्ववशंकरि सर्वरञ्जिनि सर्वोन्मादिनि सर्वार्थसाधिके सर्वसंपत्प्रपूरणि सर्वमन्त्रमयि सर्वद्वन्द्वक्षयकरि संप्रदाययोगिनि सौरदर्शनाङ्गि सर्वसौभाग्यदायकचक्रे सर्वसिद्धिप्रदे सर्वसंपत्प्रदे सर्वप्रियंकरि सर्वमङ्गलकारिणि सर्वकामप्रदे सर्वदुःखविमोचनि सर्वमृत्युप्रशमनि सर्वविघ्ननिवारिणि सर्वाङ्गसुन्दरि सर्वसौभाग्यदायिनि कुलोत्तीर्णयोगिनि सर्वार्थसाधकचक्रे सर्वशे सर्वशक्ते सर्वैश्वर्यफलप्रदे सर्वज्ञानमयि सर्वव्याधिनिवारिणि सर्वाधारस्वरूपे सर्वपापहरे सर्वानन्दमयि सर्वरक्षास्वरूपिणि सर्वेप्सितप्रदे निगर्भयोगिनि वैष्णवदर्शनाङ्गि सर्वरक्षाकरचक्रस्थे दक्षिणाम्नायेशि स्थितिरूपे वशिनि कामेशि मोदिनि विमलेऽरुणे जयिनि सर्वेश्वरि कौलिनि रहस्ययोगिनि शाक्तदर्शनाङ्गि सर्वरोगहरचक्रेशि पश्चिमाम्नायेशि धनुर्वाणपाशाङ्कुशदेवते कामेशि वज्रेशि भगमालिन्यतिरहस्ययोगिनि शैवदर्शनाङ्गि सर्वसिद्धिप्रदचक्रगे उत्तराम्नायेशि संहाररूपे शुद्धपरे बिन्दुपीठगते महात्रिपुरसुन्दरि परापरातिरहस्य योगिनि शाम्भवदर्शनाङ्गि सर्वानन्दमयचक्रेशि त्रिपुरे त्रिपुरेशि त्रिपुरसुन्दरि त्रिपुरवासिनि त्रिपुराश्रीत्रिपुरमालिनि त्रिपुरसिद्धे त्रिपुराम्बे सर्वचक्रस्थेऽनुत्तराम्नायाख्य स्वरूपे महात्रिपुरभैरवि चतुर्विधगुणरूपे कुले अकुले कुलाकुले महाकौलिनि सर्वोत्तरे सर्वदर्शनाङ्गि नवासनस्थिते नवा क्षरि नवमिधुनाकृते महेशमाधवविधातृमन्मथस्कन्दनन्दीन्द्रमनुचन्द्रकुबेरागस्त्ये दुर्वासःक्रोधभट्टारकविद्यात्मिके कल्याणतत्त्वत्रयरूपे शिवशिवात्मिके पूर्णब्रह्मशक्ते महापरमेश्वरि महात्रिपुरसुन्दरि तव श्रीपादुकां पूजयामि नमः॥
कएईल ह्रीं हसकल ह्रीं सकल ह्रीं ऐं ह्रीं सौः सौः क्लीं ऐं श्रीं॥

देव्याः पुष्पाञ्जलिं दद्यात्सहस्राक्षरविद्यया।
नोचेत्तत्पूजनं व्यर्थमित्याहुर्वेदवादिनः॥१५॥

देवी के इस सहस्राक्षर विद्या से पुष्पाञ्जलि देनी चाहिये यदि ऐसा नहीं किया तो उसका पूजन सार्थक नहीं होता ऐसा वेदवादी कहते हैं ॥१५॥

ततो गोमयसंलिप्ते भूतले द्रोणशालिभिः।
तावद्भिस्तण्डुलैः शुद्धैः शस्तार्णैस्तत्र नूतनम्॥१६॥

उसके बाद गोबर से लिये भूतल पर 64 कि. साठी धान और उतने ही 64 कि. चांवल से तथा नूनन॥१६॥

द्रोणोदपूरितं कुम्भं पञ्चरत्नैर्नवैर्युतम्।
न्यग्रोधाश्वत्थ माकन्दजम्बूदुम्बरशाखिनाम्॥१७॥

64 कि. जल से भरे हुए घड़े पांच नवीन वस्त्रों और रत्नों से युक्त उसमें वट पीपट आम जामुन और गूलर वृक्षों की॥१७॥

त्वग्भिश्च पल्लवैश्चैव प्रक्षिप्तैरधिवासितम्।
कुम्भाग्रे निक्षिपेत्पक्वं नारिकेलफलं शुभम्॥१८॥

इन वृक्षों की छाल को पत्तों को जल में डालकर अधिवासित करें फिर उस घड़े के आगे नारियल रखें॥१८॥

अभ्यर्च्य गन्धपुष्पाद्यैर्धूपदीपादि दर्शयेत्।
श्रीचिन्तामणिमन्त्रं तु हृदि मातृकया जपेत्॥१९॥

फिर गन्ध पुष्पादि से पूजन करें तथा धूप दीप नैवेद्यादि प्रस्तुत करें फिर मातृकावर्णों के साथ श्रीचिन्तामणि मंत्र (पंचदशी) हृदय में स्मरण कर जप करें॥१९॥

कुम्भं स्पृशन्श्रीकामाक्षीरूपीकृत कलेवरम्।
अष्टोत्तरशते जाते पुनर्दीपं प्रदर्शयेत्॥२०॥

फिर उस घड़े का स्पर्श न करते हुए जो भगवती श्री कामाची का श्री विग्रह रूप होता है (पूर्णाभिषेक विधि में वह प्रधान कलश खारी नाम से जाना जाता है उसे ही भगवती का रूप माना जाता है) उस कुम्भ के सामने 108 जप करने पर पुनः दीप प्रदर्शित करें॥२०॥

शिष्यमाहूय रहसि वाससा बद्धलोचनम्।
कारयित्वा प्रणामानां साष्टाङ्गानां त्रयं गुरुः॥२१॥

खारी कलश के पूजन के बाद शिष्य को जो आंखों में कपड़ा बांधे रहेगा उसे बुलाकर श्री गुरु उससे तीन साष्टांग प्रणाम करवाए॥२१॥

पुष्पाणि तत्करे दत्त्वा कारयेत्कुसुमाञ्जलिम्
श्रीनाथे करुणाराशे परंज्योतिर्मयीश्वरि॥२२॥

प्रसूनाञ्जलिरेषा ते निक्षिप्ता चरणाम्बुजे।
परं धाम परं ब्रह्म मम त्वं परदेवता॥२३॥
अद्यप्रभृति मे पुत्रान्रक्ष मां शरणागतम्।
इत्युक्त्वा गुरुपादाब्जे शिष्यो मूर्धैव धारयेत्॥२४॥
जन्मान्तर सुकृतवशान्यस्तेमे शिरसिपादुकेगुरुणा
कमलासनमुरशासनपुरशासनसेवया लग्नः॥२५॥
इत्युक्त्वा भक्तिभरितः पुनरुत्थाय शान्तिमान्।
वामपार्श्वे गुरोस्तिष्ठेन्मानी सन्विनयान्वितः॥२६॥
ततस्तं बीजया प्रोक्ष्य वामभागे निवेदयेत्।
विमुच्य चात्र बन्धं तु दर्शयेदर्चनक्रमम्॥२७॥
सितामध्वाज्यकदलीफलपायसरूपकम्।
महात्रिपुरसुन्दर्या नैवेद्यमिति चादिशेत्॥२८॥
षोडशार्णं मनुं तस्य वदेद्वामश्रुतौ शनैः।
ततो बहिर्विनिर्गत्य स्थाप्य दार्वासने शुचौ॥२९॥
निवेश्य प्राङ्मुखं तत्र पट्टवस्त्रसमावृते।
शिष्यं श्रीकुम्भसलिलैरभिषिञ्चेत्समन्त्रकम्॥३०॥
पुनः शुद्धोदकैः स्नात्वा वासांसि परिगृह्य च।
अष्टोत्तरशतं मन्त्रं जप्त्वा निद्रामथाविशेत्॥३१॥

पुनः उस शिष्य को शुद्धजल से स्नान का निर्देश करें फिर वस्त्र धारण करवा कर अष्टोत्तर शत बार मंत्र का जप करवाकर निद्रा लेने का शयन करने का आदेश करें॥३१॥

शुभे दृष्टे सति मुखे पुण्ये यो योग्य उत्तमः।
दुःस्वप्ने तु जपं कुर्यादष्टोत्तरसहस्रकम्॥३२॥

यदि शिष्य को शुभसूचक स्वप्न दिखता है तो पुण्यकारक है और उत्तमयोग कारक है और यदि दुःस्वप्न दिखे तो जागकर अष्टोत्तर शत जप करें॥३२॥

कारयेत्त्रिपुराम्बायाः सपर्यामुक्तमार्गतः।
यदा न दृष्टः स्वप्नोपि तदा सिद्धिश्चिरात्क्रमात्॥३३॥

यदि स्वप्न भी देखा हो अर्थात शयन विधि न भी किया हो तो कहे गए क्रमानुसार त्रिपुराम्बा की अर्चना करवावें, स्वप्न देखे भी बहुत समय जप, पूजा न्यासादि करने सफलता मिल जाती

है ॥३३॥

स्वीकुर्यात्परया भक्त्या देवीशेषं कलाधिकम्।
सद्य एव स शिष्यः स्यात्पङ्क्तिपावनपावनः॥३४॥

पराभक्ति द्वारा देवी की अधिकला को स्वीकार करना चाहिये जो शिष्य स्वीकार करता है वह पंक्तिपावन पावन हो जाता है॥३४॥

शरीरमर्थं प्राणं च तस्मै श्रीगुरवे दिशेत्।
तदधीनश्चरेन्नित्यं तद्वाक्यं नैव लङ्घयेत्॥३५॥

उन श्री गुरु के चरणों में शरीर, अर्थ (जो कामनाएं हो) और प्राण (मनबुद्धि) अर्पित कर दे अर्थात श्री गुरु की ही आज्ञा से जीवन संचालित हो उनके वाक्यों का उल्लंघन न हो ॥35॥

यः प्रसन्नः क्षणार्धन मोक्षलक्ष्मी प्रयच्छति।
दुर्लभं तं विजानीयाद्गुरुं संसारतारकम्॥३६॥

जो गुरु प्रसन्न हो जाये तो आधे क्षण में समर्पित मर्यादित शिष्य को अति दुर्लभ मोक्षरुपिणी लक्ष्मी दे देते हैं (इसके बिना ही तो प्राणी चौरासि लाख योनियों में अनन्त काल से घूम रहा दीनता मोहग्रस्तता भय ग्रस्त आदि दुःस्थिति ही मोक्ष लक्ष्मी का अभाव है) संसार से अनायास ही तार देने वाले श्री गुरु बहुत दुर्लभ हैं, नाशवान् शरीर तो कर्मबन्ध मिलते ही रहता है, यहीं संसार का स्वरूप है॥३६॥

गुकारस्यान्धकारोऽर्थो रुकारस्तन्निरोधकः।
अन्धकार निरोधित्वाद्गुरुरित्यभिधीयते॥३७॥

(गु) शब्द अन्धकार का वाचक है और (रू) शब्द अन्धकार का निरोधक अर्थात (अज्ञानांधकार को हटाने वाला, इसलिये ये श्लोक है- अज्ञान तिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया। चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः ॥ इसमें चक्षु का अर्थ ज्ञान नेत्र) अतः अन्धकार को बढ़ने से रोकने वाला गुरु कहा जाता है॥३७॥

बोधरूपं गुरुं प्राप्य न गुर्वन्तरमादिशेत्।
गुरूक्तं परुषं वाक्यमाशिषं परिचिन्तयेत्॥३८॥

आत्मबोध स्वरूप गुरु यदि मिल जाये तो फिर दूसरे गुरु की खोज नहीं करना चाहिये, बोध रूप गुरु यदि कठोर आदेश दे भी दे तो वह भी आशीर्वाद ही है॥३८॥

लौकिकं वैदिकं वापि तथाध्यात्मिकमेव च।
आददीत यतो ज्ञानं पूर्वं तमभिवादयेत्॥३९॥

लौकिक वैदिक या आध्यात्मिक ज्ञान ये तीनों ही आवश्यक हैं जीवन में यदि ये ज्ञान श्री सद्गुरु

से मिलते हैं तो शिष्य अभिवादन करे ॥३९ ॥

एवं दीक्षात्रयं कृत्वा विधेयं बोधयेत्पुनः ॥४० ॥

इस प्रकार तीनों प्रकार के ज्ञानों (लौकिक, वैदिक और आअयात्मिक) की दीक्षा लेकर फिर विधेय को जानना चाहिये अर्थात तीनों ज्ञानों को किस प्रकार कहां कौन उपयोगी है इत्यादि विधि का चिन्तन करना चाहिये ॥४० ॥

गुरुभक्तिस्तदाचारस्तद्रोहस्तत्रपातकम्।
तदन्यस्मरणं मुक्तिर्यावदेहमयं क्रमः ॥४१ ॥

श्री गुरु की भक्ति ही सदाचार है, उनका विरोध या द्रोह करना ही पातक है, श्री गुरु के चरणों का स्मरण करना ही मुक्ति है और यह क्रम जब तक शारीरिक क्रम है ॥४१ ॥

यत्पापं समवाप्नोति गुर्वग्रेऽनृतभाषणात्।
गोब्राह्मणवधं कृत्वा न तत्पापं समाश्रयेत् ॥४२ ॥

श्री गुरु के आगे झूठ बोलने से जो पाप लगता है वह गोब्राह्मण वध के पाप से भी बढ़कर है ॥४२ ॥

ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं यस्य मे गुरुसंततिः।
तस्य मे सर्वपूज्यस्य को न पूज्यो महीतले ॥४३ ॥

ब्रह्मादि गुरुओं के समूह तक मेरी जो श्री गुरु परम्परा है, उन मेरे सर्वपूज्य गुरु से अन्य और कौन है जो पूज्य है ॥४३ ॥

इति सवार्नुकूलो यः स शिष्यः परिकीर्तितः ॥४४ ॥

इस प्रकार जो सभी प्रवृत्तियों में गुरु के अनुगत है वहीं शिष्य माना गया है ॥४४ ॥

शीलादिविमलानेकगुणसंपन्नभावनः।
गुरुशासनवर्तित्वाच्छिष्य इत्यभिधीयते ॥४५ ॥

शील आदि पापरहित निर्मल अनेक गुणों सम्पन्न भावनावाला भावुक श्री गुरु के शासन का व्यवहार करने वाला ही शिष्य कहा जाता है (शासनाच्छिष्यः) ॥४५ ॥

जपाच्छ्रान्तः पुनर्ध्यायेद्ध्यानाच्छ्रान्तः पुनर्जपेत्।
जपध्यानादियुक्तस्य क्षिप्रं मन्त्रः प्रसिद्धयति ॥४६ ॥

जप करने पर साधक थकान का अनुभव करे तो ध्यान में संलग्न हो जायें ध्यान करते करते यदि शिथिलता का अनुभव हो तो पुनः जप में संलग्न हो जायें इस प्रकार साधक जप विधि से और ध्यान विधि और भी अन्य विधियों से मंत्र साधना करता है तो उसे शीघ्र ही मन्त्रसिद्धि का अनुभव होने लगेगा ॥४६ ॥

यथा ध्यानस्य सामर्थ्यात्कीटोपि भ्रमरायते।
तथा समाधिसामर्थ्याद्ब्रह्मीभूतो भवेन्नरः॥४७॥

लोक में भी देखने में आता है कि ध्यान का परिणाम कीट पतंगों पर भी हो जाता है-वर्णन आता है कि भौंरा किसी कीड़े को अपने घोंसले रखकर बीच बीच में उस कीड़े के आसपास गुंजार करते रहता है, परिणामतः वह कीड़ा भी भौंरा जैसी चेष्टाएं करने लगता है, तो पूर्ण चैतन्य मनुष्य में भी ध्यान, जपादि की साधना से मंत्र की साधना से सफलता मिल सकती है॥४७॥

यथा निमीलिते काले प्रपञ्चो नैव दृश्यते।
तथैवोन्मीलने चेत्स्यादेतद्ध्यानस्य लक्षणम्॥४८॥

जिस प्रकार निमीलितकाल में अर्थात जैसे प्रपञ्च सृष्टि के प्रलयकाल में कोई भी वस्तु नहीं दिखती, वैसे ही नेत्रों को बंद कर लेने पर बाहरी प्रपञ्च दिखाई नहीं देता यही ध्यान का लक्षण आचार्यों ने कहा है॥४८॥

विदिते तु परे तत्त्वे वर्णातीते ह्यविक्रिये।
किंकरत्वं च गच्छन्ति मन्त्रा मन्त्राधिपैः सह॥४९॥

वर्णातीत और अविक्रिय परमतत्व के विदित हो जाने पर सभी मंत्र मन्त्राधियों के साथ उस विदित परमतत्व के सामने किंकरत्व (दासवंत्) को प्राप्त हो जाते हैं ।।49।।

आत्मैक्यभावनिष्ठस्य या चेष्टा सा तु दर्शनम्।
योगस्तपः स तन्मंत्रस्तद्ध्यानं यन्निरीक्षणम्॥५०॥

आत्मा के ब्रह्म के साथ ऐक्य (तत्वमसीतिवेदवाक्य) भाव में निष्ठ साधक की जो चेष्टा होगी वहीं दर्शन है क्योंकि दर्शन का अर्थ भी यही है (दृश् प्रेक्षणे), प्रकृष्ट रूप से किसी को देखना दर्शन शब्द से कहा जाता है इसका प्रकृष्ट रूप ही आत्मैक्य है (4 ब्रह्मात्मैक्य स्वरूपिणीपादुकांपूजयामि नमः) जो योग है तो तप है वह उस मंत्र से सार्थक है और उसका ध्यान ही उसका निरीक्षण है, ऐसी स्थिति में आत्मैक्य का बोध होना ही सभी प्रपञ्चों की अस्तित्व क्षमता का दर्शन हो जाता है॥५०॥

देहाभिमाने गलिते विज्ञाते परमात्मनि।
यत्र यत्र मनो याति तत्र तत्र समाधयः॥५१॥

देह मैं हूं यह अभिमान जब नष्ट हो जाये और परमात्म तत्व में और सर्वसाक्षी आत्मा में अभेद है इस बोध के उदय हो जाने पर मुमुक्षु साधक का मन जहां जहां जाता है वहां वहां उसकी समाधि योग कला उपस्थित हो जाती है (मन एवं मनुष्याणां कारणं बन्ध मोक्षयोः)॥५१॥

यः पश्येत्सर्वगं शान्तमानन्दात्मानमद्वयम्।
न तस्य किंचिदाप्तव्यं ज्ञातव्यं वावशिष्यते ॥५२॥

जो मुमुक्षु साधक सर्वत्र उपस्थित व्याप्त शांत और आनन्दात्मक अहं आत्मा को ही देखता है, उसे कुछ भी प्राप्त करने योग्य कुछ भी जानने योग्य नहीं रह जाता, वह आत्मरूप ही है यह बोधोदय उसे हो जाता है ॥५२॥

पूजाकोटिसमं स्तोत्रं स्तोत्रकोटिसमो जपः।
जपकोटिसम ध्यानं ध्यानकोटिसमो लयः ॥५३॥

करोड़ों पूजाओं के समान स्तोत्रपाठ, करोड़ों स्तोत्रों के समान जप और करोड़ों जपों के समान ध्यान एवं करोड़ों ध्यानों के समान लय है अर्थात ब्रह्मात्मैक्य भाव दुर्लभ होते हैं ॥५३॥

देहो देवालयः प्रोक्तो जीव एव महेश्वरः।
त्यजेदज्ञाननिर्माल्यं सोहंभावेन योजयेत् ॥५४॥

यह देह ही देवालय (मंदिर) है और उस देह में स्थित जीवात्मा ही महेश्वर है अज्ञानरूपी निर्माल्य (यह देह ही में हूं) का त्याग करके मोक्ष भाव से स्थिर हो जाय ॥५४॥

तुषेण बद्धो ब्रीहिः स्यात्तुषाभावे तु तण्डुलः।
पाशबद्धः स्मृतो जीवः पाशमुक्तो महेश्वरः ॥५५॥

जैसे छिलका से घिरा रहने के कारण धान, धान ही कहा जाता है छिलका के अभाव में अर्थात छिलका अलग कर देने पर धान धान नहीं चांवल कहा जाता है उसी तरह यह जीव पाशबंध रहने पर अर्थात मिथ्या मायामोह बंधनों से जीव कहा जाता है, जब मिथ्यामाया मोह कट जाते हैं तब वह महेश्वर अर्थात अपने वास्तविक रूप में आ जाता है ॥५५॥

आकाशे पक्षिजातीनां जलेषु जलवारिणाम्।
यथा गतिर्न दृश्येत महावृत्तं महात्मनाम् ॥५६॥

जैसे आकाश पंखवाले पक्षियों की तथा जल में जल चारी जलचर प्राणियों की गति नहीं जानी जा सकती वैसे ही महात्माओं के महावृत्तों को कोई नहीं जान सकता ॥५६॥

नित्यार्चनं दिवा कुर्याद्रात्रौ नैमित्तिकार्चनम्।
उभयोः काम्यकर्म स्यादिति शास्त्रस्य निश्चयः ॥५७॥

भगवती का या अपने जिन देवता का पूजन करते हैं तो उसमें नियम यह है कि दैनिक पूजन दिन में हो, नैमित्तिक पूजन (दोनों प्रगट नवरात्र शिवरात्रि, जन्माष्टमी) रात्रि में पूजा करें काम्य और निषिद्ध कर्म उपासना का सर्वथा निषेध है फिर भी काम्य कर्म में नित्य और नैमित्तिक होना

चाहिये ऐसा शास्त्रों का निश्चय है ॥५७॥

कोटिकोटिमहादानात्कोटि कोटिमहाव्रतान्।
कोटिकोटिमहायज्ञात्परा श्रीपादुकास्मृतिः ॥५८॥

करोड़ों करोड़ महादानों से करोड़ों करोड़ महाव्रतों के अनुष्ठान से और करोड़ों करोड़ महायज्ञों के विस्तार से भगवती श्री महात्रिपुरसुन्दरी ललिताम्बा कामाक्षी की पादुकाओं का स्मरण सबसे बढ़कर हैं ॥५८॥

ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि यावद्देहस्य धारणम्।
तावद्वर्णाश्रमाचारः कर्तव्यः कर्ममुक्तये ॥५९॥

ज्ञान से या अज्ञान से जब तक शरीर धारण करने की स्थिति बनी रहती है तब तक वर्णाश्रमाचार (वर्णाश्रम विधायिनी ल.स.नामः) का पालन कर्मों से कर्म फलों से मुक्ति के लिये करते रहना चाहिये ॥५९॥

निर्गतं यद्गुरोर्वक्रात्सर्वशास्त्रं तदुच्यते।
निषिद्धमपि तत्कुर्याद्गुर्वाज्ञां नैव लङ्घयेत् ॥६०॥

जो श्रीगुरुमुख से शब्द या वाक्य निकला वचन ही समस्त शास्त्र का वचन माना गया है, यदि निषिद्ध भी है तो वह गुर्वाज्ञा है उसका उल्लंघन नहीं करना चाहिये इसमें (कठोपनिषद की आख्यामिका नचिकेता की स्मरणीय है) ॥६०॥

जातिविद्याधनाढ्यो वा दूरे दृष्ट्वा गुरुं मुदा।
दण्डप्रणामं कृत्वैकं त्रिःप्रदक्षिणमाचरेत् ॥६१॥

मनुष्य भले ही किसी उच्चजाति में उत्पन्न हो या उच्च विद्या स्तरगत हो या लखपति करोड़पति हो यदि गुरु दूर से भी दिख जाये तो प्रसन्न मन से दण्ड प्रणाम करें या एक या तीन प्रदक्षिणा करें ॥६१॥

गुरुबुद्ध्या नमेत्सर्व दैवतं तृणमेव वा।
नमेच्च देवबुद्ध्या तु प्रतिमा लोहमृन्मयीः ॥६२॥

सभी देवताओं को तृण भी क्यों न हो उन सभी को श्री गुरुबुद्धि से प्रणाम करें और सभी मूर्तियों को भले ही लौहमयी हो या मृत्तिका इत्यादि की बनी हुई हो उन सभी को देवबुद्धि से प्रणाम करें ॥६२॥

गुरु हुंकृत्य त्वंकृत्य विप्र वादैर्विजित्य च।
विकल्प्य गुह्यशास्त्राणि भवन्ति ब्रह्मराक्षसाः ॥६३॥

श्री गुरु को (हुं) इस शब्द से या (त्वं) शब्द से और विज्ञ विप्र को वाद में निर्जित करने वाला तथा गुह्य शास्त्रों में विकल्पादि कल्पनाएं करने वाले शिष्यनामधारी ब्रह्मराक्षस ही होते हैं।॥६३॥

अद्वैतं भावयेन्नित्यं नाद्वैतं गुरुणा सह।
न निन्देदन्यसमयान्वेदशास्त्रागमादिकान्॥६४॥

समस्त दृश्य और अदृश्य में अद्वैत साधना करे पर श्री गुरु में और अपने में गुरु शिष्य सम्बन्ध रखे अन्य विधि विधानों के समयाचार वेद शास्त्र पागयों की निंदा भी नहीं करना चाहिये॥६४॥

एकग्रामस्थितः शिष्यस्त्रिसध्यं प्रणमेद्गुरुम्।
क्रोशमात्रस्थितो भक्त्या गुरुं प्रतिदिनं नमेत्॥६५॥

गुरु और शिष्य एक ही ग्राम में स्थित हों तो शिष्य तीनों संध्याओं में (प्रातः मघ्याह्न सायं) गुरु को प्रणाम करें यदि गुरु कोस भर (1-2 मील) स्थित हों तो प्रतिदिन प्रणाम करें जाकर॥६५॥

अर्धयोजनगः शिष्यः प्रणमेत्पञ्चपर्वसु।
एकयोजनमारभ्य योजनद्वादशावधि॥६६॥

यदि आधे योजन (2 कोस=3-4 मील) में गुरु स्थित हों तो शिष्य पांच पर्वों में (होली, रक्षाबन्धन, दशहरा (विजयादशर्या) दीपावली नवरात्र) जाकर प्रणाम करे, एक योजन (4 कोस 6 मील) से लेकर बारह योजन तब शिष्य या सौविध्य दर्शन करे॥६६॥

न तद्योजनसंख्यातमासेषु प्रणमेद्गुरुम्।
अतिदूरस्थितः शिष्यो यदेच्छा स्यात्तदा ब्रजेत्॥६७॥

एक योजन से बारह योजन की दूरी का प्रणाम करने के लिये यह विभाजनतय कर लें जैसे एक योजन पर गुरु तो 1 मास में दो योजन पर 2 मास में 3 योजन पर 3 तीन मास में 4 योजन पर 4 मास से 5 योजन पर 5 मास इत्यादि जितने योजन दूरी गुरु गुरु से ठहरने की तो अपनी सुविधानुसार प्रणामादि का नियम पालना चाहिये॥६७॥

रिक्तपाणिस्तु नोपेयात्राजानं देवतां गुरुम्।
फलपुष्पाम्बरादीनि यथाशक्तिं समर्पयेत्॥६८॥

राजा देवता और गुरु के दर्शनों के लिये जाने पर खाली हाथ नहीं जाये, फल फूल वस्त्रादि अपनी शक्ति के अनुसार भेंट चढ़ाना चाहिये॥६८॥

मनुष्यचर्मणा बद्धः साक्षात्परशिवः स्वयम्।
सच्छिष्यानुग्रहार्थाय गूढं पर्यटति क्षितौ॥६९॥

श्रीगुरु साक्षात् पर शिव हैं वे मनुष्यचर्म में आबद्ध दिखते हैं पर वे यह इसीलिये करते हैं कि

सद्शिष्य का अनुग्रह शक्ति द्वारा उद्धार कर दें इसी भावना से वे पृथ्वी में पर्यटन करते हैं ॥६९॥

सद्भक्तरक्षणायैव निराकारोऽपि साकृतिः।
शिवः कृपानिधिर्लोके संसारीव हि चेष्टते ॥७०॥

अपने सद्भक्त की रक्षा के ही लिये वे निराकार पर ब्रह्मरूप श्री गुरु साकार रूप लेते हैं मनुष्य जैसे हो जाते हैं लोक में कृपानिधिवे शिव संसारियों जैसी चेष्टाएं करते हैं॥७०॥

अत्रिनेत्रः शिवः साक्षादचतुर्बाहुरच्युतः।
अचतुर्वदनो ब्रह्मा श्रीगुरुः परिकीर्तितः॥७१॥

अपने सद्भक्त की रक्षा के लिये बिना तीन नेत्रों के शिव हैं बिना चार बाहुओं के अच्युत विष्णु हैं वे श्रीगुरु बिना चार मुखों के ब्रह्मा हैं अर्थात श्रीगुरु कल्याण, पालनऔर सद्भक्त निर्माण इन तीन देवों जैसे करते हैं॥७१॥

श्रीगुरुं परतत्त्वाख्यं तिष्ठन्तं चक्षुरग्रतः।
भाग्यहीना न पश्यन्ति सूर्यमन्धा इवोदितम् ॥७२॥

वह परतत्व ही शिष्य की आंखों के सामने प्रत्यक्ष उपस्थित रहता है पर स्थूल दृष्टि वाले समझा नहीं पाते जैसे उदित तेजस्वी सूर्य को अन्धा नहीं देख पाता॥७२॥

उत्तमा तत्त्वचिन्ता स्याज्जपचिन्ता तु मध्यमा।
अधमा शास्त्रचिन्ता स्याल्लोकचिन्ताधमाधमा॥७३॥

तत्वों का चिन्तन उत्तम माना गया है और जप में अनुरक्त रहना मध्यम चिन्तन है तथा शास्त्र चिन्तन अधम चिन्तन है एवं लोक (समाल आदि) चिन्तन अधमाधम (निम्नकोटि का चिन्तन) है॥७३॥

नास्ति गुर्वधिकं तत्त्वं नास्ति ज्ञानाधिकं सुखम्।
नास्ति भक्त्यधिका पूजा नहि मोक्षाधिकं फलम् ॥७४॥

श्रीगुरु से बढकर कोई तत्व नहीं है ज्ञान से बढ़कर कोई सुख नहीं है भक्ति से बढ़कर कोई तत्व नहीं है ज्ञान से बढ़कर कोई सुख नहीं है, भक्ति से बढ़कर कोई पूजा नहीं है और मोक्ष से अधिक कोई फल नहीं है॥७४॥

सर्ववेदेषु शास्त्रेषु ब्रह्मविष्णुशिवादिषु।
तत्रतत्रोच्यते शब्दैः श्रीकामाक्षी परात्परा॥७५॥

सभी चारों वेदों में षट्शास्त्रों में ब्रह्मा विष्णु महेश आदि देव प्रमुखों में जहां जहां शब्दों में वर्णित की जाती है वह केवल श्री कामाक्षी की ही होती क्योंकि परब्रह्म से भी परे हैं॥७५॥

शचीन्द्रौ रोहिणीचन्द्रौ स्वाहाग्री वाक्पितामहौ।

लक्ष्मीनारायणौ वाणीधातारौ गिरिजाशिवौ॥७६॥

शची इन्द्र, रोहिणीचन्द्र, स्वाहा अग्नि वाणी ब्रह्मा, लक्ष्मी नारायण प्रभा सूर्य वाणी ब्रह्मा, गिरिजा और शिव॥७६॥

त्विडग्नी बिन्दुनादौ च तथा प्रकृतिपूरुषौ।

आधाराधेयनामानौ भोगमोक्षौ तथैवच।

प्राणापानौ च शब्दार्थौ तथा विधिनिषेधकौ॥७७॥

अग्नि और सोम बिन्दु और नाद, प्रकृति और पुरुष, आधार और आधेय भोग और मोक्ष, प्राण और अपान, शब्द और अर्थ, विधि और निषेधाक॥७७॥

सुखदुःखादि यद्द्वन्द्वं दृश्यते श्रूयतेऽपि वा।

सर्वलोकेषु तत्सर्वं परं ब्रह्म न संशयः॥७८॥

सुख दुःख आदि जितने भी द्वन्द्व (जोड़े) दिखाई देते हैं या सुनाई देते हैं ये सभी समस्त लोकों में है परन्तु यह सभी परब्रह्म का विस्तार है इसमें जरा सा भी सन्देह नहीं है॥७८॥

उत्तीर्णमपरं ज्योतिः कामाक्षीनामकं विदुः।

यदेव नित्यं ध्यायन्ति ब्रह्मविष्णुशिवादयः॥७९॥

उनको भी पार एक ज्योति है जिसे कामाक्षी के नाम से जानते हैं जिसका ही निरन्तर ब्रह्मा विष्णु शिवादि ब्रह्माण्ड निवासि प्राणिगण व्यवहार, चिन्तक और ध्यान करते हैं॥७९॥

इत्थं हि शाक्तमार्गेऽस्मिन्यः पुमानिह वर्तते।

प्रसादभूमिः श्रीदेव्या भुक्तिमुक्त्योः सभाजनम्॥८०॥

इस प्रकार इस शक्ति के मार्ग में जो मनुष्य इस संसार में वर्तमान है वह उन श्री भगवती कामाक्षी का कृपा पात्र है भोग और मोक्ष का सत्पात्र है॥८०॥

अमन्त्रं वा समन्त्रं वा कामाक्षीमर्चयन्ति ये।

स्त्रियो वैश्याश्च शूद्राश्च ते यान्ति परमां गतिम्॥८१॥

बिना मंत्र के या मंत्र के सहित जो भगवती कामाक्षी की अर्चना करते हैं चाहे वे स्त्रियां हों या वैश्य हों या शूद्र हों वे सभी परमगति को प्राप्त हो जाते हैं॥८१॥

किं पुनः क्षत्रिया विप्रा मन्त्रपूर्वं यजन्ति ये।

संसारिणोपि ते नूनं विमुक्ता नात्र संशयः॥८२॥

फिर उन क्षत्रियों के विषय में उन विप्रों के विषय में कैसी शंका हो सकती है ये सभी सुविज्ञ हैं

मंत्र पूर्वक अर्चना करते हैं ये तो मुक्त ही हैं ॥८२॥

सितामध्वाज्य कदली फलपायसरूपकम्।
पञ्चपर्वसु नैवेद्यं सर्वदैव निवेदयेत्॥८३॥

त्रिमधु (गुड़, मधु, घृत) अर्थात चीनी (गुड़) मधु, घी, केला खीर और अपूप, मालपूड़ा आदि व्यंजन पांच पर्वों में (होली, रक्षाबन्धन, दशहरा, दीपावली, दुर्गापूजा) नैवेद्य सदैव ही निवेदन करे ॥८३॥

यो नार्चयति शक्तोपि स देवीशापमाप्नुयात्।
अशक्तो भावनाद्रव्यैरर्चयेन्नित्यमम्बिकाम्॥८४॥

जो समर्थ होकर भी पूजा नहीं करता वह देवी के शाप को प्राप्त होता है जो अशक्त है वह नित्य भावना से (भावनामात्र संतुष्ट हृदया सहस्र ना.) पूजा करे ॥८४॥

गृहस्थस्तु महादेवीं मङ्गलाचारसंयुतः।
अर्चयेत महालक्ष्मीमनुकूलाङ्गनासखः॥८५॥

गृहस्थ मनुष्य अपनी पत्नी के साथ मंगलाचार से संयुक्त होकर श्री महा लक्ष्मी की अर्चना करे ॥८५॥

गुरुस्त्रिवारमाचारं कथयेत्कलशोद्भव।
शिष्यो यदि न गृह्णीयाच्छिष्ये पापं गुरोर्नहि॥८६॥

हे कुम्भज! श्री गुरु अपने शिष्य को तीन बार आचार का उपदेश करें यदि शिष्य उपेक्षा करें टाल दे फिर करेंगे आदि निरर्थक विचारों से उपदेश आचार का पालन न करे तो वह शिष्य का दोष है पाप शिष्य को लगेगा श्री गुरु को नहीं ॥८६॥

लक्ष्मीनारायणौ वाणीधातारौ गिरिजाशिवौ।
श्रीगुरुं गुरुपत्नीं च पितरौ चिन्तयेद्बुधः॥८७॥

लक्ष्मीनारायण ब्रह्मावाणी पार्वती शिव श्रीगुरु गुरुपत्नी और अपने पिता पितामह प्रपितामह सपत्नीक का बुद्धिमान चिन्तन करे ॥८७॥

इति सर्व मया प्रोक्तं समासेन घटोद्भव।
एतावदवधानेन सर्वज्ञो मतिमान्भवेत्॥८८॥

हे कुम्भज !! हमने सार रूप में कामाक्षी समाराधना का नियम निर्देश तुम्हारी जिज्ञासा पर कर दिया इसे सावधान से बुद्धिमान पालन करे वह ब्रह्म साक्षात्कार के योग्य होगा सर्वज्ञ होगा ॥८८॥

इति श्रीब्रह्मोत्तरखण्डे हयग्रीवागस्त्यसवादे ललितो- पाख्याने
एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः॥३९॥

॥श्रीमन्महागणाधिपतये नमः।।

श्रीमाताललिताम्बायै नमः श्रीपादुकां पूजयामि नमः ॥

ॐ वन्दे गुरुपदद्वन्दमवाङ्गनसगोचरम् ॥

रक्तशुक्लप्रभामिश्रमतर्क्यं त्रैपुरं महः ॥

ॐ आराध्यदेवं भक्तानां कलिदोषविनाशकम् ॥

वन्दे श्रीगिरिजानन्द शारदाश्रीमठाधिपम्।।

शारदाज्योतिरीशस्य दर्शनं (पूजनं, वन्दनं) शुभमस्तुनः ॥

चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४०॥ – 151 श्लोकात्मकः

[मन्त्रोपासनप्रकारकथनं फलश्रुतिश्च]

श्री हयग्रीव उवाच-

प्रविश्य तु जपस्थानमानीय निजमानसम्।
अभ्यर्च्य विधिवन्मत्रं गुरूक्तक्रमयोगतः ॥१॥
स्वात्मानं देवतामूर्तिं ध्यायंस्तत्राविशेत्ततः।
प्राङ्मुखो दृढमाबध्य पद्मासनमनन्यधीः ॥२॥
त्रिखण्डामनुबध्याथ गुर्वादीनभिवन्द्य च।
द्विरुक्तवालवीजानि मध्याद्यङ्गुलिषु क्रमात् ॥३॥
तलयोरपि विन्यस्य करशुद्धिपुरस्सरम्।
अभिप्राकारपर्यन्तं कुर्यात्खास्त्रेण मन्त्रविन् ॥४॥

हे अगस्त्यजी ! जप करने के स्थान में प्रवेश करके अपने आसन को लेकर श्रीगुरुजी द्वारा बताए गए क्रम के अनुसार मंत्रों से अपने आत्मा और देवता मूर्ति का ध्यान करते हुए वहां पूर्व दिशा की ओर मुख करके दृढ़ पद्मासन एकाग्र चित्त होकर त्रिखण्डा को बांधकर गुरु आदि वन्दनीयों का अभिवन्दन करके बाला के बीजों को दो बार मध्य की अंगुलियों में क्रम से यहां दोनों हाथों की हथेलियों पहिले धोकर कर शुद्धि के साथ अग्नि प्राकार तक मन्त्रवित् अपने अस्त्र शुद्धि करें ॥१,२,३,४॥

प्रतिलोमेन पादाद्यमनुलोमेन कादिकम्।
व्याप्य मायां समारोप्य व्यापयन्वाग्भवादिभिः ॥५॥
व्यक्तेः कारणसूक्ष्मस्थूलशरीराणि कल्पयेत्।
नाभौ हृदि भ्रुवोर्मध्ये बालाबीजान्यथ न्यसेत् ॥६॥

प्रतिलोम से पादादिका (पवर्ग आदि में हो) -यथा-प फ ब भ म य र ल व श ष स ह तक अनुलोम क्रम से यथा-पादि को उल्टे क्रम से यथा ह स ष श व ल र य म भ ब फ प क्रम से और कादी यथा क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ, ट ठ ड ण, त थ द ध न इन को इसी क्रम से व्यापक न्यास का आरोपकर वाग्वादियों द्वारा व्याप्त करते हुए व्यक्तों द्वारा कारण, सूक्ष्म, स्थूल शरीरों में भी कल्पना करें फिर नाभि, हृदय, भौंहों के बीच में बाला बीजों (ऐं क्लीं सौः) का न्यास करे ॥५,६॥

मातृका मूलपुटितान्यसेन्नाभ्यादिषु क्रमात्।
बालाबीजानि तान्येव द्विरावृत्त्याथविन्यसेत्॥७॥

मूलपुटित मातृका का क्रम से नाभि आदि स्थानों में न्यास करे उन बाला बीजों को दो बार घुमाकर नाभि आदि स्थानों विन्यास करें॥७॥

मध्यादिकरशाखासु तलयोरपि नान्यथा।
नाभ्यादावथविन्यस्य न्यसेदथ पदद्वये॥८॥

मध्यमा आदि हाथ की अंगुलियों में और दोनों हाथों की हथेलियों पर भी या फिर नाभि आदि में भी रखकर दोनों पैरों में भी न्यास करें॥८॥

जानूरुस्फिग्गुह्यमूलनाभिहृन्मूर्धसु क्रमात्।
नवासनानि ब्रह्माणं विष्णुं रुद्रं तथेश्वरम्॥९॥
सदाशिवं पुष्पतूलिकामुच्छीर्षप्रकाशकम्।
विद्यासनं च विन्यस्य हृदये दर्शयेत्ततः॥१०॥

घुटनों जंघाओं, नितम्ब, गुह्या, पायु, नाभि, हृदय और सिर में क्रमशः न्यास करे फिर ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर सदाशिव पूष्प (पूषा) तूलिका उच्छीर्षप्रकाशक और विद्या के नव आसनों का विन्यास करके उनका हृदय में दर्शन करें॥९,१०॥

पद्मत्रिखण्डयोन्याख्या मुद्रा ओष्ठपुटेन च।
वायुमापूर्य हुंहुंहुमिति सम्बोध्य कुण्डलीम्॥११॥
हृदि शक्त्या समुन्नीय द्वादशान्ते शिवैकताम्।
भावयित्वा पुनस्तं च स्वस्थाने विनिवेश्य च॥१२॥

पद्ममुद्रा त्रिखण्डामुद्रा तथा योनिमुद्रा बनाकर ओष्ठपुर से भीतर वायु को भरकर हुं हुं हुं इन बीजमंत्रों से कुण्डलिनी को संबुद्ध करके हृदय में आई हुई कुंडलिनीशक्ति को ललाट के उत्तरभाग जिसे द्वादशान्त कहते हैं वहां शिव से ऐक्य की भावना करके पुनः उस भुजंगी कुंडली

पुनः स्वाधिष्ठान और मूलाधार के मध्य अपने स्थान में लें आवे ॥१२॥

वाग्भवादीनि बीजानि मूलहृद्बिन्दुषु न्यसेत्।
समस्तमूर्धि दोर्मूलमध्याग्रेषु यथाक्रमम्॥१३॥

वाम्भवकूट (क ए ई ल ह्रीं) इस प्रथमकूट का मूलाधार में न्यास करें मध्य कामराज हादिकूट (ह स क ह ल ह्रीं) इस कूट का हृदय में न्यास करे फिर सादिकूट (सकल ह्रीं) इस कूट का बिन्दु में (भ्रूमध्य) में न्यास करे अंत में समस्त पंचदशीमंत्र का मूर्धा में, हाथों के मूल कुक्षि में, हृदयाग्र में न्यास करे॥१३॥

स्वस्थानि न्यस्य चाङ्गैः स्वैरङ्गुष्ठादितलावधि।
हृदयादौ च विन्यस्य कुंकुमन्यासमाचरेत्॥१४॥

शरीर के सभी अंगों अंगूठादि के तलों तक हृदय आदि पर न्यास करे यह कुंकुम से होना चाहिये॥१४॥

शुद्धां तृतीयबीजेन पुटितां मातृकां ततः।
आद्यबीजद्वयादाद्य मन्त्यबीजान्यसेदिति॥१५॥

फिर तृतीया बीज (सौः) से सम्पुटित मातृका (अं से क्षं तक) से न्यास करे पहले दो बीजों का न्यास (ऐं क्लीं) करके अन्त्यबीज (सौः) का न्यास करे॥१५॥

पुनर्भूतादिविन्यासमाचरेन्नातिविस्तरम्।
वर्गाष्टकं न्यसेन्मूले नाभौ हृदयकण्ठयोः॥१६॥

उसका अतिविस्तृत भूतादि (भूतलादि) का विन्यास करे, तब मूलाधार नाभि हृदय और कंठ में न्यास अष्टवर्ग में यथा (1 स्वरवर्ग (अ से औ तक) 2 कवर्ग, 3 चवर्ग, 4 टवर्ग, 5 तवर्ग, 6 पवर्ग, 7 यवर्ग, 8 शवर्ग) करे॥१६॥

प्रागाद्यास्येषु शषसान्मूलहन्मूर्धसु न्यसेत्।
कक्षकट्यं सवा मांस कटिहृत्सु च विन्यसेत्॥१७॥

पहले आधान कर श ष स को मूलाधार, हृदय, मूर्धा में न्यास करे फिर कक्ष (कोख), दांया कमर, कंधा, बांया कंधा, कमर, हृदय में न्यास करें॥१७॥

प्रभूताद्यषडङ्गानि हादिवर्गैः प्रविन्यसेत्।
कृषिस्तु शब्दब्रह्म स्याच्छन्दो भूतलिपिर्मता॥१८॥

बहुत नीचे जो छह अंग हैं उनमें हादि वर्गों से विन्यास करे ऋषि तो (कृषि) शब्दब्रह्म माना गया हैऔर छन्द भूतलिपि माने गए हैं॥१८॥

श्रीमूलप्रकृतिस्तस्य देवता कथिता मनोः।
अक्षस्त्रक्पुस्तकान्यूर्ध्वे पुष्पासबाणकामुर्के॥१९॥

श्रीमूलप्रकृति इस मंत्र की देवता कही गई हैं जो अक्षमाला, पुस्तक, दो हाथों में ऊपर के दो हाथों में पुष्पों के बाण और धनुष धारण की हुई हैं॥१९॥

वराभीतिकराब्जैश्च धारयन्तीमनूपमाम्।
लक्षारेऽक्षमयीं मालां वहन्तीं कण्ठदेशतः॥२०॥
हारकेयूरकटकच्छन्नवीर विभूषणाम्।
दिव्याङ्गरागसंभिन्न मणिकुण्डलमण्डिताम्॥२१॥
लिपिकल्पद्रुमस्याधो रूपिपङ्कजवासिनीम्।
साक्षाल्लिपिमयीं देवीं भैरवी भक्तवत्सलाम्॥२२॥
अनेककोटिदूतीभिः समन्तात्समलंकृताम्।
एवं ध्यात्वा न्यसेद्भूयो भूतलिप्यक्षरात्क्रमात्॥२३॥

वर और अभय देते वाले (भयरहित करने वाले) हाथों से अक्षमाला को कंठ में हार, बाजूबंद, कर्धनी से ढंके हुए वीरभूषण वाली दिव्य अंगराग से युक्त तथा मणिजटित कुण्डल से मंडित (विभूषित), लिपिरूपकल्पद्रुम के नीचे शुभ्र कमल में स्थित साक्षात् लिपिमयी देवी भक्तवत्सला भैरवी के अनेक कोटि दूतियों द्वारा चारों ओर से समलंकृत भगवती हैं इस प्रकार ध्यार करके पुनः क्रम भूतलिपि अक्षरों से न्यास करे॥२१,२२,२३॥

मूलाद्याज्ञावसानेषु वर्गाष्टकमथ न्यसेत्।
शषसा मूर्ध्नि सहत्य स्वरानेष्वेव विन्यसेत्॥२४॥

मूल (मूलाधा) आदि आज्ञा अवसान में अष्टवर्ग का न्यास करे फिर श ष स इन तीनों वर्णों का मूर्धा में तथा स्वरों का भी इन्हीं स्थानों में न्यास करे॥२४॥

हादिरूर्ध्वादिपञ्चास्येष्वग्रे मूले च मध्यतः।
अङ्गुली मूलमणिबन्धयोर्दोष्णोश्च पादयोः॥२५॥
जठरे पार्श्वयोर्दक्षवामयोर्नाभिपृष्ठयोः।
शषसा मूलहृन्मूर्धश्चेतान्बालादिकान्यसेत्॥२६॥

हादि ऊद्ध्र्वादि पांच को मुखों में आगे मूल और मध्य से अंगुली में मूल, और मणिबंध में दोनों भुजाओं में और पैरों पर, उदर पर पीछे, दांए, बांए, नाभि और पुष्ठ भाग में स श ष से इनका न्यास करे तथा मूल (मूलाधार) हृदय और मूर्धा में इन बालादि का न्यास करे॥२५,२६॥

ह्रस्वाः पञ्चाथ संध्यर्णाश्चत्वारो हयरावलौ।
अकौ खगौ नगश्चादौ क्रमोऽयं शिष्टवर्गके॥२७॥

ह्रस्व वर्ण पांच हैंः- अ इ उ ऋ लृ सन्ध्य वर्ण हैं ह य र व ल अ और क ख और ग तथा न और ग ये सभी क्रम से हैं और शिष्ट वर्ग के वर्ण हैं॥२७॥

शषसा इति विख्याता द्विचत्वारिंशदक्षराः।
आद्यः पञ्चाक्षरो वर्गो द्वितीयश्चतुरक्षरः॥२८॥

श ष स ये वर्ण विख्यात हैं इस प्रकार बयालीस अक्षर हैं पहिले पांच अक्षरों का वर्ग है यथा 1 क वर्ग- क ख ग घ ड. 2 च वर्ग च छ ज झ ञ 3 ट वर्ग ट ठ ड. ढ ण 4 त वर्ग त थ द ध ने 5 प वर्ग प फ ब भ म, इनका योग पच्चीस वर्ग हुआ फिर दूसरा वर्ग चार अक्षरों का य र ल व (यादि)॥२८॥

पञ्चाक्षरी तु षड्वर्गो त्रिवर्णो नवमो यतः।
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च व्रजेशेन्द्रयमाः क्रमात्॥२९॥

श ष स ह (हादि) कुल सात वर्ग हुए षड् वर्गी पांच अक्षर है अ इ उ ऋ लृ नवमवर्ग तीन अक्षरों का जो संयुक्ताक्षर है- क्ष (क+ष) त्र(त+र), ज्ञ (ज+ञ)- इस प्रकार 41 वर्ण परन्तु ह सूत्र में ह दो बार है 1 हयवरट 2 ह ल् अतः 42 अक्षर तथा नववर्ग माने गए हैं ब्रह्म विष्णु रुद्र कुबेर इन्द्र और यम॥२९॥

वरुणश्चैव सोमश्च शक्तित्रयमिमेनव।
वर्णानामीश्वराः प्रोक्ताः क्रमो भूतलिपेरयम्॥३०॥

वरुण, सोम और तीन शक्तियां ये नौ वर्णों के ईश्वर कहे गए हैं और यही भूतलिपि का क्रम है॥३०॥

एवं सृष्टौ पाठो विपरीतः संहृतावमून्येव।
स्थानानि योजनीयौ विसर्गबिन्दू च वर्णान्तौ॥३१॥

इस प्रकार सृष्टि पर यह पाठ है यही विपरीत रूप में संहृत (संहार क्रम) विसर्ग और बिन्दु वर्णों के अंत में जोड़ना चाहिये यथा अः अं इसी तरह आगे क्ष पर्यन्त वर्णमाला में विसर्ग और बिन्दुयोग होता है॥३१॥

ध्यानपूर्वं ततः प्राज्ञो रत्यादिन्यासमाचरेत्।
जपाकुसुमसंकाशाः कुम्कुमारुणविग्रहाः॥३२॥
कामावामाधिरूढाङ्का ध्येयाः शरधनुर्धराः।
रतिप्रीतियुतौ कामौ कामिन्या कान्त इष्यते॥३३॥

इसके बाद सुविज्ञ साधक को ध्यानपूर्वक रतिआदि न्यास करना चाहिये, भगवती रति का ध्यान इस प्रकार है- उनका रंग जासौन के फूल के समान कांति वाला और कुंकुम (केशर) के समान लालवर्ण के श्रीविग्रहवाली हैं कामदेव के वामांग में बैठी हुई बाण और धनुष धारण की हुई हैं रति प्रीति से युक्त काम कामिनी से कान्त कहे जाते हैं ॥३२,३३॥

कान्तिमान्मोहिनीयुक्तः कामाङ्गः कलहप्रियां।
अन्वेति कामाचारस्तु विलासिन्या समन्वितः ॥३४॥

कान्तिमान मोहिनी से युक्त काम का अंग कलहप्रिया कामिनी का अनुसरण करता है जो काम का आचरण व्यवहारों द्वारा विलासिनी रति से युक्त है ॥३४॥

कामः कल्पलतायुक्तः कामुकः श्यामवर्णया।
शुचिस्मितान्वितः कामो बन्धको विस्मयायुतः ॥३५॥

कामदेव कल्पलता युक्त हैं कामुक हैं वे श्याम वर्णवाली से पवित्र मुस्कान युक्त विस्मय से युक्त यह काम बंधक हैं अर्थात बाधाकारक हैं ॥३५॥

रमणो विस्मयाक्ष्या च रामोऽयं लेलिहानया।
रमणोऽपि रतीनाथो दिग्वस्त्राढ्यो रतिप्रियः ॥३६॥

यह काम ही विस्मृत नेत्रों वाली के साथ रमण करने वाला है यह लेलिहाना मुद्रा से रमणी से संयुक्त है यह रतिनाथ होते हुए भी दिशारूपी वस्त्रों से ढंका हुआ है यह रति देवी को प्रिय है ॥३६॥

वामया कुन्जको युक्तो रतिनाथो धरायुतः।
रमाकान्तोपि रमया रममाणो निशाचरः ॥३७॥

यह कामकुब्जा नामक स्त्री से युक्त है रति का नाथ है धरा से युक्त है यह रमाकान्त है फिर भी रमा के साथ रहने वाला और रात्रि में विचरण करने वाला है ॥३७॥

कल्याणो मोहिनीनाथो नन्दकश्चोत्तमान्वितः।
नन्दी सुरोत्तमाढ्यो नन्दनो नन्दयिता युतः ॥३८॥

ये मोहिनीनाथ कामेश्वर नन्दक से युक्त हैं भगवान नन्द श्रेष्ठ देवताओं से युक्त हैं वे सबको आनन्दित करने के कारण नंदी कहे जाते हैं ॥३८॥

सुलावण्यान्वितः पञ्चवाणो बालधिनीश्वरः।
कलहः प्रियया युक्तस्तथा रतिसखः पुनः ॥39॥

सुन्दर लावण्य से युक्त पांच बाणों वाले बाल निधिपति कलहप्रिया से युक्त तथा रति के सखा

हैं ॥39॥

एकाक्ष्या पुष्पधन्वापि सुमुखेशो महाधनुः।
नीली जटिल्योभ्रमणाः क्रमशः पालिनीपतिः ॥४०॥

एक अक्षि (नेत्र) से पुष्पों के धनुधारी होने पर भी वे सुन्दर मुख वाले हैं और महाधनु हैं वे नीलवर्ण वाले जटाधारी भ्रमण करने वाले शिवा के पति भ्रम नामक हैं ॥४०॥

भ्रममाणः शिखाकान्तो भ्रमो भ्रमश्च मुग्धया।
भ्रामको रमया प्राज्ञो भ्रामिको भृङ्ग इष्यते ॥४१॥

मुग्धा शिवा द्वारा भ्रान्त हैं तथा सभी को भ्रम में डालते हैं, रमा से प्राप्त होकर वे भ्रमित इसलिये वे भृंग कहे जाते हैं ॥४१॥

भ्रान्ताचारो लोचनया दीर्घजिह्विकया पुनः।
भ्रमावहं समन्वेति मोहनस्तु रतिप्रियः ॥४२॥

लम्बी जिह्वावाली और नेत्र वाली द्वारा भ्रान्त आचरण वाले हैं मोहन करने वाले तो भ्रमावह रति प्रिया का अनुसरण करते हैं ॥४२॥

मोहकस्तु पलाशाक्ष्या गृहिण्या मोह इष्यते।
विकटेश्या मोहधरो वर्धनोऽयं धरायुतः ॥४३॥

मोहक तो कमलपत्र के समान आंखों वाली गृहिणी के प्रति मोह कहा जाताहै वे विकटेश मोह को धारण करने वाले वर्धन और धरायुत हैं ॥४३॥

मदनाढ्योऽनूपमस्तु मन्मथो मलयान्वितः।
मातङ्गो ह्लादिनीयुक्तः समिच्छान्विश्वतोमुखीम् ॥४४॥

वे मदनाथ अनुपम मन्मथऔर मलय (चंदन) से युक्त हैं वे ही मद देने वाले और आहलाद करने वाली देवी से युक्त हैं तथा सब कुछ चाहते हुए भी चारों ओर अपनी दृष्टि रखे हुए हैं ॥४४॥

नायको भृङ्गपूर्वस्तु गायको नन्दिनीयुतः।
गीतिको नामया ज्ञेयः काल्या नर्तक इष्यते ॥४५॥

वे भृंगपूर्व नायक हैं और गायक नन्दिनी से युक्त हैं बिना नाम से वे गणक जाने जाने योग्य हैं तथा काली द्वारा नर्तक कहे जाते हैं ॥४५॥

क्ष्वेल्लकः कालकर्नाट्या कन्दर्पोन्मत्तयेष्यते।
नर्तकः श्यामलाकान्तो विलासी झषयान्वितः ॥४६॥

ये लोग हंसी मजाक करने वाले कालकर्म (र्णी) से सम्पन्न अर्थात सबको संकट में भी डाल

सकते हैं काम के दर्प को हरने वाले एवं उन्मत्त कहे गए हैं ये सभी नृत्य कुशल श्यामला भगवती के प्रिय भोग विलास में रत रहते हैं इनके ध्वज मछली चिह्न से अंकित हैं ॥४६॥

उन्मत्तामुपसंगम्य मोदते कामवर्धनः।
ध्यानपूर्व ततः श्रीकण्ठादिविन्यासमाचरेत्॥४७॥

वे कामवर्धन उन्मत्त रति के साथ उपसंगम कर आनन्द प्राप्त करते हैं, इस प्रकार ध्यानपूर्वक श्रीकंठादिन्यास का न्यास करें॥४७॥

सिन्दूरकाञ्चनसमोभयभागमर्ध-नारीश्वरं गिरिसुताहभूषचिह्नम्।
पाशद्वयाक्षत्रलयेष्टदहस्तमेवं स्मृत्वा न्यसेल्लिपिपदेषु समाहितार्थः॥४८॥

जिनके सिन्दूर और काञ्चन के जैसे द्युति वाले दो भाग अर्ध हैं- जिसमें आधा वाम भाग सिन्दूर वर्ण नारी है और दूसरा बांया भाग काञ्चन वर्ण है वह पुरुष का है जिसके कारण वे अर्धनारीश्वर कहे जाते हैं जो गिरि कमिलय सुता पार्वती के मन को हरने वाले राजचिह्न से युक्त हाथों में पाश, अक्षमाला रखने वाले भगवान शंकर का स्मरण करके लिपि के पदों में इच्छित अर्थ के लिये भगवान शंकर का न्यास करें॥४८॥

श्रीकण्ठानन्तसूक्ष्मौ च त्रिमूर्तिरमरेश्वरः।
अर्धीशी भारभूतिश्चातिथीशः स्थाणुको हरः॥४९॥

वे शंकर श्रीकण्ठ, अनन्त और सूक्ष्म इन तीन मूर्तियों वाले अमरेश्वर हैं, वे पृथ्वी के स्वामी, भारभूति अतियीश और स्थाणुक और हर हैं॥४९॥

चण्डीशो भौतिकः सद्योजातश्चानुग्रहेश्वरः।
अक्रूरश्च महासेनः स्युरेते वरमूर्तयः॥५०॥

वे चण्डीश भौतिक तत्वों वाले सद्योजात अनुग्रहेश्वर हैं वे अक्रूर महासेन जो भी श्रेष्ठ मूर्तियां हैं वे सभी भगवान शंकर ही हैं॥५०॥

ततः क्रोधीशचण्डीशौ पञ्चान्तकशिवोत्तमौ।
तथैक रुद्रकूर्मैकनेत्राहचतुराननाः॥५१॥

वे क्रोधीश हैं इसीलिये वे चण्डीश हैं वे पञ्चान्तक हैं अर्थात पृथ्वी, जल, अग्नि वायु और आकाश इस पञ्चक का प्रलय काल में अन्त कर देने वाले वे ही एकरुद्र, कूर्म और एक नेत्र और चारमुखों वाले ब्रह्मा हैं॥५१॥

अजेश्वरः सर्वसोमेश्वरलाङ्गलिदारुकौ।
अर्धनारीश्वरश्चोमाकान्तश्चाषाढदण्डिनौ॥५२॥

वे ही प्रजापति (मायावती) अजेश (प्राणियों जीवों के स्वामी) जीवों उत्पन्न करने वाले हैं, वे ही हर हैं नारियल देवदारु भी वही हैं अर्धनारीश्वर हैं उमा भगवती के कान्त हैं, धनुष और दण्डधारण करने वाले हैं॥५२॥

अत्रिमीनश्च मेपश्च लोहितश्च शिखी तथा।
छगलण्डद्विदण्डो च समहाकालवालिनौ॥५३॥
भुजगेशः पिनाकी च खड्गीशश्च बकस्तथा।
श्वेतो ह्यभ्रश्च नकुली शिवः सवर्तकस्तथा॥५४॥
पूर्णोदरी च विरजा तृतीया शाल्मली तथा।
लोलाक्षी वतुर्लाक्षी च दीर्घघोणा तथैव च॥५५॥
सुदीर्घमुखीगोमुख्यौ नवमी दीर्घजिह्विका।
कुञ्जरोदर्युर्ध्वकेश्यौ मुखी विकटपूर्विका॥५६॥
सज्वालोल्का श्रियाविद्यामुख्यः स्युः स्वरशक्तयः।
महाकालीसरस्वत्यौ सर्वसिद्धिसमन्विते॥५७॥

इसके बाद अत्रि मीन मेष लाल रंग मोर खड्ग दण्ड दो दण्ड सुमहाकाल व्यालि भुजगेश (वासुकि) पिनाकी (शिव) खड्गेश (गेंडा) बगुला, श्वेत मेघ, नकुली शिव, संवर्तकअग्नि, पूर्वोदरी, बिरजा, तृतीया, शाल्यमली, लोलाक्षी (चंचल आंखों वाली देवी) नर्तुलाक्षी (टेढ़े नेत्रों वाली देवी) दीर्घघोणा (बड़ी नाक वाली देवी) सुदीर्घमुखी (बड़े मुखवाली देवी) गोमुखी, नवमी, दीर्घजिह्विका (लम्बी जीभ वाली देवी) कुञ्जरी, ऊद्ध्र्वकेशी, दो मुखी, विकटमुखी सज्वाला, उल्का, श्री मुखि, विद्यामुखी, स्वरशक्ति, महाकाली, महा सरस्वती जो सभी सिद्धियों से समन्वित हैं॥५३,५४,५५,५६,५७॥

गौरी त्रैलोक्यविद्या च तथा मन्त्रासशक्तिके।
भूतमाता लम्बोदरी द्राविणी नागरी तथा॥५८॥

गौरीत्रैलोक्य विद्या मन्त्रासशक्ति का, भूतमाता, लम्बोदरी, द्राविणी, नागरी का न्यास करें॥५८॥

खेचरी मञ्जरी चैव रूपिणी वीरिणी तथा।
कोटरी पूतना भद्रा काली योगिन्य एव च॥५९॥

खेचरी, मञ्जरी, रूपिणी, वीरणी, कोटरी, पूतना, भद्राकाली और योगिनियां इनका न्यास करें॥५९॥

शङ्खिनी गर्जिनी कालरात्रिः कूर्दिन्य एव च।
कपर्दिनी तथा वज्रा जया च सुमुखेश्वरी॥६०॥

शंखिनी, गर्जिनी, कालरात्रि कुर्दिनी, कपर्दिनी, वज्रा, जया, सुमुखेश्वरी का न्यास करें ॥६० ॥

रेवती माधवी चैव वारुणी वायवी तथा।
रक्षोवधारिणी चान्या तथा च सहजाह्वया ॥६१ ॥

रेवती, माधवी, वारुणी, वायवी रक्षोवधारिणी तथा सहजाह्वया देवियों का न्यास करें ॥६१ ॥

लक्ष्मीश्च व्यापिनी मायेत्याख्याना वर्णशक्तयः।
द्विरुक्तबालाषड्बीजैरङ्गं कृत्वाथ केवलैः ॥६२ ॥

लक्ष्मी, व्यापिनीमाया, ये सभी वर्णशक्तियां हैं जो महाकाली से लेकर व्यापिनी माया तक है द्विरुक्तबाला के केवल वर्णों से ही इनका रंग करके न्यास करें ॥६२ ॥

षोढान्यासं प्रकुर्वीत देवतात्मत्वसिद्धये।
विघ्नेशादींस्तु तत्रादौ विन्यसेद्ध्यानपूर्वकम् ।।

देवतात्म सिद्धि के लिए साधक षोढान्यास करे, न्यास के पूर्व में ध्यान करते हुए विघ्नेश आदि का ध्यान करे यथा

तरुणारुण सकाशान्गजवक्रास्त्रिलोचनान्।
पाशाङ्कुशवराभीतिहस्ताञ्शक्तिसमन्वितान् ॥६४ ॥

तरूण और अरूण सूर्य के तेज जैसे हाभी के मुखवाले तीन नेत्रों वाले पाश अंकुश वर और अभय मुद्रा वाले हाथों से युक्त और शक्ति से समन्वित ॥६४ ॥

विघ्नेशो विघ्नराजश्च विनायकशिवोत्तमौ।
विघ्नहृद्विघ्नहन्ता च विघ्नराङ्गणनायकः ॥६५ ॥

1 विघ्नेश, 2 विघ्नराज, 3 विनायक, 4 शिव, 5 उत्तम, 6 विघ्नहृद्, 7 विघ्नहन्ता, 8 विघ्नराज, 9 गणनायक ॥६५ ॥

एकदन्तो द्विदन्तश्च गजवक्त्रो निरञ्जनः।
कपर्दवान्दीर्घमुखः शङ्कुकर्णो वृषध्वजः ॥६६ ॥

10 एकदन्त, 11 द्विदन्त, 12 गजवक्त्र, 13 निरञ्जन, 14 कपर्दवान्, 15 दीर्घमुख, 16 शंकुकर्ण, 17 वृषध्वज ॥६६ ॥

गणनाथो गजेन्द्रश्च शूर्पकर्णस्त्रिलोचनः।
लम्बोदरो महानादश्चतुर्मूर्तिः सदाशिवः ॥६७ ॥

18 गणनाथ, 19 गजेन्द्रास्य, 20 शूर्पकर्ण, 21 त्रिलोचन, 22 लंबोदर, 23 महानाद, 24 चतुमूर्ति, 25 सदाशिव ॥६७ ॥

आमोदो दुर्मदश्चैव सुमुखंश्च प्रमोदकः।
एकपादो द्विपादश्च शूरो वीरश्च षण्मुखः ॥६८॥

26 आमोद, 27 दुर्मद, 28 सुमुख, 29 प्रमोदक, 30 एकपाद, 31 द्विपाद, 32 शूर, 33 वीर, 34 षण्मुख ॥६८॥

वरदो वामदेवश्च वक्रतुण्डो द्विदण्डकः।
सेनानीर्ग्रामणीर्मत्तो विमत्तो मत्तवाहनः ॥६९॥

35 वरद, 36 वामदेव, 37 वक्रतुण्ड, 38 द्विदन्तक (द्विदण्डक) 39 सेनानी, 40 ग्रामणी, 41 मत्त, 42 विमत्त, 43 मत्तवाहन ॥६९॥

जटी मुण्डी तथा खड्गी वरेण्यो वृषकेतनः।
भक्ष्यप्रियो गणेशश्च मेघनादो गणेश्वरः ॥७०॥

44 जटी, 45 मुण्डी, 46 खड्गी, 46 वरेण्य 47 वृषकेतन 48 भक्ष्यप्रिय, 49 गणेश, 50 मेघनाद, 51 गणेश्वर ॥७०॥

एते गणेशवर्णानामेकपञ्चागतं क्रमान्।
श्रीश्च हीश्चैव पुष्टिश्च शान्तिस्तुष्टिः सरस्वती ॥७१॥

ये गणेश के एक पंचाशत वर्ण (51 वर्ण) क्रम से हैं इसके बाद 1 श्री, 1 ह्री, 3 पुष्टि, 4 शान्ति, 5 तुष्टि, 6 सरस्वती ॥७१॥

रतिमेर्धा तथा कान्तिः कामिनी मोहिनी तथा।
तीव्रा च ज्वालिनी नन्दा सुयशाः कामरूपिणी ॥७२॥

7 रति, 8 मेधा, 9 कान्ति, 10 कामिनी, 11 मोहिनी, 12 तीव्रा, 13 ज्वालिनी, 14 नन्दा, 15 सुयशा, 16 कामरूपिणी ॥७२॥

उग्रा तेजोवती सत्या विघ्नेशानीस्वरूपिणी।
कामार्ता मदजिह्वा च विकटा घूर्णितानना ॥७३॥

17 उग्रा, 18 तेजोवती, 19 सत्या, 20 विघ्नेशानी, 21 स्वरूपिणी, 22 कामार्ता, 23 मदजिह्वा, 24 विकटा, 25 घूर्णितानना ॥७३॥

भूतिर्भूमिर्द्विरम्बोमा मारूपी मकरध्वजा।
विकर्णा भृकुटी लज्जा दीर्घघोणा धनुर्धरी ॥७४॥

24 भूति, 27 भूमि, 28 द्विरम्बा (म्या) 29 चाया, 30 धनुर्धरी ॥७४॥

तथैव यामिनी रात्रिश्चन्द्रकान्ता शशिप्रभा।
लोलाक्षी चपला ऋज्वी दुर्भगा सुभगा शिवा॥७५॥

37 यामिनी, 38 रात्रि, 39 चन्द्रकान्ता, 40 शशिप्रभा, 41 लोलाक्षी, 42 चपला, 43 ऋज्वी, 44 दुर्भगा, 45 सुभगा, 46 शिवा॥७५॥

दुर्गा गुहप्रिया काली कालजिह्वा च शक्तयः।
महन्यासं ततः कुर्याद्ध्यानपूर्वं समाहितः॥७६॥

47 दुर्गा, 48 गुहप्रिया, 49 काली, 50 कालजिह्वा (इस प्रकार जितने वर्ण हैं उतनी ीं उनकी शक्तियां हैं अतः सभी उपचारों से पूजन पूर्वक शक्तियों से समालिंगित देवों का ध्यान करते हुए) ग्रहों का न्यास एवं समाहित चित्त से ध्यान करें॥७६॥

वरदाभयहस्ताढ्यान्शत्यालिङ्गितविग्रहान्।
कुङ्कुमक्षीररुधिरकुन्दकाञ्चनकम्बुभिः॥७७॥

वरद अभय युक्त हाथों वाले शक्ति से आलिंगित विग्रह वाले कुंकुम, दूध, सधिर, कुंद, कांचन, शंख आदि उपचारों से पूजन पूर्वक ग्रहों का न्यास ध्यान समाहित चित्त से करें॥७७॥

अम्भोदधूमतिमिरैः सूर्यादीन्सद्दशान्स्मरेत्।
हृदयाधो रविन्यस्येच्छीर्ष्णि सोमं द्दशोः कुजम्॥७८॥

बादलों के धूएं के अंधकारों से घिरे हुए सूर्य आदि के समान ग्रहों का न्यास करें यथा-हृदय के नीचे सूर्य का न्यास, सिर पर चंद्र, नेत्रों में मंगल॥७८॥

हृदि शुक्रं च हृन्मध्ये बुधं कण्ठे बृहस्पतिम्।
नाभौ शनैश्चरं वक्रे राहुं केतुं पदद्वये॥७९॥

हृदय में शुक्र का न्यास हृदय के मध्य में बुध का न्यास, कंठ में गुरु का न्यास नाभि में शनैश्चर का न्यास मुख में राहु और दोनों पैरों में केतु का न्यास॥७९॥

ज्वलत्कालानलप्रख्या वरदाभयपाणयः।
तारा न्यसेत्ततो ध्यायन्सर्वाभरणभूषिताः॥८०॥

जलती हुई कालाग्नि के समान वर देने वाले और अभय देने वाले हाथों वाली सभी आभूषणों से आभूषित तारा देवी का ध्यान करते हुए न्यास करें॥८०॥

भाले नयनयोः कर्णद्वये नासापुटद्वये।
कण्ठे स्कन्धद्वये पश्चात्कूर्पयोर्मणिबन्धयोः॥८१॥

मस्तक पर दोनों नेत्रों दोनों कानों दोनो नासिकापुरों कण्ठ में दोनों कंधों में पीछे के कूर्प (दोनों

कूबड़ो) और दोनों मणिबंधों में न्यास करें ॥८१ ॥

स्तनयोर्नाभिकट्यूरुजानुजङ्घापदद्वये।
योगिनीन्यासमादध्याद्विशुद्धौ हृदये तथा ॥८२ ॥

दोनों स्तनों, नाभि, कमर, दोनों कूल्हे, घुटने, जंघाएं दोनों चरण विशुचक्र (कण्ठ देश) और हृदय योगिनी न्यास सम्पन्न करें ॥८२ ॥

नाभौ स्वाधिष्ठिते मूले भ्रूमध्ये मूर्धनि क्रमात्।
पद्मन्दुकर्णिकामध्ये वर्णशक्तिर्दलेष्वथ ॥८३ ॥

नाभि, स्वाधिष्ठान मूल, भ्रूमध्य, सिर पर क्रम से पद्मचन्द्रकर्णिका के मध्य में वर्ण शक्तियों के दलों में ॥८३ ॥

दलाग्रेषु तु पद्मस्य मूनि सर्वांश्च विन्यसेत्।
अमृता नन्दिनीन्द्राणी तथेशानी उमापि च ॥८४ ॥

दलों के आगे में पद्मके ऊपर सिर पर सभी वर्ण शक्तियों का न्यास करें तथा उन सबको कमल के ऊर्ध्व भाग में न्यास करना चाहिये वे वर्ण शक्तियां इस प्रकार हैं यथा- अ से अमृता, आ से नन्दिनी, इ से इन्द्रणी, ई से ईशानी, उ से उमा ॥८४ ॥

ऊर्ध्वकेशी ऋद्धिजुषा लृका लुका तथैव च।
एकपादात्मिकैश्वयकारिणी चौषधात्मिका ॥८५ ॥

ऊ से ऊर्ध्वकेशी ऋ से ऋद्धिजुषा, ॠ ऋद्धीश्वरी, लृ से लृका, लृ से लृकाटिका, ए से एक पादात्मिका, ऐ से ऐश्वर्यकारिणी ओ से ओंकारात्मिका औ से औवधात्मिका ॥८५ ॥

ततोऽम्बिकाथो रक्षात्मिकेति षोडश शक्तयः।
कालिका खेचरी गायत्री घण्टाधारिणी तथा ॥८६ ॥

अं से अम्बिका, अः से रक्षात्मिका-इस प्रकार सोलहमातृका शक्तियां रक्षा करने वाली हैं कालिका खेचरी गायत्री घंटाधारिणी ॥८६ ॥ 86वें श्लोक के उत्तरार्ध का अर्थ आगे क से कालिका, ख से खेचरी ग से गायत्री, घ से घंटाधारिणी ॥८६ ॥

नादात्मिका च चामुण्डा छत्रिका च जया तथा।
झंकारिणी च संज्ञा च टंकहस्ता ततः परम् ॥८७ ॥

ड. से नादात्मिका, च से चामुण्डा, छ से छत्रिका, ज से जया, झ से झंकारिणी, ञ से संज्ञा, ट से टंकहस्ता ॥८७ ॥

टंकारिणी च विज्ञेयाः शक्तयो द्वादश क्रमान्।
डामरी ढंकारिणी च णामिनी तामसी तथा ॥८८॥

ठ से ठंकारिणी ये शक्तियां क्रम से बारह हैं आगे 5 से डंकारी ढ से ढंकारिणी, ण से णामिनी, त से तामसी ॥८८॥

थंकारिणी दद्याधात्री नादिनी पार्वती तथा।
फट्कारिणी च विज्ञेयाः शक्तयोद्वयपन्नगाः॥८९॥

थ से थंकारिणी, द से दया, ध से धात्री, न से नादिनी, प से पार्वती, फ से फठ्कारिणी, ये दो शक्तियां पन्नग हैं॥८९॥

बधिनी च तथा भद्रा मज्जा चैव यशस्विनी।
रमा च लामिनी चेति षडेताः शक्तयः क्रमात्॥९०॥

ब से बधिनी, भ से भद्रा, म से मज्जा, य से यशस्विनी, र से रमा, ल से लामिनी ये छह शक्तियां क्रम से॥९०॥

वरदा श्रीस्तथा षण्ढा सरस्वत्यपि शक्तयः।
चतस्रोऽपि तथैव द्वे हाकिनी च क्षमा तथा ॥९१॥

व से वरदा, श से श्री, व से षण्ढा, स से सरस्वती, ह से हाकिनी, इस प्रकार चार शक्तियां हुईं एक संयुक्त वर्ण क्ष से क्षमा-इन समस्त वर्णों का कमलकर्णिकाओं से न्यास करना है॥९१॥

ततः पादे च लिङ्गे च कुक्षौ हृद्दोः शिरस्सु च।
दक्षादिवामपादान्तं राशीन्मेषादिकान्यसेत्॥९२॥

उसके बाद पैर, लिंग, कुक्षि, हृदय, भुजाओं और सिर, दक्ष आदि बांए पैर तक मेष आदि राशि का विन्यास करें मेषादि राशियां द्वादश हैं- न्यास क्रम-यथा- दांए पैर में 1 मेष, बांए पैर में 2 वृष, लिड्गं में3 मिथुन, कोख में 4 कर्क, हृदय में 5 सिंह, दांई भुजा पर 6 कन्या, बांयी भुजा पर 7 तुला, दांऐ नेत्र में 8 वृश्चिक, बांऐ नेत्र में 9 धनु, दांयी नासिका में 10 मकर, बांयी नासिका में 11 कुम्भ, सिर पर 12 मीन, इस प्रकार बारह राशियों का शरीर के बारह स्थानों में न्यास करना चाहिये॥९२॥

ततः पीठानि पञ्चाशदेकं च क्रमतो न्यसेत्।
कामरूपं वारणासी नेपालं पौण्ड्रवर्धनम्॥९३॥

इसके अनन्तर पचास पीठ और एक चक्र का क्रम से न्यास करे पचास पीठों के नाम इस प्रकार हैं- यथा 1 कामरूप (कामाख्या) 2 वाराणसी, 3 नेपाल (काठमाण्डु), 4 पौण्ड्रवर्धन ॥९३॥

वरस्थिरं कान्यकुब्जं पूर्णशैलं तथार्बुदम्।
आम्रातकेश्वरैकाम्रं त्रिस्रोतः कामकोटकम्॥९४॥

5 वरास्थिर, 6 कान्यकुब्ज, 7 पूर्णशैल (पूर्णागिरी), 8 अर्बुद, 9 आम्रातकेश्वर, 10 एकाम्रक्षेत्र, 11 त्रिस्रोत, 12 कामकोष्ट॥९४॥

कैलासं भृगुनगरं केदारं चन्द्रयुक्पुरम्।
श्रीपीठ चैकवीरं च जालन्ध्रं मालवं तथा॥९५॥

13 कैलास, 14 भृगुनगर, 15 केदार, 16 चन्द्र पुष्पक, 17 श्रीपीठ, 18 एकवीर, 19 जालन्धर, 20 मालव॥९५॥

कुलान्नं देविकोटं च गोकर्ण मारुतेश्वरम्।
अट्टहासं च विरजं राजगेहमहापथे॥९६॥

21 कुलान्त्र, 22 देवकोटि, 23 गोकर्ण, 24 मारूतेश्वर, 25 अट्टहास, 26 विरज, 27 राजगेह (वेश्य) 28 महापथ॥९६॥

कोलापुरमेलापुरं कालेश्वरं जयन्तिका।
उज्जयिन्यपि चित्रा च क्षीरकं हस्तनापुरम्॥९७॥

29 कोलापुर, 30 एलापुर, 31 कालेश्वर, 32 जयन्ति का, 33 उज्जयिनी, 34 चित्रा, 35 क्षीरक, 36 हस्तनापुर (हस्तिनापुर)॥९७॥

उड्डीशं च प्रयागं च षष्टिमायापुरं तथा।
गौरीशं मलयगिरि श्रीशैलं मेरुमेव च॥९८॥

37 उड्डीश, 38 प्रयाग, 39 षष्टिमायापुर, 40 गौरीश, 41 मलय गिरि, 42 श्री शैल, 43 मरू॥९८॥

पुनर्गिरिवरं पश्चान्महेन्द्रं वामनं गिरिम्।
स्याद्धिरण्यपुरं पश्चान्महालक्ष्मीपुर तथा॥९९॥

44 पुनर्गिरिवर, 45 पश्चान्महेन्द्र, 46 वामनगिरी, 47 हिरण्यपुर, 48 महालक्ष्मीपुर॥९९॥

पुरोड्याणं तथा छाया छत्रमाहुर्मनीषिणः।
लिपिक्रम समायुक्ताँल्लिपिस्थानेषु विन्यसेत्॥१००॥

49 पुरोड्याण, 50 छाया क्षेत्र।। इन पचास स्थानों को मनीषीगण पीठ कहते हैं इन सभी को लिपिक्रम से समायुक्त कर लिपि के स्थानों में विशेष रूप से न्यास करे॥१००॥

अन्यान्यथोक्तस्थानेषु संयुक्तं लिपिसंक्रमात्।
षोढान्यासो मयाख्यातः साक्षादीश्वरभाषितः ॥१०१॥

अन्यान्ययथोक्त स्थानों में संयुक्त लिपि के सम्यक क्रम से विन्यास करें। श्री ह्यग्रीव कहते हैं, कि ये सोलह न्यास मैंने कहे हैं जो साक्षात. ईश्वर (भगवान शिव) द्वारा कहे गए हैं ॥१०१॥

एवं विन्यस्तदेहस्तु देवता विग्रहो भवेत्।
ततः षोढां पुरः कृत्वा श्रीचक्रन्यासमाचरेत् ॥१०२॥

इस प्रकार विन्यस्त देह तो ललिता देवी का विग्रह हो जावेगा, उसके षोढा (छह पुर) बनाकर श्रीचक्र न्यास करें ॥१०२॥

अन्त्याद्यानन्दमूर्यन्तं मन्त्रैस्तु व्यापकं चरेत्।
चक्रेश्वरीचक्रसमर्पणमंत्रान्हृदि न्यसेत् ॥१०३॥

अंश आदि अमूर्ति के अंत तक मंत्रों द्वारा व्यापक करे, चक्रेश्वरी का चक्र समर्पण कर मंत्रों को हृदय में धारण करे ॥१०३॥

अन्यान्यथोक्तस्थानेषु गणपत्यादिकान्न्यसेत्।
दक्षिणोर्वसयोर्वामांसोर्वोश्च क्रमशो न्यसेत् ॥१०४॥

अन्यान्यथोक्त स्थानों में गणपति आदि का न्यास करे, दक्षिण ऊरु के समान वाम ऊरु में सभी देवताओं का क्रमशः न्यास करे ॥१०४॥

गणेशं क्षेत्रपालं च योगिनीं बटुकं तथा।
आदाविन्द्राद्यो न्यस्याः पादाङ्गुष्ठद्वयाग्रके ॥१०५॥

गणेश क्षेत्रपाल, योगिनी, तथा बटुक को न्यास करे आदि में इन्द्रादि को पैर के दोनों अंगूठों में न्यस्त करना चाहिए ॥१०५॥

जानुपार्श्वां समूर्धास्यपार्श्वजानुषु मूर्धनि।
मूलाधारे च दक्षादि सिद्धीनां दशकं ततः ॥१०६॥

घुटनों के पास कंधे, मूर्धा, मुख, कांख, घुटने और सिर पर तथा मूलाधार (चार दल व श ष स) में दक्षादि सिद्धियों (अणिमादि सिद्धि) के दश सिद्धियों का न्यास करे ॥१०६॥

न्यस्तव्यमंसदोः पृष्ठस्फिक्षु प्रपदयोः स्फिजि।
दोरंसपृष्ठयोर्मूर्धपादद्वितययोः क्रमात् ॥१०७॥

फिर कंधे, भुजाएं, पीठ, वक्षःस्थल, पैरों के अग्रभाग, कूल्हे, भुजाओं के पीछे, मूर्धा, और दोनों पैरों में ॥१०७॥

अणिमा चैव लघिमा तृतीया महिमा तथा।

ईशित्वं च वशित्वं च प्राकाम्यं प्राप्तिरेव च॥१०८॥

1 अणिमा, 2 लघिमा, 3 महिमा, 4 ईशित्व, 5 वाशित्व, 6 प्राकाम्य, 7 प्राप्ति॥१०८॥

इच्छासिद्धिरर्थसिद्धिर्मोक्षसिद्धिरिति स्मृताः।

ततः प्रविन्यसेद्धीमान्मातृणामष्टकं क्रमात्॥१०९॥

8 इच्छासिद्धि, 9 रससिद्धि, 10 मोक्षसिद्धि इनके क्रम से न्यास करे इसके अनन्तर बुद्धिमान् साधक आठ मातृकाओं का क्रमशः न्यास करे॥१०९॥

पादाङ्गुष्ठयुगे दक्षपार्श्वे मूर्धनि वामतः।

पार्श्वजान्वोर्दक्षजान्वोर्दक्षवामांसयोस्तथा॥११०॥

ये आठ स्थान इस प्रकार हैं- यथा 1 पैर, का बांया अंगूठा, 2 पैर का दांया अंगूठा, 3 दांयी कोख, 4 सिर, 5 बांया घुटना, 6 दांया घुटना, 7 दांया कंधा, 8 बांया कंधा॥११०॥

ब्राह्मी माहेश्वरी चैव कौमारी वैष्णवी तथा।

वाराही च तथेन्द्राणी चामुण्डा चैव सप्तमी॥१११॥

ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी, चामुण्डा॥१११॥

महालक्ष्मीश्च विज्ञेया मातरोऽष्टौ क्रमाद्बुधैः।

मुद्रादेवीर्न्यसेदष्टावेष्वेव द्वे च ते पुनः॥११२॥

आठवी महालक्ष्मी ये आठ मातृकाऐं बुद्धिमान जानें फिर इन्हीं स्थानों में आठ मुद्राओं का न्यास करना चाहिये॥११२॥

मूर्ध्यङ्घ्रयोरपि मुद्रास्तु सर्वसंक्षोभिणी तथा।

सर्वविद्राविणी पश्चात्सर्वथाकर्षिणी तथा॥११३॥

फिर उसके बाद इन्हीं स्थानों में मुद्रा देवियों का न्यास करना चाहिये, उनका न्यास सिर से पैरों तक करना है, आठ मुद्राएं इस प्रका हैं- 1 सर्व संक्षोभिण, 2 सर्व विद्राविणी, 3 सर्वार्थाकर्षिणी॥११३॥

सर्वाद्या वश्यकरणी सर्वाद्या प्रियकारिणी।

महाङ्कुशा च सर्वाद्या सर्वाद्या खेचरी तथा॥११४॥

4 सर्वाद्यावश्यकरणी, सर्वाद्या प्रियकारिणी, 5 सर्वाद्या महांकुशा, 6 सर्वाद्या खेचरी॥११४॥

सर्वत्रिखण्डा च सर्वबीजमुद्रा सपूर्विका।

योनिमुद्रेति विज्ञेयास्तत्र चक्रेश्वरीं न्यसेत्॥११५॥

7 सर्वत्रिखण्डा सर्वबीजा, 8 सर्व प्रपूरिका योनि मुद्रा ये सभी आठा मुद्राएं हैं इन्हें चक्रेश्वरी के आठ स्थानों में न्यस्त करें ॥११५॥

त्रैलोक्यमोहनंचक्रं समर्प्य व्याप्य वर्ष्मणि।
ततः कलानां नित्यानां क्रमात्योडशकं न्यसेत् ॥११६॥

त्रैलोक्य मोहन चक्र को शरीर पर व्याप्त करके समर्पित करके उसके बाद सोलह कलाओं का क्रमशः न्यास करे- वे कलाएं इस प्रकार हैं ॥११६॥

कामकर्षणरूपा च बुद्ध्याकर्षणरूपिणी।
अहङ्काराकर्षिणी च शब्दाकर्षणरूपिणी ॥११७॥

1 कामाकर्षणरूपिणी कला, 2 बुद्धध्याकर्षणरूपिणी, 3 अंहकाराकर्षिणी, 4 शब्दाकर्षणरूपिणी ॥११७॥

स्पर्शाकर्षणरूपा च रूपाकर्षणरूपिणी।
रसाकर्षणरूपा च गन्धाकर्षणरूपिणी ॥११८॥

5 स्पर्शाकर्षणरूपा, 6 रूपाकर्षण रूपिणी, 7 रसाकर्षण रूपा, 8 गन्धाकर्षण रूपिणी ॥११८॥

चित्ताकर्षणरूपा च धैर्याकर्षणरूपिणी।
स्मृत्याकर्षणरूपा च मनआकर्षरूपिणी ॥११९॥

9 चित्ताकर्षण रूपा, 10 धैर्याकर्षण रूपिणी, 11 स्मृत्याकर्षण रूपिणी, 12 मन (हृदय) आकर्षण रूपिणी ॥११९॥

श्रद्धाकर्षणरूपा च ह्यात्माकर्षणरूपिणी।
अमृताकर्षणीरूपा शरीराकर्षिणी तथा ॥१२०॥

13 श्रद्धाकर्षण रूपा, 14 आत्माकर्षण रूपिणी, 15 अमृताकर्षण रूपा, 16 शरीराकर्षिणी ॥१२०॥

स्थानानि दक्षिणश्रोत्र पृष्ठमंसं च कूर्परे।
दक्षहस्ततलस्याथ कोष्ठं तत्स्फिक्च जानु च ॥१२१॥

स्थान हैं दक्षिण क्षेत्र (कान), पीठ, कंधा, कुहनी, दांयी हथेली के पीछे कूल्हे, दोनों घुटनों ॥१२१॥

तज्जङ्घाप्रपदे वामप्रदीपादि विलोमतः।
चक्रेशीं न्यस्य चक्रं च समर्प्य व्याप्य वर्ष्मणि ॥१२२॥

जंघा, पैरों के अग्रभाग में, वाम पैर के अग्रभाग से उल्टे क्रम से चक्रेशी और चक्र को शरीर पर न्यस्त कर उसकी पूजा करके व्याप्त करके ॥१२२॥

न्यसेदनङ्गकुसुमादेव्यादीनामथाष्टकम्।
शङ्खजत्रूरुजङ्घासु वामे तु प्रतिलोमतः॥१२३॥

अनड्ंग कुसुमा आदि आठ देवियों का कनपटी (कान के पीछे की हडडी) जत्रु (गर्दन की हड्डी) ऊरु, जंघाओं पर बांए भाग पर उल्टे क्रम न्यास करना चाहिये॥१२३॥

अनङ्गकुसुमा पश्चाद्द्वितीयानङ्गमेखला।
अनङ्गमदना पश्चादनङ्ग मदनातुरा॥१२४॥

वे इस प्रकार है यथा- अनंग कुसुमा, कनपटी पर बाएं, द्वितीया अनंग मेखला कनपटी पर दाएं, अनंग मदना गरदन की हड्डी पर बाएं, अनंग मदनातुरा गरदन की हड्डी पर दाएं॥१२४॥

अनङ्गरेखा तत्पश्चाद्वेगाख्यानङ्गपूर्विका।
ततोऽनङ्गाड्कुशा पश्चादनङ्गाढ्या च मालिनी ॥१२५॥

अनंग रेखा ऊरू पर बांए, अनंग पूर्वा वेगा नाभि अनंग वेगा ऊरू के दांऐ, अनंगाड्कुशा जंघा के बांइ और अनंग मालिनी दांई जंघा पर प्यस्त करे॥१२५॥

चक्रेशीं न्यस्य चक्रं च समर्प्य व्याप्य वर्ष्मणि।
शक्तिदेवीर्न्यसेत्सर्वाः संक्षोभिण्यादिकामथ ॥१२६॥

चक्रेशी को न्यस्त करके और चक्र (मूलाधार चक्र) की पूजा करके शरीर में व्यापक करे, फिर सर्व संक्षोभिणी आदि शक्तियों का न्यास करे॥१२६॥

ललाटगण्डयोरंसे पादमूले च जानुनि।
उपर्यधश्च जङ्घायास्तथा वामे विलोमतः॥१२७॥

उनको ललाट पर गण्ड स्थल पर, कंधे पर, पादमूल पर, घुटनों पर, ऊपर और नीचे जंघा पर, बांई ओर से उल्टे क्रम से न्यास करना चाहिये॥१२७॥

सर्वसंक्षोभिणीशक्तिः सर्वविद्राविणी तथा।
सर्वाद्याकर्षिणी शक्तिः सर्वाद्याह्लादिनी तथा ॥१२८॥

1 सर्वसंक्षोभिणी शक्ति (ललाट पर) बांऐ, 2 सर्वविद्राविणी शक्ति (ललाट पर दाएं) 3 सर्वाद्याकर्षिणी शक्ति (बांए गंडस्थल पर) 4 सर्वाह्लादिनी शक्ति (दांए गण्डस्थल पर)॥१२८॥

सर्वसंमोहेनी शक्तिः सर्वाद्या स्तम्भिनी तथा।
सर्वाद्या जम्भिनी शक्तिः सर्वाद्या वशकारिणी॥१२९॥

5 सर्वसम्मोहिनी शक्ति बांए कंधे पर, 6 सर्वाद्यास्तम्भिनी शक्ति दांए कंधे पर, 7 सर्वाद्याजृम्भिणी शक्ति बांए पैर पर, 8 सर्वाद्यावशकारिणी शक्ति दांए पैर पर॥१२९॥

सर्वाद्या रञ्जनी शक्तिः सर्वाद्योन्मादिनी तथा।

सर्वार्थसाधिनीशक्तिः सवार्शापरिपूरिणी॥१३०॥

9 सर्वाद्यारञ्जिनी शक्ति बांए घुटने पर, 10 सर्वाद्योन्मादिनी शक्ति दांए घुटने पर, 11 सर्वार्थसाधिनी शक्ति बांयी जंघा पर, 12 सर्वार्थपरिपूरिणी शक्ति दांयी जंघा पर॥१३०॥

सर्वमन्त्रमयी शक्तिः सर्वद्वन्द्वक्षयंकरी।

चक्रेशीं न्यस्य चक्रं च समर्प्य व्याप्य वर्ष्मणि॥१३१॥

13 सर्वमन्त्रमयी शक्ति, 14 सर्वद्वन्द्वक्षयंकरी शक्ति चक्रेशी और चक्र बनाकर उसकी पूजा करके शरीर पर व्याप्त करके॥१३१॥

सर्वसिद्धिप्रदादीनां दशकं चाथ विन्यसेत्।

दक्षनासापुढे दन्तमूले दक्षस्तने तथा॥१३२॥

सर्वासिद्धि प्रदान करने वाली दश देवियों का न्यास करे वे दस स्थान इस प्रकार हैं- यथा 1 दक्षनासापुट, 2 दन्तमूल और 3 दक्षस्तन॥१३२॥

कृपाणे चैव सीविन्यां तथा वामे विलोमतः।

सर्वसिद्धिप्रदा देवी सर्वसंपत्प्रदा तथा॥१३३॥

कुहनी और मणिबंन्ध वाम पर विलोम क्रम से न्यास करे, वह क्रम इस प्रकार हैं- 1 सर्वसिद्धिप्रदा, 2 सर्वसम्पत्प्रदा॥१३३॥

सर्वप्रियंकरी देवी सर्वमङ्गलकारिणी।

सर्वकामप्रदा देवी सर्वदुःखविमोचनी॥१३४॥

3 सर्वाप्रियंकरी, 4 सर्वमंगलकारिणी, 5 सर्वकामप्रदा देवी, 6 सर्वदुःखविमोचनी॥१३४॥

सर्वमृत्युप्रशमनी सर्वविघ्नविनाशिनी।

सर्वाङ्गसुन्दरी देवी सर्वसौभाग्यदायिनी॥१३५॥

7सर्वमृत्यु प्रशमनी, 8 सर्वविघ्नावनाशिनी, 9 सर्वांगसुन्दरी, 10 सर्वसौभाग्यदायिनी॥१३५॥

चक्रेशीं न्यस्य चक्रं च समर्प्य व्याप्य वर्ष्मणि।

सर्वज्ञादीन्न्यसेद्दक्षमीषद्दन्तस्थलेष्वथ॥१३६॥

चक्रेशी का न्यास करके और चक्र का न्यास कर उसकी सम्यक प्रकार से पूजा करके शरीर पर न्यास करके सर्वज्ञा आदि देवियों को वक्षःस्थल पर और दन्ततलों में न्यस्त करें॥१३६॥

सर्वज्ञा सर्वशक्तिश्च सर्वैश्वर्यप्रदा तथा।

सर्वज्ञानमयी देवी सर्वव्याधिविनाशिनी॥१३७॥

1 सर्वज्ञा, 2 सर्वशक्ति, 3 सर्वेश्वर्याप्रदा, 4 सर्वज्ञानमयी देवी 5 सर्वव्याधिविनाशिनी ॥१३७॥

सवार्धारस्वरूपा च सर्वापहरा तथा।
सर्वानन्दमयी देवी सर्वरक्षास्वरूपिणी॥१३८॥

6 सर्वाधारस्वरूपा देवी, 7 सर्वपापहरा, 8 सर्वानन्दमयी देवी, 9 सर्वरक्षास्वरूपिणी॥१३८॥

विज्ञेया दशमी देवी सर्वेप्सितफलप्रदा।
चक्रेशीं न्यस्य चक्रंच समर्प्य व्याप्य वर्ष्मणि॥१३९॥

10 सर्वेप्सितफलप्रदा देवी, ये दशमी देवी हैं- चक्रेशी का न्यास करके और चक्र का न्यास करके उसकी सम्यक प्रकार से पूजा करके शरीर में न्यास करें॥१३९॥

वाग्देवताष्टकं पश्चाद्वशिन्यादीन्यसेत्सुधीः।
दक्षे तु चुबुके कण्ठे स्तने नाभौ च पार्श्वतः॥१४०॥

वाग्देवताष्टक आदि का बांए पहले न्यास करें दक्ष, चिबुक (ठौढ़ी), कंठ, स्तन, नाभि, पीठ में न्यास करे॥१४०॥

वामा विमोचनी विद्या वशिनी प्राप्तमानना।
कामेश्वरी परा ज्ञेया मोदिनी विमला तथा॥१४१॥

1 वामा विमोचिनी विद्या है, 2 वशिनी, 3 कामिनी मानी गई हैं, 4 कामेश्वरी पराज्ञेया है, 5 मोहिनी, 6 विमला॥१४१॥

अरुणा जयिनी पश्चात्तथा सर्वेश्वरी मता।
कौलिनीति समुक्तानि तासां नामानि सूरिभिः॥१४२॥

7 अरूणा, 8 जयिनी, उसके बाद 9 सर्वेश्वरी मानी गई हैं, 10 कौलिनी इस प्रकार विद्वानों ने इन देवियों के नाम कहे हैं॥१४२॥

चक्रेश्वरी न्यसेच्चक्रं समर्प्य व्याप्य वर्ष्मणि।
हृदि त्रिकोणं संभाव्य दिक्षु प्रागादिषु क्रमात्॥१४३॥

न्यास के अनन्तर चक्रेश्वरी का न्यास करे फिर चक्र को पूजित कर शरीर में न्यास करके हृदय में त्रिकोण की कल्पना कर दिशाओं में पूर्व की ओर से क्रम से न्यास करें॥१४३॥

तद्बहिर्विन्यसेद्धीमानायुधानां चतुष्टयम्।
न्यसेदग्न्यादिकोणेषु मध्ये पीठचतुष्टयम॥१४४॥

उस त्रिकोण के बाहर बुद्धिमान पुरुष चार आयुधों को स्थापित करे अग्नि आदि कोणों में मध्य में चार पीठों का न्यास करें॥१४४॥

मध्यवृत्त हृदि ध्यात्वा नित्याषोडशकं न्यसेत्।
कामेश्वरी तथा नित्या नित्या च भगमालिनी ॥१४५॥

मध्य में वृत्त का न्यास करके नित्या आदि सोलह शक्तियों को स्थापित करें, वे सोलह नित्याएं हैं 1 कामेश्वरी नित्या, 2 भगमालिनी नित्या॥१४५॥

नित्यक्लिन्ना तथा नित्या नित्या भेरुण्डयोदिता।
वह्निवासिनिनित्या च महावज्रेश्वरी तथा॥१४६॥

3 नित्यक्लिन्ना नित्या, 4 भेरुण्डा नित्या, 5 वाह्निवासिनी नित्या, 6 महावज्रेश्वरी नित्या॥१४६॥

नित्या च दूतीनित्या च त्वरिता तु ततः परम्।
कुलसुन्दरी नित्या च नित्यानित्या ततः परम्॥१४७॥

7 शिवदूती नित्या, 8 त्वरिता नित्या, 9 कुल सुन्दरी नित्या, 10 नित्या नित्या॥१४७॥

नित्या नीलपताका च नित्या तु विजया परा।
ततस्तु मङ्गलां चैव नित्यपूर्वां प्रचक्षते॥१४८॥

11 नीलपताका नित्या, 12 विजया नित्या, 13 मंगला नित्या॥१४८॥

ज्वालामालिनिनित्या च चित्रा नित्या तथैव च।
एतास्त्रिकोणान्तरेण परितो हृदि विन्यसेत्॥१४९॥

नित्याओं को त्रिकोण के अन्तर्गत पाद से हृदय तक न्यास करें॥१४९॥

नित्या तु षोडशी साक्षान्महात्रिपुरसुन्दरी।
तन्मध्ये विन्यसेद्देवीमखण्डजगदात्मिकाम्॥१५०॥

श्री सुन्दरी साक्षात् का न्यास करें मध्य में फिर अखण्डजगदम्बिका महात्रिपुरसुन्दरी न्यास करें॥१५०॥

चक्रेश्वरीं हृदिन्यस्य कृत्वा चक्रसमर्पणम्।
मुद्रां प्रदर्श्य योन्याख्यां सर्वानन्दमनुं जपेत्।
इत्यात्मन्यस्तचक्रस्तु साक्षाद्देवी भविष्यति॥१५१॥

चक्रेश्वरी ललिताम्बा को हृदय में न्यस्त कर योनि मुद्रा प्रदर्शित कर सर्वानन्द मनु (मन्त्र षोडशी, पंचदशी आदि का) का जप करें। इस प्रकार अपने आत्मा (शरीर और आत्मा) में अन्तर्यागद्वारा न्यस्त श्रीचक्र के द्वारा श्रीचक्रस्वरूपिणी भगवती ललितामहात्रिपुरसुन्दरी कामाक्षी के श्रीविग्रह में ऐक्य हो जाएगा। (जीवन्मुक्त/विदेहमुक्त ललिताम्बिकायै नमः ।। श्रीपादुकां पूज्यामि नमः।।)॥१५१॥

॥ फलश्रुतिः ॥

य इदं शृणुयाद्दिव्यमाख्यानं कुम्भसंभव।
तस्य सिद्धिः करस्थैव न स भूयोऽभिजायते॥१॥

हे कुम्भसम्भव! अगस्त्य!! जो भी इस दिव्य आख्यान को श्रद्धा से सुनेगा, उसे सिद्धियां करतलगत हो जायेंगी। उसका पुनर्जन्म नहीं होगा॥१॥

आख्यानं ललितादेव्याः पठेद्यः शृणुयादपि।
विधूय सर्वपापानि देवलोके महीयते॥२॥

इस भगवती ललिताम्बा के दिव्य-आख्यान का जो पाठ करता है और जो सुनता है, वह समस्त जन्म जन्मान्तरों के समस्त पापसमूहों का विध्वंस कर देवलोक में पूजित होता है॥२॥

कन्यार्थी लभते कन्या जयार्थी जयमाप्नुयात्।
मोक्षार्थी लभते मोक्षं धर्मार्थी धर्ममाप्नुयात्॥३॥

जो कन्या चाहता है उसे सुलक्षणा कन्या कन्या प्राप्त होती है। जो संघर्षों में विजय चाहता है वह सभी क्षेत्रों विजयी होता है। जो जन्ममृत्यु और संसार से मुक्ति चाहता है उसे मोक्ष प्राप्त होता है। जो धर्मफल चाहता है उसे धर्म की तथा उसके फल की प्राप्ति होती है।॥३॥

अर्थकामोलभेदर्थं पुत्रकामो बहून्सुतान्।
विद्यार्थी लभते विद्यां योगार्थी योगमाप्नुयात्॥४॥

अर्थ (धनादि) की कामना वाला अर्थ को पाता है, पुत्र प्राप्ति की कामना वाला बहुत पुत्रों को प्राप्त करता है विद्यार्थी विद्या प्राप्त करता है और योगेच्छु योगसिद्धि पाता है॥४॥

राज्यार्थी लभते राज्यं ग्रामार्थी ग्राममानुयात्।
गर्भिणी लभते पुत्रं कन्या विन्दति सत्पतिम्॥५॥

राज्यार्थी राज्य प्राप्त करता है, ग्रामेच्छु ग्राम की प्राप्ति करता है, गर्भिणी को पुत्र प्राप्त होता है कन्या सत्पति को प्राप्त करती है॥५॥

योऽन्यान्कामयतेकामान्मानवः श्रवणादिह।
तत्सर्वं शीघ्रमाप्नोति देवानां च प्रियो भवेत्॥६॥

जो मनुष्य और भी अन्य कामनाएं करता है वे सभी इस आख्यान के श्रवण से पूरी हो जाती हैं और देवताओं का प्रिय भी हो जाता है॥६॥

श्रुत्वा चरित्रं श्रीदेव्याः संग्रामं प्रविशेन्नृपः।
स निर्जित्यभयंशत्रून्कल्याणैः परिपूर्यते॥७॥

जो नृप भगवती श्रीदेवी के इस दिव्य चरित्र को विद्वान भक्त और वक्ता से सुनकर संग्राम में संलग्न होता है तो वह परिणाम में शत्रुओं के भय को जीत कर कल्याण प्राप्त करता है॥७॥

सर्वव्याधिविनिर्मुक्तः पुत्रपौत्रैः प्रतिष्ठितः।
ललिताया उपाख्यानं यमुद्दिश्य पठेत्सकृत्॥८॥

जिस किसी संकल्प को लेकर जो एक बार भी भगवती ललिताम्बा के इस ललितोपाख्यान का पाठ करता है वह समस्त व्याधियों से विनिर्मुक्त होता है, और उसकी गृहस्थी पुत्र पौत्रों से भरपूर होती है॥८॥

तस्य रोगा न वाधन्ते वातपित्तादिसंभवाः॥९॥

इस आख्यान का पारायण करने वाले को वातपित्तकफादिज्य रोग पीड़ित नहीं करते, वह सदैव स्वस्थ रहता है॥९॥

नाकालमरणं तस्य न सर्पैश्चापि दंश्यते।
विषं नाक्रमते देहे न जडत्वं न मूकता॥१०॥

उस साधक की असमय में अकाल मृत्यु नहीं होती, उसे सर्पादि प्राणियों से दंशनादि (डसना आदि) नहीं होता, शरीर में विष व्याप्त नहीं होता तथा देह में आलस्यादि जड़ता नहीं रहती तथा वाणी स्तम्भित नहीं रहती अर्थात मूकता नहीं रहती॥१०॥

नोपसर्गभयं तस्य न चोत्पातभयं तथा।
नाभिचारकृतैर्दोषैर्लिप्यते स कदाचन॥११॥

इस ललितोपाख्यान के पठन एवं श्रवण से प्राकृतिक आपदाओं का भय व्याप्त नहीं होता, उत्पातों का भय नहीं रहता, वह कभी भी अभिचार कर्मों (मारण मोहन उच्चाटन वशीकरणादि) के दोषों से प्रभावित नहीं होता॥११॥

सर्वकामसमृद्धार्थो यः पठेत्तु दिनेदिने।
नित्यमूर्जितभक्त्या च दुर्व्याघातादिवर्जितः॥१२॥

जो भी इस आख्यान का पारायण प्रतिदिन करता है तो उसकी समस्त कामनाएं सफल सम्पन्न

होती हैं, वह नित्य उर्जित होती हुई अर्थात रोज उत्तरोत्तर भक्ति की वृद्धि से घातक आघातों आदि से रक्षा होती है॥१२॥

यत्पुण्यं सर्वतीर्थानां गङ्गादीनां विशेषतः।
तत्पुण्यं कोटिगुणितं प्राप्नोति श्रवणादिह॥१३॥

समस्त तीर्थों की यात्रा से विशेषरूप से गंगादि देव नदियों में पर्वों में स्नानादि से जो पुण्य अर्जित होता है वैसे पुण्य से कोटिगुना पुण्य श्रद्धा से युक्त होकर मनुष्य इसी जन्म में ललितोपाख्यान श्रवण से प्राप्त कर लेता है॥१३॥

दशानां राजसूयानामग्निष्टोमशतस्य च।
श्रवणात्फलमाप्नोति कोटिकोटिगुणोत्तरम्॥१४॥

दश राजसूय यज्ञों का फल या सैंकड़ों अग्निष्टोमविधि का फल इन सभी कर्मकाण्डों के फलों से कोटिगुना समृद्ध इस आख्यान के श्रद्धा से श्रवण करने का फल होता है॥१४॥

अवध्यः सर्वभूतानामन्येषां च विशेषतः।
जीवेद्वर्षशतं साग्रं सर्वव्याधिविवर्जितः॥१५॥

अन्य जितने भी समस्त भूतप्राणिगण हैं उन सभी से वह अवध्य हो जाता है समस्त व्याधियों से रहित होकर सौ वर्षों तक जीवित रहता है॥१५॥

गोघ्नश्चैव कृतघ्नश्च भ्रूणहा गुरुतल्पगः।
शरणागतघाती च मित्रविश्वासघातकः॥१६॥
दुष्टः पापसमाचारो मातृहा पितृहा तथा।
श्रवणादस्य भावेन मुच्यते सर्वपातकैः॥१७॥

गोहत्यारा किये का उपकारन मानने वाला, भ्रूण घातक और गुरु की शय्या पर बैठने वाला, शरण में आए हुए को हानि करने वाला तथा अपने मित्रों के विश्वास का हनन करने वाला, जो दुष्ट स्वभाव का है, जो पाप पूर्ण आचरण करने वाला है, जिसने मां का तिरस्कार किया, पिता का अपमान किया ऐसे अनेकों पातकों से मनुष्य छुटकारा पाता है, जब वह इस आख्यान का श्रवण श्रद्धा एवं भाव से चिन्तन करता हुआ श्रवण करता है॥१६,१७॥

तीर्थेषु पूजावेलासु विषुवत्ययनेषु च।
पञ्चपर्वसु जन्मर्क्षे पुण्येष्वायतनेषु च॥१८॥
राज्यक्षोभे रोगभये मारीचोरभयादिषु।
ये पठन्तीदमाख्यानं ते संसिद्धिमवाप्नुयुः॥१९॥

समस्ततीर्थ क्षेत्रों में पूजा करने की वेलाओं में (समयों में) विषुव संक्रान्ति (मेष और तुला संक्रमण) तथा अयन-संक्रान्ति (कर्क एवं मकर संक्रांति) तथा पांच पर्वों (होली, रक्षाबंधन, दशहरा, दीपावली, दुर्गापूजा अष्टमी/नवमीं) जन्मनक्षत्र में और पवित्र देवस्थानों में घरों में, राज्य में क्षोभ, हलचल, परिवर्तनादि में, राज्य से भय, दूसरे राज्य द्वारा बढ़ाई आदि, डाका, तस्करी, चोरी आदि भयादि के होने पर जो इस आख्यान का भक्तिपूर्वक पारायण करते हैं तो उन्हें निर्भीकता आदि सफलता प्राप्त होती है॥१८-१९॥

यत्रेदं लिखितं पुस्ते वर्तते कुम्भसम्भवः।
तस्मिन्देशे न रोगश्च नच दुर्भिक्षसम्भवः॥२०॥

जिस स्थान में गृह में यह पुस्तक होती है। तो हे कुंभज! उस क्षेत्र में न रोगोपद्रव होता न ही दुर्भिक्ष की सम्भावना रहती सर्वथा निरुपद्रव वह क्षेत्र रहता है॥२०॥

पूजाविधानमखिलं शास्त्रोक्तनैवकर्मणा।
खण्डान्तरे वदिष्यामि तदाकर्णय कुम्भज॥२१॥

हे कुम्भज! मैं खण्डान्तर में पूजाविधान शास्त्रोक्तरीति से मान्य कर्मपूर्वक कहूंगा॥२१॥

द्वात्रिंशल्ललिताख्यानममृतं दिव्यदर्शनम्।
देवीमाहात्म्यमपि च पयार्याः कुम्भसंभव॥२२॥

बत्तीस अध्यायों में यह ललिताख्यान अमृतरूप है, शक्यिों का दिव्य दर्शन है, हे कुम्भज! विभिन्न रूपों में देवी का महात्म्य भी ज्ञात हुआ है॥२२॥

तस्माद्द्वात्रिंशिकाशास्त्रं त्रब्रह्माण्डोत्तरकीर्तितम्।
देवीसमुत्सवे जाते पठितव्य प्रयत्नतः॥२३॥

देवी महात्म्य का परिचय होने से ब्रह्माण्डोत्तर पुराण में कहे गये द्वात्रिंशिका शास्त्र का देवी समुत्सव में (गुप्त नवरात्र और प्रकट नवरात्र चारों नवरात्रों में) प्रयत्न से पाठ करना चाहिये॥२३॥

देव्यः समस्तास्त्रैलोक्ये यतः श्रीललितात्मिका।
अतस्ताः स्वस्वपूजासु कुप्यन्तस्या अपाठनात्॥२४॥

समस्त त्रैलोक्य देवियां व्याप्त हैं क्योंकि श्री ललितात्म भाव को धारण करती हैं। उनकी ही सभी विभूतियां हैं अतः वे सभी अपनी अपनी पूजाओं में पाठ न होने पर वे देवियां कुपित हो जाती हैं॥२४॥

विशेषस्तु दुगार्याः संप्राप्ते तु महोत्सवे।
ब्राह्मणं वरयेद्देव्यै द्वात्रिशत्पाठकर्मणि॥२५॥

विशेष रूप तो यह है कि भगवती दुर्गा के महोत्सव प्राप्त होने पर द्वात्रिंशल्पाठ (३२ पाठ) करने

के लिये योग्य ब्राह्मण का वरण करें ॥२५ ॥

स्वयं वापि पठेदुर्गासन्निधो दृढ़मानसः।
एकवारं द्विवारं वा त्रिवारं वा प्रयत्नतः ॥२६ ॥

दुर्गापीठ में दृढ़ संकल्प करके इस आख्यान का पाठ एक बार, दो बार या तीन बार प्रयत्नपूर्वक करें ॥२६ ॥

ललिताख्यानपाठस्तु सर्वसिद्धिप्रदायकः।
त्रैलोक्यजन्तुजालाढ्यबलेः करणतो यथा ॥२७ ॥

ललिताख्यान का पाठ सर्वसिद्धि प्रदान करने वाला है जैसे त्रैलोक्य में वेदानकूल जन्तुहिंसा यज्ञ में की जाती है और जो फल प्राप्त होता है वह फल श्रवण मात्र से प्राप्त होता है ॥२७ ॥

ललिताख्यानपाठेन तथा दुर्गा प्रसीदति।
अशुचिर्वा शुचिर्वापि यादृक्तादृगवस्थितः ॥२८ ॥

अशुद्ध हो या शुद्ध हो जैसा हो वैसा ही रहकर श्री ललिताख्यान का पारायण करे इससे दुर्गा भगवती कृपा प्राप्त होती है ॥२८ ॥

पठन्द्वात्रिंशिकापाठं सर्वपापैः प्रमुच्यते।
प्रत्यब्दमुत्सवे दौर्गे पाठयेद्भूमिवल्लभः ॥२९ ॥

द्वात्रिंशिका के पाठ को करता हुआ साधक सभी पापों से विमुक्त हो जाता है प्रतिवर्ष दुर्गोत्सव प्राप्त होने पर सम्पन्न व्यक्ति पाठ करावे। सामान्य व्यक्ति स्वयं पाठ करें ॥२९ ॥

इदं द्वात्रिंशदध्यायसंमितं दर्शनोत्तमम्।
कारणं सर्वसिद्धीनां नास्मात्परतरं महत् ॥३० ॥

यह द्वात्रिंशिका अध्याय सम्पन्न उत्तम दर्शन है जिसमें भगवती के रूप का साक्षात्कार होता है, यह समस्त सिद्धियों का एकमात्र कारण है इससे बढ़कर और कोई बड़ा साधन नहीं है ॥३० ॥

द्वात्रिंशिकाया अस्यास्तु सकृदावर्तनादपि।
चण्डिकाकोटिपाठस्य सदृशं फलमुद्भवेत् ॥३१ ॥

बत्तीस अध्याय वाला यह पाठ का ग्रंथ दुर्गोत्सवों में नियमित एक बार भी आवर्तन कर लेने से पाठ कर लेने से या ब्राह्मण द्वारा पाठ करवा लेने स कोटिचण्डी पाठों के बराबर फल समुत्पन्न हो जाता है ॥३१ ॥

आख्यानमेतदवदातगुणाः पठन्तः सत्सप्रदायकमपाकृतसर्वदुःखम्।
विज्ञानदीप्तिकलितां ललितामहेशीमासाद्य चेतसि वहन्ति सदाभितृप्तिम् ॥३२ ॥

इस ललितोपाख्यान का पाठ अत्युन्नत शास्त्रीय कुल परंपरा से आए हुए तथा श्री गुरु दीक्षा में

उपदिष्ट मंत्र और आदिष्ट नियमों से नियमित गुणों वाले साधकजन पढ़ते हुए वैध सम्प्रदायबल से समस्त प्रकट अप्रकट दुःख समूहों को हटाकर विज्ञानतत्वदीप्ति से अभिव्यक्त भगवती ललिता महेशी को प्राप्त करके चित्त में सदैव अभितृप्ति पा लेते हैं ॥३२॥

इति श्रीब्रह्माण्डपुराणे उत्तरखण्डे हयग्रीवागस्त्यसंवादे श्रीललितोपाख्याने मन्त्रराज ततः साधनादिकथनं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः सम्पूर्तिं प्राप्तः सम्पूर्णः परिपूर्णः

॥ श्रीललितोपाख्यानं समाप्तम् ॥

विरुद-षोडशी

वन्दे गुरुपदद्वन्द्वमवाङ्मनसगोचरम्।
रक्तशुक्लप्रभामिश्रमतर्क्यन्त्रैपुरं महः।।

गणेश ग्रह नक्षत्र योगिनीराशिरूपिणीम् ।
देवीं मन्त्रमयीं नौमि मातृकां पीठरूपिणीम् ।।

माता मरकतश्यामा मातंगीमदशालिनी ।
कटाक्षयतु कल्याणी कदम्बरुहवासिनी ।।

बालार्कारुण तेजसं त्रिनयनां रक्ताम्बरोल्लासिनीम्।
नानालङ्कृतिराजमानवपुषं बालोडुराड्शेखराम्।।

हस्तैरिक्षुधनुः सृणीं सुमशरं पाशं मुदा बिभ्रतीम्।
श्रीचक्रस्थित सुन्दरीं त्रिजगतामाधारभूतां भजे ।।

त्वन्मुखाम्बुज विलोकनोल्लसत्प्रेमनिश्चलविलोचनद्वयीम्।
उन्मनीमुपगतां सभामिमां भावयामि परमेशितावकीम् ।।

निर्विशेष चिद्ब्रह्मज्योतिः प्रकाशस्वरूपमहाकामेश्वर
लौहित्यविमर्शात्मकब्रह्मविद्या स्वरूपिणी ।।

चिदग्निकुण्ड सम्भूतकोटिभानुचन्द्र
प्रकाश सुशीतल बिसतन्तुतनीयसी ।

कामगिरिपूर्णगिरि जालन्धरोड्याणाख्यपीठादिषट्चक्र
परिव्याप्त बिन्द्वादिमहाबिन्द्वन्तवितन्विनी ।

भवविभवपराभवनिग्रहानुग्रहात्मकविधि
हरिहरेश्वर-सदाशिवमयपञ्चप्रेतासनाधिष्ठायिनी ।

भुज चतुष्टय सन्धारित मनोमयेक्षुकोदण्डक्रोधाकाराङ्कुशोज्ज्वल
पञ्चतन्मात्र - सुमसायकरागस्वरूपपाशाख्यनिगृहीत चराचर प्रपञ्च- कादम्बा।
निजाज्ञा प्रेरितवशिन्याद्यष्ट वाग्देवता संस्तुतसहस्त्ररहस्याभिधानवती ।
महाचतुः षष्टिकोटियोगिनीगणमयूखपरिसेवित- नित्याषोडशिकारूपिणी ।
भारती गौरिलक्ष्मिकोटिशक्ति संयुत विधि-हरिहर कोटि समावृता।
परासुहृन्मन्त्रिणीदण्डिनीसमावृत-सचामरलक्ष्मिशारदाकोटि

समाराध्या महागणेशमार्तण्डभैरव लक्ष्मी नारायण
साम्बसदाशिवात्मकचतुरायतना ।

गणेश गुहबाला बाल्यलीला विनोदनानर्तनालोकामोदिनी ।
अभिनव सच्चिदानन्दस्वरूब्रह्मपरिबृंहणैका
धिष्ठानचतुर्वर्णाश्रममयसनातनधर्मविधायिनी ।
काव्यालापविनोदननर्मक्रीडा प्रहसन पर सुरेशा -
दिलोकपालदिक् पालपरिवृतचन्द्रमौलीश्वरा ।

श्रुतिगताभिधान स्वरूपानुसन्धानैकप्रवणोन्मनसनकादि
दक्षिणामूर्तिहयग्रीवानन्द भैरव लोपामुद्राऽऽगस्त्यजामदग्न्य
सुमेधादि परौघदिव्यौघसिद्धौघमानवौघनवनाथ श्रीगुरु-
परमगुरु-परमेष्ठिगुरु मण्डलप्रभामयी ।

ब्रह्मविद्या सम्प्रदाय संस्थापक-
श्रीमन्नारायणादिशङ्कराचार्यजगद्गुरुपरम्परसमाराधित- श्रीचक्रमयी ।

अनन्त कोटिब्रह्माण्डजननी, सुधासिन्धुमध्यमणि
द्वीपकदम्बवनवासिनीमहाश्रीचक्रनवावरणावरणेशीसहित
महामहेश्वरि - महामहारात्रि महामहाशक्ति महामहागुप्ता-
महामहाज्ञप्ता-महामहानन्दा-महामहास्पन्दा महामहाशया-
महामहाश्रीचक्रनगरसम्राज्ञी- महामहात्रिपुरसुन्दरी राजराजेश्वरी-
पराभट्टरिका ललिताम्बा भगवती श्रीमाता लालित्य संवर्द्धिनी-
परमवात्सल्यशालिनी- अनन्तकोटिज्ञानरत्नमयनवप्रेतपादपीठ-
सन्निहितपादाम्भोरुहा विजयतेतमाम् ।

कृपाङ्कुरु जगन्मातः मामेवं हततेजसम्।
ज्ञानं देहि स्मृतिं विद्यां शक्तिं देहि मनस्विनि ।।

प्रदीपज्वालाभिर्दिवसकरनीराजनविधिः
सुधासूतेश्चन्द्रोपलजललवैरर्घ्यरचना ।।

स्वकीयैरम्भोभिस्सलिलनिधि सौहित्यकरणम्-
त्वदीयाभिर्वाग्भिस्तवजननि वाचां स्तुतिरियम् ।।

चतु:षष्टी योगिनियाँ

1. अक्षोभ्या
2. ऋक्षकर्णा
3. क्षपणा
4. राक्षसी
5. क्षया
6. पिङ्गाक्षी
7. अक्षया
8. अक्षपा
9. ईला
10. लीलावती
11. लया
12. लीला
13. लङ्का
14. लङ्केश्वरी
15. लालसा
16. विमला
17. हुताशा
18. विशालाक्षी
19. हङ्कारा
20. बडवामुखी
21. हाहारणा
22. महाक्रूरा
23. क्रोधना
24. भयानना
25. सर्वज्ञा
26. तरला
27. तारा
28. ऋग्वेदा
29. हयानना
30. सारा
31. रससंग्राहा
32. सरवा
33. तालजंघी
34. रक्ताक्षी
35. करंकिनी
36. विद्विजिह्वा
37. मेघनादा
38. प्रचण्डोग्रा
39. कालकर्णी
40. वरप्रदा
41. चन्द्रा
42. चन्द्रवला
43. प्रपञ्चा
44. प्रलयान्तिका
45. शिशुवक्रा
46. पिशाची
47. पिशिताशा
48. लोलुपा
49. वमन
50. तपनी
51. वामना
52. महिषमर्दिनी
53. वायुवेगा
54. बृहत्कुक्षि
55. विकृता
56. विश्वरूपा
57. यमजिह्वा
58. जयन्ति
59. दुर्जया
60. अवान्तिका
61. बिडाली
62. रेवती
63. प्रेतना
64. जयन्तिका

नित्या माताएँ

1.	ललिता महानित्या	
2.	कामेश्वरी	(शुक्लपक्ष प्रतिपदा/कृष्णपक्ष अमावस्या)
3.	भगमालिनी	(शुक्लपक्ष द्वितीया/कृष्णपक्ष चतुर्दशी)
4.	नित्यक्लिन्ना	(शुक्लपक्ष तृतीया/ कृष्णपक्ष त्रयोदशी)
5.	भेरुण्डा	(शुक्लपक्ष चतुर्थी/ कृष्णपक्ष द्वादशी)
6.	वह्निवासिनी	(शुक्लपक्ष पञ्चमी/ कृष्णपक्ष एकादशी)
7.	महावज्रेश्वरी	(शुक्लपक्ष षष्ठी/ कृष्णपक्ष दशमी)
8.	शिवदूती	(शुक्लपक्ष सप्तमी/ कृष्णपक्ष नवमी)
9.	त्वरिता	(शुक्लपक्ष अष्टमी/ कृष्णपक्ष अष्टमी)
10.	कुलसुन्दरी	(शुक्लपक्ष नवमी/ कृष्णपक्ष सप्तमी)
11.	नित्या	(शुक्लपक्ष दसमी/ कृष्णपक्ष षष्ठी)
12.	नीलपताका	(शुक्लपक्ष एकादशी/ कृष्णपक्ष पञ्चमी)
13.	विजया	(शुक्लपक्ष द्वादशी/ कृष्णपक्ष चतुर्थी)
14.	सर्वमङ्गला	(शुक्लपक्ष त्रयोदशी/ कृष्णपक्ष तृतीया)
15.	ज्वालामालिनी	(शुक्लपक्ष चतुर्दशी/ कृष्णपक्ष द्वितीया)
16.	चित्रा	(शुक्लपक्ष पूर्णिमा/ कृष्णपक्ष प्रतिपदा)
17.	मातङ्गी	
18.	वाराही	

माँ की करुणा

पू. महाराज जी द्वारा रचित

माँ की करुणा असम्भव को सम्भव करें
नेत्र कमलों ने लाखों के संकट हरे।। माँ की करुणा...!!

हर की नेत्राग्नि से काम जल कर मरा,
मन में रति के कठिन शोक सागर भरा
माता लक्ष्मी ने आँखों में आँसू भरे।। माँ की करुणा...!!

आर्त होकर किया ध्यान जगदम्ब का,
दीन भक्तों के जीवन के अवलम्ब का,
आई श्रीदेवी नयनों में अमृत भरे।। माँ की करुणा...!!

काम के अन्त की जब सुनाई कथा,
भक्त के दुःख को देख छाई व्यथा,
काम नेत्रों से प्रकटा उमंगें भरे।। माँ की करुणा...!!

देख जय जय किया देव गन्धर्व ने,
सृष्टि सौन्दर्य पाया स्वयं शर्व ने,
सब ने त्रिपुरा के चरणों में मस्तक धरे।। माँ की करुणा...!!

काम संजीवनी नाम तब से पड़ा,
दीन-दीनों की आपत्ति जब से छुड़ा,
दास जीवन चरण में समर्पित करें।। माँ की करुणा...!!

माँ की करुणा असम्भव को सम्भव करे
नेत्र कमलों ने लाखों के संकट हरे।।

पीठद्वयाधीश्वर जगद्गुरु स्वामिस्वरूपानन्दसरस्वतीविरुदावली

नारायण समारम्भां शङ्कराचार्यमध्यमाम् ।
अस्मदाचार्यपर्य्यन्तां वन्दे गुरुपरम्पराम् ।।

श्री मत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यवर्याः, पदवाक्यप्रमाणपारावारपारीणाः यमनियमासन प्राणायाम प्रत्याहारधारणाध्यान समाध्यष्टाङ्गयोगानुष्ठान निष्ठा तपश्चर्याचरण चक्रवर्तिनः अनादिगुरुपरम्परा प्राप्तवैदिक-धर्मप्रचारणपरायणाः, सकलदर्शनसमन्वितवेद-वेदाङ्गसिद्धान्तप्रतिपादकाचार्याः निगमागमसारहृदयाः, सर्वतन्त्रस्वतन्त्राः, वर्णाश्रमसदाचारशिक्षकाः, विश्वकल्याणमानसाः, अखण्डभूमण्डलाचार्याः, अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीमदाद्यशङ्कराचार्य भगवत्पादस्थापित मर्यादापोषणपरायणाः, परापरविद्याविद्योतितान्तःकरण अलकनन्दातीरवासिनः, श्रीबदरीनारायण समाराधनमानसाः, श्रीज्योतिरीश्वरसहित पूर्णाम्बोपासकाः, उत्तराम्नाय ज्योतिर्मठाधीश्वराः, गोमतीतीरवासिनः, पश्चिमाम्नायद्वारकाशारदापीठाधीश्वराः- अनन्त श्रीविभूषित जगद्गुरु शङ्कराचार्य श्रीस्वरूपानन्द सरस्वती स्वामिवर्याः विजयन्तेतराम्

धर्म की जय हो । अधर्म का नाश हो ।
प्राणियों में सद्भावना हो । विश्व का कल्याण हो।
गोमाता की जय हो । गोहत्या बन्द हो ।

प्रार्थना (हमारी श्री जगन्माता)

(पूज्य महाराजश्री द्वारा रचित)

हमारी श्री जगन्माता, हमें प्राणों से प्यारी हैं ।

हमारी देवि त्रिपुराम्बा, हमें जीवन से प्यारी हैं ।॥ स्थायी/ध्रुव/टेक

यही ललिता महाविद्या, यही राधा यही सीता-2

विश्व उद्धार करने को, अनेकों रूप धारी है ॥1॥ हमारी श्री जगन्माता

यही दुर्गा महाकाली, यही बालाकुमारी है -2

कभी नररूप धारण कर, बनी मोहन मुरारी है ।॥2॥ हमारी श्री जगन्माता

सुधा के सिन्धु के भीतर, मनोरम द्वीप में उनका-2

महल मणि का बना सुन्दर, नीपवन की मँझारी है ॥3॥ हमारी श्री जगन्माता

हृदय करुणा प्रपूरित है, मनोरम वस्त्रभूषण हैं -2

मधुर मुस्कान की शोभा, परमशिव ने निहारी है ॥4॥ हमारी श्री जगन्माता

विराजी दिव्य आसन पर, बने ब्रह्मा मुरारी हर-2

सदाशिव ईशपद बनकर, शक्ति निज की संवारी है ॥5॥ हमारी श्री जगन्माता

भण्डनामा असुर ने जब, जगत् को त्रास पहुँचाया- 2

यज्ञ की अग्नि से होकर, प्रगट विपदा निवारी है ।॥6॥ हमारी श्री जगन्माता

भयङ्कर सैन्य लेकर के दैत्य जब, रण में आया था-2

चक्ररथ बैठ कर माता, असुरदल को सँहारी हैं ॥7॥ हमारी श्री जगन्माता

शरण में इनकी जो आता, मनोरथ पूर्ण करती हैं-2

दिव्यमन्दिर में श्रीवन के मणीपुर से पधारी हैं ॥8॥ हमारी श्री जगन्माता

मेरे गुरुदेव (स्वरूपानन्द) कहते हैं, परमहंसी चले आओ-2

कि ललिताम्बा का स्मरण वन्दन, सदा कल्याणकारी है ॥9॥हमारी श्री जगन्माता...

त्रिपुरसुन्दरी विजयम्

पू. म. जी द्वारा रचित

मीठे रस से भर्‌योरी महारानी राजे तर्ज पर

चक्ररथ पर चढ़ी रे महारानी राजे, महारानी राजे ।।
भण्ड दैत्य से लड़न युवरानी साजे ।।स्थायी।।

राजश्यामला रथ पर चालीं लेकर सैन्य अपार -2
चौसठ कोटि योगिनी आईं जिनका आर न पार -2
रणभूमि में अगाड़ी मारु बाजा बाजे, मारु बाजा बाजे -
भण्ड दैत्य से लड़न युवरानी साजे,
चक्ररथपर चढ़ी रे महारानी राजे-महारानी राजे ।। 1 ।।

माता दण्डिनी चलीं अगाड़ी धर वाराही रूप-2
अश्वारूढारथपर चालीं जिनका रूप अनूप -2
उनके अश्व के गले की किंकिणी बाजे-
किंकिणी बाजे भण्ड दैत्य से लड़न युवरानी साजे
चक्ररथपर चढ़ी रे महारानी राजे-महारानी राजे ।।
भण्ड दैत्य से लड़न युवरानी साजे ।। 2 ।।

भण्ड दैत्य रण सम्मुख आया लेकर सैन्य अपार -2
अस्त्र-शस्त्र रण भीतर चाले हुआ कठिन संहार -2
शक्ति सेना के प्रचारे दैत्य सेना भाजे-दैत्य सेना भाजे-

भण्डदैत्य से लड़न युवरानी साजे ।।
चक्ररथपर चढ़ी रे महारानी राजे-महारानी राजे ।।
भण्ड दैत्य से लड़न युवरानी साजे ।।3।।

देखी सेना जब माता की भण्ड गयो घबड़ाय-2
विघ्नयन्त्र ऊपर चलवायो शक्ति सैन्य विलखाय-2
विघ्नयंत्र के भरोसे रण में दैत्य गाजे- रण में दैत्य गाजे-
भण्ड दैत्य से लड़न युवरानी साजे
चक्ररथपर चढ़ी रे महारानी राजे-महारानी राजे ।।
भण्ड दैत्य से लड़न युवरानी साजे ।। 4 ।।

कामेश्वर के मुख को देखा गणप लिये प्रकटाय -2
विघ्नेश्वर ने शुण्ड दण्ड से विघ्न दिया लौटाय-2
अपनी सेना की दशा को देख दैत्य लाजे-देख लाजे-
भण्डदैत्य से लड़न युवरानी साजे
चक्ररथपर चढ़ी रे महारानी राजे-महारानी राजे ।।
भण्ड दैत्य से लड़न युवरानी साजे ।। 5 ।।

मन्त्रिणी दण्डिनी रण में खेलें रिपुदल भीतर जाय -2
सचिव विषंग विशुक्र प्राण ले मन में अति हर्षाय - 2
शक्ति सेना की तुमुल शंखध्वनि गाजे -
शंख ध्वनि गाजे भण्डदैत्य से लड़न युवरानी साजे

चक्ररथपर चढ़ी रे महारानी राजे-महारानी राजे ।।
भण्ड दैत्य से लड़न युवरानी साजे ।।6।।

चक्रराज में बैठी माता आयुध रही सम्हार-2
आठ वर्ष की कन्या बाला दियो भण्डसुत मार-2
ज्वालामालिनी की ज्वाल की दिवाल भ्राजे-
दिवाल भ्राजे-भण्डदैत्य से लड़न युवरानी साजे ।।
चक्ररथपर चढ़ी रे महारानी राजे-महारानी राजे ।।
भण्ड दैत्य से लड़न युवरानी साजे ।।7।।

अस्त्र पाशुपत ऊपर छोड़े दैत्य सैन्य नस जाय -2
कामेश्वर को अस्त्र छोड़कर दैत्य दियो विनशाय-2
देवलोक में विजय की दुन्दुभि बाजे-दुन्दुभि बाजे-
भण्डदैत्य से लड़न युवरानी साजे
चक्ररथपर चढ़ी रे महारानी राजे-महारानी राजे ।।
भण्ड दैत्य से लड़न युवरानी साजे ।।8।।

शून्यक नगर भस्म भा क्षण में देव रहे हर्षाय -2
भण्डासुर को जीवसमायो अम्ब चरण में आय-2
आसुर भावों के नसाए जग में सुख साजे-जग में सुख साजे-
भण्ड दैत्य से लड़न युवरानी साजे ।।
चक्ररथपर चढ़ी रे महारानी राजे-महारानी राजे ।।
भण्ड दैत्य से लड़न युवरानी साजे ।।9।।

श्रीवनम् त्रिपुरालयम्

पवन मंद सुगंध शीतल दिव्य मंदिर शोभितम्।
निकट गंगा बहतनिर्मल श्रीवनम् त्रिपुरालयम् ।।१।।

अति मनोरम मध्य मंदिर त्रिपुरसुन्दरी शोभितम्।
योगिनी जन सतत निरतत श्रीवनम् त्रिपुरालयम् ।।२।।

गिरिसिखर पर सहनवग्रह पवन पुत्र विराजितम्।
सर्वसिद्धि प्रदान करता श्रीवनम् त्रिपुरालयम् ।।३ ।।

सघन वन में शिला शोभित सद्विचार विराजितम्।
ध्यानमग्न मुनीश बैठे श्रीवनम् त्रिपुरालयम् ।।४ ।।

सिद्ध मणिमय लिंग शोभित गंगकुण्ड विराजितम्।
भक्तमुनिजन करत जय-जय श्रीवनम् त्रिपुरालयम् ।।५।।

नर्मदासर परपावन नीलपद्म विराजितम्।
ध्यान योग गुफा सुहावन श्रीवनम् त्रिपुरालयम् ।।६।।

ज्योतिरीश्वरशिवविराजे सन्तमुनिजन पूजितम्।
भक्ति हेतु अपार करुणा श्रीवनम् त्रिपुरालयम् ।।७।।

श्रीनगर में चतुर्विंशति विष्णुरूप विराजितम्।
जगन्नाथ अपार लीला श्रीवनम् त्रिपुरालयम् ।।८ ।।

भक्तिश्रद्धा सहित जो जन करत स्तुति सादरम्।
शान्ति सौख्य समृद्धि पावे श्रीवनम् त्रिपुरालयम् ।।९।।

दशरथ कौशल्या रथ के उद्देश्य का कीर्तन

रघुपति राघव राजाराम । पतित पावन सीताराम।
कौशल्या के प्यारे राम । दशरथ राज दुलारे राम ।।
अवधपुरी प्रिय पावन धाम । मन्दिर का हो चालू काम ।।
जब तक ना हो पूरा काम । नहीं करेंगे हम विश्राम ।।
सबके पूर्वज राम महान् । हम सब हैं उनकी सन्तान ।
सन्तों का पावन अभियान । सफल करेंगे श्रीभगवान् ।।
धर्मों का सन्देश महान् । भारत माँ की सब सन्तान ।।
राम सभी के जीवन प्राण । उनसे हुआ विश्व कल्यान ।।
मन्दिर अपना बने महान् । वास्तु शास्त्र परिपूर्ण विधान ।
शीघ्र विराजे मंदिर आन । रामलला भक्तों के प्रान ।।
धर्म सनातन का शुभ काम । पूर्ण करेंगे सीताराम ।।
जगद्गुरु का पावन काम । हिलमिल करो भक्त अविराम ।।
रघुपति राघव राजाराम। पतितपावन सीताराम ।।
कौशल्या के प्यारे राम । दशरथ राज दुलारे राम ।।

महत्वपूर्ण स्मृति

महत्वपूर्ण स्मृति